भगवान श्री
रजनीश
प्रेम
कबीरा
रोया

भगवान श्री रजनीश

भगवान श्री रजनीश उन विरल विभूतियों में हैं, जिन्हें किसी कोटि में बांधना असंभव है। हिन्दू मनीषा ने उनके लिए सर्व-तंत्र-स्वतंत्र की संज्ञा चुनी, और इसीलिए हम उन्हें भगवान कहते हैं।

वह परम प्रज्ञा को उपलब्ध संत हैं और क्रान्त-दर्शी ऋषि। सत्य की गंगोत्री में उनका आवास है।

उनका समस्त जीवन एक लयबद्ध संगीत है। वे वही कहते और करते हैं, जिसे वे जीते हैं। इसलिए उनकी वाणी में वह प्रखरता और प्रसाद है, जो उपनिषदों की याद दिलाती है।

भगवान श्री रजनीश धर्म के हैं; स्वयं धर्म ही हैं। लेकिन उनका धर्म आकाश की तरह सर्वग्राही है, जहां काम, अर्थ और मोक्ष, सब सम्मिलित हैं।

मनुष्य की जो चरम संभावना है, वह भगवान श्री रजनीश में यथार्थ हो गई है। हमारे अतीत और वर्तमान से भी बढ़कर वह हमारे लिए भविष्य हैं। वह हमारे गौरीशंकर हैं।

यही कारण है कि भगवान श्री रजनीश को समझने में उनके सम-सामयिकों को इतनी कठिनाई होती है। और यही वह खतरा भी है कि जीते-जी उन्हें हम चूक सकते हैं—जिसका प्रायश्चित मरणोपरांत पूजा है।

दीनता, दरिद्रता, भारत की समस्याएं सब मिट सकती हैं; सिर्फ भारत को उन्हें मिटाने की सम्यक-दृष्टि देने की जरूरत है। भारत की समस्याएं हमारी अपनी बनायी हुई समस्याएं हैं, इसलिए मिटाना आसान है। आज दुनिया में इतनी यांत्रिक प्रगति हुई है कि अब भारत को गरीब रहने की कोई जरूरत नहीं है। अगर हम गरीब हैं तो शायद हम रहना चाहते हैं, इसलिए गरीब हैं; हमारे सोचने-समझने के ढंग मूढ़तापूर्ण हैं, इसलिए गरीब हैं। हमारे पास सुन्दरतम भूमि है, सुन्दरतम आकाश है। हमारे पास प्रतिभाओं की भी कमी नहीं, लेकिन हम प्रतिभा का सम्मान भूल गये हैं!

—भगवान श्री रजनीश

भगवान श्री रजनीश

देख कबीरा रोया
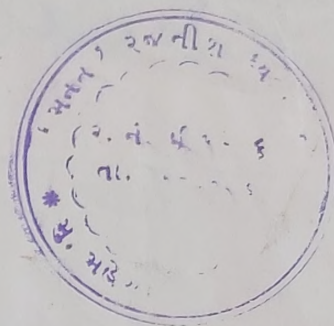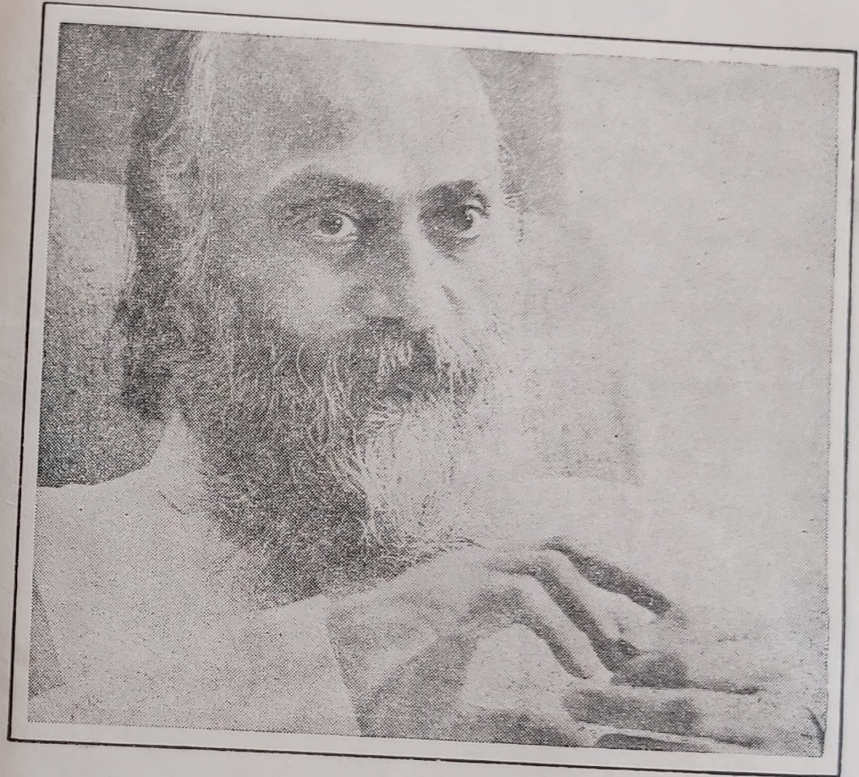
भगवान श्री रजनीश

देख कबीरा रोया

देख कबीरा रोया

भगवान श्री रजनीश

संकलित सामग्री

अस्वीकृति में उठा हाथ

गांधीवाद : एक और समीक्षा

देख कबीरा रोया

(१६ अप्रकाशित प्रवचन)

सम्पादन

स्वामी आनन्द मैत्रेय

संयोजन

स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

संकलन

स्वामी योगप्रताप भारती
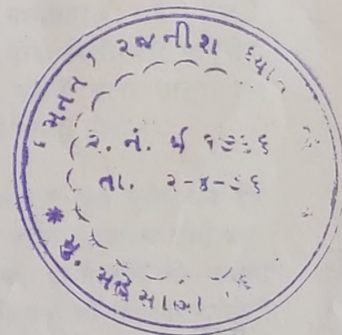
रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड

प्रकाशक
मा योग लक्ष्मी
सचिव, रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड
१७, कोरेगांव पार्क
पूना ४११००१ (महाराष्ट्र)

प्रथम संस्करण	प्रतियां	मूल्य
नवम्बर १९७९	३,३००	२५ रुपये

मुद्रक
स्वामी तिलक भारती
चड्ढा प्रिन्टर्स
३३८–जी, बम्बई बाजार
मेरठ—२५०००१
फोन ७५३०१

मैं अकेला विकल्प हूं

'तुमने कहा कि आपके आश्रम को देखकर दूसरे लोक की अनुभूति हुई। तुम सोच-समझ के व्यक्ति मालूम होते हो। आनन्द जगताप विवेक वार्ता नाम के पत्र के सम्पादक हैं। सम्पादक इतने समझदार होते नहीं। पत्रकार कूड़ा-करकट बटोरते हैं। मगर तुम पारखी हो। तुम्हारे पास बुद्धिमत्ता का एक अंश है, इसलिए तुम अनुभव कर सके किसी दूसरे लोक का। निश्चित ही जो यहां घटित हो रहा है वह करीब-करीब असम्भव घटित हो रहा है। उसे देखने के लिए बड़ी प्रखर आंखें चाहिए, बड़ी जौहरी की आंखें चाहिए। लेकिन तुम्हारे मन में सवाल उठा, स्वाभाविक सवाल कि यह हमारे भारत देश में कहां तक सार्थक है?

पहली तो बात कि बुद्धों, कृष्णों, महावीरों के देश में अगर यह सार्थक नहीं है तो कहां सार्थक होगा? अगर कृष्ण के देश में मैं जो आनन्द का उत्सव पैदा कर रहा हूं उसकी सार्थकता नहीं है तो कहां इसकी सार्थकता हो सकेगी फिर? इससे शुभ सन्दर्भ और कहां मिलेगा? बहुत कठिन होगा किसी और भूमि पर, किसी और संस्कृति की धारा में इस गीत को गाना, जो मैं गाना चाहता हूं। अगर भगवद्गीता के देश में यह नहीं हो सकता तो फिर कहां होगा?

सदियों में हमने बहुत बुद्ध पुरुष पैदा किये हैं, यद्यपि वे बुद्ध पुरुष अब तक भी हमारी भीड़ को बदल नहीं पाये। मामला ही कठिन है, उनका कोई कसूर नहीं है। भीड़ बदलना ही नहीं चाहती है। कोई जागना ही न चाहे तो जगाना असम्भव है। और कोई जागकर भी आंख बन्द करके पड़ा रहे तो क्या करोगे? लेकिन इस देश के पास अमूल्य सम्पदा है। वह इसी देश की है, ऐसा नहीं कहना; सब की है, सारी दुनिया की है।

तुम पूछते हो हमारे इस भारत देश में यह कहां तक सार्थक है?

तुम तो भारत देश को बस उन्हीं समस्याओं में सीमित देखते हो जो रोज अखबारों में छपती हैं। भारत देश उन्हीं समस्याओं में समाप्त हो जाता है जो रोज़ अखबारों में छपती हैं—अलीगढ़ का हिन्दू-मुस्लिम दंगा, और कहीं हड़ताल और कहीं पुलिस की बगावत और कहीं गोलीबारी। तुम भारत को भारत के क्षुद्र राजनीतिज्ञों और उनकी एक-दूसरे की खींचतान करने का जो तमाशा दिल्ली में चलता है उसमें सीमित समझते हो। तुम भारत की दरिद्रता, दीनता इसमें ही भारत को सीमित समझते हो। तो भारत के समाधिस्थ लोगों को तुम गिनती में नहीं ले रहे, तो तुम भारत के बुद्धपुरुषों को गिनती में नहीं ले रहे, तो तुम कांटे गिन रहे हो, और फूलों को छोड़ रहे हो।

मैं फूलों को गिन रहा हूं, कांटों की मुझे चिन्ता नहीं है। क्योंकि मेरी दृष्टि यह है कि अगर कांटों पर बहुत ध्यान दो तो फूल भी कांटे हो जाते हैं, और फूलों को ध्यान से सींचो तो कांटे भी फूल हो जाते हैं। मैं निराशावादी नहीं हूं, मैं परम आशावादी हूं।

दीनता, दरिद्रता, भारत की समस्याएं सब मिट सकती हैं, सिर्फ भारत को उन्हें मिटाने की सम्यक-दृष्टि देने की जरूरत है। भारत की समस्याएं हमारी अपनी बनायी हुई समस्याएं हैं इसलिए मिटाना आसान है। आज दुनिया में इतनी यांत्रिक प्रगति हुई है कि अब भारत को गरीब रहने की कोई जरूरत नहीं है। अगर हम गरीब हैं तो शायद हम रहना चाहते हैं इसलिये गरीब हैं, हमारे सोचने-समझने के ढंग मूढ़तापूर्ण हैं इसलिए गरीब हैं। हमारे पास सुन्दरतम भूमि है, सुन्दरतम आकाश है। हमारे पास प्रतिभाओं की भी कमी नहीं, लेकिन हम प्रतिभा का सम्मान भूल गये हैं। तो जब भी हमारे यहां कोई प्रतिभा पैदा होती है उसको भी भारत छोड़ देना पड़ता है।

हम जड़-बुद्धियों का सम्मान करने में बड़े कुशल हो गये हैं। हमने ऐसे आधार खोज लिए हैं कि जड़-बुद्धि ही उसमें आ सकते हैं। कोई आदमी पांच बजे सुबह उठता है—हमारा सम्मान! कोई आदमी सिगरेट नहीं पीता—हमारा सम्मान! कोई आदमी सिर्फ साग-सब्जी खाता है—हमारा सम्मान! कोई आदमी खादी के कपड़े पहनता है—हमारा सम्मान! कोई आदमी रोज पूजा करता है—हमारा सम्मान! इससे कहीं प्रतिभा पैदा होगी? पांच बजे सुबह उठने से प्रतिभा पैदा होती है? कि सिगरेट न पीने से प्रतिभा पैदा होती है? कि खादी पहनने से प्रतिभा पैदा होती है? असल में कोई बुद्धू ही तीन-चार घंटे चरखा चला सकता है। जिन्दगी में और भी महत्वपूर्ण काम करने हैं। कुछ तीन-चार घंटे चरखा चला कर अगर तुमने साल-भर के लायक कपड़ा-लत्ता पैदा कर लिया तो

तुम अपने को बुद्धिमान समझ रहे हो? अगर थोड़ी-बहुत बुद्धि रही भी होगी तो चरखा डुबा लेगा। चलाते रहे चरखा तीन-चार घंटे—रेंचूं, रेंचूं, रेंचूं बस हो गये ढेंचं, ढेंचूं, ढेंचूं। खोपड़ी में कुछ थोड़ी ऊर्जा भी रही होगी, वह चरखा पी जायेगा। मगर हमारे सम्मान बड़े अजीब हैं। कोई आदमी एक बार भोजन करता है—हमारा सम्मान!

हम बड़ी असृजनात्मक चीजों को सम्मान देते हैं। इसलिए भारत में प्रतिभा तो पैदा होती है मगर प्रतिभा को भारत छोड़ देना पड़ता है। प्रतिभा का यहां अपमान है। प्रतिभा को सम्मान मिलता है अमरीका में, कि इंग्लैंड में, कि जर्मनी में।

यहां तो बाहर से प्रतिभायें आना चाहें तो हम आने नहीं देना चाहते! मैं एक ऐसी व्यवस्था यहां पैदा कर रहा हूं जिसमें वैज्ञानिक आने को उत्सुक हैं, डाक्टर आने को उत्सुक हैं, प्रोफेसर्स आने को उत्सुक हैं, लेखक, कवि, संगीतज्ञ···! लेकिन भारत सरकार उन्हें आने नहीं देना चाहती। यह पहला मौका है जब हम पश्चिम की प्रतिभा को यहां खींच सकते हैं। लेकिन भारत सरकार जैसी अन्धी सरकार शायद ही कहीं हो।

प्रतिभा का सम्मान करना सीखो। और प्रतिभा क्या है इसको समझना सीखो। और प्रतिभा की जो तुमने नकारात्मक परिभाषाएं बना रखी हैं उनसे छुटकारा पाओ। हमारे देश में ही काफी प्रतिभा होती है, और सारी दुनिया से प्रतिभा आ सकती है। इस देश के प्रति सारी दुनिया के मन में एक सम्मान है। इस देश के प्रति नहीं, बस इस देश में जो अद्‌भुत कुछ लोग पैदा हुए हैं उनके कारण। यह देश फिर सोने की चिड़िया बन सकता है। कोई कारण नहीं है इसके गरीब रहने का सिवाय तुम्हारे; तुम ही कारण हो।

तो मैं जो एक छोटा-सा जगत् निर्माण कर रहा हूं वह जरूर सन्दर्भ के बाहर मालूम होता है। मुझसे लोग आकर कहते हैं कि हम आश्रम के दरवाजे के भीतर आते हैं तो लगता है दूसरी दुनिया, और आश्रम के बाहर गये तो लगता है बिल्कुल दूसरी दुनिया! जो संन्यासी एक बार आश्रम में प्रविष्ट हो गये हैं वे बाहर जाना ही नहीं चाहते, वे दरवाजे के बाहर नहीं देखना चाहते। बाहर की पूरी की पूरी स्थिति इतनी दयनीय है, इतनी दुखद है, इतनी अशोभन है, इतनी दया-योग्य है कि जिनमें थोड़ी भी संवेदना है वे उसे न देखना ही पसन्द करेंगे।

पश्चिम से आये हुए अनेक लोग मुझसे कहते हैं कि इस दीन-दरिद्र, दुखी देश में आपकी बात लोग समझ पाएंगे? आपको पहचान पाएंगे?

कठिन है मामला। लेकिन कठिन है, इसलिए चुनौती है। और चुनौती स्वीकार करने योग्य है। पहले हम एक छोटी-सी दुनिया बना लें। एक दृष्टांत होगा वह कि ऐसा भी आदमी जी सकता है, कि ऐसी भी जीवन की चर्या हो सकती है कि बहुत थोड़े में भी बहुत आनन्द हो सकता है। फिर उस दृष्टांत के आधार पर हम सारे देश को निमंत्रित करना शुरू करेंगे कि आओ और देखो। और जो यहां हो सकता है वह कहीं भी हो सकता है। कोई कारण नहीं है रुकावट का। सिर्फ हमारी मानसिक पृष्ठभूमि, हमारे संस्कार बहुत जड़ हैं उनको तोड़ना आवश्यक है। उसी काम में मैं लगा हुआ हूं।

आज तो जरूर मेरा आश्रम बिल्कुल इस देश के सन्दर्भ में बैठता नहीं है।

कल ही मुझे एक किताब मिली; किसी ने मेरे खिलाफ लिखी है। जिस व्यक्ति ने किताब लिखी है उसने किताब की भूमिका में यह भी लिखा है कि वह मुझसे निन्यानबे प्रतिशत सहमत है। हर बात में सहमत है सिर्फ एक बात को छोड़कर कि मैं जो कहता हूं कि कामवासना में ही समाधि की सम्भावना छिपी है, कि काम-ऊर्जा ही एक दिन समाधि बन जाती है, बस इस बात से मैं असहमत हूं। और बाकी प्रत्येक बात से सहमत हूं। लेकिन उसकी किताब देखकर मुझे बड़ी हैरानी हुई, निन्यानबे प्रतिशत मेरी बातों से सहमत है, लेकिन उन निन्यानबे प्रतिशत बातों के पक्ष में उसने किताब नहीं लिखी ! एक प्रतिशत से असहमत है, उसके लिए किताब लिखी।

यह नकारात्मक बुद्धि देखते हो ! एक झाड़ी में गुलाब ही गुलाब खिले हैं और एक कांटा है। और तुम कांटे के सम्बन्ध में किताब लिखते हो, और गुलाबों के सम्बन्ध में किताब नहीं ! किताब तो दूर, उसने लेख भी कभी नहीं लिखा: लेख तो दूर उसने कभी मुझे पत्र भी नहीं लिखा। मैंने उसका नाम भी कभी नहीं सुना, पहली दफा जब किताब हाथ में लगी तो नाम पता चला। पूरी किताब लिख डाली, अपने खर्च से छपवाई; अब बंटवा रहा है। और खुद भी मानता है कि निन्यानबे प्रतिशत बातों से कोई विरोध नहीं है।

आज तो निश्चित ही मैं जो कह रहा हूं वह भारत के सन्दर्भ के बाहर है। क्योंकि सदियों से तुम्हें समझाया गया—कामवासना का विरोध, और मैं समझा रहा हूं रूपांतरण। सदियों से तुम्हें समझाया गया—धन की निन्दा, और मैं कहता हूं धन का उपयोग, निन्दा नहीं। धन की अर्थवत्ता है। धन ही सब कुछ नहीं है, लेकिन मैं यह भी नहीं कह सकता कि धन कुछ भी नहीं है। धन की उपादेयता है धन एक साधन है और बहुमूल्य साधन है। अगर हजारों साल तुम्हें यही सिखाया गया कि धन निन्दा योग्य है तो तुम धन पैदा कैसे करोगे ? निन्दा योग्य को कौन पैदा करेगा ? तो तुम अगर दरिद्र रह गये तो कौन जिम्मेवार है ? और आज मैं कह रहा हूं कि धन पैदा किया जा सकता है, धन का सम्मान करो, धन बड़ा उपयोगी साधन है। धन से बहुत कुछ सम्भव है। सब कुछ सम्भव है, यह मैं नहीं कह रहा हूं। धन से प्रेम नहीं खरीद सकते, लेकिन रोटी तो खरीद सकते हो ! और रोटी के बिना प्रेम मुश्किल है।

जीसस का प्रसिद्ध वचन है—"आदमी अकेली रोटी के सहारे नहीं जी सकता" सच है, लेकिन यह अधूरा वचन है। इसमें आधा वचन और जोड़ देना चाहिए: "आदमी बिना रोटी के भी नहीं जी सकता।" धन से प्रेम नहीं मिलता, परमात्मा नहीं मिलता; यह सच है। लेकिन धन से ऐसी सुविधा मिलती है जिसमें प्रार्थना की जा सके, ध्यान किया जा सके। धन ऐसा अवसर देता है जिसमें परमात्मा की तलाश की जा सके। "भूखे भजन न होहिं गोपाला !"

अगर आज मैं कह रहा हूं कि धन को सम्मान दो तो लोगों को बेचैनी होती है। क्योंकि मैं उनकी सारी परम्परा का विरोध कर रहा हूं। वे धन की निन्दा करते रहे और मैं कह रहा हूं कि धन को सम्मान दो। अगर आज मैं कहता हूं कि शरीर को सुविधा दो तो उनको हैरानी होती है; क्योंकि उन्होंने साधुओं से यही सुना है कि शरीर को कष्ट दो, सताओ। भरी-दुपहरी में आग बरस रही हो तब भी धूनी लगाकर बैठे रहो। और जब सर्दी हो तब नंगे खड़े हो जाओ बर्फ में। और जब भूख लगे तो भोजन मत करना। और जब नींद आये तो सोना मत। लड़ो, काटो शरीर को सब तरह से; जितनी दुष्टता कर सकते हो शरीर के साथ करो। जितनी हिंसा बने शरीर के साथ करो। और मैं सिखा रहा हूं कि शरीर का सम्मान करो, प्रेम करो। जब भूख लगे तो भोजन, और जब नींद आये तो सोओ, और जब प्यास लगे तो पियो। हां उतना जितना जरूरी है। ज्यादा में भी नुकसान है, कम में भी नुकसान है। मैं एक सन्तुलन की शिक्षा दे रहा हूं, एक सम्यकत्व की।

लेकिन तुम्हारी रूढ़ धारणाओं के विपरीत पड़ता है यह सब। इस कारण जरूरी आज मेरा कम्यून, मेरा परिवार इस देश के सन्दर्भ के बाहर पड़ गया है। इस देश में होकर भी मैं विदेशी हूं, ऐसी स्थिति हो गयी है।

लेकिन सत्य ज्यादा देर तक दबाया नहीं जा सकता: उभरेगा, फैलेगा, इस सारे देश के प्राणों को पकड़ लेगा।

मगर मैं एक उदाहरण तो बना लूं, एक देखने की जगह तो बना लूं, जहां लोगों को निमन्त्रित कर सकूं और कहूं कि देखो, संन्यासी उत्पादक हो सकता है। मेरा संन्यासी उत्पादक है। यह जानकर तुम्हें हैरानी होगी कि हम भारत में कोई भीख नहीं मांगते, हम किसी के सामने दान के लिए हाथ नहीं फैलाते, और कभी नहीं फैलाएंगे। संन्यासी उत्पादक हो सकता है, सृजनात्मक हो सकता है।

नया कम्यून कोई चार वर्गमील में बनने को है। काम शुरू हुआ। चार वर्गमील में कम से कम दस हजार संन्यासी रहेंगे। सामूहिक खेती करेंगे सामूहिक कारखाने चलाएंगे, उत्पादन करेंगे। सबको सबकी जरूरत के अनुसार मिलेगा, सुख-सुविधा लेकिन धन पर किसी की व्यक्तिगत मालकियत नहीं होगी। सारा परिवार जो भी होगा उसको अपना मानकर जियेगा। और हम बहुत तरह के उत्पादक आयाम शुरू करेंगे। फिर हम लोगों को बुला सकेंगे कि मस्तों की इस टोली को भी देखो किसी की जेब में एक पैसा नहीं है, लेकिन भारत का कोई बड़े से बड़ा रईस भी, बिड़ला और टाटा भी इस शान और इस मस्ती से नहीं रह सकते।

लोग देखेंगे इस नृत्य को, इस उत्सव को तो हवा फैलेगी।

इसीलिए तो मोरारजी देसाई जैसे लोग हर तरह से, हरचन्द कोशिश कर रहे हैं कि कम्यून बन न पाये। हर तरह का अड़ंगा, जितना भी वे डाल सकते हैं, डालने की चेष्टा कर रहे हैं। हर तरह से कोशिश करते हैं कि किसी तरह से मुझे कानूनी जाल में फांस लिया जाये। मगर यह असम्भव है। तुम डाल-डाल तो मैं पात-पात! इसके पहले कि कभी तुम सोचो कि कोई कानूनी जाल में मुझे फांस सकते हो, मैं जाल के बिल्कुल बाहर खड़ा हूं। कानूनी जाल में फांसना असम्भव है, क्योंकि मेरे पास श्रेष्ठतम वकील संन्यासी हैं, जो एक-एक इन्च सम्भल कर चल रहे हैं, सोचकर चल रहे हैं। श्रेष्ठतम अर्थशास्त्री हैं। एक-एक कदम सम्भल कर रखा जा रहा है। इसलिए थोड़ी देर लग रही है। लेकिन देर शुभ है, क्योंकि एक-एक कदम मजबूत हुआ जा रहा है।

दो ही उपाय हैं। या तो मैं अपने आश्रम को जैसे देश के दूसरे आश्रम हैं वैसा बना लूं तो सन्दर्भ एक हो जाये। या फिर मैं पूरे देश को अपने आश्रम जैसा बनाना चाहूं, तब सन्दर्भ एक हो। मेरा चुनाव दूसरा है। इस देश के सन्दर्भ में तो बहुत आश्रम हैं, वैसे ही दीन-हीन, जैसा पूरा देश है वैसे ही वे आश्रम भी दीन हीन हैं। जैसे पूरा देश भिखमंगा है वैसे ही वे आश्रम भी भिखमंगे हैं। भीख मांगना भारतीय संस्कृति की आत्मा बन गयी है। जैसे और लोग रह रहे हैं वैसे ही उन आश्रमों में लोग हैं, और भी मुर्दा। बाजार में तुम्हें शायद थोड़ी रौनक भी

मिल जाये, कभी कोई हंसता हुआ आदमी भी मिल जाये; मगर आश्रमों में तो बिल्कुल मुर्दा लोग बैठे हैं। मरने के करीब पहुंचते हैं तभी तो वे आश्रम पहुंचते हैं। काशी करवट लेने पहुंचते हैं। फिर राम-राम जपते रहते हैं, अब कुछ और करने को बचा भी नहीं है।

मेरा आश्रम देश के सन्दर्भ में बिल्कुल नहीं है; क्योंकि देश गलत है। मैं अपने आश्रम के सन्दर्भ में देश को चाहूंगा। यह महत् प्रयास है, भगीरथ प्रयास है; मगर करने योग्य है, इसके करने में आनन्द है।

फिर मैं तुम्हारे अतीत के सम्बन्ध में नहीं सोच रहा हूं; मेरा सारा दृष्टिकोण भविष्योन्मुख है। वह जो आने वाला भविष्य है उसे ध्यान में रखकर प्रत्येक चीज की जा रही है। जो बीत गया; बीत गया: अतीत की मुझे चिंता नहीं है। वह जो आगत है उसकी चिंता है; वह जो अभी आ रहा है। जो बीत गया है अब उसकी चिंता क्या करनी है! जो आ रहा है उसके लिए तैयारी करनी है।

और जल्दी ही तुम तुम्हारे राजनेताओं से ऊब जाओगे। ऊब ही गये हो। तीस साल उनकी मूढ़ताएं तुमने देख लीं, भली-भांति देख ली हैं। और कितनी देर लगेगी? और दस-पांच साल समझो तुम, उनसे ऊब ही जाओगे। उनसे ऊबने के बाद तुम्हारे पास उपाय क्या है फिर? तुम्हारे राजनेताओं से तुम जिस दिन बिल्कुल ऊब जाओगे, उस दिन सिवाय मेरी बात के तुम्हारे पास कोई दूसरा विकल्प नहीं है। मैं अकेला विकल्प हूं। तुम्हें मेरी बात पर ध्यान देना ही होगा। और तब तक मैं उस परिवार को भी खड़ा कर दूंगा जो कि प्रमाण बन जाये। मैं बात करने में ही भरोसा नहीं करता, मैं काम में लगा हूं। लेकिन निश्चित ही ये काम गहरे हैं और समय लेते हैं।

लेकिन एक अभूतपूर्व प्रयोग शुरू हो गया है। और यह प्रयोग रुकने वाला नहीं है। क्योंकि इस प्रयोग के साथ परमात्मा है।

एक संवेदनशील पत्रकार के प्रश्न के उत्तर में कहे गये भगवान श्री रजनीश के इन अर्थ-भरे वचनों पर बहुत गम्भीरता के साथ विचार-विमर्श करने की जरूरत है। इससे बड़ा आश्चर्य और दुर्भाग्य भी, और क्या होगा कि हजारों वर्ष की खोई भारत की मौलिक संस्कृति को, उस संस्कृति को जो वेद और उपनिषद के समय एक विस्फोट की तरह पृथ्वी पर छा गई थी, फिर से आविष्कृत कर उजागर करने वाले व्यक्ति के साथ भारत में ही अजनबी जैसा व्यवहार हो रहा है, उन्हें गलत समझा जा रहा है, गालियां दी जा रही हैं। लेकिन वे नीलकंठ हैं, वे

हमारे जहर को पीकर हमें अमृत से नहला रहे हैं। हमें फिर से नया जीवन और यौवन दे रहे हैं। भले हमें अभी इसका पता न हो, लेकिन उन्हें भली-भांति पता है कि वे क्या कर रहे हैं। वे हमें अन्धकार, असत्य और मृत्यु की घाटी से निकालकर प्रकाश, सत्य और अमृत के गौरीशंकर की ओर ले चल रहे हैं। और वे ठीक ही कहते हैं—मैं अकेला विकल्प हूं। मृत्यु या रजनीश ? भगवान रजनीश की जय हो।

स्वामी आनन्द मैत्रेय
श्री रजनीश आश्रम,
१७, कोरेगांव पार्क,
पूना—४११००१

मैं तो यहां जीवन का उत्सव सिखा रहा हूं—जीवन का इन्द्रधनुष, जीवन के सातों रंग। मैं जीवन-निषेधक नहीं हूं। मैं तो जीवन के प्रेम में हूं, अनंत प्रेम में हूं।

मेरा तो सारा संदेश जीवन के अहोभाव का संदेश है—सत्य का, गीत का, उत्सव का। मैं तो चाहता हूं : तुम फूल बनो, खिलो; कि पक्षी बनो, आकाश में उड़ो; कि सीखो चांद-तारों से सत्य; कि सीखो झरनों से गीत-गान।

अनुक्रम

अस्वीकृति में उठा हाथ

१. एक मृत महापुरुष का जन्म

पोप अमरीका गया हुआ था। हवाई जहाज से उतरने के पहले उसके मित्रों ने उससे कहा, एक बात ध्यान रखना, उतरते ही हवाई अड्डे पर पत्रकार कुछ पूछें तो थोड़ा सोच-समझकर उत्तर देना। 'हां' और 'ना' में तो उत्तर देना ही नहीं। जहां तक बन सके, उत्तर देने से बचने का प्रयत्न करना; अन्यथा अमरीका में आते ही परेशानी शुरू हो जायेगी। पोप जैसे ही हवाई अड्डे पर उतरा, वैसे ही पत्रकारों ने उसे घेर लिया और एक पत्रकार ने उससे पूछा—'वुड यू लाइक टु विजिट एनी न्युडिस्ट कैम्प, वाइल इन न्यूयार्क ? क्या तुम कोई दिगम्बर क्लब, कोई नग्न रहने वाले लोगों के क्लब में न्यूयार्क में रहते समय जाना पसन्द करोगे ? पोप ने सोचा, हां और ना में उत्तर देना खतरनाक हो सकता है। 'हां' कहने का मतलब होगा कि मैं जाना चाहता हूं देखने। 'ना' कहने का मतलब होगा जाने से डरता हूं। उत्तर देने से बचने के लिए उसने उल्टा प्रश्न पूछा। उसने पूछा, इज देयर एनी न्युडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क ?—न्यूयार्क में नंगे लोगों का कोई क्लब है ? फिर बात दूसरी चल पड़ी। उसने सोचा कि छुटकारा हुआ। लेकिन दूसरे दिन सुबह अखबारों में पहले ही पृष्ठ पर बड़े-बड़े अक्षरों में खबर छपी थी। खबर थी कि महामहिम परमपूज्य पोप ने हवाई अड्डे पर उतरते ही पत्रकारों से पहली बात यह पूछी, इज देयर एनी न्युडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क ?—नंगे लोगों का कोई क्लब है न्यूयार्क में ? उतरते ही यह पहली बात पत्रकारों

से महामहिम पोप ने पूछी।

कुछ ऐसा ही मामला मेरे और पत्रकारों के बीच भी हो गया। लेकिन मेरे सम्बन्ध में और पत्रकारों के बीच में और पोप और पत्रकारों के बीच में हुई बात में थोड़ा फर्क है। एक तो फर्क यह है कि मैंने 'हां' और 'ना' में उत्तर दिये। मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं कि उत्तर देने से बचने की कोशिश करूं। घुमाव-फिराव से मुझे कोई नाता और सम्बन्ध नहीं है। जो बात मुझे ठीक लगे और जैसी लगे वैसी ही कह देने को मैं कर्तव्य समझता हूं। मेरे उत्तर तक तो ठीक था, लेकिन उन उत्तरों को इस तरह बिगाड़ करके, विकृत करके अधूरे प्रसंग के बाहर उपस्थित किया गया। मैं तो यहां नहीं था, पंजाब में था। लौटा तो यहां देखकर बहुत हैरानी मालूम पड़ी और आश्चर्य मालूम पड़ा कि चीजें इस रंग में भी पेश की जा सकती है। लेकिन मित्र तो घबराये हुए थे। मैं प्रसन्न हुआ। मैंने कहा, इसमें घबराने की बात नहीं। एक लिहाज से पत्रकारों ने बड़ी कृपा की है और भविष्य में भी ऐसी ही कृपा करते रहेंगे तो अच्छा होगा। बहुत लोगों तक खबर पहुंच गयी, बात पहुंच गयी। कोई फिक्र नहीं कि गलत ढंग से पहुंची। लेकिन वह मुझे सुनने आ सकेंगे तो उन्हें ठीक बात का बोध हो सकेगा। कई बार कुछ लोग जिन बातों को सोचते हैं कि अभिशाप बन जायेंगी, वे ही बातें वरदान भी बन सकती हैं। मैं राजकोट गया, वहीं से लौटा आज। वहां मित्र बहुत घबराये हुए थे। लेकिन परिणाम यह हुआ कि जहां दस हजार लोग मुझे सुनते थे, वहां बीस हजार लोगों ने मुझे सुना। वे समझते गये और आश्चर्य करते गये कि चीजों को यह रंग और रूप भी दिया जा सकता है।

मेरी दृष्टि में भारत के दुर्भाग्यों में से एक दुर्भाग्य यह रहा है कि हम अपने महापुरुषों की आलोचना करने में आज तक भी समर्थ नहीं हो पाये और जो जाति अपने महापुरुषों की आलोचना करने में समर्थ नहीं हो पाती, उसके सम्बन्ध में दो ही बातें कही जा सकती हैं। एक तो यह कि वह अपने महापुरुषों को इस योग्य नहीं समझती कि उनकी आलोचना की जा सके या अपने महापुरुषों को इतना कमजोर और साधारण समझती है कि आलोचना में वे टिक नहीं सकेंगे। मैं गांधी के सम्बन्ध में ये दोनों ही बातें मानने को तैयार नहीं हूं। मेरी समझ में गांधी कोई कागजी महापुरुष नहीं हैं कि आलोचना की वर्षा आयेगी और उनका रंग-रोगन बह जायेगा। कुछ कागजी महापुरुष होते हैं, उन्हें आलोचना से बचाया जाना चाहिए, क्योंकि वे आलोचना में खड़े नहीं रह सकते। लेकिन गांधी को मैं कागजी महापुरुष नहीं मानता। वह कोई कागज की, कच्चे रंग में रंगी हुई प्रतिमा नहीं हैं कि वर्षा आयेगी आलोचना की और सब नष्ट हो जायेगा। गांधी को मैं दुनिया के उन थोड़े-से महापुरुषों में से एक मानता हूं, जो पत्थर की प्रतिमाओं की तरह हैं जिन पर वर्षा होती है और धूल बह जाती है, प्रतिमा और

निखर कर प्रकट होती है।

गांधी कोई कच्चे महापुरुष नहीं हैं। लेकिन गांधी के पीछे अनुयायियों का जो वर्ग है, वह शायद स्वयं कच्चा है। इसलिए गांधी को भी कच्चा मान लेता है। खुद के भय ही हम अपने महापुरुषों पर आरोपित कर देते हैं। हमारी अपनी ही कमजोरियां हम अपने महापुरुषों पर भी थोप देते हैं। गांधी की आलोचना निश्चित ही की जानी चाहिए। क्योंकि गांधी की आलोचना से गांधी का तो कुछ बिगड़ने वाला नहीं है, हमारा जरूर कुछ हित हो सकता है। यह बात अत्यन्त अप्रौढ़ और तर्कशून्य प्रतीत होती है कि हम अपने महापुरुषों की सिर्फ पूजा करें और कभी कोई सृजनात्मक आलोचना न करें। यह भी कुछ भय मालूम होता है पीछे कि कहीं हमारे महापुरुष की किसी त्रुटि का स्मरण न आ जाये। स्मरण रखना चाहिए कि पृथ्वी पर ऐसा कोई मनुष्य कभी नहीं हुआ है जिससे भूलें न होती हों। एक बात का अन्तर होता है—छोटे लोग छोटी भूलें करते हैं, महापुरुष बड़ी भूलें करते हैं। महापुरुष छोटी भूलें नहीं करते। लेकिन पृथ्वी पर कोई मनुष्य कभी नहीं होता जिससे भूल न होती हो। जिससे भूल नहीं होती है उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। उसे पृथ्वी पर आने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती है। लेकिन हमारे मन में यह घबराहट रहती है कि हमारे महापुरुष की कोई भूल, कोई त्रुटि ध्यान में न आ जाये। इसलिए पूजा करो, प्रार्थना करो, उपासना करो, लेकिन कभी विचार मत करना। क्योंकि ध्यान रहे. जैसे ही विचार शुरू होगा, आलोचना प्रारम्भ होती है। बिना आलोचना के विचार कभी होता ही नहीं है। पूजा हो सकती है, स्तुति हो सकती है, प्रशंसा हो सकती है। लेकिन वह विचार नहीं है। और जो कौम अपने महापुरुषों पर विचार नहीं करती, उसके महापुरुषों का जीवन व्यर्थ हो जाता है, उसके काम में ही नहीं आ पाता है।

हम तीन-चार हजार वर्षों से यही कर रहे हैं। महावीर हैं, बुद्ध हैं, कृष्ण हैं, राम हैं। हमें उनकी पूजा करनी है, विचार उन पर कभी नहीं करना है। ध्यान रहे, जिन पर हम विचार नहीं करते हैं उनका हमारे जीवन पर कोई संस्पर्श, हमारे जीवन का परिवर्तन करने वाला कोई भी प्रभाव कभी नहीं पड़ता है। पूजा से हम रूपान्तरित नहीं होते हैं, विचार से हम रूपान्तरित होते हैं। और पूजा, हो सकता है सिर्फ हमारी तरकीब हो महापुरुष से बच जाने की। और मुझे तो ऐसा ही लगता है कि जिससे हम बचना चाहते हैं, उसी को भगवान् बनाकर मन्दिर में बिठा देते हैं। फिर हमारी झंझट समाप्त हो जाती है। कभी दो फूल चढ़ा आते हैं, कभी माला पहना आते हैं कभी स्तुति कर लेते हैं, कभी जन्म-दिन मना लेते हैं और हमसे उसका फिर कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। जिस महापुरुष को हमें व्यर्थ करना हो, उसकी हमने तरकीब निकाल ली है कि हम उसकी पूजा करेंगे, स्तुति करेंगे, लेकिन उस पर विचार नहीं करेंगे। क्योंकि विचार करने का

परिणाम एक ही हो सकता है कि विचार करने से वह हमें इस योग्य मालूम पड़े कि हम अपने जीवन को बदलें। लेकिन हम बहुत होशियार हैं, यह देश बहुत होशियार है, अपने-आपको धोखा देने में। यह देश सोचता है कि हम महावीर की पूजा करते हैं तो हम बड़ा भारी काम कर रहे हैं, कि हम बुद्ध की पूजा करते हैं। तो शायद बुद्ध पर कोई उपकार कर रहे हैं या गांधी की पूजा शुरू की है तो गांधी पर हमारा कोई अनुग्रह हो रहा है। इस भ्रांति में रहने की जरूरत नहीं है।

महापुरुष पूजा के लिए नहीं पैदा होते हैं, न उनकी पूजा की कोई लालसा है और जिसके मन में पूजा की लालसा हो, वह और कुछ भी हो, महापुरुष नहीं हो सकता है। महापुरुष का उपयोग यह है कि वह हमारे जीवन में, हमारे खून में, हमारे विचार में, हमारी प्रतिभा में प्रविष्ट हो सके और हमारी प्रतिभा में किसी को द्वार तभी मिलता है—जब हम विचार करते हैं, आलोचना करते हैं, खोजबीन करते हैं, अन्वेषण करते हैं—तब प्रवेश मिलता है हमारी प्रतिभा के भीतर। हमारे सारे महापुरुष भारत की प्रतिभा के बाहर खड़े हुए हैं, मन्दिरों में बन्द। भारत के प्राणों में उनका कोई प्रवेश नहीं हो सका है। मैं नहीं चाहता हूं कि पुराने महापुरुषों की तरह गांधी-जैसा अद्भुत व्यक्ति भी व्यर्थ हो जाये। इसलिए मैं चाहता हूं कि गांधी पर जितनी सतेज आलोचना और विचार हो सके उतना ही सौभाग्य मानना चाहिए। लेकिन वह जो गांधी के पीछे चलने वाले गांधीवादियों का तबका है, वह इस बात से बहुत घबराता है। वह क्यों घबराता है? । वह इसलिए घबराता है कि उसे डर है कि गांधी की आलोचना अन्ततः गांधीवाद की आलोचना बन सकती है। उसका भय यह नहीं है कि गांधी की आलोचना से उसको कोई परेशानी होने वाली है। उसका भय यह है कि गांधी की आड़ में वह खुद छिपा हुआ है और गांधी की आलोचना कहीं उसकी आलोचना न बन जाये। इसलिए वह गांधी की आलोचना और विचार करने से बचना चाहता है। वह कहता है पूजा के थाल चढ़ाओ और गांधी को भगवान बना लो। मैं भगवान से एक ही प्रार्थना करता हूं, कृपा करना, गांधी को भगवान मत बनने देना। क्योंकि जितने लोग हमारे पहले भगवान बन गये हैं, वे भगवान बनते ही व्यर्थ हो गये। समाज और देश के लिए उनका कोई उपयोग नहीं रह गया।

गांधी एक अद्भुत व्यक्ति हैं। शायद पृथ्वी पर इस सदी में दो-चार लोग ही उस कोटि के पैदा हुए हैं। लेकिन पीछे चलने वाले लोग हमेशा महापुरुष की हत्या करने की कोशिश करते हैं। वह हत्या उनको भगवान बनाकर की जाती है। जिस आदमी को भी भगवान बना दिया, उसकी आदमी की तरह हत्या हो गयी। भगवान की तरह स्थापना हो गयी, आदमी की तरह हत्या हो गयी।

और हम आदमी से ही प्रभावित हो सकते हैं और आदमियों के साथ ही हम जी सकते हैं और आगे चल सकते हैं। गांधी के साथ फिर वही शरारत शुरू हो गयी है जो हमने राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर के साथ की थी। लेकिन हम अतीत की भूलों से कुछ सीखते भी मालूम नहीं पड़ते। मैं चाहता हूं कि गांधी को हम मनुष्य ही बनाये रखें, ताकि वे हमारी मनुष्यता के काम आ सकें। हम उन पर निरन्तर विचार कर सकें, सोच सकें और आगे बढ़ सकें। इस ख्याल में मैंने उनकी कुछ आलोचना की थी। मेरे पास अनेक पत्र पहुंचे कि जो व्यक्ति मर चुका है उसकी आलोचना हमें नहीं करनी चाहिए। मैंने उन पत्रों के उत्तर में लिखा कि शायद तुम्हें पता नहीं है कि गांधी उन लोगों में से नहीं हैं जो इतनी आसानी से मर जायें। गोडसे ने जो भूल की थी वही भूल गांधीवादी भी करते हैं। गोडसे ने जो भूल की थी कि गोली मार देंगे, इस आदमी का शरीर मर जायेगा तो यह गांधी मर जायेगा। गांधीवादी भी समझते हैं कि शरीर गिर गया गांधी का तो गांधी मर गये। अब उनकी आलोचना नहीं करनी चाहिए। यह बात ठीक है छोटे-मोटे लोगों के बाबत कि जब वे मर जायें तो हमें उनकी प्रशंसा ही करनी चाहिए, क्योंकि मरे हुए आदमी की क्या आलोचना करनी है! एक बुरा आदमी भी गांव में मर जाता है तो उसकी कब्र पर लोग कहते हैं कि बड़ा अच्छा आदमी था। छोटे आदमियों के साथ यह ठीक है कि उन बेचारों के पास क्या है जो उनके मरने के बाद बच रहेगा! लेकिन गांधी जैसे महापुरुषों के साथ यह अन्याय है कि हम समझें कि वह मर गये। मैं गांधी को, उनके प्रभाव को, अभी जिन्दा मानता हूं और उनये साथ एक जिन्दा आदमी का व्यवहार करना चाहता हूं, एक मरे आदमी का नहीं। लेकिन गांधीवादी कहते हैं कि वे मर गये। अब उनकी बात नहीं करनी चाहिए।

शायद आपने सुना हो, सुकरात की जिस दिन मौत हुई, उसे जहर दिया गया। जहर देने के पहले उसके मित्र उसके पास गये और उसके एक शिष्य क्रेटो ने उससे पूछा कि सांझ आपको जहर दिया जायेगा तो आप हमें बता दें कि हम दफनायेंगे किस तरह आपको, किस विधि से, किस मार्ग से, गाड़ें, जलाएं या क्या करें। आप रास्ता बता दें, वैसा हम करें। सुनकर सुकरात हंसने लगा और उसने क्रेटो से कहा, 'पागल जो मेरे दुश्मन समझते हैं कि मुझे जहर देकर मार डालेंगे वही तुम समझते हो कि शरीर के मरने से मैं मर जाऊंगा और तुम मेरे दफनाने का विचार करने लगे हो। मैं तुम्हें कहता हूं क्रेटो कि तुम सब मर जाओगे, तुम सब दफना दिये जाओगे, तब भी मैं जिन्दा रहूंगा।' आज ढाई हजार साल हो गये, सुकरात अभी जिन्दा है। क्रेटो का नाम सिर्फ हमें इसलिए याद है कि सुकरात ने वह नाम लिया था। क्रेटो कभी का मर चुका है। वे साथी मर चुके, जिन्होंने सोचा होगा कि सुकरात को दफना रहे हैं, लेकिन सुकरात

जिन्दा है।

महान् व्यक्ति का एक ही अर्थ होता है कि वह शरीर के पार उठ गया। अब शरीर के मिटने से उसके मिटने की कोई सम्भावना नहीं है।

मैं गांधी को एक जिन्दा आदमी मानकर व्यवहार करना चाहता हूं और मुझे लगता है कि अभी गांधी को गांधीवादी दफनाने की बात न करें तो बहुत अच्छा है। इतना जल्दी मरा हुआ मानने की जरूरत नहीं है। लेकिन वे भयभीत हैं कि कोई आलोचना न की जाये और मैंने आलोचना क्या की है? मेरी आलोचना गांधी के विरोध में नहीं है, लेकिन गांधीवाद के विरोध में है और मेरी दृष्टि है कि सच बात तो यह है कि गांधीवाद जैसी कोई चीज गांधी की कल्पना में थी ही नहीं। गांधी नहीं मानते थे कि उनका कोई वाद है। मानते थे कि जो उनकी अंतर्दृष्टि को ठीक मालूम पड़ता है, वह प्रयोग करते चले जाते हैं। उनका कोई रेखाबद्ध वाद नहीं है, लेकिन गांधी के पीछे जो गिरोह इकट्ठा हुआ, उसने 'गांधीवाद' खड़ा कर रखा है। दुनिया में हमेशा अनुयायी पंथ, सम्प्रदाय और वाद खड़ा करते हैं और पंथ, सम्प्रदाय और वाद जितने मजबूत होते जाते हैं, उतना ही हमारे और हमारे महापुरुषों के बीच एक पत्थर की दीवार खड़ी हो जाती है जिसको पार करना मुश्किल हो जाता है। गांधी का कोई वाद नहीं है इन अर्थों में, लेकिन गांधी ने जीवन भर जो किया है, जो सोचा है, जो विचारा है वह है और उस पर हमें बहुत स्पष्ट निर्णय लेना जरूरी है, क्योंकि उसी निर्णय के आधार पर इस देश के भविष्य को बनाने का हम विचार करेंगे।

गांधीवादी कहते हैं कि उस पर विचार नहीं करना है। जो उन्होंने कहा है उसे वैसे ही मान लेना है। यह बात इतनी अंधी और खतरनाक है कि अगर इन सारी बातों को इसी तरह मान लिया गया तो गांधी की आत्मा भी आकाश में कहीं होगी तो रोयेगी, क्योंकि गांधी खुद अपनी जिन्दगी में हर वर्ष अपनी भूलों को स्वीकार करते रहे और मानते रहे कि जो भूलें हो गयीं उन्हें छोड़ देना है। अगर गांधी जिन्दा होते तो इन बीस वर्षों में उन्होंने बहुत-सी भूलें स्वीकार की होतीं। लेकिन गांधीवादी कहते हैं कि अब कोई भूल पर ध्यान नहीं देना है। जो कहा गया है उसे चुपचाप मान लेना है। यह अंधापन बहुत महंगा साबित होगा। बुद्ध और महावीर को अंधा मान लेने से, अंधापन मान लेने से उतना नुकसान नहीं हो सकता है, क्योंकि बुद्ध और महावीर ने व्यक्तिगत मनुष्य की आत्मोत्कर्ष की बात की है। हिन्दुस्तान में गांधी एक पहले ही व्यक्ति थे, जिन्होंने सामाजिक उत्कर्ष का भी विचार किया है। बुद्ध और महावीर को मान लेने से एक-एक व्यक्ति भटक सकता है, गांधी को अंधेपन से मान लेने से पूरे समाज का भविष्य भटक सकता है, पूरा देश भटक सकता है, इसलिए गांधी पर विचार कर लेना बहुत जरूरी है।

गांधी एक अर्थ में अनूठे हैं भारत के इतिहास में। भारत के विचारशील व्यक्ति ने कभी भी समाज, राजनीति और जीवन के सम्बन्ध में सीधी कोई रुचि नहीं ली है। भारत का महापुरुष सदा से पलायनवादी रहा है। उसने पीठ कर ली है समाज की तरफ। उसने मोक्ष की खोज की है, समाधि की खोज की है, सत्य की खोज की है, लेकिन समाज और इस जीवन का भी कोई मूल्य है यह उसने कभी स्वीकार नहीं किया। गांधी पहले हिम्मतवर आदमी थे जिन्होंने समाज की तरफ से मुंह नहीं मोड़ा। वह समाज के बीच में खड़े रहे और जिन्दगी के साथ और जिन्दगी को उठाने की उन्होंने कोशिश की। यह पहला आदमी था जो जीवन-विरोधी नहीं था, जिसका जीवन के प्रति स्वीकार का भाव था। स्वभावतः किसी भी दिशा में आदमी से बड़ी भूलें होना सम्भव है। पायोनियर हमेशा भूलें करता है। वह पहले आदमी थे, एक नयी दिशा में प्रयोग कर रहे थे और अगर हम उनको अंधे होकर मान लेंगे तो हम बहुत खतरनाक रास्ते पर जा सकते हैं।

मेरी दृष्टि में भारत की बहुत प्राचीन समय से कुछ-कुछ बुनियादी भूलों में से एक भूल यह रही है कि हमने दरिद्रता को एक तरह की महिमा, एक तरह का गौरव प्रदान किया है। हम दरिद्रता को एक तरह का सम्मान देते रहे हैं। दरिद्रता का दर्शन विकसित किया है, जिसको 'फिलॉसफी ऑफ पॉवर्टी' कहा जा सकता है। पांच हजार वर्षों से हमने यह स्वीकार किया हुआ है कि दरिद्र होना भी कोई बड़े गौरव की बात है और उसके साथ ही धन-सम्पदा, समृद्धि की एक निन्दा, इनका एक बहिष्कार भी हमारे मन में रहा है। परिग्रह का एक विरोध, अपरिग्रह की एक स्थापना। समृद्धि-विस्तार का विरोध, संकोच-दरिद्रता की स्वीकृति हमारे खून में प्रविष्ट हो गयी है। मैं कहना चाहता हूं कि यह इसी 'दरिद्र दर्शन' का परिणाम है। भारत पांच हजार वर्षों की लम्बी सभ्यता के बाद भी दरिद्र है और समृद्ध नहीं हो पाया है। इस विचार का यह अन्तिम परिणाम है। गांधी ने जाने-अनजाने पुनः इसी दरिद्रता के दर्शन को फिर से सहारा दे दिया है। गांधी ने फिर दरिद्र को दरिद्र नारायण कह दिया। दरिद्र नारायण नहीं है, दरिद्रता पाप है, दरिद्रता रोग है। उससे घृणा करनी है, उसे नष्ट करना है। दरिद्र को अगर हम पवित्र और भगवान कहेंगे—इस तरह की बातें करेंगे और दरिद्रता को महिमामंडित करेंगे तो हम दरिद्रता को नष्ट नहीं कर सकते हैं, हम दरिद्रता को बनाये ही रखेंगे। हम दरिद्रता पर दया कर सकेंगे, सेवा कर सकेंगे दरिद्र की, लेकिन दरिद्र को मिटा नहीं सकेंगे। दरिद्र की सेवा की जरूरत नहीं है, दरिद्र के गुणगान की जरूरत नहीं है, दरिद्र की दया की जरूरत नहीं है। दरिद्र को पृथ्वी से समाप्त करना है, दरिद्र को नष्ट करना है, दरिद्र को नहीं बचने देना है। दरिद्रता के साथ एक महामारी का व्यवहार करना है। प्लेग, हैजा और

मलेरिया के साथ हम जो व्यवहार करते हैं, वही व्यवहार दरिद्रता के साथ करना है। लेकिन हिन्दुस्तान की जो परम्परा है दरिद्रता की और त्याग की, गांधी के मन पर उसका प्रभाव है, सारे मुल्क के मन पर उसका प्रभाव है। हमारे जाने-अनजाने हमारे अचेतन में, अन्कॉन्शस तक यह बात प्रविष्ट हो गयी है कि दरिद्रता को कुछ गौरव है।

यह बहुत ही खतरनाक दृष्टि है, यह बहुत ही आत्मघाती दृष्टि है; क्योंकि जब हम दरिद्रता को इस भांति स्वीकार करते हैं, सम्मान देते हैं और दरिद्रता में संतोष कर लेने को एक धार्मिक गुण मानते हैं, तो फिर समाज समृद्ध कैसे होगा, समाज सम्पत्ति पैदा कैसे करेगा ? हम भी इसी पृथ्वी पर हैं, दूसरे देश भी इसी पृथ्वी पर हैं। हम पीछे इतिहास में उनसे कहीं ज्यादा समृद्ध थे जो आज हमें भीख दे रहे हैं। हम कहीं ज्यादा खुशहाल थे। आज हमें भीख मांगनी पड़ रही है और शायद आगे भी हमें भीख मांगते रहना पड़े। अगर हमने अपने आज तक के जीवन को, जीने के दर्शन को और व्यवस्था को रूपांतरित नहीं किया तो हम आगे भी यही करते चले जायेंगे, जो हमने पीछे किया है।

सम्पत्ति आसमान से पैदा नहीं होती है, सम्पत्ति श्रम से पैदा होती है। श्रम आकस्मिक नहीं होता। श्रम विचार से जन्म लेता है और अगर हमारे विचार में सम्पदा का विरोध है तो हम न श्रम करेंगे, न सम्पदा पैदा करेंगे। यह जो भारत एकदम श्रमशून्य मालूम पड़ता है—सुस्त, काहिल, अलाल मालूम पड़ता है, लेजी मालूम पड़ता है, यह लेजीनेस, यह सुस्ती, यह काम न करने की प्रवृत्ति, यह प्रवृत्ति उस विचार से पैदा होती है जो दरिद्रता की, संतोष मानने की शिक्षा देता है और यह भी ध्यान रहे कि इसी कारण बुद्ध और महावीर जैसे लोग राजघरों को छोड़कर दरिद्र हो गये। हिन्दुस्तान में जैनियों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के लड़के थे। बुद्ध राजा के लड़के थे, राम और कृष्ण राजाओं के लड़के थे। हिन्दुस्तान के सारे तीर्थंकर और अवतार राजपुत्र थे। ये सारे तीर्थंकर और बुद्ध राजमहलों को छोड़कर दरिद्र हो गये ओर इनके दरिद्र होने से हमारे दरिद्रता के दर्शन को और सहारा मिला।

एक बात ध्यान रहे, अमीर आदमी का दरिद्र होना यह बात ही दूसरी है और दरिद्र का दरिद्रता में संतुष्ट हो जाना अलग बात है। इन दोनों बातों में बुनियादी फर्क है। अमीर आदमी जब दरिद्र होता है तब वह अमीरी को जानकर दरिद्र होता है। अमीरी व्यर्थ हो गयी, इसलिए दरिद्र होता है। उसकी दरिद्रता और उस आदमी की दरिद्रता जिसने कभी अमीरी नहीं जानी, भर पेट भोजन नहीं जाना, कपड़े नहीं जाने, इन दोनों की दरिद्रता में कोई भी सम्बन्ध नहीं है। सच बात तो यह है कि अमीर जब दरिद्र होता है तो दरिद्रता भी एक आनन्द मालूम होती है, क्योंकि दरिद्रता भी एक स्वतन्त्रता मालूम होती है। गरीब आदमी जब

दरिद्रता से संतोष कर लेता है तो वह संतोष सिर्फ दुख को छिपाने का और सांत्वना का एक उपाय होता है। हिन्दुस्तान के सारे बड़े शिक्षक राजघरानों से आये। वे राजघराने से ऊब गये थे। वे सम्पत्ति से ऊब गये थे, परेशान हो गये थे। सम्पत्ति की अपनी परेशानियां हैं, दरिद्रता की अपनी परेशानी है, भिखमंगे की अपनी परेशानी है, राजघर की अपनी परेशानी है। वे अपनी परेशानियों से पीड़ित हो गये थे, वे स्त्रियों और सुख के बीच ऊब गये थे, उन्हें बदलाहट चाहिए थी। उन्होंने वह सब छोड़ दिया और सड़क पर नग्न खड़े हो गये। उन्हें उस नग्नता में बहुत स्वतन्त्रता मालूम हुई होगी, उन्हें उस नग्नता में एक अद्भुत मुक्ति मालूम हुई होगी। वह मालूम हो सकती है, लेकिन वह हमेशा तभी मालूम होती है, जब कोई समृद्धि को लात मार कर दरिद्र बनता है। वह दरिद्रता समृद्धि के आगे का कदम है, समृद्धि के पहले का कदम नहीं है। वह दरिद्रता भी एक अर्थ में समृद्धि का वैभव है, वह दरिद्रता भी समृद्धि का अन्तिम विलास है। उसको भी लात मारने का मजा है। वह सुख गरीब आदमी नहीं उठा सकता। लेकिन हिन्दुस्तान के बड़े शिक्षक जब दरिद्र हुए, उन्होंने धन छोड़ा तो दरिद्र को लगा कि जिस चीज को छोड़ ही देना पड़ता है उसे पाने की जरूरत क्या है। और उसे पता नहीं कि वह दरिद्र महावीर की दरिद्रता का मजा नहीं लूट पायेगा। महावीर की दरिद्रता बुनियादी रूप से गुणात्मक रूप से भिन्न है।

मैं अमृतसर में था। एक संन्यासी मित्र एक घटना सुना रहे थे कि अमृतसर से एक ट्रेन जा रही थी हरिद्वार की तरफ। मेला है हरिद्वार में। हजारों लोग ट्रेन में भर रहे हैं। हरएक आदमी अमृतसर स्टेशन पर यही चिल्लाता है कि चलो गाड़ी के अन्दर, भीतर बैठो, जल्दी भीतर चलो, सामान रखो। एक आदमी के पास भीड़ इकट्ठी है और वह आदमी यह कह रहा है कि मैं गाड़ी में बैठूं तो जरूर, लेकिन अमृतसर में बैठता हूं, हरिद्वार में उतरना पड़ेगा न? वह आदमी यह दलील दे रहा है कि जब उतरना ही पड़ेगा, तब फिर गाड़ी में बैठे ही क्यों? जब उतरना है तो उतरे ही रहें। मित्रों ने जबरदस्ती धक्का दिया और कहा, 'यह तर्क समझाने का समय नहीं है। अन्दर बैठ जाओ, फिर तुम्हें समझायेंगे। गाड़ी जाने के करीब है।' जबरदस्ती उस आदमी को भीतर ले गये, लेकिन वह आदमी यही चिल्लाता रहा कि जब उतरना ही है तो बैठने की जरूरत क्या है। फिर हरिद्वार आ गया, फिर सारी गाड़ी में दूसरी आवाज आने लगी कि उतरो, सामान उतारो, नीचे उतरो, जल्दी उतरो, कहीं गाड़ी न छूट जाये। वह मित्र उसको फिर समझा रहे हैं कि नीचे उतरो। वह कहता है कि जब चढ़ ही गये तब उतरना क्या। पहले ही मैंने कहा था चढ़ो मत, अगर उतरना हो। अब जब चढ़ ही गये तो चढ़ गये, उतरना क्या। उसे जबरदस्ती नीचे उतारा।

वह व्यक्ति तर्क तो मजे का दे रहा है। यह बात सच है कि अमृतसर से जाना

है हरिद्वार तो गाड़ी पर चढ़ना भी होगा उतरना भी होगा और जो सोचता है जब उतरना है कभी जाकर तो चढ़ना ही क्या, वह फिर अमृतसर पर ही रह जायेगा, हरिद्वार नहीं पहुंच सकता। और अगर हरिद्वार पर पहुंचकर उसने यह जिद्द की कि जब चढ़ ही गये तब उतरना ही क्या, तब भी वह हरिद्वार नहीं पहुंच पायेगा। दोनों हालत में हरिद्वार चूक जायेगा।

मेरी अपनी दृष्टि यह है कि समृद्धि की एक यात्रा है जीवन में। निश्चित ही एक दिन समृद्धि छोड़ देने जैसी अवस्था आ जाती है, लेकिन वह समृद्धि की यात्रा से ही आती है और दरिद्र आदमी अगर यह सोचे कि जब महावीर-बुद्ध जैसे लोग छोड़कर आ रहे हैं तो फिर मुझे परेशान होने की जरूरत क्या है, तो ध्यान रखें, उसकी दरिद्रता अमृतसर की दरिद्रता होगी, हरिद्वार की नहीं। हिन्दुस्तान के इन धनी शिक्षकों के कारण यह बड़ी अजीब पैरोडॉक्सिकल बात भी हममें घर कर गयी है। धनी शिक्षकों के कारण हिन्दुस्तान ने दरिद्रता के दर्शन को विकसित कर लिया है और दरिद्र ने अपनी दरिद्रता स्वीकार कर ली। जब उसने देखा कि राजमहलों को लोग छोड़कर आ रहे हैं तो फिर ठीक है मुझे, और राजमहलों की तरफ जाने का सवाल क्या है। और जब दरिद्रता एक बार स्वीकृत हो जाती है तो सम्पत्ति के उत्पादन का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। यह देश इसीलिए गरीब है।

काउंट केसरलिंग हिन्दुस्तान से लौटा तो उसने अपनी डायरी में एक वाक्य लिखा। मैं पढ़ रहा था तो बहुत हैरान हुआ। मुझे लगा कि छापेखाने की भूल होनी चाहिए। उसने एक वाक्य लिखा—'मैं हिन्दुस्तान गया, वहां से लौटा हूं तो एक अजीब नतीजा लेकर आया हूं, नतीजा यह है कि, इंडिया इज ए रिच व्हेयर पुअर पिपुल लिव'—हिन्दुस्तान एक धनी देश है जहां गरीब लोग रहते हैं। मैं बहुत हैरान हुआ कि यह वाक्य कैसा है! अगर धनी देश है तो गरीब लोग कैसे रहते होंगे और गरीब लोग रहते हैं, तो धनी देश कैसे है? कोई छापे की भूल है, लेकिन आगे पढ़ने पर मुझे पता चला कि वह मजाक कर रहा है। वह यह कह रहा है कि देश तो बहुत धनी है, लेकिन रहने वाले मूढ़ हैं, वे गरीब बने हुए हैं, देश तो बहुत धन पैदा कर सकता है, लेकिन रहने वालों की जीवन-दृष्टि दरिद्र रहने की है, इसलिए वे सम्पत्ति पैदा नहीं कर पाते। हिन्दुस्तान की दरिद्रता नहीं मिटेगी, जब तक हम सम्पत्ति के प्रति भी एक स्वस्थ रुख लेने को राजी न हों। हमारा सम्पत्ति के प्रति अत्यन्त रुग्ण रुख है। एक तरफ तो यह है कि हम सम्पत्ति का विरोध करते हैं और दूसरी तरफ भीतर सम्पत्ति की लालसा भी करते हैं, क्योंकि दरिद्रता के भीतर यह असम्भव है कि आप सच में सन्तुष्ट हो जायें। कैसे सन्तुष्ट हो सकते हैं? जबरदस्ती थोप कर अपने ऊपर सन्तोष के कपड़े पहन लेंगे, लेकिन सन्तुष्ट हो कैसे सकते हैं? भीतर असन्तोष की आग जलती ही

रहेगी, इसलिए ऊपर से कहेंगे, कि कुछ मतलब नहीं है हमें, और भीतर लालसा, ईर्ष्या और लोभ सब काम करते रहेंगे।।

मैं एक संन्यासी के पास यहीं बम्बई में कोई पांच-सात साल पहले मिलने गया। एक मुनि हैं। बहुत उनके शिष्य हैं, बहुत लोग वहां इकट्ठे हो गये, मैं मिलने आया हूं, कुछ बात होगी। उन मुनि ने मुझे एक गीत सुनाया गुजराती में। उसका अर्थ मुझे समझाया। सुनने वाले बैठकर सिर हिलाने लगे और कहने लगे, वाह वाह ! मैं बहुत हैरान हुआ, क्योंकि उस गीत का मतलब यह था कि तुम अपने राजमहल में खुश हो, रहो, हम अपनी धूल में भी आनन्द में हैं। तुम स्वर्ण के सिंहासन पर बैठे हो, बैठो, हमें तुम्हारे स्वर्ण के सिंहासन से कोई मतलब नहीं, हम लात मारते हैं स्वर्ण के सिंहासन पर, हम तो अपनी धूल में ही मस्त हैं, हम तो हैं फकीर। इस तरह का भाव था। पूरा गीत कहकर वे मुझसे कहने लगे, 'कैसा लगा ?' मैंने कहा कि मैं बहुत हैरान हुआ। मैं इसलिए हैरान हुआ कि अगर आपको राजमहलों से कोई मतलब नहीं, अगर आपको स्वर्ण सिंहासनों से कोई मतलब नहीं तो उनकी याद क्यों आती है, उनके गीत क्यों लिखते हैं। मैंने किसी सम्राट को कभी ऐसा गीत लिखते नहीं देखा, नहीं सुना कि उसने कहा हो कि हम अपने स्वर्ण-सिंहासन पर ही ठीक हैं, हमें तुम्हारी धूल से कुछ भी नहीं लेना-देना। तुम रहो मजे में, हम उपेक्षा करते हैं, हमें कोई फिक्र नहीं।' कोई सम्राट ऐसा नहीं कहता, लेकिन ये फकीर निरन्तर ऐसी बातें कहते हैं कि हमें स्वर्ण-सिंहासन से कोई मतलब नहीं। मतलब नहीं है तो यह गीत क्या बताते हैं ? ये मतलब बताते हैं कि मतलब बहुत गहरा है और भीतर है। स्वर्ण-सिंहासन मन को खींचता है, सन्तोष से मन को रोका हुआ है। सन्तोष से जो मन को रोकता है और स्वर्ण-सिंहासन की भीतर लालसा है, वह स्वर्ण-सिंहासन को गाली देना शुरू कर देगा ताकि सन्तोष करने में सुविधा मिले।

हिन्दुस्तान, पूरा का पूरा हिन्दुस्तान भौतिकवाद को गाली देता है। 'वह आदमी भौतिकवादी है,' बस, इतना कहते ही किसी की पर्याप्त निन्दा हो जाती है। इसीलिए नपुसंक क्रोध में हम पश्चिम को मैटरियलिस्ट कहते नहीं अघाते हैं ! लेकिन जितना तुम भौतिकवाद को गाली देते हो, उतना तुम खबर लाते हो कि तुम्हारे प्राणों में भौतिकवाद की आकांक्षा है। मन के नियम बहुत अजीब हैं। एक आदमी अगर अपनी स्त्री को छोड़कर जंगल में भाग जाये और संन्यासी हो जाये और उसका मन स्त्री से मुक्त न हुआ हो तो वह घूम-फिरकर यही कहता रहेगा कि कामिनी-कांचन से सावधान, स्त्री से बचना है, स्त्री नर्क का द्वार है। वह किसी और से नहीं कह रहा है, जोर-जोर से अपने से ही कह रहा है। वह भीतर स्त्री खींच रही है, आमंत्रण दे रही है, वह कह रही है आओ। स्त्री भीतर रूप बन रही है, स्त्री भीतर प्राणों को कस रही है, वह उससे बचने के लिए कह

रही है। कामिनी-कांचन पाप है, स्त्री नर्क का द्वार है, स्त्री से सावधान। दूसरे को समझा रहा है। दूसरे के बहाने वह अपनी ही वाणी को जोर से सुनने की कोशिश कर रहा है, ताकि भीतर हिम्मत बनी रहे कि स्त्री नर्क का द्वार है, बचो, सावधान रहो। जो आदमी वासना से मुक्त हो जायेगा उसे स्त्री नर्क का द्वार कैसे दिखायी पड़ेगी ? जिस आदमी का मन सेक्स से मुक्त हो गया हो, उस आदमी को क्या स्त्री और पुरुष में भेद दिखायी पड़ेगा ?

बुद्ध एक जंगल में बैठे थे एक पहाड़ के पास। कुछ लोग शहर से आये थे एक वेश्या को लेकर पिकनिक के लिए, आमोद-प्रमोद के लिए। वे तो सब नशे में चूर हो गये, वेश्या ने देखा कि वे बेहोश हो गये हैं नशे में, तो वह भाग खड़ी हुई। उसके सारे वस्त्र उन्होंने छीन रखे थे। वह नग्न थी। जब वह भाग गयी तो और उन्हें कुछ होश आया तो वे उसे खोजने जंगल में निकले। रास्ते पर बुद्ध को बैठे देखा तो उसके पास जाकर कहा कि भंते, यही एक रास्ता है, जरूर यहां से एक स्त्री को आपने भागते देखा होगा। स्त्री नग्न थी, वेश्या थी, आपको पता है वह कहां गयी ? यहीं से रास्ते बंट जाते हैं। हम उसे खोजने कहां जायें ? बुद्ध ने कहा, कोई निकला जरूर था, लेकिन वह स्त्री थी या पुरुष, यह पहचानना बहुत मुश्किल है, यह मुझे याद नहीं। क्योंकि जबसे मेरे भीतर से वासना उठ गयी तब से मेरे भीतर का पुरुष मर गया। जब से मेरा पुरुष मर गया, तब से बाहर की स्त्री उस तरह नहीं दिखायी पड़ती, जैसे पहले दिखायी पड़ती थी।

यह बुद्ध-जैसा आदमी स्त्री को नर्क का द्वार कैसे कहेगा ? नहीं, जो स्त्री को नर्क का द्वार कह रहा है, उसके भीतर स्त्री का आकर्षण तेज है ? जो सम्पत्ति को गाली दे रहा है, उसके भीतर सम्पत्ति का आकर्षण तेज है। जो कह रहा है कि सोना मिट्टी है, वह अपने को समझा रहा है कि सोना अभी पूरी तरह सोना है और प्राणों को खींच रहा है। भारत ने एक तरफ दरिद्रता की बातें सीख लीं और दूसरी तरफ लोभ, ईर्ष्या और धन की वासना तीव्र से तीव्रतर होती चली गयी। यह एक अद्भुत घटना घट गयी। ऊपर से हम दरिद्र हैं। दरिद्रता में सन्तोष की बात भी करते हैं, लेकिन हमसे ज्यादा लोभी आदमी जमीन पर खोजना मुश्किल है।

मैं एक घर में ठहरा था। उस घर के ऊपर कुछ पश्चिम के लोग—दो परिवार रहते थे। उस घर में जब भी मैं ठहरा तो उस घर के लोगों ने मुझसे कहा कि पश्चिम के लोग बड़े भौतिकवादी हैं। सिवाय खाने-पीने के, सिवाय नाच-गाने के इन्हें कुछ भी मालूम नहीं, एकदम भौतिकवादी हैं। जब भी मैं गया, मुझे वे यही कहते थे। रात बारह बजे तक नाचते रहते हैं। बस, खाना और पीना और नाचना-यही जिन्दगी है। फिर एक बार उनके घर में ठहरा। ऊपर शांति थी, तो मैंने पूछा कि क्या वे लोग चले गये ? घर की गृहिणी ने

कहा, हां वे चले गये। पर अजीब लोग थे, अपने सारे सामान बांट गये। जो नौकरानी बर्तन मलती थी, स्टील के बर्तन थे सब—वह स्त्री कहने लगी—असली स्टील के बर्तन थे। वे सब नौकरानी को ही दे गये। रेडियो था, रेडियो-ग्राम था, वे सब बांट गये। बड़े अजीब लोग थे। मैंने उस स्त्री से पूछा कि तू तो निरन्तर कहती थी कि ये बड़े भौतिकवादी लोग हैं, नाचते-गाते हैं, खाते-पीते हैं और कुछ भी नहीं करते हैं, बहुत मटीरियलिस्ट हैं, लेकिन ये सारी चीजें बांटकर चले गये। तू भी इस तरह सारी चीजें बांट सकती है ? उसने कहा, मैं ? कैसे बांट सकती हूं, मेरे मन में तो यही लगा रहा कि कुछ हमें भी दे जायें तो अच्छा है। मैंने पूछा, वे तुझे कुछ दे गये ? उसने कहा, मुझे दे नहीं गये क्योंकि उन्होंने सोचा होगा, इनके पास तो सब है, शायद ये लेने से इन्कार कर दें। तो तेरे पास कोई निशानी नहीं है ? उसने कहा, एक निशानी है, वह एक रस्सी बंधी हुई छोड़ गये थे, वह मैं खोल लायी हूं कपड़े टांगने की रस्सी थी, लेकिन रस्सी प्लास्टिक की है और बहुत अच्छी है, वह भर मैं खोल लायी हूं, वह भर निशानी रह गयी है।

यह स्त्री रोज मन्दिर जाती है, रोज सुबह उठकर भक्ताम्बर-स्तोत्र पढ़ती है, यह बड़ी धार्मिक है, उपवास भी करती है और सोचती है कि मैं भौतिकवादी नहीं हूं और वे लोग जो नाचते थे, और गीत गाते थे, वे इसे भौतिकवादी मालूम पड़ते थे। वे इसे भौतिकवादी क्यों मालूम पड़ते थे ? इसके भीतर भी नाचने का, गीत गाने का और सम्पत्ति का मोह है। वह इसे खींचता है कि काश, यह सब उसके पास भी होता, यह सब वह भी करती, लेकिन नहीं-नहीं, संतोष रखना है। इन सब बातों में नहीं पड़ना है, ये बातें बहुत बुरी हैं, इसलिए गाली देती है, निन्दा करती है, कंडम करती है, अपने मन को समझा लेती है और पीछे से एक रस्सी भी खोलकर ले आती है। अध्यात्मवादी हैं हम !

एक अमरीकन यात्री की मैं किताब पढ़ रहा था। वह दिल्ली के स्टेशन पर उतरा और एक सरदार ने जाकर उसका हाथ पकड़ लिया है और कहा है कि मैं आपका भविष्य बताऊंगा। उसने कहा, लेकिन मुझे भविष्य पूछना नहीं है। हम अपना भविष्य खुद बनाते हैं। भविष्य कहीं है यह हम मानते नहीं। पर सरदार जी ने तो बताना ही शुरू कर दिया। वह तो हाथ जोर से पकड़े हुए हैं। अब वह आदमी बेचारा शिष्टाचार में सिर्फ हाथ पकड़ाये हुए है, छोड़ नहीं रहा है। ठीक है, वह कह रहा है कि मुझे पूछना नहीं है, मुझे कुछ जानना नहीं है, लेकिन सरदार जी ने तो बताना शुरू कर दिया है कि यह होगा, यह होगा। फिर उस आदमी ने कहा, मुझे जाने दीजिये। तो सरदार जी ने कहा, मेरी फीस ? मेरे दो रुपये फीस के हो गये। उस आदमी ने कहा, ठीक है। हालांकि मैं मना कर रहा था और आपने जबरदस्ती बताया है, लेकिन फिर भी आपने इतना श्रम

किया है, ये दो रुपये आप ले लें। लेकिन दो रुपये लेकर सरदार जी ने हाथ छोड़ा नहीं है। वह और बताने लगे हैं। उसने कहा, देखिये, अब हाथ छोड़ दीजिये, क्योंकि फिर आपकी फीस हो जायेगी। लेकिन सरदार जी बताये चले जा रहे हैं। तो उसने कहा, मुझे जाना है। जबरदस्ती हाथ छुड़ाया तो सरदार जी ने कहा कि दो रुपये मेरी फीस और हो गयी। उस आदमी ने कहा, अब मैं दो रुपये नहीं दूंगा। यह तो जबरदस्ती की बात है। तो सरदार जी ने क्या कहा ? सरदार जी ने कहा, 'यू मैटीरियलिस्ट'—दो रुपये के लिए मरे जाते हो, भौतिकवादी हो, दो रुपये में जान निकली जाती है !

उस आदमी ने अपने संस्मरण में लिखा है कि मैं तो दंग रह गया। भौतिक-वादी कौन था ? मैं था भौतिकवादी ?

सारी पृथ्वी पर हमसे ज्यादा भौतिकवादी लोग खोजने मुश्किल हैं, क्योंकि दरिद्र आदमी कभी भी भौतिकवाद से ऊपर नहीं उठ सकता है। समृद्ध आदमी ही भौतिकवाद से ऊपर उठ सकता है, क्योंकि समृद्धि को पाकर उसे पता चलता है कि कुछ भी नहीं है समृद्धि में। धन पाकर दिखायी पड़ता है कि धन में कुछ भी नहीं है और जिस दिन धन निस्सार दिखायी पड़ता है, असार दिखायी पड़ता है, उस दिन भौतिकवाद से आदमी ऊपर उठता है। सम्पत्ति का एक ही बड़े-से-बड़ा मूल्य है कि सम्पत्ति से आदमी मुक्त हो जाता है। धन का एक ही आध्या-त्मिक मूल्य है कि धन के उपलब्ध होने से आदमी धन से मुक्त हो सकता है। निर्धन आदमी धन से कभी मुक्त नहीं हो पाता है। धनी आदमी धन से मुक्त हो सकता है। यह देश दरिद्रता को स्वीकार करने के कारण धनी नहीं हो पाया। धनी नहीं हो पाने के कारण धन से मुक्त नहीं हो पाया; लेकिन हम थोथी बातें अपने ऊपर थोपे चले जाते हैं और बिल्कुल ही जीवन और मन के विपरीत काम किये चले जाते हैं। ऊपर से कुछ, और भीतर से कुछ हुए चले जाते हैं। सारा व्यक्तित्व पाखंड हो गया है, सारा व्यक्तित्व धोखा हो गया है। और मैंने इसलिए कहा कि गांधी की दरिद्रता की शिक्षा फिर खतरनाक है, फिर वह हमारी पुरानी शिक्षा का ही फल है। फिर वह पुरानी शिक्षा फिर से पुन-रुक्तिकरण है।

नहीं, गांधी बहुत प्यारे आदमी हैं, गांधी बहुत अद्भुत आदमी हैं; लेकिन उनके दरिद्रता के दर्शन को अगर भारत ने स्वीकार किया तो भारत कभी समृद्ध नहीं हो सकेगा भारत कभी धार्मिक भी नहीं हो सकता है। मेरी दृष्टि में धार्मिक होने के लिए देश का समृद्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। दरिद्र आदमी कैसे धार्मिक हो सकता है ? जिसकी रोटी की जरूरतें पूरी नहीं होतीं वह परमात्मा की जरूरत पैदा ही कैसे कर सकता है ? परमात्मा मनुष्य की अन्तिम जरूरत है, लास्ट नेसेसिटी है। जब जीवन की सारी प्राथमिक जरूरतें पूरी हो जाती

हैं, तो अन्तिम जरूरत का ख्याल आता है और हम इस देश में गरीब आदमी को परमात्मा की शिक्षाएं दिये चले जाते हैं। गरीब आदमी को परमात्मा की शिक्षा देना अन्याय है और गरीब आदमी अगर परमात्मा की बातें सुनने भी आता है और परमात्मा के मन्दिर में प्रार्थना भी करने जाता है, तो आप यह मत सोचना कि वह परमात्मा के पास जा रहा है। जब वह परमात्मा के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा होता है, तब भी उसके मन में यही प्रार्थना होती है कि कल मुझे रोटी मिल सकेगी न ? मेरा बच्चा बीमार है, वह ठीक हो सकेगा न ? मेरा काम छूट गया है, मुझे काम मिल सकेगा न ? वह परमात्मा के पास भी रोजी-रोटी के लिए ही पहुंचता है, परमात्मा के लिए नहीं पहुंच सकता है। वह परमात्मा के पास जाता है तो बुनियादी कारण उसका भौतिक होता है, आध्यात्मिक नहीं हो सकता है। आध्यात्मिक जीवन की जरूरत, जीवन की सामान्य स्थिति, सुविधा उपलब्ध होने पर ही पैदा हो सकती है।

जब भारत थोड़ा समृद्ध था तो भारत धार्मिक था। इधर दो हजार वर्ष से वह निरन्तर दरिद्र और दरिद्र होता चला गया है। आज वह दरिद्रता के गड्ढे में खड़ा है। वह धार्मिक नहीं हो सकता है। उसके धार्मिक होने का कोई उपाय नहीं है। इस बात की सम्भावना है कि आने वाले पचास वर्ष में अमरीका धार्मिक हो सके, रूस धार्मिक हो सके, लेकिन भारत के धार्मिक होने की कोई सम्भावना नहीं। अमरीका को धार्मिक होना पड़ेगा, रूस को धार्मिक होना पड़ेगा, क्योंकि जैसे ही जिन्दगी की सामान्य जरूरतें पूरी हो जाती हैं, जैसे ही शरीर की जरूरतें पूरी हो जाती हैं, पहली बार आदमी की आंखें उस तरफ उठती हैं जो शरीर के ऊपर है। शरीर की झंझट जैसे ही छूट जाती है, शरीर से आदमी आत्मा की तरफ उन्मुख होता है। शायद आपने कभी ख्याल भी न किया होगा। पैर में एक छोटा-सा कांटा गड़ जाये तो सारे प्राण उसी कांटे के आसपास घूमने लगते हैं। सिर में थोड़ा-सा दर्द हो तो आत्मा वगैरह सब भूल जाती है, सिर का दर्द ही रह जाता है। जहां पीड़ा होती है, प्राण वहीं अटक जाते हैं। भूखे पेट के प्राण पेट के आसपास ही अटके रहते हैं, उसके ऊपर नहीं उठ सकते। लेकिन हम एक बहुत मूढ़तापूर्ण, बहुत एब्सर्ड जीवन-दर्शन को पकड़े हुए बैठे हैं। मैं मानता हूं कि समृद्ध आदमी किसी दिन दरिद्र हो सकता है, स्वेच्छा से, वालंटरी, लेकिन स्वेच्छा से दरिद्रता की बात ही दूसरी है। वह बात वैसी ही है—

मैं एक आश्रम में गया। उस आश्रम में वे उपवास कराते हैं महीने-महीने, दो-दो महीने, तीन-तीन महीने और एक-एक महीने के उपवास करने के पांच-पांच सौ रुपये महीने का खर्च पड़ जाता है। पांच सौ रुपये महीने का खर्च एक महीने उपवास करने का ! मैंने कहा, उपवास बड़ा महंगा है। इससे तो पेट

भरना भी सस्ता पड़ता है। फिर वहां जो लोग उपवास करने वाले थे, वे बड़े ही आनन्द से कहते थे कि बीस दिन कर लिए, पच्चीस दिन कर लिए, तीस दिन हो गये, मेरे चालीस दिन हो गये। मैं बहुत हैरान हुआ। मैं बिहार भी गया था। वहां अकाल में भूखे मरते हुए लोग थे, किसी को चार दिन से रोटी नहीं मिली थी। उसका चेहरा भी मैंने देखा और चालीस दिन इसने उपवास किया था इसका चेहरा भी मैंने देखा। इन दोनों में जमीन-आसमान का फर्क मालूम पड़ा। वह चार दिन भूखा रहा था, वह कितना दीनहीन मालूम हो रहा था ! यह जिसने चालीस दिन उपवास किया था, एक निराली आध्यात्मिक गरिमा से भरा हुआ था। बड़ी अजीब बात है। फिर क्या हुआ ? यह उपवास है, वह भूख है। यह उपवास वे लोग करते हैं जो ज्यादा खा गये हैं। और ज्यादा खा रहे हैं। भूखे आदमी को कभी खाने को नहीं मिला। भूख और उपवास में फर्क है। महावीर की दरिद्रता में और सड़क पर भीख मांगने वाले की दरिद्रता में भी उतना ही फर्क है। ज्यादा खाने वाले के लिए उपवास भी एक आनन्द हो सकता है, भूख से मरने वाले के लिए उपवास कैसे आनन्द हो सकता है ? क्वालिटीटिव फर्क है, गुणात्मक फर्क है और हिन्दुस्तान पांच हजार वर्ष से इस गलत जीवन-दृष्टिकोण के नीचे जी रहा है कि हमें दरिद्रता में सन्तोष कर लेना है।

गांधी भी फिर पुनः उसी बात को दोहराते हैं और उसी बात को दोहराने के कारण उन्होंने जो उपकरण बताये हैं चर्खा, तकली, वे उपकरण भारत को दरिद्र रखने के उपकरण सिद्ध होंगे। वे भारत को समृद्ध नहीं बना सकते। समृद्धि पैदा होती है टेक्नॉलॉजी से, समृद्धि पैदा होती है विज्ञान से, तकनीक से। समृद्धि पैदा होती है यंत्र से। चर्खा और तकली से समृद्धि कैसे पैदा हो सकती है ? चर्खा और तकली कोई दस हजार वर्ष के पुराने साधन हैं। अगर दुनिया को दस हजार वर्ष पुरानी दरिद्रता में ले जाना है, दुख में ले जाना है तो चर्खा-तकली को प्रतीक बनाओ, अन्यथा चर्खा-तकली से मुक्त होने की जरूरत है। मैं यह नहीं कहता कि गांव में जिन्हें कुछ भी काम नहीं मिल रहा है, वे चर्खा न कातें। मैं यह भी नहीं कहता कि जिन्हें खादी पहनने का शौक हो वे खादी न पहनें। मैं कहता हूं यह कि यह भारत के विकास के प्रतीक न बन जायें, ये हमारे जीवन के देखने के, दृष्टिकोण के सिम्बलस न हों। गांधी ने उन्हें सिम्बल बना दिया है। हमें ऐसा लगने लगा है कि बड़े तकनीक की कोई जरूरत नहीं है, बड़ी टेक्नॉलॉजी की कोई जरूरत नहीं है, बड़े यंत्रों की कोई जरूरत नहीं है। सेंट्रलाइजेशन, केन्द्रीकरण की कोई जरूरत नहीं है; औद्योगीकरण की, इंडस्ट्रियलाइजेशन की कोई जरूरत नहीं है। हमें ऐसा लगने लगा है कि एक-एक आदमी अपना साबुन बना ले, अपना कपड़ा बना ले, अपनी खेती में काम

कर ले, स्वावलम्बी हो जाये—बस इसकी जरूरत है।

ये खतरनाक बातें हैं। अगर आदमी को हमने इस ढांचे पर ले जाने की कोशिश की है तो आदमी का जीवन-स्तर पशु के स्तर पर गिर जाने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं होगा। आदमी का जो इतना जीवन-स्तर ऊपर उठा है, वह तकनीक का परिणाम है और जिस दिन सारी मनुष्य-जाति का जीवन-स्तर इतना ऊंचा उठ जायेगा जितना जीवन-स्तर बुद्ध और महावीर का ऊंचा रहा होगा, तो मैं आपसे कहता हूं कि पृथ्वी पर करोड़ों बुद्ध और महावीर एक साथ पैदा हो सकते हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि राजघराने से इतने बड़े संन्यासी पैदा हुए। इतने बड़े संन्यासी राजघरानों से ही पैदा हो सकते हैं, क्योंकि राजघराने में ही सम्पत्ति की और शरीर की व्यर्थता का पहला अनुभव होता है और आंखें उस तरफ उठती हैं जहां जीवन की और गहरी सच्चाइयां हैं, जहां 'बियॉण्ड' और दूर और अतीत और ऊपर के शिखर हैं उन तक आंख तभी उठती है, जब जीवन की पृथ्वी नीचे से शांत, सुविधापूर्ण हो जाती है।

तो मैं मानता हूं कि चर्खा और तकली को अगर हम प्रतीक मान लेते हैं और अपनी आर्थिक जीवन-व्यवस्था का केन्द्र बना लेते हैं और अगर हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि विकेन्द्रीकरण करना है, बड़े उद्योग से बचना है, बड़ी टेक्नॉलॉजी और बड़ी साइंस को नहीं आने देना है तो हम बहुत घातक स्थिति में पहुंच जा सकते हैं। हम दरिद्र हैं हमेशा से, हम और भी दरिद्र हो सकते हैं। सारी दुनिया समृद्ध होती चली जायेगी, उसके किनारे हम एक दरिद्रता का हिस्सा बन जायेंगे! आज भी हमारी हालत वैसी है जैसे किसी करोड़पति के भवन के सामने कोई भिखमंगा खड़ा हो। आज भी हमारी हालत दुनिया के राष्ट्रों के मुकाबले एक भिखमंगे राष्ट्र की है। यह हालत रोज-रोज बदतर होती चली जायेगी। एक तरफ टेकनीक का उपयोग मत करना, केन्द्रीकरण की भावना को रोकना, तोड़ना, दूसरी तरफ हाथ से चलने वाले साधन जो आदिम हैं उनका उपयोग करना और तीसरी तरफ बच्चों को पैदा करते चले जाना! बीस-पच्चीस वर्ष में यह मुल्क अपने हाथ से अपनी आत्महत्या कर लेगा। गांधी कहते हैं कि संतति-नियमन के इस पक्ष में भी वे नहीं हैं। वे कहते हैं कि बर्थ-कंट्रोल के पक्ष में भी वे नहीं हैं। वे कहते हैं ब्रह्मचर्य से नियमन होना चाहिए। ब्रह्मचर्य से कितने लोगों ने कब नियमन किया है? कितने लोग नियमन कर सकते हैं? कितने लोग करेंगे और हम प्रतीक्षा कब तक करेंगे? लेकिन गांधी कहते हैं कि नहीं, कृत्रिम उपाय का हमको उपयोग नहीं करना है। बर्थ-कंट्रोल के साधन कृत्रिम हैं, आर्टीफिशियल हैं, उनका उपयोग नहीं करना है। गांधी की ये बातें अवैज्ञानिक हैं।

गांधी भले आदमी हैं, इसका यह मतलब नहीं होता कि गांधी जो भी कहेंगे वह वैज्ञानिक होगा। कई बार बड़े गलत आदमी बड़ी ठीक बातें कहते हैं, कई

बार बड़े ठीक आदमी बड़ी गलत बातें कहते हैं और सच तो यह है कि गलत बातें हम तभी स्वीकार करते हैं जब बहुत भले आदमी उनको कहते हैं। चर्खा और खादी की बात किसी और ने कही होती गांधी के अलावा, तो हिन्दुस्तान कभी मानने की फिक्र नहीं करता। वह गांधी इतने अद्भुत आदमी हैं कि वह कुछ भी कहेंगे तो हमें लगता है कि इतना बड़ा व्यक्ति, इतना महिमावान् व्यक्ति, इतना ओजस्वी, वह जो भी कहता है, ठीक कहता होगा। अगर हम मार्क्स की व्यक्तिगत जिन्दगी को देखें तो मार्क्स की व्यक्तिगत जिन्दगी में कुछ भी नहीं है—जिसको उदात्त कहा जा सके, ऊंचा कहा जा सके। सुबह से सांझ तक सिगरेट पी रहा है, शराब पी रहा है। जिन्दगी में कुछ ऐसी ऊंची बात नहीं है, जिन्दगी में कोई ऐसा बड़ा भारी प्रभाव नहीं है। नौकरानी से गलत सम्बन्ध है, नाजायज लड़का पैदा हो गया है, मार्क्स को। मार्क्स की जिन्दगी में कुछ भी नहीं है। छोटी-सी बात में क्रोध से भर जाता है। बहुत ईगोइस्ट है, बहुत ईर्ष्यालु है। लेकिन मार्क्स ने समाज के लिए जो विश्लेषण दिया है वह सत्य है। गांधी बहुत अच्छे आदमी हैं, न सिगरेट पीते हैं, न किसी नौकरानी से कोई गलत सम्बन्ध है, न कोई नाजायज बच्चा पैदा हुआ है। जीवन एकदम पवित्र कथा है। जीवन एक शुभ्र कथा है, लेकिन गांधी ने जो विश्लेषण दिया है समाज का वह अवैज्ञानिक है और गलत है। गांधी जैसे आदमी चाहिए, लेकिन समाज मार्क्स जैसा चाहिए। गांधी का समाज का विश्लेषण अवैज्ञानिक है।

लेकिन गांधीवादी कहते हैं कि मैं इस पर बात ही न करूं। वे कहते हैं, इस पर बात ही मत करिये। इस पर बात न करने का मतलब है कि देश में आग लग रही हो, हम बैठकर देखते रहें। गांधीवादी मुझे कहते हैं आप तो धार्मिक आदमी हैं, आप क्यों इन बातों में पड़ते हैं? एक धार्मिक आदमी निकलता है और एक मकान में आग लगी हो और चिल्ला कर कह दे कि मकान में आग लगी है, पानी ले आओ तो उससे आप कहेंगे कि आप तो धार्मिक आदमी हैं, आप इस झंझट में कहां पड़ते हैं। लगने दें आग। आप अपना भजन-कीर्तन करें। श्री मोरारजी भाई ने मेरे सम्बन्ध में बात करते हुए राजकोट में परसों कहा कि पहले तो राजनीतिक और आर्थिक लोग गांधीजी की आलोचना करते थे। अब आध्यात्मिक लोग भी उनकी आलोचना करने लगे! जैसे कि आध्यात्मिक आदमी का गांधी की आलोचना करना अनिवार्य रूपेण कोई अपराध हो। मैं श्री मोरारजी भाई को कहना चाहता हूं गांधीजी को राजनीतिक और आर्थिक लोग तो समझ ही नहीं सकते, आलोचना क्या करेंगे। गांधी को तो आध्यात्मिक लोग ही समझ सकते हैं और विचार कर सकते हैं, क्योंकि गांधी मूलतः राजनीतिक नहीं हैं, न आर्थिक विचारक हैं। गांधी मूलतः एक नैतिक संत हैं। गांधी के आसपास जो राजनीतिज्ञ इकट्ठे हो गये हैं, उन्होंने ही गांधी को बरबाद किया है। और

गांधी के पास जो राजनीति का जाल खड़ा हो गया है, उस जाल में ही गांधी की प्रतिमा को वह जितना सुन्दर हो सकती थी, जितनी पवित्र हो सकती थी उसकी पवित्रता और सुन्दरता में भी कमी की।

गांधी मूलतः एक नैतिक व्यक्ति हैं। राजनीति से उनका कोई बुनियादी सम्बन्ध नहीं है। राजनीति एक आपद् धर्म थी, एक मजबूरी थी। मुल्क में एक आग थी, गुलामी थी। उसे दूर करने को उन्हें कूद पड़ना पड़ा। लेकिन मूलतः वे सत्य की खोज में जाने वाले एक नैतिक साधक हैं और उन पर आध्यात्मिक लोग विचार न करें, ऐसा अगर श्री मोरारजी भाई सोचते हों तो बहुत गलत सोचते हैं। गांधी पर हिन्दुस्तान के आध्यात्मिक चिन्तकों को बार-बार विचार करना पड़ेगा, क्योंकि गांधी ने आध्यात्मिक जीवन और सामान्य जीवन के बीच एक सेतु निर्मित करने का प्रयास किया है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि गांधी नैतिक व्यक्ति हैं, इसलिए जो भी कहेंगे वह सत्य होगा। हमारी पुरानी धारणा यह है, हम समझते हैं कि महावीर को चूंकि आत्म-ज्ञान मिला, परमात्मा का अनुभव हुआ, इसलिए महावीर जो भी कहेंगे वह सच होगा, यह गलत बात है। महावीर का सब कहा हुआ सच नहीं हो सकता। बुद्ध का सब कहा हुआ सच नहीं हो सकता। गांधी का सब कहा हुआ भी सच नहीं हो सकता, बल्कि यह भी हो सकता है कि गांधी से बहुत कम हैसियत का कोई विचारक किसी दिशा में जो बात कहे—चाहे उसके पास व्यक्तित्व हो चाहे न हो, वह भी सच हो सकता है। यह मैंने कहा कि गांधी के मुकाबले कोई व्यक्तित्व नहीं है मार्क्स का। लेकिन मार्क्स का समाज का जो विश्लेषण है वह गांधी से श्रेष्ठ है, सही है, सच्चा है, वैज्ञानिक है। इसलिए मैं मानता हूं कि गांधी जैसे पृथ्वी पर जितने लोग बढ़ जायेंगे पृथ्वी उतनी अच्छी होगी, लेकिन गांधी की जो समाज-रचना की कल्पना है वह कल्पना अवैज्ञानिक है। आदिम है प्रिमिटिव, पिछड़ी हुई है और उसके आधार पर चलकर इस देश के सौभाग्य का उदय नहीं हो सकता है। मैं मानता हूं कि यह आलोचना और विचार किया जाना जरूरी है। नहीं, मैं यह नहीं कहता हूं कि मैं जो कहता हूं वह सही होना ही चाहिए। यह मैं कभी भी नहीं कहता हूं। यह मैं नहीं कहता हूं कि मैंने जो कहा वह सत्य है। वह मैं कभी नहीं कहता हूं। यह भी मैं नहीं कहता कि मेरी बात आपको मान लेनी चाहिए। मैं इतना ही कहता हूं कि मैं जो कहता हूं यह विचारणीय है, उस पर विचार किया जाना जरूरी है। हो सकता है मेरी बातें गलत हों। तब विचार कर उनको फेंक देना चाहिए। हो सकता है उसमें से कोई बात आपके विवेक को सच मालूम पड़े, तब वह मेरी नहीं रह जाती। वह आपकी अपनी हो जाती है। लेकिन जो पंथवादी होते हैं वे कहते हैं विचार ही नहीं करना है, वे विचार की हत्या करना चाहते हैं।

मैं गुजरात गया तो वहां मुझे लोगों ने कहा कि श्री इंदुलाल याज्ञिक ने कहा है मेरा बहिष्कार करेंगे गुजरात में। नहीं आने देंगे। मैंने कहा, अगर गुजरात पागल होगा तो श्री इंदुलालजी की बात मानेगा। गुजरात पागल नहीं है। आह! कैसा मजा है! वे बहिष्कार करेंगे मेरा! अगर मैं गांधी के ऊपर कुछ विचार करूंगा तो मेरा बहिष्कार किया जायेगा। तो गांधी की आत्मा कहीं भी होगी तो श्री इंदुलालजी को देखकर रो रही होगी कि ये मेरे गांधीवादी हैं! इन्हीं लोगों के लिए मैंने लड़ाइयां लड़ी हैं, इन्हीं के लिए जीवन कुर्बान किया है, इन्हीं के लिए बरबाद हुआ। गांधीवादी को अगर थोड़ी भी समझ हो तो मुझे तो उसे गांव-गांव बुलाकर ले जाना चाहिए कि मैं गांधी के बाबत बात करूं और गांधी के बाबत विचार को पैदा करूं। लेकिन वह कहता है कि नहीं किसी को मेरी खबर नहीं पहुंचनी चाहिए। मेरी सभा नहीं होनी चाहिए। राजकोट में जितने मैदान गांधीवादियों के हाथ में थे उन्होंने कहा कि नहीं यहां हम सभा नहीं होने देंगे। स्कूल उनके हाथ में है। सभा नहीं होने देंगे। उनके हाथ में तो सभी कुछ है। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? इससे क्या सभा नहीं होगी? लेकिन इस भांति रोककर वे क्या बताते हैं? वे बताते हैं कि इतना समझे गांधी की अहिंसा को कितना समझे गांधी की नैतिकता को, कितना समझे गांधी के विचार को, यही समझे?

दिल्ली में बोला। दूसरे दिन ही मुझे एक पत्र आया। किसी गांधीवादी ने पत्र लिखा और मुझे लिखा कि महाशय आपको फौरन सेण्ट्रल जेल भेज दिया जाना चाहिए। मैंने आंख बन्द करके गांधी को धन्यवाद दिया और कहा कि मेरी उम्र कम थी, इसलिए आपके सत्संग का मौका नहीं मिला, नहीं तो आपके सत्संग में जेल जाना ही पड़ता। लेकिन आश्चर्य, आप मर गये। फिर भी प्रभाव आपका काफी है। जरा आपसे दोस्ती दिखायी, आपकी बात की कि जेल जाने की बात होने लगी। गांधी अगर जिन्दा होते तो इस बात के सौ में से सौ मौके हैं कि गांधीवादियों के जेल में उनको सड़ना पड़ता। ये गांधीवादी उनको जेल में जरूर भेजते। गांधी बुनियादी रूप से एक विद्रोही थे। वह मुल्क को नर्क में ले जाते अपने शिष्यों को नहीं देख सकते थे। वे यह नहीं सोचते थे कि ये शिष्य मेरे हैं, इसलिए इनसे बगावत कैसे करूं। बगावत की कहानी शुरू हो गयी थी। गांधी के हाथ से जैसे ही सत्ता उनके अनुयायियों को मिल गयी, वैसे ही गांधी को लगने लगा कि मैं खोटा सिक्का हो गया हूं। मेरा कोई चलन नहीं रहा। मेरी कोई सुनता नहीं। गांधी के शिष्यों को भी लगता था कि इस बुड्ढे से अब छुटकारा हो जाये तो अच्छा है। क्योंकि यह झंझटें खड़ी करेगा और गोडसे ने मालूम होता है गांधी को इन्हीं की प्रार्थनाएं सुनकर गोली मार दी। गोडसे ने गांधीवादियों का ही जैसे काम कर दिया। गांधीवादी से ज्यादा गांधी का शत्रु और कोई नहीं है। वाद में बांधते ही गांधी की मृत्यु है। मैं गांधी को वाद से मुक्त रखना चाहता हूं,

ताकि वे सदा जीवित रहें और जीवन्त रहें। वाद की कब्र में उन्हें कैद नहीं करना है। निरन्तर निष्पक्ष विचार से ही यह हो सकता है। विचार इसलिए सतेज रखना है। यही मेरा निवेदन है।

बम्बई, दिनांक २ दिसम्बर १९६८

२. एक और असहमति

मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं और न ही मैंने अपने किसी पिछले जन्म में ऐसे कोई अपराध किये हैं कि मुझे राजनीतिज्ञ होना पड़े। इसलिए राजनीतिज्ञ मुझसे परेशान न हों और न ही चिन्तित हों। उन्हें भयभीत होने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं उनका प्रतिद्वन्द्वी नहीं हूं, इसलिए अकारण मुझ पर रोष भी प्रकट न करें। लेकिन एक बात जरूर कह देना चाहता हूं। हजारों वर्ष तक, भारत के नैतिक व्यक्ति ने जीवन के प्रति एक उपेक्षा का भाव ग्रहण किया था। गांधी ने भारत की नैतिक परम्परा में उस उपेक्षा के भाव का आमूल तोड़ दिया है। गांधी के बाद भारत का नैतिक या धार्मिक व्यक्ति जीवन के और उसके पहलुओं के प्रति उपेक्षा नहीं कर सकता है। गांधी के पहले तो यह कल्पना ठीक थी कि कोई धार्मिक व्यक्ति जीवन की समस्या पर चाहे वह राजनीति हो, चाहे वह अर्थ हो, चाहे परिवार हो, चाहे सेक्स हो—इन सारी चीजों पर कोई स्पष्ट दृष्टिकोण न रखे। धार्मिक आदमी का काम था सदा से जीवन जीना सिखाना नहीं, जीवन से मुक्त होने का रास्ता बताना। धार्मिक आदमी का स्पष्ट कार्य था लोगों को मुक्ति की दिशा में गतिमान करना। लोग किस भांति आवागमन से मुक्त हो सकें, यही धार्मिक दृष्टि की उपदेशना थी। इस उपदेश का घातक परिणाम भारत को झेलना पड़ा। मोक्ष है, इस जीवन के बाद और जीवन भी है और यह जीवन आने वाले जीवनों से जुड़ी हुई अनिवार्य कड़ी है। जो इस जीवन

की उपेक्षा करता है, वह आने वाले जीवन के लिए नींव नहीं रखता। वह आने वाले जीवन को भी नष्ट करने का प्रारम्भ करता है। इस जीवन के प्रति उपेक्षा नहीं चाहिए। धर्म ने अब तक उपेक्षा की थी, अब धर्म उपेक्षा नहीं कर सकता है, क्योंकि धर्म की उपेक्षा का यह परिणाम हुआ कि सारी पृथ्वी अधार्मिक हो गयी। इस सारी पृथ्वी के अधार्मिक हो जाने में अधार्मिक लोगों का हाथ नहीं है, इसमें इन धार्मिक लोगों की उपेक्षा है जो जीवन के प्रति पीठ करके खड़े हो गये। अब आने वाले भविष्य में धार्मिक व्यक्ति अगर जीवन के प्रति पीठ करता है, तो उस व्यक्ति को हम पूरे अर्थ में धार्मिक नहीं कह पायेंगे।

गांधी के बाद भारत में एक नया युग प्रारम्भ होता है और वह नया युग यह है कि धर्म जीवन के प्रति भी रस लेगा, जीवन के समस्त पहलुओं पर धर्म भी अपना निर्णय देगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि धार्मिक व्यक्ति दिल्ली की यात्रा करे, इसका यह अर्थ भी नहीं है कि धार्मिक व्यक्ति सक्रिय राजनीति में खड़ा हो जाये। लेकिन इसका अर्थ यह जरूर है कि धार्मिक व्यक्ति राजनीति के प्रति उपेक्षा ग्रहण नहीं कर सकते, क्योंकि राजनीति पूरे जीवन को प्रभावित करती है। मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं लेकिन आंखें रहते देश को रोज अंधकार में जाते हुए देखना भी असम्भव है। धार्मिक आदमी की उतनी कठोरता और जड़ता मैं नहीं जुटा पाता हूं। देश रोज-रोज, प्रति दिन नीचे उतर रहा है। उसकी सारी नैतिकता खो रही है, उसके जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुन्दर है, जो भी सत्य है, वह सभी कलुषित हुआ जा रहा है। इसके पीछे जानना और समझना जरूरी है कि कौन-सी घटना काम कर रही है और चूंकि मैंने कहा कि गांधी के बाद नया युग प्रारम्भ होता है, इसलिए गांधी से ही विचार करना जरूरी है।

गांधी एक धार्मिक व्यक्ति थे लेकिन गांधी के आसपास जो लोग इकट्ठे हुए थे वे धार्मिक नहीं थे और इससे हिन्दुस्तान के भाग्य के लिए एक खतरा पैदा हो गया। गांधी राजनीतिज्ञ नहीं थे। गांधी के लिए राजनीति आपद् धर्म थी, तत्काल आवश्यकता थी। गांधी का मूल व्यक्तित्व नैतिक था। विवशता थी कि वे राजनीति में खड़े थे, लेकिन उस राजनीति में भी उनके प्राणों को वह राजनीति कहीं स्पर्श नहीं कर सकी थी। उससे वैसे ही दूर थी जैसा कमल पानी से दूर होता है। लेकिन उनके आसपास जो लोग इकट्ठे थे वे राजनीतिज्ञ थे, वे नैतिक लोग नहीं थे। राजनीति उनका प्राण थी। गांधी के साथ रहने की वजह से धर्म और नीति उनका आपद्-धर्म बन गयी थी। नैतिकता उनके लिए मजबूरी थी। गांधी के साथ चलना था तो नैतिकता की विवशता उन्हें उठानी पड़ी। गांधी के लिए राजनीति लाचारी थी। उनके अनुयायियों के लिए स्थिति उल्टी थी। उनके लिए नैतिकता मजबूरी थी। गांधी के लिए राजनीति बाहर-बाहर थी। अन्तर में नीति थी। उनके अनुयायियों के लिए राजनीति भीतर थी। नीति बाहर-बाहर थी।

फिर जैसे ही सत्ता आयी, एक क्रांतिकारी उलटफेर हो गया। सत्ता आते ही गांधी का जो आपद् धर्म था—राजनीति—वह विलीन हो गया। गांधी शुद्ध नैतिक व्यक्ति रह गये और उनके अनुयायियों का जो आपद् धर्म था, नीति, वह विलीन हो गयी, वे शुद्ध राजनीतिज्ञ हो गये। सत्ता के आते ही गांधी शुद्ध नैतिक व्यक्ति रह गये और उनके अनुयायी शुद्ध राजनीतिक व्यक्ति हो गये और उन दोनों के बीच जमीन-आसमान का अन्तर हो गया। एक इतनी बड़ी खाई हो गयी जो आजादी के पहले कभी भी नहीं थी। आजादी के पहले गांधी और गांधी के अनुयायी के बीच दूरी बहुत कम थी। झूठी ही सही, लेकिन अनुयायी के आसपास नैतिकता की एक पर्त थी और झूठी ही सही, गांधी के आसपास राजनीति का एक आवरण था। इस कारण बीच में एक सेतु था, एक सम्बन्ध था। सत्ता आने पर यह सेतु टूट गया और इस सेतु का टूट जाना गांधी को भी दिखायी पड़ गया। और गांधी ने कहा, अब कांग्रेस की कोई भी जरूरत नहीं। उसे लोक सेवक दल में परिवर्तित हो जाना चाहिए। क्योंकि गांधी की पैनी आंखों से यह दिखायी पड़ना कठिन नहीं हुआ कि अब यह जो राजनीतिक संस्था खड़ी रह जायेगी, तो यह राष्ट्र को नर्क की यात्रा करा देगी।

बीस साल में उसने नर्क की यात्रा करा ही दी है। गांधी, जिसकी आवाज हम चालीस वर्षों से सुनते थे, अचानक सत्ता रूपान्तरित हो जाने पर, सत्ता हस्तान्तरित हो जाने पर अनुभव करने लगे कि मेरी कोई आवाज नहीं सुनता है। मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूं। मेरा अब चलन नहीं रहा। गांधी ने यह कहा कि पहले मैं एक सौ पच्चीस वर्ष जीना चाहता था, लेकिन अब मेरी इच्छा वह भी नहीं रह गयी। यह थोड़ा विचारणीय है, गांधीवादी के ऊपर इससे बड़ा और कोई आरोप नहीं हो सकता, और कोई बड़ा अपराध नहीं हो सकता है। गोडसे के ऊपर गांधी के मारने का अपराध छोटा है, इस अपराध के मुकाबले। गांधी जिनके साथ लड़े और जिनके लिए लड़े, जीत हो जाने पर गांधी को यह कहना पड़े कि मैं खोटा सिक्का हो गया हूं, मेरी अब कोई सुनता नहीं, अब मुझे ज्यादा जीने की इच्छा नहीं होती—क्या यह गोडसे से भी बड़ी हत्या नहीं है? गोडसे ने जो गोली मारी वह तो परमात्मा की इच्छा के बिना गोडसे नहीं मार सकता था। और शायद गांधी को इससे सुन्दर मृत्यु मिल भी नहीं सकती थी। लेकिन गांधी के पीछे चलने वाले लोगों ने गांधी को जिस बुरी तरह से निराश और हताश किया, वह अति आश्चर्यजनक है। और वे ही सारे लोग गांधी के मर जाने के बाद बीस वर्षों से गांधी का जय जय गान और गांधी का गुणगान कर रहे हैं। वे ही कहते हैं कि गांधी पर विचार नहीं करना है, सिर्फ प्रशंसा करनी है।

वे ऐसा क्यों कहते हैं?

वे भलीभांति जानते हैं कि गांधी की आलोचना शीघ्र ही गांधीवादियों की आलोचना बन जायेगी। इसलिए गांधी की आलोचना मत करो, ताकि पीछे छिपे हुए गांधीवादी की आलोचना सम्भव न हो सके। गांधी की आड़ में एक खेल चल रहा है। इस खेल को गांधी की आलोचना और विचार के बिना नहीं तोड़ा जा सकता और इसीलिए गांधीवादी एकदम भयभीत हो उठा। मैंने थोड़ी-सी बातें कहीं और महीने भर से मैं इधर लौटा हूं। मुझे पता चला है कि महीने भर से सिवाय इसके कोई और बात नहीं है पत्रों में, चर्चाओं में, घर में, गांवों में। एक ही बात है। इतनी आतुरता से उसने उत्सुकता क्यों ली है? वह इतनी तीव्रता से मेरे ऊपर क्यों टूट पड़ा? उसका कारण स्पष्ट है। गांधी की आलोचना अन्ततः गांधीवादी की आलोचना बन जायेगी। और गांधी तो आलोचना के बाद और निखरकर निकल आयेंगे, जैसे सोना आग से निकल आता है। लेकिन गांधीवादी के प्राण निकल जाने वाले हैं। वह नहीं बच सकता है। उसके प्राण को खतरा है, गांधी को कोई खतरा नहीं है। गांधी को क्या खतरा हो सकता है? गांधी जैसे सच्चे आदमी को खतरे का कोई सवाल नहीं। आलोचना से खतरा सदा झूठे आदमियों को होता है और उन झूठे आदमियों की कतार गांधी के नाम पर खड़ी हो गयी है। हमेशा जहां सत्ता होती है, जहां पद होता है वहां बेईमान और चोरों की कतार इकट्ठी हो जाती है। यह हो ही जायेगी।

गांधी के साथ जो लोग थे आजादी की लड़ाई में, वह धीरे-धीरे बिखरकर अलग होते चले गये। नयी शक्लें पीछे से आनी शुरू हो गयीं। ये जो नये लोग आये थे उन नये लोगों को सत्ता से प्रेम था। वे सत्ता के लिए आये थे और देश में राजनीति के नाम पर सिवाय सत्ता की होड़ के और कुछ भी नहीं हो रहा है। उनमें से किसी को इस बात की चिन्ता नहीं कि देश कहां जा रहा है और कहां जायेगा। उनको एक ही बात की चिन्ता है कि उनकी सत्ता, उनका पद, उनका सम्मान, उनकी शक्ति किस तरह बनी रहे। वे इसी विचार में चिन्तित, लीन, और परेशान हैं। सारे देश का क्या हो रहा है, इससे कोई मतलब नहीं है। बड़ा सवाल अपने-अपने पद को बचा रखने का है। गांधी ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी कि जिस सेना को उन्होंने खड़ा किया था वह इस तरह की धोखेबाज साबित हो सकती है। लेकिन वह धोखेबाज साबित हो गयी। और उसमें एक भूल गांधी की भी थी और वह भूल समझ लेना जरूरी है, अन्यथा हम उस भूल को आगे भी दोहरा सकते हैं।

वह भूल यह थी कि गांधी ने कभी इस बात की चिन्ता न की कि ये जो लोग हमारे आसपास इकट्ठे हैं, इनके जीवन में कोई धार्मिक किरण उतरी है। इनके जीवन में कोई परमात्मा का स्पर्श है, इनके जीवन में सत्य की भी कोई गहरी आकांक्षा पैदा हो रही है, इनके जीवन में कोई ध्यान है, कोई समाधि है, इनके

जीवन में आत्मा से जुड़ने का कोई मार्ग, कोई द्वार खुल गया है । नहीं, इसकी उन्होंने चिन्ता नहीं की । वे केवल सत्य और अहिंसा की वैचारिक बातें करते रहे । उनके आसपास का आदमी सत्य और अहिंसा को विचारपूर्वक स्वीकार करता रहा, लेकिन जो विचारपूर्वक स्वीकार होता है, वह जरूरी रूप से आत्मा में प्रविष्ट नहीं हो जाता है । विचार बाहर ही रह जाते हैं, भीतर नहीं आते । भीतर तो निर्विचार जाता है । विचार भीतर नहीं जाता । विचार तो बाहर रह जाता है । गांधी समझाने की कोशिश करते रहे सत्य अच्छा है, अहिंसा अच्छी है, अपरिग्रह अच्छा है । वह सब समझाते रहे । जो उन्हें अच्छा दिखायी पड़ता था उन्होंने लोगों को समझाया और जिन्होंने समझा उन्होंने सुना । ठीक समझ में आया और उन्होंने थोड़ा-बहुत उस तरह का आचरण करने का प्रयास भी किया; लेकिन ध्यान रहे एक आचरण आत्मा से पैदा होता है, एक आचरण बाहर से थोपा जाता है । जो आचरण बाहर से थोपा जाता है वह आवरण जब तक हाथ में शक्ति न हो तब तक टिक सकता है । शक्ति के आते ही नष्ट हो जाता है । जो आचरण हम ऊपर से थोपते हैं, वह आरोपित जो होता है । वैसा व्यक्तित्व, अभिनय जो होता है, वह ऊपर से थोपा हुआ होता है । वह प्राणों तक गहरा तो नहीं होता, कपड़ों की तरह बाहर होता है । यह तभी तक हमारे साथ रह सकता है, जब तक इसको टूटने का प्रतिकूल अवसर न मिल जाये । और जैसे ही प्रतिकूल अवसर मिलेगा, यह कचरा बह जायेगा, ये कपड़े बह जायेंगे और भीतर का नंगा आदमी साफ हो जायेगा ।

नैतिक आदमी, जो धार्मिक नहीं है सिर्फ नैतिक है, उसके हाथ में सत्ता जाना हमेशा खतरनाक है । सत्ता में जाते ही नीति बह जायेगी और अनैतिक आदमी प्रकट हो जायेगा । लेकिन गांधी स्वयं भी नैतिक व्यक्ति ही थे । वे निरन्तर धार्मिक होने के प्रयास में रत थे । लेकिन वह हो नहीं पाया । उनका प्रयास अथक था । लेकिन धार्मिक होना मात्र प्रयास की बात नहीं है । वह तो दर्शन, अनुभूति और समाधि का परिणाम है । अंततः तो वह प्रज्ञा का विस्फोट है, आचरण का अभ्यास नहीं । लेकिन गांधी जिनसे प्रभावित थे—रस्किन, थोरो, टालस्टॉय या राजचन्द्र—वे सभी आचरणवादी थे । शायद जीवन के अन्तिम काल में गांधी के तान्त्रिक प्रयोगों से ऐसा लगता है कि जीवन भर की दमनवादी नैतिकता की व्यर्थता का बोध उन्हें भी हो गया था । लेकिन तब तक बहुत देर हो गयी थी और फिर अपनी ही नैतिकता के जाल से ऊपर उठना आसान नहीं है । फिर भी गांधी की नैतिकता में एक सच्चाई थी । वह उनकी स्वेच्छा से की गयी यात्रा थी । किन्तु उनके शिष्यों के सम्बन्ध में तो यह भी नहीं कहा जा सकता है । अनुयायी तो सदा अन्धे होते हैं । असल में जो अन्धा नहीं होना चाहता है, वह अनुयायी भी नहीं होता है । अनुयायियों ने तो सिर्फ अनुकरण ही किया था । उन्होंने तो बस उधार वस्त्र ही

पहन लिए थे । गांधी की आचरणवादिता का भी मैं समर्थक नहीं हूं ।

मैं तो सदा अंतस् की क्रान्ति से उत्पन्न सहज आचार का ही समर्थक हूं । असहज और अभ्यासजन्य का मैं विरोधी हूं । क्योंकि वह परमात्मा तक नहीं, बस एक पवित्र अहंकार तक ही ले जा सकता है । लेकिन फिर भी गांधी का आचरण स्वेच्छा से तो था ही । वह गलत था फिर भी किसी और के द्वारा थोपा हुआ नहीं था । पर उनके अनुयायियों की स्थिति तो और भी बुरी थी । और अंततः देश उनके ही हाथ में पड़ गया । उनकी अहिंसा दमन थी, उनका सत्य दमन था । और इसलिए सत्ता ने सब बहा दिया । अहिंसा सहज हो तो उसे पालन करने की कोई जरूरत ही न हो । पालन हमें उसे ही करना पड़ता है जिसके विपरीत हमारे भीतर मौजूद होता है । जिस आदमी को ब्रह्मचर्य पालन करना पड़ता है, उसके भीतर काम-वासना मौजूद होती है, अन्यथा पालन किस चीज का करेंगे ? जिस आदमी को सत्य का पालन करना पड़ता है, उसके भीतर झूठ की लहर उठती रहती है । संयमी आदमी जिसे हम कहते हैं, नैतिक आदमी, वह ऊपर कुछ होता है, भीतर ठीक उल्टा होता है । और अगर प्रतिकूल स्थिति आ जाये तो जो भीतर है वही सच्चा साबित होगा । जो बाहर है वह सच्चा साबित होने वाला नहीं है । बाहर बहुत कमजोर चीजें हैं, भीतर असली प्राण है । धार्मिक मनुष्य भीतर से रूपान्तरित होता है, नैतिक मनुष्य बाहर से । इसलिए नैतिक मनुष्य के हाथ में सत्ता पहुंच जाना हमेशा खतरनाक है ।

गांधी और गांधीवादी नैतिक हैं । और इस रहस्य को नहीं समझ पाने के कारण देश अनिवार्यरूपेण एक ऐसी त्रुटि में पड़ गया, जिससे छुटकारा होने में बहुत समय लग सकता है । इस देश को, इस देश के प्राणों को आगे विकसित करने के लिए नीति और धर्म का बुनियादी फासला हमें समझ लेना चाहिए, अन्यथा कल हम जिसे फिर शक्ति देंगे, फिर सत्ता देंगे, फिर हम नैतिक आदमियों को सत्ता दे सकते हैं । सत्ता में पहुंचने से हर तरहका नैतिक आदमी चाहे वह किसी पार्टी का हो, इसी तरह का सिद्ध होगा जिस तरह गांधी का आदमी सिद्ध हुआ । इसमें अन्तर नहीं पड़ेगा । चाहे वह समाजवादी हो, चाहे वह साम्यवादी हो । अगर उसका सारा आचरण ऊपर से थोपा हुआ है और उसके प्राणों से कोई सच्चाई नहीं उठी है, तो वह सत्ता में पहुंचकर एकदम रूपान्तरित हो जायेगा । महल के बाहर यह आदमी बहुत सेवक मालूम पड़ता था, महल के भीतर जाकर वह शासक हो जायेगा । महल के बाहर वह कहता था, मैं विनम्र हूं, आपके चरणों का दास हूं । महल के भीतर पहुंचकर वह आपको पहचान नहीं सकेगा कि आप कौन हैं और भीतर कैसे आ गये हैं । तो यह होगा ।

अगर भारत को सच में ही सत्य का, समता का, स्वतन्त्रता का एक समाज और एक देश निर्मित करना है तो हमें यह जान लेना जरूरी है कि भारत में

जिनके हाथ में सत्ता जानी हो उन लोगों के आमूल व्यक्तित्व के रूपान्तरण की दिशा में कुछ काम होना जरूरी है । गांधी वह काम कर सकते थे । शायद गांधी को ख्याल नहीं आ सका । उन्होंने केवल नैतिक शिक्षा दी । साथ में अगर उन्होंने योग की शिक्षा की भी चिन्ता की होती, समाधि और ध्यान की भी चिन्ता की होती, अगर उन्होंने सिर्फ रामधुन न करवायी होती, साथ में समाधि और ध्यान के भी गहरे प्रयोग चालीस वर्ष किये होते, तो इस भारत का भाग्य एक स्वर्ण-भाग्य बन सकता था । लेकिन वह नहीं हो सका और आज भी वह नहीं हो रहा है ।

मैं देख रहा हूं कि इस देश को ऐसे व्यक्तियों की जरूरत है, एक ऐसे बड़े आन्दोलन की जरूरत है, जो आन्दोलन ध्यान और समाधि के मार्ग से सत्ता के द्वार तक पहुंचता हो । तो हम इस देश को सुन्दर बना सकेंगे, नहीं तो नहीं बना सकेंगे । भारत की कल्पना बहुत पुरानी है । बहुत बार यूनान में भी प्लेटो ने यह कल्पना की थी कि कब ऐसा समय होगा कि दार्शनिक राज्य कर सकेंगे । गांधी के साथ आशा बंधी थी कि शायद दुनिया में पहली बार दार्शनिकों का राज्य भारत में आ जायेगा । लेकिन गांधी के पीछे आने वाले लोगों ने सारी आशा पर पानी फेर दिया । नहीं, दार्शनिक का राज्य नहीं बन सका । न बनने का कारण यह है कि हम दार्शनिक ही बनाने में समर्थ न हो पाये—ऐसे लोग जिनके पास अन्तर्दृष्टि हो । अब फिर सत्ता की होड़ चल रही है और सत्ता के बाजार में जितने लोग हैं, उनके पास, किसी के पास कोई अन्तर्दृष्टि नहीं है । उनके पास कोई प्रभु की तरफ जाने वाला मार्ग नहीं है । उनके पास प्रकाश की कोई भीतरी किरण नहीं है । बस वह सोच-विचार और सत्ता की होड़ में लगे हैं । और तब आप हैरान हो जायेंगे यह बात जानकर कि आप एक को बदलेंगे दूसरे से और आप बदल भी नहीं पायेंगे और दूसरा भी पहले जैसा सिद्ध होगा, तीसरा भी पहले जैसा सिद्ध होगा ।

मैं सुनता था, कोई मुझे कहता था कि अमेरिका में कुछ मनोवैज्ञानिकों ने एक अध्ययन किया । उन्होंने अध्ययन किया कि एक पति यदि अपने जीवन में आठ स्त्री को तलाक दे देता है या एक पत्नी अपने जीवन में आठ पतियों को तलाक देकर बदलती है तो हर बार उसे पहले से बेहतर पति या पत्नी मिलता है या नहीं । और अध्ययन से एक अजीब नतीजे पर पहुंचे । वह इस नतीजे पर पहुंचे कि जो पति पहली पत्नी को खोज कर लाता है, दो साल बाद उसे तलाक देता है, दूसरी स्त्री को खोज कर लाता है, महीने दो महीने में पाता है कि उसने फिर पहली जैसी स्त्री ही वापस खोज ली । पत्नी बदलती है पति को जिन्दगी में आठ बार, लेकिन हर बार यह अनुभव होता है कि हर आदमी पुराना जैसा ही पति सिद्ध होता है । थोड़े दिन तक नयी रौनक रहती है, फिर पुराना आदमी उसके

अच्छी थी, लेकिन जब कोई गरीब कहता है कि इससे तो गुलामी अच्छी थी तो भीतर से प्रकट हो जाता है । तो मनोवैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे ।

यह प्रश्न व्यक्तियों के बदलने का नहीं है । जब तक एक पत्नी अपने मन को नहीं बदल लेती तो जिस मन से उसने पहले पति को चुना था, उसी मन से वह दूसरे पति को चुनेगी और तब इस बात की सम्भावना है कि दूसरा पति भी उन्नीस-बीस पहले पति जैसा सिद्ध होगा । क्योंकि चुनाव करने वाला मन वहीं का वहीं है । वह आठ पति चुन ले तो हर बार वह करीब-करीब उन्नीस-बीस एक जैसे पति चुन लेगी । पति तो बदल जायेंगे, लेकिन चुनाव करने वाला मन, चुनाव करने वाला मस्तिष्क तो वही है । अगर भारत के समाज को नयी दृष्टि और नया मार्ग देना हो, तो हिन्दुस्तान में जो लोग सत्ताधिकारियों को चुनते हैं, उनके मन का बदल जाना जरूरी है, अन्यथा हम रोज पुराने जैसे लोग चुन लेंगे । फिर नये कपड़े होंगे, नयी शक्लें होंगी, नया झंडा होगा, नये नारे होंगे, लेकिन फिर वही आदमी चुन लेंगे जैसे हमने पहले चुने थे । और जैसे ही सत्ता में वे लोग जायेंगे, वे फिर पुराने आदमी साबित होंगे । उनमें कोई अन्तर नहीं पड़ने वाला है ।

गांधी का नैतिक आन्दोलन सफल नहीं हो सका । आजादी मिली, लेकिन आजादी जिस कामना से मांगी गयी थी, वह कामना असफल हो गयी । स्वतन्त्रता उपलब्ध हुई, लेकिन स्वतन्त्रता से जो हमने चाहा था, जो सपना देखा था, वह सपना पूरा नहीं हो पाया । हां, कुछ लोगों का सपना पूरा हुआ । बृहत्तर भारत का सपना पूरा नहीं हुआ । अंग्रेज पूंजीपति के हाथ से सत्ता भारतीय पूंजीपति के हाथ में चली गयी । भारतीय पूंजीपति का सपना जरूर पूरा हुआ । लेकिन भारतीय पूंजीपति भारत नहीं है । दूसरे पूंजीपति पछताते होंगे कि जब गांधी जिन्दा थे तो हमने भी सेवा क्यों नहीं कर ली । उनके एक शिष्य पूंजीपति के पास, भारत जब आजाद हुआ तो मैंने सुना, सम्पत्ति तीस करोड़ की थी । बीस साल आजादी के बाद उनके पास सम्पत्ति तीन सौ तीस करोड़ की है । बीस वर्षों में तीन सौ तीस करोड़ ? शास्त्रों में लिखा है सत्संग का फल होता है । इससे सिद्ध होता है कि सत्संग का फल होता है । मुझे पहले शक होता था कि सत्संग से फल होता है कि नहीं । अब शक नहीं होता । तीस करोड़ रुपये से तीन सौ तीस करोड़ बीस वर्षों में ! सम्भवतः दुनिया के इतिहास में किसी एक परिवार ने इतने थोड़े समय में इतना धन संग्रह नहीं किया है । प्रत्येक वर्ष पन्द्रह करोड़ रुपये ! प्रत्येक महीने सवा करोड़ रुपये ! प्रत्येक दिन चार और पांच लाख रुपये ! पूरे बीस वर्ष !

लेकिन बृहत्तर भारत गरीब-से-गरीब होता चला गया । एक तरफ सम्पत्ति इकट्ठी होती चली गयी है, दूसरी तरफ दीनता और हीनता बढ़ती चली गयी है । हिन्दुस्तान के गांव में गरीब से पूछो, वह कहता है कुछ फर्क नहीं पड़ा । इससे तो ब्रिटिश राज्य अच्छा था । कोई भी नहीं कहना चाहता यह कि गुलामी

उसकी पीड़ा हम समझ सकते हैं। गरीत भी स्वतन्त्र होना चाहता है । लेकिन स्वतन्त्रता उसके लिए कुछ भी नहीं लायी । उसने भी सपने बांधे थे, उसने भी कल्पनाएं की थीं, उसने भी गोली खायी थी, वह भी जेल गया था, लेकिन उसे पता नहीं था कि यह स्वतन्त्रता एक तरह के पूंजीपति के हाथ से दूसरी तरह के पूंजीपति के हाथ में हस्तान्तरित हो जायेगी ।

गांधी को भी यह कल्पना नहीं थी । गांधी भी सोचते थे कि पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन हो जायेगा । अच्छे आदमी हमेशा अच्छी बातें सोचते हैं, लेकिन सभी अच्छी बातें सही सिद्ध नहीं होतीं । गांधी भले आदमी थे । भले आदमी को कोई बुरा आदमी नहीं दिखायी पड़ता है, लेकिन ध्यान रहे बुरे आदमी को कोई भला आदमी नहीं दिखायी पड़ता है । बुरे आदमी को सब बुरे आदमी दिखाई पड़ते हैं, भले आदमी को सब भले आदमी दिखाई पड़ते हैं। लेकिन इन दोनों की दृष्टियां अधूरी हैं और त्रुटिपूर्ण हैं । दोनों सब्जेक्टिव दृष्टियां हैं, ऑब्जेक्टिव नहीं हैं, जो है उसको नहीं देखते । जो हम देख सकते हैं उसको देख सकते हैं । गांधी को ख्याल था कि हृदय-परिवर्तन हो जायेगा और गांधीवादी अभी भी कहे चले जाते हैं कि हृदय-परिवर्तन हो जायेगा । लेकिन जरा देखें तो, चालीस वर्ष की मेहनत के बाद गांधी एक पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाया । और अगर खुद गांधी एक पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाये तो गांधीवादी कितने हजार वर्षों में कर पायेंगे ? इसका सोच जरूरी है, इसका विचार जरूरी है । गांधी नहीं कर पाये, गांधी जैसा महिमावान व्यक्ति पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाया, बल्कि पूंजीपति ने उसकी आड़ से भी फायदा उठाने की कोशिश की है । तो यह गांधीवादी कैसे हृदय-परिवर्तन कर पायेंगे ? नहीं, यह हृदय-परिवर्तन की बात के पीछे शोषण के तन्त्र को चलाये रखने का आयोजन चल रह है । हृदय-परिवर्तन नहीं होगा । फिर हमें चोरों का हृदय-परिवर्तन करने के लिए कोई व्यवस्था नहीं करते । हम नहीं कहते कि पुलिस नहीं रखेंगे । चोर के लिए दण्ड नहीं देंगे । हम चोर का हृदय-परिवर्तन करेंगे । नहीं, चोर के हृदय-परिवर्तन की फिक्र हम नहीं करते । हम कहते हैं कि कोई चोरी करेगा तो दण्ड पायेगा, लेकिन शोषक के हृदय-परिवर्तन की फिक्र हम करते हैं । हम कहते हैं कि शोषक को दण्ड नहीं देना है, उसका हृदय-परिवर्तन करना है । और बड़े मजे की बात यह है कि चोर बहुत छोटा चोर है, शोषक बहुत बड़ा चोर है ।

मैंने सुना है कि चीन में एक अद्भुत विचारक हुआ और एक बार वह राज्य का कानून-मंत्री हो गया । कानून-मंत्री होते ही पहले दिन अदालत में बैठा तो एक चोर का मुकद्दमा आया । एक आदमी ने चोरी की थी । चोरी पकड़ी गयी, सामान पकड़ा गया । उस आदमी ने स्वीकार कर लिया कि मैंने चोरी की है । साहूकार भी खड़ा था और कहता था कि इसे दण्ड दें, इसने चोरी की है । उस

विचारक ने कहा दण्ड जरूर दूंगा और उसने फैसला लिखा, उसने कहा कि ६ महीने चोर को सजा और ६ महीने साहूकार को सजा । साहूकार ने कहा, तुम पागल हो गये हो ? दुनिया में कभी साहूकार को सजा हुई है ? जिनकी चोरी हुई है उनको सजा दोगे? यह कौन-सा कानून है, यह कहां का न्याय है । उस विचारक ने कहा, जब तक सिर्फ चोरों को सजा मिलती रहेगी, तब तक दुनिया में चोरी बन्द नहीं हो सकती, क्योंकि तुमने गांव की सारी सम्पत्ति एक कोने में इकट्ठी कर ली है । अब गांव में चोरी नहीं होगी तो क्या होगा । एक आदमी के पास गांव की सारी सम्पत्ति इकट्ठी हो जाये तो गांव के आदमी कितने दिन तक धर्मात्मा रह सकेंगे ! चोरी होगी । चोरी उनकी मजबूरी हो जायेगी । तो मैं तो ६ महीने की सजा चोर को दूंगा और ६ महीने की सजा तुम्हें भी । क्योंकि चोर पीछे पैदा हुआ है, शोषण पहले है । तब पीछे चोरी है । पूरा हिन्दुस्तान चोर होता चला जा रहा है और सारे नेता चिल्लाते हैं कि चोरी नहीं होनी चाहिए, बेईमानी नहीं होनी चाहिए, भ्रष्टाचार नहीं होना चाहिए । भ्रष्टाचार होगा, चोरी होगी, बेईमानी होगी, बढ़ेगी, क्योंकि सबसे बड़ी चोरी और बेईमानी शोषण की जारी है और देश गरीब होता चला जा रहा है । नहीं, गरीब देश चोरी से नहीं बच सकता, बेईमानी से नहीं बच सकता, भ्रष्टाचार से नहीं बच सकता, रिश्वत से नहीं बच सकता ।

जब सम्पत्ति एक तरफ इकट्ठी होती चली जाती है तो सम्पत्तिहीन कितने दिन नैतिक हो सकता है और कितने दिन तक धार्मिक हो सकता है ? प्राण बचाने को भी उसे अनैतिक होना पड़ता है । और नेता भी भली-भांति जानते हैं कि न चोरी रुकेगी, न बेईमानी रुकेगी । बीस वर्षों में वह रोज बढ़ती चली गयी है । बीस वर्ष में हमारे व्यक्तित्व का सारा महत्वपूर्ण हिस्सा नीचे गिरता चला गया है और हमारा नंगापन प्रकट होता चला गया । लेकिन हम कहे चले जाते हैं कि नीति की शिक्षा दो स्कूलों में और कालेजों में, धर्म की शिक्षा दो, गीता पढ़ाओ, राम राम जपाओ । लेकिन सब बेईमानी की बातें हैं । गीता पढ़ाने से, राम राम जपाने से कोई चोरी बन्द नहीं होगी, भ्रष्टाचार बन्द नहीं होगा, अनीति बन्द नहीं होगी । इस देश में अनीति उस दिन बन्द होगी, जिस दिन इस देश में शोषण का तन्त्र टूटेगा । उसके पहले अनीति बन्द नहीं हो सकती है ।

लेकिन शोषण के तन्त्र को तोड़ने की बात करें तो वह गांधी की दोहाई देते हैं । वे कहते हैं कि गांधी कहते थे हृदय-परिवर्तन करना होगा, वे कहते हैं कि हम गांधी के प्रतिकूल नहीं जा सकते । गांधी कहते हैं हृदय-परिवर्तन करना होगा । गांधी भले आदमी थे । वे सोचते थे कि हृदय-परिवर्तन हो जाना चाहिए । वे सोचते थे, जैसा उनका हृदय था वैसा सबका हृदय होगा । वैसा सबका हृदय नहीं है । हृदय-परिवर्तन नहीं होगा । हृदय-परिवर्तन करना पड़ेगा, होगा नहीं ।

और करना पड़ने का मतलब यह है कि देश के तन्त्र को, देश की व्यवस्था को एक निर्णय लेना होगा कि शोषण हमें समाप्त करना है और किसी भी मूल्य पर समाप्त करना है। जैसे हम चोरी समाप्त करते हैं, बेईमानी को तोड़ने की कोशिश करते हैं, हत्यारे की कोशिश करते हैं रोकने की, उसी तरह हमें शोषण को भी रोकना पड़ेगा। तभी यह बन्द होगा।

कल ही मैं किसी से बात कर रहा था तो उन्होंने कहा कि आपके भी बहुत से पूंजीपति मित्र हैं, उनमें से किसी को आपने बदला अब तक? मैंने उनसे कहा कि मैं तो मानता ही नहीं कि बदला जा सकता है। इसलिए बदलने का सवाल नहीं। फिर मैं यह भी नहीं मानता कि पूंजीपति को बदलना है। पूंजीपति को नहीं बदलना है, पूंजीवाद को बदलना है। पूंजीपति को बदलने से क्या होगा, कुछ भी नहीं हो सकता। बड़ा तन्त्र है पूंजीवाद का। पूंजीपति, कसूर भी नहीं है उसका। कोई मजदूर भी शिकार है इस तन्त्र का, पूंजीपति भी शिकार है इस तन्त्र का। वे दोनों ही इसके शिकार हैं इस बड़े तन्त्र को जो पूंजीवाद है। इस बड़े तन्त्र के, पूंजीवाद के तन्त्र से पूंजीपति भी उतना ही परेशान और पीड़ित है हिस्सा है, जितना कि मजदूर और दलित पीड़ित हिस्सा है। एक दलित और पीड़ित है। सम्पत्ति के न होने से एक पीड़ित और परेशान है सम्पत्ति के होने से और चारों तरफ निर्धन की कतार जुड़ी होने से। एक आदमी अगर एक गांव में स्वस्थ हो और सारा गांव बीमार हो तो सारा गांव बीमारी से परेशान रहेगा और वह आदमी जो अकेला स्वस्थ रह गया है, स्वास्थ्य से परेशान रहेगा कि अब बीमार न पड़ जाऊं, अब बीमार न पड़ जाऊं। चारों तरफ बीमारी ही बीमारी हैं और यह बीमारी सब मिलकर मुझे बीमार न कर दे। वह स्वास्थ्य का सुख नहीं ले पायेगा, जहां चारों तरफ टी० बी०, कैंसर और घाव भरे लोग घूम रहे हों।

एक गांव के सारे लोग सड़क पर सो रहे हों और एक आदमी महल बना ले तो महल में आराम से सो सकेगा? कैसे सो सकेगा? द्वार पर पहरेदार रखना पड़ेगा। पहरेदार के ऊपर पहरेदार रखना पड़ेगा, क्योंकि पहरेदार भी रात को घुस सकता है महल में और छुरा भोंक सकता है। कैसे सो सकेगा आराम से! और इतनी दीनता, दरिद्रता उसके आसपास फैल जाये तो उसके चित्त पर कोई परिणाम होगा कि नहीं? वह आदमी है या पत्थर? उसके चित्त को शांति कैसे हो सकेगी? मैं बड़े से बड़े धनपति को जानता हूं। वे भी मेरे पास आते हैं और कहते हैं मन को शांत करने का कोई उपाय बताइये—मन बड़ा अशांत रहता है। मन अशांत नहीं रहेगा तो क्या होगा? जहां हमारे चारों तरफ इतना दुख होगा, इतना दारिद्रय, इतनी दीनता होगी, हम कब तक अपने महल में यह विश्वास रख सकेंगे कि सब ठीक चल रहा है? यह कैसे हो सकेगा और वह नीचे जो

बढ़ती हुई दीनता और दरिद्रता है उसकी लहरें, उसकी आहें, उसके रुदन, उसके उपद्रव रोज-रोज महलों से टकरायेंगे। रोज महलों की दीवारें घबरायेंगी कि कब गिर जायें, कब गिर जायें। उनके बचाने में उसके प्राण लग जाते हैं। जिसको हम पूंजीपति कहते हैं वह भी पीड़ित है, वह भी विक्टिम है।

पूंजीवाद के दो विक्टिम हैं। एक वह जिनके पास पूंजी नहीं है और एक वे जिनके पास पूंजी है। जिस दिन पूंजीवाद जायेगा उस दिन गरीब गरीबी से मुक्त होगा और अमीर अमीरी से मुक्त होगा और ये दोनों रोग हैं। इसलिए पूंजीवाद के जाने का मतलब पूंजीपति का अहित नहीं है। पूंजीवाद के जाने पर ही वह जो पूंजीवाद से पीड़ित व्यक्तित्व है वह भी मुक्त होकर मनुष्य का व्यक्तित्व बन सकेगा। जब तक कोई पूंजीपति है, तब तक मनुष्य नहीं हो पाता। तब तक आदमी नहीं हो पाता। तब तक वह खिल नहीं पाता, तब तक वह सहज नहीं हो पाता, तब तक इतने ज्यादा गलत समाज में इतने गलत ढंग से उसे जीना पड़ता है कि वह इतने टेंशन में, इतने तनाव में, इतनी अशांति में जीता है कि वह कैसे सहज हो सकता है? वह सहज नहीं हो पाता।

मैं कलकत्ते में एक घर में ठहरा हुआ था। उस घर में पति और पत्नी के अतिरिक्त कोई भी नहीं था। बस वे दो ही प्राणी थे। बड़ा था महल। सब थी सुविधाएं। सब कुछ था उनके पास। रात बारह बजे जब मैं थक गया दिनभर के बाद और सोने जाने लगा तो उस घर के गृहपति ने कहा, क्या आप अब सो जायेंगे। मैंने कहा, अब बारह बज गये, क्या अब भी मैं जागता रहूं? उन्होंने कहा, ठीक है आप सो जाइये, लेकिन मैं सोचता था कि थोड़ी देर और बातें करते। मैंने कहा, प्रयोजन? 'मुझे रातभर नींद नहीं आती'। क्या हो गया तुम्हें, नींद क्यों नहीं आती। इतनी अच्छी गद्दियां तुम्हारे पास हैं। इन पर तो किसी को नींद न भी आ रही हो, जागते आदमी को बैठा दो तो नींद आ जाये। इतना अच्छा भोजन तुम्हारे पास है। इतना बड़ा बगीचा तुम्हारे पास है, इतनी ताजी और ठंडी हवाएं तुम्हारे पास हैं। तुम्हारी खिड़कियों से आकाश के तारे दिखायी पड़ते हैं, चांद झांकता है, तुम्हें नींद नहीं आती है? वे कहने लगे, 'नींद, नींद मुझे बहुत वर्षों से नहीं आती है। बस दिन-रात चिन्ता ही चिन्ता। आज इस फैक्ट्ररी में गड़बड़ है। कल उस फैक्टरी में गड़बड़ है। वहां कम्युनिस्ट उपद्रव कर रहे हैं, वहां सोशलिस्ट उपद्रव कर रहे हैं, वहां ऊपर सरकार गड़बड़ किये चली जाती है, यहां नीचे सब गड़बड़ ही है। गड़बड़ में कैसे नीद आये?'

इसको आप समझ रहे हैं, यह आदमी बहुत सुख में है। यह पूंजीपति बहुत सुख में है तो आप भूल में हैं, बिल्कुल भूल में हैं। सम्पत्ति सुख ला सकती थी, लेकिन पूंजीवाद के कारण सम्पत्ति सुख नहीं ला पाती है। सम्पत्ति उस दिन सुख बनेगी जिस दिन सम्पत्ति वितरित होगी, समान होगी। सम्पत्ति उस दिन सुख बन

जायेगी। अभी सम्पत्ति भी दुख है। हीनता तो दुख है ही, सम्पत्ति भी अभी दुख है । सम्पत्ति जिस दिन वितरित होगी और समाज में जब दीन-हीन, रुग्ण और अपाहिज का वर्ग विलीन होगा और जब मनुष्य मनुष्य की भांति एक समानता के तल पर खड़ा होगा, तब समाज से बेईमानी मिटेगी, चोरी मिटेगी, गुण्डागर्दी मिटेगी, नहीं तो नहीं मिट सकती है। यह सारी-की-सारी समाज-व्यवस्था जो हमें दिखायी पड़ती है, यह बाई प्रॉडक्ट है, शोषण की, एक्सप्लॉयटेशन की और ऊपर के नेता चिल्लाये चले जाते हैं कि समझाओ बच्चों को । बच्चे कैसे नीति समझेंगे ? नहीं समझ सकते, लेकिन वे दलील देते हैं कि गांधीजी कहते थे हृदय-परिवर्तन करना है, इसलिए कोई और जबरदस्ती नहीं करनी है । लेकिन तुम हैदराबाद में पुलिस-एक्शन ले सकते हो, तुम रजवाड़ों को मिटाने के लिए जोर-जबरदस्ती कर सकते हो। तब तुम्हें ख्याल नहीं आया कि राजाओं का हृदय परिवर्तन करना चाहिए, लेकिन शोषण के मामले में एकदम हृदय-परिवर्तन और अहिंसा की ऊंची-ऊंची बातें याद आने लगती हैं।

इसका मतलब है कुछ जरूर। तुम बोलते जरूर हो, पर वाणी तुम्हारी नहीं है, वाणी शोषक की है जो तुम्हारी पीठ के पीछे खड़ा है और बोल रहा है। यह वाणी तुम्हारी नहीं है गांधीवादियों ! यह तुम नहीं बोल रहे हो, तुम्हारी जबान बिकी हुई है, तुम्हारी बुद्धि बिकी हुई है। तुम्हारे पीछे जो खड़ा है वह बोल रहा है और कह रहा है कि अगर यह वाणी नहीं बदली तो अगले इलेक्शन में मुश्किल में पड़ जाओगे। यह धन-धंधा फिर हमसे नहीं मिलने वाला है। ये पैसे फिर हमसे नहीं मिलेंगे। तो वाणी सत्ता से जो बोल रही है वह सम्पदाशाली की वाणी है। सत्ता से बोलने वाले के पास अपनी अब कोई जबान नहीं है और वह अपनी इस झूठी जबान को गांधीवाद का नाम देकर सुन्दर, सत्य दिखलाना चाहता है। नहीं, चाहे गांधीजी ने कहा हो, चाहे किसी ने भी कहा हो कि हृदय-परिवर्तन से कुछ होगा, वह नहीं हो सकता है। गांधीजी के चालीस साल का अनुभव यह कहता है कि वह नहीं हो सकता है और अब तो गांधी जैसा व्यक्ति भी हमारे पास नहीं है। जो हृदय परिवर्तन के लिए जोर डाल सके। अब कौन डालेगा, कौन बदलेगा हृदय, कैसे बदलेगा ?

विनोबा ने इधर कोशिश की थी एक। गांधी के पीछे गांधी से मिलता-जुलता कोई आदमी था, तो वही है। उन्होंने कोशिश की थी। बहुत श्रम किया, लेकिन कोई परिणाम नहीं निकला। जमीन मिली, दान मिला। इस देश में दान तो हजारों वर्षों से मिलता है। दान कोई नयी बात नहीं है। दान भी मिला, जमीन भी मिली, गरीब को थोड़ी-बहुत राहत भी मिली होगी; लेकिन शोषण का तंत्र इस तरह थोड़े ही टूटता है ? जिस आदमी ने दान दिया एक तरफ जमीन का, वह घर जाकर फिर योजना बना रहा है कि जितनी जमीन हाथ से निकल गयी

है, जल्दी से कैसे वापस उतनी जमीन कर ली जाये। इससे शोषण-तंत्र थोड़े ही बदलेगा कि एक आदमी ने दान दिया, आठ-दस लाख का और घर जाकर उसने योजना बनायी कि अगले वर्ष दस लाख कैसे वापस कमा लूं ! उसका हृदय थोड़े ही बदल गया है। रुपया देने से थोड़े ही यह समाज बदलेगा । यह समाज तो बदलेगा इस तंत्र के बदलने से। इसकी सिस्टम, इसकी व्यवस्था बदलने से।

विनोबा ने, दस-पन्द्रह साल दौड़-धूपकर बेचारे ने पैदल भाग-भाग कर गांव-गांव अपना जीवन नष्ट किया। कोई परिणाम नहीं हुआ। हां, जमीन मिली, और वह सर्वोदयवादी कहते हैं कि वही परिणाम है, देखो, इतने लाख एकड़ जमीन मिल गयी। जमीन के मिलने से कुछ भी होने वाला नहीं है। इस पूंजीवाद के तंत्र को, शोषण के तंत्र को जमीन के बंट जाने से, कुछ थोड़ी-सी जमीन गरीब को मिल जाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। बल्कि पूंजीपति, पूंजीशाही और गांधीवादी इससे खुश हैं कि विनोबा ने थोड़ी-बहुत जमीन बांटी। थोड़ा-बहुत दान दिलवाया। उससे गरीबी को थोड़ी राहत मिली। राहत मिलने से हिन्दुस्तान में आने वाली समाजवादी क्रान्ति में रुकावट पड़ती है। जितनी राहत मिलती है, उतनी क्रांति में रुकावट पड़ती है। जितना गरीब को ऐसा लगता है कि बहुत अच्छा है, सब ठीक है, किसी तरह चल रहा है, थोड़ी जमीन भी मिल गयी है एक दो एकड़, अब कुछ हो जायेगा, उतना ही वह जो सर्वहारा है—वह जिसके पास कुछ भी नहीं है—वह क्रांति करने के लिए तत्पर नहीं हो पाता। विनोबा ने भला काम किया, लेकिन उन्हें पता नहीं कि वे हिन्दुस्तान की शोषण की व्यवस्था के हाथ में खेल गये। इसीलिए दिल्ली के सत्ताधीश, करोड़पति, उनके चरणों में जाकर बैठते हैं और नमस्कार करते हैं। वह नमस्कार विनोबा को नहीं, वह नमस्कार क्रांति में पड़ती हुई रुकावट को है।

बीस साल के भूदान-आंदोलन ने भारत की क्रांति में बाधा पहुंचायी है, समय को लम्बा किया है। शोषण का तंत्र नहीं टूटा, लेकिन शोषण का तंत्र सहने योग्य बन जाये, उसकी थोड़ी-सी कोशिश भर हो पायी है और कुछ भी नहीं हो सका। नहीं, इस तरह के कामों से कुछ भी नहीं हो सकता है । हिन्दुस्तान को अपनी पूरी समाज-व्यवस्था अनिवार्यरूपेण बदल लेना जरूरी है। और न हृदय-परिवर्तन के लिए प्रतीक्षा करने की जरूरत है, न किसी और बात की प्रतीक्षा करने की जरूरत है—सिवा सत्ताधिकारी के जिसके पास अपनी वाणी नहीं है। जब तक इस देश का लोकमत, जब तक इस देश की लोकात्मा, जब तक इस देश के पूरे प्राण इस बात को नहीं समझेंगे कि हम सब चाहे गरीब, चाहे अमीर, एक ही शोषण-तंत्र के परेशान और पीड़ित अंग हैं और शोषण के तंत्र को हटा देना है तभी कुछ हो सकेगा। सर्वोदय से समाजवाद नहीं आयेगा, लेकिन समाजवाद से सर्वोदय आ सकता है। समाजवाद के बाद ही सर्वोदय आ सकता है, क्योंकि

सर्वोदय का अर्थ है सबका उदय, सबका हित। सबका हित तभी हो सकता है जब सबका हित समान हो। अभी गरीब और अमीर का हित समान नहीं है। इसलिए सर्वोदय नहीं हो सकता है। उनके हित प्रतिकूल हैं, विरोधी हैं, शत्रु के हित हैं। उनके हित में समानता नहीं है, इसलिए अभी समान हित का उदय नहीं हो सकता। अभी सर्वमंगल नहीं हो सकता। सर्वोदय से समाजवाद नहीं आयेगा। सर्वोदय की जितनी बातें चलेंगी, समाजवाद के आने में उतनी देर होगी। उतना समय जाया होगा। लेकिन समाजवाद आये तो सर्वोदय निश्चित आ जायेगा। सर्वोदय समाजवाद की छाया है। जैसे ही शोषण का तंत्र टूटता है, तब सबका समान हित रह जाता है। तब वर्गीय हित नहीं रह जाते। तब श्रेणीगत हित नहीं रह जाते। तब क्लास इंट्रेस्ट नहीं रह जाता। तब हम सब समान हो जाते हैं और तब इस देश का उदय हो सकता है। इस देश का श्रम भी तभी जागेगा, उत्साह भी तभी जागेगा। प्राण श्रम करने के लिए, सृजन करने के लिए तभी आतुर होंगे जब प्रत्येक को ऐसा मालूम पड़ेगा कि देश हमारा है। अभी प्रत्येक को ऐसा नहीं मालूम पड़ता।

और यह जानकर आप हैरान होंगे कि जब तक प्रत्येक को यह अनुभव न हो जाये कि देश हमारा है, दीनतम को यह अनुभव न हो जाये कि देश मेरा है—यह उसे कब अनुभव होगा ? यह उसे तभी अनुभव होगा कि देश की जो सम्पदा है—वह मेरी है। देश की सम्पदा कुछ लोगों की और देश मेरा, यह बात बड़ी गड़बड़ है। यह नहीं हो सकता। सम्पदा कुछ लोगों की और देश मेरा ! देश का मतलब क्या है ? देश का मतलब है, देश की सम्पदा, देश का मतलब है देश का सब कुछ। भूमि, आकाश, और हवा, सम्पत्ति और मनुष्य की शक्ति और सब कुछ। मेरा है यह देश तभी कह सकता हूं बल से, जब इस देश की सारी सम्पत्ति में मैं भागीदार हूं, समान हूं, । लेकिन जब मैं समान भागीदार नहीं हूं तो यह देश मेरा कैसे है। यह दस-पांच लोगों का होगा देश। यह सत्ताधारियों का होगा देश। यह दीन का, दरिद्र का देश कैसे है ? और इसलिए इस देश में एक देश का भाव पैदा नहीं हो पा रहा है, एक समाज का भाव पैदा नहीं हो पा रहा है। इस देश में एक अटूट एकता पैदा नहीं हो पा रही है। यह पैदा नहीं होगी। यह इंटीग्रेशन की सारी बातचीत चलेगी और कुछ भी नहीं होगा। इंटिग्रेशन, एकता, इस देश में समाजवाद का परिणाम होगी। उसके पहले नहीं हो सकती।

ये बातें मैं कहता हूं तो वे कहते हैं कि मैं गांधीजी का दुश्मन हूं। गांधीजी का मैं दुश्मन हूं या दोस्त ? अगर गांधीजी की ही कहीं भी आत्मा होगी तो वह सोचती होगी कि जब आप ताली बजायें समाजवाद के लिए तो आकाश में अगर वे कहीं भी होंगे तो उन्होंने भी ताली बजायी होगी। आपकी ताली के साथ

उनकी ताली रही होगी। और अगर मेरी आवाज उन तक पहुंचती होगी तो उन्हें लगता होगा कि मैं कह रहा हूं कि यह देश तब होगा खुशहाल, जब प्रत्येक व्यक्ति इस देश की सम्पत्ति का समान मालिक होगा। तो गांधी खुश होंगे या दुखी होंगे ? तो मैं गांधी के पक्ष में बोल रहा हूं या विपक्ष में बोल रहा हूं, यह मैं आप पर छोड़ देता हूं। मैं गांधीवादी के विरोध में बोल रहा हूं। गांधी के विरोध में नहीं बोल रहा हूं।

एक बार कराची में एक बड़ी कांफ्रेंस में कांग्रेस के कुछ लोगों ने गांधी का विरोध किया। काले झंडे दिखाये और नारा लगाया कि 'गांधीवाद मुर्दाबाद'। गांधी मंच पर थे, माइक पर थे। उन्होंने उत्तर में कहा कि ध्यान रहे, गांधी मर जायेगा, लेकिन, गांधीवाद अमर रहेगा। मैं उनसे कहना चाहता हूं, गलत बात कह दी उन्होंने। लेकिन अब तो कोई उपाय नहीं उनसे शब्द बदलवाने का, लेकिन फिर भी निवेदन तो कर देना चाहिए। मेरा वश होता तो उनसे मैं कहता, लेकिन आज तो कह देना चाहिए। मैं कहना चाहता हूं, गांधी अमर रहेंगे, गांधीवाद नहीं। गांधी की प्रतिभा, गांधी का व्यक्तित्व, गांधी की करुणा, गांधी का प्रेम, गांधी की अहिंसा, गांधी का वह महिमामंडित स्वरूप अमर रहेगा, गांधीवाद नहीं। क्योंकि गांधीवाद के अमर रहने का मतलब गांधीवादी का अमर रहना है। गांधीवाद की जय नहीं, लेकिन गांधी की जय जरूर। मैं गांधी का शत्रु नहीं हूं, लेकिन गांधीवाद देश को गड्ढे में ले जाता है। अब गांधीवाद से मुक्त हो जाना अत्यन्त आवश्यक है। जितने शीघ्र हम मुक्त हो सकें और जितने शीघ्र हम वर्गविहीन और शोषणमुक्त समाज को जन्म दे सकें, उतना हितकर है, उतना उचित है। करोड़ों-करोड़ों वर्ष के भारत का स्वप्न पूरा हो सकेगा।

भारत के ऋषियों ने, भारत के सन्तों ने, सपना ही यह देखा है कि एक पृथ्वी ऐसी हो जहां सब बन्धु हों, लेकिन शोषण से भरी पृथ्वी बंधुओं की पृथ्वी कैसे हो सकती है ? एक सपना देखा है कि प्रत्येक आदमी की आत्मा समान है, बराबर है, लेकिन आत्मा समान और बराबर कब होगी ? जब तक शरीर को समान अवसर और सुविधा नहीं मिलती, तब तक आत्मा की समानता का कोई व्यावहारिक अर्थ नहीं है। आत्मा तभी प्रकट होती है जब शरीर हो। और आत्मा की समानता भी उसी दिन प्रकट होगी जिस दिन शरीर के जगत् में समानता की व्यवस्था हो, अन्यथा आत्मा की समानता भी कैसे प्रकट हो सकती है ? करोड़ों-करोड़ों वर्ष से जिसने जीवन को सोचा है, जाना है उसके प्राणों में एक ही प्रार्थना रही है सारे लोगों को समान शांति, समान आनन्द उपलब्ध हो। लेकिन वह कैसे उपलब्ध होगा ? अभी तो जीवन की समान जरूरतें भी उपलब्ध नहीं हैं, जीवन को विकसित करने का समान अवसर भी उपलब्ध नहीं है। कितने

गांधी झोंपड़ों में मर जाते होंगे और पैदा नहीं हो पाते होंगे। कितने बुद्ध और महावीर शूद्रों के घर में जन्मते होंगे और क ख ग भी नहीं सीख पाते होंगे। कितने ऋषि और मुनि पैदा नहीं हो सके, क्योंकि जहां वे पैदा हुए वहां ज्ञान की कोई खबर, कोई हवा नहीं पहुंच सकी। हजारों वर्ष से भारत में शूद्र हैं। शूद्र बुद्ध की हैसियत को उपलब्ध हुआ? एक शूद राम बना? एक शूद्र कृष्ण बना? एक शूद्र पतंजलि बना? नहीं बन सका। क्या शूद्र के घर आत्माएं पैदा नहीं होती, प्रतिभाएं पैदा नहीं होती?

अंग्रेजों की कृपा थी। एक डाक्टर अम्बेडकर पहली बार पैदा हुआ। एक कीमत का आदमी शूद्रों में। एक आदमी पूरे इतिहास में। यह भी पैदा नहीं होता। इसे मौका मिला इसलिए पैदा हुआ। कितनी आत्माओं को मौका नहीं मिला, जो पैदा हो सकती थीं। कितना अनन्त उपकार हुआ है जगत् का। कुछ थोड़े से लोग अवसर पाते हैं। उन थोड़े से लोगों के थोड़े से बच्चे आगे बढ़ पाते हैं। और सब तो सड़ता है, मर जाता है। उसके जीवन में न कोई ऊंचाई पैदा होती, न कोई शिखर छूता, न कोई संगीत बजता, न कोई प्रभु के मंदिर की घंटी सुनाई पड़ती है। यह कब तक चलेगा?

लोग समझते हैं कि समाजवाद धर्म का विरोधी है। गलत है यह बात। समाजवाद से ज्यादा धार्मिक और कोई आन्दोलन जगत् में नहीं है। लोग समझते हैं कि समाजवाद ईश्वर का विरोधी है। गलत है यह बात। जब जमीन पर पूरा समाजवाद होगा तभी हम पहली दफा ईश्वर की तरफ उठ सकेंगे, ईश्वर की तरफ आंख उठा सकेंगे। समाजवाद के बाद ही धार्मिक जीवन का ठीक-ठीक समुचित विकास होता है। लेकिन गांधीजी के सामने स्वतंत्रता का सवाल बड़ा था। समाजवाद का सवाल बड़ा नहीं था। स्वभावतः परिस्थिति नहीं थी। गांधीजी के सामने सवाल था कि देश परदेशी गुलामी से कैसे मुक्त हो। अगर वे जिन्दा रहते तो शायद वे आर्थिक गुलामी से, देशी गुलामी से भी मुक्त करने के लिए कोई प्रयास करते। लेकिन वे जिन्दा नहीं रहे। आजादी जरूरी थी उस वक्त। इसलिए उन्होंने जो भी चिन्तन और विचार विकसित किया, वह मूलतः स्वतन्त्रता को ध्यान में रखकर था। उनका चिन्तन समानता को ध्यान में रखकर समुचित रूप से विकसित नहीं हो सका। लेकिन उन पर ही हम रुक जायेंगे या आगे बढ़ेंगे?

स्वतन्त्रता आ गयी। जैसी भी समझिये क्लीव, इम्पोटेंट, अधूरी, जैसी भी आ गयी। अब इस स्वतन्त्रता के अवसर का उपयोग क्या हो सकता है? एक ही उपयोग हो सकता है कि समानता भी आये और ध्यान रहे जब तक समानता पूरी तरह न आये तब तक स्वतन्त्रता सिर्फ धोखा होती है, काम चलाऊ होती है, क्योंकि जिनके पास पेट में रोटी भी नहीं है, उनके लिए स्वतन्त्रता का क्या अर्थ

है, क्या उपयोग है, क्या प्रयोजन है? जिनके पास वस्त्र भी नहीं है उनके लिए स्वतन्त्रता शब्द सुनाई तो पड़ता है, लेकिन उसका कुछ अर्थ, प्रयोग नहीं होता कि स्वतन्त्रता यानी क्या है। जब तक आर्थिक समानता न हो तक तब राजनीतिक स्वतन्त्रता आत्मवंचना है। सेल्फ डिसेप्शन है। लेकिन गांधी के सामने वह सवाल नहीं था। हमारे सामने वह सवाल है और हमें गांधी के आगे सोचना होगा, आगे विचार को ले जाना होगा। देश ने एक आजादी की लड़ाई लड़ी थी। अब देश को फिर एक लड़ाई लड़नी है समानता की। नहीं किसी और से लड़नी है, लड़नी है अपने ही तंत्र से, अपने ही शोषण की व्यवस्था से। नहीं किसी व्यक्ति से, समाज की व्यवस्था से।

और यह व्यवस्था बदलें तो ही गांधी की आत्मा प्रसन्न हो सकती है। लेकिन गांधीवादियों ने गांधी को कहां-कहां बिठा रखा है, पता है? पुलिस थाने में, हेड कांस्टेबल के पीछे गांधी की तस्वीर लगी है। पुलिस थाने में बैठा है हेड कांस्टेबल, मां-बहन की गालियां दे रहा है और पीछे राष्ट्रपिता की तस्वीर लगी है। अदालत में जहां सब तरह की बेईमानी चल रही है, रिश्वतखोरी चल रही है वहां गांधी की तस्वीर लगी है। तुमने गांधी को कोई पंचमजार्ज समझ रखा है? तुम गांधी के साथ अच्छा सलूक कर रहे हो? तुमने गांधी को कहां बिठा दिया है? लेकिन तुम्हें गांधी से कोई मतलब नहीं। तुम्हें स्वयं से मतलब है। तुम गांधी की तस्वीर खड़ी करके अपने को छिपाने की कोशिश कर रहे हो। लेकिन कितनी देर तक इस देश की जनता को धोखा दिया जा सकेगा? तुम तो नहीं छिप सकोगे। खतरा यह है कि कहीं गांधी का सम्मान समाप्त न हो जाये। गांधीवादियों से गांधी को बचा लेना बहुत जरूरी है, अन्यथा गोडसे उनको नहीं मार पाया, गांधीवादी उनको मार डाल सकते हैं।

●

बम्बई, दिनांक २ दिसम्बर १९६८

३. अतीत के मरघट से मुक्ति

आज ही एक पत्र में मुझे स्वामी आनन्द का एक वक्तव्य पढ़ने को मिला। और बहुत आश्चर्य भी हुआ, बहुत हैरानी भी हुई। स्वामी आनन्द से किसी ने पूछा कि मैं जो कुछ गांधीजी के सम्बन्ध में कह रहा हूं उसके सम्बन्ध में आपके क्या ख्याल हैं ? स्वामी आनन्द ने तत्काल कहा, उस सम्बन्ध में मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता हूं। शिष्टाचार वश, चाहे उनके मुंह से ऐसा निकल गया हो, क्योंकि यह कहने के बाद वे रुके नहीं और जो कहना था वह कहा। ऊपर से ही कह दिया होगा कि कुछ नहीं कहना चाहता हूं, किन्तु भीतर आग उबल रही होगी वह पीछे से निकल आयी, तो रुकी नहीं। आश्चर्य लगा मुझे कि पहले कहते हैं कि कुछ भी नहीं कहना चाहता और फिर कहते भी हैं ! आदमी ऐसा ही झूठा और प्रवंचक है। शब्दों में कुछ है, भीतर कुछ है। कहता कुछ है, कहना कुछ और चाहता है। उन्होंने जो कहा वह और भी हैरानी का है।

स्वामी आनन्द मुझसे भलीभांति परिचित थे। लेकिन, ऐसी जानकारी भी उनकी होगी, यह मुझे पता नहीं था। उन्होंने कहा, नहीं कुछ कहना चाहता हूं और फिर कहा, कि अगर एक कौआ मस्जिद पर बैठकर अपने को मुल्ला समझने लगे, तो इसमें कुछ कहने की बात नहीं। स्वामी आनन्द से मैं परिचित हूं। लेकिन मुझे इसका परिचय नहीं था कि उनका कौवों से परिचय है। कौवे मस्जिद पर बैठकर क्या सोचते हैं ? स्वामी आनन्द किसी जन्म में, अगर कौवा

न रहे हों, तो उन्हें पता लगाना मुश्किल है। एकदम कठिन है। जरूर किसी जन्म में कौवा रहे होंगे, किसी मस्जिद के ऊपर बैठकर मुल्ला होने की सोची होगी। अन्यथा कौवे क्या सोचते हैं, कैसे पता लगा सकते हैं ? कौवा की बुद्धि मुल्ला होने से ऊपर जा भी नहीं सकती। कौवों को छोड़कर शायद ही कोई और मुल्ला होना चाहता हो। जो मुल्ले हैं वे कौवे की बुद्धि से ज्यादा नहीं होते। और फिर मुल्ला होने का स्वामी आनन्द को पता नहीं कि मुल्ला होना कब सम्भव होता है। जब कोई किसी पन्थ को मानता हो, सम्प्रदाय को मानता हो, वाद को मानता हो, किसी गुरु को मानता हो तो मुल्ला हो सकता है। न तो मैं किसी पंथ को मानता रहा, न किसी वाद को मानता रहा, न किसी गुरु को मानता रहा, न किसी सम्प्रदाय को मानता रहा। मेरा मुल्ला होना बिल्कुल मुश्किल है। लेकिन स्वामी आनन्द मुल्ला हैं और कहना चाहिए कठमुल्ला हैं।

गांधीवाद को एक धर्म बनाने की कोशिश की जा रही है। गांधीवाद को एक चर्च बनाने की कोशिश की जा रही है। गांधी स्वयं जिन्दगी भर यह चिल्ला-चिल्लाकर कहते रह गये कि मेरी मूर्तियां मत बना देना, मेरा मन्दिर न बना देना, लेकिन यह साजिश जारी है, उनकी मूर्तियां बनायी जा रही हैं। अभी मेरे एक मित्र ने गांधी-पुराण भी लिख डाला है। और उसमें इस बात की व्यवस्था की है कि जैसे और पुराण हैं, विष्णु-पुराण आदि, वैसा गांधी को अवतार बताने की कोशिश की है। बहुत शीघ्र गांधी के पास एक धर्म खड़ा करने की कोशिश चल रही है। स्मरण रहे, जब भी किसी व्यक्ति के पास धर्म खड़ा हो जाता है, तो व्यक्ति तो मर ही जाता है। मुल्लाओं और पण्डितों की बन आती है। जीसस के पास ईसाई-पादरी इकट्ठा हैं और जीसस की आवाज को दुनिया तक नहीं पहुंचने देते हैं। महावीर के पास महावीर के गंधर्व इकट्ठे हैं। और महावीर की आवाज, सच्ची आवाज, सत्य की आवाज दुनिया तक नहीं पहुंचने देते। जैसे ही किसी व्यक्ति के आसपास संगठन बनता है, सम्प्रदाय बनता है, सत्य की हत्या हो जाती है।

मैंने सुना है, एक बार किसी आदमी को सत्य मिल गया था, तो शैतान के शिष्यों, डिसाइपुल्स ऑफ डेविल ने भगाकर शैतान को, अपने गुरु को खबर दी कि पता है, तुम आराम से सो रहे हो। एक आदमी को सत्य मिल गया है। हमारी सल्तनत डगमगा रही है। कुछ करना चाहिए, शीघ्रता से। क्योंकि अगर आदमियों को सत्य मिल जायेगा तो शैतान का क्या होगा ? शैतान ने कहा कि क्या करोगे, अब सत्य मिल चुका। तुम पहले कहां थे, क्यों नहीं आकर पहले ही कहा, हम सत्य मिलने में बाधा डालते। अब तो एक ही रास्ता है। अब तुम जाओ शीघ्रता से, गांव-गांव और डण्डे और घण्टी लेकर पीटो, गांव-गांव में यह आवाज फैला दो कि एक आदमी को सत्य मिल गया है। जो भी चाहे चले। शैतान के

शिष्यों ने कहा, इससे क्या होगा ? शैतान ने कहा, पण्डित और मुल्ला सुन लेंगे यह और जहां भी उन्हें पता चल गया कि किसी आदमी को सत्य मिल गया है तो पण्डित और मुल्ले वहां जाकर अड्डा जमा लेंगे। और एजेन्ट बन जायेंगे। जनता और सत्य के बीच पण्डित से बड़ी दीवार और कोई भी नहीं खड़ी की जा सकती है। तुम जाओ और जल्दी गांव-गांव खबर कर दो।

मैंने और सुना है कि शैतान के शिष्य गये और उन्होंने गांव-गांव में खबर कर दी। हजारों लोग वहां चलने लगे। उस सत्य के खोजी के आसपास पण्डितों की दीवार खड़ी हो गयी। व्याख्याकारों की, टीकाकारों की। वे कहने लगे कि क्या चाहते हो, हम बताते हैं। वह आदमी, वह सत्य का खोजी, उस भीड़ में दब गया। मन्दिर बन गया वहां एक, उसकी लाश पर। हजारों लोग पूजा करते हैं उस आदमी की। उसकी किताबें हैं। लेकिन उस आदमी को, जिसको सत्य मिला था, उसकी कोई किरण किसी तक अभी तक नहीं पहुंच पायी है। दुनिया में सत्य की हत्या का एक ही उपाय है। सत्य की हत्या करनी हो तो शीघ्रता से सम्प्रदाय बना दें। सम्प्रदाय बना कि सत्य की हत्या हो जाती है। मैं तो मुल्ला नहीं हो सकता, मुश्किल है, क्योंकि मैं किसी सम्प्रदाय को नहीं मानता हूं। लेकिन स्वामी आनन्द मुल्ला हो सकते हैं। गांधी का एक सम्प्रदाय बनाये हुए हैं। अन्यथा मेरी बातों से इतनी पीड़ा और परेशानी की जरूरत न थी। वे मेरी बातों का उत्तर दें, मेरी बातों की चर्चा करें। मैं जो कहता हूं वह गलत हो सकता है। मुझे गलत बतायें, समझायें। लेकिन, सुनने से उसमें क्रोध की क्या जरूरत है ? क्रोध वहां आता है जहां वेस्टेड इंटरेस्ट हों। जहां न्यस्त कोई स्वार्थ हो तब क्रोध आता है, अन्यथा क्रोध की क्या जरूरत है ? अन्यथा यह चिल्लाने की क्या जरूरत है कि मेरी किताबों को आग लगा दो। यह कहने की क्या जरूरत है कि मुझे आने मत दो, सभा मत होने दो।

ये सभी बातें सुनकर, मुझे दादा धर्माधिकारी एक घटना सुनाते थे, वह याद आयी। वे कहते थे कि मैं पंजाब में था और पंजाब के सरदारों की सभा में बड़ा शोरगुल होता था। जहां दादा को बोलने के लिए बुलाया था। जो अध्यक्ष हैं उन्होंने डण्डा उठाकर टेबल पर पटका और कहा, चुप होते हो कि नहीं। डण्डे से सिर तोड़ दूंगा। चुप हो जाओ। वह सभा एकदम चुप हो गयी। फिर डण्डा बजाकर उन्होंने कहा कि अब सुनो। अब दादा धर्माधिकारी अहिंसा पर भाषण देंगे। तो, दादा कहते थे, मैंने अपनी खोपड़ी ठोंक ली और मैंने कहा, क्या खाक भाषण दूंगा, अहिंसा पर। डण्डा बताकर कहता है वह आदमी चुप हो जाओ, नहीं तो खोपड़ी तोड़ देंगे और फिर अहिंसा पर भाषण होता है। बड़ा सही अहिंसावादी रहना होगा। गांधी की आलोचना करके अहिंसावादियों की असलियत का मुझे भी पहली दफा पता चला है। कि उनकी असलियत क्या है !

हाथ में उनके भी डण्डे हैं और अगर अहिंसा की बात नहीं मानेंगे आप, तो डण्डे से आपको अहिंसा की बात समझायेंगे।

लेकिन, यह देश अब बहुत दिन इस तरह के धोखे में नहीं रखा जा सकता है। बहुत लम्बी कथा है, इसके धोखे की। बहुत लम्बी यात्रा है इसके दुर्भाग्य की। विचार के लिए आज तक इस देश में परिपूर्ण स्वतन्त्रता नहीं मिली। इसलिए हम जगत में पिछड़ गये हैं और पीछे पड़ गये हैं। हिन्दुस्तान ने कभी भी तीव्र विचार के लिए आमन्त्रण नहीं दिया। कभी भी विचारपूर्ण विद्रोह के लिए साहस नहीं दिखाया। नये विचार से भय दिखाया, घबराहट दिखायी। हमेशा उसको मानना चाहा कि जो हमारी पुरानी किताब में लिखा है, वही सही होना चाहिए। पुराने ने कुछ सही होने का ठेका ले लिया है ! पुराना ही सत्य होना चाहिए, जैसे कि सत्य को जानने के लिए आगे कोई पैदा नहीं होगा। वे सब लोग पीछे पैदा हो चुके हैं, जिन्होंने सत्य जाना है। अब आगे लोग व्यर्थ पैदा हो रहे हैं। उन्हें कोई अनुभव नहीं होगा, कोई सत्य नहीं होगा। यह हमारी प्रवृत्ति है—सब कुछ पीछे हो चुका, सत्य भी हो चुका, स्वर्णयुग भी हो चुका, सब तीर्थंकर, सब महावीर, सब पैगम्बर, सब पीछे हो चुके। अब आगे कुछ होने को नहीं है। इस विचार ने ही कि सब विचार किया जा चुका, अब आगे कुछ विचार करने को नहीं है—भारत के विचार की हत्या कर दी। नहीं, बहुत विचार करने को शेष है, बहुत नयी खोज होने को शेष है, बहुत से सत्यों का उद्घाटन होगा, जो अब तक नहीं हुआ। बहुत से पर्दे उठेंगे, बहुत से रहस्य उद्घाटित होंगे। जीवन समाप्त नहीं हो गया है। जीवन की यात्रा जारी है। लेकिन, अगर कोई कौम ऐसा समझ ले कि सब हो चुका, अब उस पर कोई विचार नहीं करना है, आगे कुछ नया विचार हो नहीं सकता, तो उस कौम की अगर प्रतिभा नष्ट हो जाये तो इसमें क्या आश्चर्य है !

भारत के पास अद्भुत प्रतिभा थी। आज भी प्रतिभा है, सोयी हुई है। लेकिन उसका नया अवतरण, नया विकास, नया उर्ध्वगमन उस प्रतिभा का नहीं हो पाता है, क्योंकि हमारी धारणा यह है कि अब नया कुछ होने को नहीं है। जब नया कुछ होने को नहीं है, तो नया ही हो सकेगा। क्योंकि हम जो विचार करते हैं, जो धारणा बनाते हैं वैसा ही हमारा जीवन हो जाता है। न तो महावीर पर रुक गये हैं हम, न कृष्ण पर और न गांधी पर रुकने की कोई जरूरत है। जिन्दगी रुकना जानती ही नहीं। लेकिन जहां-जहां गुरुडम खड़ी हो जाती है वहीं जीवन की धारा को बांध बनाकर रोकने की कोशिश की जाती है, कि बस यहीं, अब इससे आगे नहीं।

गांधी रुक जायेंगे, जीवन तो नहीं रुकेगा। मैं रुक जाऊंगा, जीवन तो नहीं रुकेगा। आप रुक जायेंगे, जीवन तो नहीं रुकेगा। यह मोह बिल्कुल पागल मोह

है मैं रुकूं, उसी के साथ जीवन भी रुक जाये। यह बिल्कुल पागल मोह है, यह बिल्कुल ही विक्षिप्त मोह है। मैं रुक जाऊंगा, ठीक है, लेकिन जीवन तो आगे जायेगा, जीवन नये किनारे छुएगा और नये मार्ग चुनेगा। जीवन नया अनुभव करेगा। मेरे अनुभव के साथ जीवन सदा के लिए रुक जाये, यह जरूरी है, यह उचित है, यह योग्य है? मैं कोई जीवन हूं पूरा? महापुरुष भी पैदा होते हैं और विलीन हो जाते हैं। जीवन तो सतत् चलता रहता है। लेकिन जिन समाजों के मन में यह धारणा बैठ जाती है कि हम रुक जायें अतीत पर, वे समाज भविष्य की तरफ गति करना बन्द कर देते हैं। उनका जीवन 'स्टेगनेंट', रुका हुआ अवरुद्ध हो जाता है—जैसे गंगा रुक जाये। रुका हुआ पानी गन्दा हो जाता है। यह भारत का समाज इतना गन्दा इसीलिए हो गया है। यह समाज रुका हुआ पानी है। रुके हुए समाज का फिर जीवन तो आगे नहीं बढ़ता। धूप पड़ती है, ताप पड़ता है, सड़ांद आती है, गंदगी बनती है, भाप बनकर पानी उड़ता है और कचरा पैदा होता है। और कुछ भी नहीं होता। कभी आपने तालाब को सागर तक पहुंचते देखा है? सरिताएं बहती हैं सागर तक। सरिताएं, जो कि भागती हैं अज्ञात की तरफ—खोज करती हैं अनजान की, अननोन की। डबरा, तालाब तो अपने में बन्द होकर बैठ जाता है और कहीं जाता ही नहीं। वह घेरे में घूमता रहता है। अपना वाद का घेरा है, उसी में घूमता रहता है। फिर, वह सागर तक भी नहीं पहुंच पाता है और जो जल सागर तक न पहुंच पाये वह जल कभी भी असीम अनुभव को उपलब्ध नहीं हो पायेगा।

जीवन भी अनन्त तक पहुंचने में है। व्यक्ति आयेंगे महान् से महान्। व्यक्ति आयेंगे और विलीन हो जायेंगे और जीवन की धारा आगे बढ़ती रहेगी। कोई महापुरुष अधिकारी नहीं है कि जीवन की धारा को अपने पास रोक ले। लेकिन, महापुरुष रोकना भी नहीं चाहते। महापुरुष तो चाहते हैं कि जीवन की धारा आगे बढ़े, लेकिन महापुरुषों के पास जो लघु मानव हैं, छोटे-छोटे आदमी इकट्ठे हो जाते हैं वे जीवन की धारा रोकने की कोशिश करते हैं। क्योंकि, उनकी कीमत तभी तक है जब तक जीवन उनके महापुरुषों के पास रुका रहे। और अगर, जीवन आगे बढ़ गया और महापुरुष भूल गये तो इन जनों का क्या होगा जो आसपास बैठकर दुकान खोले हुए थे? इनका क्या होगा? इनकी दुकान तभी चलेगी, जब तक जीवन इनके महापुरुषों की लाश के पास रुका रहे।

भारत ने यह भूल बहुत कर ली है। आगे यह भूल नहीं की जानी है। भारत का सारा मस्तिष्क अतीतोन्मुख है, पीछे की तरफ देखता है। आगे की तरफ देखता ही नहीं। रूस के बच्चे चांद पर बस्तियां बसाने का विचार करते हैं और भारत के बच्चे? भारत के बच्चे रामलीला देखते हैं। कब तक हम रामलीला देखते रहेंगे? कितनी बार रामलीला देखी जा चुकी है? राम बहुत प्यारे हैं, लेकिन कितनी

बार? क्या हम यही करते रहेंगे? क्या हमारी चेतना एक वर्तुल में घूमती रहेगी? क्या हम आगे नहीं बढ़ेंगे? कोई नयी लीलाएं नहीं होंगी? कोई नये राम पैदा नहीं होंगे? कोई नया कृष्ण नहीं होगा? बस? पीछे और पीछे? भगवान ने बड़ी भूल की है भारत के साथ! उसकी बड़ी कृपा होती, अगर वह भारतीयों की आंखें खोपड़ी में सामने की तरफ न लगाकर पीछे की तरफ लगाता। उससे उनको बड़ी सुविधा होती। उससे हम निरन्तर पीछे की तरफ देखने में समर्थ हो जाते। लेकिन, भगवान बड़ा नासमझ है। हम उसकी नासमझी को बर्दाश्त थोड़े ही करते हैं? हम अपनी खोपड़ी पीछे की तरफ मोड़कर, पीछे की तरफ देखने लग जाते हैं। अगर कभी भारत ने अपनी कार बनायी अभी तो पश्चिम की नकल की है हर बात में, तो हम कारों की लाइट पीछे की तरफ लगायेंगे, आगे कभी नहीं लगा सकते। क्योंकि आगे की कार तो पश्चिम की कार है। शुद्ध भारतीय कार में पीछे की तरफ लाइट होगी। चलना आगे है, वह तो ठीक है, लेकिन देखना तो पीछे है। जहां उड़ती धूल रह जाती है, उसे देखना है। जहां से रथ गुजर गये, उनकी उड़ती धूल रह जायेगी। राम का रथ निकल चुका, महावीर का रथ निकल चुका, गांधी का रथ निकल चुका। कब तक हम उस धूल को देखते रहेंगे? कब तक उस धूल को पूजते रहेंगे? आगे नहीं बढ़ना है?

और ध्यान रहे, जीवन जाता है सदा आगे की तरफ। जीवन कभी पीछे की तरफ नहीं लौटता है, नहीं लौट सकता है। कोई मार्ग नहीं है पीछे, पीछे सिर्फ स्मृति है। कोई मार्ग नहीं है पीछे। हम याद कर सकते हैं, पीछे जा नहीं सकते। समय में एक क्षण भी तो पीछे नहीं लौटा जा सकता। एक कदम भी तो हम पीछे नहीं जा सकते। जो समय का क्षण बीत गया, उसमें हम अब कभी भी नहीं जा सकते। वह सदा-सदा को बीत गया। उसमें लौटने का कोई उपाय ही नहीं है। वह सेतु गिर गया, वह मार्ग नष्ट हो गया। वहां हम कभी भी नहीं जा सकते। 'पास्ट में', अतीत में जाने का कोई द्वार ही नहीं है और जब अतीत में हम जा नहीं सकते तो हम एक ही काम कर सकते हैं। अतीत की स्मृति कर सकते हैं, याद कर सकते हैं।

लेकिन ध्यान रहे, जितनी हमारी ऊर्जा अतीत की स्मृति में और याद में नष्ट होती है, उतनी ऊर्जा भविष्य में जाने के लिए कम पड़ती जाती है। जितनी हमारी दृष्टि अतीत से बंध जाती है, उतना ही हम आगे की तरफ देखने में असमर्थ हो जाते हैं। और यह भी ध्यान रहे, चलना आगे है और देखना अगर पीछे रहा, तो गड्ढे में गिरे बिना कोई उपाय नहीं रहेगा। गड्ढे में गिरना पड़ेगा। भारत सैकड़ों बार गड्ढे में गिरता रहा है। हजार बार गड्ढे में गिरा है। दुर्घटना की हमारी लम्बी कथा में और क्या है? कितनी गुलामी—कितनी दीनता—कितनी दरिद्रता! लेकिन हमारी आदत पीछे देखने की कायम—बरकरार—है। पीछे

देखते हैं। आगे चलते हैं। गिरेंगे नहीं तो और क्या होगा ?

एक ज्योतिषी यूनान में एथेन्स के पास एक गांव से गुजरता था। सांझ थी। चांद उगा होगा। आकाश में वह चांद को देखता था, तारों को देखता था तो एक गड्ढे में गिर पड़ा। आकाश की तरफ देख रहा था। जमीन का गड्ढा नहीं दिखायी पड़ा था। एक बूढ़ी औरत ने उसे गड्ढे से निकाला। उसके दोनों पैर टूट गये थे। उसने बूढ़ी औरत को धन्यवाद दिया और कहा कि मां, बहुत बहुत धन्यवाद। मैं तेरी क्या सेवा कर सकता हूं। इतना मैं कहता हूं, शायद तुझे पता नहीं होगा, मैं यूनान का सबसे बड़ा ज्योतिषी हूं। अगर तुझे चांद-तारों के सम्बन्ध में कुछ जानना हो तो मेरे पास आ जाना। उस बूढ़ी औरत ने कहा, पागल मैं तेरे पास चांद-तारों के सम्बन्ध में पूछने आऊंगी ? जिसे अभी जमीन के गड्ढे नहीं दिखायी पड़ते हैं उसके चांद-तारों को देखने का कोई भरोसा है ? उसका कोई विश्वास किया जा सकता है ? पहले, बेटे ! जमीन के गड्ढे देखने सीखो, फिर आकाश के चांद-तारे देखना। ठीक ही कहा उस बूढ़ी औरत ने। अभी जमीन का गड्ढा दिखाई नहीं पड़ता हो तो चांद-तारों के ज्ञान का भरोसा क्या है ?

जिन्हें आगे हाथ-पैर दिखाई नहीं पड़ता वे हजारों मील पीछे की यात्रा की कथाएं दोहरा रहे हैं। इतिहास की धूल—बीत गये रथों के चक्कों के चिन्ह उन्हीं पर हम रुके हैं। दुर्भाग्य है, इसलिए भविष्य में रोज टकरा जाते हैं। इसलिए भविष्य को हम निर्मित नहीं कर पाते। भविष्य का क्षण आ जाता है और हम बिल्कुल अनजान, बेहोश खड़े रह जाते हैं। जब क्षण आकर पकड़ लेता है, तब हम चौंक कर खड़े हो जाते हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि क्या करें ? हमारे ख्याल में नहीं आता। जब तक हम सोच नहीं पाते तब तक समय बीत जाता है। समय किसी की प्रतीक्षा करता है ? समय रुका नहीं रहता है। जो उसकी पहले से तैयारी करते हैं, वे उस समय का उपयोग कर पाते हैं। जो उसके सामने बैठे रहते हैं, जब समय आ जाता है। हम उस तरह के लोग हैं कि घर में आग लग जाती है तब हम कुंआ खोदने बैठ जाते हैं। हम कहते हैं आग लगी है, अब कुंआ खोदना चाहिए। जब तक हम कुंआ खोद पाते हैं, तब तक घर कभी का जलकर राख हो जाता है। घर में आग लगी हो तो कुंआ तैयार होना चाहिए, तब आग बुझायी जा सकती है। लेकिन हमें फुर्सत कहां कि हम भविष्य के कुएं निर्मित करें ? हमें फुर्सत कहां, हमें ध्यान कहां ? हमारी कल्पना नहीं जाती, वहां तक। बस, पीछे और पीछे !

गांधी ने पुनः पीछे की दृष्टि हमें पकड़ा दी। गांधी कहने लगे, रामराज्य चाहिए। बड़ी अजीब बात है। राम बहुत प्यारे हैं, लेकिन रामराज्य ? रामराज्य बिल्कुल दूसरी बात है। गांधी को राम से बहुत प्रेम था, उचित ही है। राम

जैसे व्यक्ति को प्रेम किया जा सकता है। प्रेम भारी रहा होगा। उनके रग-रग में, रोम-रोम में भर गया था। गोली लगी गोडसे की, तो, न तो मां की याद आयी, न पिता की याद आयी, न गांधीवादियों की याद आयी। याद आयी राम की। राम ! प्राणों के प्राण में वह आवाज घुस गयी होगी, वह प्रेम घुस गया होगा। गोली प्राणों में पहुंची तो वहां राम के सिवाय कुछ भी नहीं पाया उसने। राम पर उनका बहुत प्रेम था और उसी प्रेम के वश वे रामराज्य की बातें करने लगे। लेकिन, राम से प्रेम ठीक है, रामराज्य से प्रेम खतरनाक बात है। रामराज्य पूंजीवाद से भी पिछड़ी हुई व्यवस्था है, सामन्तवाद है। रामराज्य भविष्य की समाज-योजना नहीं है। अतीत की, पिछड़े हुए, बीते हुए, जा चुके समाज की व्यवस्था है। रामराज्य नहीं लाना है हमें, लाना है भविष्य का राज्य। रामराज्य तो बीत गया। एक तो हम उसे लाना भी चाहें तो नहीं ला सकते। और हम ला भी सकते हों तो हमें कभी लाने का विचार भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि रामराज्य तो पिछड़ा हुआ, आज से भी बदतर समाज और समाज-व्यवस्था है। करोड़ों-करोड़ों गुलाम हैं। स्त्रियों की इज्जत कितनी गयी होगी, वह सीता की इज्जत से पता चल जाता है। एक साधारण से आदमी की आवाज पर सीता को उठाकर फेंका जा सकता है जंगल में। साधारण स्त्री की क्या हैसियत रही होगी ? स्त्री की यह हैसियत है !

राम बहुत प्यारे हैं और यह ध्यान रहे, कि यह भूल हम हमेशा करते हैं। हम क्या भूल करते हैं, वह भूल हमें समझ लेनी चाहिए ताकि हम आगे न कर सकें। दो हजार साल बाद न तो मुझे कोई याद रखेगा, न आपको कोई याद रखेगा। लेकिन गांधी याद रह जायेंगे। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे—कितना महान् व्यक्ति था गांधी, कि इतने महान् लोग गांधी के समाज के रहे होंगे। हम तो भूल जायेंगे। हमारी तो कोई रूपरेखा भी नहीं छूट जायेगी, हमारे तो कोई पद-चिन्ह कहीं भी दिखाई नहीं पड़ेंगे। हमारी तो कोई आकृति कहीं नहीं रह जायेगी। हम कैसे जीते थे। हम किन वासनाओं से भरे हुए थे, किन क्रोधों से, किन घृणाओं से, किन हत्याओं से भरा हमारा जीवन था। सब विलीन हो जायेगा। हवा में धुंआ हो जायेगा। गांधी की प्रतिमा रह जायेगी। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे, गांधी का समाज कितना अच्छा रहा होगा। गलत बात सोच लेंगे वे। गांधी हमारे प्रतिनिधि नहीं थे, अपवाद थे। हम गांधी जैसे नहीं हैं। हमारा गांधी से कुछ लेना-देना नहीं है। हम गांधी से बिल्कुल उलटे हैं। लेकिन, दो हजार साल बाद जिससे हम बिल्कुल उल्टे हैं उसी आदमी से हम जाने जायेंगे। हमारा युग गांधी-युग कहा जायेगा। हमें कहा जायेगा, गांधी-युग के लोग कैसे अद्‌भुत रहे होंगे। हमारा यह अनुमान झूठा है। राम बहुत प्यारे हैं, राम का समाज नहीं। बुद्ध बहुत प्यारे हैं बुद्ध का समाज नहीं। क्राइस्ट बहुत प्यारे रहे

होंगे, क्राइस्ट का समाज नहीं । एक-एक व्यक्तियों के आधार पर पूरे समाज का निर्णय लेने की भूल बहुत हो चुकी, आगे यह भूल नहीं होनी चाहिए । और फिर ध्यान रहे, हमें यह भी समझ लेना जरूरी है कि गांधी इतने बड़े महापुरुष दिखायी पड़ते हैं—इसलिए कि गांधी अकेले हैं । अगर दस-बीस हजार गांधी भारत में हों तो मोहनदास कर्मचन्द गांधी कौन हैं, जानना आसान न होगा । राम दिखायी पड़ते हैं हजारों साल के बाद, इसीलिए कि राम अकेले रहे होंगे । अगर हजार दो हजार राम जैसे सच्चे और अच्छे आदमी होते तो राम की याद रह जाती ?

एक स्कूल में शिक्षक काले बोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखता है, सफेद दीवार पर क्यों नहीं लिखता है ? सफेद दीवार पर लिखेगा तो कुछ दिखायी नहीं पड़ेगा। काले तख्ते पर लिखता है तो खड़िया सफेद उभरकर दिखायी पड़ती है । महापुरुष समाज के ब्लैक बोर्ड पर उभरकर दिखायी पड़ते हैं, अन्यथा दिखायी नहीं पड़ सकते । जिस दिन समाज महान् होगा उस दिन महान् पुरुषों को खोजना बहुत मुश्किल हो जायेगा । समाज क्षुद्र है, नीचा है, इसलिए महापुरुष दिखायी पड़ते हैं । महापुरुष, जो इतना बड़ा दिखायी पड़ता है, वह हमारी क्षुद्रता के अनुपात में दिखायी पड़ता है । जिस दिन महान् मनुष्यता पैदा होगी, उस दिन महापुरुषों का युग समाप्त समझ लेना चाहिए । मनुष्यता क्षुद्र है, दीन-हीन है इसलिए महापुरुष दिखायी पड़ते हैं । महापुरुष तो हमेशा पैदा होते रहेंगे, लेकिन महान् मनुष्य के बीच उनका कोई पता लगाना आसान नहीं रह जायेगा ।

तो, मैं कहता हूं कि राम दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि समाज राम से भी विपरीत रहा होगा । बुद्ध दिखायी पड़ते हैं क्योंकि बुद्ध से विपरीत समाज रहा होगा । बुद्ध की सफेद उज्ज्वल रेखा किसी काले समाज के ब्लैक बोर्ड के सिवाय दिखायी नहीं पड़ सकती । फिर यह भी ध्यान रख लेना जरूरी है कि अगर हम बुद्ध की, महावीर की, राम की, कृष्ण की, लाओत्से की, जरथुस्त्र की, कंफ्यूशियस की शिक्षाओं को देखें तो उन शिक्षाओं से बहुत-कुछ नतीजे लिए जा सकते हैं । एक बड़े मजे की बात है, जिस पर हम कभी ध्यान ही नहीं देते । महावीर सुबह से शाम तक लोगों को समझाते हैं—हिंसा मत करो, हिंसा मत करो । अहिंसा-अहिंसा । इससे क्या मतलब है ? इससे मतलब है कि लोग अहिंसक थे । यदि लोग अहिंसक थे तो महावीर पागल थे जो उनको समझा रहे थे कि हिंसा मत करो । बुद्ध सुबह से सांझ तक समझा रहे हैं कि चोरी मत करो, झूठ मत बोलो और बेईमानी मत करो, पर-स्त्री का गमन मत करो । किसको समझा रहे हैं ? लोग अगर अच्छे थे, समाज अगर शुद्ध था तो ये शिक्षाएं किसके लिए हैं । ये शिक्षाएं बताती हैं कि आदमी कैसे रहे होंगे। जिनको ये शिक्षाएं दी जा रही थीं वे आदमी कैसे रहे होंगे ? वे ही शिक्षाएं हमें आज देनी पड़ रही हैं । जो शिक्षाएं

तीन हजार वर्ष पहले लागू थीं, वे ही आज भी लागू हैं । इससे सिद्ध होता है कि समाज जैसा आज है, तीन हजार वर्ष पहले ऐसा ही था । समाज ऊंचा नहीं था । समाज में बुनियादी कोई फर्क नहीं पड़ गया । लेकिन हमारे ख्याल में नहीं आ पाता कि शिक्षाएं किन्हें देनी पड़ती हैं, किस लिए देनी पड़ती हैं ?

एक चर्च में एक फकीर बोलने गया । चर्च के लोगों ने कहा था उसे कि सत्य के सम्बन्ध में हमें समझाओ । उस फकीर ने कहा, सत्य के सम्बन्ध में ? लेकिन यह तो चर्च है, यहां सत्य के सम्बन्ध में समझाने की जरूरत क्या है ? यहां तो सत्यवादी लोग ही आये हुए हैं, क्योंकि मन्दिरों में, चर्चों में सत्यवादी ही आते हैं । लेकिन लोग नहीं माने । उन्होंने कहा, नहीं नहीं, आप तो सत्य के सम्बन्ध में हमें समझाइये । वह फकीर खड़ा हुआ । उसने मंच पर खड़े होकर पूछा कि इसके पहले कि मैं कुछ कहूं, मैं थोड़ी जांच-परख कर लेना चाहता हूं । मैं तुमसे यह पूछता हूं कि मित्रों ! तुम सब बाइबिल पढ़ते हो ? उन सबने हाथ हिलाया कि हां, हम बाइबिल पढ़ते हैं । उस फकीर ने पूछा कि तब मैं तुमसे यह पूछता हूं कि तुमने बाइबिल में ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय पढ़ा है ? उन सबने हाथ हिलाये सिर्फ एक आदमी को छोड़कर, जो सामने बैठा था । तो उन्होंने कहा, हां, हमने पढ़ा है। वह फकीर हंसने लगा । उसने कहा, अब मैं सत्य के सम्बन्ध में बोलूंगा, क्योंकि मैं तुम्हें बता दूं कि ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय जैसा कोई अध्याय बाइबिल में है ही नहीं और तुम सब कहते हो कि हां पढ़ा है । तब सब ठीक है । फिर सत्य के सम्बन्ध में बोलने में कुछ सार है, लेकिन उस फकीर ने कहा कि यह जो आदमी सामने बैठा है, यह बड़ा अद्भुत आदमी मालूम पड़ता है । आश्चर्य ! मेरे दोस्त ! तुम चर्च में आ कैसे गये ? क्योंकि चर्च में धार्मिक आदमी शायद हो जाते हों । तुम इस मन्दिर में आ कैसे गये ? मन्दिर का तो धार्मिक लोगों से सम्बन्ध ही नहीं रहा है कभी । तुम आये कैसे ? तुम चुप कैसे बैठे हो ? तुमने हाथ क्यों नहीं उठाया ? उस आदमी ने कहा, महाशय, जरा जोर से बोलिये, मुझे कम सुनायी पड़ता है । क्या आप कहते हैं उनहत्तरवां अध्याय ल्यूक का ? रोज पढ़ता हूं, पढ़ता नहीं, रोज पाठ करता हूं । मैं समझा नहीं, इसलिए चुपचाप रहा कि कोई झंझट में न पड़ जाऊं ।

समाज की शिक्षाएं समाज की खबर लाती हैं कि कैसे लोग होंगे । शिक्षाएं उन्हें देनी पड़ती है जो शिक्षाओं के प्रतिकूल होते हैं । जिस दिन दुनिया पर धर्म आ जायेगा उस दिन धर्म की शिक्षाओं को देने की आवश्यकता कम हो जायेगी । जिस गांव में मरीज कम होंगे वहां डॉक्टर बसने की कोशिश नहीं करेंगे । जिस गांव में स्वास्थ्य हो उस गांव में चिकित्सक की क्या जरूरत होगी ? हम बहुत गौरवान्वित होते हैं यह बात कहकर, कि दुनिया के तीर्थंकर, बुद्ध और अवतार हमारे यहां ही पैदा होते हैं । थोड़ा समझ-सोचकर इसमें गौरव अनुभव करना है ।

यह इस बात का सबूत है कि हमारा समाज एक अधार्मिक समाज है, जहां धार्मिक शिक्षक को बार-बार पैदा होने की जरूरत पड़ती है। यह सबूत गौरव का नहीं है। किसी घर में रोज-रोज डॉक्टर आता हो तो मुहल्ले में नहीं कह सकते हैं कि हम बड़े स्वस्थ लोग हैं। हमारे यहां डॉक्टर रोज आता है। धर्मगुरुओं की इतनी लम्बी कतारें इस बात की खबरें हैं कि यह समाज अधार्मिक समाज है और अगर हम पीछे लौटने की बात करते हैं तो हम मुल्क को आत्महत्या स्युइसाइड सिखा रहे हैं। मुल्क मर जायेगा पीछे लौटने की बातों में। क्योंकि, पहले तो लौट नहीं सकते, लौटने की कोशिश में और नासमझी के प्रयास में वह आगे नहीं जा सकेगा जहां वह जा सकता था।

नहीं, रामराज्य नहीं चाहिए, चाहिए भविष्य का समाज। लौटा हुआ, बीता हुआ, गया हुआ सामंतवादी समाज नहीं, चाहिए शोषण से मुक्त वर्गविहीन आगे का समाज, भविष्य का समाज। लौटना नहीं है पीछे,—जाना है आगे। लेकिन, हमारी सारी प्रवृत्ति, हमारा सारा चिन्तन, हमारी सारी बुद्धि, हमारे व्यक्तित्व का सारा निर्माण, हमारी कंडीशनिंग, हमारे सारे संस्कार पीछे ले जाने वाले हैं—आगे ले जाने वाले नहीं। इसीलिए भारत में कोई क्रांति नहीं हो पाती है। क्रांति का मतलब होता है आगे जाना। जो आगे जाना ही नहीं चाहता है वह क्रांति कैसे करेगा? इसलिए भारत के पांच हजार वर्षों में क्रांति का कोई भी उल्लेख नहीं है। इतने संत, इतने महात्मा, इतने विचारक! लेकिन विद्रोह? विद्रोह बिल्कुल भी नहीं। विद्रोह जरा भी नहीं। रेवोल्यूशन जैसी चीज ही नहीं। विद्रोह तो वे करते हैं जो आगे जाना चाहते हैं। जो आगे जाना चाहते हैं उन्हें अतीत को इन्कार करना पड़ता है। जो आगे जाना चाहते हैं, उन्हें पीछे जड़ों को काटना पड़ता है। जो आगे जाना चाहते हैं उन्हें पीछे का मोह छोड़ना पड़ता है। लेकिन हम, अगर हमारा वश चले तो हम अपनी मां के गर्भ में ही रह जायें, वहां से भी बाहर न निकलें। अगर कोई बच्चा सच्चा भारतीय हो तो उसे इन्कार कर देना चाहिए कि मैं मां के गर्भ के बाहर नहीं आता। मां के गर्भ में बड़ी शांति से जी रहा हूं, संतोष से। इतना सुख कहां मिलेगा? मिलता भी नहीं। कितना ही अच्छा मकान बनायेंगे, कितनी अच्छी कोच बनायेंगे, कितने ही अच्छे गद्दे और तकिये लगायें, मां के पेट में जो कमफर्ट', जो सुख, जो सुविधा, जो शांति है वह कहां मिलेगी?

मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि मां के पेट में बच्चा जो सुख जान लेता है उसी सुख के कारण वह उसी तरह की चीजें बनाता चलता है। ये इतने मकान, अच्छे गद्दे, तकिये, कारें, इस सबके भीतर खोज यह चल रही है कि मां के गर्भ में जैसी शांति और सुख मिलता था, वैसा मिल जाये, लेकिन बच्चे को मां के पेट के बाहर आना पड़ता है। बड़ी 'रेवोल्यूशन' हो जाती है, बड़ी ही क्रांति हो

जाती है, सारा जीवन अस्त व्यस्त हो जाता होगा, क्योंकि न वहां खाने की फिक्र थी, न नौकरी की, न 'इम्प्लॉयमेंट' की, न कोई और झंझट थी। वहां सारा जीवन चुपचाप चलता था और चौबीस घंटे तंद्रा में, निद्रा में सोने का आनंद था। वहां कोई दुख न था, सब सुख था। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मोक्ष का ख्याल गर्भ के अनुभव से ही पैदा हुआ था। वहां सब कुछ था, कुछ कमी न थी। वही मन में, कहीं स्मृति में मनुष्य की, गहरे में गूंजता रहता है कि कोई एक ऐसी जगह होनी चाहिए जहां सब सुख होगा, कोई दुख न होगा। कोई एक ऐसा स्थान होना चाहिए जहां सब शान्ति होगी, कोई अशान्ति नहीं होगी। कोई एक स्थान होना चाहिए जहां कुछ भी नहीं करना पड़ेगा और सब हो जायेगा। वही कहीं बीच में छिपी हुई स्मृति मां के गर्भ की है। लेकिन बच्चा अगर कह दे कि नहीं जाता यात्रा पर जीवन की, तो क्या होगा उसका अर्थ? मां को उसे छोड़ना पड़ता है, मां से अलग खड़ा होना पड़ता है। थोड़े दिन मां से चिपटा रहता है, फिर अपने पैर से चलने लगता है, फिर धीरे-धीरे मां और उसके बीच फासला बढ़ता चला जाता है। फिर कल एक और स्त्री उसके जीवन में आयेगी और शायद मां को भी भूल जायेगा। वह अपनी यात्रा पर जा चुका जहां वह मां से पूरी तरह स्वतन्त्र हो गया है। जीवन की यात्रा आगे की तरफ है—आगे की तरफ, रोज आगे की तरफ। पिछला छोड़ देना पड़ता है, चाहे कितना ही सुविधापूर्ण रहा हो। आगे की असुविधाएं झेलनी पड़ती हैं ताकि हम और नयी सुविधाओं के जीवन को उपलब्ध हो सकें। पहला कितना ही अच्छा घर रहा हो, उसे छोड़ देना पड़ता है ताकि अनजान और नये घर हम बना सकें।

जीवन की खोज निरन्तर अतीत से मुक्त होने की खोज है। और, भारत के लिए चिन्ता करने जैसी बात है। भारत अतीत से चिपटा हुआ है। उसका मन वहीं रखा रह गया है। उसने जोर से पकड़ लिया है अतीत को। वह मां के गर्भ को पकड़े है और कहता है कि नहीं, हम यहां से आगे नहीं जायेंगे। इस वजह से हम सिकुड़ गये हैं, इस वजह से हमारी ऊर्जा क्षीण हुई है, इस वजह से हमारी प्रतिभा नष्ट हुई है, इस वजह से हम बौने हो गये हैं, इस वजह से हम सिर उठाकर अज्ञात की यात्रा पर जाने को भयभीत हैं, डर लगता है अनजान में, घबराहट लगती है। अपने घर में रहो, यह प्रवृत्ति है। यह भारत को हिन्दुस्तान के भीतर कैद कर दिया। भारत नहीं जा सका विस्तार पर। लेकिन, अपने को समझाने की हम बहुत होशियारी की बातें सोचते हैं। हम कहते हैं, हम आक्रमण नहीं करना चाहते हैं, इसलिए हम अपने घर में बैठे रहते हैं। हम अहिंसक हैं इसलिए हम कहीं नहीं जाना चाहते। लेकिन अहिंसक से अहिंसक आदमी को जरा-सा उकसा दो और उसके भीतर से खूंखार आदमी खड़ा हो जाता है। अहिंसक आदमी को जरा-सा कुछ कह दो तो उसके भीतर से क्रोध उबलने लगता

है। यह कैसा अहिंसक आदमी है? कैसी है यह अहिंसा?

चीन का हमला हुआ, पाकिस्तान का हमला हुआ और अहिंसक आदमी को आप देख लेते कि अहिंसा कहां गयी। वह बाहर ही है सारी की सारी, भीतर कुछ भी नहीं है। हिन्दुस्तान में कवि कविताएं करने लगे कि सिंहों को छेड़ो मत, हम बब्बर शेर हैं। लेकिन घर के बाहर कविता सुना रहे हैं लोगों को, कहीं जा नहीं रहे हैं। सारा हिन्दुस्तान कविता कर रहा है जैसे कि कविताओं से कोई युद्ध जीते जाते हैं। दुनिया में ऐसा कविताओं का बुखार, जुनून कभी नहीं आया होगा जैसा हिन्दुस्तान में आया है। गांव-गांव में कवि पैदा हो गये हैं, जैसे बरसात में मेंढक पैदा हो जाते हैं और वे सब कहने लगे कि हम शेर हैं, सोते हुए शेर को मत छेड़ो। तुम्हारी कविता से तुम शेर सिद्ध हो जाओगे? तुम्हारी यह बहादुरी, तुम कविताओं से जो बता रहे हो और कवि-सम्मेलन के मंच पर हाथ पैर फेंकते हो, इससे कुछ हो जायेगा? नहीं, हिंसा तो भीतर बहुत है, लेकिन साहस भी नहीं है बाहर जाने का। तो वह हिंसा कहीं कविताओं में निकलती है, कहीं बात-चीत में निकलती है, क्षुद्रता में निकलती है। लेकिन, बाहर हम नहीं गये इस देश के। उसका कारण यह है कि हम पकड़ते हैं, रुकते हैं। गांव का आदमी गांव में रुक जाता है, शहर में नहीं जाना चाहता है। डरता है, कहां जाये? जो आदमी एक छोटी दुकान करता है, उसी पर रुक जाता है। किसी तरह इसी में गुजर कर लेंगे, कहां जायें, कौन झंझट ले, कौन अनजान, अपरिचित में उतरे?

सारी दुनिया विकसित हुई, वह इसलिए कि वह अनजान और अपरिचित में जाने को आतुर है। जब भी उन्हें मौका मिल जाये, अनजान में जाने को, वे जाने-माने को छोड़कर अनजान में चले जायेंगे। और हमें, मजबूरी में ही जाना पड़े तो बात दूसरी, जहां तक हमारी सामर्थ्य चलेगी हम जाने-माने को पकड़कर रुके रहेंगे। यह स्थिति शुभ नहीं है, यह मंगलदायी नहीं है। इसी के कारण हम पीछे—पीछे लौटकर पकड़ते हैं। अगर मैं कोई बात कहूं तो आप कहेंगे, यह आदमी अनजाना है, पता नहीं यह आदमी कौन है, क्या है? इसकी बात माननी ठीक है क्या? अपने कृष्ण की बात ठीक है, तीन हजार साल से सुनते हैं, वही ठीक होनी चाहिए। और इसलिए, अगर हिन्दुस्तान में किसी को नयी बात भी कहनी हो तो उसको एक झूठ का आडम्बर पहनाना पड़ता है। उसे कहना पड़ता है, जो मैं कह रहा हूं यही गीता में भी कहा हुआ है, तब कहीं वह बात स्वीकृत होगी, नहीं तो नहीं। अजीब बेईमानियां करवाना चाहते हैं। जब वह पहले यह सिद्ध करें कि यह गीता में कहा हुआ है तब कोई सुनने को राजी होगा। तब ठीक है, तब बोलो, तब पुराना परिचित ही बोल रहा है, फिर कोई डर नहीं है तुमसे।

इसीलिए हिन्दुस्तान में प्राचीन ग्रन्थों की हजारों टीकाएं हो गयी हैं। गीता की कोई एक टीका की भी जरूरत नहीं है। गीता इतनी साफ किताब है, इतनी स्पष्ट, कि गीता की किसी टीका की जरूरत नहीं है। टीकाकार, और धुआं पैदा कर देगा। गीता को समझाने के लिए टीकाकार की जरूरत है? कृष्ण ने इतनी स्पष्ट बात कही है, इतनी सीधी, कि अब टीकाकारों की क्या जरूरत है? लेकिन एक हजार टीकाएं हैं और एक हजार मतलब वाली। इससे क्या सिद्ध होता है? इससे दो ही बातें सिद्ध होती हैं—या तो कृष्ण का दिमाग खराब रहा होगा कि एक ही बात में हजार मतलब रहे होंगे, तो कोई मतलब ही न रहा, मतलब यह रहा। हजार मतलब जिस बात के हों उसमें कोई मतलब ही न रहा। और या फिर, ये हजार टीकाकार क्या कह रहे हैं? ये जो कहना चाहते हैं वे उसको जबरदस्ती बेचारे कृष्ण के ऊपर थोप रहे हैं, इसलिए हजार टीकाएं पैदा हो गयी हैं। नहीं तो हजार टीकाओं की क्या जरूरत है? जो इन्हें कहना है, सीधा नहीं कह सकते। क्योंकि यह मुल्क सुनेगा ही नहीं, यह नये को सुनने को राजी नहीं। उसको गीता में प्रवेश करके और उसको गीता की शक्ल में लाकर खड़ा करना पड़ेगा। जब वह बिल्कुल गीता की बात जंचने लगेगी तब कोई मानेगा। और इसमें गीता के साथ जो हत्या हो रही है, जो अत्याचार हो रहा है, वह चलेगा। गीता की जो शुद्धि है वह नष्ट होगी।

अभी मेरे खिलाफ इन लोगों ने इधर कुछ पत्र लिखे हैं। उन्होंने क्या लिखा? उन्होंने कहा कि गांधीजी विनम्र थे। वे कभी यह नहीं कहते थे कि यह मैं कह रहा हूं। वे कहते थे 'यह गीता में लिखा है, यह महावीर ने कहा है, यह टालस्टाय कहता है, यह रस्किन कहता है, यह श्रीमद्‌राजचन्द्र कहते हैं। मैं तो वही कह रहा हूं।' यह विनम्रता नहीं है, यह इस मुल्क के बुनियादी रोगों में से एक रोग है। जो मैं कह रहा हूं, वह मुझे कहना चाहिए कि मैं कह रहा हूं, चाहे वह गलत हो, चाहे वह सही हो। मैं जो कह रहा हूं उसे कृष्ण के ऊपर थोपना अत्याचार है। यह बिल्कुल क्राइम है कि मैं कहूं कि वह कृष्ण कह रहे हैं। मुझे क्या पता कि कृष्ण क्या कह रहे हैं? कृष्ण के अतिरिक्त और कोई दावा नहीं कर सकता है इस बात के कहने का कि कृष्ण क्या कह रहे हैं! कौन दावा करेगा? कृष्ण की चेतना जिसके पास न हो, वह कैसे जानेगा कि कृष्ण क्या कह रहे हैं? क्यों फिजूल कृष्ण के ऊपर सवारी करते हो? क्यों किसी के कंधे पर सवार होते हो? अपने दो छोटे पैरों से ही खड़े हो जाओ। लेकिन नहीं, यह अहंकार है! अपने पैरों से खड़े होना अहंकार है और कृष्ण के कंधों पर खड़े हो जाना अहंकार नहीं है। कृष्ण के कंधों पर खड़े होकर आसानी से आप ज्यादा ऊंचा दिखायी पड़ेंगे, अपने पैरों पर खड़े होकर उतने ही ऊंचे दिखायी पड़ेंगे जितने आप हैं।

अहंकार किससे ज्यादा सिद्ध होगा? परम्परा का सहारा अहंकार की पुष्टि

के लिए लाया जा सकता है। और या फिर, लोग इतने नासमझ हैं कि वे सुनने को भी राजी नहीं नये को। इसलिए पुरानी शराब की बोतल में नयी शराब भरकर पिलानी पड़ेगी। नहीं, मैं इन्कार करता हूं इस बात को क्योंकि यह पूरे मुल्क की प्रतिभा को नुकसान पहुंचाने की तरकीब है। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि हमें ईमानदारी से, स्पष्टता से यह कहना चाहिए कि यह मैं सोचता हूं। वह गलत हो सकता है, वह सही हो सकता है। यह मूल्यवान नहीं है, लेकिन मूल्यवान यह है कि हम अपने तईं सोचना शुरू करें। हम कब तक कृष्ण और महावीर और बुद्ध को सताते रहेंगे। अगर वे कहीं मोक्ष में होंगे तो बहुत परेशान हो गये होंगे। रोज उनकी टांग खींचो और उनको जमीन पर लाओ। उनकी हुज्जत हो गयी होगी, घबरा गये होंगे कि कहां के दुष्टों के मुल्क में पैदा हो गया कि सुबह सांझ परेशान किये रहते हैं। नहीं, परेशान हो गये होंगे और कितने हैरान होते होंगे कि क्या-क्या शक्ल बनायी जा रही है उनकी बातों की। जो उन्होंने कभी भी नहीं कहा होगा, वह हजार दो हजार साल में उनके नाम पर थोप दिया गया। जो उन्होंने सोचा भी नहीं होगा वह उनकी वाणी का हिस्सा बन गया। क्या-क्या हम थोप सकते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। हमारे मन में जो होगा, हमें उनके ऊपर थोपना पड़ेगा।

जैनों के चौबीस तीर्थंकर हैं। उनमें एक तीर्थंकर मल्लिनाथ हैं। दिगम्बर कहते हैं, वह पुरुष हैं मल्लिनाथ। श्वेताम्बर कहते हैं कि वह मल्लीबाई है, स्त्री हैं। बड़ा मजा है। यह भी संदिग्ध हो गया है कि कोई आदमी स्त्री था कि पुरुष। अजीब इतिहास लिख रहे हैं आप, कि यह भी पक्का नहीं है कि एक तीर्थंकर स्त्री था कि पुरुष। नहीं, यह तो पक्का रहा होगा, लेकिन दिगम्बरों की मान्यता यह है कि स्त्री मोक्ष जा ही नहीं सकती तो फिर तीर्थंकर स्त्री कैसे हो सकती है? स्त्री रही होगी तो उसने मल्लीबाई को मल्लिनाथ कर डाला, क्योंकि वह तो अपनी धारणा के हिसाब से उनको खड़ा होना पड़ेगा, तीर्थंकर को। महावीर की शादी हुई कि नहीं, महावीर को लड़की पैदा हुई कि नहीं, इसमें भी झगड़े हैं। श्वेताम्बर कहते हैं कि शादी हुई, लड़की हुई, दामाद था। दिगम्बर कहते हैं, यह कभी हुआ ही नहीं। तीर्थंकर जैसा आदमी और शादी करेगा, बाल ब्रह्मचारी। तो बाल ब्रह्मचारी की जिसकी धारणा है, थोप देंगे। मानने को राजी नहीं हैं कि उनकी स्त्री थी या उनके लड़की हुई है। यह सवाल ही नहीं, यह बात गलत है। अब एक ही महावीर को मानने वाले, दो वर्ग! अजीब बातें कर रहे हैं। यह क्या है?

हम अपनी ही धारणा थोपते हैं शास्त्रों पर, सिद्धांतों पर, महापुरुषों पर। हम पूजा कर रहे हैं यह या अत्याचार कर रहे हैं? यह क्रिमिनल ऐक्ट है, यह बिल्कुल अपराधपूर्ण है और मुल्क को सख्ती से मुमानियत होनी चाहिए कि कोई

आदमी कृष्ण की तरफ से बोलने का हकदार नहीं है, न महावीर की तरफ से अपनी बात कहे। अगर महावीर के लिए भी कहना है तो यह कहे कि यह मैं कहता हूं महावीर के सम्बन्ध में। महावीर कहते होंगे कि नहीं कहते होंगे, मुझे कुछ भी पता नहीं है। हम वही समझ सकते हैं, जो हमारी स्थिति है।

एक दिन, एक रात बुद्ध प्रवचन करते थे। प्रवचन के बाद रोज का उनका नियम था कि वह भिक्षुओं को सोने के पहले कहते कि अब जाओ रात्रि का अंतिक कार्य करो। वे दस हजार भिक्षु उनके साथ होते थे और रात्रि का अंतिम कार्य ध्यान था। सोने के पहले ध्यान करो, फिर सो जाओ। तो रोज-रोज कहने की यह जरूरत न थी कि ध्यान करो। तो वे इतना कहते कि जाओ, रात्रि का अंतिम कार्य करो। उस दिन कोई चोर भी आया था सांझ को, एक वेश्या भी आयी थी। चोर ने जैसे सुना कि जाओ और रात्रि का अंतिम कार्य करो और उसने कहा, बहुत रात्रि हो गयी, चांद कितना चढ़ गया है। जाऊं अपना धंधा करूं। वैसे रात भर गंवा दूंगा धर्म में, तो मुश्किल हो जायेगी। धर्म में थोड़ा बहुत वक्त गंवाया जा सकता है, फिर धंधा करने जाना ही पड़ता है, चाहे चोर हो, चाहे साहूकार हो। वेश्या ने सुना कि रात्रि हो गयी है, अंतिम कार्य करो वेश्या बोली, अरे, ग्राहक आ चुके होंगे, मैं जाऊं! बुद्ध ने एक ही बात कही। भिक्षु ध्यान करने चले गये, चोर चोरी करने चला गया, वेश्या अपनी दुकान पर चली गयी। बुद्ध ने जो कहा था वह एक था, लेकिन व्याख्याएं तीन हो गयीं।

जो कहा जाता है वह एक है, जितने लोग सुनते हैं व्याख्याएं उतनी हो जाती हैं। लेकिन, कृपा करके अपनी व्याख्या को किसी के ऊपर न थोपें, इतना ही कहे, ऐसा मैं समझता हूं। लेकिन, इस मुल्क में थोपा जा रहा है, निरंतर थोपा जा रहा है। इस मुल्क में कोई गीता की टीका न लिखे तो वह ज्ञानी ही नहीं है। कोई गीता की टीका लिखे तभी ज्ञानी हो सकता है। और अगर कभी भी कहीं कोई अदालत होगी, मोक्ष में, तो ये गीता के टीकाकार एक-एक बंधे हुए नजर आयेंगे, क्योंकि कृष्ण इन पर मुकद्दमा चलायेंगे कि सज्जन, तुम मेरे पीछे क्यों पड़े थे? मुझे जो कहना था वह मैंने कह दिया था, तुम कृपा करते। मैंने कह दी थी बात, पूरी तरह। मेरी बात साफ थी। तुम कैसे अर्थ समझाने गये बीच में, कि इसका यह अर्थ है!

यह जो प्राचीनवादिता, यह जो प्राचीन का मोह, यह जो अतीत को जकड़ कर पकड़ लेना, यह हम कब तोड़ेंगे? क्या हमको दिखायी नहीं पड़ता कि सारा जगत् आगे बढ़ता चला जा रहा है, भविष्योन्मुख है? हम अतीत के मोह में मर जायेंगे, मर ही गये हैं, करीब-करीब मर गये हैं। इकबाल ने गाया है कि 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी' अब इकबाल तो मर चुके अन्यथा उनसे मिलकर कहता कि महाशय, कुछ भी बात नहीं है। बात कुल इतनी है कि हस्ती

बहुत पहले मिट चुकी, तो हम मिटें भी तो मिटें क्या ? खाक ? मिटने के लिए हस्ती चाहिए न पहले ? आदमी जिन्दा हो तो मर सकता है और मर ही गया हो तो अब क्या मरेगा ? मरने के लिए भी जिन्दगी चाहिए। मरा हुआ आदमी फिर नहीं मरता। एक दफा मर गया, फिर तो मरता ही नहीं। यह कौम इस-लिए नहीं कि हमारी कोई बड़ी खूबी है जिससे हमारी हैसियत नहीं मिटती। हमारी खूबी यह है कि हैसियत हम खो चुके, अतीत के साथ। हमारी कोई मौजूदा हैसियत नहीं है, हमारी कोई वर्तमान प्रतिभा नहीं है, हमारी सारी प्रतिभा अतीत में खो चुकी है। आज क्या है हमारे पास ? अभी क्या है ? वर्तमान सम्पत्ति क्या है हमारे व्यक्तित्व की, वह हमारी खो चुकी इसलिए मिटने को कुछ बचा नहीं। लेकिन यह दुखद है और गांधी का चिंतन फिर पुरातन की तरफ ले जाने वाला है। देश को ले जाना है आगे, रोज-रोज आगे। रोज भूलते जाना है उस-को, जो बीत गया है।

एक गांव में एक पुराना चर्च था। वह कहानी कह कर और थोड़ी-सी बातें कह कर के मैं अपनी बात पूरी करूंगा। एक गांव में एक चर्च था। एक बहुत पुराना गांव और बहुत पुराना चर्च। वह चर्च इतना पुराना था कि हवाएं चलती थीं तो उसकी दीवारें हिलती थीं कि अब गिरीं, तब गिरीं। बादल गरजते थे तो लगता था कि गिर गया चर्च, बिजली चमकती थी तो लगता कि गिरेगी चर्च पर। ऐसे चर्च में कौन प्रार्थना करने जायेगा ? कोई प्रार्थना करने नहीं जाता था। प्रार्थना करने वाले जीवन को दांव पर लगाकर तो प्रार्थना करने जाते नहीं। सुविधा होती है तो जाते हैं। जिनको सुविधा होती है वे ज्यादा जाते हैं, जिनको कम सुविधा होती है वे कम जाते हैं। लेकिन, वहां तो जान का खतरा था, वहां कौन प्रार्थना करने जाता। चर्च खाली पड़ा था। चर्च के संरक्षकों की कमेटी मिली। उन्होंने कहा बड़ी मुश्किल है। वह कमेटी भी बाहर मिली, वह भी कोई भीतर नहीं मिली, क्योंकि नेता हमेशा अनुयायियों से ज्यादा होशियार होते हैं। जहां अनुयायी नहीं जाते वहां नेता जाते ही नहीं। आप इस ख्याल में मत रहना कि नेता अनुयायियों के आगे जाते हैं। यह सिर्फ भ्रम है अखबार में। नेता हमेशा अनुयायियों के पीछे जाते हैं और 'फॉलो' करते हैं 'फॉलोअर' को। जब देख लेते हैं कि अनुयायी यहां जा रहा है तब वे उचककर भागकर साथ हो जाते हैं। तो आपको आगे दिखायी पड़ते हैं, वे होते हैं हमेशा पीछे। पहले पता लगा लेते हैं कि अनुयायी क्या मानता है, क्या विश्वास करता है, वही कहते हैं जो आप मानते हैं। जो आप मानेंगे वही बात करते हैं और उसी तरह जीते हैं। तो, वह भी बेचारे नेता थे, वह काहे के लिए भीतर जाते जहां अनुयायी नहीं जाते थे। वे भी बाहर मिले, दूर कम्पाउंड से कि कहीं कोई दीवार गिर न जाये। उन्होंने वहां तय किया कि लोग बड़े खराब हो गये हैं, कोई मंदिर में आता ही

नहीं, लोग बिल्कुल नास्तिक हो गये हैं, लोग बिल्कुल अधार्मिक हो गये हैं और सबने सिर हिलाया कि बात सच है। हालांकि उनमें से भी कभी कोई भी नहीं आता था।

लेकिन, एक जवान आदमी पहुंच गया था। उसने कहा कि महाशयों, सिर्फ लोगों को दोष मत दो, चर्च इतना पुराना हो गया है कि उसमें जाना खतरनाक है। देखें, हम भी अपनी कमेटी की बैठक बाहर कर रहे हैं, चलें हम भीतर। वे लोग बोले कि यह तो सच है, चर्च बहुत पुराना हो गया है। क्या करना चाहिए ? तो कमेटी ने एक प्रस्ताव पास किया कि अब बहुत हो गयी प्रतीक्षा। तब फिर अब पुराने चर्च में कोई नहीं जायेगा। तो हम सर्व सम्मति से एक प्रस्ताव पास करते हैं कि पुराना चर्च गिरा दिया जाना चाहिए। उन्होंने दूसरा प्रस्ताव पास किया और पुराने को गिराकर हमें एक नया चर्च बनाना है। यह भी सर्व-सम्मति से पास हो गया और तीसरा प्रस्ताव पास किया विस्तार से और उसमें लिखा कि हम नया चर्च वैसा ही बनायेंगे जैसा पुराना था, ठीक पुराने जैसा। वैसा ही मकान, उसी नींव पर, नींव पुरानी रहेगी, चर्च नया रहेगा, वैसी ही दीवारें। उन दीवारों में पुरानी ईंटें ही लगायी जायेंगी, नयी ईंट नहीं। पुराने ही द्वार-दरवाजे निकाल कर लगाये जायेंगे, नये दरवाजे नहीं। ठीक पुराने चर्च जैसा ही, पुरानी जगह पर ही, पुरानी दीवारों के अनुकूल दीवारें, पुरानी नींव पर नयी दीवारें, ऐसा हम चर्च बनायेंगे। इसे भी सर्वसम्मति से स्वीकार किया और फिर चौथा प्रस्ताव स्वीकार किया कि जब तक नया चर्च न बन जाये, तब तक पुराना गिरायेंगे नहीं।

वह चर्च अभी तक खड़ा हुआ है। वह कब गिरेगा ? वह कभी नहीं गिरेगा। जो पुराने को गिराने की सामर्थ्य नहीं रखते वे नये का निर्माण करने की सामर्थ्य खो देते हैं। जो पुराने को ध्वंस करने की हिम्मत रखते हैं केवल वे ही नये का सृजन कर पाते हैं। जो पुराने की मौत देखते हैं वे ही केवल नये को जन्म दे सकते हैं। और हम पुराने की मृत्यु देखने में असमर्थ हो गये हैं। हम पुराने को नष्ट करने में असमर्थ हो गये हैं। हम पुराने को गिराने में असमर्थ हो गये हैं, इसलिए नये का कोई जन्म नहीं हो पा रहा है। लेकिन ध्यान रहे, जीवन नये के साथ है, पुराने के साथ मौत है। अगर मर ही जाना तो बिल्कुल, तो पुराने को कसकर पकड़ लेना चाहिए। घर में मां मर जाती है, पिता मर जाते हैं, बहुत प्यारे हैं, लेकिन फिर लाश घर में रखकर हम नहीं बैठ जाते हैं। कितना दुख, कितनी पीड़ा झेलता है आदमी। मां चल बसी उसकी, लेकिन फिर मरते ही लाश को घर में नहीं रखते। फिर यह नहीं कहते कि मां बहुत प्यारी थी। हम लाश को कैसे घर के बाहर ले जायें, हम कैसे मरघट ले जायें। हम तो इसी से चिपके हुए बैठे रहेंगे। नहीं, फिर लाश को ले जाना पड़ता है, दुख में, पीड़ा में। मरघट पर

आग लगानी पड़ती है, जलाना पड़ता है उस मां को जिससे इतना प्रेम किया था, जिससे जन्म पाया था, जो सब कुछ थी। वह मर गयी तो उने भी मरघट पर ले जाना पड़ता है, मजबूरी में जलाना पड़ता है। रोते हैं, लेकिन जलाकर वापस लौट आते हैं।

अगर किसी घर में लोग पागल हो जायें और जितने बूढ़े लोग मरते जायें उनकी लाश इकट्ठी कर लें तो उस घर की आप सोचते हैं, क्या हालत होगी ? उस घर में नये बच्चे पैदा होने के पहले इन्कार कर देंगे कि क्षमा करिये, इन लाशों के इस ढेर में हम जन्म नहीं लेना चाहते। और, नये बच्चे पैदा भी हो जायेंगे तो पैदा होते ही पागल हो जायेंगे, क्योंकि जिस घर में इतनी लाशें हैं वहां नये बच्चे पागल होने के सिवाय और कुछ नहीं हो सकते। लेकिन नहीं, लाशें हम जला आते हैं। लेकिन, इतिहास की लाशें हम संजोते चले जाते हैं, मस्तिष्क पर रखते चले जाते हैं। इतिहास भी कभी जला देने जैसा हो जाता है, इतिहास भी कभी भूल जाने जैसा हो जाता है, अतीत भी कभी मरघट पर पहुंचाने जैसा हो जाता है, ताकि शक्ति और ऊर्जा नये के जन्म की दिशा में अग्रसर हो सके।

नहीं, धर्म नहीं कहता है कि पीछे जाओ। धर्म तो कहता है आगे और आगे। और अन्त में अननोन, अज्ञात, परमात्मा है, वहां चलना है। निकलती है गंगा हिमालय से, गंगोत्री से भागती है। गंगोत्री पर रुक नहीं जाती। अनजान पहाड़ों में, घाटियों में, वादियों में भागती, दौड़ती है, पत्थरों से टकराती है। न मालूम कितने रास्ते हैं। रास्ते में न कोई पुलिस वाला उसे मिलता है, जिससे पूछ ले कि सागर कहां है, न कोई पुरोहित मिलता है कि पूछ ले कि सागर कहां है। कोई नहीं मिलता, कोई गाइड नहीं, कोई मार्गदर्शक नहीं, भागती चली जाती है। अपने भागने पर भरोसा है, अपने प्राणों पर भरोसा है। भागती है, अनजान भागती रहती है और एक दिन सागर के पास पहुंच जाती है। गंगोत्री में रुक जाती तो सागर नहीं हो सकती थी। गंगोत्री में नहीं रुकी, भागी, तो गंगोत्री में क्षीण-सी धारा थी, सागर के पास पहुंचकर विराट् धारा हो गयी और सागर में गिरते ही तो सागर हो गयी। जाना है अनन्त तक, जाना है आगे और आगे और भविष्य में वहां जहां अनन्त का सागर है। जो पीछे रुक गये हैं, उन्होंने अपने हाथ से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है।

मैं भविष्य को, उस आने वाले सूरज को जो उगेगा, उस भवन को जो हम बनायेंगे, उसके लिए कामना जगाना चाहता हूं, उसके लिए आकांक्षा और अभीप्सा जगाना चाहता हूं। लेकिन, हमारे सारे शिक्षक पुराने से बंधे हैं, हमारे सारे शिक्षक प्रतिगामी हैं, हमारे सारे शिक्षक रियेक्शनरी हैं, हमारे सारे शिक्षक कहते हैं, वह जो था, वही ठीक था। एक बार इस देश को निर्णय करना होगा कि जो था अगर वह ठीक था तो हम गलत क्यों हो गये हैं ? जो था, अगर वह ठीक

था तो हम उसी से तो पैदा हुए हैं, उसी को तो 'बाई-प्रोडेक्ट' हैं। जो था अगर वह ठीक था तो हम ऐसे क्यों हैं ? बेटा सबूत है अपने बाप का। अगर बाप ठीक था तो यह बेटा गड़बड़ कैसे ? फल सबूत है, अपने बीज का। अगर बीज मीठा था तो यह फल कड़वा कैसे ?

फल यह नहीं कह सकता कि बीज तो ठीक था, लेकिन हम गड़बड़ हो गये हैं। नहीं, बीज से ही फल पैदा होते हैं। बीज तो खो गये हैं, उनका तो अब कुछ पता नहीं। अब तो फल सबूत देंगे कि बीज कैसे थे। हम सबूत हैं, अपने पूरे अतीत के। हमारे अतिरिक्त और कोई सबूत नहीं है। हम कैसे हैं, यह सबूत है हमारे पूरे इतिहास का, क्योंकि उस पूरे इतिहास की यात्रा से हम जन्मे हैं, उस यात्रा से हम पैदा हुए हैं। अगर वह ठीक था तो हम गलत क्यों हैं ? अगर हम गलत हैं तो हमें जानना पड़ेगा, हालांकि इस बात को जानने में पीड़ा होती है, बड़ा दुख होता है कि हम अगर गलत हैं तो हमारे अतीत की प्रक्रिया गलत थी और हमें नयी प्रक्रिया और नयी जीवन दिशा को चुनना जरूरी हो गया है। ●

बम्बई, दिनांक ३ दिसम्बर १९६८

४. संचेतना के ठोस आयाम

मित्रों ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं।

कुछ मित्रों ने कहा है कि गांधीजी यन्त्र के विरोध में नहीं थे और मैंने कल सांझ कहा कि गांधीजी यन्त्र, केन्द्रीकरण, विकसित तकनीक के विरोध में थे।

गांधी की उन्नीस सौ पांच से लेकर उन्नीस सौ अड़तालीस तक की चिन्तना को हम देखेंगे तो इसमें बहुत फर्क होता हुआ मालूम पड़ता है। वे बहुत सजग निरीक्षक थे। वे रोज रोज, उन्हें जो गलत दिखायी पड़ता, उसे छोड़ देते हैं, जो ठीक दिखायी पड़ता उसे स्वीकार लिए हैं। धीरे-धीरे उनका यन्त्र-विरोध कम हुआ था, लेकिन समाप्त नहीं हो गया था। उन्नीस सौ पैंतालीस में पं० नेहरू को लिखे किसी पत्र में उन्होंने कहा है कि उन्नीस सौ पांच में लिखी गयी किताब 'हिंद स्वराज्य' से मैं अभी भी अक्षरशः सहमत हूं। उस किताब में उन्होंने यन्त्रों के सम्बन्ध में बहुत अवैज्ञानिक दृष्टि प्रकट की है। रेल, टेलीफोन, टेलीग्राफ सभी के प्रति शत्रुता प्रकट की है। इसलिए यन्त्रों का विरोध बाद में वे शायद प्रकट तो कम करते थे, लेकिन वे उनके भीतर भलीभांति मौजूद था और मिट ही नहीं गया था। फिर भी आशा की जा सकती है कि यदि वे बीस वर्ष भी जीवित रहते तो शायद उनका यन्त्र-विरोध और भी कम हो गया होता। लेकिन वे जीवित नहीं रहे और हमारा दुर्भाग्य सदा से यह है कि जहां हमारा महापुरुष मरता है वहीं उसका जीवन-चिंतन भी हम दफना देते हैं। महापुरुष तो समाप्त हो जाते

हैं। उनकी जीवन-चिन्तना आगे बढ़ती रहनी चाहिए। जहां महापुरुष समाप्त होते हैं वहीं उनका जीवन-दर्शन समाप्त नहीं हो जाना चाहिए। महापुरुष का शरीर समाप्त हो जाता है, उसका जीवन-चिंतन देश को आगे बढ़ाते रहना चाहिए। लेकिन हम इतने भयभीत हैं, हम इतने डरे हुए लोग हैं कि हम चिन्तन को आगे ले जाना नहीं चाहते, हम चिन्तन को वहीं ठोंककर रोक देना चाहते हैं, उसके ही विरोध में मैं कह रहा हूं।

यह प्रश्न गांधीजी का ही नहीं है। इस पूरे देश की चिन्तना यन्त्र-विरोधी रही है। यन्त्र-विरोधी हमारी चेतना नहीं होती तो हमने यन्त्र बहुत पहले विकसित कर लिए होते। हमारे पास बुद्धि की कमी नहीं थी। हिन्दुस्तान में इतने बुद्धिमान आदमी पैदा हुए हैं जितना कोई भी देश गौरव नहीं कर सकता है। बुद्ध और महावीर नागार्जुन और धर्मकीर्ति, वसुबंधु और दिग्नाग, शंकर और रामानुज, वल्लभ और निम्बार्क हमारे पास अद्‌भुत बुद्धिमान लोगों का लम्बा सिलसिला है। इतने बुद्धिमान लोग पैदा हुए, लेकिन एक आइंस्टीन और एक न्यूटन हमने पैदा नहीं किया। तीन हजार वर्ष के इतिहास में हमारे पास एक न्यूटन, एक आइंस्टीन कहने जैसा नहीं है। आइंस्टीन और न्यूटन से भी महत्त्वपूर्ण विचारक हमारे पास थे, लेकिन हमारे देश के विचार ने कभी भी वैज्ञानिक दिशा में कोई गति नहीं की। यह आकस्मिक नहीं है, यह एक्सिडेंटल नहीं है। इसके पीछे हमारे चिन्तन का हाथ है। हमारी मान्यता यही है कि मनुष्य को विस्तार से बचना चाहिए। हमारी धारणा यह रही कि जितनी चादर हो उस चादर के भीतर अपने पैर सिकोड़कर रखना चाहिए, चादर के बाहर पैर नहीं निकलने चाहिए। बुद्धिमान हम उसको कहते हैं जो चादर के भीतर रहता है। चादर के भीतर हम कितने सिकुड़ कर रहें, हम रोज बड़े होते जाते हैं और चादर रोज छोटी होती जाती है। जीना एक पीड़ा और कठिनाई हो जाती है लेकिन चादर के बाहर पैर नहीं फैलाने हैं।

जीवन का नियम है विस्तार, और हमने संकोच के नियम को आधार बनाया हुआ है। जो समाज विस्तार के सिद्धान्त को स्वीकार किये हुए हैं उन्होंने यन्त्र को विकसित किया है, क्योंकि यन्त्र मनुष्य का विस्तार है। हमारे पैर हैं, हम पैर से चलते हैं। पैर से हम कितने तेज चल सकते हैं? कार हमारे पैर का विस्तार है, हमने पैर का और विस्तार किया और कार तेज गति से दौड़ती है। हवाई जहाज हमारे पैर का और भी बड़ा विस्तार है, अन्तरिक्ष यान हमारे पैर का और भी बड़ा विस्तार है। यन्त्र का अर्थ क्या है? यन्त्र का अर्थ है कि जो मनुष्य को उपलब्ध नहीं हैं उपकरण, उनका विस्तार या जो उपकरण उपलब्ध हैं उनका विस्तार।

अगर हम सन्तोष को स्वीकार करते हैं, संकोच को कि जीवन जैसा है, जितना

है उतने ही चादर के भीतर उसे जी लेना है तो हम यांत्रिक, वैज्ञानिक, टेक्नोलॉजिकल माइंड पैदा नहीं कर सकते। वह सवाल बहुत बड़ा नहीं है कि गांधी यन्त्र के विरोध में हैं या पक्ष में हैं। चर्खा भी यन्त्र है। दलील तो दी जा सकती है कि तकली भी यन्त्र है। यन्त्र तो है ही। किसी दिन वे भी मशीन थीं, आज भी मशीन तो हैं ही। छोटी हैं, अविकसित हैं, दस हजार वर्ष पुरानी हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है। यन्त्र तो है। नहीं, सवाल यन्त्र के पक्ष और यन्त्र के विरोध का नहीं है, सवाल टेक्नोलॉजिकल माइंड और एंटी-टेक्नोलॉजिकल माइंड का है। सवाल है कि तकनीकी मस्तिष्क में हम विश्वास करते हैं या तकनीकी-विरोधी मस्तिष्क में विश्वास करते हैं।

चीन ने कोई तीन हजार वर्ष पहले मशीनें ईजाद कर ली थीं, लेकिन चीन में यन्त्र-विरोधी विचारणा का प्रभाव था। वह यन्त्र-विरोधी धारणा कहती थी कि यन्त्र की कोई जरूरत नहीं है। आदमी परिपूर्ण है। परमात्मा ने आदमी को पूरी तरह पैदा किया है। उसे किसी चीज की कोई जरूरत नहीं है। वह अपने सारे अंगों से ही सारा काम कर सकता है। इस दर्शन का इतना प्रभाव पड़ा कि तीन हजार वर्ष पहले जो मशीनें चीन ने विकसित की थीं, वे वहीं रह गयीं। उनकी आगे कोई गति न हो सकी। उन्हीं मशीनों को यूरोप ने पिछले तीन सौ वर्षों में विकसित किया और यूरोप ने धन के अम्बार लगा दिये। चीन ने अगर तीन हजार वर्ष पहले वे मशीनें विकसित की होतीं तो चीन शायद पृथ्वी पर आज सभ्यता में अग्रणी हो सकता था, लेकिन गलत दर्शन के परिणाम से यन्त्र वहीं ठहर गये और रुक गये।

हिन्दुस्तान बैलगाड़ी पर चल रहा है हजारों साल से। जो बैलगाड़ी के चाक का नियम है, वही हवाई जहाज का नियम है। उसमें कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ गया है, उसका ही विस्तार है। लेकिन हम बैलगाड़ी पर ही रुक गये। हमारा मस्तिष्क यन्त्र के विस्तार की कामना से भरा हुआ नहीं है और गांधी ने फिर हमें विकेन्द्रीकरण सिखाया है। और विकेन्द्रीकरण का क्या मतलब होता है? डिसेंट्रलाइजेशन का क्या मतलब होता है? विकेन्द्रीकरण का मतलब होता है कि छोटे यन्त्र, बड़े यन्त्र नहीं। क्योंकि जितने बड़े यन्त्र होंगे उतना केन्द्रीकरण होगा! जितना बड़ा केन्द्रीकरण होगा उतने बड़े यन्त्रों का हम प्रयोग कर सकते हैं। जितनी विकेन्द्रित व्यवस्था होगी उतने छोटे यन्त्र होंगे, एक-एक आदमी जिनको चला सके, दो चार आदमी मिलकर चला सकें, छोटे-छोटे गांव में चलाये जा सकें। विकेन्द्रीकरण का अर्थ होगा कि बहुत बड़े यन्त्रों का प्रयोग नहीं हो सकता है और आने वाली जो दुनिया है वह बहुत बड़े यन्त्रों पर निर्भर होगी।

फिर मेरा यह कहना है, यह सवाल अगर यन्त्रों का ही होता तो मैं गांधीजी

का विरोध भी नहीं करता। यह सवाल यन्त्रों का ही नहीं, मनुष्य की चेतना के विकास का भी है। शायद आपको पता न हो हम जितने बड़े उत्पादन के यन्त्रों का प्रयोग करते हैं, मनुष्य के मस्तिष्क की अभिव्यक्ति और भी विकास की सम्भावना उतनी ही बढ़ती है। यह एकदम से आश्चर्यजनक मालूम पड़ेगा। लेकिन आपने कभी ख्याल किया है कि एक आदमी बैलगाड़ी चलाता है जीवन भर। बैलगाड़ी चलाने के लिए कोई बहुत बुद्धिमत्ता के लिए चुनौती नहीं मिलती। चुनौती का कोई सवाल नहीं है, कोई चैलेंज नहीं है वहां, लेकिन उसी आदमी को कल हवाई जहाज चलाना पड़े तो हवाई जहाज मस्तिष्क को ज्यादा चुनौती देता है, ज्यादा समझ, ज्यादा अवेयरनेस, ज्यादा होश, ज्यादा कॉन्शसनेस रखनी पड़ती है, ज्यादा जटिल चीज को समझना पड़ेगा, ज्यादा जटिल चीजों का व्यवहार करना पड़ेगा। जितनी जटिल, उलझी हुई, जितनी सूक्ष्म, जितनी विस्तीर्ण हमें यन्त्र के साथ सामना करना पड़ता है, हमारे मस्तिष्क को उतनी चुनौती मिलती है और मस्तिष्क उसी अनुपात में विकसित होता है। जिन कौमों ने छोटे यन्त्रों या यन्त्रों के बिना काम चलाया, उनकी सामाजिक चेतना और मस्तिष्क के विकास में अवरोध पड़ा है।

पहली दफा जो बन्दर जमीन पर खड़ा हुआ होगा दो पैर से, बाकी बन्दर उस पर हंसे होंगे कि यह बिल्कुल नासमझ है, लेकिन डार्विन कहता है कि वह बन्दर जो दो पैर से खड़े हो गये—पहले तो बन्दर हंसे होंगे और उन्होंने समझा होगा कि यह पागल है। वह 'ऑकवर्ड' भी लगा होगा कि दो पैर से खड़ा हुआ! सब बन्दर चार पैर से चलने वाले थे, लेकिन जो बन्दर दो पैर से खड़ा हो गया उसने टेक्नोलॉजिकल रेवोल्यूशन को जन्म दे दिया। उसने तकनीक के विकास की पहली सीढ़ी रख दी। उसने यह कहा कि जो काम दो पैर से हो सकता है उसको चार हाथ-पैर से करना गलत है। तकनीक शुरू हो गया। उसने दो हाथ मुक्त कर लिए और दो से चलने का काम करने लगा। क्या आपको पता है, अगर उस बन्दर ने दो हाथ मुक्त नहीं किये होते तो मनुष्य की कोई सभ्यता का कभी जन्म नहीं होता। यह जो दो हाथ मुक्त हो गये, उन दो खाली हाथों ने मनुष्य की सारी सभ्यता विकसित की है। बन्दर वहीं रुक गये हैं चार हाथ-पैर से चलने वाले। दो हाथ-पैर से चलने वाले बन्दर ने जमीन-आसमान का फर्क पैदा कर लिया। आज कोई कहे कि बन्दर और हम एक ही जाति के हैं, तो हमारा मन मानने को राजी नहीं होता। हमारे और बन्दर के बीच इतना फासला पड़ गया, लेकिन यह फासला एक टेक्नोलॉजिकल फर्क से पड़ा कि कुछ बन्दरों ने दो हाथ मुक्त कर लिए। दो हाथ खाली हो गये स्वतन्त्र हो गये काम करने को। दो पैर से काम चलने लगा और उन दो स्वतन्त्र हाथों ने सारी सभ्यता, मकान, मन्दिर, ताज, मस्जिद, साहित्य, संगीत, धर्म, इन सबकी

फिक्र की ।

बहुत शीघ्र सम्भावना है कि मनुष्य समस्त यन्त्रों को स्वचालित निर्मित कर लेगा। अमरीका में तो उसका चिन्तन और विचार तीव्र हुआ जाता है। वे कहते हैं कि आने वाले पचास वर्षों में हमारे सामने सबसे बड़ा सवाल यह होगा कि हम यन्त्रों से सब पैदा कर लेंगे। मनुष्य के श्रम की कोई जरूरत न रह जायेगी। मनुष्य खाली हो जायेगा। वह खाली मनुष्य क्या करेगा, यह हमारे सामने सवाल है। अगर सारे यन्त्र स्वचालित हो गये और मनुष्य का श्रम उनसे मुक्त हो गया तो मेरी दृष्टि में मनुष्य की चेतना में आमूलभूत परिवर्तन हो जायेगा, क्योंकि पहली दफा चेतना पृथ्वी से पूरी तरह मुक्त हो जायेगी—श्रम से और उस श्रम से शून्य अवस्था में जो खोज, जो यात्रा चेतना की होगी, वह उन्हें किस लोक में ले जायेगी कहना कठिन है।

शायद आपको पता नहीं कि जगत् की सारी संस्कृति लीजर, विश्राम से पैदा हुई है। जगत् का सारा सत्य लीजर, विश्राम से पैदा हुआ है। जगत् में जो भी श्रेष्ठतम उपलब्धि हुई है वह उन लोगों से उपलब्ध हुई है जो श्रम से किसी भांति मुक्त हो गये। एथेंस में जितनी संस्कृति विकसित हुई, वह इसलिए विकसित हो सकी कि एथेंस में एक वर्ग, गुलामों के वर्ग ने सारा श्रम किया और दूसरे अभिजात वर्ग ने, बुर्जुआ ने कोई श्रम नहीं किया। वे भी श्रमहीन लोग थे। वे भी तो कुछ करेंगे जीने के लिए। उन्होंने फिलॉसफी लिखी। उन्होंने सॉक्रेटीज, अरस्तू और प्लेटो को जन्म दिया। भारत में भी ब्राह्मणों ने हिन्दुस्तान के सारे साहित्य को, सारे विचार को जन्म दिया, क्योंकि ब्राह्मण श्रम से मुक्त हो गया था, अन्यथा कोई उपाय न था। शूद्रों ने एक उपनिषद लिखी? शूद्रों ने एक वेद लिखा? शूद्रों ने आयुर्वेद खोजा? शूद्रों के ऊपर क्या उपलब्धि है भारत में? शूद्र के नाम पर कोई उपलब्धि नहीं है बेचारे के क्योंकि वह चौबीस घण्टे श्रम में लीन है। हिन्दुस्तान की सारी संस्कृति का जन्मदाता ब्राह्मण है और ब्राह्मण क्यों है जन्मदाता? ब्राह्मण इसलिए जन्मदाता है कि उसके हाथ से सारा श्रम समाप्त हो गया, उसका व्यक्तित्व पूरा का पूरा विश्राममय हो गया, चेतना को ऊपर उठाने का मौका मिल गया, चेतना आकाश की यात्रा करने लगी। मनुष्य जाति के जीवन में एक आध्यात्मिक क्रांति हो जायेगी उस दिन, जिस दिन हम सारी मनुष्य जाति को श्रम से मुक्त कर लेंगे। जब तक हम मनुष्य जाति को श्रम से मुक्त नहीं करते हैं, तब तक मनुष्य जाति के जीवन में बहुत बुनियादी रूपान्तर नहीं हो सकता है।

गांधीजी के जो विश्वास हैं, उनके हिसाब से मनुष्य जाति श्रम से कभी मुक्त नहीं होगी। अगर एक आदमी अपने लायक ही कपड़ा बनाना चाहे तो कम से कम उसे तीन चार घन्टे रोज चरखा चलाना पड़ेगा। वर्ष भर में अपने लायक

कपड़ा बनाना चाहे तो उसे तीन चार घण्टे चर्खा चला लेना पड़ेगा। अगर उसके ऊपर निर्भर कोई एक व्यक्ति है तो उसका आठ घण्टे चर्खा चलाने में व्यतीत हो जाना चाहिए। जो आदमी आठ घण्टे चर्खा चलायेगा—सिर्फ कपड़ा बनाने के लिए वह और भी कुछ करेगा या नहीं और इतनी क्षुद्र चीजों में उसकी चेतना को उलझा देना क्या मनुष्य के भावी विकास के हित में हो सकता है? यह प्रश्न सिर्फ चर्खा और तकली का नहीं है, यह प्रश्न मनुष्य जाति के जीवन में चेतना के जन्म, चेतना के विकास का प्रश्न है।

अभी अमरीका और रूस ने जो अंतरिक्ष यान भेजे, उन अंतरिक्ष यानों में जो यात्री गये, उनके अनुभव आपको पता हैं? उन्होंने लौटकर क्या खबरें दी हैं? उन्होंने खबरें दी हैं कि अंतरिक्ष में परिपूर्ण शून्य है, सन्नाटा है। वहां टोटल साइलेंस है, वहां कोई आवाज नहीं, क्योंकि वहां कोई हवा नहीं। अगर बोलियेगा भी तो होंठ हिलेंगे, आवाज नहीं होगी। वहां कभी कोई आवाज नहीं हुई। अंतरिक्ष परिपूर्ण शून्य है। उस शून्य में जाकर अंतरिक्ष यात्री को क्या अनुभव हुआ कि यह मस्तिष्क पूरा का पूरा फटने लगता है, घबराने लगता है। इतनी शांति कभी देखी नहीं, इतनी शांति कभी झेली नहीं। हमेशा शोरगुल, आवाज, रात सोते हैं तब भी बाहर आवाजें चल रहीं हैं, उनकी मस्तिष्क को आदत पड़ गयी है। मस्तिष्क उनसे कंडीशण्ड हो गया है। अंतरिक्ष में जाने पर उसको पता चला कि मस्तिष्क तो फट जायेगा। इतनी शांति को सहना मुश्किल है। तो रूस और अमरीका में उन्होंने कृत्रिम घर बनाये हैं जिनमें इतनी शांति पैदा करने की कोशिश की है जितनी अंतरिक्ष में है। वहां यात्री को पहले ट्रेनिंग दी जायेगी, लेकिन उस कमरे में बैठकर आध घंटे, पन्द्रह मिनट में घबरा कर यात्री बाहर आ जाता है कि वहां बहुत घबराहट होती है, लेकिन धीरे-धीरे उस शून्य को सहने की सामर्थ्य उसकी विकसित हो जायेगी। उसका अर्थ आप समझते हैं? उसका अर्थ यह है कि जो लोग अंतरिक्ष यान में यात्रा करेंगे उनके मस्तिष्क की बनावट में बुनियादी फर्क हो जायेगा उतनी शांति को सहने के कारण और यह हो सकता है कि एक बिलकुल दूसरे तरह के मनुष्य का जन्म हो जाये जिसकी हमें कोई कल्पना भी नहीं हो सकती।

जीवन और उत्पादन के साधन, वाहन-कम्युनिकेशन के साधन अंततः चेतना में परिवर्तन लाते हैं। आपने देखा, जो जंगल में आदिवासी रहता है, उस आदिवासी ने कोई सॉक्रेटीज पैदा किया? कोई बुद्ध पैदा किया? कोई महावीर पैदा किया? कोई गांधी पैदा किया? वह कैसे पैदा करेगा? उसके उत्पादन के साधन इतने आदिम हैं कि उन आदिम उत्पादनों के साथ मस्तिष्क इतनी ऊंचाइयां नहीं ले सकता है जितनी ऊंचाइयां विकसित साधन के साथ ली जा सकती हैं। आपको ख्याल है, आज भी हिन्दुस्तान में श्री राधाकृष्णन जैसे व्यक्तियों को हम

विचारक कहते हैं। श्री राधाकृष्णन टीकाकार हो सकते हैं, विचारक जरा भी नहीं। कोई एक मौलिक विचार को जन्म नहीं दिया है। पश्चिम में हाइडिगेर हैं। जास्पर्श है या सार्त्र है या कामू है या रसल है। इनकी कोटि का एक विचारक आप पैदा नहीं कर सकते हैं आज। आप जिसको विचारक कहते हैं, क्या वही विचारक है? गीता पर एक आदमी टीका लिख देता है तो विचारक हो जाता है, लेकिन गीता पैदा कर सके ऐसा एक विचारक आप पैदा नहीं कर सकते हैं। बस टीकाकार पैदा कर सकते हैं। उन्हीं को विचारक मानकर शोर-गुल मचाते रहते हैं। हाइडिगेर की हैसियत का एक विचारक हम पैदा नहीं कर सकते। उसका कारण? उसका कारण यह नहीं कि हमारे पास बुद्धि कम है, उसका कारण यह नहीं कि हमारे पास प्रतिभा नहीं है, उसका कारण है कि हमारा पूरा सामाजिक परिवेश उतनी प्रतिभा को चैलेंज देने वाला नहीं जहां से हाइडिगेर या जास्पर्श जैसे लोग पैदा हो सकें। लेकिन हम बैठे हुए हैं और हमारा विचार चर्खा और तकली की प्रशंसा करता रहेगा और हम विचार करने को राजी नहीं हैं।

इस बात के लिए समझ लेना आप ठीक से कि अगर पचास वर्ष में पश्चिम में सब कुछ स्वचालित यंत्र हो गए, अंतरिक्ष की यात्रा शुरू हुई तो इस बात का डर है कि पश्चिम में एक नये मनुष्य का, एक नयी ह्यूमैनिटी का जन्म हो जाए और पूरब के लोगों में और पश्चिम के लोगों में इतना फासला पड़ जाए हजार दो हजार वर्षों में, जितना बन्दर और आदमी के बीच फासला पैदा हो गया है। लेकिन हमें कोई बोध नहीं है इस बात का। हम कहेंगे, हम तो स्वावलम्बन की बातें कर रहे हैं। हम हमेशा से इसी तरह की बात कर रहे हैं—हमेशा नुकसान उठाते रहे हैं, लेकिन हम जानने को भी राजी नहीं होना चाहते।

हिन्दुस्तान एक हजार साल से गुलाम था और हजारों साल से निरन्तर हारता रहा है, जीत का उसने कभी कोई सपना नहीं देखा, जीत का कभी मौका नहीं पाया। हम क्यों हारते रहे? कभी आपने सोचा? हम हारते इसलिए रहे हैं कि जब भी दुश्मन हमारे ऊपर आया, उसके पास युद्ध की विकसित टेक्नोलॉजी थी। हमारे पास विकसित टेक्नोलॉजी न थी। सिकन्दर हिन्दुस्तान आया वह घोड़े पर सवार होकर आया। पोरस उससे लड़ने गया। पोरस सिकन्दर से कमजोर आदमी नहीं था और उसके पास बहादुर सैनिक थे, लेकिन पोरस के पास टेक्नोलॉजी जो थी अविकसित थी। वह हाथियों पर लड़ने गया था। हाथी कोई युद्ध का अस्त्र नहीं है। हाथी बरात निकालनी हो तो बहुत ठीक है, लेकिन युद्ध के मैदान पर हाथी पिछड़ा हुआ साधन है घोड़े के मुकाबले। घोड़ा तेज है, हाथी से ज्ञानवान है, ज्यादा चंचल है। हाथी जगह घेरता है, घोड़ा तेजी से

गति करता है। सिकन्दर के मुकाबले पोरस के हाथी हारे। सिकन्दर से पोरस नहीं हारा है और हाथी जब घबरा गये युद्ध में तो उन्होंने अपनी सेनाओं को कुचल डाला। बाबर हिन्दुस्तान आया। बाबर के पास बारूद थी। हमारे पास बारूद का कोई उत्तर न था। दूसरे मुल्क में हम लड़ने नहीं गये, दूसरे मुल्क के लोग लड़ने आये। हम अपने मुल्क में हारते रहे। इतनी बड़ी जनसंख्या लेकर हम बैठे हैं। परदेश से एक आदमी आयेगा कितनी फौजें लायेगा, कितनी फौजों को ला सकता है? और हम उससे अपने मुल्क में हार जायेंगे। बारूद का हमारे पास कोई उत्तर न था। बारूद से हारने के सिवाय कोई रास्ता न था। हम बाबर से नहीं हारे, हम बारूद से हारे। बाबर में हमें हराने की हिम्मत न थी, लेकिन हमारे पास कोई टेकनीक न थी। अंग्रेज हिन्दुस्तान में आये, हमारे पास बन्दूकें थीं, अंग्रेज के पास विकसित तोपें थीं। हम अंग्रेजों से नहीं हारे, बन्दूकें तोपों से हारगी ही, इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है।

और अब हम फिर वही बातें किये चले जा रहे हैं कि टेक्नोलॉजी नहीं, बड़े यंत्रों का क्या करना है, बड़े विकास का क्या करना है, चर्खा-तकली से चलाना है, उसी से चला रहे हैं। हम पांच हजार वर्षों से और रोज मात खाते रहे हैं, रोज जमीन चाटते रहे, लेकिन वही बातें हम जारी किये हुए हैं और अगर कोई कहे कि यह गलत है, हमें विकास के सारे साधनों का उपयोग करना है, हमें बहुत शीघ्र बीस वर्षों में सारी दुनिया के सामने खड़े हो जाना है अन्यथा हम कहीं के नहीं रह जायेंगे तो हम उसके विरोध में टूट पड़ेंगे कि हमारे महापुरुषों की आलोचना हो गयी। यह महापुरुष की आलोचना का सवाल नहीं है, मुल्क की जिन्दगी का सवाल है। मैं जो विकसित टेकनीक के पक्ष में बोल रहा हूं वह इसलिए नहीं कि मुझे चर्खे से कोई दुश्मनी है, न तकली से मुझे दुश्मनी है, न मैं इस ख्याल का हूं कि चर्खा तकली चलने बन्द हो जाने चाहिए। जब तक कोई उपाय नहीं है वह चले, लेकिन मजबूरी हो उनको चलाना, हमारा सिद्धान्त नहीं। यह फर्क समझ लेना जरूरी है। विवशता हो हमारी, हम मजबूर हैं, इसलिए कुछ नहीं कर पा रहे हैं तो चला रहे हैं लेकिन जैसे ही हमें मौका मिलेगा हम उनसे मुक्त हो जायेंगे। यह हमारी दृष्टि हो, वे हमारे प्रतीक न बन जाय। हमारी कमजोरी के प्रतीक हों, हम नहीं विकसित कर पाये इसके प्रतीक हों। उनको हम छाती का शृंगार न बना लें और यह न घोषणा करते फिरें कि हम बहुत ऊंचा काम कर रहे हैं।

नहीं, खादी से मेरा कोई विरोध नहीं है लेकिन खादी को मैं कोई आर्थिक संयोजन का सिद्धान्त नहीं मानता हूं। खादी कोई आर्थिक चीज नहीं हो सकती। खादी का एक एस्थेटिक मूल्य हो सकता है, एक सौन्दर्यगत मूल्य हो सकता है। किसी आदमी को हाथ से बनायी हुई चीज पहनने में रस हो सकता है। दुनिया

कितनी ही विकसित हो जाये तो भी घर के उद्योग जारी रहेंगे। होटलों में कितना ही अच्छा खाना बनने लगे, तो भी कोई गृहिणी अपने घर खाना बनाना पसन्द करेगी और यह भी हो सकता है कि घर बनाया हुआ खाना होटल से अच्छा न हो तो भी घर का खाना खाने का आनन्द अलग है। लेकिन उसका मूल्य एस्थेटिक है। उसका मूल्य आर्थिक नहीं है, उसका मूल्य वैज्ञानिक नहीं है। अगर मेरी मां मुझे कुछ खाना बनाकर खिलाती है, हो सकता है होटल के रसोइए बेहतर बनाते हों, लेकिन होटल के रसोइए के खाने से मुझे मेरी मां का खाना अच्छा लगेगा। लेकिन मैं यह कभी नहीं कहूंगा कि यह डाइटीशियन के हिसाब से ज्यादा बेहतर खाना है। मैं इतना ही कहूंगा कि यह मेरी मां और मेरा एक प्रेम है और एक लगाव है इसलिए यह मुझे अच्छा लग रहा है। इसका सम्बन्ध फिलिंग से हुआ, डाइट के साइंस से नहीं। लेकिन जब मैं यह घोषणा करने लगूं कि मां के हाथ का बनाया हुआ खाना डाइट की दृष्टि से, भोजन-शास्त्र की दृष्टि से ऊंचा होता है तो फिर मैं गड़बड़ में पड़ गया। तो फिर मैं कठिनाई में पड़ गया। खादी एक एस्थेटिक मूल्य रखती है। जिन्हें प्रीतिकर हो खादी पहन सकते हैं, जिन्हें प्रीतिकर हो चर्खा चला सकते हैं। किसी को रुकावट डालने की कोई जरूरत नहीं, वे लेकिन खादी को आर्थिक संयोजना का, इकोनॉमिक लानिंग का हिस्सा नहीं समझा जा सकता और खादी को आर्थिक सिद्धान्त नहीं माना जा सकता।

मैं खुद खादी पहनता हूं। मुझे खुद दूसरे कपड़े के बजाय खादी ज्यादा पोइटिक, ज्यादा काव्यात्मक मालूम पड़ती है। मुझे खुद खादी में ज्यादा पवित्रता, ज्यादा स्वच्छता, ज्यादा सफेदी मालूम पड़ती है, लेकिन यह मेरी व्यक्तिगत पसन्द हुई। यह हॉबी हो सकती है, यह अपना सुख हो सकता है और हॉबी के लिए मंहगे से मंहगा खर्च करना पड़ता है—सो खादी काफी मंहगी हॉबी है। जो धोती दस रुपये में मिल सकती है मिल की वैसी खादी पचास रुपये में मिलेगी और वह पचास में भी सिर्फ इसलिए मिलती है कि कर चुकाने वालों से पन्द्रह रुपये लेकर खादी पहनने वालों को चुकाये जा रहे हैं। पैंसठ रुपये की चीज पचास रुपये में पड़ती है, पहनने वाले को पन्द्रह रुपये सरकार दे रही है। यह हैरानी की बात है। जिसको शौक हो वह पैंसठ, सत्तर, अस्सी खर्च करे। लेकिन जो खादी नहीं पहनता है उससे, पन्द्रह रुपये उसकी जेब में से निकाल कर मुझे खादी पहनायी जाये यह समझ के बाहर है। इसका कोई अर्थ नहीं, यह खतरनाक बात है।

लेकिन हम विचार करने को राजी होने को राजी नहीं हैं। हम सोचने को भी राजी नहीं हैं। इससे क्या पता चलता है? सोचने से इतना भयतीत होने का मतलब क्या होता है? इसका साफ मतलब यह होता है कि हम बहुत भली-

भांति जानते हैं कि इन चीजों पर सोचा तो सोचने में ये चीजें बह जायेंगी, ये बच नहीं सकतीं। जब आदमी डरता है कि जिन चीजों के सोचने से चीजों के मिट जाने का डर है, अन्कॉन्शसली वह अनुभव करता है कि हमने सोचा कि ये गयीं, तो वह सोचने से भयभीत हो जाता है। फिर वह कहता है कि सोचो मत, जो है वह ठीक है, आंख बन्द रखो। आंख बन्द रखने का मतलब यह है कि आप जानते हैं कि आंख खुलते ही जो दिखायी पड़ेगा वह वही नहीं होने वाला है, जो आप समझते रहे। वह तथ्य दूसरा है जो आंख खोलने से दिखायी पड़ेगा। इसलिए कमजोर लोग आंखें बन्द करना शुरू कर देते हैं, लेकिन अगर पैर में पीड़ा है और उसे छिपा लें आप तो स्वस्थ नहीं हो जाते और अगर कोई कहे कि जरा आप कपड़ा उठाइये और आप कहें कि क्यों कपड़ा उठाऊं, तुमने मेरी कपड़ा उठाने की बात की तो उससे भी आप स्वस्थ नहीं हो जाते, बल्कि आपकी यह घबराहट बताती है कि कपड़े के पीछे कुछ आप छिपाये हैं जिसे आप जानते भी हैं और नहीं भी जानना चाहते हैं जिसे आप पहचानते भी हैं लेकिन पहचानना भी नहीं चाहते हैं, मुकरना चाहते हैं, पीठ फेर लेना चाहते हैं। जब भी कोई कौम विचार करने से डरने लगती है तो समझ लेना कि उस कौम ने कुछ बेवकूफियां पाल रखी हैं जिनकी वजह से वह विचार करने से डरती है। सत्य कभी भी विचार करने से भयभीत नहीं होता है, असत्य हमेशा विचार करने से भयभीत होता है।

हमारे महापुरुष असत्य हैं या सत्य, अगर उन पर विचार करने से भय मालूम होता है तो तुम समझ लेना कि तुम बहुत भीतर मन में जानते हो कि ये महापुरुष हमारे बनाये हुए हैं, ये असली महापुरुष नहीं हैं। लेकिन अगर तुम विचार करने की हिम्मत कर सकते हो तो ही पता चलता है कि तुमने स्वीकार किया है कि महापुरुषों में कुछ बल है। हमारे विचार करने से वह नष्ट हो जाने वाला नहीं है। जो व्यर्थ होगा वह जल जायेगा। हम सोने को आग में डालने से डरते नहीं, क्योंकि जो कचरा होगा वह जल जायेगा और जो सोना है वह बचकर बाहर निकल जायेगा। लेकिन कचरा ही कचरा पास में हो तो उसको फिर हम आग में डालने से बहुत डरेंगे।

मैं गांधी को आग में डालने से नहीं डरता हूं, क्योंकि मैं मानता हूं कि उनमें बहुत कुछ सोना है। कचरा जल जायेगा और सोना निखर कर बाहर आ जायेगा। लेकिन उनके भक्त बहुत भयभीत होते हैं। उनके भक्त क्या डरते हैं कि गांधी जल जायेंगे उन पर विचार करने से? उनके एक भक्त ने अभी चिट्ठी लिखी है कि मैं और कुछ भी करूं, कम से कम गांधी को सिर्फ गांधी न कहा करूं। उन्होंने सलाह दी है कि मैं गांधी को 'महातमा गांधीजी' कहूं।

यह थोड़ा सोचने जैसा है कि हम गांधी को गांधीजी कहें, इसमें ज्यादा आदर

है या गांधी कहने में ज्यादा आदर है । परमात्मा के साथ हम जी नहीं लगाते कि परमात्मा जी । परमात्मा को हम कहते हैं परमात्मा । परमात्मा को हम कहते हैं तू । आप आइयेगा तो मैं आपसे कहूंगा आप । परमात्मा से कभी किसी ने आप कहा है ? परमात्मा को हम कहते हैं तू, हे परमात्मा तू ! तू अनादर नहीं है और गांधी अनादर है ? इतना प्रेम है मेरे मन में कि जी लगाने से मुझे नहीं लगता है कि गांधीजी की इज्जत बढ़ती है । यह छोटे-मोटे के साथ जी लगाने से इज्जत बढ़ती होगी, गांधी के साथ जी लगाने से इज्जत कम होती है । जी हम उनके साथ लगाते हैं जिनके साथ लगाने जैसा भीतर कुछ भी नहीं, बाहर से जी लगाकर इज्जत जोड़ देते हैं । महावीर को मैं महावीर कहता हूं, उनको महावीर जी कहने से ऐसा लगेगा कि कोई केराने की दुकान के मालिक हैं । गौतम बुद्ध को मैं बुद्ध कहता हूं । बुद्ध जी लगाने से वे ओछे और छोटे पड़ जायेंगे । जहां आदमी आप से ऊपर उठ जाता है और तू में प्रविष्ट हो जाता है । इसलिए मैं जी वगैरह नहीं लगाऊंगा और न महात्मा कहूंगा, लेकिन यह घबराते कैसे हैं लोग कि जी नहीं लगाया तो मुश्किल हो गयी । ये अपनी ही बुद्धि से सोचते हैं। जितनी उनकी हैसियत है । अगर उनसे कोई जी न लगाया और आप न कहें तो वह बेचैनी में पड़ जायेगा । ये बेचारे अपनी ही शक्ल में महापुरुषों को भी सोचते रहते हैं । नहीं, मैं नहीं लगाऊंगा और आप लगाते हैं तो आपसे कहूंगा कि मत लगाना, अपमानजनक है, इनसल्टिंग है । हम अपने महापुरुषों को तो इतने प्रेम से पुकार सकते हैं, बीच में जी और आदर सब लगाने की जरूरत नहीं है । शायद आपको ख्याल न हो कि हम जब आदर प्रकट करते हैं तो हम क्यों प्रकट करते हैं । जब हम शब्दों में आदर बताते हैं तो क्यों बताते हैं ? शब्दों में आदर इसलिए बताना पड़ता है कि अगर शब्द में न बतायें तो और तो कोई आदर हमारे पास नहीं है । शब्द ही आदर है । जब हृदय में आदर होता है तो शब्दों में हम विचार नहीं करते, फिक्र नहीं करते और जब हृदय में आदर नहीं होता तो हम शब्दों की बहुत फिक्र करते हैं कि क्या कहें, क्या नहीं कहें, कौन-सा शब्द उपयोग किया, कौन-सा नहीं किया ।

बर्नार्ड शा की एक घटना मुझे याद आती है । उसका संक्षिप्त नाम था जे० बी० एस० । जार्ज बर्नार्ड शा । उसकी मां मर गयी तो उस दिन से उसने जे० बी० एस० लिखना बन्द कर दिया, सिर्फ बी० एस० लिखने लगा—बर्नार्ड शा लिखने लगा । उसके मित्रों ने पूछा, तुम जे० बी० एस० क्यों नहीं लिखते हो अब ? उसने कहा कि सिर्फ मेरी एक मां थी जिसका मेरे ऊपर इतना प्रेम था जो मुझे जार्ज कहती थी । वह चली गयी दुनिया से । अब उतना प्रेम मेरे ऊपर किसी का भी नहीं है कि कोई मुझे जॉर्ज कहे। वह सब मुझे बर्नार्ड शा कहते हैं । बर्नार्ड शा उतना प्यारा नाम नहीं है। मेरी मां उठ गयी दुनिया से । उसका प्रेम इतना

था कि मुझसे जार्ज कहती थी । वह जार्ज मैंने अलग कर दिया । अब कोई भी मुझे उस नाम से बुलायेगा नहीं । कोई जार्ज नहीं कहेगा । बर्नार्ड शा ने कहा कि मेरी मां के मरने से मैं पहली दफा बूढ़ा हो गया हूं । मेरी मां जिन्दा थी तो मैं बूढ़ा नहीं था । मुझे लगता था कि मैं भी बच्चा हूं, क्योंकि मुझे जार्ज कहकर बुलाती थी । इतना प्रेम था उसका । अब मैं बूढ़ा हो गया, अब मेरी मौत करीब आने लगी । अब मुझे लगता है कि इतना प्रेम कोई भी मुझे नहीं करता है ।

प्रम के अपने रास्ते होते हैं, श्रद्धा के अपने रास्ते हैं । लेकिन जो न प्रेम जानते हैं, न श्रद्धा जानते हैं सिर्फ थोथा शिष्टाचार जानते हैं, उन बेचारों को प्रेम और श्रद्धा के रास्ते का कोई पता नहीं होगा । वे शिष्टाचार में ही सब कुछ समझते हैं जिनके बीच प्रेम नहीं है । जिनके बीच प्रेम है उनके बीच शिष्टाचार समाप्त हो जाता है । महापुरुष हम उसे कहते हैं जिसके पास समाज का शिष्टाचार समाप्त हो गया है, उससे हम सीधी-सीधी बात कर सकते हैं । इसलिए मैं क्षमा नहीं मागूंगा कि गांधी को गांधीजी नहीं कहता या महात्मा नहीं लगाता । नहीं, कभी नहीं लगाऊंगा, लगाने की कोई जरूरत नहीं है ।

कुछ मित्रों ने पूछा है कि गांधी ने, गांधी के विचार ने देश को आजादी दिलायी । मैं मना नहीं करता । यह भी मैं मना नहीं करता कि उन्होंने देश के लिए कितना काम किया है । शायद इस देश के पूरे इतिहास में किसी एक मनुष्य ने देश के लिए इतना काम नहीं किया है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हम उनके प्रति अंधे हो जायें । वे भी पसन्द नहीं करेंगे कि हम उनके प्रति अंधे हो जायें, वे भी पसन्द नहीं करेंगे कि हम उनके प्रति सोचना विचारना बन्द कर दें। उनका हमारे ऊपर ऋण बहुत ज्यादा है । इसीलिए तो मैं सोचता हूं कि उन पर हमें बार-बार विचार करना चाहिए । उन पर बार-बार विचार करने का अर्थ ही यही है कि मैं मानता हूं कि उनका ऋण हमारे ऊपर बहुत ज्यादा है और उस ऋण से उऋण होने का एक ही रास्ता है कि हम निरन्तर सोचें, निखारें उनके विचार को और उनके विचार में जो श्रेष्ठतम है उसके अनुकूल देश को ले जा सकें ।

लेकिन श्रेष्ठतम का पता कैसे चलेगा ? एक बड़ी जिन्दगी बहुत बड़ी जिन्दगी क्या है श्रेष्ठ, क्या है भविष्य के योग्य, क्या व्यर्थ हो गया, क्या अप्रासंगिक हो गया, क्या समय के बाहर हो गया—यह सब सोचना पड़ता है । महापुरुष भी पचास वर्ष, साठ वर्ष, सत्तर वर्ष जीता है तो सत्तर वर्ष में हजारों घटनाएं घटती हैं । वे सारी की सारी घटनाएं देश के भविष्य के लिए उपयोगी नहीं होती । नहीं हो सकती है । उनमें से क्या है, छांट लेना है, लेकिन हम ऐसे अंधे लोग हैं कि जब हम किसी को महापुरुष कहते हैं तो उसके सब कुछ को महापुरुष मान लेते हैं । इससे बड़ी भूल पैदा हो सकती है । इससे बुनियादी भूल पैदा हो सकती

है। महापुरुष जो करता है, महापुरुष जिस समय में जीता है, जिस सामयिक प्रसंगों पर चुनौती झेलता है उसमें से बहुत-सा उसी दिन व्यर्थ हो जाता है। उसमें से बहुत-सा बाद में व्यर्थ हो जाता है। शाश्वत् बहुत थोड़ा रह जाता है। अधिकतम तो कंटेम्प्रेरी प्रॉबलम होता है, इंटरनल प्रॉबलम तो बहुत कम होता है और गांधी के जीवन में बुद्ध और महावीर के बजाय कंटेम्प्रेरी प्रॉबलम ज्यादा है। इसलिए महावीर और बुद्ध की बात में सनातन प्रश्न ज्यादा है, क्योंकि उन्होंने समाज और जीवन के रोजमर्रा के प्रश्नों को छुआ ही नहीं। गांधी के जीवन और समाज के रोजमर्रा के प्रश्नों को छुआ है। गांधी के व्यक्तित्व और विचार में, गांधी के कर्म में और जीवन में ९० प्रतिशत सामयिक है, १० प्रतिशत सनातन है। उस सामयिक से हमको छुटकारा पाना होगा और सनातन की खोज करनी पड़ेगी, लिखा नहीं है कि क्या सनातन है और क्या सामयिक है, खोज करनी पड़ेगी, सोच करना पड़ेगा, विचार करना पड़ेगा, काट-छांट करनी पड़ेगी। जो गांधी व्यतीत हो गये, अतीत हो गये, उन्हें हटा देना होगा। जो गांधी आगे भी साथ के होंगे, कल भी सार्थक होंगे, उनको बचा लेना होगा। अंततः निखरते वही सूत्र शेष रह जायेंगे जो सनातन हैं, जिनका समय से कोई सम्बन्ध नहीं है, जिनका मनुष्य के शाश्वत् जीवन से सम्बन्ध है। तब हम गांधी को निखार पायेंगे।

लेकिन भक्त अंधा होता है, वादी अंधा होता है। वह कहता है कि हम पूरा मानेंगे या बिल्कुल नहीं मानेंगे। वह दो ही बातें मानता है। या तो पागल अनुगमन या पागल विरोध। जीवन में इस तरह हां और ना में उत्तर नहीं होते। जीवन बहुत जटिल है। जीवन कोई इकट्ठा हां और ना नहीं है कि हमने कह दिया हां या हमने कह दिया ना। भक्त कहता है कि या तो हम कहेंगे ना, कहेंगे कि नहीं मानता गांधी को या कहेंगे कि मानते हैं तो पूरा मानते हैं। ये दोनों ही दृष्टियां गलत हैं। सोचना होगा, अपने विवेक से खोजना होगा, देखना होगा, परखना होगा, जांच करनी होगी, प्रयोग करने होंगे और तब जो विवेक के अनुकूल बचता जायेगा वही शाश्वत् होता चला जायेगा। शेष समय की परिधि में खोता चला जायेगा। खो ही जाना चाहिए। समय के साथ ही वह खो जाना चाहिए जिसे समय ने पैदा किया था। लेकिन हम अपने पागलपन में उसे बचाकर रखना चाहते हैं। उससे हमारे महापुरुष को फायदा नहीं होता, नुकसान होता है, क्योंकि महापुरुष रोज-रोज नया नहीं हो पाता, ताजा नहीं हो पाता। बासी पड़ जाता है, पुराना पड़ जाता है। वह जो-जो बासी पड़ जाता है उसे काट देने की जरूरत है ताकि नया ताजा रोज निखर कर बाहर आता चला जाये और जिसे हमने प्रेम किया हो, जिसे हमने श्रद्धा दी हो वह हमारे लिए सनातन साथी बन सके। लेकिन हम जिस तरह से व्यवहार करते हैं, उस तरह से यह नहीं हो सकता है।

मैं नहीं कहता हूं कि गांधी का हमारे ऊपर ऋण नहीं है, कोई पागल होगा जो ऐसा कहेगा। ऋण उनका महान् है लेकिन उस ऋण के कारण इतने मत दब जाना कि गांधी का जो सामयिक तत्त्व है वह हमें सनातन सत्य जैसा मालूम पड़ने लगे। यह उचित नहीं है।

किसी मित्र ने पूछा है कि हम तो गांधी जितने बड़े नहीं हैं, तो हम उनकी आलोचना कैसे कर सकते हैं?

अभी तक कोई तराजू कहीं दुनिया में नहीं है कि तौला जा सके कि कौन बड़ा है और कौन छोटा। कोई तराजू दुनिया में आज तक विकसित नहीं हुआ कि हम तौल सकें कि कौन बड़ा है, कौन छोटा है। सच बात तो यह है कि एक-एक आदमी अपने-अपने जैसा है। 'कंपेरिजन' की कोई सम्भावना नहीं है। गांधी की किसी से तुलना नहीं हो सकती। आपकी भी किसी से तुलना नहीं हो सकती। एक साधारण से साधारण आदमी भी अनूठा और अद्वितीय है। न किसी से छोटा है, न किसी से बड़ा, क्योंकि छोटे और बड़े हम तब हो सकते हैं जब हम एक जैसे हों। एक जैसे अगर हम हों तो पता चल सकता है कि कौन छोटा है कौन बड़ा, लेकिन हममें से प्रत्येक अपने जैसा है—दूसरे जैसा है ही नहीं, इसलिए छोटे-बड़े को तौलने की, कंपेयर करने की कोई सुविधा नहीं है। गांधी को जब आप बड़ा कहते हैं तब भी आप भूल कर रहे हैं, क्योंकि जैसे ही आपने तौला, बड़ा आपने कहा तो आपने तौल शुरू कर दी, गांधी आपके हाथ से तुल गये। फिर कल कोई दूसरा मिल सकता है, वह कहेगा महावीर और बड़े हैं, बुद्ध और बड़े हैं। यही पागलपन तो हजारों साल से चल रहा है। जैन कहते हैं कि महावीर से बड़ा कोई भी नहीं, बौद्ध कहते हैं बुद्ध से बड़ा कोई भी नहीं है। मुसलमान कहते हैं मुहम्मद से बड़ा कोई भी नहीं है, ईसाई कहते हैं जीसस से बड़ा कोई भी नहीं है। इसी पागलपन से सारी मनुष्य जाति कट गयी और नष्ट हो गयी। फिर वही जारी रखोगे कि कौन बड़ा है, कौन छोटा? कैसे तय करोगे, कौन तय करेगा? कौन है निर्णायक, जजमेंट कौन देगा? जजमेंट आप दोगे? अगर आप जजमेंट दे सकते हैं कि गांधी बड़े हैं तो आप गांधी से बड़े हो गये, क्योंकि जजमेंट देने वाला हमेशा बड़ा होता है। आप हो निर्णायक? तब तो स्वभावतः गांधी खिलौना हो गये। तराजू पर रखकर आपने तौल लिया। कौन किसको तौलेगा?

ये हमारे सोचने के ढंग, व्यक्तियों को तौलने के ढंग निहायत अपरिपक्व हैं। कोई मनुष्य तौला नहीं जा सकता है। गांधी तो ठीक हैं, साधारण से साधारण मनुष्य तक नहीं तौला जा सकता। कोई नहीं जानता है कि छोटे-से मनुष्य में क्या घटना घट जायेगी।

एक गांव में बुद्ध का आगमन हुआ था। गांव में था एक गरीब चमार। गांव

के सम्राट को पता चल गया था कि बुद्ध आते हैं, लेकिन गरीब चमार को कहां फुर्सत थी, कहां पता चले ? उसे पता भी नहीं था कि बुद्ध आते हैं । बुद्ध के आने का पता चलने की भी सुविधा तो चाहिए। वह बिचारा दिन भर अपने काम में रहा । रात थका-मांदा सो गया । सुबह अपने झोंपड़े में उठा । उस चमार का नाम था सुदास । उठा, झोंपड़े के पीछे छोटी-सी एक गंदी तलैया थी । उठा सुबह तो देखा कि उसमें एक कमल का फूल खिला है । बिना मौसम का फूल था, अभी मौसम नहीं था कमल का । वह सुदास बहुत हैरान हुआ । फिर बहुत खुश हुआ । फूल तोड़कर भागा बाजार की तरफ कि कोई न कोई जरूर रुपये दो रुपये इस फूल का दे देगा । फूल बड़ा था, सुन्दर था, बेमौसम का था । जरूर इसके पैसे मिल जायेंगे । वह बाजार की तरफ भागा चला जा रहा है कि नगर का जो धनपति था, नगर सेठ, वह रथ पर बैठा हुआ आ रहा था । वह उसके पास जाकर खड़ा हो गया । उस धनपति ने कहा, कितना लोगे, इस फूल का ? सुदास ने कहा, जो भी आप दे देंगे, आपकी कृपा । उसने अपने सारथी से कहा कि पांच रुपये इसे दे दो । सुदास तो हैरान हुआ, क्योंकि पांच बहुत ज्यादा थे । वह सोचता था कि एक भी मिल जाये तो बहुत है । वह एकदम हैरान हुआ । उसने कहा, पांच रुपये ! यह बात ही चलती थी कि पीछे से वजीर—मंत्री घोड़े पर सवार आ गया। उसने कहा कि बेचना मत फूल । फूल मैंने खरीद लिया । धनपति जितना देते हैं उससे पांच गुना मैं दूंगा । सुदास तो हक्का-बक्का हो गया । उसने कहा कि पच्चीस रुपये । आप कहते क्या हैं, एक साधारण से फूल के ? क्या बात है ? आप पांच देते थे । धनपति ने कहा, फूल मैं खरीदूंगा किसी भी कीमत पर । वजीर जितना बोलता जाये मैं पांच गुना ज्यादा दूंगा । वह तो मांग बढ़ती चली गयी और सुदास भौचक्का । वह ठहराव मुश्किल हो गया तभी राजा का रथ भी आ गया और उस राजा ने कहा कि फूल खरीद लिया गया । जो भी दाम तू मांगेगा, मुंहमांगा दाम दे दूंगा ।

सुदास कहने लगा कि आप सब पागल हो गये हैं। इस फूल की कोई कीमत नहीं है । हजारों कीमत तो बढ़ चुकी है और आप कहते हैं कि मुंहमांगा देंगे। बात क्या है सम्राट ? सम्राट ने कहा, शायद तुझे पता नहीं, बुद्ध का आगमन हो रहा है गांव में । हम उनके स्वागत को जाते हैं। बेमौसम का फूल उनके चरणों में चढ़ायेंगे वह भी हैरान हो जायेंगे कि कमल, बेमौसम का फूल ! बुद्ध के चरणों में यह फूल मैं ही चढ़ाऊंगा । नगर सेठ ने कहा, नहीं यह नहीं हो सकेगा, सम्राट । फूल को मैंने पहले देखा है । पहले मैंने खरीद-फरोक्त शुरू की है । मैं पहला ग्राहक हूं । इनका विवाद चलता था । सुदास ने कहा, क्षमा करिये, फूल मुझे बेचना नहीं है । जब बुद्ध आते हैं गांव में तो फूल मैं ही चढ़ा दूंगा । पर वे कहने लगे, सुदास तू पागल है क्या ? जितना पैसा चाहे ले ले, तेरी चमारी मिट

जाये सदा, गरीबी मिट जाये सदा को । तेरे जन्म-जन्म आगे के बच्चे को भी सुख हो जायेगा । जितना चाहे ले ले । सुदास ने कहा, नहीं, अब पैसे का क्या करेंगे, मैं ही चढ़ा दूंगा बुद्ध को ।

नहीं बेचा फूल । सम्राट नहीं खरीद सके गरीब का फूल, एक चमार का । सम्राट तो रथ पर पहुंच गये पहले, नगर सेठ पहुंच गया, वजीर पहुंच गया । उन्होंने बुद्ध को जाकर यह कहा कि आज एक अद्भुत घटना घट गयी । यह गरीब आदमी, जिसकी कोई हैसियत नहीं, जिसके पास कल का खाना नहीं होता उसने लाखों रुपये पर लात मार दी और कहता है, फूल मैं ही चढ़ाऊंगा । सुदास आया पीछे पैदल चलता हुआ । बुद्ध के चरणों पर फूल रखकर हाथ जोड़-कर सिर पैर पर रखकर जाने लगा । बुद्ध ने कहा, पागल है सुदास, तुझे फूल बेच देना था । सुदास ने कहा, भगवन, सम्पत्ति ही सब-कुछ नहीं है । सम्पत्ति से भी बड़ा कुछ है और आपके पैरों में फूल रखकर मुझे जो मिल गया वह मुझे कितनी भी सम्पत्ति से कभी नहीं मिल सकता । बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा, भिक्षुओं, देखो, इस सुदास को । एक साधारण से जन में भी, एक साधारण से मनुष्य में भी परमात्मा का इतना प्रकाश पैदा हो सकता है । सुदास गांव का एक चमार, एक दीन हीन है, लेकिन इतने प्रेम की सम्भावना इस सुदास में ! इतने प्रेम की सम्भावना, इतनी श्रद्धा की सम्भावना, इस सुदास में । बुद्ध कहने लगे कि मैं घूमता हूं वर्षों से गांव-गांव, कितने-कितने लोग मिले । नहीं सुदास, तू अद्वितीय है । तेरा जैसा व्यक्ति तू ही है ।

कौन कहेगा, कौन है बड़ा, कौन है छोटा ? कौन कहेगा, किसके भीतर से क्या प्रकट हो सकता है ? तो कौन जानता है कौन-सा बीज कितना बड़ा फूल बनेगा ? लेकिन जल्दी से तौलने की हमारी इच्छा बड़ी तीव्र होती है । नहीं कोई जरूरत है तौलने की । गांधी गांधी हैं, मैं मैं हूं, आप-आप हैं । तौलने का कोई उपाय भी नहीं है । लेकिन यह गांधी को बड़ा कहने का कारण क्या हो सकता है फिर ? अगर हम तौल नहीं सकते, समर्थ नहीं तौलने में तो यह कहने का कारण क्या हो सकता है कि गांधी महान् हैं ? शायद आपको सीक्रेट का कोई पता न हो, यह एक बड़ा राज है । जब हिन्दू यह कहता है कि हिन्दू धर्म महान् है तो आप समझते हैं कि उसका मतलब क्या है ? वह यह कहता है कि हिन्दू धर्म महान् है और मैं हिन्दू हूं, मैं महान् हूं यह तर्क है । यह तर्क सरल नहीं है । जब एक आदमी कहता है कि भारत पृथ्वी पर सबसे महान् देश है तो मतलब आप जानते हैं क्या कहता है ? वह यह कह रहा है कि भारत सबसे बड़ा देश है, मैं भारत का निवासी हूं, मैं बड़ा आदमी हूं । पीछे अहंकार है इस तुलना के पीछे, इगो है । आदमी बहुत अहंकारी है । सीधे अगर वह कहेगा कि मैं बड़ा हूं तो बड़ी मुश्किल बात है । वह कहता है मेरा गुरु बड़ा है और बड़े गुरु का मैं बड़ा

चेला हूं।

मैंने सुना है, फ्रांस में एक दर्शन-शास्त्र का प्रोफेसर था। पेरिस के विश्वविद्यालय में वह दर्शन-शास्त्र का अध्यक्ष था। वह एक दिन सुबह-सुबह आया और अपने क्लास के विद्यार्थियों से कहने लगा कि तुम्हें पता है, मैं दुनिया का सबसे बड़ा आदमी हूं। उसके विद्यार्थियों ने कहा, आप ? बेचारा गरीब शिक्षक था, फटे कपड़े पहने हुए था। समझ गये उसके विद्यार्थी हो गये पागल। दार्शनिकों के पागल हो जाने की सम्भावना रहती ही है, दिमाग इनका बाहर हो गया है मालूम होता है। एक विद्यार्थी ने पूछा, महाशय, आप अपने बाबत कह रहे हैं कि आप दुनिया के सबसे बड़े आदमी हैं ? उसने कहा, हां, मैं कह रहा हूं कि मैं दुनिया का सबसे बड़ा आदमी हूं। न केवल मैं कह रहा हूं, मैं तर्क-शास्त्र का अध्यापक हूं, मैं सिद्ध भी कर सकता हूं। उसके विद्यार्थियों ने कहा, बड़ी कृपा होगी, यदि आप सिद्ध कर सकेंगे। उसने छड़ी उठायी, और नक्शे के पास गया जहां दुनिया का नक्शा टंगा था क्लास में। उसने कहा, मेरे बच्चों, मैं तुमसे पूछता हूं कि इस सारी बड़ी पृथ्वी पर सबसे महान् और सबसे श्रेष्ठ देश कौन-सा है ? वे सभी फ्रांस के रहने वाले थे। उन सबने कहा, निश्चित ही फ्रांस है, इसमें कोई संदेह है ? यह तो निश्चित है कि फ्रांस से महान् कोई भी देश नहीं है। उसने कहा, तब एक बात तय हो गयी कि फ्रांस सबसे महान् है इसलिए बाकी दुनिया की फिक्र छोड़ दो। अब अगर मैं सिद्ध कर सकूं कि फ्रांस में सबसे महान् हूं तो मामला हल हो जायेगा। विद्यार्थी तब भी नहीं समझे कि तर्क कहां जायेगा। फिर उसने कहा कि फ्रांस में सबसे महान् और श्रेष्ठ नगर कौन-सा है ? विद्यार्थियों ने कहा कि पेरिस। वे सभी पेरिस के रहने वाले थे। उसने कहा, तब फ्रांस की फिक्र छोड़ दो। अब सवाल सिर्फ पेरिस का रह गया। अगर मैं सिद्ध कर दूं कि पेरिस में मैं सबसे महान् हूं तो बात खत्म हो जायेगी। तब विद्यार्थियों को शक पैदा हुआ कि यह तो मामला बहुत अजीब है, यह कहां ले जा रहा है आदमी और तब उस प्रोफेसर ने पूछा कि और पेरिस में सबसे श्रेष्ठ स्थान कौन-सा है ? यूनिवर्सिटी, विश्वविद्यालय, विद्या का केन्द्र, मंदिर। विद्यार्थियों ने कहा यह तो ठीक है। विश्वविद्यालय ही सबसे पवित्रतम और श्रेष्ठतम स्थान है। तब उनका तर्क हो चुका था। उस प्रोफेसर ने कहा, तब मैं तुमसे पूछता हूं, पेरिस को जाने दो, रह गया यूनिवर्सिटी का केम्पस। यूनिवर्सिटी के इस केम्पस में सबसे श्रेष्ठतम विषय और डिपार्टमेण्ट कौन-सा है ? वे सभी विद्यार्थी फिलॉसफी के विद्यार्थी थे। उन्होंने कहा, फिलॉसफी। और उसने कहा, अब तुम समझे कि मैं फिलॉसफी का हेड आफ दि डिपार्टमेण्ट हूं।

इतना लम्बा तर्क इस छोटे से 'मैं' को सिद्ध करने के लिए है। लेकिन आदमी की चालाकियां, कनिंगनेस पहचानना बहुत मुश्किल है। वह कहता है, भारत

महान देश है और उसके भीतर जाकर पूछा उसके प्राणों के प्राणों में तो वह यह कह रहा है कि मैं महान हूं।

बर्नार्ड शा ने एक बार अमरीका के दौरे में यह कहा कि गेलेलिओ, कॉपरनिकस ये वैज्ञानिक सब गलत कहते हैं। सूरज ही पृथ्वी का चक्कर लगाता है। पृथ्वी कभी सूरज का चक्कर नहीं लगाती है। अब इस बीसवीं सदी में कोई ये बातें करेगा तो पागल समझा जायेगा। बर्नार्ड शा को लोगों ने पूछा कि आप क्या कह रहे हैं। तीन सौ साल पहले लोग ऐसा जरूर मानते थे कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। लेकिन अब तो यह सिद्ध हो चुका है कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है। आपके पास दलील क्या है जो आप कहते हैं कि कॉपरनिकस, गेलेलिओ सब गलत कहते हैं। बर्नार्ड शा ने कहा कि दलील साफ है। जिस पृथ्वी पर बर्नार्ड शा रहता है वह पृथ्वी किसी का चक्कर कभी नहीं लगाती। उसने हमारे अहंकार पर बड़ा गहरा मजाक कर दिया। उसने कह दिया कि सूरज लगाता होगा चक्कर, क्योंकि मैं बर्नार्ड शा इस पृथ्वी पर रहता हूं। मेरे रहने की वजह से यह पृथ्वी किसी का चक्कर लगा सकती है ? असम्भव है। यही है सेन्टर वर्ल्ड का। यही पृथ्वी सारे जगत् का केन्द्र है। सारा जगत् इसका चक्कर लगाता है। पृथ्वी का केन्द्र मैं हूं जार्ज बर्नार्ड शा।

हर आदमी का तर्क यही है। भारतीय कहता है, भारत महान है, चीनी कहते हैं चीन महान है, तुर्की कहता है तुर्क महान है। मामला क्या है ? हिन्दू कहता है हिन्दू महान है, मुसलमान कहता है मुसलमान महान है। जैन कहता है महावीर महान है, ईसाई कहता है जीसस महान हैं। मामला क्या है ? मार्क्सिस्ट कहता है मार्क्स महान है, एक गांधीवादी कहता है गांधी महान हैं। मामला क्या है ! न गांधी से किसी को मतलब, न मार्क्स से किसी को मतलब, न महावीर से किसी को मतलब, न भारत से किसी को मतलब, न चीन से किसी को मतलब। मतलब उसमें से है कि मैं जहां हूं जिस केन्द्र पर, उस केन्द्र से सम्बन्धित सब महान है, क्योंकि मैं महान हूं।

नहीं, गांधी को नहीं तौलते हैं आप, न महावीर को, न बुद्ध को। तरकीब से अपने को तौल रहे हैं और अपने को केन्द्र पर खड़ा कर रहे हैं। ये तरकीबें बड़ी अधार्मिक हैं। ये तरकीबें बड़ी अपवित्र हैं। लेकिन इनका हमें होश भी नहीं आता है। बर्ट्रेंड रसल ने एक किताब लिखी और उस किताब में उसने भूमिका में यह बात लिखी कि मेरी किताब को पढ़ने वाले आप जो सज्जन हैं, अपने रीडर को, अपने पाठक को सम्बोधित किया कि मेरे प्रिय पाठक आप जिस देश में पैदा हुए हैं उस देश से महान कोई भी देश नहीं है। उसको कई मुल्कों से पत्र पहुंचे, क्योंकि बर्ट्रेन्ड रसल की किताबें सारी दुनिया में पढ़ी जाती हैं। पोलैण्ड से एक स्त्री ने लिखा कि तुम पहले आदमी हो जिसने पोलैण्ड की महानता को स्वीकार

किया है। जर्मनी से किसी ने लिखा कि शाबाश तुमने स्वीकार कर लिया कि जर्मनी महान है। किन्तु उसने तो मजाक किया था। वह मजाक कोई भी नहीं समझा। वे समझे कि हमारे मुल्क की प्रशंसा की जा रही है। हमारे मुल्क की प्रशंसा नहीं, हमारी प्रशंसा, मेरी प्रशंसा और जो आपको भय मालूम पड़ता है कि गांधीजी की आलोचना मत करो, बुद्ध की आलोचना मत करो, मुहम्मद की आलोचना मत करो—नहीं तो दंगे हो जायेंगे। वह आपका मुहम्मद, बुद्ध और गांधी के प्रति प्रेम नहीं है। उनकी आलोचना से आपके अहंकार को ठेस पहुंचती है। उसकी वजह से आप पीड़ित हैं और परेशान होते हैं। यह योग्य नहीं है, यह हितकर नहीं है, यह कल्याणदायी नहीं है। इससे मंगल सिद्ध नहीं होता है।

मैंने यह जो कुछ बातें कही, एक मित्र मेरे पास आये, उन्होने कहा कि मैं काका कालेलकर के पास गया था तो काका कालेलकर ने कहा, मेरे बाबत कि अभी उनकी उम्र कम है इसलिए गड़बड़ बातें कह देते हैं। जब उम्र बढ़ जायेगी तो बिल्कुल ठीक बातें कहने लगेंगे। वह मित्र मेरे पास खबर लेकर आये कि काका कालेलकर ने ऐसा कहा है। मैंने उनसे कहा कि काका कालेलकर को कहना कि जब शंकराचार्य ने तैंतीस वर्ष की उम्र में बुद्ध का खण्डन और आलोचना की तो लोगों ने कहा इसकी उम्र कम है। उम्र बड़ी हो जायेगी तो सब ठीक हो जायेगा। जब जीसस ने तीस वर्ष की उम्र में यहूदियों की आलोचना की तो यहूदियों ने कहा कि यह पागल छोकरा है, आवारा है। इसकी उम्र अभी क्या है। उम्र बढ़ जायेगी तो सब ठीक हो जायेगा। जब विवेकानन्द ने तैंतीस-चौंतीस वर्ष की उम्र में वेदान्त की व्याख्या की तो वेदान्त के बूढ़े गुरु ने कहा, अभी नासमझ है, समझता नहीं, उम्र कम है। यह उम्र की दलील बहुत पुरानी है। लेकिन उम्र कम होने से न कोई गलत होता है और न उम्र ज्यादा होने से कोई सही होता है। उम्र से बुद्धिमत्ता का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। काका कालेलकर यह कह रहे हैं कि अगर जीसस क्राइस्ट अस्सी साल तक जीते तो ज्यादा बुद्धिमान हो जाते। वे यह कह रहे हैं कि जीसस क्राइस्ट तैंतीस साल की उम्र के थे इसलिए मन्दिर में घुस गये और मन्दिर में ब्याज खाने वाले दुकानों के तख्ते उलट दिये और कोड़ा उठाकर उन्होंने बहुतों को मार कर मन्दिर से बाहर निकाल दिया। अगर जीसस ज्यादा उम्र के होते तो ऐसी नासमझी कभी नहीं हो सकती थी। काका कालेलकर उनकी जगह होते तो इस तरह की नासमझी वे कभी नहीं करते। उनकी उम्र ज्यादा है, लेकिन उम्र ज्यादा होने से बुद्धिमत्ता नहीं बढ़ जाती है। उम्र ज्यादा होने से चालाकी और कनिंगनेस भले बढ़ जाये, लेकिन बुद्धिमत्ता का उम्र से ऐसा कोई नाता नहीं है।

मैं भी जानता हूं कि मैंने गांधी की आलोचना की, उसी दिन सुबह दो मित्रों

ने मुझे आकर कहा कि आप यह बात ही मत करिए, क्योंकि गुजरात की सरकार नारगोल में छः सौ एकड़ जमीन देती है आपके आश्रम को। वह उसका विचार ही बन्द कर देगी, नहीं देगी। अभी बात मत करिये, पहले जमीन मिल जाने दीजिए, फिर आपको जो कहना है कहना। वे कहने लगे, आपकी उम्र अभी कम है। आपको पता नहीं जमीन खो जायेगी। मैंने उनसे कहा, भगवान करे मेरी उम्र इतनी ही नासमझी की बनी रहे ताकि सत्य मुझे सम्पत्ति से हमेशा मूल्यवान मालूम पड़े। वह जमीन जाये, जाने दो। मुझे जो ठीक लगता है, मुझे कहने दें। भगवान न करे, इतना चालाक मैं हो जाऊं कि सम्पत्ति सत्य से ज्यादा मूल्यवान मालूम पड़ने लगे। मुझे भी दिखायी पड़ता है, काका कालेलकर को ही दिखायी पड़ता है ऐसा नहीं। मुझे भी दिखायी पड़ता है कि गांधी की आलोचना करके गाली खाने के सिवाय और क्या मिलेगा। अन्धा नहीं हूं, इतनी उम्र तो कम से कम है कि इतना दिखायी पड़ सकता है कि गाली मिले। लेकिन कुछ लोग, अगर समाज में गाली खाने की हिम्मत न जुटा पायें तो समाज का विचार कभी विकसित नहीं होता है। कुछ लोगों को यह हिम्मत जुटानी ही चाहिए कि वे गाली खायें। प्रशंसा समाप्त करना बहुत आसान है, गाली खाने की हिम्मत जुटाना बहुत कठिन है। श्री ढेबर भाई ने मुझे उत्तर देते हुए किसी मीटिंग में अभी कहा है कि मैं गांधी जी को समझ नहीं सका हूं, इसलिए ऐसी बातें कह रहा हूं। मेरा उनसे निवेदन है कि प्रशंसा तो बिना समझे की जा सकती है, आलोचना करने के लिए बहुत समझना जरूरी होता है। प्रशंसा तो कोई भी पूंछ हिला कर जाहिर कर देता है, उसके लिए कोई बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है। लेकिन आलोचना के लिए सोचना जरूरी है, विचार करना जरूरी है, हिम्मत जुटाना जरूरी है और अपने को दांव पर लगाना भी जरूरी है। अब गांधी से मेरा झगड़ा क्या हो सकता है, गांधी से झगड़ कर मुझे फायदा क्या हो सकता है? अखबार मेरी खबर नहीं छापेंगे, गांवों में मेरी सभा होनी मुश्किल हो जायेगी। अहिंसक लोग पत्थर फेंक सकते हैं, यह सब हो सकता है। इससे मुझे क्या फायदा हो जायेगा?

लेकिन मुझे लगता है कि चाहे कितना ही नुकसान हो, जो हमें सत्य दिखायी पड़ता हो उसे हमें कहना ही चाहिए, जो हमें ठीक मालूम पड़ता हो, चाहे उसके लिए कितनी ही हैरानी उठानी पड़े, वह हमें कहना ही चाहिए। इस दुनिया को उन्हीं थोड़े से लोगों ने आगे विकसित किया है, जिन्होंने समाज की मान्य परम्पराओं की आलोचना की है, जिन्होंने समाज के बंधे हुए पक्षपातों को तोड़ने की हिम्मत की है। जिन्होंने समाज में विद्रोह किया है वे ही थोड़े से लोग इस जीवन और जगत् को विकसित कर पाये हैं। जगत् को उन्होंने विकसित नहीं किया है जो अन्ध-विश्वासी हैं। विश्वास नहीं, विचार विकास का द्वार है। ●

बम्बई, दिनांक ३ दिसम्बर १९६८

५. तोड़ने का एक और उपक्रम

एक मित्र ने पूछा है, महापुरुषों की आलोचना की बजाय उचित होगा कि सृजनात्मक रूप से मैं क्या देना चाहता हूं देश को, समाज को, उस सम्बन्ध में कहूं।

लेकिन आलोचना से भयभीत होने की क्या बात है। क्या यह वैसा नहीं है कि हम कहें कि पुराने मकान को तोड़ने के बजाय नये मकान को बनाना ही उचित है ? पुराने को तोड़े बिना नये को बनाया भी तो नहीं जा सकता है। विध्वंस भी रचना की प्रक्रिया का हिस्सा है। अतीत की आलोचना भविष्य में गति करने का पहला चरण है और जो लोग अतीत की आलोचना से भयभीत होते हैं, वे ही लोग हैं जो भविष्य में जाने की सामर्थ्य भी नहीं दिखा सकते। लेकिन इतना भय क्या है सृजनात्मक आलोचना से ? क्या हमारे महापुरुष इतने छोटे हैं ? उनकी आलोचना से हमें भयभीत होने की जरूरत है ? और अगर वे इतने छोटे हैं तब तो उनकी आलोचना जरूर ही होनी चाहिए, क्योंकि उनसे हमारा छुटकारा हो जायेगा और अगर वे इतने छोटे नहीं हैं तो आलोचना से उनका कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है। दोनों हालत में आलोचना कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकती है। लेकिन हमारा पूरा देश ही आलोचना से भयभीत हो गया है और जो समाज अपने अतीत की आलोचना नहीं करता, वह भविष्य के लिए निर्णय भी नहीं ले पाता कि कहां कदम रखने हैं। उसका सारा अतीत बिना

आलोचना से अनक्रिटिसाइज्ड इकट्ठा हो जाता है। उन सारे अतीत में से चुनाव करना मुश्किल हो जाता है कि क्या चुनना है। उस अतीत में से क्या छोड़ना है, यह, जानना मुश्किल हो जाता है। उस अतीत का बोझ इतना हो जाता है कि उसके नीचे दबकर मर सकते हैं। उस अतीत के कंधे पर खड़े होकर भविष्य की ओर उठ नहीं सकते।

भारत का अतीत हमारा चुना हुआ अतीत नहीं है—वह तो एक मृत बोझ की भांति हमारे सिर पर रखा हुआ है। उसमें तरह-तरह की बातें बैठी हुई हैं। उसमें स्व-विरोध सेल्फ कंट्राडिक्शन बैठे हुए हैं और उन सबको हम झेल रहे हैं और उन सबके साथ हम जीने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए भारत में इतना कन्फ्यूजन है, इतना विभ्रम है। हमारी जाति के पास कोई स्पष्ट निर्णय नहीं है। अतीत का संग्रह हमने ऐसे ही किया है जैसे कि कबाड़ी की दुकान होती है। एक कचरा-घर की भांति हमारा चित्त हो गया है। उसमें सब इकट्ठा होता चला जाता है। सब भांति के विरोध वहां एकत्रित हो गये हैं। इनमें से चुनाव जरूरी है। कुछ हमें तय करना पड़ेगा। कौन है ठीक, हमें निर्णय लेना चाहिए, क्या है सही। लेकिन हम कहते हैं, अतीत की आलोचना मत करो, अतीत का विचार मत करो। हजारों-हजारों वर्षों में हजारों-हजारों विचारों का जो संग्रह हमारे ऊपर इकट्ठा हो गया है वह सारा संग्रह हमारे प्राणों पर बैठा हुआ है। उस सारे संग्रह के नीचे हम दबे जा रहे हैं और जी रहे हैं और हम कोई भी निर्णय नहीं ले पाते कि इस देश का व्यक्तित्व एक स्पष्ट निखार को उपलब्ध हो। शायद आपको पता न हो इस देश में कितनी धारें बहीं हैं विचार की। वे सारी की सारी धाराएं भारतीय मस्तिष्क में इकट्ठी होकर बैठ गयीं। वे बहुत विरोधी धाराएं हैं और उन विरोधी धाराओं के कारण हमारा व्यक्तित्व खण्डित हो गया है, स्पिलिट हो गया है।

भारत में किसी आदमी के पास 'इंटिग्रेटेड पर्सनलिटी' जिसको हम कहें, एक समग्र समूचा व्यक्तित्व कहें, इकट्ठा व्यक्तित्व कहें, एक स्वर वाला व्यक्तित्व कहें, वह नहीं है। उसके भीतर न मालूम कितने स्वर हैं। उन सब स्वरों के बीच उसे जीना पड़ता है। इससे एक 'मल्टिपर्सनेलिटी', एक बहु-व्यक्तित्व भीतर पैदा हो गया है जिसमें से कुछ निर्णय नहीं हो पाता कि हमारा स्वरूप क्या है, हमारा व्यक्तित्व क्या है—हम कहां खड़े हैं—इसका हमें कुछ भी पता नहीं चल पाता। और इस सबके पीछे एक ही कारण है कि हमने अपने अतीत की आलोचना करने से भय दिखलाया है। और अगर हम आगे भी यह जारी रखते हैं तो भारत की सारी प्रतिभा कुंठित हो गयी है, और कुंठित हो जायेगी। बहुत स्पष्ट विचार होना चाहिए, बहुत स्पष्ट सूझ होनी चाहिए। न कोई गांधी का मूल्य है, न महावीर का, न कृष्ण का। मूल्य है इस देश के भविष्य का। अगर बड़े से बड़े

महापुरुष को भविष्य के लिए छोड़ना पड़े तो छोड़ने की तैयारी होनी चाहिए। सवाल यह नहीं है कि हम छोड़ दें, सवाल यह है कि इस देश का भविष्य महत्वपूर्ण है, या इस देश के अतीत के महापुरुष महत्वपूर्ण हैं। बड़े से बड़े महापुरुष से पैदा होने वाला छोटा से छोटा बच्चा भी ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह भविष्य है, क्योंकि वह कल आयेगा, वह कल जियेगा, कल वह बनेगा। उसको ध्यान में रखना है। लेकिन हमारा मुल्क, हमारी पूरी चिन्ता उनको ध्यान में रखती है जो जी चुके हैं और जा चुके हैं। यह समादर ठीक है, लेकिन यह समादर मंहगा पड़ा है। आने वाले बच्चे का सम्मान चाहिए। उस बच्चे के सम्मान, उसके भविष्य, उसके जीवन के लिए विचार चाहिए।

हमें बहुत ही स्पष्ट और आदरपूर्वक अतीत की आलोचना करनी पड़ेगी। आलोचना का अर्थ निन्दा नहीं है। यह भी एक अजीब पागलपन है इस मुल्क में कि आलोचना करने का मतलब निन्दा समझा जाता है। यह हमारी क्षुद्र बुद्धि का सबूत है। इसका मतलब यह कि हम निन्दा करने को ही आलोचना समझते हैं या आलोचना करने को निन्दा समझते हैं। गांधी की आलोचना, गांधी की निन्दा नहीं है। मेरी बात की आप आलोचना करें वह मेरी निन्दा नहीं है, बल्कि मेरी बात की आलोचना करने से आप खबर देते हैं कि आपने मेरी बात को मूल्य दिया। इस योग्य समझा कि आप उस पर सोच रहे हैं। नहीं, आलोचना निन्दा नहीं है, आलोचना सम्मान है। हम आलोचना हर किसी की नहीं करने बैठ जाते हैं, कोई ऐरे-गैरे की आलोचना करने सारा मुल्क नहीं बैठ जायेगा। जिसकी हम आलोचना करने बैठते हैं, हम यह मानकर चलते हैं कि उस व्यक्ति की आलोचना या उस व्यक्ति का विचार देश के हित या अहित में महत्वपूर्ण हो सकता है।

मार्क्स की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु पर थोड़े से मित्र, दस-बीस मित्र ही उसकी कब्र पर इकट्ठे थे। एंजेल्स ने उसकी कब्र पर बोलते हुए एक बात कही। एंजेल्स ने कहा कि मार्क्स एक महापुरुष था। मित्रों को हैरानी हुई, क्योंकि अगर महापुरुष था तो कुल बीस-पच्चीस लोग कब्र पर छोड़ने आये थे। मित्रों ने पूछा कि महापुरुष? एंजेल्स ने कहा कि मैं इसलिए कहता हूं महापुरुष मार्क्स को कि जो भी उसकी बात सुनेगा उसे या तो मार्क्स के पक्ष में होना पड़ेगा या विपक्ष में होना पड़ेगा। दो के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। मार्क्स की उपेक्षा कोई भी नहीं कर सकता है। इसीलिए मैं कहता हूं कि यह महापुरुष है।

यह बड़ी अद्भुत बात कही एंजेल्स ने। मार्क्स के महापुरुष होने का कारण यह कि उसके विचार की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आप इंडिफरेंट नहीं हो सकते उसके विचार के प्रति। आपको कोई न कोई निर्णय लेना ही पड़ेगा। चाहे पक्ष में, चाहे विपक्ष में। जिस मनुष्य के विचार के सम्बन्ध में हमें कोई न कोई

निर्णय लेना ही पड़े उसको एक महापुरुष कहा जा सकता है, और किसी को नहीं। और जब आप अपने महापुरुष के विपक्ष में होने की सामर्थ्य तोड़ देना चाहते हैं तो ध्यान रहे कि उसके पक्ष में होना भी निष्प्राण हो जाता है। इसलिए भारत के महापुरुषों के विपक्ष में कोई नहीं है, और न ही उनके पक्ष में ही कोई है। जब आप ऐसी कोशिश करते हैं कि गांधी के विपक्ष में कोई न हो सके, तो आपको शायद पता नहीं है कि आप अपने हाथ से गांधी की हत्या कर रहे हैं, क्योंकि जिस आदमी के विपक्ष में कोई नहीं हो सकता, ध्यान रहे उसके पक्ष में भी कभी कोई नहीं होगा। जिसके विपक्ष में कभी कोई नहीं हो सकता उसके पक्ष में भी कोई कभी नहीं होगा। जिसके विपक्ष में होने की जरूरत नहीं पड़ती उसके पक्ष में होने की भी कोई जरूरत नहीं पड़ती और जिसके पक्ष में हमें होने की आवश्यकता नहीं है, हम तब ऊपरी तौर से कहते रहेंगे हम उसके पक्ष में हैं, लेकिन हमारे प्राण कभी उसके पक्ष में नहीं हो सकते। हम पक्ष में उसी के हो सकते हैं, जिसके विपक्ष में होना भी जरूरी मालूम पड़ सकता हो।

एक जमाना था, ईश्वर के विरोध में वे लोग समझे जाते थे जो नास्तिक थे, जो कहते थे कि ईश्वर नहीं है। मैं कहता हूं कि नास्तिक फिर भी ईश्वर को आदर देते थे, क्योंकि वे ईश्वर को विचारणीय मानते थे। इसलिए ईश्वर पर किताबें लिखते थे, तर्क करते थे और सिद्ध करना चाहते थे कि ईश्वर नहीं है। अब जमाना नास्तिक से भी आगे जा चुका है। जब किसी से कहो ईश्वर, तो वह कहता है, छोड़ो, वह कोई बात करने योग्य विषय नहीं है। नास्तिक तो ईश्वर को पूरी तरह सम्मान देता है, हो सकता है आस्तिक से ज्यादा सम्मान देता हो और सच तो यह है कि आस्तिक से ज्यादा सम्मान ही नास्तिक देता है, क्योंकि आस्तिक शायद ही कभी ईश्वर के सम्बन्ध में उतना विचार करता हो जितना नास्तिक कर रहा है और यह भी हो सकता है कि आस्तिक वे ही लोग बने बैठे हुए हैं जो ईश्वर के सम्बन्ध में विचार नहीं करना चाहते, झंझट में नहीं पड़ना चाहते। कहते हैं ठीक, है, होगा, जरूर होगा, होना ही चाहिए। लेकिन नास्तिक प्राणों की बाजी लगाता है ईश्वर के लिए। उसके लिए ईश्वर एक जीवन्त प्रश्न, एक लिविंग प्रॉबलम है। उसे तय ही करना है कि ईश्वर है या नहीं, क्योंकि उसी तय करने पर उसका जीवन निर्भर करेगा कि वह किस तरह जिये। आस्तिक कहता है कि है और जीता इस तरह है जैसे नास्तिक को जीना चाहिए। आस्तिक कहता है कि है परमात्मा, मंदिर में पूजा कर आता है और जीता ऐसे है जैसे परमात्मा पृथ्वी पर कहीं भी न हो। यह आस्तिक का सम्मान है या कि उस नास्तिक का सम्मान है जो प्राणों की बाजी लगा लेता है? सोचता है दिन और रात, विचार करता है, निर्णय करता है, संदेह करता है, सोचता है, खोजता है कि ईश्वर है? वह उसके प्राणों का सवाल है। अगर होगा तो उसे जिन्दगी

बदलनी पड़ेगी, नहीं होगा तो जिन्दगी दूसरे तरह की होगी। लेकिन नास्तिक ईश्वर को उपेक्षा के योग्य नहीं मानता।

हमारी नयी सदी में लाखों लोग ऐसे हैं जो नास्तिक भी नहीं हैं। वे कहते हैं ईश्वर होगा या नहीं होगा, कोई प्रयोजन नहीं है। यह पहली दफा ईश्वर की मौत की खबर है। ईश्वर मरने के करीब पहुंच गया है यह इसकी खबर है। नास्तिक ईश्वर को नहीं मरने देंगे, लेकिन यह उपेक्षा, यह इन्डिफरेंस कि ईश्वर की बात उठे और लोग कहें छोड़ो, कोई और बात करो यह इन्डिफरेंस ईश्वर की मौत हो सकती है और आप जानकर हैरान होंगे अगर दुनिया में नास्तिक नहीं होते तो आस्तिक कभी के इन्डिफरेंट हो चुके होते। उन्होंने कभी की फिक्र छोड़ दी होती ईश्वर की। वह जो नास्तिक विरोध किया जाता है, आलोचना किये जाता है वह आस्तिक को बल देता है। कहता है कि वह सोचे, फिर सोचे, फिर सोचे कि ईश्वर है या नहीं। दुनिया में विचार को जनमाने में, विचार को गतिमान करने में कंफर्मिस्ट जो होते हैं, स्वीकार करने वाले जो होते हैं, आस्थावादी जो होते हैं, उन्होंने कोई भी हाथ नहीं बढ़ाया।

आपको शायद पता न हो वेद और उपनिषद से आकर भारत में विचार की धारा रुक गयी थी, बिल्कुल रुक गयी थी। महावीर और बुद्ध, प्रबुद्ध कात्यायन, मक्खली गौशाल, अजित केशकम्बल, संजय वेलट्ठीपुत्र, इन सारे लोग ने वह धारा तोड़ी। इन सारे लोगों ने विरोध किया है वेद का, उपनिषद का। महावीर जैसा आलोचक खोजने को मिलेगा दुनिया में, बुद्ध जैसा आलोचक खोजने से मिलेगा ? बुद्ध और महावीर और दूसरे लोगों ने तोड़ दी सारी परम्परा। एक उफान आ गया सारे मुल्क में। सारे मुल्क में चिन्तन पैदा हुआ। उस चिन्तन की धारा में फिर बसुबन्धु और नागार्जुन और दिग्नाग और धर्मकीर्ति और कुंदकुंद और उमास्वाति और शंकर और रामानुज और निम्बार्क सब पैदा हुए। बुद्ध और महावीर ने जो आलोचना की उस आलोचना को उत्तर देने के लिए, उस आलोचना के पक्ष में खड़े होने के लिए एक हजार साल तक चिन्तन चला, एक हजार साल तक जवाब खोजना पड़ा बुद्ध के लिए, महावीर के लिए। या बुद्ध और महावीर के पक्ष में दलील खोजनी पड़ी। एक हजार साल मुल्क की प्रतिभा ने मंथन किया। अद्भुत अनुभव उस मंथन से उपलब्ध हुए। उस मंथन से शंकर जैसा आदमी पैदा हुआ, नागार्जुन जैसा अद्भुत आदमी पैदा हुआ उस मंथन से, उस आलोचना के परिणाम से। अगर बुद्ध और महावीर ने आलोचना न की होती तो हिन्दुस्तान में शंकर और नागार्जुन के पैदा होने की सम्भावना नहीं थी। वे उस आलोचना के प्रतिफल थे। लेकिन फिर शंकर के बाद आलोचना क्षीण पड़ गयी, फिर शंकर को स्वीकार कर लिया गया। शंकर के बाद फिर आलोचना नहीं हो सकी। फिर एक हजार साल तक आलोचना करने से भारत में भयभीत

हो गये, क्योंकि बुद्ध और महावीर ने आलोचना की थी तो हमें पन्द्रह सौ साल तक सोचना पड़ा था। आदमी सोचना नहीं चाहता। आदमी सुस्त और काहिल है। वह समझता है कि बिना सोचे काम चल जाये तो बहुत अच्छा है। पन्द्रह सौ साल तक टक्कर लेनी पड़ी, मस्तिष्क को, श्रम करना पड़ा। तो आदमी ने सोचा, अब छोड़ो फिक्र, शंकर पर विश्वास कर लो। शंकर पर विश्वास कर लिया। हजार साल से आलोचना फिर बन्द हो गयी, फिर हिन्दुस्तान में हजार सालों में उस तरह के लोग पैदा न हो सके कि नागार्जुन, बुद्ध या महावीर पैदा हो सकते हों। नहीं पैदा हो सके।

अब भारत का पुनर्जागरण का युग आया। देश स्वतन्त्र हुआ। अगर इस स्वतन्त्रता के साथ भारत के मस्तिष्क में आलोचना की शक्ति नहीं जगती है तो हिन्दुस्तान की प्रतिभा का जन्म नहीं होगा, यह मैं आपसे कह देना चाहता हूं। चाहिए तीव्र आलोचना कि हिन्दुस्तान में पच्चीसों तीव्र आलोचक पैदा हों जो हिन्दुस्तान की जड़ें हिला दें। उसके मस्तिष्क को हिला दें। तो हम आने वाली सदी में फिर बुद्ध ओर महावीर और शंकर जैसे लोग पैदा कर सकेंगे। नहीं तो हम पैदा नहीं कर सकेंगे। लेकिन हम बिलकुल नपुंसक, इम्पोटेंट हो गये हैं। हमारी जान निकलती है जरा-सा विचार करने में, जरा-सा विचार, जरा आलोचना की कि हमारे प्राण कांपते हैं। इतनी कमजोर कौम प्रतिभा पैदा नहीं कर सकती, इतनी कमजोर कौम कैसे प्रतिभा पैदा करेगी ? प्रतिभा तो एक साधना है, प्रतिभा तो एक श्रम है।

आपको पता है कि तीन सौ वर्षों में यूरोप में जो भी विकास हुआ है वह किन लोगों की वजह से हुआ है ? आस्तिकों की वजह से ? श्रद्धा करने वालों की वजह से ? कन्फर्मिस्ट लोगों की वजह से ? ऑर्थोडॉक्स लोगों की वजह से ? रूढ़िग्रस्त लोगों की वजह से ? रूढ़िग्रस्त लोगों की वजह से दुनिया का कभी कोई विकास नहीं हुआ। किसके द्वारा विकास हुआ है ? उन विद्रोहियों की वजह से जिन्होंने सारी रूढ़ि तोड़ने की हिम्मत की, जिन्होंने सन्देह किया, विश्वास नहीं। जिन्होंने आलोचना की, आस्था नहीं। तीन सौ वर्ष के उन वाल्तेयर, रूसो, नीत्शे, फ्रायड, और मार्क्स ऐसे लोगों की वजह से पश्चिम की प्रतिभा को झकझोड़ मिला। प्रतिभा चौंक गयी। उत्तर खोजना जरूरी हो गया। या तो पक्ष में या विपक्ष में होना पड़ेगा। कोई विकल्प नहीं रहा कि आप चुपचाप अपनी सुस्ती में और उपेक्षा में बैठे रहें। अब नीत्शे को सुनिएगा तो उसके पक्ष और विपक्ष में, कहीं न कहीं आपको होना पड़ेगा। आप यह नहीं कह सकते कि ठीक है, सुन लिया। आपको यह कहना पड़ेगा कि नीत्शे ठीक है या गलत है। दो के अतिरिक्त तीसरा कोई विकल्प नहीं है। और जब आपको किसी के ठीक या गलत के लिए सोचना पड़ता है तो आपकी प्रतिभा में अंकुर आने शुरू होते हैं। लेकिन जब

आप कहते हैं आलोचना करनी ही नहीं है कि आलोचना विध्वंसात्मक है, हमें तो जो कहना है वह कहना चाहिए। तो दुनिया के सभी श्रेष्ठ विचारक विध्वंसात्मक थे, लेकिन बाद में हमें याद भी नहीं रह जाता कि वे कितने बड़े आलोचक रहे होंगे और कैसी तीव्र आलोचना की होगी। हम तो समझते हैं आलोचना यानी गाली-गलौज हो गयी।

यह जो हमारी आज की धारणा है, इस धारणा को बिल्कुल आग लगा देने की जरूरत है। एक-एक बच्चे को सन्देह सिखाया जाना चाहिए, डाउट सिखाया जाना चाहिए। एक बच्चे को क्रीटिकल होने की, आलोचनात्मक होने की प्रेरणा देनी चाहिए। एक-एक बच्चे से मां-बाप को, गुरु को कहना चाहिए कि हमारी बात मान मत लेना, विचार करना, सोचना, झगड़ना, हिम्मत से हमसे लड़ना। अगर तुम्हारे विवेक को स्वीकार हो तो ही मानना, अन्यथा मत मानना। अगर हम इतनी हिम्मत दिखायेंगे तो हिन्दुस्तान की प्रतिभा विकसित होगी, अन्यथा नहीं विकसित हो सकती। क्या करूं? आपकी बात मान लूं, आलोचना नहीं करनी चाहिए? या कि यह देखूं कि आने वाले मुल्क का भविष्य आलोचना से ही पैदा हो सकता है?

मैंने कल शायद कहा कि श्री राधाकृष्णन कोई विचारक नहीं हैं। बस चिट्ठियां आ गयीं कि आपने बहुत बुरा काम कर दिया, आपने राधाकृष्णन को ऐसे कैसे कह दिया?

श्री राधाकृष्णन विचारक हैं या नहीं, यह सोचना चाहिए। मैंने कह दिया तो क्या कोई मान लेने की जरूरत है? मैं कहता हूं कि नहीं हैं विचारक। मैं कहता हूं तो मैं इसलिए दलील देता हूं। आप सोचिये कि हैं विचारक तो दलील खोजिए। बस इतना ही मैं चाहता हूं कि विचार की प्रक्रिया चले। हो सकता है श्री राधाकृष्णन विचारक सिद्ध हों विचार करने से। और मेरी बात गलत सिद्ध हो। लेकिन मुझे कहना नहीं चाहिए यह कौन-सी बात हुई? मुझे जो लगता है वह मुझे कहना चाहिए। मुझे लगता है श्री राधाकृष्णन कोई विचारक नहीं हैं। केवल एक टीकाकार हैं, एक व्याख्याकार हैं, एक अनुवादक हैं, एक अच्छे अनुवादक हैं, एक अच्छे कमेंटेटर हैं, एक अच्छे टीकाकार हैं। उन्होंने पूरब की धारणाओं को पश्चिम में जितनी सुन्दरता से पहुंचाया है उतना शायद किसी ने नहीं पहुंचाया है। लेकिन विचारक वे नहीं हैं। उन्होंने एक नये विचार को जन्म नहीं दिया है। उनकी सारी किताबों में एक भी ऐसा सूत्र नहीं है जो उनकी मौलिक प्रतिमा से जन्मा हो। वे सब गीता, उपनिषद और वेदों के उधार सूत्र हैं। विचारक वे नहीं हैं। विचारक होने का कोई सवाल नहीं है उनका। लेकिन हमने कुछ ऐसी हालत पकड़ ली है कि जिस आदमी की हम प्रशंसा करेंगे उसकी हम सब तरह से प्रशंसा करेंगे। हम फिर कोई हिस्सा नहीं छोड़ सकते कि वह न हो, वह सभी

होना चाहिए। हिन्दुस्तान में एक पागल भाव पैदा हो गया है कि हमारे महापुरुष में सभी कुछ होना चाहिए। दुनिया के किसी महापुरुष में सभी कुछ नहीं होता। अगर आप महावीर के पास पूछने जायेंगे कि साइकिल का पंचर कैसे सुधारा जा सकता है, तो महावीर नहीं बता सकते। इसके लिए तो सड़क के कोने पर बैठा हुआ, एकटक लगाये हुए बैठा हुआ साइकिल सुधारने वाला जो आदमी है वही बता सकेगा। लेकिन हमारी धारणा यह है कि महावीर सवज्ञ हैं। वही सभी कुछ जानते हैं। ऐसा कुछ भी नहीं जिसको वह नहीं जानते। पागलपन की बातें हैं। बुद्ध ने मजाक उड़ाया है जैनियों की इस धारणा का। बुद्ध ने कहा है एक ज्ञानी हैं। उनके भक्त कहते हैं कि वे सर्वज्ञ हैं, वे त्रिकालज्ञ हैं, वे तीनों काल जानते हैं। लेकिन उन्हीं ज्ञानी को मैंने ऐसे घरों के सामने भिक्षा मांगते देखा है जहां बाद में पता चलता है घर में कोई है ही नहीं। मैंने उन्हीं ज्ञानी को रास्ते पर चलते हुए कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ते देखा है। बाद में पता चलता है कि अंधेरे में कुत्ता सोया हुआ था और उनके भक्त कहते हैं कि वे त्रिकालज्ञ हैं, तीनों काल जानते हैं!

कहो कि बुद्ध यह गड़बड़ बातें कर रहे हैं। बुद्ध महावीर की आलोचना कर रहे हैं, यह ठीक नहीं कर रहे हैं। नहीं, बुद्ध को जो ठीक लग रहा है वह कह रहे हैं। शंकर कहते हैं बुद्ध के लिए कि बुद्ध भटके हुए हैं। बुद्ध बड़े महिमाशाली हैं। होंगे; लेकिन शंकर कहते हैं कि भगवान ने बुद्ध को इसलिए अवतार दिया, वे लोगों को भटका सकें।

आह! किसी आलोचक ने कैसी प्यारी कहानी गढ़ी है। नर्क और स्वर्ग बनाये हैं भगवान ने, लेकिन नर्क में कोई जाता ही नहीं था तो नर्क का जो अधिकारी था उसने भगवान से जाकर कहा कि नर्क में कोई आता ही नहीं। तो मुझे किसलिए बैठाया हुआ है? तो भगवान ने बुद्ध को अवतार दिया है कि तुम जाकर लोगों को भ्रष्ट करो ताकि वे नर्क जा सकें। तो शंकर गलत कह रहे हैं? शंकर गलत कह रहे हैं या सही कह रहे हैं यह सोचने की बात है। लेकिन शंकर को कहने का हक है। जो उसे ठीक लगता है वह कह रहे हैं। उसे लगता है कि बुद्ध ने लोगों को भ्रष्ट किया। उस बुद्ध ने, जिनके लिए हम सोचते हैं उनके जैसा महापुरुष जगत् में कोई पैदा नहीं हुआ। लेकिन शंकर कहते हैं कि भ्रष्ट किया है। और शंकर की उम्र कितनी है? शंकर ने जब यह बात कही तब उसकी उम्र तीस साल थी। लेकिन अच्छे लोग रहे होंगे। शंकर की बात भी उन्होंने सुनी। न तो पत्थर मारे, न कहा कि बहिष्कार कर देंगे। शंकर के समय तक बुद्ध तो भगवान हो चुके थे। और एक गरीब घर के छोकरे ने कहना शुरू कर दिया कि नहीं, यह आदमी भ्रष्ट करने को पैदा हुआ है। इसने दुनिया को बनाया नहीं, बिगाड़ा। हिम्मतवर लोग थे। जब इतनी हिम्मत होती है तो विचार विक-

सित होता है।

हमने सारी हिम्मत खो दी है। और फिर हम चाहते हैं कि हम विचारशील हो जायें। हम विचारशील नहीं हो सकेंगे। विचार का जन्म होता है सन्देह से, विचार का जन्म होता है संघर्ष से, विचार का जन्म होता है आलोचना से। इसलिए यह मत कहें मुझसे कि मैं आलोचना न करूं! मैं तो आलोचना करूंगा और जितना आप कहेंगे उतना खोज-खोज कर करूंगा। और एक-एक महापुरुष का पीछा करूंगा कि मुझे जरूरत मालूम होती है, मुझे आवश्यकता लगती है कि इस समय देश के लिए सबसे बड़ी जरूरत अगर कुछ है तो वह यह है कि इस देश का हजारों साल से रुका हुआ विचार का अवरुद्ध प्रवाह उठ जाये, बहने लगे हमारी सरिता का। फिर से हम सोचने लगें, फिर से हम पूछने लगें, फिर से इन्क्वायरी पैदा हो जाये। कैसे अद्‌भुत लोग रहे होंगे। खोजते थे कितनी दूर-दूर तक, कितनी दूर-दूर तक यात्रा करते थे। नालन्दा में दस हजार विद्यार्थी थे। सारे हिन्दुस्तान के कोने से हिन्दुस्तान के बाहर से अफगानिस्तान से और बर्मा से और चीन से हजारों मील की पैदल यात्रा करके आते थे संदेह सीखने, तर्क सीखने, पूछने, जिज्ञासा करने।

एथेंस में जहां विचार का जन्म हुआ यूरोप में, थोड़े से दिनों में एक आदमी ने विचार को जन्म दिला दिया—सॉक्रेटीज ने। क्या किया सॉक्रेटीज ने? सात्रेटीज ने जिन्दगी के सारे मसले फिर से उठा दिये। एक-एक प्रश्न फिर से खड़ा कर दिया। एक-एक प्रश्न को जो हम समझते थे हल हो गया फिर से जिन्दा बना दिया। जब सारे प्रश्न जिन्दा हो गये तो सोचना मजदूरी हो गयी। उस सोचने से अरस्तू पैदा हुआ, प्लेटो पैदा हुआ, प्लेटीनेस पैदा हुआ। वे सारे के सारे लोग पैदा हुए, सारे यूरोप की विचारधारा पैदा हुई, एक सॉक्रेटीज से। क्योंकि उसने प्रश्नावली पैदा कर दी। उसने एक ही उत्तर को निःप्रश्न नहीं रहने दिया। अस्त-व्यस्त कर दिये सारे उत्तर। अतीत ने जो भी उत्तर दिये थे सब गड़बड़ कर दिये। और आदमी को वहां खड़ा कर दिया जहां वह पूछे क्या है सत्य। सॉक्रेटीज से लोग कहते कि तुम उत्तर तो दो। तुम तो बताओ सत्य क्या है। वह कहता, यह मेरा काम नहीं। मेरा काम यह है बताना कि सत्य क्या नहीं है। सत्य क्या है इसकी तो तुम्हारे भीतर जिज्ञासा पैदा हो जायेगी। यह तो तुम खोज लोगे। असत्य क्या है वह मैं बता दूं। मेरा काम पूरा हो जायेगा। सात्रेटीज ने कहा, मैं तो एक मिडवाइफ, एक दाई की तरह हूं। मेरा काम बच्चों को जन्माना नहीं है, केवल बच्चों के लिए द्वार दे देना है कि वह जन्म जाये। बच्चा तो तुमसे पैदा होगा। मैं बच्चा नहीं पैदा कर सकता। सॉक्रेटीज ने कहा, मैं तो सन्देह पैदा करूंगा। सॉक्रेटीज से लोग डरते थे। अगर रास्ते पर मिल जाये तो नमस्कार करने में डरते थे। क्योंकि उससे नमस्कार किया कि कोई झंझट खड़ा न हो जाये।

तो मैंने नमस्कार किया तो वह फौरन पूछेगा कि आपने नमस्कार क्यों किया। जब आप कुछ तो कहेंगे, आप कुछ कहेंगे और डायलॉग शुरू हो जायेगा।

सॉक्रेटीज से लोग बचने लगे। वह यह देख लेता कि वह आ रहा है तो वे दूसरी गली से निकल जाते। लेकिन उस अकेले आदमी ने सत्य की आग लगा दी इसका ही बदला लिया है एथेंस के लोगों ने उससे। हम उस आदमी से बदला लेते हैं जो हमारे अज्ञान को प्रकट कर देता है। क्योंकि वह हमारे अहंकार को चोट पहुंचा देता है। जिस बात को हम समझते थे कि हम जानते हैं वह आकर बता देता है कि नहीं जानते। बहुत गुस्सा आता उस आदमी को कि हम तो मान बैठे थे कि हम तो जानते थे, निश्चित हो गये थे, खोज पूरी हो गयी थी। इस आदमी ने फिर झंझट खड़ी कर दी। इसने ऐसी बातें उठा दीं जिससे शक पैदा होता है कि हम जानते हैं या नहीं। गुस्सा आता है उस आदमी पर। ऐसे आदमी से हमने हमेशा बदला लिया है। सारे एथेंस के लोग परेशान हो गये, क्योंकि सात्रेटीज ने सारे पुराने ज्ञान को भस्मीभूत कर दिया, पुराने भवन को गिरा दिया, एक-एक आदमी की आस्था की जमीन खींच ली, एक-एक आदमी अन्धेरे में लटक गया और एक-एक आदमी यह कहने लगा, यह आदमी बहुत खतरनाक है। इस आदमी से छुटकारा चाहिए। यह हमें शांति से नहीं जीने देगा।

सॉक्रेटीज पर उन्होंने मुकद्दमा चलाया और कहा कि यह सॉक्रेटीज लोगों का दिमाग खराब करता है। यह हमारे युवकों का दिमाग बिगाड़ता है। इस आदमी को फांसी होनी चाहिए। इसको जहर पिलाना चाहिए। सॉक्रेटीज से अदालत के अध्यक्ष ने कहा, क्योंकि सॉक्रेटीज बहुत प्यारा आदमी था। मजिस्ट्रेट ने उससे कहा कि सॉक्रेटीज अगर तुम यह वचन दे दो कि आगे से तुम सत्य की बातें नहीं करोगे तो हम तुम्हें छोड़ सकते हैं। सॉक्रेटीज ने कहा कि वह तो मेरा धन्धा है सत्य की बातें करना। अगर वह धंधा ही छूट जाये तो मैं कर भी क्या करूंगा? सॉक्रेटीज से वह अध्यक्ष कह रहा है अदालत का कि तुम सत्य की बातें और जिज्ञासा और प्रश्न खड़ा न करोगे। सॉक्रेटीज वहीं अदालत में पूछता है कि महानुभाव क्या मैं पूछ सकता हूं, सत्य क्या है? तो पक्का हो जाये पहले कि सत्य क्या है तो फिर मैं सोचूं भी कि उसे छोड़ना है कि नहीं छोड़ना है। सत्य का अर्थ क्या है? सत्य कहां है? वह अध्यक्ष बोला कि यही तो हम कहते हैं कि यह सब काम पूछने का तुम छोड़ दो। सॉक्रेटीज ने कहा कि मैं जिन्दगी छोड़ दूंगा, लेकिन यह नहीं छोड़ूंगा। क्योंकि सत्य से ज्यादा प्यारा कुछ भी नहीं है। और सत्य की खोज में जिसे जाना है, उसे झूठे ज्ञान को छोड़ देना पड़ता है। लोग मुझसे नाराज हो गये हैं। क्योंकि मैंने उनसे झूठा ज्ञान छीन लिया है और सच्चे ज्ञान पर जाने के लिए वे हिम्मत और साहस नहीं जुटा पा रहे हैं। इसलिए एक वैक्यूम, एक शून्य पैदा हो गया है। लेकिन मैं यह शून्य पैदा करता रहूंगा

या मर जाऊं या जिन्दा रहूंगा तो सत्य बोलता रहूंगा । सत्य के बिना मैं कैसे जी सकता हूं ? उस आदमी ने मर जाना पसन्द किया, लेकिन उस आदमी ने एथेंस की संस्कृति को आकाश तक उठा दिया । उस अकेले आदमी ने जिसका खून किया गया, जिसको जहर दिलाया गया उस एक आदमी की वजह से पश्चिम की सारी संस्कृति की गंगा पैदा हुई । उसकी गंगोत्री सात्रेटीज में है ।

हिन्दुस्तान में सॉक्रेटीज, सुकरात जैसे लोगों की जरूरत है ताकि हजारों साल का बंधा हुआ प्रवाह टूट जाये, मुक्त हो सके । हिन्दुस्तान फिर सोच सके, फिर विचार कर सके । हमें ख्याल ही नहीं, हम जितना विश्वास कर लेते हैं उतना ही विचार करना मुश्किल हो जाता है । विश्वास विचार की हत्या है । जितना हम विश्वास करते हैं उतना विचार की कोई जरूरत नहीं रह जाती । विचार की जरूरत तो तब पैदा होती है जब हम विश्वास नहीं करते । जब हम मान लेते हैं कि गांधी महात्मा हैं, काम खत्म हो गया । बच्चे से हमने कह दिया कि वह महात्मा हैं, बात खत्म हो गयी । बच्चों को पूछना चाहिए कि महात्मा वह कैसे हैं, क्यों हैं । वही महात्मा क्यों हैं, और कोई महात्मा क्यों नहीं है ? ऐसी बात क्या है जिसे हम महात्मा मानें ? लेकिन बात कहेगा कि नहीं, इतनी बातचीत की जरूरत नहीं है । हम जो कहते हैं वह मानो । हमेशा पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी से यही कहती है । कि हम जो कहते हैं वह मानो । यह पुरानी पीढ़ी की कमजोरी बताती है, ताकत नहीं । क्योंकि जब भी कोई आदमी कहता है, मैं जो कहता हूं मानो, तो वह बता रहा है, वह कमजोर आदमी है । उसको अपनी बात मनवाने के लिए विवेक को जगाने का विश्वास वह नहीं कर सकता । वह डंडे के बल पर कह रहा है कि मैं जो कहता हूं वह मानो । मानना पड़ेगा । मेरी उम्र ज्यादा है । मेरा अनुभव ज्यादा है । मैंने जिन्दगी देखी है । देखी होगी जिन्दगी आपने । लेकिन जो जिन्दगी आपने देखी, ये बच्चे उस जिन्दगी को कभी नहीं देख सकेंगे । ये दूसरी जिन्दगी देखेंगे । कृपा करके अपनी जिन्दगी का ज्ञान इनकी छाती पर मत थोपें । इनको मुक्त करो ताकि ये जो नयी जिन्दगी देखेंगे उसको देख सकें । लेकिन नहीं हम भयभीत लोग कहीं ज्ञान न खो जाये, कहीं आस्था न खो जाये, कहीं विश्वास न खो जाये, कहीं श्रद्धा न खो जाये, कहीं सब न खो जाये और है हमारे पास कुछ भी नहीं । सब खोया हुआ है । सिर्फ धुआं-धुआं है । कुछ भी नहीं है हमारे पास ।

मैंने सुनी है एक कहानी । एक सम्राट के दरबार में एक आदमी ने आकर कहा था कि मैं स्वर्ग से वस्त्र ला सकता हूं तुम्हारे लिए । उस सम्राट ने कहा, स्वर्ग के वस्त्र ? सुने नहीं कभी, देखे नहीं कभी । उस आदमी ने कहा, मैं ले आऊंगा, देख भी सकेंगे, पहन भी सकेंगे । लेकिन बहुत खर्चा करना पड़ेगा । कई करोड़ रुपये खर्च हो जायेंगे । क्योंकि रिश्वत की आदत देवताओं तक पहुंच गयी।

जब से ये दिल्ली के राजनीतिज्ञ मर-मर कर स्वर्ग पहुंच गये हैं तब से रिश्वत की आदत वहां पहुंच गयी । वहां भी रिश्वत जारी हो गयी है । क्योंकि देवता कहते हैं हम आदमियों से पीछे थोड़े ही रह जायेंगे और यहां पांच रुपये की रिश्वत चलती है । वहां तो करोड़ों से नीचे की बात नहीं होती । क्योंकि देवताओं का लोक है ।

सम्राट ने कहा कोई हर्जा नहीं, लेकिन धोखा देने की कोशिश मत करना । करोड़ों रुपये देंगे तुम्हें, लेकिन भागने की कोशिश मत करना । मुश्किल में पड़ जाओगे । उसने कहा, भागने का सवाल नहीं है । महल के चारों तरफ पहरा कर दिया जाये, मैं महल के भीतर ही रहूंगा । क्योंकि देवताओं का रास्ता सड़कों से होकर नहीं जाता वह तो अंतरिक्ष यात्रा है अन्दर की । वहीं से, अन्दर से कोशिश करूंगा । आप घबराइये मत । तलवारें नंगी लगा दी गयीं । उस आदमी ने छः महीने का समय मांगा और छः महीने में कई करोड़ रुपये सम्राट से ले लिए । दरबारी हैरान थे और चिंतित थे । लेकिन सम्राट ने कहा, घबराहट क्या है । जायेगा कहां रुपये लेकर महल के बाहर ।

छः महीने पूरे होने पर सारी राजधानी में हजारों लोग इकट्ठे हो गये, लाखों लोग इकट्ठे हो गये देखने को । वह आदमी ठीक समय बारह बजे एक बहुमूल्य पेटी लिए हुए महल के बाहर आ गया । अब तो कोई शक की बात न थी । वह पूरा जुलूस राजमहल पहुंचा । दूर-दूर के राजा, सम्राट, धनपति दरबार में इकट्ठे थे देखने को । उस आदमी ने पेटी वहां रखी और कहा, महाराज यह ले आया । ये वस्त्र आ गये । अब आप मेरे पास आ जायें । मैं देवताओं के वस्त्र दे दूं । आप पहन लें । महाराज ने अपनी पगड़ी दी । उसने पगड़ी उस पेटी में डाल दी । वहां से खाली हाथ बाहर निकाला और कहा, महाराज यह पगड़ी दिखायी पड़ती है । हाथ में कुछ भी न था । महाराज ने गौर से देखा । उस आदमी ने कहा, ख्याल रहे । देवताओं ने चलते वक्त मुझ से कहा था यह पगड़ी और ये कपड़े उसी को दिखायी पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ हो । उस सम्राट ने कहा, हां, दिखायी पड़ता है । क्यों दिखायी नहीं पड़ेगा ? बड़ी सुन्दर पगड़ी है । ऐसी पगड़ी न तो कभी देखी, न सुनी । दरबारियों ने सुना । किसी को भी पगड़ी दिखायी नहीं पड़ती थी । पगड़ी होती तो दिखायी पड़ती । लेकिन दरबारियों ने देखा कि इस वक्त यह कहना कि नहीं दिखायी पड़ती है, व्यर्थ अपने मरे हुए बाप पर शक पैदा करवाने से क्या फायदा है । पगड़ी से हमको लेना-देना क्या है । अपने बाप को बचाओ, पगड़ी से प्रयोजन क्या है । वे भी तालियां बजाने लगे और कहने लगे, धन्य महाराज, धन्य ! पृथ्वी पर ऐसा अवसर कभी नहीं आया । ऐसी पगड़ी कभी नहीं देखी गयी । एक-एक आदमी अपने मन में सोच रहा था कि बड़ी गड़बड़ बात है । लेकिन उसने देखा कि सारे

लोग कहते हैं कि पगड़ी है तो उसने सोचा कि अपने-बाप गड़बड़ रहे हों, लेकिन यह भी किसी से कहने की बात नहीं है। अपने भीतर जान लिया, यह ठीक है। अपना राज अपने घर में रखो। जब सारे लोग कहते हैं तब ठीक ही कहते होंगे।

हमारी यही दलील है कि सारे लोग कहते हैं तो ठीक कहते होंगे। जब पूरा हिन्दुस्तान कहता है कि फलां आदमी महावीर भगवान है, फलां आदमी बुद्ध अवतार है, फलां आदमी मुहम्मद पैगम्बर है तो ठीक ही कहता होगा। सब लोग कहते होंगे तो ठीक ही कहते होंगे। अकेले क्यों झंझट में पड़ना—उन लोगों ने सोचा। अपनी झंझट का जिसको जितना डर लगा वह उतनी बार आ गया और कहने लगा, अहा महाराज धन्य हैं। क्योंकि उसे लगा कि कहीं मैंने धीरे-धीरे कहा तो आसपास के लोगों को शक न हो जाये कि यह आदमी थोड़ा धीरे-धीरे बोलता है। जितने चोर होते हैं दुनिया में उतने जोर से चिल्लाते हैं कि चोरी किसने की है। चोर को पकड़ो। वे चोर चिल्लाते हैं ये बातें ताकि किसी को शक न हो जाये कि यह आदमी कुछ भी नहीं चिल्लाता है। कहीं चोर न हो। रिश्वतखोर चिल्लाते हैं कि मुल्क से रिश्वत बन्द होनी चाहिए, बेईमान नेता मुल्क के सामने भाषण देते हैं और कहते हैं भ्रष्टाचार नष्ट करना है। और जितने जोर से मंच पर चिल्लाते हैं कि भ्रष्टाचार नष्ट करना है, जनता समझती है यह बेचारा तो कम-से-कम भ्रष्टाचारी नहीं होगा। नहीं तो इतना भ्रष्टाचार के खिलाफ बोलता ! और जनता को पता नहीं कि भ्रष्टाचारी को भ्रष्टाचार के खिलाफ बोलना ही पड़ता है।

सम्राट् ने देखा कि जब सारा दरबार कह रहा है तो समझ गया वह कि अपने पिता गड़बड़ रहे हैं। अब कुछ बोलना ठीक नहीं है। जो कुछ हैं कपड़े हैं या नहीं हैं, स्वीकार कर लेना ठीक है। पगड़ी पहन ली उसने जो थी ही नहीं। कोट पहन लिया उसने जो था ही नहीं। एक-एक वस्त्र उसके छिनने लगे, वह नंगा होने लगा। आखिरी वस्त्र रह गया तब वह घबराया कि यह तो बड़ी मुश्किल बात है। कहीं कपड़े मालूम नहीं होते। बस, आखिरी अण्डरवीयर रह गया। अब यह भी जाता है। और उस आदमी ने कहा, महारज यह अण्डरवीयर देवताओं का पहनिये, इसको निकालिये। अब वह जरा घबराया। यहां तक तो गनीमत थी। और दरबारी हैं कि ताली पीटे जा रहे हैं कि महाराज कितने सुन्दर मालूम पड़ रहे हैं इन वस्त्रों में आप। और महाराज बिल्कुल नंगे हो गये हैं। वे नंगे खड़े हो गये हैं। वे नंगे खड़े हुए हैं। उस आदमी ने धीरे से कहा महाराज घबराइये मत। सबको अपने बाप की फिक्र है। बिल्कुल निकालिये, नहीं तो झंझट हो जायेगी, लोगों को पता चल जायेगा। उन्होंने जल्दी अण्डरवीयर निकाल दिया, क्योंकि यह तो घबराहट का मामला था। वे बिल्कुल नग्न खड़े हो गये और दरबारी तो नाच रहे हैं खुशी में कि धन्य हैं महाराज और एक-एक आदमी

को राजा नंगा दिखायी पड़ रहा है। लेकिन अब कोई उपाय नहीं है। रानी भी देख रही है कि राजा नंगा है, लेकिन कुछ कह नहीं सकती। वह भी ताली पीट रही है। कह रही है महाराज, इतने सुन्दर आप कभी नहीं दिखायी पड़े।

और जब उस आदमी ने कहा कि महाराज देवताओं ने मुझसे कहा था कि जब यह वस्त्र महाराज पहल लें तो उनकी शोभा-यात्रा का प्रोसेशन निकाला जाना चाहिए। राजधानी में हजारों लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं, रास्तों के किनारों पर। लाखों लोग खड़े हैं। वे कहते हैं कि हम महाराज के दर्शन करेंगे। रथ तैयार है, आप कृपा करके रथ पर सवार होइये। आप बाहर चलिए। अब महाराज और भी घबराये। अभी तक तो कम-से-कम दरबारी थे, अपने ही मित्र थे, परिचित थे, घर के लोग थे। यह झंझट। उस आदमी ने राजा के कान में कहा, आप घबराइये मत, आपके रथ के पहले ही डुगडुगी पिटती चलेगी और खबर की जायेगी कि यह वस्त्र उसी को दिखायी पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ है। आप घबराइये मत। जैसे आदमी ये भीतर हैं वैसे ही आदमी बाहर हैं। सब तरफ एक से एक बेवकूफ आदमी हैं। आप घबराइये मत और अगर आपने इन्कार किया कि बाहर नहीं जाता हूं तो लोगों को शक हो जायेगा आपके पिता पर।

राजा ने कहा, चलो भई एक दफा आदमी झूठ में फंस जाये तो फिर कहां रुके यह बहुत मुश्किल हो जाता है। जो आदमी झूठ के पहले ही कदम पर रुक जाता है वह रुक सकता है। जो दस-पांच कदम आगे चल गया है फिर बहुत मुश्किल हो जाती है। लौटना भी मुश्किल। आगे जाना भी मुश्किल। उस बेचारे गरीब सम्राट को नंगा जाकर रथ पर खड़ा होना पड़ा। उसके सामने ही डुगडुगी पिटने लगी कि ये वस्त्र सम्राट के सुन्दर वस्त्र देवताओं के वस्त्र हैं। ये वस्त्र उन्हीं को दिखायी पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुए हैं और सबको वस्त्र दिखायी पड़ने लगे। एकदम प्रशंसा होने लगी। गांव में खबर तो पहले ही पहुंच गयी कि सब लोग तैयार होकर आये थे कि अपने बाप की रक्षा करनी है और वस्त्र देखने थे। वस्त्र तो दिखायी नहीं पड़ते थे। राजा नंगा था लेकिन जन-समूह कहने लगा कि ऐसे सुन्दर वस्त्र सपनों में भी नहीं देखे, लेकिन कुछ बच्चे अपने बापों के कंधों पर चढ़कर आ गये थे। वे अपने बाप से कहने लगे, पिताजी, राजा नंगा है। उनके पिताजी ने कहा, चुप नासमझ, अभी तेरा ज्ञान क्या है, अभी तेरी उम्र क्या है। ये बातें अनुभव से आती हैं, ये बड़ी गहरी बातें हैं। जब मेरी उम्र का हो जायेगा, अनुभव मिल जायेगा तो वस्त्र दिखायी पड़ने लगेंगे। ये बातें अनुभव से दिखायी पड़ती हैं। जो बच्चे चुप नहीं हुए उनके मां-बाप मुंह बन्द करके भीड़ के पीछे खिसक गये, क्योंकि बच्चों का क्या भरोसा ? आसपास के लोग सुन लें कि इस आदमी के लड़के ने यह कहा है !

हमेशा भीड़ के भय के कारण हम असत्यों को स्वीकार किये बैठे रहते हैं, भीड़ का भय, फियर ऑफ क्राउड । जिसको हम सत्य मानकर बैठे हैं वह सत्य है ? या सिर्फ भीड़ का भय है कि चारों तरफ के लोग क्या कहेंगे ? चारों तरफ के लोग जिसको मानते हैं उसको हम भी मानते हैं । ऐसा आदमी सत्य की खोज में कभी भी नहीं जा सकता है, जो भीड़ को स्वीकार कर लेता है ।

सत्य की खोज भीड़ से मुक्त होने की खोज है । वह जो पब्लिक ओपीनियन है, वह जो भीड़ का मत है उसको पकड़ कर जो बैठ जाता है वह आदमी सत्य की यात्रा में एक कदम भी नहीं उठा सकता, क्योंकि भीड़ एक-दूसरे से भयभीत है । आप जिनसे भयभीत हैं वे आपसे भयभीत हैं, यह म्युचुअल फियर है, इससे छुटकारा बहुत मुश्किल है । और लोग क्या कहेंगे ? दुनिया क्या कहेगी ! जब सब लोग ऐसा मानते हैं तो ठीक ही होगा । सत्य की ये धारणाएं सत्य की धारणाएं नहीं हैं, असत्य को सत्य बनाने की तरकीबें हैं । वह जो फॉल्स है, वह जो मिथ्या है उसको भीड़ के द्वारा बिल्कुल इकट्ठा किया जाता है । सत्य तो अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है, लेकिन असत्य को भीड़ का मत चाहिए, उसके बिना खड़ा नहीं हो सकता ।

इसीलिए जब दुनिया में असत्य को फैलाना हो, जब असत्य को प्रचारित करना हो तो एक आदमी हिम्मत नहीं जुटा पाता । भीड़ चाहिए, भीड़ के साथ प्रचार चाहिए, भीड़ के साथ भय चाहिए, क्योंकि भय के बिना भीड़ भी मानने को राजी नहीं होगी । इसलिए वे कहते हैं कि अगर ईश्वर को नहीं मानोगे तो नर्क जाना पड़ेगा । अब नर्क जाने की तैयारी किसी की भी नहीं हो सकती । ईश्वर को नहीं मानने की तैयारी बहुत लोगों की हो सकती है, लेकिन नर्क जाने की तैयारी और फिर नर्क का चित्र कि वहां आग के कड़ाहे जल रहे हैं अनन्त काल से, तेल भरा है, उनमें न तेल चुकता है, न आग चुकती है और आदमी उनमें सड़ाये जा रहे हैं, चलाये जा रहे हैं । आदमी मरता भी नहीं है, उस कड़ाहे में सिर्फ जलता है । करोड़ों-करोड़ों कीड़े हैं जो आदमी के जाते ही उसके शरीर में सब तरफ से घुस जाते हैं, हजारों छेद कर देते हैं, चक्कर लगाते हैं उसके शरीर में वे कीड़े । वे कीड़े मरते नहीं, वे कीड़े अमर हैं और आदमी के शरीर भर में छिद्र हो जाते हैं, छलनी हो जाता है, लेकिन वह भी मरता नहीं है और लाखों-करोड़ों कीड़े उसके शरीर में सब तरफ से घुमते हैं और दौड़ते हैं । इस तरह की घबराहट पैदा करते हैं । वे कहते हैं, अगर नहीं मानोगे तो नर्क जाना पड़ेगा । तो आदमी सोचता है मान ही लो । ऐसा नर्क अगर कहीं हुआ तो कौन झंझट में पड़े ।

ठीक है हमारे भगवान हैं, वे कहते हैं और जो भगवान को मान लेगा हमारे भगवान को, क्योंकि भगवान बहुत प्रकार के हैं । भगवान का कोई एक प्रकार नहीं है, कोई एक क्वालिटी नहीं, बहुत गुण हैं, बहुत भेद है, बहुत-सी वेराइटीज

हैं भगवान की । मुसलमान का भगवान अलग तरह का है, हिन्दू का अलग तरह का है, ईसाई का अलग तरह का है । जितने तरह के लोग हैं उतने तरह के भगवान हैं । वे सब कहते हैं कि हमारे भगवान के सिवा अगर दूसरे के भगवान को मानोगे तो फिर तुम समझ लेना, नर्क के सिवाय कोई रास्ता नहीं रह जायेगा, क्योंकि आखिर में जीसस क्राइस्ट ही बचायेंगे, ईसाई कहते हैं । मुसलमान कहता है जब मुहम्मद को पकड़ो तब वही बचायेंगे कोई और बचाने वाला नहीं है । तो ध्यान रखना, अगर मुहम्मद से बचे तो गये दोजख में, अगर जीसस से बचे तो जलना पड़ेगा अनन्त काल तक अग्नि में । हां, और जो जीसस को मानेगा, मुहम्मद को मानेगा उसके लिए स्वर्ग में सारी सुख-सुविधाओं का इन्तजाम है । उनके लिए वहां सुन्दर महल हैं और स्वर्ग, पता है आपको ? यहां तो आप एकाध कमरे को एयरकण्डीशन कर पाते हैं, स्वर्ग पूरा-का-पूरा एयरकण्डीशंड है, शीतल मन्द बहार वहां बहती रहती है सदा । वहां सूरज निकलता है लेकिन तपा नहीं होता है सिर्फ प्रकाश होता है । वहां वृक्ष कभी कुम्हलाते नहीं, फूल कभी मुरझाते नहीं, वहां पत्ते कभी पीले नहीं पड़ते, वहा कभी बुढ़ापा नहीं होता । स्त्रियों की उम्र वहां सोलह वर्ष पर रुक जाती है, ऐसा सुन्दर स्वर्ग है । वहां वृक्ष हैं कल्पवृक्ष, जिनके नीचे बैठकर जो भी आप कामना करें वह कामना करते ही पूरी हो जाती है । ऐसा नहीं कि फिर उसके लिए कोई श्रम करना पड़ता हो, ऐसा नहीं कि किसी से कहना पड़ता हो । आप वृक्ष के नीचे बैठ गये और आपने कहा कि एक देवी मौजूद हो जाये, देवी मौजूद हो जायेगी । आपने कहा पलंग आ जाये, पलंग आ जायेगी, आंख खुली और पलंग सामने मौजूद । वह कामना की और पूरी हो जाती है ऐसे कल्पवृक्ष हैं । जो हमारे भगवान को मानेगा उसको ऐसे कल्पवृक्ष मिलेंगे, जो नहीं मानेगा उसको नर्क में डाल दिया जायेगा ।

इस भय के आधार पर आदमी को कुछ भी मानने की कोशिश की जाती है । फिर भीड़ का भय, जिनके साथ जीना है उनके अनुकूल न रहो तो बहुत मुसीबत हो जाती है, वे मुसीबत में डाल देंगे, जीना मुश्किल कर देंगे । लड़की का विवाह होना मुश्किल हो जायेगा, समाज की जिन्दगी कठिन हो जायेगी । उसके भय से मानते चलो जो लोग कहते हैं । भीड़ के भय को मान लो । भीड़ जिसको कहे भगवान उसको भगवान भीड़ जिसको कहे शास्त्र उसको शास्त्र । भीड़ कहे रात है अभी तो कहना रात, भीड़ कहे दिन है कहना दिन । लेकिन भीड़ को मानने वाले व्यक्ति कभी भी आत्मा के विकास को उपलब्ध नहीं होते ।

आत्मा के विकास को वे उपलब्ध होते हैं जो सत्य की सतत् चेष्टा करते हैं खोज की, जो सत्य के लिए कुछ भी खोने को तैयार होते हैं, जो सत्य के लिए सब कुछ दांव पर लगाने का साहस जुटाते हैं वे लोग सत्य को उपलब्ध होते हैं ।

लेकिन इस देश ने तो सत्य को पाने की सामर्थ्य और आकांक्षा ही खो दी

है । वह कहता है आलोचना ही मत करना, वह कहता है विचार ही मत करना । नहीं मैं आपसे प्रार्थना करूंगा, विचार करना, संदेह करना, आलोचना करना । आपके महात्मा और आपके महापुरुष इतनी कच्ची मिट्टी के नहीं हैं कि आपकी आलोचना और आपके विचार से नष्ट हो जायेंगे ! वे बचेंगे और निखर कर बचेंगे जैसे स्वर्ण आग से गुजर कर और साफ हो जाता है वैसे ही आलोचना की निरंतर धारा से गुजर कर महापुरुष और निखर कर प्रकट हो जाते हैं । उनसे भयभीत होने की कोई भी जरूरत नहीं और जो नहीं प्रकट हो सकेंगे उन-से जितनी जल्दी छुटकारा हो जाये उतना ही अच्छा है । उनके साथ कब तक जियेंगे हम । उनको जिलाने की जरूरत क्या है ? इसलिए मैंने जान कर एक उदाहरण की तरह गांधी को चुन कर बात की है और अगर मुझे ख्याल आ गया तो मैं एक-एक महापुरुष पर बात करने का विचार करता हूं और एक-एक महा-पुरुष पर विचार करना पड़ेगा ।

मुल्क की प्रतिभा को जगाना जरूरी है। मुल्क के खोये प्राणों को फिर से गति देना जरूरी है, मुल्क के मन में फिर एक मंथन पैदा करना जरूरी है । अगर मंथन पैदा हो जाये, अगर चिंतन पैदा हो जाये, अगर विचार पैदा हो जाये तो हमें हजारों साल के अंधकार को मिटाने में समर्थ हो जायेंगे । एक छोटा-से दीये से हजारों साल का अन्धकार मिट जाता है । अन्धकार यह नहीं कहता कि मैं हजार साल पुराना हूं इसलिए इस छोटे-से दीये से कैसे मिटूंगा, नहीं मिटता । एक दिन का दीया है उससे मैं कैसे मिटूंगा, मैं हजारों साल पुराना हूं । विचार का दीया जले इस देश के प्राणों में तो हजारों साल का अन्धकार पलभर में मिट सकता है । ●

बम्बई, दिनांक ४ दिसम्बर १९६८

६. उगती हुई जमीन

एक मित्र ने पूछा कि आप गांधीजी की अहिंसा में विश्वास नहीं करते हैं क्या ? और यदि अहिंसा में विश्वास नहीं करते हैं गांधी की, तो क्या आपका विश्वास हिंसा में है ?

पहली बात यह कि मेरा विश्वास हिंसा में तनिक भी नहीं है और दूसरी बात यह कि गांधी की अहिंसा में भी विश्वास नहीं करता हूं। गांधी की अहिंसा में भी बहुत अहिंसा नहीं मालूम देती, इसलिए गांधी की अहिंसा बहुत लचर, बहुत कमजोर है। गांधी की अहिंसा मुझे बहुत अधकचरी इसलिए लगती है क्योंकि पूर्ण अहिंसा में मेरी आस्था है। गांधीजी की अहिंसा के वास्तविक अंतराल में झांकने पर मुझे अचम्भा-सा होता है।

गांधीजी अफ्रीका में बोर युद्ध में स्वयंसेवक की तरह सम्मिलित हुए। बोर अपनी आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे और गांधीजी गोरों की आजादी की लड़ाई को दबाने के लिए, जो साम्राज्यशाही प्रयास कर रही थी उस साम्राज्यशाही की ओर से स्वयंसेवक की तरह भरती हुए। गांधी जी पहले महायुद्ध में अंग्रेजों के एजेंट की तरह भारत में लोगों को फौज में भरती करवाने का काम करते रहे। यह बहुत अचम्भे की बात मालूम पड़ती है कि पहले महायुद्ध में गांधी ने लोगों को फौज में भरती होने और युद्ध में जूझने की प्रेरणा दी।

पंजाब के गांवों में मुसलमानों ने बगावत कर दी। मुसलमानों को दबाने के

लिए अंग्रेजों ने गोरखों की फौज भेज दी थी। अंग्रेजों का न्याय था कि अगर हिन्दू किसी गांव में विद्रोह करें तो मुसलमानों की सेना टुकड़ी भेजो और यदि मुसलमानों का गांव विद्रोह करे तो हिन्दुओं की टुकड़ी वहां भेजो ताकि दोनों ही सम्प्रदायों को आग में झोंककर, उसके हाथ सेके जा सकें। गोरखों की टुकड़ी ने एक अद्‌भुत ऐतिहासिक कार्य किया। गोरखों की टुकड़ी ने मुसलमान बस्ती पर मुसलमान लोगों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। वे बन्दूकों को जमीन पर टेक कर खड़े हो गये और उन्होंने कहा, हम अपने भाइयों पर गोली नहीं चलायेंगे। यह बड़ी अद्‌भुत और बड़ी अहिंसात्मक घटना थी। उन टुकड़ियों ने अपनी जान बाजी पर लगाकर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। उन्होंने जाकर अपनी बन्दूकें छावनी में जमा करवा दीं और जाकर समर्पण कर दिया और कहा कि हम गोली चलाने से इन्कार करते हैं, चाहे जो भी सजा दी जाये हम अपने भाइयों पर गोली नहीं चला सकते।

हम तो सोच सकते थे कि गांधीजी इन सैनिकों की प्रशंसा करेंगे। लेकिन गांधीजी ने इन सैनिकों की निन्दा की। इंगलैण्ड में जब गांधीजी से पूछा गया कि आश्चर्य की बात है कि आपने अहिंसक होते हुए इन सैनिकों की निन्दा की, जिन्होंने बन्दूकें चलाने से इन्कार किया। तो गांधीजी ने क्या कहा, आपको पता है !

गांधीजी ने कहा—मैं सैनिकों को आज्ञाहीनता नहीं सिखा सकता हूं क्योंकि कल जब देश आजाद हो जायेगा और सत्ता हमारे हाथ में आ जायेगी तो इन्हीं सैनिकों के सहारे हमें शासन करना है।

यह किस प्रकार की अहिंसा है ? यह थोड़ा विचारना है।

वे सैनिक भी दंग रह गये होंगे। अगर गांधीजी ने इन लोगों की प्रशंसा की होती तो हिन्दुस्तान भर का सैनिक यह हिम्मत जुटा सकता था, वह हर हिन्दुस्तानी चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का हो, पर गोली चलाने के लिए इन्कार कर देता। लेकिन गांधीजी ने इन सैनिकों की निन्दा की, आज्ञाहीनता के आधार पर और कहा कि अहिंसा को तोड़ना उचित नहीं है। सैनिकों का कर्त्तव्य है कि वे आज्ञा मानें। क्यों ? क्योंकि कल जब गांधीजी के लोगों के हाथ में देश जायेगा तो इन्हीं सैनिकों के सहारे शासन चलाना है। अब हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि बाईस वर्ष की आजादी के इतिहास में गांधीजी के पीछे चलने वाले लोगों के हाथ में जब से सत्ता आयी है, शासन का दमन बढ़ता ही गया है, गोलियों और संगीनों के आधार पर शासन चलाया जा रहा है। ये गोलियां सत्ता के चलाये जाने के काम में लायी जा रही हैं। अब सत्ता गांधीवादियों के हाथ में है। अंग्रेजों ने भी कभी हिन्दुस्तान में इतनी गोलियां नहीं चलायी थीं जितनी कि जिसको हम अपना शासन कहते हैं, उन्होंने चलायीं और जिस क्रूरता से गोली

चलायी और जितने लोगों की हत्या की !

यह बहुत आश्चर्य की बात है। लेकिन यह भी साथ में समझ लेना जरूरी है कि गांधीजी अहिंसात्मक रूप से जो आन्दोलन चलाते थे वह आन्दोलन ही दबाव डालने के लिए था और मेरी दृष्टि में जहां दबाव है वहां हिंसा है। चाहे दबाव कहीं से डाला जाये, चाहे आपके घर के सामने आकर अनशन करके बैठ जाऊं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा अगर मेरी बात नहीं मानोगे। यह दबाव ही हिंसा है। दबाव मात्र हिंसा है। दबाव डालने के ढंग अहिंसात्मक हो सकते हैं लेकिन दबाव खुद हिंसा है। अगर मैं अपनी बात मनवाने के लिए अपनी जान दांव पर लगा दूं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा तो जिसको हम सत्याग्रह कहते हैं और अनशन करते हैं वह क्या है ? वह आत्महत्या की धमकी है और वह धमकी हिंसा है। चाहे दूसरे को मारने की धमकी हो, चाहे अपने को मारने की धमकी हो। धमकी सदा हिंसात्मक है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह धमकी अपने लिए है या दूसरे के लिए है। कई बार यह भी हो सकता है कि मैं आपको मारने के लिए धमकी दूं तो आप मेरा मुकाबला कर सकते हैं, लेकिन जब मैं अपने को मारने की धमकी देता हूं तो आपको निहत्था कर देता हूं, आप मुकाबला नहीं कर सकते हैं। यह हिंसा ज्यादा सूक्ष्म है और बहुत टिकी हुई है। इसका पता चलाना बहुत मुश्किल है।

अगर अहिंसात्मक सत्याग्रह किसी को करना हो तो न तो खबर करनी चाहिए, न जनता को पता चलना चाहिए, न जिस आदमी के हृदय-परिवर्तन के लिए कोशिश कर रहा हूं उसको खबर करनी चाहिए। मौन, एकांत में मैं अपने को शांत करूं, ध्यानस्थ हो जाऊं, समाधि-मग्न हो जाऊं, अपने को पवित्र करूं, प्रार्थना करूं और हृदय में वे विचार भी हों जो दूसरे व्यक्ति को परिवर्तित करते रहें तब तो यह अहिंसा हुई। लेकिन यदि अखबारों में प्रचार हो, भीड़-भाड़ को पता चल जाये, मेरी जान को बचाने वाले लोग खुश हो जायें और जिस आदमी को बदलना चाहता हूं उसके दरवाजे पर बैठ जाऊं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा। यह अहिंसा नहीं है। यह सब हिंसा है, यह हिंसा का ही रूपान्तरण है, ये हिंसा के ही श्रेष्ठतम छद्म रूप हैं।

मैंने एक मजाक सुना है। मैंने सुना है, एक युवक एक युवती से प्रेम करता था और उसके प्रेम में दीवाना था, लेकिन इतना कमजोर था कि हिम्मत भी नहीं जुटा पाता था कि विवाह करके उस लड़की को घर ले आये, क्योंकि लड़की का बाप राजी नहीं था। फिर किसी समझदार ज्ञानी ने उसे सलाह दी कि अहिंसात्मक सत्याग्रह क्यों नहीं करता ? कमजोर कायर, वह डरता था। उसको यह बात जंच गयी। कायरों को अहिंसा की बात एकदम जंच जाती है—इसलिए नहीं कि अहिंसा ठीक है, बल्कि कायर इतने कमजोर होते हैं कि कुछ और नहीं

कर सकते।

गांधीजी की अहिंसा का जो प्रभाव इस देश पर पड़ा वह इसलिए नहीं कि लोगों को अहिंसा ठीक मालूम पड़ी। लोग हजारों साल के कायर हैं और कायरों को यह बात समझ में पड़ गयी है कि ठीक है, इसमें मरने मारने का डर नहीं है, हम आगे जा सकते हैं। लेकिन तिलक गांधीजी की अहिंसा से प्रभावित नहीं हो सके, सुभाष भी प्रभावित नहीं हो सके। भगतसिंह फांसी पर लटक गया और हिन्दुस्तान में एक पत्थर नहीं फेंका गया उसके विरोध में ! आखिर क्यों !! उसका कुल कारण यह था कि हिन्दुस्तान जन्मजात कायरता में पोषित हुआ है। भगतसिंह फांसी पर लटक रहे थे, गांधीजी वायसराय से समझौता कर रहे थे और उस समझौते में हिन्दुस्तान के लोगों को आशा थी कि शायद भगतसिंह बचा लिया जायेगा, लेकिन गांधीजी ने एक शर्त रखी कि मेरे साथ जो समझौता हो रहा है उस समझौते के आधार पर सारे कैदी छोड़ दिये जायेंगे लेकिन सिर्फ वे ही कैदी जो अहिंसात्मक ढंग के कैदी होंगे। उसमें भगतसिंह नहीं बच सके, क्योंकि उसमें एक शर्त जुड़ी हुई थी कि अहिंसात्मक कैदी ही सिर्फ छोड़े जायेंगे। भगतसिंह को फांसी लग गयी। जिस दिन हिन्दुस्तान में भगतसिंह को फांसी हुई उस दिन हिन्दुस्तान की जवानी को भी फांसी लग गयी। उसी दिन हिन्दुस्तान को इतना बड़ा धक्का लगा जिसका कोई हिसाब नहीं। गांधी की भीख के साथ हिन्दुस्तान का बुढ़ापा जीता, भगतसिंह की मौत के साथ हिन्दुस्तान की जवानी मरी। क्या भारतीय युवा पीढ़ी ने कभी इस पर सोचा है ?

उस युवक को किसी ने सलाह दी, तू पागल है, तेरे से कुछ और नहीं बन सकेगा, अहिंसात्मक सत्याग्रह कर दे। वह जाकर उस लड़की के घर के सामने बिस्तर लगाकर बैठ गया और कहा कि मैं भूखा मर जाऊंगा, आमरण अनशन करता हूं, मेरे साथ विवाह करो। घर के लोग बहुत घबराये, क्योंकि वह और कुछ धमकी देता तो पुलिस को खबर करते लेकिन उसने अहिंसात्मक आन्दोलन चलाया था और गांव के लड़के भी उसका चक्कर लगाने लगे। वह अहिंसात्मक आन्दोलन है, कोई साधारण आन्दोलन नहीं है और प्रेम में भी अहिंसात्मक आन्दोलन होना ही चाहिए। घर के लोग बहुत घबराये। फिर बाप को किसी ने सलाह दी कि गांव में जाओ, किसी रचनात्मक, किसी सर्वोदयी, किसी समझदार से सलाह लो कि अनशन में क्या किया जा सकता है। बाप गये, हर गांव से ऐसे लोग हैं जिनके पास और कोई काम नहीं है। वे रचनात्मक काम घर बैठे करते हैं। बाप ने जाकर पूछा, हम क्या करें बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं। अगर वह छुरी लेकर धमकी देता तो हमारे पास इन्तजाम था, हमारे पास बन्दूक है, लेकिन वह मरने की धमकी देता है, अहिंसा से। उस आदमी ने कहा घबराओ मत, रात मैं आऊंगा, वह भाग जायेगा। वह रात को एक बूढ़ी वेश्या को पकड़ लाया।

उस वेश्या ने जाकर उस लड़के के सामने बिस्तर लगा दिया और कहा कि आमरण अनशन करती हूं, तुमसे विवाह करना चाहती हूं। वह रात बिस्तर लेकर लड़का भाग गया।

गांधीजी ने अहिंसात्मक आन्दोलन के नाम पर, अनशन के नाम पर, जो प्रक्रिया चलायी थी, भारत उस प्रक्रिया से बरबाद हो रहा है। हर तरह की ना-समझी इस आन्दोलन के पीछे चल रही है। किसी को आन्ध्र अलग करना हो तो अनशन कर दो, कुछ भी करना हो, आप दबाव डाल सकते हैं और भारत को टुकड़े-टुकड़े किया जा रहा है, भारत को नष्ट किया जा रहा है। वह एक दबाव मिल गया है आदमी को दबाने का। मर जायेंगे, अनशन कर देंगे, यह सिर्फ हिंसात्मक रूप है, अहिंसा नहीं है। जब तक किसी आदमी को जोर-जबरदस्ती से बदलना चाहता हूं चाहे वह जोर-जबरदस्ती किसी भी तरह की हो, उसका रूप कुछ भी हो, तब तक मैं हिंसात्मक हूं। मैं गांधीजी की अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं—उसका यह मतलब न लें कि मैं अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं। अखबार यही छापते हैं कि मैं अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं।

मैं गांधीजी की अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं, क्योंकि मैं अहिंसा के पक्ष में हूं। लेकिन उसको मैं अहिंसा नहीं मानता इसलिए मैं पक्ष में नहीं हूं। गांधीजी की अहिंसा चाहे गांधीजी को पता हो या न हो, हिंसा करेगी। यह हिंसा बड़ी सूक्ष्म है। एक आदमी को मार डालना भी हिंसा है और एक आदमी को अपनी इच्छा के अनुकूल ढालना भी हिंसा है। जब एक गुरु दस-पच्चीस शिष्यों की भीड़ इकट्ठी करके उनको ढालने की कोशिश करता है अपने जैसा बनाने की, जैसे कपड़े मैं पहनता हूं वैसे कपड़े पहनो, जब मैं उठता हूं ब्रह्म मुहूर्त में तब तुम उठो, जो मैं करता हूं वही तुम करो—तो हमें पता नहीं है, यह चित्त बड़ी सूक्ष्म हिंसा की बात सोच रहा है। दूसरे आदमी को बदलने की चेष्टा में, दूसरे आदमी को अपने जैसा बनाने की चेष्टा में आदमी भी हिंसा करता है। जब एक बाप अपने बेटे को अपने जैसा बनाने की कोशिश करता है तो बाप को पता है, यह हिंसा है। जब बाप बेटे से कहता है कि तू मेरे जैसा बनना तो दो बातें काम कर रही हैं। एक तो बाप का अहंकार और दूसरे कि मेरे बेटे को मैं अपने जैसा बना-कर छोड़ूंगा। यह प्रेम नहीं है। सारे गुरु लोगों को अपने जैसा बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। उस प्रयत्न में व्यक्ति हिंसा करता है। जो आदमी अहिंसक है वह आदमी किसी आदमी को अपने जैसा नहीं बनायेगा। जो आदमी अहिंसक है वह कहता है कि तुम अपने ही जैसा बन जाओ बस यही काफी है, मेरे जैसे बनने की कोई जरूरत नहीं है।

कोई अहिंसात्मक व्यक्ति किसी को अपना अनुयायी नहीं बना सकता है, क्यों-कि अनुयायी बनाना सूक्ष्म हिंसा है। कोई अहिंसक व्यक्ति किसी को अपना शिष्य

नहीं बना सकता है क्योंकि गुरु बनने जैसी हिंसा खोजनी दुनिया में बहुत मुश्किल है। लेकिन ये सूक्ष्म हिंसाएं हैं जो दिखायी नहीं देतीं और यह भी ध्यान रहे कि जब कोई आदमी दूसरे के साथ हिंसा करना बन्द कर देता है तो हिंसा की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती, हिंसा की प्रवृत्ति स्वयं पर लौट जाती है। अपने साथ हिंसा करना शुरू कर देता है। जिसको हम तपश्चर्या कहते हैं, तप कहते हैं, त्याग कहते हैं, सौ में निन्यानबे मौके पर अपने पर लौटी हुई हिंसा के दूसरे नाम हैं और कुछ भी नहीं।

एक आदमी दूसरे को सताना चाहता है। अंग्रेजी में एक शब्द सेडिस्ट है, जो आदमी दूसरे को सताना चाहता है उसको वे कहते हैं सेडिस्ट, उसे वे कहते हैं परपीड़नवादी। एक दूसरा शब्द है मेसोचिस्ट, जो आदमी अपने को ही सताने में लग जाता है उसको कहा जाता है मेसोचिस्ट, आत्मपीड़नवादी। हम दूसरों को सताने वाले को तो हिंसक कहते हैं, लेकिन खुद को सताने वाले को हिंसक नहीं कहते हैं और मजा यह है कि दूसरे को सताने में तो दुनिया बाधा डाल सकती है पर स्वयं को सताने में कोई भी बाधा नहीं डाल सकता है। स्वयं को सताने में प्रत्येक आदमी मुक्त है। यह जो तपश्चर्या करने वाले लोग हैं, ये कांटों में खड़े लोग हैं, धूप में खड़े लोग हैं, भूख और उपवास करने वाले लोग हैं—इनकी पूरी कथा आप समझें। इनके आविष्कारों का आप पता लगायें कि कैसे-कैसे अपने को सताने के, आत्मपीड़ा के उपाय निकालते हैं। कैसे उनको साधु कहें जो अपनी जननेन्द्रियां काट लेते रहे? ऐसे साधु रहे हैं जिन्होंने अपनी आंखें फोड़ ली और अंधे हो गये और ऐसे साधु भी रहे हैं जो पैर जूते में कीलें लगाते रहे ताकि पैर में घाव बनते रहें। कमर में पट्टे बांधते रहे और कीलें लगाते रहे ताकि कमर में घाव बनते रहें। शरीर को सब तरह से कोड़े मारने वाले साधुओं की लम्बी जमात रही है। वे कोड़े मारने वाले साधु सुबह से उठकर कोड़े मार रहे हैं और जो जितने ज्यादे कोड़े मारेगा उतना बड़ा साधु हो जायेगा।

ये सारे के सारे लोग हिंसक लोग हैं, ये अहिंसक लोग नहीं हैं, केवल अन्तर इतना है कि इनकी हिंसा दूसरे पर न जाकर स्वयं पर लौट आयी है। उसने वापस लौटना प्रारम्भ कर दिया है। अहिंसा बहुत अद्भुत बात है, लेकिन हिंसा से बचना बहुत मुश्किल है। हिंसा को बदल लेना बहुत आसान है, हिंसा नये रूपों में खड़ी हो जाती है। दूसरों को बदलने की चिंता, दूसरों को बदलने का दबाव, दूसरों को अपने जैसा बनाने की सारी कोशिश हिंसा है और दुनिया के सारे गुरुओं को और दुनिया के इन सारे लोगों को जो अनुयायियों की भीड़ इकट्ठी करते हैं, जमातें खड़ी करते हैं। और अपनी शक्ल के आदमी पैदा करते हैं। उन सबको मैं एक कतार में हिंसक मानता हूं। अहिंसक व्यक्ति दूसरी बात है।

अहिंसक का मतलब है ऐसा व्यक्ति, जो किसी पर भी किसी तरह का दबाव

डालने की कामना से मुक्त हो गया है, क्योंकि दबाव डालकर हम दूसरे से श्रेष्ठ हो जाते हैं और आपने कभी ख्याल किया है, छुरा बताकर आप दूसरे से श्रेष्ठ नहीं होते लेकिन अनशन करके आप दूसरों से श्रेष्ठ हो जाते हैं। नीत्शे ने एक बात कही है मजाक में जीसस के खिलाफ। कहा है कि जीसस ने कहा है कि कोई गाल पर तुम्हारे चांटा मारे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना। नीत्शे ने कहा है, इससे ज्यादा अपमान दूसरे आदमी का और क्या हो सकता है? तुमने उसे आदमी ही नहीं माना, अपने बराबर भी नहीं माना। किसी ने चांटा मारा तुम्हारे गाल पर, तुमने दूसरा गाल कर दिया। उस दूसरे आदमी से देवता हो गया, वह जमीन का कीड़ा हो गया। नीत्शे ने मजाक में कहा है कि दूसरे आदमी का इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है और यह हो सकता है कि कोई आदमी प्रेम के कारण दूसरा गाल न करे, सिर्फ इसलिए दूसरा गाल कर दे कि देख लो, तुम हो जमीन के कीड़े, हम हैं फरिश्ते, हम हैं देवता। दूसरे से ऊंचा होने की तरकीब इतनी बारीक है कि एक आदमी दूसरे से ऊंचा हो सकता है सिंहासन पर बैठकर और एक आदमी दूसरे से ऊंचा हो सकता है त्याग करके। लेकिन दूसरे से ऊंचा होने की कामना अगर भीतर शेष है तो वह कामना हिंसा में ले ली जाती है, अहिंसा में नहीं। जब भी हम दूसरे से ऊंचा होने की कामना में संलग्न हो जाते हैं, चाहे हमें ज्ञात हो और ज्ञात न हो, चाहे हमें कॉन्शसली पता हो और चाहे अन्कॉन्शस माइंड काम कर रहा हो, चाहे अचेतन मन काम कर रहा हो और हमें पता न हो, लेकिन दूसरे को बदलने की कोशिश में स्वयं ही श्रेष्ठता भीतर अनुभव होनी शुरू हो जाती है।

मैं इस सबके बुनियादी रूप से खिलाफ हूं। मैं मानता हूं कि व्यक्ति प्रार्थना कर सकता है, ध्यान कर सकता है, व्यक्ति अंतस् को शुद्ध कर सकता है और उसके अंतस् की शुद्धि के कारण उसके चारों तरफ के दबावों में परिवर्तन शुरू हो जायेगा। लेकिन वह परिवर्तन उस व्यक्ति की चेष्टा नहीं है, उस व्यक्ति का प्रयास नहीं है। महावीर और बुद्ध भी अहिंसक थे। गांधी की अहिंसा से मैं उनकी अहिंसा को श्रेष्ठतर और शुद्धकर मानता हूं। गांधी के और बुद्ध के बीच हम कुछ बातें और करें तो पता चलेगा। महावीर और बुद्ध किसी को बदलने के लिए कोई अहिंसक आन्दोलन नहीं कर रहे हैं, लेकिन भीतर आत्मा प्रविष्ट हुई है, उसकी किरणें आयेंगी और बिना प्रयास के चारों तरफ बदलाहट लानी शुरू करती हैं। अहिंसक आदमी ने दुनिया में पहले भी अपना हिंसा की किरणें दी हैं लेकिन वे किरणें प्यार करके दी गयी हैं और चेष्टा करके नहीं दी गयी हैं। वे किरणें उपलब्ध होती हैं। सूरज निकलता है और अंधेरा विलीन हो जाता है। सूरज कोई घोषणा नहीं करता कि अंधेरे को दूर करने मैं आ गया हूं, अंधेरा सावधान!

अहिंसा कुछ करती नहीं है, अहिंसा से परिवर्तन आता है। अहिंसक परिवर्तन

चाहता नहीं। गांधी की अहिंसा में परिवर्तन की चाह बहुत स्पष्ट है इसलिए मैं उसे अहिंसा नहीं मानता हूं। गांधी की अहिंसा में मेरी कोई श्रद्धा, कोई विश्वास नहीं है क्योंकि वह अहिंसा ही मुझे दिखायी नहीं पड़ती। मैं कोई हिंसा का पक्षपाती नहीं हूं, मुझसे ज्यादा हिंसा का दुश्मन खोजना कठिन है, क्योंकि अहिंसा में ही मुझे जहां हिंसा दिखायी पड़ती हो उस हिंसा से मैं राजी नहीं हो सकता हूं।

एक दूसरे मित्र ने इसी सम्बन्ध में पूछा है कि आप कहते हैं कि क्रांति अहिंसक ही हो सकती है, लेकिन एक मित्र ने पूछा है कि क्रांति तो सदा हिंसक होती है, अहिंसक क्रांति तो कभी नहीं होती।

जिस क्रांति में हिंसा है उसे मैं क्रांति नहीं कहता। वह क्रांति नहीं है, सिर्फ उपद्रव है। उपद्रव और क्रांति में बहुत फर्क है। जिस क्रांति के साथ हिंसा जुड़ गयी वह क्रांति खत्म हो गयी। हिंसा से क्रांति खत्म है क्योंकि क्रांति का अन्तिम अर्थ क्या है? क्रांति का अन्तिम अर्थ है आत्मिक परिवर्तन, हार्दिक परिवर्तन, लोगों की चेतना का बदल जाना और जब हम लोगों की चेतना को नहीं बदल पाते हैं, जब लोगों की चेतना नहीं बदलती है तब हम हिंसा पर उतारू हो जाते हैं। लेकिन जो आदमी हिंसा पर उतारू हो जाता है वह लोगों की चेतना बदल सकेगा? इस सम्बन्ध में एक करोड़ लोगों की कम से कम हत्या की गयी। करोड़ लोगों की हत्या करके भी क्या किसी व्यक्ति की चेतना को बदला जा सका, किसी को रूपान्तरित किया जा सका? हिटलर ने भी करीब अस्सी लाख लोगों की हत्या की, लेकिन क्या रूपान्तरण हो गया? कौन-सी क्रांति हो गयी? सामान बांट दिया गया, सम्पत्ति व्यक्तिगत न रही, जो एक करोड़ लोगों को बिना मारे भी हो सकता था और एक करोड़ लोगों को मारने के कारण जो परिवर्तन हुआ वह इतना तनावपूर्ण है कि जब तक हिंसा ऊपर छाती पर सवार है तभी तक उसको कायम रखा जा सकता है, अन्यथा परिवर्तन विलीन होना शुरू हो जायेगा।

स्टैलिन के जाने के बाद रूस के कदम विकास की तरफ निश्चित रूप से उठे। स्टैलिन के हटते ही जैसे हिंसा कम हुई है। रूस के कदम विकास की तरफ उठे। रूस में जब से व्यक्तिगत सम्पत्ति का पुनरागमन हुआ, रूस में कारें व्यक्तिगत रूप से रखी जा सकती है, जिसकी वहां कल तक कल्पना नहीं थी। मकान भी व्यक्तिगत हो सकता है, तनख्वाहों में भी फर्क पैदा हुए—जैसे ही हिंसा से लायी हुई क्रांति विलीन हो जायेगी। हिंसा से लायी गयी क्रांति जबरदस्ती है और जबरदस्ती कहीं क्रांति लायी जा सकती है? जबरदस्ती थोड़ा बहुत देर किसी को रोका जा सकता है।

जिस चीज को जबरदस्ती से रोकना पड़ता है उसके खिलाफ लोगों का विद्रोह होना शुरू हो जाता है। अच्छे काम भी अगर जबरदस्ती करवाये जायें। आप

यहां बैठे हैं, आप अपनी मौज से यहां आये हैं और अगर आपको अभी खबर की जाये कि आप दो घण्टे तक बाहर नहीं निकल सकते हैं, बस यहां बैठना असम्भव हो जायेगा । आदमी के साथ आत्मा है, आदमी की आत्मा दबाव को इन्कार करती है और करनी चाहिए चाहे वह दबाव अच्छे के लिए ही क्यों न डाला गया हो । दबाव, दबाव है । आदमी के अच्छे के लिए भी दबाव डालने पर आदमी विद्रोह करता है । आपको पता है, अच्छे मां-बाप अपने बेटों को बिगाड़ने का बुनियादी कारण बनते हैं । पता है आपको क्यों ? अच्छे मां-बाप जबरदस्ती बच्चे को अच्छा बनाने की कोशिश करते हैं । दुनिया में कभी किसी को जबरदस्ती अच्छा नहीं बनाया गया है और जो मां-बाप अपने बच्चे को जबरदस्ती अच्छा बनाते हैं वह मां-बाप बच्चों के दुश्मन हैं और अपने बच्चे को बिगाड़ने का काम करते हैं क्योंकि बच्चे विद्रोह करना शुरू करते हैं । बच्चे के पास जो आत्मा है वह इन्कार करना चाहती है जबरदस्ती को और अगर अच्छे के लिए जबरदस्ती की गयी तो फिर अच्छे को इन्कार करना चाहते हैं क्योंकि जबरदस्ती को इन्कार करन से हिंसा शुरू हो जायेगी । क्योंकि कोई भी बात जबरदस्ती से नहीं लायी जा सकती और जबरदस्ती से लाने का मतलब यह है कि लाने वाला बहुत कम-जोर है, लोगों को समझा नहीं पाता है, लोगों के हृदय को, मस्तिष्क को राजी नहीं कर पाते हैं । और जब आप लोगों को राजी नहीं कर पाते हैं उनके अच्छे के लिए भी, तो फिर आपकी वह अच्छाई बड़ी सन्तुलित है ।

दुनिया में कोई क्रांति हिंसा से नहीं हो सकती है । हां, क्रांति के नाम से हिंसा पलती रही है, लेकिन अब तक कौन-सी क्रांति हो गयी है दुनिया में ?···नहीं हिंसा से क्रांति हो ही नहीं सकती है । क्योंकि क्रांति जबरदस्ती नहीं हो सकती है । क्रांति होगी तो हृदय से होगी । हिंसा तो अति जटिल है और क्रांति अति सरल ।

मैं उस क्रांति के पक्ष में हूं जिस क्रांति में दमन नहीं होगा, जिस क्रांति में छाती पर दबाव नहीं होगा, जो क्रांति भीतर से फूल की तरह से खिलेगी और व्यक्तित्व को बदल देगी । मनुष्य में उस क्रांति की प्रतिष्ठा चाहिए है । फ्रांस की क्रांति असफल हो गयी क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी थी । रूस की क्रांति सफल नहीं हो सकी क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी थी । माओ जो क्रांति करवा रहे हैं चीन में वह सफल नहीं होगी, क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी है । गांधी की क्रांति जो कि बड़ी अहिंसात्मक दिखायी पड़ती थी वह भी असफल हो गयी क्योंकि बुनियाद में उसके हिंसा थी । हम देख रहे हैं अपने मुल्क में, गांधी की क्रांति, जो कि एक तरह से लाख दरजे बेहतर क्रांति है, माओ से, जिसका कि अहिंसा की तरफ रुख है, झुकाव है, यद्यपि जो अहिंसात्मक नहीं है बुनियाद में, वह भी असफल हो गयी है । बाईस साल की आजादी के बाद की दुखद कथा बताती है कि गांधी की क्रांति असफल

हो गयी है ।

गांधी तक की क्रांति असफल हो जाती है, क्योंकि मेरा मानना है कि एक दबाव है, बदलने की तीव्र आकांक्षा है । तो फिर लेनिन और स्टैलिन और माओ की क्रांति कैसे सफल हो सकती है ? दुनिया प्रतीक्षा करती थी एक क्रांति की जो क्रांति चेतना की और अहिंसा की क्रांति होती, लेकिन क्रांति की तैयारी में सबसे बड़ी बाधा क्या है ? सबसे बड़ी बाधा हिंसा में आस्था है । जिन लोगों की हिंसा में आस्था है वे लोग दुनिया के चित्त को बदलने के अहिंसात्मक विधान में कूदते भी नहीं, विचार भी नहीं करते, चिन्ता भी नहीं करते । उस दिशा में कोई काम नहीं करते । हमें यह ख्याल ही नहीं है । एक गांव में एक हजार लोग, पचास लाख लोगों में से एक हजार लोग भी अगर अहिंसात्मक हों तो पचास लाख लोगों के चित्त में बुनियादी रूपान्तरण शुरू हो जायेगा, लेकिन हमें इसका कुछ पता नहीं ।

अभी रूस में एक वैज्ञानिक फयादोव ने एक प्रयोग किया है । फयादोव रूस का एक मनोवैज्ञानिक है और चूंकि प्रयोग रूस में हुआ है इसलिए महत्वपूर्ण है । हिन्दुस्तान में योगी तो बहुत दिन से यह कहता है, लेकिन कोई सुनता नहीं है । हिन्दुस्तान का योगी यह कहता है कि विचार इतनी बड़ी शक्ति है कि अगर कोई विचार किसी व्यक्ति के हृदय में पूर्ण संकल्प से स्थापित हो जाये तो चारों तरफ उस विचार की तरंगें फैलनी शुरू हो जाती हैं और हजारों लोगों को अहिंसा में रूपान्तरित कर देती हैं । एक बुद्ध का पैदा होना, एक महावीर का खड़ा होना इतनी बड़ी क्रांति है जिसका कोई हिसाब नहीं, जिसका की हमें कोई पता नहीं चलता । क्योंकि लाखों लोगों के प्राण-कमल उनकी किरणों से खिलने शुरू हो जाते हैं ।

फयादोव ने एक प्रयोग किया रूस में विचार-संक्रमण का, टेलीपैथी का, विचार को दूर भेजने का । उसने मास्को में बैठकर एक हजार मील दूर विचार का संप्रेषण किया । मास्को में बैठा है वह अपनी लेबोरेटरी में और एक हजार मील दूर किसी गांव के बगीचे में, पब्लिक पार्क में दस नम्बर की बेंच पर एक आदमी बैठा है, उसके पीछे एक भाई छिपकर बैठे हैं । उन्होंने उठाकर फोन किया कि दस नम्बर की बेंच पर एक आदमी आकर बैठा है, आप अपने विचार से प्रभा-वित करके उसे सुला दें । फयादोव एक हजार मील दूर से कामना करता है अपने मन में कि वह जो आदमी दस नम्बर की बेंच पर बैठा है वह सो जाये सो जाये, सो जाये । यहां वह पूर्ण संकल्प से, पूर्ण एकाग्र चित्त से कामना करता है । वह आदमी तीन ही मिनट के भीतर वहां बेंच पर आंख बन्द करके सो जाता है । लेकिन हो सकता है, यह संयोग की बात हो । दोपहर तक का थका-मांदा आदमी ऐसे ही सो सकता है । झाड़ियों में छिपे उसके मित्र ने फौरन फोन करके कहा कि

यह सो गया है जरूर। तुमने कहा, तीन मिनट में सो जाओ तो तीन मिनट में सो गया। लेकिन यह संयोग भी हो सकता है। अब उसे ठीक पांच मिनट के भीतर उठा दो तो हम समझेंगे।

फयादोव फिर सुझाव भेजता है कि उठो, उठो, उठो, जागो, जाग जाओ, ठीक पांच मिनट में जाग जाओ। वह आदमी पांच मिनट में आंख खोलकर बैठ जाता है। मित्र उसके पास जाकर पूछते हैं कि आपको कुछ अजीब-सा तो नहीं लगा। वह आदमी कहता है, अजीब-सा से मतलब ? मैं जब आया तो कुछ विश्राम करने लगा तो जैसे मेरे पूरे प्राण कह रहे हैं कि सो जाओ। मैं रात अच्छी तरह सोया हूं, थका-मांदा नहीं हूं। पूरा व्यक्तित्व कहता है कि सो जाओ। फिर मैं सो गया। लेकिन अभी क्षण भर पहले दूर से एक आवाज आयी कि उठो, एकदम जाग जाओ। मैं बहुत हैरान हुआ कि यह क्या हुआ। तो, एक हजार मील दूर भी विचार संक्रमित हो सकता है।

अभी अमरीका की एक प्रयोगशाला में एक और अद्भुत प्रयोग हुआ जो मैं आपसे कहना चाहूंगा। वह प्रयोग भी बहुत बहुमूल्य है आने वाले भविष्य में। अन्तरिक्ष में किये जाने वाले प्रयोग भी इसके मुकाबले कम मूल्य के सिद्ध होंगे। एटम और हाइड्रोजन के प्रयोग भी कम मूल्य के सिद्ध होंगे। वह प्रयोग बहुत अद्भुत है। एक प्रयोगशाला में उन्होंने विचार का चित्र पहली बार लिया था। विचार का चित्र, जो विचार आपके भीतर चलता है उस विचार का आपका नहीं। एक आदमी को बहुत ठीक से कैमरे के सामने बिठाया गया। बहुत ही संवेदनशील फिल्म लगायी गयी है और उस आदमी से कहा गया है कि एक विचार पर सारे चित्त को एकाग्र कर सोचता रह, बस एक ही चित्र पर सोचता रह और उस आदमी ने एक ही चित्र पर विचार किया, वह आदमी एक छोटे से चित्र पर अन्दर विचार करता रहा और उस चित्र को फोटो की फिल्म के भीतर पकड़ लिया। इसका क्या मतलब ? इसका मतलब है कि विचार में जो चित्र था भीतर, उसका संप्रेषण, उसकी किरणें, उसकी तरंगें बाहर फिंक रही हैं जो कि फोटो की फिल्म पकड़ सकती थी।

अहिंसात्मक क्रांति का क्या अर्थ है ? अहिंसात्मक क्रांति का अर्थ है अहिंसात्मक लोग। थोड़े से भी लोग अहिंसात्मक हों तो उनके व्यक्तित्व से अहिंसा की, प्रेम की, भीतरी परिवर्तन की जो किरण पहुंचेगी वे लाखों के जीवन में क्रांति ले आयेंगी, इसका हमें पता भी नहीं होगा। मेरी मान्यता है कि मनुष्य जाति अहिंसात्मक क्रांति की प्रतीक्षा कर रही है और यह प्रतीक्षा जारी रहेगी जब तक अहिंसात्मक क्रांति नहीं हो जाती है। हम कोई भी हिंसात्मक क्रांति करें, उससे कोई भी परिवर्तन नहीं होगा। जैसे कोई आदमी मुर्दे को मरघट ले जाते हैं। मुर्दे को मरघट ले जाते वक्त अर्थी को कंधे पर लेते हैं। रास्ते में एक कंधा थक

जाता है तो अर्थी उठाकर दूसरे कंधे पर रख लेते हैं। बस इसी तरह क्रांति में भी फर्क पड़ता है। एक कंधा दुखने लगता है, दूसरे कंधे पर बोझ रख लिया। थोड़ी देर राहत मिलती है। फिर बोझ शुरू हो जाता है। दूसरे कंधे पर बोझ शुरू हो जाता है। अब तक जितनी क्रांतियां हुई हैं, वह अब तक बोझ बदले हैं, बोझ मिटाया नहीं, आदमी के समाज को रूपान्तरित नहीं किया, आदमी के समाज को पुराने गठन में नया ढंग दे दिया है। फिर जिन्दगी बड़ी गड़बड़ हो गयी, पुरानी जिन्दगी आना फिर शुरू हो जाती है। नयी सपने देखती है।

रूस में क्रांति हुई, शायद सबसे महत्वपूर्ण क्रांति दुनिया की वही है। रूस की क्रांति ऐसी थी कि वर्ग मिटा दिये जायेंगे, क्लासेस नहीं रहेंगे। वर्ग मिटा दिये गये, निश्चित मिटा दिये गये। अमीर आज ऊंचे नहीं, गरीब आज नीचे नहीं, लेकिन नया वर्ग पैदा हो गया—वह कम्युनिस्ट ऑफिसर, कम्युनिस्ट पार्टी का आदमी और वह जो आदमी कम्युनिस्ट पार्टी का नहीं है, यों दो वर्ग पैदा हो गये। अधिकारी सत्ताधिकारी और सत्तापूर्ण। कल था धनिक और निर्धन और आज है सत्ताधिकारी, सत्तापूर्ण, उसके बीच स्थापना हुई। वर्ग फिर नये खड़े हो गये। रूस में जो क्रांति हुई उस क्रांति से वर्ग मिटा नहीं, सिर्फ वर्ग बदल गये। पूंजीपति की जगह मैनेजर आ गया। व्यवस्थापकों की क्रांति थी, व्यवस्थापक बदल गये, जहां मालिक था वहां मैनेजर बैठ गया, सत्ताधिकारी बैठ गया; धनी की जगह। और ध्यान रहे, धनी के पास उतनी ताकत कभी नहीं थी जितनी सत्ताधिकारी के पास। धनी के हाथ में लोगों की गर्दन कभी उतनी नहीं थी जितनी कि आज कम्युनिस्ट पार्टी के पास रूस में है—उतनी बिड़ला के पास थोड़े ही है न हो सकती है। सत्ता बदल गयी, वर्ग बदल गये, नये वर्ग आ गये, क्रांति मर गयी, क्रांति का कोई अर्थ न हुआ। फिर कंधा बदल गया।

दुनिया में अब तक क्रांति के नाम पर कंधे बदलते रहे हैं। क्या हम कंधे ही बदलते रहेंगे या सचमुच कोई क्रांति करेंगे ? अगर क्रांति करनी है तो हिंसा पर से आस्था छोड़नी ही पड़ेगी, क्योंकि जो आदमी हिंसा करता है वह आदमी जब मालिक हो जाता है तब हिंसा जारी रखता है और उसकी जो हिंसा जारी रहती है और जिस आदमी ने हिंसा की है और उसके हाथ में हिंसा की ताकत है उस आदमी से ज्यादा हम कभी आशा नहीं रख सकते। वह आदमी हिंसा को छोड़ देगा, हिंसा को बदल देगा ? वह आदमी वही रहेगा। रूस में जिन लोगों के हाथ में ताकत आयी वे लोग अच्छे थे। क्रांति के पहले सभी लोग अच्छे होते हैं, क्रांति के बाद जब ताकत हाथ में आती है, तब पता चलता है कि कौन आदमी अच्छा है, कौन आदमी बुरा है। सम्भावना इस बात की है कि स्टैलिन ने लेनिन को जहर देकर मारा और इस बात की सम्भावना है कि जितने लोग क्रांति के अग्रणी थे धीरे-धीरे करके एक-एक मारे गये। मैक्सिको में जाकर ट्राटस्की की

हत्या की गयी। जिन लोगों ने क्रांति की थी स्टैलिन ने चुन-चुन कर एक-एक को मारा, क्योंकि अब सत्ता का खिलवाड़ शुरू हो गया।

हिन्दुस्तान में कितने अच्छे लोगों ने गांधी के साथ क्रांति की थी। कितने अच्छे और भले लोग मालूम पड़ते थे, एकदम सफेद, धुले हुए मालूम पड़ते थे। लेकिन जब सत्ता हाथ में आयी तो पता चला कि वे लोग बदल गये, वे दूसरे आदमी साबित हुए, वे कपड़े ही सफेद थे, वे आदमी भीतर सफेद नहीं थे। क्या हो गया सत्ता के हाथ में आते ही? सत्ता के हाथ में आते ही भीतर का असली आदमी प्रकट होता है। जब तक हाथ में ताकत नहीं होती तब तक असली आदमी प्रकट नहीं होता। अगर आपके पास पैसे नहीं हैं तो आप फिजूल खर्च हैं, इसका कोई पता नहीं चलता। पैसा हो तो पता चलता है कि फिजूल खर्च हैं या नहीं। अगर आपके हाथ में छुरा हो मारने को तब पता चलेगा कि आप हिंसक हैं या नहीं। जब हाथ में ताकत नहीं है तब तो सभी लोग अहिंसक होते हैं। अहिंसक का पता चलता है अवसर मिलने पर, हिंसा का अवसर मिलने पर। जिन लोगों के हाथ में इस मुल्क की ताकत गयी, ताकत जाने के बाद ही पता चला कि उनके असली तत्त्व क्या थे। तो जिन लोगों के हाथ में ताकत जायेगी, अगर वे हिंसा के द्वारा ताकत को पहुंचे हैं तब तो उनकी तस्वीर पहले से ही हिंसा की है और बाद में उनकी क्या हालत होगी? अहिंसकों की हालत क्या हो जाती होगी?

नहीं, हिंसा से कोई क्रांति नहीं हो सकती, सिर्फ बोझ बदल जाते हैं, सिर्फ शक्ल बदल जाती है, नाम बदल जाते हैं, समाज पुराना का पुराना ही जारी रहता है। पांच हजार वर्ष के लम्बे प्रयोगों के बाद भी हमें दिखायी नहीं पड़ता कि हिंसा से कोई क्रांति नहीं हो सकी। आगे भी नहीं हो सकेगी और अगर आदमी हिंसा से जाग जाये कि हिंसा से कुछ भी नहीं हो सकता, दबाव से कुछ भी नहीं हो सकता और आदमी की आत्मा प्रेम चाहती है और आदमी की आत्मा रूपांतरित होना चाहती हे, लेकिन उन लोगों के द्वारा जो रूपांतरित करने के लिए उत्सुक, आतुर नहीं हैं, जिनका कोई आग्रह नहीं है, जो जीते हुए सत्य हैं, जो जीते हुए प्रेम हैं और उनके जीने के कारण दूसरे में फैलते हैं, उनसे रूपांतरण होता है।

ऐसे रूपांतरण की प्रतीक्षा मनुष्यता को है।

ऐसी क्रांति अहिंसात्मक ही हो सकती है। यह बहुत स्पष्ट रूप से मेरी बात समझ लेना जरूरी है। मैं हिंसा के बिल्कुल विरोध में हूं। हिंसा के कौन पक्ष में हो सकता है? कौन बुद्धिमान, कौन विचारशील व्यक्ति हिंसा के पक्ष में हो सकता है? हिंसा के पक्ष में होने का मतलब है आदमी में बुद्धि नहीं है। क्योंकि लाठी वे ही लोग उठाते हैं जिनके पास बुद्धि नहीं होती है। जिनके पास

बुद्धि होती है उन्हें लाठी पर उतरने की जरूरत नहीं पड़ती। जो लोग हाथ की ताकत में और तलवार की ताकत में विश्वास करते हैं, वे मनुष्य से नीचे दर्जे के मनुष्य हैं, उनके भीतर पापी मौजूद है, पशु ही हिंसा में विश्वास करता है। आदमी हिंसा में कैसे विश्वास कर सकता है और पशुओं के हाथ में बहुत बार सत्ता दी गयी है और आदमी ने हर बार भोगा है। आगे भी पशुओं के हाथ में सत्ता नहीं जानी चाहिए, पाशविक हाथों में, हिंसात्मक हाथों में सत्ता नहीं जानी चाहिए। इसलिए आदमी जितना सजग हो, जितना अहिंसा के सार को समझे, जितना अहिंसा के रहस्य को समझे उतना अच्छा है।

अहिंसा का सार है, एक शब्द में प्रेम, शुद्ध प्रेम। अहिंसा शब्द बहुत गलत है, क्योंकि नकारात्मक है। उससे पता चलता है हिंसा का। वह शब्द अच्छा नहीं है। शब्द है वास्तविक प्रेम। क्योंकि प्रेम पॉजिटिव है, प्रेम विधायक है। जब हम कहते हैं अहिंसा, तो उससे मतलब है हिंसा नहीं करेंगे। लेकिन हिंसा नहीं करनी है इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि प्रेम करना है। हिन्दुस्तान में धार्मिकों की एक लम्बी कतार है। वह सब अहिंसा को मानते हैं। इनकी अहिंसा का मतलब है पानी छानकर पीना, उनकी अहिंसा का मतलब है रात खाना नहीं खाना है, उनकी अहिंसा का मतलब है किसी को चोट नहीं पहुंचाना। लेकिन ऐसी अहिंसा बड़ी अहिंसा नहीं है जो कि सिर्फ दूसरे को दुख पहुंचाने से बचती है। असली अहिंसा वही है जो दूसरे को सुख पहुंचाना चाहती है। दूसरे को दुख नहीं पहुंचाना है। यह ठीक है, लेकिन यह काफी नहीं है। वह बहुत लचर, अधकचरी अहिंसा है। दूसरे को सुख पहुंचाना है और क्यों पहुंचाना है? दूसरे को सुख इसलिए कि मोक्ष जाना है, इसलिए कि स्वर्ग पाना है। जो आदमी दूसरे को इसलिए दुख नहीं दे पाता है क्योंकि स्वर्ग जाना है, मोक्ष जाना है वह आदमी हद दर्जे का चालाक है, वह आदमी हद दर्जे का हिसाबी-किताबी है। उस आदमी को दूसरे से कोई मतलब नहीं है। वह दूसरे को दूसरे की अहिंसा को सीढ़ियां बना रहा है अपने स्वर्ग जाने की।

मैंने सुना है, चीन के एक गांव में एक बहुत बड़ा मेला लगा हुआ था। एक कुआं था मेले के पास जिस पर पाट नहीं था और एक आदमी भूल से उस कुएं के भीतर गिर गया। वह आदमी जोर-जोर से चिल्लाने लगा। किन्तु मेले में बहुत भीड़ थी, कौन उसकी सुनता। एक बौद्ध भिक्षु कुएं के पास पानी पीने को रुका। नीचे से आदमी चिल्लाया कि भिक्षु जी, मुझे बचाइये। उस भिक्षु ने कहा, पागल किस-किस को बचाया जा सकता है, सारा संसार कुएं में पड़ा है। जीवन ही दुख है। भगवान ने कहा है, जीवन दुख का मूल है। हम सभी डूब मरेंगे, हम किसको बचा सकते हैं। उस आदमी ने कहा, ज्ञान की बातें, पहले मुझे निकाल लें, फिर पीछे करना, क्योंकि ज्ञान की बातें कुएं में गिरे आदमी को अच्छी

नहीं मालूम पड़तीं। कृपा करो, मुझे बाहर निकालो। भिक्षु ने कहा, पागल, कौन किसको निकाल सकता है। अपना ही अपना संभाल ले आदमी तो काफी है, क्योंकि भगवान ने कहा है, कोई किसी का सहारा नहीं है, अपने सहारे रहो। उसने कहा, वह मैं समझता हूं लेकिन अभी मैं अपना सहारा ढूंढ रहा हूं। तैरना नहीं जानता हूं। मुझे किसी तरह बाहर निकाल लो तो तुम्हारा शास्त्र भी सुनूंगा, तुम्हारा प्रवचन भी सुनूंगा। उस भिक्षु ने कहा, शायद तुम्हें पता नहीं कि भगवान ने शास्त्र में यह भी कहा है कि अगर मैं तुझे बचा लूं और कल तू हत्या कर दे, चोरी कर ले, तो मैं भी तेरे कर्म का भागी हो जाऊंगा। मैं अपने रास्ते पर, तू अपने रास्ते पर। भगवान तेरा भला करे।

वह भिक्षु चला गया। शास्त्रों को मानने वाले लोग कितने खतरनाक होते हैं! उनका शास्त्र ही महत्त्वपूर्ण है, मरता हुआ आदमी ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं है।

उसके पीछे ही कंफ्यूशियस को मानने वाला एक दूसरा भिक्षु आकर रुका। उसने भी नीचे झांक कर देखा। उस आदमी ने चिल्लाया कि मुझे बचाओ, मैं मर रहा हूं। बस मेरी स्थिति है, सांसें टूटी जाती हैं, हिम्मत नहीं रखी जाती है। कंफ्यूशियस के शिष्य ने कहा, देख, तेरे गिरने से साबित हो गया कि कंफ्यू-शियस ने जो लिखा है वह सही है। उसने लिखा है कि हर कुएं पर पाट होनी चाहिए और जिस कुएं पर पाट नहीं होगी और जिस राज्य में कुएं पर पाट नहीं होती वह राज्य ठीक नहीं है। तू घबरा मत, हम आंदोलन करेंगे और कुएं पर पाट बनवाकर रहेंगे। उस आदमी ने कहा कि बनेगा बनेगा, लेकिन मैं तो गया।

आंदोलन करने वाले को आदमी से कोई मतलब नहीं है। उन्हें आंदोलन से मतलब है। वे आंदोलन करेंगे। और वह जो आदमी डूब रहा है, वह गया। उसने बहुत चिल्लाया लेकिन आन्दोलनकारी किसी की सुनते हैं? वह जाकर मंच पर खड़ा हो गया और मेले में लोगों को समझाने लगा कि देखो, कंफ्यूशियस ने जो लिखा है ठीक लिखा है। सबूत? वह कुआं सबूत है। हर कुएं पर पाट होना चाहिए। जब तक कुएं पर पाट नहीं है तब तक राज्य सुराज्य नहीं है।

उसके पीछे ही एक ईसाई मिशनरी वहां आया। उसने भी झांककर देखा। वह आदमी चिल्ला भी नहीं पाया कि उसने अपनी झोली से रस्सी निकाली और कुएं में डाली और कुएं के नीचे गया। उस आदमी को निकाल कर बाहर लाया। उस आदमी ने कहा, आप ही एक भले आदमी मालूम पड़ते हैं। लेकिन आश्चर्य कि आप झोली में रस्सी पहले से ही रखे हुए थे। उसने कहा, हम सब इन्तजाम करके निकलते हैं क्योंकि सेवा ही हमारा कार्य है और हमें पहले से पता रहता है कि कोई न कोई तो कुएं में गिरेगा और जीसस ने कहा है कि अगर मोक्ष जाना है, अगर स्वर्ग का राज्य पाना है तो लोगों की सेवा करो। सेवा के बिना कोई मोक्ष नहीं जा सकता है। हम मोक्ष की खोज कर रहे हैं। तुमने बड़ी कृपा

की जो कि कुएं में गिरे। अपने बच्चों को भी समझा जाना ताकि वे कुएं में गिरते रहें और हमारे बच्चे उनको निकालते रहें।

यह जो आदमी है, यह जो मोक्ष में जाने के लिए लोगों के कुएं में गिरने की प्रतीक्षा कर रहा है, यह आदमी हद दर्जे का पापी है। इन्हें न कोढ़ियों से मतलब है, न बीमारों से। ये सबको सीढ़ियां बनाकर अपना मोक्ष खोज रहे हैं। यह आज तक जो लोग अहिंसा की बात करते रहे हैं, उनके लिए अहिंसा भी एक सीढ़ी है। नहीं, अहिंसा जो सीढ़ी बनती है वह अहिंसा नहीं है। अहिंसा शब्द ठीक नहीं है। शब्द तो ठीक है प्रेम, ज्वलंत प्रेम और प्रेम का मतलब है दूसरे को सुख देने की कामना। लेकिन क्यों? इसलिए नहीं कि मोक्ष जायेंगे, इसलिए नहीं कि पुण्य होगा, बल्कि सिर्फ इसलिए कि जो आदमी जितना दूसरे को सुख दे पाता है उतना ही प्रतिक्षण सुखी हो जाता है, तत्क्षण, आगे पीछे नहीं, कभी भविष्य में नहीं। जो आदमी जितना दूसरे को दुख देता है तत्क्षण उतना ही दुखी हो जाता है। जीवन में जो हम दूसरे के लिए करते हैं वही हम पर वापस लौट आता है। जिन्दगी एक बड़ी प्रतिध्वनि है, एक इकोपॉइंट है।

मैं एक पहाड़ पर गया था। कुछ मित्र मेरे साथ थे। उस पहाड़ पर एक 'इकोपॉइंट' था जहां आवाज की जाती तो बार-बार वापस लौटती थी हम लोगों के बीच। वहां जो मित्र मेरे साथ थे वे कुत्ते की आवाज करने लगे। सारा पहाड़ कुत्तों की आवाज से गूंज गया। मैंने उनसे कहा, रुको भी। अगर आवाज ही करनी है तो कोयल की करो या कोई गीत गाओ। कुत्ते की आवाज करने से क्या फायदा। यह मित्र गीत गाने लगे प्रेम का। उन्होंने कोयल की आवाज की और पहाड़ियां कोयल की आवाज से गूंज गयीं। फिर हम लौटे तो वह मित्र कुछ सोचने लगे और उदास हो गये और रास्ते में कहने लगे कि कहीं ऐसा तो नहीं कि आपने इशारा किया हो कि यह जो घाटी है, यह जो इकोपॉइंट है वह भी प्रतीक है जिन्दगी का। जिन्दगी का ही वह एक रूप है। जिन्दगी में भी जो कुत्ते की आवाज फेंकता है, चारों तरफ उसके कुत्ते भोंकने लगते हैं। जिन्दगी में भी जो गीत गाता है चारों तरफ गीत की शहनाइयां बजने लगती हैं। जिन्दगी में जो हम फेंकते हैं जिन्दगी की तरफ वही हम पर वापस लौटना शुरू हो जाता है—हजार हजार गुना होकर। प्रेम को जितना बांटता है उतना प्रतिध्वनित होकर उसके ऊपर बरसने लगता है।

एक छोटी-सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी कर दूंगा। रवीन्द्रनाथ ने एक गीत लिखा है। बहुत प्यारा गीत है और उस गीत में लिखा है कि एक भिखमंगा सुबह-सुबह उठा है भीख मांगने के लिए। अपनी झोली निकाल कर कंधे पर डाला है। आज त्यौहार का दिन है और भीख मिलने की आशा है। ऐसा मालूम होता है कि त्यौहारों की ईजाद भिखमंगों ने ही की होगी, क्योंकि खोज उन्होंने की

होगी । झोली कंधे पर डालकर उसने अपनी पत्नी से कुछ अनाज चावल के दाने झोली में डालने के लिए कहा । जब भी कोई भीखमंगा अपने घर से निकलता है, चालाक भिखमंगा, क्योंकि भिखमंगों में भी नासमझ भिखमंगे होते हैं, समझदार भी होते हैं । सब तरह की दुकानों में समझदार नासमझ सभी तरह के लोग होते हैं । भिखमंगों की भी एक दुकान है । उसने कुछ दाने घर से डाल लिए हैं और भिखमंगे कुछ दाने डालकर निकलते हैं ताकि जिसके सामने झोली फैलायें उसे दिखायी पड़े कि भीख पहले भी दी जा चुकी है । इन्कार करने में मुश्किल होती है अगर भीख पहले दी जा चुकी हो, क्योंकि अहंकार को चोट लगती है कि किसी दूसरे आदमी ने दान कर दिया है और अगर हम नहीं करते हैं तो उस आदमी के सामने छोटे हो जाते हैं । इसलिए भिखमंगे पैसे हाथ में बजाते हुए निकलते हैं ।

वह भिखमंगा रास्ते पर, राजपथ पर आकर खड़ा ही हुआ था, कुछ सोचता था कि किस दिशा में जाऊं, कि देखा कि सामने से सूरज निकलता है और राजा का स्वर्ण रथ आ रहा है । राजा अपने रथ पर सवार है । सूरज की किरणों में उसका रथ चमक रहा है । भिखमंगे के तो भाग खुल गये । उसने कभी राजा से भीख नहीं मांगी थी । राजाओं से भीख मांगना मुश्किल है, क्योंकि द्वार पर पहरे-दार होते हैं, वे भीतर प्रवेश करने नहीं देते । आज तो राजा रास्ते पर मिल गया है, आज तो झोली फैला दूंगा और भीख से छुटकारा जन्म-जन्म के लिए मिल जायेगा । फिर आगे भीख नहीं मांगनी पड़ेगी । इसी सपने में, कल्पना में था और भिखमंगों के पास सिवाय सपने के और कुछ भी नहीं होता । सपने में ही जीना पड़ता है, क्योंकि जिनके पास कुछ भी नहीं है वे सपने में ही जीने का रास्ता खोज लेते हैं । वह महलों में निवास करने लगा सपने में और तभी रथ आकर खड़ा हो गया । सारे सपने टूट गये और हैरान हो गया भिखारी । राजा नीचे उतरा और राजा ने अपनी झोली भिखारी के सामने फैला दी ।

भिखारी ने कहा, क्या कर दिया ? राजा ने कहा, क्षमा करना । अशोभन है, लेकिन ज्योतिषियों ने कहा है कि राज्य पर खतरा है दुश्मन का और कहा है कि अगर मैं आज त्यौहार के दिन जो पहला आदमी मुझे मिल जाये उससे भीख मांग लूं तो राज्य खतरे से बच सकता है । तुम्हीं पहले आदमी हो । दुखी न होओ, तुमने कभी भिक्षा दी न होगी, इसलिए बड़ी मुश्किल पड़ेगी देने में । लेकिन कुछ भी थोड़ा-सा दे दो, इन्कार मत कर देना, पूरे राज्य के भाग्य का सवाल है । भिखमंगा कितनी कठिनाई में पड़ गया होगा ? उसने हमेशा मांगा था, दिया कभी नहीं था । देने की आदत न थी । झोली में हाथ डालता है और खाली हाथ बाहर निकाल लेता है । इन्कार भी कर नहीं सकता । सामने राजा खड़ा है । पूरे राज्य के संकट का सवाल है । हाथ भीतर चला जाता है, मुट्ठी

बंधती नहीं । राजा कहता है, इन्कार मत कर देना, क्योंकि ज्योतिषियों ने कहा है कि अगर पहले आदमी ने इन्कार कर दिया तो संकट निश्चित है । तो एक दाना ही दे दो । भिखारी ने बामुश्किल एक चावल का दाना निकाल कर राजा की झोली में डाल दिया ।

राजा अपने रथ पर बैठा और चला गया । धूल उड़ती रह गयी । भिखारी के सब कपड़े धूल से भर गये । उल्टा मिला तो कुछ भी नहीं, पास से कुछ चला गया । उसका दुख आप जानते हैं ? दिन भर भीख मांगी, बहुत मिली उस दिन भीख । इतनी कभी नहीं मिली लेकिन मन प्रसन्न नहीं हुआ, क्योंकि जो मिलता है उससे प्रसन्न नहीं होता है मन । जो छूट जाता है उससे दुखी होता है । एक दाना खटकता रहा जो दिया था । सबके मन की यही हालत है, क्योंकि सब छोटे-मोटे भिखारी हैं । जो छूट जाता है वह खटकता रहता है । जो मिल जाता है उसका पता नहीं चलता ।

भिखारी के मन का लक्षण यह है । जो मिल जाये उसका पता न चले, जो न मिले, जो छूट जाये, उसकी पीड़ा कसकती रहे ।

वह घर पहुंचा है रात, झोली पटक दिया, पत्नी तो पागल हो गयी । इतना कभी न मिला था । झोली खोलने लगी । पति तो उदास दीखता था । उदास हैं आप ? पति ने कहा, तुझे तो पता नहीं है पागल, झोली में थोड़ा कम है । आज थोड़ा देना भी पड़ा है । ऐसा जिन्दगी में कभी नहीं किया आज वह करना पड़ा पत्नी ने झोली खोली, दाने बिखर गये और पति छाती पीटकर रोने लगा । अब तक उदास था, आंसुओं की धारा बहने लगी । पत्नी ने पूछा, क्या हुआ ? पति ने नीचे के दाने उठाये और एक दाना सोने का हो गया था । एक चावल का दाना सोने का हो गया है । चिल्लाने लगा कि भूल हो गयी, अवसर निकल गया । मैंने अगर सारे दाने दे दिये होते तो सब सोना हो गया होता । लेकिन अब कहां खोजूं उस राजा को, कहां मिलेगा वह रथ । अवसर चूक गया है वह ।

मुझे पता नहीं, यह कहानी कहां तक सच है, लेकिन यह मुझे पता है कि जिन्दगी के अन्त में आदमी ने जो दिया है वही सोने का होकर वापस लौट आता है । जो दिया है वही स्वर्ण का हो जाता है, जो रोक लिया है वही मिट्टी का हो जाता है । प्रेम का अर्थ है दान, प्रेम का अर्थ है बांटना । जितना बंट जाता है व्यक्तित्व, आत्मा उतनी ही स्वर्ण की हो जाती है, और जितना अनबंटा रह जाता है व्यक्तित्व, आत्मा उतनी ही मिट्टी हो जाती है । ●

बम्बई, दिनांक ४ दिसम्बर १९६८

७. लकीरों से हटकर

एक मित्र ने पूछा है कि गांधीजी ने दरिद्रों को दरिद्रनारायण कहा, इससे उन्होंने दरिद्रता का कोई गौरव मंडित तो नहीं किया है ?

शायद आपको पता न हो, हिन्दुस्तान में एक शब्द चलता था, वह था लक्ष्मी-नारायण। दरिद्रनारायण शब्द कभी नहीं चलता था, चलता था लक्ष्मीनारायण। मान्यता यह थी कि लक्ष्मी के पति ही नारायण हैं। ईश्वर को भी हम ईश्वर कहते हैं, ऐश्वर्य के कारण। वह शब्द भी ऐश्वर्य से बनता है। लक्ष्मीपति जो है वह नारायण है। समृद्धि-नारायण, ऐसी हमारी धारणा थी हजारों साल से। धारणा यह थी कि जिनके पास धन है उनके पास धन पुण्य के कारण है, परमात्मा की कृपा के कारण है। हजारों वर्षों से धन का एक महिमावान रूप था, धन गौरव-मण्डित था। दरिद्र दरिद्र था पाप के कारण, अपने पिछले जन्मों के पापों के कारण ही वह दरिद्र था। धनी धनी था अपने पिछले जन्मों के पुण्य के कारण। धन प्रतीक था उसके पुण्यवान होने का, दरिद्रता प्रतीक था उसके पापी होने का। यह हमारी धारणा थी।

इस धारणा में गांधी ने जरूर क्रांति की और बहुमूल्य काम किया कि उन्होंने लक्ष्मीनारायण शब्द के सामने दरिद्रनारायण शब्द गढ़ा और उन्होंने कहा, दरिद्र भी नारायण है। लेकिन जैसा अक्सर होता है, जब भी किसी शब्द, किसी विचार, .किसी धारणा की प्रतिक्रिया में कोई धारणा गढ़ी जाती है तो जो भूल

इस तरफ होती थी, अतिशय में वही भूल दूसरी तरफ हो जाती है। दरिद्रनारायण है। एक समय था समृद्ध नारायण था। नारायण तो सभी हैं। न समृद्ध नारायण है न दरिद्र नारायण है। एक अति यह थी कि समृद्धि नारायण है, समृद्धि को ग्लोरीफाई किया गया था। उसकी प्रतिक्रिया में दूसरी अति यह हो गयी कि दरिद्र नारायण है। अब दरिद्र को ग्लोरीफाई किया गया। वह जो ग्लोरी, वह जो महिमा समृद्धि के साथ जुड़ी थी, वही महिमा समृद्धि को छोड़कर दरिद्रता के साथ जोड़ दी गयी है।

रवीन्द्रनाथ ने एक गीत लिखा है—कहां खोजते हो प्रभु को, कहां खोजते हो भगवान को, कहां खोजते हो परमात्मा को, मन्दिरों में ? नहीं है मन्दिरों में, नहीं मूर्तियों में, नहीं आकाश में, नहीं चांद-तारों में। भगवान वहां है जहां राह के किनारे मजदूर पत्थर तोड़ता है। यह दूसरी अति हो गयी। चांद-तारों में भी परमात्मा है, फूलों में भी, सब जगह मन्दिरों में भी, जो भी है वही परमात्मा है। लेकिन कल तक एक अति थी कि इस दीन और दरिद्र में परमात्मा को नहीं देखा जा रहा था। आज उसकी प्रतिक्रिया में दूसरी अति हो गयी कि नहीं है वहां। यहां है, जहां मजदूर पत्थर तोड़ता है। यह दूसरी अति है। बस महिमा बदल गयी है। घड़ी का पेण्डुलम बायीं ओर से दायीं ओर चला गया है।

गांधी ने एक क्रांतिकारी कदम उठाया दरिद्र को नारायण कहकर, लेकिन जैसा कि सदा होता है, एक अति से दूसरी अति पर व्यक्ति चला जाता है, एक अति से दूसरी अति पर विचार चला जाता है। मैंने सुना है कि गांधी इंगलैंड गये और गांधी के एक भक्त बर्नार्ड शा से मिले और बर्नार्ड शा से उन्होंने पूछा, आपकी गांधी के सम्बन्ध में क्या धारणा है। बर्नार्ड शा ने कहा, और सब तो ठीक है, लेकिन दरिद्र नारायण शब्द मेरे बर्दाश्त के बाहर है। दरिद्र को तो मिटाना है, उससे तो घृणा करनी है, उसे तो समाप्त कर देना है, दरिद्र को बचने नहीं देना है। और सब तो ठीक है, यह दरिद्र नारायण शब्द मेरी समझ के बाहर है।

पं० नेहरू ने भी कहीं लिखा है कि गांधी की बहुत-सी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। यह दरिद्र नारायण शब्द मेरी समझ में नहीं आ सका है। यह शब्द ठीक नहीं है। दरिद्र को तो मिटाना है, दरिद्र को तो समाप्त करना है, दरिद्र को तो बचने नहीं देना है। और उसे जब हम नारायण जैसी महत्त्वपूर्ण महिमा से मंडित करेंगे तो जाने अनजाने जिसे हम महिमा देना शुरू करते हैं उसे हम मिटाना बन्द कर देते हैं। वह मनोवैज्ञानिक घटना है, जिसे हम महिमा देते हैं उसे नष्ट करने का विचार छूटना शुरू हो जाता है। अगर दरिद्रता को महान् रोग कहा तो मिटाने का ख्याल आयेगा, दरिद्र को नारायण कहा तो पूजा का ख्याल आयेगा। यह तो मनोवैज्ञानिक प्रतिफलन होगा उसका।

सवाल यह नहीं है कि गांधी महिमामंडित करते हैं या नहीं। दरिद्रनारायण

कहने से दरिद्रता महिमामंडित होती है और दरिद्रनारायण कहने से ऐसा नहीं लगता है कि इसको मिटाना है, दरिद्रनारायण कहने से लगता है कि मिटाना नहीं, पूजा करनी है। नारायण की हम सदा से पूजा करते रहे हैं, लेकिन हम कहेंगे कि दरिद्र महान् रोग है तो सीधा ख्याल उठता है कि मिटाना है, नष्ट करना है, समाप्त कर देना है। यह प्रश्न तो हमारे मनोवैज्ञानिक प्रतिफलन का है कि हमारे मन का क्या प्रतिफलन होता है। छोटे-छोटे शब्द भी हमारे मानस को गतिमान करते हैं और हमारे मानस में, हमारे कलेक्टिव मानस में, हमारे अचेतन में, हमारे समूह-मन में शब्दों की करोड़ों वर्ष की परम्परा है और स्थान है। नारायण को मिटाने की हमने कभी कल्पना ही नहीं की है, मनुष्य जाति के इतिहास में। नारायण को सदा हमने पूजा है, मंदिर में उसके चरण पर सिर रखा है। नारायण को हमने सदा हाथ जोड़े हैं। नारायण को मिटाने की कल्पना ही असम्भव है हमारे चित्त से। जब भी हम किसी के साथ नारायण जोड़ देंगे तो स्वभावतः वह जो हमारा हजारों वर्षों का बना हुआ मन है वह नारायण को मिटाने को आतुर नहीं रह जायेगा।

दरिद्रनारायण शब्द दुर्भाग्यपूर्ण है। उससे समृद्ध नारायण शब्द को उत्तर तो मिल गया, लेकिन घड़ी का पेंडुलम एक कोने से दूसरे कोने पर पहुंच गया। एक बीमारी से दूसरी बीमारी पर पहुंच गया। न तो समृद्ध नारायण है और न दरिद्र है। नारायण तो सभी हैं, इसलिए किसी को विशेष रूप से नारायण कहना खतरनाक है। लेकिन प्रतिक्रिया में ऐसा होता है। अब तक ब्राह्मण प्रभु के लोग थे, परमात्मा के लोग थे, गॉड चूजेन थे, ईश्वर के चुने हुए लोग थे। गांधीजी ने उसकी प्रतिक्रिया में हरिजन शब्द चुना। शूद्रों के लिए जो कि प्रभु के कृपा-पात्र नहीं रहे, जिन पर प्रभु की कृपा होने का कोई सवाल नहीं था। कृपापात्र थे सवर्ण, कृपापात्र थे ब्राह्मण, क्षत्रिय। शूद्र? शूद्र तो बाहर था। उस पर कृपा की कोई किरण परमात्मा की कभी नहीं पड़ी। ठीक किया गांधी ने। हिम्मत की कि उसको कहा हरिजन, लेकिन हरिजन कहने से वही भूल फिर दोहरा दी गयी। हरिजन थे अब परमात्मा के लोग। तब ब्राह्मण, परमात्मा के लोग थे। उनसे छीनकर महिमा हमने शूद्र को दे दी। लेकिन जरूरत इस बात की है कि महिमा किसी के पास बंधी न रह जाये। महिमा वितरित हो जाये और सबकी हो जाये। हरिजन हैं सब। जब तक ब्राह्मण हरिजन थे तब तक शूद्र हरिजन न था। ओर अगर हम शूद्र को हरिजन कहते हैं तो हम दूसरी भूल करते हैं। ब्राह्मण के प्रति एक विरोध और वैमनस्य पैदा होगा। वह जो दक्षिण भारत में ब्राह्मण के प्रति वैमनस्य और विरोध पैदा हो रहा है वह दूसरी प्रतिक्रिया है कि अब नीचे जो शूद्र हैं वह हो गया हरिजन। वह अब चूजन पिपुल हो गये। तो अब ब्राह्मण को नीचे, अपदस्थ करना है।

यह खेल कब तक चलेगा? इस खेल को हम समझेंगे, इसके राज को, तो यह समझना जरूरी है कि प्रत्येक मनुष्य परमात्मा है। चाहे वह दरिद्र हो, चाहे समृद्ध हो, चाहे बीमार हो, चाहे स्वस्थ हो, चाहे काला हो, चाहे गोरा हो, चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा है। किसी भी वर्ग विशेष को परमात्मा का नाम देना उसे महिमामंडित करना है। मैं जानता हूं कि गांधी की मजबूरी थी। एक प्रतिक्रिया में, एक विरोध के लिए उन्होंने एक बात चुनी होगी। लेकिन अब चालीस-पचास साल के बाद उस शब्द को तत्काल छोड़ देना जरूरी है। अब उस शब्द को पकड़े लिए जाना ठीक नहीं है। और यह भी ध्यान रहे कि दरिद्र को न तो महिमा देनी है और न दरिद्र के साथ सहानुभूति प्रकट करनी है। यह भी ध्यान रहे, दरिद्र के साथ सहानुभूति, दया खतरनाक बात है। दरिद्र के साथ दया नहीं करनी है, दरिद्रता को मिटाना है ताकि दरिद्र न रह जाये। दरिद्र के साथ दया करने से दरिद्रता मिटती नहीं है। दरिद्र के साथ दया करने से दरिद्रता पलती है, पोषित होती है। भिखमंगे को हम रोटी दे देते हैं, इससे भिखमंगापन नहीं मिटता। भिखमंगे को दी गयी रोटी भिखमंगे-पन को दी गयी रोटी सिद्ध होती है। वह रोटी भिखमंगे के पेट में ही नहीं पहुंचती है, भिखारीपन के पेट में पहुंच जाती है। और भिखारीपन जीता है और मजबूत होता है। भिखारी को मिटाना है। दया पर्याप्त नहीं है, दया बहुत तरकीब की बात है।

शोषक समाज ने हजारों वर्षों में दया का आविष्कार किया है, दान और दया का। ये तरकीबें हैं जिससे नीचे के पीड़ित वर्ग को राहत देने का उपाय किया जाता है अन्यथा बलवा हो सकता है, बगावत हो सकती है, क्रांति हो सकती है। इसलिए दया और दान की थोड़ी-सी व्यवस्था बनाये रखनी पड़ती है ताकि वह जो नीचे पीड़ित है उसको ऐसा न लगे कि मुझे बिलकुल छोड़ दिया गया है। ताकि उसे लगे कि नहीं दया की जरूरत है, दान किया जाता है, धर्म किया जाता है। यह दया, दान और धर्म गरीब का अपमान है। और जिस समाज में दान दया धर्म की जरूरत पड़ती है वह समाज स्वस्थ सुन्दर समाज नहीं है, वह समाज रुग्ण है। और जब तक दुनिया में दया, दान और सहानुभूति की जरूरत हम पैदा करते रहेंगे, तब तक हम अच्छे मनुष्य को पैदा नहीं कर सकेंगे।

एक ऐसा समाज चाहिए जहां कोई दया मांगने के लिए दीन न हो। एक ऐसा समाज चाहिए जो ऐसे लोगों को पैदा न करे, जिनको आपकी सहानुभूति की जरूरत पड़े। कभी आपने ख्याल किया है कि जिस पर आप दया करते हैं वह दया आपके अहंकार को मजबूत कर जाती है कि मैं कुछ हूं, मैंने कुछ किया? और जिस पर आप दया करते हैं, उसका मन पश्चाताप, ग्लानि और चोट से भर जाता है कि मेरा अपमान किया गया है। आप ध्यान रखना, जिस पर भी

आपने दया की उसको आपने बहुत गहरे में अपना शत्रु बना लिया है, मित्र नहीं। वह आपसे बदला लेगा, क्योंकि कोई भी आदमी अपमानित होता है, जब उसे दया मांगनी पड़ती है, पीड़ित होता है, ऊपर से मुस्कुराकर कहता है कि भगवान् तुम्हें खुशी रखे, लेकिन वह जानता है, वह भलीभांति जानता है कि उसे इस हालत में कौन ले आया है। कैसे वह इस हालत में आ गया है। ऊपर से धन्यवाद देता है। लेकिन भीतर ? भीतर उसके भी ईर्ष्या पलती है और अपमान पलता है।

नहीं, दया के आधार पर दो व्यक्तियों के बीच मैत्री कभी पैदा नहीं होती। इसलिए अक्सर लोग कहते सुने जाते हैं कि मैंने उस आदमी के साथ भला किया और वह मेरे साथ बुरा कर रहा है। नेकी का फल बदी से मिल रहा है। हमेशा मिलेगा। क्योंकि नेकी अपमान करती है किसी का, और नेकी तुम्हारे अहंकार को मजबूत करती है और दूसरे मनुष्य को पीड़ित करती है। नहीं, अब हम दया और धर्म पर नहीं जी सकते हैं। और न जीने की जरूरत है। अब तो हमें समझना होगा कि दरिद्र क्यों पैदा होता है ? दरिद्रता कहां से जन्म लेती है ? उस जड़ को काट देना जरूरी होगा। एक तरफ जड़ को मजबूत किये चले जाते हैं और शाखाओं और पत्तियों को काटते हैं, यह कैसा पागलपन है। एक आदमी रोज पानी देता हो एक वृक्ष में। और फिर पत्तों को काटता हो और रोज पानी देता हो वर्ष में। हम जो कर रहे हैं सब मिलकर उससे दरिद्र पैदा हो रहे हैं। फिर एक-एक दरिद्र को हम भिक्षा देते हैं, धर्मशाला बनवाते हैं, औषधालय खोलते हैं।

इधर ऊपर से हम यह व्यवस्था करते हैं और जो हम कर रहे हैं सारा समाज मिलकर, उससे दरिद्र पैदा हो रहा है। यह बड़ी अजीब बात है कि सारा समाज मिलकर, रोग पैदा करे और रोग के इलाज के लिए अस्पताल खोले। यह कुछ समझ में आने जैसी बात नहीं है। लेकिन अब तक हमें समझ में नहीं आती थी, क्योंकि हमने प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों का फल समझा हुआ था। यह बात गलत है। जन्म कर्मों के फल हैं, पुनर्जन्म है, लेकिन सम्पत्ति कर्मों के फल से उपलब्ध नहीं। सम्पत्ति समाज के वितरण की व्यवस्था पर निर्भर है।

लेकिन अब तक हमारी धारणा यही थी कि गरीब गरीब है अपने कर्मों के कारण, अमीर अमीर है अपने कर्मों के कारण। इस दृष्टिकोण ने, इस कंसेप्ट ने, इस सिद्धान्त ने हिन्दुस्तान की गरीबी को तोड़ने के सब उपाय मुश्किल कर दिये थे। और आज तक हिन्दुस्तान में गरीबी नहीं टूटी है तो उसके पीछे हमारी फिलॉसफी है, हमारा दृष्टिकोण है। वह हमारा दृष्टिकोण यही है कि गरीब समझते हैं वे भी गरीब हैं अपने कर्मफल के कारण। अमीर अमीर है अपने कर्मफल के कारण। हम दोनों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। अपने-अपने कर्मफलों

से सम्बन्ध है। यह तरकीब बहुत होशियारी की साबित हुई। इससे मेरे पिछले जन्मों से मुझे जोड़ दिया गया है। लेकिन समाज से मुझे तोड़ दिया गया है। समाज के ऊपर मेरी गरीबी अमीरी का कोई सवाल न रहा, कोई प्रश्न न रहा।

धर्म की इस धारणा ने निश्चित ही व्यक्तिगत सम्पत्ति को बचाने का अद्भुत उपाय किया है। इसलिए सारे धर्म-शास्त्र दुनिया के कहते हैं, चोरी पाप है, लेकिन दुनिया का एक भी धर्म-शास्त्र नहीं कहता है कि शोषण पाप है। दुनिया का कोई धर्मशास्त्र कैसे कह सकता है कि शोषण पाप है ? वे कहते हैं, चोरी पाप है। कभी आपने सोचा है कि इसके इम्प्लीकेशन्स क्या हैं, इसके मतलब क्या हैं ? इसका मतलब यह है कि चोरी हमेशा गरीब का कृत्य है, अमीर के खिलाफ चोरी हमेशा उनका कृत्य है जिनके पास सम्पत्ति नहीं। उनके खिलाफ जिनके पास सम्पत्ति है। धर्म सम्पत्तिशाली की रक्षा कर रहा है। वह कहता है चोरी पाप है। लेकिन वह यह नहीं कहता कि शोषण पाप है। शोषण अमीर का कृत्य है दरिद्र के खिलाफ। धर्मग्रन्थ कोई भी नहीं कहता कि शोषण पाप है। इस अर्थ में मार्क्स की किताब दुनिया का एक नया धर्मग्रन्थ है जो शोषण को पाप कहता है। और अगर मार्क्स हिन्दुस्तान में पैदा हुआ होता तो हमने अवतारों में वृद्धि की होती। हम निश्चित उसको अपने अवतारों में गिनते। क्योंकि उसने धर्म और समाज के सम्बन्ध में एक नये सूत्र को स्थापित किया है और वह यह कि शोषण पाप है और जब तक शोषण का पाप जारी है तब तक चोरी जैसे छोटे पाप पैदा होते रहेंगे। चोरी उसकी बाई प्रॉडक्ट है। वह उससे आयेगी और मिट नहीं सकेगी। मैं यही नहीं कहता हूं कि चोरी पाप है। मैं कहता हूं शोषण पाप है।

एक मित्र ने पूछा है कि पूंजीपति और पूंजीवाद में क्या फर्क होता है ? क्या मैं कहना चाहता हूं कि पूंजीवाद जिम्मेवार है, पूंजीपति जिम्मेवार नहीं है ? हां, मैं फर्क करता हूं और कहना चाहता हूं कि पूंजीपति और पूंजीहीन, शोषक और शोषित, दोनों शोषक्ष के यंत्रों के परिणाम हैं। शोषण का यंत्र जारी है। उस शोषण के यंत्र में सारे लोग श्रम कर रहे हैं। जिसके पास धन नहीं है, वह धन पाने के लिए श्रम कर रहा है। निर्धन धन पाने के लिए श्रम कर रहा है। धनी भी और धन पाने के लिए श्रम करता है। जो गरीब है वह अमीर होने की कोशिश नहीं कर रहा है ? नहीं हो पा रहा है यह दूसरी बात है। जो धनहीन है वह भी धनाकांक्षी है, जो धनवान है वह गरीब होने से बचने की कोशिश नहीं कर रहा है ? वह धनवान है लेकिन गरीब न हो जाये इसकी पूरी तरह कोशिश में लगा हुआ है। जो गरीब है वह अमीर कैसे हो जाये इसकी पूरी कोशिश में लगा हुआ है। कुछ लोग सफल हो गये हैं, कुछ लोग असफल हो गये हैं यह दूसरी बात है। हम सारे लोग इस कमरे में दौड़ने की कोशिश करें और हमारे

इस भवन का यह नियम हो कि जो प्रथम आ जायेगा वह सर्वश्रेष्ठ होगा। हम सारे लोग दौड़ेंगे लेकिन प्रथम तो एक ही आ सकता है। जो आ जायेगा वह जिम्मेवार है प्रथम आने के लिए या कि वह व्यवस्था जो कहती है कि प्रथम आना श्रेयस्कर है, जिम्मेवार है ? जो नहीं आ सके उनका कोई बड़ा पुण्य कर्म है कि वह नहीं आ सके ? उन्होंने भी दौड़ने की पूरी कोशिश की है जी जान से। वह नहीं आ सके यह दूसरी बात है ! जिनके पास धन है या जिनके पास धन नहीं है उन दोनों की दौड़ समान है। दोनों धनाकांक्षी हैं—धनाढ्य भी, धनहीन भी।

धनाकांक्षा का यह जो समाज है वह जिम्मेवार है। धनपति जिम्मेवार नहीं है। पूंजीवाद के लिए पूंजीवाद जिम्मेवार है, धनपति को पैदा करने के लिए हमारी जो चिन्तना है पूंजी को संग्रहीत करने की, हमारा जो विचार है कि पूंजी को उपलब्ध कर लेना, पूंजी का मालिक हो जाना, पूंजी पर कब्जा कर लेना श्रेयस्कर है। जीवन में यह जो हमारी पूरी व्यवस्था है। फिर जो आदमी पूंजी को उपलब्ध कर लेता है उसे हम देते हैं सम्मान। बड़े मजे की बात है, दरिद्र भी सम्मान देता है उसे जो पूंजी उपलब्ध कर लेता है। दरिद्र भी हाथ बंटा रहा है पूंजी के सम्मान में। दरिद्र पूरा आदर देता है उसे जो जीत जाता है। दरिद्र खुद उसे अपमानित करता है जो उससे दरिद्र है। वह उसको स्वीकार नहीं करता। सम्राट सम्राटों से मिलता है, पूंजीपति पूंजीपतियों से मिलते हैं, चमार चमारों से मिलते हैं। चमार भी भंगी से मिलना पसन्द नहीं कर सकते। वह नीचे उनसे और भी ज्यादा दरिद्र है। उससे मिलने को वह भी राजी नहीं है। वे उसके साथ भी चाहते हैं कि रास्ते पर नमस्कार वह उन्हें करे।

पूरे समाज की मनोवृत्ति धनाकांक्षी है पूरे समाज का चित्त पूंजीवादी है। गरीब का भी, भिखमंगे का भी, सम्राट का भी, धनपति का भी, इसमें धनपति को जिम्मा देने की जरूरत नहीं है। हम सब जिम्मेवार हैं, हम इकट्ठे जिम्मेवार हैं। निकृष्टतम, दरिद्रतम और श्रेष्ठतम और धनवान, हम सब इकट्ठे जिम्मेवार हैं इस समाज को निर्मित करने में और इसलिए यह बात गलत है कि कहे कोई कि पूंजीपति जिम्मेवार है। पूंजीपति भी उसी व्यवस्था की पैदाइश है जिस व्यवस्था की पैदाइश गरीब है। वे दोनों एक ही व्यवस्था से उत्पन्न हो रहे हैं और गरीब भी पूंजीवाद को जमाये रखने में उतना ही सहयोगी है जितना अमीर।

पूंजीवाद जिस दिन जायेगा उस दिन अमीरी ही नहीं जायेगी, गरीबी भी चली जायेगी। पूंजीवाद के जाने के साथ ही गरीब, अमीर दोनों चले जायेंगे। दोनों पूंजीवाद के हिस्से हैं। उसमें गरीब उतना ही जिम्मेवार है, यह हमें कभी-कभी दिखायी नहीं पड़ता है। हमें यह दिखायी पड़ता है कि एक ताकतवर आदमी एक कमजोर आदमी की छाती पर पैर रखकर खड़ा हो गया है तो हम

कहते हैं कि यह ताकतवर आदमी बुराई कर रहा है, लेकिन हम नहीं जानते कि कमजोर आदमी बुराई क्यों करने दे रहा है। दोनों जिम्मेवार हैं। वह कमजोर है और वह सहने को राजी है छाती को किसी की छाती पर। तो छाती पर पैर रखने वाला जिम्मेवार है, वह इस कार्य में, छाती पर जिसने पैर रखने दिया है, वह भी उतना ही जिम्मेवार है। कमजोर हमेशा से ही जिम्मेवार हैं जितने कि ताकतवर। कायर हमेशा से उतने ही जिम्मेवार हैं जितने बहादुर। हम कहते हैं कि हमारे ऊपर मुसलमान आये और उन्होंने हमें गुलाम बना दिया। मुसलमान जिम्मेवार हैं और आप जिम्मेवार नहीं हैं जो गुलाम बने ? गुलाम उतना ही जिम्मेवार है जितना गुलाम बनाने वाला और जब तक गुलाम ऐसा सोचता है कि गुलाम बनाने वाले जिम्मेवार हैं तब तक वह बिल्कुल गलत बात सोचता है। गुलामी दोनों के हाथ का जोड़ का परिणाम है—और जब तक दुनिया में गुलाम बनने के लिए लोग मौजूद हैं, तब तक गुलाम बनाने वाले लोग भी मौजूद रहेंगे।

स्त्रियां कहती हैं कि पुरुषों ने हमें दबा लिया है, लेकिन स्त्रियों को जानना चाहिए कि वे दबने को तैयार हैं और इसलिए पुरुषों ने दबा लिया है अन्यथा कौन किसको दबा सकता है। कोई किसी को नहीं दबा सकता। लेकिन हम हमेशा यह देखते हैं कि दूसरा जिम्मेवार है। अंग्रेज जिम्मेवार है, हमको गुलाम बना लिया और हम चालीस करोड़ नपुंसक क्या करते थे कि अंग्रेज हमें गुलाम बना सके ? हम कम-से-कम मर तो सकते थे—अगर और कुछ नहीं कर सकते थे। मर्दों को तो गुलाम नहीं बनाया जा सकता था ? कम-से-कम आखिरी रूप में एक ताकत तो आदमी के हाथ में है कि वह मर सकता है, एक च्वाइस तो कम-से-कम हाथ में है हर आदमी के कि वह आत्महत्या कर सकता है।

मैंने सुना है कि जर्मनी ने हालैंड पर हमला करने का विचार किया। हालैंड तो बहुत समृद्ध मुल्क नहीं है और हालैंड के पास बहुत सुसज्जित सेनाएं भी नहीं हैं। हालैंड के पास बड़ी शक्ति भी नहीं है। जर्मनी से जीतने का तो कोई उपाय नहीं है उसके पास। लेकिन हालैंड ने तय किया कि चाहे हम मर जायेंगे, लेकिन हम गुलाम नहीं बनेंगे। पर लोगों ने पूछा कि हम करेंगे क्या ? कैसे गुलाम नहीं बनेंगे ? तो हालैंड का आपको पता होगा, उसकी जमीन नीचे है समुद्र की सतह से। समुद्र के चारों तरफ दीवारें और परकोटे उठाकर उसको अपनी जमीन को बचाना पड़ता है। तो हालैंड के एक-एक कम्यून ने एक गांव की कौंसिल ने यह तय किया कि जिस गांव पर हिटलर का कब्जा हो जाये वह गांव अपनी दीवारें तोड़ दे और समुद्र को गांव के ऊपर आ जाने दे, पूरा गांव डूब जायेगा। हिटलर की फौजें भी डूब जायेंगी। हालैंड को हम पूरा डुबा देंगे समुद्र के नीचे, लेकिन इतिहास यह नहीं कह सकेगा कि हालैंड गुलाम हुआ।

ऐसी कौम को गुलाम बनाना कठिन है। क्या करियेगा, आखिर गुलाम बनाने के लिए आदमी का जिन्दा रहना जरूरी है। कमजोर आदमी को भी मरने का हक तो है। कमजोर आदमी भी मरना नहीं चाहता, इसलिए गुलाम बनने को राजी होता है और गुलामी में उसका हाथ है। वह कोई अपने को बचा नहीं सकता। यह जो पूंजी की व्यवस्था है, यह जो शोषण की व्यवस्था है, इसमें गरीब आदमी का हाथ उतना ही है जितना अमीर आदमी का हाथ है। इसमें भिखमंगे का हाथ उतना ही है जितना शहंशाहों का। यह तो दोनों के जोड़ का फल है।

इसलिए मैं नहीं कहता कि पूंजीपति का हाथ है, मैं कहता हूं हम सबका हाथ है और जब तक हम यह नहीं समझेंगे कि हम सबका हाथ है, तब तक हम इस शोषण की व्यवस्था को नहीं बदल सकेंगे। अगर पूंजीपति का हाथ है तो किसी पूंजीपति को गोली मार दो तो कोई फर्क पड़ेगा? दूसरा पूंजीपति पैदा हो जायेगा, क्योंकि व्यवस्था काम कर रही है। किसी पूंजीपति को समझा-बुझा कर उसकी सम्पत्ति बंटवा दो तो कोई फर्क पड़ेगा? सम्पत्ति बंट जायेगी और दूसरा पूंजीपति खड़ा हो जायेगा, क्योंकि व्यवस्था काम कर रही है। उस व्यवस्था से सारी चीजें पैदा हो रही हैं।

इसलिए जो समाजवादी पूंजीपति के प्रति घृणा फैलाते हैं वे गलत काम करते हैं। वह काम ठीक नहीं है। समाजवाद पूंजीपति के प्रति घृणा नहीं है। समाजवाद पूंजीपति, दरिद्र, धनवान सबको मिटाने का उपाय है। समाजवाद पूंजीवाद के विरोध में है, पूंजीपति के विरोध में नहीं है। पूंजीपति के विरोध से कुछ प्रयोनहीं है। प्रयोजन है पूंजीवाद से, वह जो कैपिटलिज्म है, वह जो हमारी पूंजी के प्रति निष्ठा है, वह जो पूंजी को मनुष्य ज्यादा मूल्य देते हैं, वह जो हम पूंजी को जीवन का परमात्मा बनाये हुए हैं, वह जो हम पूंजी के लिए ही जीते और मरते हैं, गरीब भी, अमीर भी, यह जो पूंजी का सारा इन्तजाम है—इस पूंजी के केन्द्र को तोड़ देना समाजवाद है।

समाजवाद गरीब की लड़ाई नहीं है, पूंजीपति के खिलाफ। समाजवाद पूंजीपति की, गरीब की, सबकी लड़ाई है पूंजी के खिलाफ; यह समझ लेना जरूरी है और जिस दिन हम यह समझ सकेंगे कि पूंजीवाद के खिलाफ हमारी लड़ाई है, पूंजीपति के खिलाफ नहीं, तो पूंजीपति भी इस लड़ाई में साथी और सहयोगी होगा। समाजवादियों की इस गलत धारणा ने कि हम पूंजीपति के खिलाफ लड़ रहे हैं समाज को अजीब हालत में डाल दिया है। उन्होंने एक ऐसी हालत पैदा कर दी कि लड़ाई पूंजीपति के खिलाफ है। तो पूंजीपति समाजवाद का नाम लेते ही भयभीत होता है। वह सुनता है कि समाजवाद, यानी उसका दुश्मन। समाजवाद पूंजीपति का दुश्मन नहीं है। समाजवाद गरीब से गरीबी छीन लेगा, अमीर से अमीरी छीन लेगा और गरीब भी ठीक अर्थ में नारायण नहीं हो पाता, अमीर

भी ठीक अर्थों में नारायण नहीं हो पाता। अमीर नारायण भी तकलीफ में रहता है पूंजी की, गरीब नारायण भी तकलीफ में रहता है गरीबी की।

जिस दिन हम गरीब की गरीबी छीन लेंगे, अमीर की अमीरी छीन लेंगे, उस दिन हम प्रत्येक मनुष्य को मनुष्य होने का पूरा हक देंगे, उस दिन मनुष्य-नारायण का जन्म होगा, नहीं तो समृद्ध-नारायण की पूजा की जाती है, पूजा की जरूरत है नारायण की और नारायण प्रकट नहीं हो पा रहा है, क्योंकि पूजा पूंजी की चल रही है। नारायण की पूजा कैसे हो सकती है? इसलिए मैंने कहा कि मैं उस शब्द को पसन्द नहीं करता हूं।

कुछ मित्रों ने पूछा है कि समाजवाद की समानता की मैं जो बात करता हूं क्या उसका यह अर्थ है कि सबकी सम्पत्ति बिल्कुल समान कर दी जाये! क्या उसका अर्थ है कि सबको तनख्वाहें बिल्कुल बराबर दी जायें। क्या उसका अर्थ है कि प्रत्येक आदमी को एक-सा मकान दे दिया जाये?

नहीं, उसका यह अर्थ नहीं है। उसका यह अर्थ है कि प्रत्येक आदमी को जीवन में विकास का समान अवसर दिया जाये। अभी हम पूंजी के इतने प्रभाव में हैं कि जब भी हम समानता की बात सोचते हैं, तो तत्काल हमारे सामने जो पहला सवाल उठता है वह यह है कि बराबर नौकरी, बराबर तनख्वाह, बराबर मकान। यह पूंजी का प्रभाव है कि तत्काल हमें पूंजी को समान करने का ध्यान आता है, क्योंकि हम पूंजी से प्रभावित हैं, हम पूंजी के अतिरिक्त कुछ सोच ही नहीं सकते। हमें मनुष्य का सवाल ही नहीं है, सवाल पूंजी का है। हजार-हजार साल से पूंजी की धारणा के नीचे जीने से जब भी समाजवाद की दृष्टि उठती है तो हम समझते हैं कि पूंजी।

नहीं, सवाल मूलतः यह नहीं है कि सब आदमी को बराबर तनख्वाह मिल जाये। तनख्वाह का मूल्य नहीं है, मूल्य इस बात का है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का समान अवसर मिल जाये। अब एक घर में एक आदमी मोटा है और एक आदमी दुबला है तो समान रोटी खिलाने से बड़ी झंझट पैदा हो जायेगी। समाजवाद का मतलब यह नहीं है कि सब लोगों को बराबर रोटी खानी पड़ेगी। अब एक मोटा आदमी है, उसकी कम रोटी में जान निकल जायेगी और दुबले आदमी को ज्यादा रोटी खिलाने से जान निकल जायेगी। यह मतलब नहीं है। लेकिन प्रत्येक आदमी को जीवन का समान अवसर उपलब्ध हो सके, जीवन के विकास का, परमात्मा तक पहुंचने का, संगीत तक, साहित्य तक, धर्म तक जीवन की सुविधा का समान अवसर मिल सके और जितने दूर तक यह सम्भव हो सके, जितने दूर तक यह उचित हो सके उतने दूर तक वर्गों का फासला निरन्तर कम-से-कम होता चला जाये।

अब हिन्दुस्तान में एक आदमी एक रुपया कमा नहीं पा रहा है रोज और

दूसरा आदमी रोज पांच लाख रुपये कमा रहा है। यह फासला ? यह घबरा देने वाला फासला है। यह अमानवीय है और हम कहते हैं कि हम धार्मिक लोग हैं ! धार्मिक लोग हम होते तो इतने अमानवीय, इतने अधार्मिक फासले सह सकते थे ? लेकिन हमारा धर्म इसमें है कि हम माला फेरते हैं। अभी एक बहन ने आकर कहा कि किसी धार्मिक को वह साथ में लायी होंगी। उन्होंने कहा, अरे, यह तो ब्रह्म की कोई बात ही नहीं कर रहे हैं, यह तो सब संसार की ही बातें कर रहे हैं।

ब्रह्म की बातों से लोग समझते हैं धार्मिक हो गये, ब्रह्म की बात कर ली तो धार्मिक हो गये। ब्रह्म की बात करने से धार्मिक कोई नहीं हो सकता। धार्मिक होता है इस जगत् में ब्रह्म को उतारने की सम्भावना बढ़ाने से। इस जगत् में ब्रह्म अवतरित हो। ब्रह्म की बकवास तो ग्रन्थों में बहुत लिखी है, परिभाषाएं बहुत लिखी हैं और कोई भी मूढ़ जन उन्हें याद कर सकता है कि ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। इसको याद करने में कोई बहुत बुद्धिमानी की जरूरत नहीं है, लेकिन ब्रह्म सत्य हो कहां पाया है। जगत् ही सत्य बना हुआ है। ब्रह्म तो बिल्कुल असत्य है। ब्रह्म सत्य हो सकता है जब हम इस जगत् में ब्रह्म के विकास की अधिकतम सुविधा और समान सुविधा जुटा सकेंगे। तभी ब्रह्म सत्य होगा और जगत् मिथ्या होगा। बुद्ध के लिए, महावीर के लिए ब्रह्म सत्य होगा, जगत् मिथ्या होगा; लेकिन हमारे लिए ? हमारे लिए रोटी सत्य है और ब्रह्म मिथ्या है, हमारे लिए शरीर ही सत्य है और आत्मा मिथ्या है।

सूत्र रटने से कुछ भी नहीं होगा, बल्कि हम सूत्र रटने ही इसलिए हैं कि जिस आदमी को यह पता चल चुका हो कि ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है वह रोज सुबह उठकर आंख बन्द करके यह कहेगा कि ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या, ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या ? पता चल गया हो तो पागल हो गया होगा, उसको कहने की जरूरत ? एक पुरुष एक कोने में बैठकर कहे कि मैं पुरुष हूं, मैं पुरुष हूं तो सबको शक हो जायेगा कि यह आदमी पुरुष नहीं है ? तुम पुरुष हो यह तुम्हें पता है, बात खत्म हो गयी ! अब इसको रोज-रोज दोहराने की और सत्संग करने की जरूरत नहीं समझने जाने के लिए कि मैं पुरुष हूं या नहीं। जब तक संदेह है तब तक इस तरह की बातों की पुनरुक्ति है। जो लोग सुबह उठकर दोहराते हैं ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या, उनको जगत् सत्य दिखायी पड़ता है, ब्रह्म मिथ्या दिखायी पड़ता है। इस स्थिति को उल्टाने के लिए बेचारा जोर-जोर से उसे रट रहा है कि नहीं जगत् असत्य है, ब्रह्म सत्य है। जो दिखायी पड़ रहा है उसको मिटा डालने के लिए, पोंछ डालने के लिए, उल्टा करने के लिए ये सारी बातें कर रहे हैं। इन बातों से ब्रह्मज्ञान का कोई सम्बन्ध नहीं है। ब्रह्मज्ञान का सम्बन्ध ब्रह्म की चर्चा से नहीं है।

इस जगत् में ब्रह्म की कैसे अवतारणा हो, कैसे डिसेण्ड हो सके, वह जो डिजाइन है, वह जो दिव्य है, वह कैसे इस पृथ्वी पर आ सके अधिकतम प्राणों में कैसे आकर वह स्पर्श कर सके, अधिकतम प्राणों में कैसे उसका संगीत गूंज उठे। लेकिन जिन प्राणों को शरीर से ही मुक्त होने का उपाय मिलता हो उन प्राणों को ब्रह्म के अवतरण की सम्भावना कहां ?

इसलिए मैं कहता हूं कि समाजवाद आने पर जगत् में ब्रह्मवाद आने के द्वार खुल जायेंगे।

अब तक दुनिया में व्यक्ति हो गया है ब्रह्मवादी, समाज नहीं हो सका। अरबों-खरबों व्यक्तियों में अगर एकाध व्यक्ति ब्रह्मवादी हो जाता है, तो इसका मूल्य कितना हो सकता है ? अगर हम इतिहास उठाकर देखें दस हजार वर्ष का तो हम दस-बीस नाम गिन सकेंगे मुश्किल से कि यह ब्रह्मवादी है। कितने अरबों लोग पैदा हुए हैं, कितने अरबों लोग मरे, कितने अरबों लोग जिये, कितने अरबों लोग समाप्त हुए, वे सब कहां गये ? वे ब्रह्मवादी नहीं हो पाये, दस-पांच लोग ब्रह्मवादी हुए। यह सफलता की बात है ? एक माली एक करोड़ पौधे लगाये और पौधे में फूल आ जायें तो हम माली की प्रशंसा करेंगे ? हम कहेंगे कि धन्य हो माली, बड़े कुशल हो, बहुत कारीगर हो, बड़े महान हो, गजब कर दिया ! सिर्फ एक करोड़ पेड़ लगाये और एक पेड़ में फूल आ गये ! हम उस माली से कहेंगे कि इस माली के कारण तो एक पेड़ में फूल नहीं आये होंगे माली के बावजूद आ गये होंगे, यह हो सकता है। क्योंकि माली ने तो एक करोड़ पौधे लगाये, एक करोड़ में नहीं आये, एक में आये तो यह साबित होता है कि माली की नजर चूक गयी दीखती है एक पर और फूल आ गये। माली के कारण नहीं आये, इन्स्पाइट ऑफ, उसके बावजूद आ गये होंगे।

करोड़ों-करोड़ों लोग पैदा हों और एक आदमी शंकर हो जाये, करोड़ों-करोड़ों लोग पैदा हों और एक आदमी जीसस हो जाये, यह कथा कोई सौभाग्यपूर्ण है ? नहीं, होना उल्टा चाहिए। करोड़ों-करोड़ों लोग पैदा हों और कभी एकाध आदमी अधार्मिक हो जाये तो हम समझेंगे कि पृथ्वी ब्रह्म की तरफ जा रही है। लेकिन हम अपने देश में यह भ्रम लिए हुए बैठे हैं कि हम सब धार्मिक लोग हैं और इतने फासले हैं जीवन में ! नहीं मैं यह कहता हूं कि सारे फासले आज टूट सकते हैं। लम्बे अर्थों में एक दिन सारे फासले भी टूट सकते हैं, लेकिन आज फासला हम जितना कम कर सकें उतना मनुष्यता का पुनरुत्थान होगा, उतनी मनुष्यता परमात्मा की ओर उठ सकती है।

इसलिए जो बातें मैं कर रहा हूं कोई भूल कर यह न समझ ले कि मैं संसार की बातें कर रहा हूं। संसार की बात करने की मुझे सुविधा नहीं, फुर्सत नहीं है। मैं जो बात कर रहा हूं वह धर्म की ही बात कर रहा हूं, मैं जो बात कर

रहा हूं वह ब्रह्मज्ञान की ही बात कर रहा हूं, संसार की बात करने की मुझे रुचि नहीं है और जो संसार है ही नहीं उसकी बात भी कैसे जा सकती है । ब्रह्म ही है, उसी की बात की जा सकती है और ब्रह्म बड़ी मुश्किल में पड़ा है और पूंजीवाद ने ब्रह्म को बहुत झंझट में डाल रखा है । इस पूंजीवाद से ब्रह्म का छुटकारा होना जरूरी है ।

यह जो हमारी दृष्टि है, वह रहे कि नहीं ? संसार असार है, उसकी बात नहीं करनी है । यह बात पूंजीवाद के बहुत पक्ष में है । पूंजीवाद चाहता है कि साधु सन्त यही समझाते रहे कि संसार असार है । इसमें कुछ भी मतलब नहीं है । वह गरीब ? अरे सह लो इसमें कुछ भी सार नहीं है । गरीबी-अमीरी सब बराबर है । भूख सह लो, अकाल सह लो, दरिद्रता सह लो, सन्तोष रखो, सांत्वना रखो, यह सब सपना है । पूंजीवाद पसन्द करता है कि यह बात, यह जहर, यह पॉइजन, लोगों के दिमाग में डाला जाता रहे कि यह सब तो असार है, इसकी फिक्र मत करो ।

एक आदमी आपको लूट रहा है और एक ज्ञानी आपको समझा रहा है, घबराओ मत, लुटते रहो, यह सब असार है, लेकिन वह लूटने वाला बिल्कुल नहीं सुनता, वह लूटता चला जाता है, उसमें असार से कोई फर्क नहीं पड़ता । यह लूटने वाला सुन लेता है कि असार है और खड़ा रह जाता है । वह लूटता है, वह लूटने वाला प्रसन्न होता है । लूट में से थोड़ा हिस्सा वह ज्ञानी को भी देता है, क्योंकि वह जानता है । यह आपको पता है ? वह लूट में से थोड़ा हिस्सा उसको देता है ।

सारे पण्डित, सारे ज्ञानी, सारे साधु संन्यासी उस लूट में हिस्सेदार होते हैं और उस हिस्से में होने की वजह से वे बेचारे निरन्तर ही यह कहते रहते हैं कि सब असार है, सब असार है, कोई सार नहीं है । यह सब माया है, यह सब सपना है । यह सब सपना है, जो चारों तरफ चल रहा है ? और अगर यह सपना है तो ज्ञानी छोड़कर क्या भागता है, अगर पत्नी सपना है तो पत्नी से भागने की जरूरत ? और धन अगर सपना है तो धन से भागने की जरूरत ? और अगर जीवन सपना है तो त्याग किसका करते हो ? सपने के त्याग किये जा सकते हैं ? नहीं, लेकिन छोड़ने और भागने के लिए ज्ञानी मानता है कि सपना नहीं है ।

लेकिन यह जो चल रही है समाज की व्यवस्था, यह जो समाज की सनातन व्यवस्था चल रही है यह बदल जाये, इसके बदलने की बात करूंगा । वह कहेगा, कहां संसार की और माया की बात करते हो । उसे पता नहीं कि और संसार को उसकी बातें सुरक्षा दे रही हैं । इस माया और संसार को तोड़ा जा सकता है, इस पृथ्वी को परमात्मा की खोज का एक अपूर्व संसार बनाया जा सकता है,

लेकिन आज तक मनुष्य ने जो समाज निर्मित किया है उस समाज में अधिकतम लोगों की जीवन-ऊर्जा रोटी जुटाने में, शरीर की व्यवस्था करने में ही नष्ट हो जाती है । वह कभी भी इसके ऊपर नहीं उठ पाती है । इसके बियॉन्ड इसके अतीत नहीं जा पाती ।

एक समाज चाहिए सम्पत्तिशाली, एक ऐसा समाज चाहिए समृद्धिशाली, एक ऐसा समाज चाहिए समान अवसर वाला, एक ऐसा समाज चाहिए जहां पूंजी केन्द्र न हो, परमात्मा केन्द्र हो, जहां हम जीवन में जियें सिर्फ इसलिए कि जीवन और ऊपर जा सके । एक वैसा समाज जिस दिन दुनिया में होगा उस दिन धर्म का जन्म होगा, उस दिन ब्रह्म हमारे निकट आ सकेगा । अभी शरीर के अतिरिक्त, पदार्थ के अतिरिक्त हमारे निकट कुछ भी नहीं है ।

एक अन्य प्रश्न, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं ।

एक बहन ने पूछा है—बहुत ही मजेदार बात पूछी है । मेरे साधना शिविरों के अभी अखबारों ने कुछ फोटो छाप दिये हैं । एक बहन मेरे गले से आकर लगी हुई है, अखबारों ने ऐसा भी एक फोटो छाप दिया है । उन्होंने वह फोटो देख लिया होगा तो उन्होंने मुझसे पूछा है कि शिविर में आप स्त्रियों के साथ बडा दुर्व्यवहार करते हैं। गांधीजी ने तो ऐसा दुर्व्यवहार कभी नहीं किया !

अगर स्त्रियों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार दुर्व्यवहार है तो मैं जरूर दुर्व्यवहार करता हूं । अब तक साधु-संत स्त्रियों के साथ घृणा का व्यवहार करते रहे हैं, इसलिए वही व्यवहार हमें सद्व्यवहार मालूम होने लगा है । साधु-संतों ने आज तक स्त्रियों को मनुष्य होने की हैसियत नहीं दी है । साधु-संतों ने उसे नर्क का द्वार समझा है, साधु-संतों ने उसे कीड़े-मकोड़ों से बदतर बताया है । साधु-संतों ने उसे सांप-बिच्छू से खतरनाक समझा है । साधु-संतों का अगर वह पैर भी छू ले तो साधु-संत अपवित्र हो जाते हैं और उन्हें उपवास करके पश्चात्ताप करना पड़ता है और ये साधु-संत स्त्री से पैदा होते हैं । इनका सारा देह स्त्री से ही निर्मित होता है । इनका खून स्त्री का, इनकी हड्डी स्त्री की, इनके जीवन की सारी ऊर्जा स्त्री से आती है और वही स्त्री नर्क का द्वार हो जाती है !

मनुष्य-जाति जब तक स्त्रियों के साथ ऐसा असम्मानपूर्ण और ऐसा मूढ़तापूर्ण व्यवहार करेगी, तब तक मनुष्य-जाति के जीवन में कोई ऊर्ध्वगमन नहीं हो सकता है । स्त्री के साथ दुर्व्यवहार अब तक रहा है और उस दुर्व्यवहार का कारण ? उसका कारण स्त्री की कोई खराबी नहीं है, क्योंकि जिन बातों के कारण स्त्री को पाप, दोष देते हैं आप उन बातों में स्त्री के सहयोगी नहीं हैं, यह बड़े मजे की बात है । पुरुष नर्क का द्वार नहीं है, स्त्री अकेले दुनिया में कामवासना ले आती है, पुरुष नहीं ! सच्चाई उल्टी है । स्त्री इतनी कामुक कभी भी नहीं, जितना पुरुष कामुक है और स्त्री की कामवासना को अगर न जगाया जाये तो

स्त्री कामवासना के लिए बहुत आतुर भी नहीं होती और सारी स्त्रियां जानती हैं कि कामवासना में कौन उन्हें रोज घसीटता है—उनका पति या वे स्वयं ! कौन उन्हें घसीटता है ? पुरुष चौबीस घंटे सेक्सुअल है । प्रतिदिन सेक्सुअल है, लेकिन दोष है स्त्री का । वह उसे नर्क ले जाती है ।

यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि स्त्री तो पुरुष पर कोई बलात्कार नहीं कर सकती है, स्त्री तो पैसिव है, स्त्री तो निष्क्रिय है, वह कोई हमला तो कर नहीं सकती पुरुष पर । पुरुष हमला कर सकता है । जो निष्क्रिय है उसको नर्क द्वार कहता है । और जो सक्रिय है वासना में, वह अपने को, शायद स्वर्ग का द्वार समझता है ! स्त्री को दी गयी गालियां, ये अपमान, ये अशोभन शब्द अब तक सद्व्यवहार समझे गये हैं और स्त्री इतनी मूढ़ है कि पुरुष की इन दुष्टतापूर्ण बातों में सहयोगी रही है और उसने भी इन बातों का साथ दिया है। उसने कोई इन्कार नहीं किया, उसने कोई बगावत नहीं की, उसने कोई विद्रोह नहीं किया । उसने यह नहीं कहा कि यह तुम क्या कह रहे हो । उसे सह लिया उसने चुपचाप । उसको उसने मान लिया है चुपचाप, क्योंकि उसका न कोई अपना गुरु है, न उस का अपना कोई शास्त्र है, न उसका अपना कोई धर्म है । वे सब पुरुषों के निर्मित हैं, वे पुरुषों के पक्ष में लिखे गये हैं। वे सब पुरुषों ने अपने पक्ष में ग्रंथों में लिख दिया है कि अगर पति मर जाये तो स्त्री को सती होना चाहिए । लेकिन किसी पति को भी कभी सती होना चाहिए, यह बात उन्होंने नहीं लिखी । स्वभावतः वर्गीय दृष्टिकोण है, वह पुरुषों का अपना दृष्टिकोण है । वह उसने लिख लिया है ।

साधु और संन्यासी स्त्री के प्रति क्यों इतने दुर्व्यवहारपूर्ण रहे हैं ? उसका एकमात्र मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि साधु और संन्यासी को, भीतर उसकी कामना की स्त्री बहुत पीड़ित और परेशान करती है । उसके भीतर स्त्री घूमती है। वह बेचारा परमात्मा को बुलाना चाहता है। जब भी परमात्मा को बुलाता है तभी पत्नी आ जाती है । वह राम-राम जपता है तभी भीतर काम-काम-काम कामवासना चलती है । वह घबराया हुआ है भीतर की स्त्री से । वह उस भीतर की स्त्री से परेशान है, उसके बदले में बाहर की स्त्री को गाली देता है, उसके बदले में बाहर की स्त्री से भयभीत होता है कि बाहर की स्त्री ने अगर हाथ छू दिया तो मर गये, जान निकल गयी क्योंकि भीतर जो स्त्री बैठी है वह जाग जायेगी, वह खड़ी हो जायेगी ।

बाहर की स्त्री के हाथों में ऐसा क्या है जिन्हें छू देने से किसी संन्यासी में कुछ अपवित्र हो जाये और संन्यासी के शरीर में ऐसा कुछ क्या है जो स्त्री के शरीर से ज्यादा पवित्र है और छूने से अपवित्र हो सकता है ? शरीर में क्या है ? इतना भय क्या है ? इतना भय स्त्री का भय नहीं है, अपने भीतर छिपी हुई सेक्सुअलिटी

का, कामवासना का भय है । इसलिए संन्यासी भागता रहा है, घबराता रहा है, दूर-दूर भागता रहा है । स्त्री छू ले तो पाप, स्त्री छू ले तो अपवित्रता और इसको बाकी पुरुष बहुत आदर देते रहे हैं, क्योंकि बाकी पुरुषों का मन स्त्री को छूने के लिए लालायित है । वे देखते हैं कि एक आदमी को नहीं छूता है, दूर-दूर भागता है, वे कहते हैं है महापुरुष, है तपस्वी, क्योंकि हमारा तो मन नहीं मानता है बिना छुए हुए । हमारा मन होता है कि छुएं-छुएं-छुएं । किसी तरह रोकते हैं, संस्कार, शिष्टाचार सब तरह से अपने को सम्भालते हैं, लेकिन मौका मिल जाये, भीड़ मिल जाये, मंदिर हो, मस्जिद हो, गिरजा हो, तो थोड़ा-बहुत धक्का दे ही देते हैं वह दूसरी बात है । लेकिन सामने शिष्टचार रखते हैं, दूर-दूर बचकर चलते हैं ।

इतना बचकर चलना सबूत किस बात का है ? इतना बचकर चलना छूने की इच्छा का सबूत है और किसी बात का सबूत नहीं है । इतनी घबराहट किस बात की है ?—वासना की और दमित वासना की । किन्तु शेष पुरुष देखते हैं कि ये हैं संन्यासी, ये हैं महाराज । ये स्त्री को छूने नहीं देते हैं । ये स्त्री से सदा दूर रहते हैं । 'स्त्री ! दस कदम दूर रहना'—ऐसा साइनबोर्ड जो हाथ में लिए है, वह संन्यासी है !

अभी मैंने सुना है कि एक महाराज को यहां बम्बई में किसी स्त्री ने छू दिया तो उन्होंने तीन दिन का उपवास किया । और उससे उनकी इज्जत बहुत बढ़ी । क्योंकि काम-वासना से भरे हुए समाज में ऐसे लोगों की जरूर ही इज्जत हो सकती है, क्योंकि हम काम-वासना से भरे हैं । हमें लगता है कि कितना महान त्याग किया कि एक स्त्री ने छुआ और उन्होंने इन्कार कर दिया कि नहीं छूने देंगे । यह हमारी सेक्सुअल मैंटेलिटी का सबूत है और इसको अगर सद्व्यवहार समझते हैं तो मैं स्त्रियों के साथ ऐसा सद्व्यवहार करने से इन्कार करता हूं । लेकिन बड़े मजे की बात है, बड़े आश्चर्य की कि एक बहन ने पूछा है, किसी पुरुष ने पूछा होता तो मेरी समझ में आ सकता था । यह बहन बड़ी मर्दानी होगी । इसकी बुद्धि पुरुषों के शास्त्रों से जो निर्मित है !

वह कैंप में जो बहन आकर मेरे हृदय से लग गयी, उस क्षण उसकी प्रार्थना, उसका प्रेम, उसका आनंद, उसकी पवित्रता अद्भुत थी अन्यथा हजार लोगों के सामने वह मेरे हृदय से आकर जुड़ जाने की हिम्मत भी नहीं कर सकती थी । उसका पति बगल में खड़ा था । वह घबराता रहा, अभी उनके पति मुझे मिले और कहने लगे कि मैंने उससे पूछा कि पागल तूने यह क्या किया ! उसने कहा कि मुझे तो पता नहीं था । यह तो जब मैं अलग हट गयी तब मुझे ख्याल आया कि लोग क्या सोचेंगे, लेकिन उस क्षण मुझे सोच-विचार भी नहीं था । उस क्षण मुझे लगा कि कोई दूर की पुकार मुझे खींच रही है और मैं पास चली गयी ।

उस स्त्री को मैं धक्का दे दूं इस ख्याल से कि कोई अखबार का रिपोर्टर, फोटो नहीं उतार ले। उसे कह दूं कि नहीं दूर, उसे दूर कह कर सिर्फ मैं इतना सिद्ध करूंगा कि मेरी भीतर भी वासना उद्दाम वेग से खड़ी है, अन्यथा भय क्या है, अन्यथा डर क्या है, अन्यथा चिन्ता क्या है वह स्त्री कहीं कोई एकांत अंधेरे कोने में मुझसे गले आकर नहीं मिली थी। और मिलती तो भी मैं तो मना करने वाला न था। हजार-हजार लोग चारों तरफ खड़े थे, वहां फोटो उतारे जा रहे थे।

मुझमें भी थोड़ी बुद्धि तो है, लेकिन इस निर्बुद्धि समाज के सामने ऐसा लगता है कि चाहे कुछ भी सहना पड़े, जो ठीक है, जो सही है, चाहे अनादर सहना पड़े, चाहे अपमान सहना पड़े—जो ठीक है, सही है वही करना है, वही किये चले जाना है। मुझे नहीं लगता कि कोई पुरुष प्रेम से जब गले आकर मिलता है तब उसे मैं नहीं रोकता तो एक स्त्री को मैं कैसे रोक सकता हूं। जब किसी पुरुष को मैं नहीं रोकता तो एक स्त्री को मैं कैसे रोक सकता हूं और स्त्री और पुरुष के बीच इतना फासला करने की जरूरत क्या है, प्रयोजन क्या है ? क्या हमें शरीर के अतिरिक्त कभी कुछ दिखायी ही नहीं पड़ता ? जिस फोटोग्राफर ने वह चित्र उतारा होगा और जिस सम्पादक ने छापा होगा वह फोटो मेरे और उस स्त्री के बाबत कम, उस फोटोग्राफर और सम्पादक के सम्बन्ध में ज्यादा बताते हैं। उसकी बुद्धि वहीं अटकी रही है। उस घंटे भर के ध्यान के बाद उसे यही दिखायी पड़ा, इतना ही दिखायी पड़ा।

उन बहन ने यह भी पूछा कि गांधीजी तो ऐसा दुर्व्यवहार कभी स्त्रियों के साथ नहीं करते थे तो शायद बहन को गांधी का कुछ पता नहीं। गांधी इस दुर्व्यवहार को शुरू करने वाले पहले नैतिक महापुरुष हैं। हिन्दुस्तान में गांधी ने पहली बार स्त्री को वह सम्मान दिया है। हिन्दुस्तान के नैतिक महापुरुषों में स्त्री को गांधी की भांति सम्मान देने वाला कोई दूसरा व्यक्ति ही नहीं हुआ है। हां, धार्मिक और आध्यात्मिक व्यक्ति जरूर हुए हैं। जैसे कृष्ण लेकिन उनकी बात ही अलग है। और शायद इसीलिए भारत के कुछ नीतिवादियों ने कृष्ण को नर्क तक में डाल रखा है। कृष्ण को समझना अति कठिन है, क्योंकि उनका चिंतन और चेतना यौन-केन्द्रित बिल्कुल भी नहीं है।

महावीर ने जब स्त्रियों को संन्यास की दीक्षा दी, तो तब भी नीतिवादी चिंतित हुए होंगे। महावीर के भिक्षु थे केवल बारह हजार और भिक्षुणियां थीं चालीस हजार। न मालूम कितने लोगों ने महावीर पर एतराज किया होगा; कि चालीस हजार स्त्रियों से घिरा हुआ है यह आदमी, जरूर एतराज किया होगा क्योंकि आदमी सदा हम ही जैसे हमेशा से थे। हमसे भी बदतर और शायद बुद्ध ने इन नासमझों के कारण ही स्त्रियों को दीक्षा देने में सोच-विचार किया था।

क्राइस्ट पर लोगों ने शक किया कि मेरी मेग्दालिन नाम की वेश्या इसके

चरणों में आकर चरण छूती है, लोगों ने कहा, नहीं इस स्त्री को चरण मत छूने दो। क्राइस्ट ने कहा, लेकिन स्त्री का पाप क्या है कि चरण न छुए ? लोगों ने कहा स्त्री भी हो तो ठीक, यह वेश्या है। क्राइस्ट ने कहा, वेश्या मेरे पास नहीं आयेगी तो कहां जायेगी ? अगर मैं वेश्या को इन्कार कर दूंगा तो फिर वेश्या के लिए उपाय क्या है, मार्ग क्या है।

विवेकानंद हिन्दुस्तान लौटे। निवेदिता साथ आ गयी और बस हिन्दुस्तान का दिमाग फिर गया और सारे बंगाल में बदनामी फैल गयी कि ये स्वामी और संन्यासी और यह निवेदिता कैसे साथ ? निवेदिता की पवित्रता को, निवेदिता के प्रेम को, किसी ने भी नहीं देखा। आज जो सारी दुनिया में विवेकानंद का काम फैला हुआ दिखायी पड़ता है, उसमें विवेकानंद का हाथ कम और निवेदिता का हाथ ज्यादा है। निवेदिता भी दंग रह गयी होगी। कैसे ओछे लोग थे, कैसी छोटी बुद्धि थी। इतना ही नहीं उन्हें दिखायी पड़ा, विवेकानंद को इतना समझ पाये वे सिर्फ।

गांधी ने तो बहुत हिम्मत की। स्त्रियों को गांधी हिन्दुस्तान के घरों से पहली दफा बाहर लाये, स्त्रियों को पुरुषों के साथ खड़ा किया। आपको शायद पता नहीं होगा, वह मेरी ही फोटो छप गयी है, ऐसा नहीं, मैंने सुना है कि गांधी की एक फोटो यूरोप और अमरीका में खूब प्रचारित की गयी थी। एक फोटो तो उनकी वह प्रचारित की गयी जिसमें वह अपने ही घर की बच्चियों के, नातनी-पोतियां होंगी, उनके कंधे पर हाथ रखे हुए दिखाये गये हैं। वह फोटो प्रचारित की गयी कि यह गांधी बुढ़ापे में भी छोकरियों के साथ रास-रंग करता था। यह मत सोचना कि यह फोटो मेरी छाप दी गयी। वह फोटो हमेशा से छापने वाले लोग रहे हैं और रहेंगे। अपनी बुद्धि के अनुकूल ही वे कुछ कर सकते हैं, इससे ज्यादा करने का उपाय भी तो नहीं है। उन पर नाराज होने का कोई कारण भी तो नहीं है और शायद उस बहन को पता नहीं होगा कि गांधी अपनी अंतिम उम्र में, बुढ़ापे में, एक बीस वर्ष की युवती को लेकर छः महीने तक बिस्तर पर सोते रहे। तब उनको पता चलेगा। उतना दुर्व्यवहार अभी मैंने किसी तरह से नहीं किया है। छः महीने तक एक युवती के साथ गांधी बिस्तर पर सोते रहे, किसलिए ? स्वचित्त में छिपी वासना के परीक्षण के लिए। और उस युवती की हिम्मत को दाद देनी चाहिए। और गांधी की ऐसा प्रयोग करने की हिम्मत को भी। वह भी जीवन भर की नैतिकता की दमनवादी धारा में बहने के बाद ?

इसलिए मैं कहता हूं कि गांधी में धार्मिक क्रांति की बड़ी सम्भावनाएं थीं। फिर जल्दी नतीजे लेना ठीक नहीं है। जिन्दगी बहुत गहरी है और समझने को है। जहां हम खड़े हैं जिन्दगी वहीं नहीं है, जिन्दगी और आगे है। हम मिट्टी के दीये हैं, जिन्दगी की ज्योति मिट्टी के दीये से बहुत ऊपर जाती है। जिनको ऊपर की

ज्योति नहीं दिखायी पड़ती, उन्हें सिर्फ मिट्टी के दीये ही दिखायी पड़ते हैं !

गांधी के उपर्युक्त प्रयोग को लेकर भी खूब बातें चलीं। पक्के गांधीवादियों ने विरोध भी किया। रात में पहरे भी दिये। खुद गांधी के पत्रों ने गांधी के वक्तव्य नहीं छापे। और फिर उस घटना को लीप-पोतकर पोंछ डालने की भी चेष्टा की कि कहीं उनके महात्मा मिट्टी में न मिल जायें। लेकिन गांधी के इस प्रयोग पर बहुत ध्यान दिया जाना चाहिए···क्योंकि इससे उनकी दमनवादी प्रवृत्तियों से बिल्कुल विपरीत एक नये आयाम का उद्‌घाटन होता है।

गांधी का यह प्रयोग मूलतः तांत्रिक है। इससे उनके जीवन भर की नैतिकता और संयम की भी गहरी टीका हो जाती है। मेरी दृष्टि में तो गांधी दमन से जो मुक्ति नहीं पा सके, वह मुक्ति उन्हें इस तांत्रिक प्रयोग से मिली। लेकिन इसे स्वीकार करना गांधीवादी के लिए तो बहुत महंगा पड़ सकता है, क्योंकि तब गांधी के जीवन भर के संयमवादी रुख और उपदेशों का क्या होगा ? दमन और तथाकथित संयम की तो इस प्रयोग ने असफलता ही सिद्ध कर दी है। इसीलिए इस घटना को गांधीवादी दुर्घटना से ज्यादा नहीं मानना चाहता है। और उस पर चुप्पी साधे हुए हैं। ये गांधीवादी गांधी के सामने भी जाकर उस घटना के ऊपर गंदे इशारे करते थे और गंदी हंसी हंसते थे। शायद उनका ख्याल रहा होगा कि बुड्ढा हमें धोखा दे रहा है !

बम्बई, दिनांक ५ दिसम्बर १९६८

८. अंधेरे कूपों में हलचल

एक मित्र ने पूछा है कि क्या महापुरुष भी कभी भूलें करते हैं ?

हां, करते हैं। महापुरुष भी भूलें करते हैं। एक बात है कि महापुरुष कभी छोटी भूल नहीं करते और जब भी भूल करते हैं, बड़ी ही करते हैं। अतः इस भ्रम में रहने की आवश्यकता नहीं है कि महापुरुष भूल नहीं करते। कोई भी महापुरुष इतना पूर्ण नहीं है कि वह भगवान कहलाने लगे। महापुरुष भूल करता है और कर सकता है। अतः यह आवश्यक नहीं है कि आने वाले लोग उनकी भूलों पर विचार न करें। यह आवश्यक नहीं है कि हम हिन्दुस्तान के पांच हजार वर्षों के इतिहास पर विचार करें, वरन् यदि हिन्दुस्तान के पांच महापुरुषों पर ही ठीक से विचार कर लें तो आने वाले लोग जिस गलत रास्ते पर चलने वाले हैं—उसकी ओर संकेत हो सकेगा। ठीक समय पर भूल सुधार हो जावेगी।

महापुरुष ऊंचाइयों पर चलते हैं, उन ऊंचाइयों पर, जहां आने वाली पीढ़ियां हजारों सालों तक चलेंगी। लेकिन इतना आगे चलने में महापुरुष भी न जाने हजारों साल पहले ही कितनी भूलें कर डालता है और उन भूलों को दुर्भाग्यवश हजारों साल तक आने वाली पीढ़ियां आत्मसात करती रहेंगी। महापुरुष की जातीय भूलें दिखलायी नहीं पड़ती हैं—जातीय भूलों को देखना और समझना कठिन भी है।

मैंने गांधी वर्ष को गांधी की जातीय भूलों की आलोचना का वर्ष माना है।

इस एक वर्ष में गांधी पर हम जितनी आलोचना कर सकें, हमें करना चाहिए। हम गांधी की जितनी आलोचना करेंगे, उतना ही परोक्ष रूप से उनके प्रति हमारा प्रेम प्रकट होगा। आलोचना द्वारा हम यह प्रकट करेंगे कि हम गांधी को मुर्दा नहीं समझते हैं, उसे जिन्दा समझते हैं। वह और उसके विचार जीवित प्रतीक हैं, तभी तो उस पर विचार करेंगे, उसे समझेंगे और उसकी विचार-परम्परा को आगे बढ़ायेंगे। हम उनकी पूजा नहीं करेंगे। पूजा मरे हुए आदमी की की जाती है, जीवित की नहीं। अतः हम गांधी के विचारों की पूजा नहीं करेंगे।

मैं गुजरात में नहीं था, पंजाब में था। जब लौटा तो मेरी बातों को बड़े-बड़े अजीब अर्थ दे दिया गया था। इन गलतफहमियों की वजह से मुझे गालियां भी दी जा रही हैं। वैसे गालियों का मुझे कोई भय नहीं है। लेकिन यदि इन गालियों के साथ-साथ गांधीजी के विचारों को लेकर कुछ तर्क हुए हों, कुछ विचार-विनिमय हुआ, तो प्रसन्नता की बात अवश्य हो सकती है और उससे गांधीजी की आत्मा भी शान्ति अनुभव करेगी।

आज की चर्चा में जिन बिन्दुओं पर मैं अपनी बात केन्द्रित रखना चाहूंगा, उनमें से पहली बात हजारों साल पुरानी भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की है। कहा जाता है कि भारतीय संस्कृति का इतिहास कोई दस हजार वर्ष पुराना है। पांच हजार वर्ष की कथा तो हमें ज्ञात है···जो भी हो, लेकिन इस दस हजार वर्ष के इतिहास में भारत ने खाने और पहनने में कभी भी योग्यता प्राप्त नहीं की। हमारे दस हजार वर्ष के इतिहास की उपलब्धि यह है कि पृथ्वी पर आज सबसे ज्यादा दरिद्र, दीन, हीन और दुखी लोग हम ही हैं। ऐसा आकस्मिक नहीं हो सकता है। इसमें पीछे हमारे सोचने के ढंग में कोई बुनियादी भूल होनी चाहिए। यह सोचने की बात है कि दस हजार वर्षों से पीढ़ी दर पीढ़ी हम श्रम कर रहे हैं, हर प्रकार से सोच रहे हैं, निरन्तर कुछ नया प्रयास कर रहे हैं; फिर भी हम रोजी-रोटी नहीं जुटा पाते हैं। यह बात गम्भीर है, विचारणीय है। यदि हमारे मूलभूत दृष्टिकोण में दोष नहीं होता तो इतने धन-धान्य से पूर्ण हमारा देश इतना दरिद्र नहीं होता। अतः हमारे तत्त्वचिन्तन की मूलभूत त्रुटि को हमें अच्छी तरह से समझ लेना है।

भूल यह है कि हिन्दुस्तान का मस्तिष्क आज तक वैज्ञानिक एवं तकनीकी नहीं हो पाया है। हिन्दुस्तान का मस्तिष्क सदा से अवैज्ञानिक रहा है तकनीक-विरोधी रहा है। दुनिया में सम्पत्ति तकनीक और विज्ञान से पैदा होती है। सम्पत्ति आसमान से नहीं टपकती। अमेरिका तीन सौ वर्ष के इतिहास में जगत् का सबसे समृद्ध एवं शक्तिशाली देश बन गया। हम दस हजार वर्ष का इतिहास लिए हुए भी अमेरिका जैसे नये देश के सामने हाथ जोड़कर भीख मांग रहे हैं। हमें शर्म

भी नहीं मालूम हुई। हमसे ज्यादा बेशर्म कौम भी खोजनी मुश्किल है।

मैंने सुना है सन् उन्नीस सौ बासठ के करीब चीन में एक अकाल पड़ा था। इन अकाल-पीड़ितों की सहायतार्थ इंगलैंड से उसके कुछ मित्रों ने खाद्य सामग्री, कपड़े, दवाइयां आदि भेजीं वह जहाज जब चीन भेजा तो किनारे से ही भरा हुआ जहाज लौटा दिया गया और उस जहाज पर लिख दिया कि धन्यवाद, हम मर सकते हैं लेकिन किसी भी हालत में भीख मांगने को तैयार नहीं हैं। होगा चीन कैसा ही देश, होगा माओ कैसा ही और होंगी उनकी नीतियां कितनी ही घातक! लेकिन बात उन्होंने स्वाभिमान की कही। अमेरिका की कौम तीन सौ वर्ष पुरानी है और इन तीन सौ वर्षों में उन्होंने पृथ्वी पर सम्पत्ति का ढेर लगा दिया। आज वे सारी पृथ्वी के अन्न-दाता बन बैठे हैं और हम भिखारियों की तरह खड़े हैं।

यूरोप-निवासियों के आने के पहले अमेरिका में वही जमीन थी, वही आसमान था, वही खेत थे, वैसे ही वर्षा होती थी, वैसे ही सूरज चमकता था, लेकिन अमेरिका का आदिवासी सम्पत्ति पैदा क्यों नहीं कर सका? जब देश वही था तो सम्पत्ति पैदा क्यों नहीं हुई? अमेरिका का आदिवासी भूखा मर रहा था, लंगोटी लगाये हुए था और यूरोप के लोगों के पहुंचने से यह सम्पत्ति कहां से पैदा हो गयी? यह सम्पत्ति आयी थी टेक्नालॉजी से, योरोपीय लोगों के तकनीकी एवं वैज्ञानिक मस्तिष्क से। हिन्दुस्तान का मस्तिष्क प्रारम्भ से ही अवैज्ञानिक रहा है। गांधीजी ने हिन्दुस्तानियों के इस अवैज्ञानिक मस्तिष्क में भरी भूलों को और मजबूत किया है, फिर से उन्होंने तकली और चर्खे की बातें की हैं और किसी भी गम्भीर व्यक्ति के लिए यह बात बर्दाश्त के बाहर है।

अतः हिन्दुस्तान को यदि प्रगति करनी है तो चर्खा और तकली से मुक्त होना पड़ेगा। मैं आशा करता हूं मेरे कहे का सही अर्थ लगाया जाये और उसे सही माने में समझा भी जाये। मैं यह नहीं कहता हूं जो चर्खा तकली से कमा रहे हैं उनकी कमाई पर हम लात मार दें, यह भी मैं नहीं कहता हूं कि खादी का उत्पादन हम बन्द कर दें। मैं कहना यह चाहता हूं कि खादी-तकली हमारे चिन्तन का प्रतीक न बनें। हमारे चिन्तन के प्रतीक यदि इतने पिछड़े हुए होंगे तो हम आने वाली दुनिया में ऊपर नहीं उठ सकते हैं। हिन्दुस्तान यदि भूखा मरेगा तो उसका जुम्मा तकनीक-विरोधी दृष्टिकोण पर होगा। यदि गांधी की पूरी बात मान ली जाये, तो भारत में ही करीब पच्चीस करोड़ लोगों को मृत्यु के फंदे में ढकेलना पड़ेगा। वह मृत्यु अहिंसक गांधी के सिर पड़ेगी। आल्डुअस हक्सले ने कहीं कहा है कि यदि गांधी की बात सारी दुनिया मान ले तो पृथ्वी की आधी आबादी को नष्ट हो जाना पड़ेगा। साढ़े तीन अरब लोगों में से पौने दो अरब लोगों को मरना पड़ेगा। क्योंकि तकनीक के विकास के कारण ही मनुष्य की

आबादी बढ़ी है। जब तक तकनीकी विकास नहीं हुआ था तब तक दुनिया की आबादी इस भांति बढ़ ही नहीं सकती थी। शायद बुद्ध के समय सारी दुनिया की आबादी दो-अढ़ाई करोड़ से ज्यादा नहीं थी। यदि हमें पीछे रामराज्य की तरफ लौटना हो तो यह जागतिक आत्मघात, यूनिवर्सल स्यूइसाइड ही कहा जा सकता है। चंगेज, तैमूर, सिकन्दर, नेपोलियन, हिटलर, स्टैलिन, माओ—सब मिलकर भी इतने लोगों को नहीं मार सकते हैं जितनों को अकेले गांधी-दर्शन मार डाल सकता है!

गांधी का विचार तकनीक-विरोधी है और गांधी का यह तकनीक-विरोधी विचार ही भारत को दरिद्र बनाये रखने का कारण बनेगा। इसी कारण इस पर ठीक से सोच-समझ लेना आवश्यक है। यह तकनीक-विरोधी हमारी परम्परा तो पांच हजार वर्ष पुरानी है और इसीलिए हमें हमारे चारों ओर का सिलसिला भी ठीक-ठीक ही लगता है। इसीलिए लगता भी है कि क्या करना है जरूरतें बढ़ाकर, क्या करना है बड़ी मशीनें बनाकर, क्या करना है केन्द्रियकरण से?

लेकिन हमें यह मालूम होना चाहिए कि केन्द्रीयकरण के बिना, बिना बड़े उद्योगों के, सम्पदा पैदा हो ही नहीं सकती है। सम्पदा पैदा करनी है तो केन्द्रीकरण की व्यवस्था करनी ही होगी। गांधी विकेन्द्रीकरण के पक्ष में हैं तो मैं यही कहता हूं कि यह विकेन्द्रीकरण ही आत्मघातक सिद्ध होगा। सच बात तो यह है कि यदि गांधी को छोड़कर किसी अन्य आदमी ने विकेन्द्रीकरण की और चरखा-तकली की बातें की होतीं तो हम उस पर हंसते। हम उस आदमी को बेवकूफ कहते। लेकिन गांधी इतने महिमापूर्ण व्यक्ति हैं कि उनकी नासमझी की बातें भी हमें पवित्र मालूम होती हैं।

गांधी के व्यक्तित्व में ही कुछ ऐसी बात थी कि वे हमसे यदि दोषपूर्ण एवं असंगत बातें भी कहेंगे तो भी हम उसे परम, सिद्ध मंत्र की तरह स्वीकार करेंगे। गांधी की ये बातें यदि और कोई करता तो हम उसको सपने में भी स्वीकार नहीं करते, क्योंकि हम जानते थे कि वे न तो विवेकपूर्ण हैं, न बुद्धिमत्ता पूर्ण हैं और न ही भविष्य में उनसे देश का कोई भला ही होने वाला है। इससे सिद्ध होता है कि गांधी अद्‌भुत व्यक्ति थे जो हर प्रकार की बात चाहे वह गलत हो या उल्टी, सही प्रमाणित कर सकते थे। यदि कोई साधारण आदमी कहे कि तकली कातो और देश आजाद हो जायेगा तो हम मानेंगे ही नहीं, बल्कि उसकी बात पर हंसेंगे। लेकिन गांधी जैसे आदमी पर हंसना कठिन है। गांधी इतने सच्चे थे, नीयत के इतने साफ कि देश के लिए अपना सब-कुछ अर्पित करके मरे। वे ऐसे व्यक्ति थे कि उनके रोम-रोम में, प्राण-प्राण में देश की उन्नति के सिवाय और कुछ नहीं बसा था। यही कारण है कि हम यह कल्पना ही नहीं कर सकते कि गांधी कुछ गलत भी कह सकते हैं। गांधी की गलतियों पर किसी ने ध्यान देने

की आवश्यकता भी नहीं समझी, क्योंकि गांधी की नियत पर कभी भी किसी को भी शक नहीं था।

गांधीजी को जो ठीक लगा उन्होंने ईमानदारी से उसे निभाया और दृढ़तापूर्वक उसका पालन भी किया। लेकिन गांधीजी ने जो सोचा वह ठीक भी हो सकता है और त्रुटिपूर्ण भी। यह कोई अनिवार्यता नहीं है कि गांधीजी ने जो कुछ सोच लिया, वह ध्रुव सत्य है और वह त्रुटिपूर्ण हो ही नहीं सकता। दुनिया में अनिवार्यता किसी भी चीज की नहीं है। न्यूटन को जो ठीक लगा वह न्यूटन ने किया। आइन्स्टीन को जो ठीक लगता है वह आइन्स्टीन करता है। दोनों का विरोधाभास यदि हो भी जाये तो इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों एक-दूसरे के शत्रु हो जायेंगे। आइन्स्टीन तो न्यूटन के सिद्धांतों को आगे बढ़ाने वाला होगा, उसे गति प्रदान करने वाला होगा और प्रगति का यही क्रम भी रहता है। मैं कोई गांधी का शत्रु नहीं हूं। मेरे हृदय में उनके प्रति जितना प्रेम है, श्रद्धा है, शायद ही अन्य किसी पुरुष के प्रति हो। लेकिन कठिनाई यह है कि उनके थोथे अनुयायी यह प्रचारित करते हैं कि मैं उनका शत्रु हूं तो यह बच्चों जैसी नादानी और मूर्खता ही कही जायेगी। गांधी के व्यक्तित्व पर मुझे कोई शक नहीं है। लेकिन इसका यह अर्थ तो नहीं कि गांधी जो कहते हैं वह सब सही हो सकता है, सब उपयोगी हो सकता है। ऐसा सोचना स्वयं को धोखा देना होगा, खतरनाक होगा।

कई लोग व्यक्तित्व के साथ कृतित्व को जोड़ने के आदी हो गये हैं। किसी भी महापुरुष ने मनुष्य के, समाज के रूपान्तरण के सम्बन्ध में इतना गहरा विचार नहीं किया जितना कि मार्क्स ने किया है। लेकिन मार्क्स सुबह से लेकर शाम तक सिगरेट पीता था। अब अगर कोई समाजवादी यह समझे कि मुझे भी सुबह से शाम तक सिगरेट पीनी चाहिए केवल इसलिए क्योंकि मार्क्स सिगरेट पीता था और मार्क्स ने जो भी व्यक्तिगत स्तर पर गलत काम किये वह भी उन्हें दोहरावेगा तो उसे कोई भी संगतिपूर्ण नहीं कहेगा। हर बड़े आदमी की अपनी कुछ व्यक्तिगत रुझान होती है, अपने जीने का ढंग होता है। उसे जो प्रीतिकर होता है, वह करता है लेकिन पीछे आने वाले लोगों को निरन्तर सचेत होकर सोचना जरूरी है कि क्या उसके और देश के लिए, भविष्य के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

मुझे ऐसा दीख पड़ता है कि यदि हम गांधी के इस तकली-चर्खा के जीवन-दर्शन में डूबे रहे, उसी में अपनी शक्ति और समय नष्ट करते रहे तो यह देश औद्योगिक क्रांति में से नहीं गुजर सकेगा। यह स्मरण रहे कि आने वाले पचास वर्षों में सारी दुनिया से इतनी बड़ी क्रांति गुजरने वाली है कि हमारे बीच और पश्चिम के बीच इतना बड़ा फासला हो जायेगा कि शायद इस फासले को हमारी आने वाली पीढ़ियां कभी पूरा न कर सकेंगी। हमें जो भी करना है वह आने वाले बीस वर्षों में अत्यन्त तीव्रता से तकनीक के मामले में आधुनिक दुनिया के के समक्ष खड़ा होना है। अन्यथा हम हमेशा के लिए पिछड़ जायेंगे जैसा अब तक होता रहा है। तकनीक यानी मनुष्य की इन्द्रियों और समताओं का विस्तार। आंख थोड़ी दूर ही देख सकती है। लेकिन दूरबीन बहुत दूर तक देख सकती है। वह आंख का ही विस्तार है। अब तो राडार आंखें भी हैं। और जिन्हें चांद-तारों पर पहुंचना है, उनके लिए खाली आंखें काफी नहीं हो सकती हैं। ऐसे ही शेष सारी तकनीक का भी दर्शन है। हमारा मकान हमारे शरीर का ही विस्तार है। और हमारे हवाई जहाज हमारे पैरों के। मनुष्य तकनीक के माध्यम में विराट हो गया है। और जो भी उस आयाम में यात्रा करने से इन्कार करेंगे वे व्यर्थ ही बौने रह जायेंगे।

गांधी की बातें भारत को बौना करने वाली हैं उनका चले तो हमें आदि-गुफा-मानव की दुनिया में पहुंचा दें। माना कि कोई इतनी दूर तक उनकी बातें नहीं मानेगा। बुद्धि रहते ऐसा करना सुगम भी नहीं है। लेकिन लम्बी पराजय और आलस्य से भरी जाति ऐसी बातें अपने अहंकार को बचाने के लिए भी मान सकती है। भारत में कुछ ऐसा ही हो रहा है। जिन अंगूरों तक हम नहीं पहुंच पा रहे हैं उन्हें खट्टे कहकर स्वयं का चेहरा बचाया जा रहा है! लेकिन इसमें किसी और का कोई नुकसान नहीं है। हानि होगी तो बस हमारी ही होगी! क्योंकि चाहे झूठे ही सही, बिना स्वाद लिए ही सही, जिसे हम खट्टा मान लेते हैं, उसे पाने की मात्रा बन्द हो जाती है। और हमारे खट्टे की घोषणा से दूसरे तो उसे पा नहीं सकते हैं। बल्कि जब उनके चेहरे कहते हैं कि नहीं जो हमने छोड़ा वह खट्टा नहीं था, तो हमारे प्राण और भी संकट में पड़ जाते हैं। लेकिन तब स्वाभिमान बचाने को हम अंगूरों के खट्टे होने का और भी शोरगुल मचाने लगते हैं। यह एक दुष्ट-चक्र है। और भारत इसमें बुरी तरह उलझ गया है।

हिन्दुस्तान की दीनता और दरिद्रता की कथाएं यह बतला रही हैं कि हमने कभी टकनोलॉजी विकसित करने का प्रयास ही नहीं किया। हम यही कहते रहे कि हम झोंपड़ों में रह लेंगे, अपना चरखा कात लेंगे, अपना कपड़ा बुन लेंगे और हमें क्या आवश्यकता है अन्य चीजों की? हम अपनी जगह बैठे रहे और दुनिया तेजी से विकसित होती चली गयी। चीन ने हम पर हमला किया तो हम पीछे हट आये और जितनी जमीन हमने छोड़ी उस पर चीन ने कब्जा कर लिया, वह जमीन उसी की हो गयी। अब हम उसकी कोई बात ही नहीं करते। करने की हिम्मत भी करना कठिन है। यह सब इसलिए, क्योंकि तकनीक की दृष्टि से हम चीन से पिछड़े हुए हैं, उससे लड़ने में असमर्थ हैं। एक बड़े गांधीवादी नेता से इस सम्बन्ध में मेरी बात होती थी तो उन्होंने कहा—'वह जमीन बिल्कुल बेकार है। उसमें घास-फूस भी पैदा नहीं होता है।' यह वही खट्टे अंगूरों वाली बात

है न ?

मनुष्य ने जितनी सभ्यता विकसित की है वह श्रम से मुक्त हो जाने के लिए की है। जब भी कुछ लोग श्रम से मुक्त हो गये तो उन्होंने काव्य रचे, गीत लिखे, चित्र बनाये, संगीत का सृजन किया, परमात्मा की खोज की। इस प्रकार आदमी जितना श्रम से मुक्त होता है उतना ही उसे धर्म, संगीत और साहित्य को विकसित करने का अवसर मिलता भी है। कभी आपने सोचा है कि जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के ही लड़के क्यों हुए ? बुद्ध राजा के ही लड़के क्यों हुए ? राम और कृष्ण राजा के लड़के क्यों हुए ? हिन्दुस्तान के सब भगवान राजाओं के लड़के क्यों हुए ? उसका भी कारण है। एक दरिद्र आदमी जो दिन भर मजदूरी करके भी पेट नहीं भर सकता है, खाना नहीं जुटा सकता है, थका-मांदा रात को सो जाता है, सुबह उठकर फिर अपनी मजदूरी में लग जाता है—उसके लिए कहां का परमात्मा, कहां की आत्मा, कहां का दर्शन ?

दरिद्र समाज कभी धार्मिक समाज नहीं हो सकता है। हिन्दुस्तान दो-अढाई हजार वर्ष पूर्व समृद्ध था तो वह उस समय धार्मिक भी था। लेकिन आज हिन्दुस्तान इतना गरीब और दरिद्र है कि वह धार्मिक नहीं हो सकता है। मैं आपसे दावे से कह सकता हूं कि रूस और अमेरिका आने वाले पचास वर्षों में एक नये अर्थ में धार्मिक होना शुरू हो जायेंगे। उनके धार्मिक होने की प्रक्रिया भी प्रारम्भ हो गयी है। जब आदमी के पास अतिरिक्त सम्पत्ति होती है, जब उसके पास श्रम की कमी के कारण समय बचता है, तब पहली बार आदमी की चेतना पृथ्वी से ऊपर उठती है और आकाश की ओर देखती है।

सन्तोष एक बहुत ही घातक शब्द है, हमें जड़ करने के लिए। हमारा दर्शन यह है कि हम अपनी चादर में ही सन्तुष्ट हैं। हमारे हाथ-पांव बढ़ते जायेंगे, लेकिन हम अपने को सिकोड़ते जायेंगे। चादर तो उतनी ही रहेगी—छोटी की छोटी। तुम भीतर बड़े होते जा रहे हो। रोज कभी हाथ उघड़ जावेगा, कभी पांव उघड़ जावेगा, कभी पीठ उघड़ जावेगी और इस तरह सिकुड़ते-सिकुड़ते जिन्दगी कठिन हो जावेगी।

सिकुड़ना तो मरने का ढंग है।

तो मेरा यह कहना है कि जीवन के विस्तार का नियम यह नहीं है। जीवन के विस्तार का दर्शन यही कहता है कि हमें चादर का विस्तार करना है। हमेशा चादर के बाहर पैर फैलाओ, ताकि बाहर जाये और हमें यह चुनौती मिले कि चादर को हमें बड़ा करने का निरन्तर प्रयास करना है। हिन्दुस्तान कायर और सुस्त अकारण नहीं हो गया। हिन्दुस्तान के सुस्त एवं कायर होने के पीछे तथाकथित बड़े-बड़े लोगों का दर्शन है। अतः हिन्दुस्तान के हर व्यक्तित्व को फैलाव चाहिए। हमें तकनीक विरोधी दर्शन छोड़ना है और प्रतिभाओं को खुला अवसर

देना है, साहसपूर्वक उनका फैलाव करना है।

मेरा विरोध गांधी से नहीं, गांधीवादी दर्शन से है। हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञों को गांधी से कोई मतलब नहीं है, मतलब है गांधीवाद से। इसलिए गांधीवाद की इतनी भीमकाय तस्वीरें और रंगमंच खड़े कर दिये हैं ताकि उसके पीछे सब-कुछ खेला जा सके, सब-कुछ सही गलत किया जा सके। बीस वर्ष से गांधी की आड़ में एक खेल चल रहा है, गांधीवाद के नाम पर देश का शोषण चल रहा है और गांधीवादियों ने इन बीस वर्षों में देश को नर्क की यात्रा करा दी है। गांधीवाद से हम जितनी जल्दी मुक्त हो जावें उतना ही अच्छा होगा और उसी दिन हम सच्चे अर्थों में गांधी को ज्यादा प्रेम और आदर देने में समर्थ हो सकेंगे। इन गांधीवादियों की वजह से ही गांधी का इतना अनादर हो रहा है।

गांधी ने जिस दिन चरखे-तकली की बात की थी तब सम्भवतः उसकी जरूरत रही होगी। लेकिन वह जरूरत दूसरी थी—न तो औद्योगिक थी, न आर्थिक थी, वरन् वह राजनैतिक थी। वे राजनैतिक स्तर पर देश को एकता का प्रतीक देना चाहते थे। लेकिन गांधी के पीछे चलने वाला तबका अभी भी इसी प्रयास में लगा है कि गांधी का वही पुराना प्रतीक हमेशा बना रहे। यह कैसे सम्भव हो सकता है ? आगे चलकर भी वह हमारा प्रतीक कैसे हो सकता है। गांधी के समय की परिस्थितियां उनके साथ ही समाप्त हो गयीं और वह बात उन्हीं के साथ चली गयी। अब परिस्थितियां और आवश्यकताएं बिल्कुल भिन्न हैं। लेकिन एक गांधीवादी वर्ग अभी भी गांधी के इस चरखे-तकली को हमारी आर्थिक योजनाओं के साथ जोड़ना चाहता है। ऐसा षड्यन्त्र देश को सदा के लिए अवैज्ञानिक बना देगा। वैसे ही हमारे पास वैज्ञानिक बुद्धि का नितान्त अभाव है।

मैं कलकत्ता में एक डॉक्टर के घर मेहमान था। डॉक्टर के पास बहुत डिग्रियां हैं। वे कलकत्ते के एक प्रख्यात फिजीशियन हैं। शाम को जब वे एक मीटिंग में मुझे ले जाने के लिए निकले तो उनकी लड़की को छींक आ गयी। वह डॉक्टर मुझसे बोले कि दो मिनट रुक जाइये, लड़की को छींक आ गयी है। मैंने उस डॉक्टर से कहा कि यदि मेरे हाथ में हो तो मैं अभी तुम्हारे सारे सार्टीफिकेट्स में आग लगा दूं और घोषणा कर दूं कि इस आदमी से किसी को भी दवा नहीं लेनी चाहिए। यह आदमी खतरनाक है। इसके पास वैज्ञानिक बुद्धि नहीं है। तुम डॉक्टर हो और भलीभांति जानते हो कि छींक आने का भीतरी शारीरिक कारण है। उसका, मेरे जाने से कोई सम्बन्ध भी नहीं है।

हिन्दुस्तान वैज्ञानिक शिक्षा तो ले रहा है, लेकिन उसके पास वैज्ञानिक बुद्धि नहीं है। हम वैज्ञानिक पैदा कर रहे हैं। विज्ञान की बड़ी-बड़ी डिग्रियां बांट रहे हैं, फिर भी वैज्ञानिक बुद्धि हम पैदा नहीं कर पाये। अतः हिन्दुस्तान के लोगों की आने वाले समय में तकनीकी मस्तिष्क का बनाना है, जीवन के लिए अधिक

से अधिक साधन पैदा करने हैं ताकि यह देश जो हजारों साल से गरीब रहा है, गरीब न रह सके। यह जो मुल्क हजारों वर्षों से मानसिक रूप से गुलाम रहा है, गुलाम न रह सके। उसकी दरिद्रता का बोध टूटे। देश में नये सिरे से प्रतिभाओं का विकास हो और संसार के अन्य देशों के समकक्ष खड़ा हो सके। गांधी जिस दिन देश को इस नयी हालत में देखेंगे उनकी आत्मा अवश्य ही प्रसन्न होगी। गांधीजी की आत्मा के पास अब कोई उपाय नहीं कि वह आपको आकर कह दे। कि चरखा-तकली से मुक्त हो जाओ। अतः यह काम हम लोगों को ही करना होगा। मैं यह मानता हूं कि जो बात मैं आपसे कह रहा हूं, यदि गांधीजी से कहता तो गांधी उसे आपसे ज्यादा सहानुभूति से सुनने में समर्थ हो सकते थे। लेकिन गांधीवादी मेरी बातों का अजीब अर्थ लगाते हैं, मेरे बारे में न जाने क्या-क्या कहते हैं। कोई कहने लगा मैं चीन का एजेन्ट हूं, कोई कहता है मुझे रूस से पैसे मिलते हैं, कोई कहता है पुलिस से मेरी जांच करवानी चाहिए। कोई कहता है कि यह व्यक्ति गुरु गोलवलकर से अधिक खतरनाक है, यह निश्चित ही कोई खतरनाक षड्यन्त्र रच रहा है।

तब मुझे एक ही बात कहनी है कि गांधी जिस देश का निर्माण कर गये हैं, जिसके लिए उन्होंने चालीस-पचास वर्ष मेहनत की, जिसके लिए वे मरे-खपे जिनके लिए उन्होंने इतना श्रम किया, उस सब पर अनेक अनुयायी एकदम पानी फेरे दे रहे हैं। क्योंकि वे देश को विचार तक करने की स्वतंत्रता नहीं देना चाहते हैं। वे विचार का किसी भी भांति गला घोंटने के लिए उत्सुक हैं। विचार करने को वे देशद्रोह बतलाते हैं और विचार के लिए आमंत्रण देने को वे षड्यंत्र की भूमिका बतलाते हैं। बहुत-से गांधीवादी मेरे मित्र रहे हैं, लेकिन जब मैंने गांधीवादी की आलोचना की, तो मैंने सोचा भी नहीं था कि वे मेरे शत्रु हो जायेंगे। मुझे अनेक पत्र आये हैं और उन पत्रों में यही लिखा है कि मैं आत्मा-परमात्मा की ही बात करूं और कोई अन्य बात नहीं और न ही किसी तरह की राजनीति की बात। आह! तब मुझे ज्ञात हुआ कि आत्मा-परमात्मा की ही बात करवाना भी कैसी राजनीति है! राजनीतिज्ञ मुझे सलाह देते हैं कि मैं सिर्फ धर्म की ही बात करूं।

आह! कैसे कुशल राजनीतिज्ञ हैं! वे मुझे कहते हैं कि देश की और समस्याओं पर बोलने में मेरी प्रतिष्ठा को हानि पहुंचेगी! अर्थात् वे मुझे भी राजनीतिज्ञ बनाना चाहते हैं। क्योंकि प्रतिष्ठा को ध्यान में रखकर जीता है, वही तो राजनीतिज्ञ है! मैं ठहरा एक फकीर—मुझे प्रतिष्ठा से क्या प्रयोजन है? सत्य से जरूर प्रयोजन है—लोक-मंगल से जरूर प्रयोजन है और उसके लिए यदि मेरी कुर्बानी भी हो जावे तो कोई हानि नहीं है। सच तो यह है कि मेरे पास अब कुर्बान करने को भी तो कुछ नहीं है। मैं भी तो नहीं बचा हूं। उसे भी तो प्रभु को दे चुका हूं। इसलिए अब मैं कुछ कह रहा हूं। ऐसा भी नहीं है। प्रभु की

जो मर्जी। वह जो करवाये, मैं उसी के लिए राजी हूं। मैं जो बोलता हूं वह भी तो अब उसी का है। और सलाह ही लेनी होगी तो मैं इन राजनीतिज्ञों से लेने नहीं जाऊंगा। उसके लिए भी तो प्रभु का द्वार मेरे लिए सदा खुला है। इसलिए कोई मेरी या मेरी प्रतिष्ठा की चिन्ता न करे। चिन्ता करे उसकी कि जो मैं कह रहा हूं। क्योंकि समय रहते उसकी चिन्ता करने में देश के भविष्य को व्यर्थ ही गड्ढे में गिरने से बचाया जा सकता है।

एक और मित्र ने पूछा कि मैं गांधीजी को नैतिक पुरुष ही मानता हूं, धार्मिक या आध्यात्मिक नहीं! धार्मिक और नैतिक में क्या भेद है? फिर मैं गांधीवादियों को भी नैतिक ही कहता हूं तब गांधीजी और इनके अनुयायियों में क्या कोई भी भेद नहीं है?

साधारणतः ऐसा समझा जाता है कि जो नैतिक है, वह धार्मिक है। यह बड़ी भूलभरी दृष्टि है। धार्मिक तो नैतिक होता है, लेकिन नैतिक धार्मिक नहीं! धार्मिक वह है जिसने जीवन के सत्य को जाना। यह अनुभूति विस्फोट, एक्सप्लोजन की भांति उपलब्ध होती है। उसका क्रमिक ग्रैजुअल विकास नहीं होता। जीवन के तथ्यों के प्रति समग्ररूपेण जागकर जीने से जीवन के सत्य का विस्फोट होता है। उस विस्फोट की भूमिका जागकर जीना है। प्रज्ञा, अमूर्च्छा, या अप्रमाद अवेयरनैस से वह विस्फोट घटित होता है। योग या ध्यान जागरण की प्रक्रियाएं हैं। विस्फोट को उपलब्ध चेतना का आमूल जीवन बदल जाता है। असत्य की जगह सत्य, काम की जगह ब्रह्मचर्य, क्रोध की जगह क्षमा, अशांति की जगह शांति, परिग्रह की जगह अपरिग्रह या हिंसा की जगह अहिंसा का आगमन अपने आप ही हो जाता है। उन्हें लाना नहीं पड़ता है। न साधना ही पड़ता है। उनका फिर कोई अभ्यास नहीं करना होता है। वह रूपांतरण सहज ही फलित है। मूर्च्छा में, निद्रा में, सोये हुए व्यक्तित्व में जो था, वह जागते ही वैसे ही तिरोहित हो जाता है, जैसे कि प्रकाश के जलते ही अंधकार विलीन हो जाता है।

इसलिए, धार्मिक व्यक्ति असत्य, या अब्रह्मचर्य या हिंसा को दूर करने या उनसे मुक्त होने की चेष्टा नहीं करता है। उसकी तो समस्त शक्ति जागने की दिशा में ही प्रवाहित होती है। वह अंधकार से नहीं लड़ता है, वह तो आलोक को ही आमंत्रित करता है। लेकिन, नैतिक व्यक्ति अंधकार से लड़ता है। वह हिंसा से लड़ता है, ताकि अहिंसक हो सके, वह काम से लड़ता है ताकि अकाम्य हो सके। लेकिन हिंसा से लड़कर कोई हिंसा से मुक्त नहीं हो सकता है। न ही वासना से लड़कर कोई ब्रह्मचर्य को ही उपलब्ध होता है। ऐसा संघर्ष दमन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सकता है। हिंसा अचेतन अन्कॉन्शस में चली जाती है और चेतन मन अहिंसक प्रतीत होने लगता है। यौन सैक्स अंधेरे चित्त में उतर जाता

है और ब्रह्मचर्य ऊपर से आरोपित हो जाता है। इसलिए ऊपर से देखने और जानने पर धार्मिक व्यक्ति और नैतिक व्यक्ति एक से दिखायी पड़ते हैं। लेकिन वे एक से नहीं हैं। नैतिक व्यक्ति शीर्षासन करता हुआ अनैतिक व्यक्ति ही है, लेकिन सोया हुआ ही। उसके जीवन में कोई क्रांति घटित नहीं हुई है। इसीलिए नीति को क्रमशः साधना होता है।

नीति विकास, ऐवोल्यूशन है, धर्म क्रांति, रैवोल्यूशन है। नीति धर्म नहीं है। वह धर्म का धोखा है। वह मिथ्या-धर्म स्यूडोरिलीजन है। और वह धोखा प्रबल है। तभी तो गांधी जैसे भले लोग भी उसमें पड़ जाते हैं। वे धार्मिक ही होना चाहते थे। लेकिन नीति के रास्ते पर भटक गए। और ऐसा नहीं है कि इस भांति वे अकेले ही भटके हों। न मालूम कितने तथाकथित संत और महात्मा ऐसे ही भटकते रहे हैं। इसीलिए जीवन के अंत तक वे 'सत्य के प्रयोग' ही करते रहे, लेकिन सत्य उन्हें उपलब्ध नहीं हो सका। और उनकी अहिंसा में भी इसीलिए छिपी हुई हिंसा के दर्शन होते हैं। और स्वयं के ब्रह्मचर्य पर भी वे स्वयं ही संदिग्ध थे। और स्वप्न में उन्हें काम-वासना पीड़ित भी करती थी। दमन से ऐसा ही होता है। दमन का यही स्वाभाविक परिणाम है। इसीलिए धार्मिक होने की कामना से भरे हुए भी गांधी धार्मिक न हो सके। लेकिन धार्मिक होने की इच्छा तो उनमें थी। और जो उन्हें ठीक लगता था उसे वे निष्ठापूर्वक करते थे। शायद इस जीवन की असफलता उन्हें अगले जीवन में काम आ जाये। आदमी भूल से ही तो सीखता है।

पहली भूल है अनीति। फिर दूसरी भूल है नीति। अनीति से आनंद पाने में असफल हुआ व्यक्ति नीति की ओर मुड़ जाता है। और फिर नीति भी जब असफलता ही लाती है तभी धार्मिक यात्रा शुरू होती है। मैं मानता हूं कि गांधी ने इस जीवन में नैतिकता की असफलता भी भलीभांति देख ली है। लेकिन, उनके शिष्य यह भी नहीं देख पाये हैं। क्योंकि वे नैतिक भी बे-मन से थे। नैतिकता गांधी के लिए साधना थी। उससे वे स्वयं धोखे में पड़े, लेकिन उससे वे किसी और को धोखे में नहीं डालना चाहते थे। उनके अनुयायियों के लिए नैतिकता आवरण थी, जिससे वे केवल दूसरों को धोखे में डालना चाहते थे। इसीलिए जब सत्ता आयी तो गांधी ने सत्ता की बागडोर हाथ में लेने से इन्कार कर दिया। क्योंकि उनका दमन हार्दिक था। वे अपने हाथों से अपनी दमित जीवन-व्यवस्था को प्रतिकूल परिस्थितियों में नहीं छोड़ सकते थे। क्योंकि उन प्रतिकूल परिस्थितियों में उस जीवन-भर साधी गयी व्यवस्था के टूट जाने का भय था। इसीलिए गांधी सत्ता से बचे। लेकिन उनके अनुयायी सत्ता की ओर अपने सब आवरणों को छोड़कर भागे। और फिर सत्ता ने उनकी सारी कागजी नैतिकता में आग लगा दी। वे स्पष्ट ही अनैतिक हो गये।

यदि गांधी सत्ता में जाते तो उनकी नैतिक व्यवस्था भी टूटती। लेकिन इससे वे अनैतिक नहीं हो जाते वरन् धार्मिक होने की उनकी खोज शुरू होती। तब नैतिकता भी साधी जा सकती है यह उनका भ्रम टूटता। और वे उस धर्म की ओर बढ़ते जो कि नीति के अभ्यास और अंतःकरण, कॉन्शस के निर्माण से नहीं, वरन् जागरण अवेयरनैस और चेतना कॉन्शसनैस को सतत् और भी सचेतन करने से उपलब्ध होता है। यही गांधी और गांधीवादियों में भेद था। गांधी को ऐसा बहुत बार लगता भी था कि उनकी अहिंसा में कमी है या उनके ब्रह्मचर्य में या उनकी पवित्रता में। लेकिन तब वे अपने पूर्व अभ्यास में और भी प्रगाढ़ता से लग जाते थे। काश! उन्हें ख्याल आ सकता कि कमी उनमें नहीं, वरन् उस मार्ग में ही थी, जिस पर कि वे चल रहे थे, तो उनका जीवन धार्मिक हो सकता था। उस विस्फोट की सम्भावना भी उनमें थी।

लेकिन नैतिक सफलता से कोई कभी धार्मिक नहीं होता है। नैतिक सफलता तो और भी प्रगाढ़रूप से आचरण में अटका लेती है। वह आस्तिक तक जाने ही नहीं देती है। वह भी बाह्य सम्पदा है। और वह भी अहंकार का ही सूक्ष्मतम रूप है। इसीलिए आजादी के बाद गांधी की असफलताएं हो सकता था उन्हें नैतिक साधना की असफलता का बोध करातीं। शायद वह बोध आरम्भ भी हो गया था। लेकिन आजादी के पूर्व आजादी के लिए मिलती सफलताओं के धुंएं में वह बोध मुश्किल था। वैसे जब वे आजादी के पूर्व भी असफल होते थे तो उन्हें अपने में कमी दिखाई पड़ती थी। लेकिन वह कमी स्वयं में दिखाई पड़ती थी। नैतिक जीवन के अनिवार्य उथलेपन में नहीं। यह भी अकारण नहीं है।

नैतिक व्यक्तित्व जीता है अहंकार के केन्द्र पर। इसलिए जब जीतता है तो अहंकार जीतता है और जब हारता है तो अहंकार हारता है। इसीलिए गांधी दूसरों के द्वारा किये गये अपराधों को भी अपना मानकर आत्मशुद्धि का उपाय करते थे। यह अहंकार इगो-सेंटर्डनैस की अति है। इस अहंकार के कारण ही वे कभी तथ्यगत, ऑब्जेक्टिव विचार नहीं कर पाये। उनकी विचारणा सदा ही अहं-गत, इगोइस्ट बनी रही। शायद नैतिक-जीवन की पूरी असफलता ही उन्हें जगा पाती। शायद पूरी नाव को टकराकर टूटते देख ही वे गलत नाव पर सत्य की यात्रा कर रहे थे, इसका उन्हें बोध होता। पर उनके इस जीवन में यह नहीं हो सका। जो उन्हें प्रेम करते हैं, वे परमात्मा से, उनके अगले जीवन में यह हो, ऐसी प्रार्थना कर सकते हैं। वे एक अनूठे व्यक्ति थे। और उनमें धार्मिक व्यक्ति का छिपा बीज था, लेकिन नीति ने उन्हें रास्ते से भटका दिया। शायद उनके अतीत जीवनों की अनैतिकता की ही प्रतिक्रिया, रिएक्शन था। और उनके चित्त की जड़ों में उतरने से ऐसा ही प्रतीत होता है। जैसे प्रारम्भ में वे अति-कामुक थे। उनके पिता मृत्यु-शय्या पर थे। लेकिन उस रात्रि भी वे पत्नी से दूर न रह

सके। और पत्नी गर्भवती थी। शायद चार-पांच दिन बाद ही उसे बच्चा हुआ। लेकिन होते ही मर गया। शायद यह भी उनके सम्भोग का ही परिणाम था। और जब वे सम्भोग में थे तभी पिता चल बसे और घर में हाहाकार मच गया। फिर अति कामुकता के लिए वे कभी अपने को क्षमा नहीं कर पाये। और प्रतिक्रिया में जन्मा उनका ब्रह्मचर्य। निश्चय ही ऐसा ब्रह्मचर्य कामुकता का ही उल्टा रूप हो सकता है।

क्योंकि प्रतिक्रियाओं से कभी किसी वृत्ति से मुक्ति नहीं मिलती है। वृत्तियों से, वासनाओं से मुक्ति आती है समझ, अंडरस्टैंडिंग से और जो व्यक्ति प्रतिक्रिया में होता है, विरोध में होता है, शत्रुता में होता है, उसमें समझ कैसे आ सकती है? शायद अंतिम दिनों में, नोआखाली में, एक युवती के साथ सोकर कुछ समझ, कुछ जागरण आया हो तो आया हो। लेकिन जीवन भर जिसे वे संयम की साधना कहते थे, उससे तो कुछ भी नहीं हुआ। हां वे उस साधना के कारण यौनाविष्ट सैक्स-आब्शेस्ड जरूर बने रहे। इस यौन-चिन्ता ने उनकी दृष्टि को व्यर्थ ही विकृत किया। और इसके कारण वे अपने अनुयायियों पर भी अत्यधिक दमन थोपते रहे। इसकी भी पूरी सम्भावना है कि उनके उपवास, उनका तप आदि आत्म-अपराध, सैल्फ-गिल्ट की भावना में जन्मे हों! स्वयं को सताने सैल्फ-टॉर्चर की प्रवृत्ति भी यौन-दमन से पैदा हुई एक विकृति है। इसी भांति उनके जीवन की और दिशाओं में इस दमन और प्रतिक्रिया का परिणाम हुआ है।

उनका समस्त जीवन-दर्शन ही इस विकृत चित्त-दशा से प्रभावित है। उनकी इस चित्त-दशा के कारण उनके पास एकत्रित होने वाला बड़ा अनुयायी वर्ग—विशेषकर उनके-आश्रमों के अंतेवासी किसी न किसी भांति के मानसिक विकारों से पीड़ित वर्गों से ही आ सकते थे। इसलिए गांधी के कारण देश यदि मानसिक रोगग्रस्त व्यक्तियों के हाथ में चला गया है तो कोई आश्चर्य नहीं है।

गांधी के जीवन का पूर्ण मनो-विश्लेषण, साइको-एनैलेसिस आवश्यक है। उसमें बड़े कीमती तथ्य हाथ लग सकते हैं। उनके प्रारम्भिक जीवन में भय, फिअर बहुत गहरा बैठा हुआ प्रतीत होता है। मैंने सुना है कि पहली बार अदालत में बैरिस्टर की भांति बोलते हुए वे इतने भयभीत हो गये थे कि उन्हें मूच्छित अवस्था में ही घर लाया गया था। और जो वे उस दिन बोलने को थे, उसकी तैयारी उन्होंने रातभर जागकर की थी। इंगलैंड जाते समय जहाज के कुछ यात्री किसी बन्दरगाह पर उन्हें किसी वेश्यालय में ले गये थे। वे नहीं जाना चाहते थे। लेकिन साथियों को 'नहीं' कहने का साहस नहीं जुटा पाये। वेश्या के समक्ष जाकर उनकी वही स्थिति हो गयी जो कि बाद में अदालत में होने को थी। इंगलैण्ड में एक युवती उनके प्रेम में पड़ गयी थी लेकिन उससे वे यह

कहना चाहकर भी कि मैं विवाहित हूं, कहने का साहस नहीं जुटा पाये थे। इनका इतना भयभीत चित्त—उनका इतना भीरु व्यक्तित्व बाद में इतना निर्भय कैसे हो गया? क्या यह उस भय की ही प्रतिक्रिया नहीं है? भय की प्रतिक्रिया में व्यक्ति निर्भय हो जाता है। अभय नहीं। निर्भय उल्टा हो गया भय है। इसलिए निर्भयता फिर जान-बूझकर भय की स्थितियों को खोजने लगती है। भय की स्थितियों में अपने को ढालने में भी फिर एक विकृत रस की उपलब्धि होने लगती है। और फिर ऐसे मन अपने को विश्वास दिलाता है कि अब मैं भयभीत नहीं हूं। लेकिन यह भी भय ही है।

क्या गांधी की निर्भयता भय ही नहीं है? क्या उनकी अहिंसा में भय ही उपस्थित नहीं है? मेरे देखे तो ऐसा ही है। भय ने निर्भयता के वस्त्र पहन लिए हैं। वह अभय, फिअरलैसनैस इसलिए भी नहीं है, क्योंकि गांधी ईश्वर से भलीभांति और सदा भयभीत हैं। उन्होंने अपने समग्र भय को ईश्वर पर आरोपित कर दिया है। वे कहते भी हैं कि वे ईश्वर को छोड़ और किसी से भी नहीं डरते हैं। अभय में ईश्वर का भी भय नहीं होता है।

भय भय है। वह किसका है यह अप्रासंगिक है। फिर ईश्वर का भय तो बड़े से बड़ा भय है। अभय निर्भयता की कवायद भी नहीं करता है। अभय में न भय है, न निर्भयता है। इसलिए अभय अत्यन्त सहज है। सांप रास्ते पर हो तो वह सहज ही रास्ता छोड़कर हट जाता है, लेकिन इसमें भय नहीं है। और समय आ जाये तो वह पूरे जीवन को दांव पर लगा देता है, लेकिन इसमें भी कोई निर्भयता नहीं है। अभय में न भय का बोध है, न निर्भयता का ही। अभय तो दोनों से मुक्ति है। पर गांधी की निर्भयता अभय नहीं है। वह भय का ही वेश-परिवर्तन है। उनका जीवन प्रज्ञा से आयी मुक्ति नहीं है। वह केवल प्रतिक्रिया है। वह स्वयं से संघर्ष है, द्वन्द्व है। वह स्वयं को ही खण्ड-खण्ड में बांटता है। वह अखण्ड की उपलब्धि नहीं है।

नैतिक चित्त अखण्ड हो ही नहीं सकता है। वह जीता ही है स्वयं को स्व-विरोधी खण्डों में बांटकर! वह विभाजन ही उसका प्राण है। धार्मिक चित्त अखण्ड का स्वीकार है। 'मैं जैसा हूं' उस समग्र के प्रति जागना धार्मिक चित्त की भूमिका है। और उस जागने से आता है रूपान्तरण, ट्रान्सफॉर्मेशन उस जागने में आती है आमूल क्रांति, म्यूटेशन। वह पुराने की मृत्यु और नये का जन्म है। वह अहंकार की मृत्यु और आत्मा की उपलब्धि है।

धार्मिक चित्त स्वयं को तोड़ता नहीं है। धार्मिक चित्त शुभ और अशुभ के बीच चुनाव नहीं करता है। वह कहता है 'जो है' वह है। वह इस होने को उसकी समग्रता में जानना चाहता है। और स्वयं के होने की समग्रता को जान लेना ही क्रांति बन जाती है। अनैतिकता अशुभ का चुनाव करती है नैतिकता

शुभ का। धार्मिकता चुनाव रहित जागरूकता चॉइसलैस-अवेयरनैस है।

गांधी में मैं ऐसी चुनाव रहितता नहीं देखता हूं, इसलिए उन्हें धार्मिक कहने में असमर्थ हूं। वे नैतिक हैं और परम नैतिक हैं। नैतिक महात्माओं में शायद उन जैसा महात्मा कभी हुआ ही नहीं है। वे अनीति के ठीक दूसरे छोर पर हैं। लेकिन जब तक नैतिक हैं, तब तक अनीति से मुक्त नहीं हैं। अनीति से मुक्त होने को तो नीति से भी मुक्त होना होता है। और दोनों से ही मुक्त होकर चेतना धार्मिक रिलिजस हो जाती है।

बम्बई, दिनांक ५ दिसम्बर १९६८

गांधीवाद : एक और समीक्षा

६. गांधी का चिन्तन अवैज्ञानिक है

मेरे प्रिय आत्मन,

गांधीजी के सम्बन्ध में मेरी जो दृष्टि है, उस पर हम विचार करेंगे।

जिन्दा आदमी को मार डालो और मरे हुए आदमी की पूजा करो; ये दो तरकीबें हैं। ये छूटने के रास्ते हैं, ये बचने के रास्ते हैं।

फिर पूजा भी हम उसी की करते हैं, जिसे हमने बहुत सताया है। पूजा मानसिक रूप से पश्चाताप है। वह प्रायश्चित है। जिन लोगों को हम जीते जी सताते हैं, उनके मरने के बाद पूरा समाज उनकी पूजा करता है; ऐसे प्रायश्चित करता है। वह जो पीड़ा दी है, वह जो अपराध किया है, वह जो पाप है भीतर, उस पाप का प्रायश्चित चलता है। तो हजारों साल तक पूजा चलती है। यह पूजा किये गये अपराध का प्रायश्चित है। लेकिन वह भी अपराध का ही दूसरा हिस्सा है।

गांधी को जिन्दा रहते सतायेंगे, न सुनेंगे उनकी, लेकिन मर जाने पर हम हजारों साल तक पूजा करेंगे। यह गिल्टी कॉन्शस, यह अपराधी चित्त का हिस्सा है यह पूजा।

और फिर इस पूजा के कारण हम सोचने-विचारने को राजी नहीं होंगे। पहले भी हम सोचने-विचारने को राजी नहीं होते। गांधी जिन्दा हैं तो हम सोचने-विचारने को राजी नहीं हैं। तब हम गालियां देते रहे। पत्थर मारकर, गोली

मारकर दीवार खड़ी करेंगे कि अभी बातें सोचनी न पड़ें। फिर जब वे मर जायेंगे, तब भी हम सोचने-विचारने को राजी नहीं हैं। तब हम पूजा की दीवार खड़ी करेंगे, और कहेंगे, अब सोचना-विचारना उचित नहीं है, अब तो पूजा करनी काफी है।

महापुरुषों को या तो गोली मारते हैं हम या फूल चढ़ाते हैं, लेकिन महापुरुषों पर सोचते कभी भी नहीं हैं। मेरा गांधी से कोई विरोध नहीं है। बहुत प्रेम है। और इसलिए रोज-रोज वे मेरे रास्ते में आ जाते हैं। मुझे उनकी बात करनी अत्यन्त जरूरी मालूम पड़ती है; क्योंकि इन वर्षों में भारत के राष्ट्रीय आकाश में उनसे ज्यादा चमकदार कोई सितारा पैदा नहीं हुआ। उस सितारे पर आगे भी सोचना और विचार जारी रखना अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन जहां मेरा उनसे विचार-भेद है, वहां मैं निवेदन जरूर करना चाहता हूं। दो-तीन बिन्दुओं को समझाना चाहूंगा।

पहली बात—गांधी का विचार वैज्ञानिक नहीं है, अवैज्ञानिक है।

गांधी का विचार नैतिक तो है, लेकिन वैज्ञानिक नहीं है, साइंटिफिक नहीं है। गांधी का व्यक्तित्व ही, गांधी के व्यक्तित्व में चीजों को समझने की जो प्रतिभा थी, वह प्रतिभा ही वैज्ञानिक नहीं थी।

गांधी जिन दिनों शिक्षा के लिए इगलैंड गये, तो यूरोप की हवाओं में बड़ी क्रान्ति की बातें थीं। डार्विन का 'ओरीजन ऑफ स्पेसीज' किताब छप गयी थी। सारे पश्चिम के जगत् में डार्विन की चर्चा थी, विकासवाद की चर्चा थी। विकासवाद ने एक भारी धक्का पहुंचा दिया था दुनिया के पुराने विचार को। अब दुनिया का विचार कभी भी वही नहीं हो सकता था, जो डार्विन के पहले था। लेकिन गांधी पर डार्विन के विचार का कोई परिणाम नहीं हुआ। मार्क्स की 'डास कैपिटल' छप चुकी थी। एक नयी क्रान्ति, समाज व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था में, हवा में आ गयी थी। चारों तरफ चर्चा थी। लेकिन गांधी पर मार्क्स के चिन्तन का कोई संस्कार नहीं हुआ। जहां गांधी थे इंगलैंड में, वहां फेबियन सोसाइटी निर्मित हो चुकी थी। समाजवाद की न मालूम कितने रूपों में, हवा में खबर थी—साइमन, पूरिए, ऑबेन, बर्नार्ड शा, इन सबकी चर्चा थी हवा में। लेकिन गांधी पर उसका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

पश्चिम में विज्ञान नयी क्रान्ति कर रहा था धर्म के विरोध में। पुराने धर्म की सारी परम्परा क्षीण होकर गिर रही थी; चर्च, मन्दिर टूट रहा था। एक नया तर्कयुक्त, एक नया विचारपूर्ण भविष्य पैदा हो रहा था। गांधी पर उसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ। गांधी पर प्रभाव किस बात का हुआ, आपको पता है? वैजिटेरियनिज्म का। गांधी पश्चिम की क्रान्ति के उस वातावरण में कौन से विचार से प्रभावित हुए? वैजिटेरियनिज्म से, शाकाहारवाद से। गांधी का

चित्त वैज्ञानिकता से जरा भी, कभी भी, सम्बन्धित नहीं हो सका। जीवन भर उनका चिन्तन नैतिक तो रहा, लेकिन वैज्ञानिक नहीं रहा। और गांधी का हिन्दुस्तान में जो भी प्रभाव दिखाई पड़ा, वह भी इसी कारण कि गांधी नैतिक विचारक हैं, वैज्ञानिक नहीं। हिन्दुस्तान हजारों साल से अवैज्ञानिक होने की आदत में दीक्षित रहा है। हिन्दुस्तान ने हजारों साल से कभी वैज्ञानिक ढंग से नहीं सोचा। हिन्दुस्तान में इसीलिए विज्ञान का जन्म नहीं हो पाया।

हिन्दुस्तान के पास प्रतिभा की कमी नहीं है। हिन्दुस्तान के पास बुद्ध, दिग्नाग, नागार्जुन और शंकर जैसे अद्भुत प्रतिभाशाली लोग हुए हैं, लेकिन हिन्दुस्तान के पास एक भी आइन्स्टीन, एक भी डार्विन नहीं पैदा हुआ। भारत की प्रतिभा ही पचास पीढ़ियों से, सौ पीढ़ियों से अवैज्ञानिक रही है। तीन हजार वर्षों के लम्बे इतिहास में भारत ने वैज्ञानिक प्रतिभा का कोई प्रमाण नहीं दिया है। भारत का सारा सोचना गैर-साइंटिफिक, बल्कि एंटी-साइंटिफिक, विज्ञान-विरोधी रहा है। इस चिन्तन की लम्बी परम्परा के कारण ही गांधी की अवैज्ञानिक विचारधारा को भी महत्त्व मिलना शुरू हुआ। गांधी ने कभी भी तर्कयुक्त ढंग से, तथ्ययुक्त ढंग से नहीं सोचा।

बिहार में भूकम्प हुआ था तो गांधी के अवैज्ञानिक चिन्तन ने क्या कहा था? कहा था कि बिहार में इसलिए भूकम्प हुआ कि वहां के हरिजनों के साथ जो अत्याचार हुआ है, उसका फल मिल रहा है। बड़ी अजीब-सी बात उन्होंने कही। बिहार के हरिजनों के साथ किये गये अत्याचार का फल मिल रहा है बिहार के लोगों को। और हिन्दुस्तान भर में अत्याचार नहीं हो रहा है हरिजनों के साथ! और अगर हरिजनों के अत्याचार के कारण भूकम्प आए, अकाल पड़े, तो हिन्दुस्तान में अन्न का एक भी दाना कभी पैदा नहीं होना चाहिए, इतना अत्याचार हो चुका है। लेकिन यह सिर्फ बिहार में क्यों हुआ? बिहार में ही अत्याचार हो रहा है हरिजनों के साथ?

नहीं, लेकिन अवैज्ञानिक चिन्तन का कोई हिसाब नहीं है। गांधी को कोई बात ठीक लगे तो वह कहेंगे, मेरी अन्तर्वाणी कह रही है। अन्तर्वाणी आपकी कुछ भी कह सकती है। आपकी अन्तर्वाणी किसी चीज के सही होने का सबूत नहीं है। और अगर इस तरह हर आदमी की अन्तर्वाणी सबूत बन जाए तो मुल्क एक पागलखाना हो जायेगा। मैं भी कहूंगा, मेरी अन्तर्वाणी यह कह रही है, और आप कहेंगे, मेरी अन्तर्वाणी यह कह रही है। अन्तर्वाणी के कहने से कोई चीज सत्य नहीं होती। सत्य होने के लिए उसे तथ्यगत और वैज्ञानिक होना पड़ेगा। सत्य होने के लिए उसे सब के तर्क को अपील हो सके, सब के तर्क और बुद्धि को समझ में आ सके, ऐसा होना पड़ेगा। लेकिन गांधी को इतना काफी है। उन्हें कोई बात ठीक लगती है, वे कहेंगे मुझे ईश्वर की वाणी कह रही है।

ईश्वर की वाणी किसी से कुछ भी नहीं कहती। हमेशा अपने ही अचेतन चित्त की आवाज सुनायी पड़ती है। हमारा भीतर का मन हमसे कुछ कहता है। लेकिन मेरे भीतर का मन कुछ कहे, इस कारण वह सत्य नहीं हो जाता है कि मेरे भीतर के मन ने कहा है। और मेरे लिए सत्य हो भी सकता है, लेकिन दूसरे के लिए सत्य कहने का हकदार मैं नहीं हूं। लेकिन गांधी जीवन भर यह कहेंगे कि मेरी अन्तर्वाणी यह कह रही है। और उनकी अन्तर्वाणी कहेगी और अगर वे उपवास करेंगे और अनशन करेंगे, तो पूरे मुल्क को भी मानना पड़ेगा कि वे जो कह रहे हैं, वह ठीक कह रहे हैं।

नहीं, गांधी के इस अन्तर्वाणी के सिद्धान्त ने भारत के चित्त को बहुत नुकसान पहुंचाया है, क्योंकि इससे अवैज्ञानिकता बढ़ती है। एक आदमी की अन्तर्वाणी कहती है कि आन्ध्र प्रदेश अलग होना चाहिए, और वह अनशन कर देता है। और अन्तर्वाणी को मानना ही पड़ेगा। और अगर हम अन्तर्वाणियों को इस तरह मानकर चलें तो हिन्दुस्तान की क्या गति होगी? लेकिन गांधी जैसे बड़े व्यक्ति ने अन्तर्वाणी को इतना बल दिया—तर्क को नहीं, विचार को नहीं, सोच-विचार को नहीं, डायलाग को नहीं, कि हम विचार करें और तय करें। नहीं, उनकी अन्तर्वाणी जो कहती है, वह उन्हें सत्य मालूम पड़ता है।

फिर उस सत्य के लिए वे दबाव डालते हैं, और उस दबाव को हम समझते हैं, वह अहिंसा है। दबाव किसी भी स्थिति में अहिंसा कभी नहीं होता।

चाहे दबाव किसी भी रूप का हो, दबाव हमेशा हिंसा है।

मैं आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाऊं तो यह भी हिंसा है। और मैं आपके दरवाजे पर अनशन करके बैठ जाऊं तो यह भी हिंसा है। मैं आपको हर हालत में दबा रहा हूं। और कई बार छुरे का भय उतना नहीं होता, जितना कोई आदमी द्वार पर आकर मर जाए उसका भय होता है। और गांधी जैसा भला आदमी अगर मरने लगे तो हम गलत भी होंगे तो भी झुक जायेंगे कि चलो ठीक है। इस आदमी को मरने नहीं देना चाहिए, इतना बहुमूल्य आदमी है। लेकिन गांधी की अवैज्ञानिकता के कारण उनको यह भी नहीं सूझता है कि दबाव, सभी तरह का, हिंसा होती है। चाहे वह दबाव किसी तरह का हो, दबाव मात्र हिंसा है। चाहे आप छुरे से दबायें किसी को और चाहे आप मरने की धमकी देकर दबायें। और मरने की धमकी देकर दबाना और भी खतरनाक है, क्योंकि दूसरा आदमी बिलकुल निहत्था हो जाता है, वह उत्तर भी नहीं दे सकता। जब तक कि वह भी यही पागलपन न करे कि वह भी अनशन लेकर बैठ जाए और कहे कि मैं भी मर जाऊंगा।

मैंने सुना है, एक मजाक मैंने सुना है। एक युवक एक लड़की के पीछे दीवाना है। और उसके घर के सामने जाकर उसने अनशन कर दिया और कहा कि मेरी

अन्तर्वाणी कहती है कि मैं तुमसे ही प्रेम करता हूं और तुमसे ही विवाह करूंगा। और अगर मुझसे विवाह नहीं करोगी तो मैं मर जाऊंगा अनशन करके। सारे गांव के अच्छे लोगों का समर्थन उस युवक को मिलना शुरू हुआ, क्योंकि उसने यह अहिंसात्मक आन्दोलन शुरू किया था। प्रेम के लिए यह पहली घटना थी। गांव के लोगों ने कहा, यह तो अहिंसात्मक बात है। यह आदमी धमकी तो नहीं दे रहा है। यह तो अपने को स्वयं न्योछावर कर रहा है, यह तो शहीद हो रहा है। घर के लोग बहुत घबरा गये। अगर वह छुरे से धमकी देता तो उससे लड़ा भी जा सकता था। सारे गांव की नैतिक बुद्धि उसके पक्ष में थी। वे बहुत परेशान हुए। फिर उन्होंने गांव के एक पुराने अहिंसात्मक आन्दोलन करने वाले बुड्ढे से सलाह ली कि क्या किया जा सकता है? उसने कहा, घबराओ मत, रात हम इन्तजाम कर देंगे। रात वह एक बूढ़ी औरत को लेकर आया। और उस लड़के से उसे बूढ़ी औरत ने आकर कहा कि मेरी अन्तर्वाणी कहती है कि मैं तुमसे विवाह करूं। और मैं अनशन शुरू करती हूं। रात में ही वह लड़का अपना बिस्तर वगैरह लेकर भाग गया। अब कोई उपाय नहीं था।

अन्तर्वाणियों पर तय नहीं किया जा सकता है कुछ। अन्तर्वाणियां खतरनाक हैं और देश को गड्ढे में ले जाने वाली हैं। क्योंकि आपकी अन्तर्वाणी आपकी अन्तर्वाणी है। और कौन है हकदार यह कहने का कि मेरी अन्तर्वाणी ईश्वर की आवाज है? यही तो आज तक दुनिया को नुकसान पहुंचाने वाला पथ रहा है।

मुहम्मद कहते हैं कि मेरी अन्तर्वाणी ईश्वर की आवाज है। वेद के ऋषि कहते हैं कि हमारी अन्तर्वाणी ईश्वर की आवाज है। सारी दुनिया के लोग यही दावा करते हैं कि हमारी अन्तर्वाणी ईश्वर की आवाज है। फिर झगड़े का कोई कारण नहीं रह जाता। सत्य तो निर्णीत हो गया। अब सत्य को निर्णय नहीं करना है। तर्क की कसौटी पर, प्रयोग की शाला में, दस आदमियों के बीच अब सत्य का निर्णय नहीं होना है। सत्य पहले से ही निर्णीत हो गया। मेरी अन्तर्वाणी ईश्वर की आवाज है; यह बहुत खतरनाक बात है। यह बहुत अवैज्ञानिक बात है। और अगर यह फैल जाए तो मनुष्य को हितकर नहीं हो सकती। और फिर इस तरह की अन्तर्वाणी के लिए दबाव डालना और भी खतरनाक है।

नहीं, किसी भी तरह का दबाव अहिंसात्मक नहीं है। सब दबाव वायलेंस हैं, दबाव हिंसा है। और इसीलिए गांधी के सत्याग्रह और अनशन का परिणाम भारत के लिए अच्छा नहीं हुआ। सारा देश आज किसी भी टुच्ची बात पर सत्याग्रह करता है, किसी भी बेवकूफी की बात पर अनशन शुरू हो जाते हैं। सारा मुल्क परेशान है। गांधी जो तत्त्व दे गये हैं, वह मुल्क को भरमा रहा है और भटक रहा है और तकलीफ में डाल रहा है। और अगर वह बढ़ता चला गया तो हिन्दुस्तान की नौका कहां डूब जायेगी, किन चट्टानों से टकराकर, कहना मुश्किल

है। क्योंकि हिन्दुस्तान की नौका तर्क के सहारे नहीं चल रही है, अबुद्धि के सहारे चल रही है। हिन्दुस्तान का विचार—विचार और विवेक—जाग्रत नहीं हो रहा है। हिन्दुस्तान में हर आदमी दावेदार हो गया है कि वह जो कह रहा है, वह सत्य है, और उसको मानना जरूरी है। यह बात हैरानी की मालूम होती है।

लेकिन जितने लोग भी गैर-साइंटिफिक ढंग से सोचते हैं, वे हमेशा अपने भीतर की आवाज को बल देना शुरू कर देते हैं।

मैंने सुना है कि बगदाद में एक आदमी ने घोषणा कर दी कि मैं पैगम्बर हूं। अब इसका कोई निर्णय नहीं हो सकता है कि कौन आदमी पैगम्बर है, क्योंकि पैगम्बर खुद ही कहता है कि भगवान ने मुझे कहा है कि तुम पैगम्बर हो। बगदाद के खलीफा ने उसे पकड़ लिया, क्योंकि बगदाद का खलीफा पैगम्बरों के खिलाफ नहीं है, लेकिन मुहम्मद नाम के पैगम्बर से बंधा हुआ है। दूसरे पैगम्बर को वह बरदाश्त नहीं कर सकता। उसने पकड़ लिया उस पागल को और कहा कि तुम पागल हो। मुहम्मद के बाद अब किसी पैगम्बर की दुनिया में जरूरत नहीं है। असली पैगम्बर हो चुका है, तुम्हारा दिमाग खराब है। अपना दिमाग ठीक करो, अन्यथा फांसी पर लटकने को तैयार हो जाओ। एक महीने का तुम्हें वक्त देते हैं। उसे जंजीरों से बांधकर कारागृह में डाल दिया।

पन्द्रह दिन बाद खलीफा उससे मिलने गया कि शायद अब वह दुरुस्त हो गया होगा। भूखा-प्यासा, जंजीरों में बंधा, उस पर कोड़े रोज पड़ रहे थे। फंदे से बंधा था वह आदमी। खलीफा ने जाकर कहा कि महाशय, बुद्धि दुरुस्त हो गयी हो तो बोलो, अब तो नहीं है यह ख्याल कि तुम पैगम्बर हो? उस आदमी ने कहा, अरे पागल खलीफा, यह तो मैं जब भगवान के पास से चलने लगा, उन्होंने जब मुझे पैगम्बर बनाने का आदेश दिया, तभी उन्होंने कहा था, पैगम्बरों को बड़ी तकलीफें झेलनी पड़ती हैं। हमेशा से पैगम्बरों को मुसीबतें झेलनी पड़ी हैं। मुसीबतों ने सिद्ध कर दिया है कि मैं पैगम्बर हूं। और अगर तुम मुझे मार डालोगे तो बिल्कुल पक्का सिद्ध हो जायेगा कि मैं पैगम्बर हूं, क्योंकि पैगम्बर हमेशा मारे जाते रहे हैं। लेकिन तभी सीखचों में बन्द एक दूसरा आदमी भीतर से चिल्लाया, खलीफा, यह आदमी झूठ बोल रहा है; मैंने इसे कभी भी पैगम्बर बनाकर नहीं भेजा। खलीफा ने कहा, आप कौन हैं? वह आदमी दो महीने पहले पकड़ा गया था उसको खुद परमात्मा होने का वहम था। वह कहता था कि मैं परमात्मा हूं। उसने कहा, यह आदमी बिल्कुल झूठ बोल रहा है, मैंने मुहम्मद के बाद किसी को भेजा ही नहीं। इस आदमी को मैंने कभी नहीं भेजा।

अब यह अन्तर्वाणियों का द्वन्द्व बड़ी मुश्किल बात है। कौन तय करे कि अन्तर्वाणी किसकी थी? अन्तर्वाणी से समाज संचालित नहीं होते। हां, अगर किसी व्यक्ति को अपनी अन्तर्वाणी ठीक मालूम पड़ती है, तो वह अपने जीवन को जिस

भांति संचालित करना चाहे करे। लेकिन जैसे ही वह दूसरे व्यक्ति से कोई बात कहता है, वैसे ही तर्क और विवेक और विचार की कसौटी पर बात कही जानी चाहिए। अन्यथा हम समाज को अन्धकार में ढकेल देंगे—अन्धे अन्धकार में, जहां कि पागलपन पैदा हो जायेगा।

भारत इस तरह की अन्तर्वाणी से बहुत दिन से बंधा आ रहा है। इसीलिए भारत में विज्ञान पैदा नहीं हो पाया। विज्ञान अन्तर्वाणियों से पैदा नहीं होता, विज्ञान विचार और तर्क से पैदा होता है। गांधीजी ने फिर तर्क को बहुत नुकसान पहुंचा दिया। लेकिन वह हमें दिखायी नहीं पड़ता। क्योंकि हमारी परम्परा इतनी पुरानी हो गयी है अतर्क की, तर्क-विरोधी कि हमें ख्याल में नहीं आता कि इस देश का सबसे बड़ा संकट क्या है?

इस देश का सबसे बड़ा संकट है, एक वैज्ञानिक प्रतिभा का पैदा न हो पाना।

भारत में कोई वैज्ञानिक चिन्तन पैदा ही नहीं हो पाता। हमने कुछ भी ईजाद नहीं किया। हमने कोई आविष्कार नहीं किया, हमने प्रकृति के कोई छिपे हुए राज नहीं खोले। इसलिए हम दीन, दरिद्र और दुखी होते चले गये। गरीब होते चले गये, गुलाम होते चले गये। और आज भी जमीन पर हमारे पास क्या है? आज जो भी शक्ति हमारे पास दिखायी पड़ती है, वह उधार है। हमारे पास अपनी कोई शक्ति नहीं है। हमारे पास अपनी कोई वैज्ञानिक बुद्धि नहीं है कि हम अगर दुनिया से टूट गये तो हम आज अपना विज्ञान विकसित कर लें। यह असम्भव है। हम अपना विज्ञान विकसित नहीं कर सकते। जिनको हम वैज्ञानिक भी कहते हैं, बड़े इंजीनियर,, बड़े डॉक्टर, उनकी बुद्धि भी अवैज्ञानिक है, वे भी टेक्नीशियंस से ज्यादा नहीं हैं।

मैं कलकत्ते में एक डॉक्टर के घर में मेहमान था। सांझ को जब मीटिंग में जाने के लिए वह डॉक्टर मुझे लेकर बाहर निकलने लगे तो उनके बच्चे को छींक आ गयी। छींक आते ही डॉक्टर ने कहा कि दो मिनट रुक जाइए। मैंने उनसे कहा, आप डॉक्टर होकर यह कहते हैं कि रुक जाऊं! आपको भली-भांति पता होना चाहिए कि छींक क्यों आती है! डॉक्टर को तो जानना चाहिए? और आपकी लड़की को छींक आने से तीन काल में भी मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं क्यों रुकूं आपकी लड़की के छींक आने से? डॉक्टर ने कहा, वह तो मैं समझता हूं, लेकिन फिर भी रुक जाने में हर्ज क्या है। दो मिनट बाद चले चलते हैं। यह अवैज्ञानिक भीतर से बोल रहा है। हर्ज क्या है, यह आदमी कहता है!

हर्ज बहुत बड़ा है। पूरे मुल्क की हत्या हो जायेगी। अगर वैज्ञानिक चिन्तन पैदा नहीं होता है तो जिन्दगी की समस्याओं का सामना करने की हमारी क्षमता विकसित नहीं हो पाती। हम छींकों से डरने वाले लोग हैं। बिल्लियां रास्ता काट जायें और हम बैठ जायेंगे। इस तरह नहीं चलेगा।

अभी मैं जालन्धर था, एक बड़े इंजीनियर मित्र ने एक बड़ी कोठी बनायी। उसका उद्घाटन करने के लिए मुझको ले गये। बड़े इंजीनियर हैं, बड़ी शानदार कोठी बनायी। शायद वैसी कोठी दूसरी न होगी उस नगर में। जब उनकी कोठी का फीता काट रहा था, तो मैंने देखा सामने ही कोठी के दरवाजे पर एक हण्डी लटकी है, हण्डी में आदमी का चेहरा बना है, बाल लटके हैं। मैंने पूछा, यह क्या है? वह इंजीनियर हंसने लगे और कहने लगे, मकान को नजर न लग जाये, इसलिए इसको लटकाना पड़ता है।

इन इंजीनियरों और इन डॉक्टरों से क्या देश में वैज्ञानिक प्रतिभा पैदा होगी? इन इंजीनियरी और इन डॉक्टरों से देश में वैज्ञानिक प्रतिभा पैदा होगी! एक इंजीनियर भी हण्डी लटकाता है और सोचता है, इससे मकान को नजर नहीं लगेगी। फिर इंजीनियर के सारे प्रमाण-पत्रों को लगा दो आग और घर-घर हण्डियां लटका लो। और अपनी छातियों पर भी लटका लो, जिससे किसी को नजर न लग जाये। यह सारा मुल्क अवैज्ञानिक ढंग से जी रहा है और चिन्तन कर रहा है। असल में अवैज्ञानिक ढंग से कोई चिन्तन नहीं होता। सिर्फ अन्धा अनुगमन होता है। आदमी अन्धे की तरह पीछे चल पड़ता है। फिर कोई पूछता नहीं कि यह क्या हो रहा है और क्या नहीं हो रहा है।

गांधी अद्भुत व्यक्ति हैं, नैतिक दृष्टि से अद्भुत व्यक्ति हैं, चारित्रिक दृष्टि से अद्भुत व्यक्ति हैं। बहुत हिम्मत के आदमी हैं; जो उन्हें ठीक लगता है, वे उसे पूरी तरह करते हैं; अपनी पूरी जान लगा देते हैं, अपनी पूरी कुर्बानी दे देते हैं उनके इस सारे प्रभाव के कारण उनके अवैज्ञानिक चिन्तन का भी हमारे ऊपर प्रभाव पड़ गया है। अच्छे आदमी कभी-कभी खतरनाक सिद्ध होते हैं। क्योंकि अच्छा आदमी इतना प्रभावित कर लेता है कि उसकी गलतियां दिखायी पड़नी मुश्किल हो जाती हैं। बुरा आदमी कभी भी अपनी गलतियां किसी पर थोप नहीं सकता, क्योंकि बुरा आदमी दिखाई पड़ता है कि बुरा आदमी है। लेकिन अच्छा आदमी खतरनाक सिद्ध हो सकता है, क्योंकि अच्छा आदमी इतना अच्छा मालूम पड़ता है कि हमारे मुल्क को लगता है, कि वह जो भी कर रहा है, जो भी कह रहा है, जो भी सोच रहा है, वह सभी अच्छा होना चाहिए। और तब बहुत-सी भूलें सारे देश की प्रतिभा में प्रविष्ट हो जाती हैं।

गांधी की विचार-दृष्टि वैज्ञानिक नहीं है। इसी अवैज्ञानिकता का परिणाम है कि वह पीछे लौटने की बात करते हैं। कहते हैं, राम-राज्य। राम-राज्य की बातें करनी, आज तीन-चार हजार साल पीछे लौट जाने की बात करनी है। नासमझी की बात है। समाज को पीछे नहीं लौटाना है, आगे ले जाना है। लेकिन जितने भी अवैज्ञानिक बुद्धि के लोग हैं, वे सब पीछे लौटने की बात करेंगे। क्योंकि आगे तो विज्ञान विकसित होगा, आगे तो विज्ञान और बढ़ेगा, आगे तो बुद्धि और

विकसित होगी । आगे दुनिया में महात्माओं की जगह बहुत कम रह जाने की है । लेकिन पीछे की दुनिया में, जहां वैज्ञानिक चिन्तन का विकास नहीं हुआ था, जहां सब तरह से अन्धविश्वास घर किये थे, और सब तरह के जाल अन्धविश्वास ने बुनकर रखे थे, वहीं लौट जाने का मन होता है । राम की दुनिया में ऐसा क्या था, जिसके लिए आज हम समाज को लौट चलने के लिए कहें क्या था ऐसा ? ऐसी क्या बात थी, जिसके लिए राम-राज्य की चर्चा की जाये ?

लेकिन अवैज्ञानिक बुद्धि हमेशा पीछे लौटने वाली बुद्धि होती है । वह कहती है, पीछे लौट चलो, पीछे लौट चलो । आगे जाने में भय लगता है, क्योंकि आगे और समस्याएं होंगी, जिनका सामना करने के लिए बुद्धि को विकसित करना पड़ेगा । उतनी बुद्धि को विकसित करने के लिए जो तैयार नहीं है, वह कहेगा, पीछे लौट चलो । समस्या से ही भाग जाओ । न समस्या रहेगी, न बुद्धि को जन्मने का कारण रहेगा । लौट जायें अपनी गुफाओं में, बैठ जायें पीछे लौटकर । लौटते चलो उस समय तक, जब कि बन्दर पहली दफे जमीन पर उतरा था । और फिर वापस झाड़ों पर चढ़ जाओ, और चार हाथ-पैर से चलने लगो । वह बहुत अच्छा रहेगा, क्योंकि न वहां यन्त्रों की जरूरत होगी, न वहां औद्योगीकरण की जरूरत होगी—स्वावलम्बी । बन्दर बन जाये एक-एक आदमी लौटकर तो बहुत अच्छा है ।

लेकिन समाज ऐसे विकसित नहीं होता । और ये पीछे लौटने वाली चिन्तनाएं समाज को हित नहीं पहुंचातीं । क्या था राम के राज्य में, जिसकी इतनी चिन्ता, जिसके लिए पीछे लौटने की इतनी बात है ? ऐसी क्या बात थी ? और अगर ऐसा सुन्दर राज्य था वह और ऐसा स्वर्ण-युग था तो आदमी उसे छोड़कर क्यों आ गया ? आगे क्यों बढ़ आया ?

आदमी हमेशा दुख को छोड़कर आगे बढ़ता है । सुख को छोड़कर कभी आदमी आगे नहीं बढ़ता है । यह ध्यान रहे, हम समाज की जिन स्थितियों से गुजर आये हैं, वे स्थितियां आज की स्थितियों से बदतर स्थितियां थीं, इसलिए समाज आगे बढ़ा है उससे; नहीं तो समाज उससे कभी आगे नहीं बढ़ता । समाज आगे बढ़ता इसलिए है कि जो पीछे था, वह इस योग्य नहीं रहा कि उसमें जिया जाये । समाज नये द्वार तोड़ता है, नये मार्ग खोजता है । लेकिन प्रतिगामी चित्त, अवैज्ञानिक चित्त हमेशा कहता है—पीछे लौट चलो । मनोविज्ञान में इस वृत्ति को कहते हैं रिग्रेस, पीछे गिर जाने की वृत्ति ।

अगर एक जवान आदमी के घर में आग लग जाये और उस आग का सामना करने में उसकी बुद्धि जवाब दे दे, तो आपको पता है, वह आदमी क्या करने लगेगा ? वह दरवाजे पर बैठकर ऐसा रोने लगेगा, जैसे कोई छोटा बच्चा हो । वह रिग्रेस कर गया । अब जवान होने की हिम्मत उसने छोड़ दी । अब वह बच्चा हो गया, वह रोने लगा । बच्चा जो करता मकान में आग लग जाने पर, वही वह कर रहा है । लेकिन रोने से कोई मकान की आग नहीं बुझती, और पीछे लौट जाने से कोई हल नहीं होता । हां, पीछे लौट जाने से एक सुविधा होती है, समस्या का सामना करने से बच जाने का उपाय मिल जाता है ।

पीछे लौटना एस्केपिज्म है, पीछे लौटना पलायनवाद है ।

जिन्दगी नयी समस्याएं खड़ी करती है । उनको हल करने की फिक्र करनी चाहिए, न कि पीछे लौट जाने की ।

नये यन्त्रों ने नयी मुसीबत पैदा की है, यह सच है । हर नयी चीज नयी मुसीबत पैदा करती है । क्योंकि पुरानी व्यवस्था में बदलाहट करने की जरूरत आ जाती है। लेकिन हर मुसीबत को झेल लेना, सामना करना, मनुष्य की प्रतिभा को विकसित करने का अवसर बनता है । और पीछे लौट जाने से मनुष्य की प्रतिभा का विकास तत्क्षण रुक जाता है ।

क्या आपको पता है, एक आदमी बैलगाड़ी चलाता हो, तो इसके चित्त के बहुत विकास की जरूरत नहीं है, उसकी कॉन्शसनैस बहुत विकसित नहीं होगी । आखिर बैलगाड़ी चलाने के लिए कितनी चेतना की जरूरत पड़ती है ? लेकिन एक आदमी अन्तरिक्ष-यान चलाता हो, तो अन्तरिक्ष-यान चलाने के लिए बैलगाड़ी वाली बुद्धि काम नहीं दे सकती । उस आदमी की चेतना को विकसित होना पड़ेगा । उस आदमी को इस नये जटिल यन्त्र का सामना करने के लिए इतनी ही जटिल, इतनी ही सूक्ष्म बुद्धि भी विकसित करनी होगी । जितना यन्त्रों का विकास हो, उतनी मनुष्य की बुद्धि को चुनौती मिलती है विकसित होने के लिए ।

गांधी कहते हैं, चरखा पर लौट चलो, तकली पर लौट चलो । इससे मनुष्य की चेतना का विकास नहीं होगा । मनुष्य की चेतना का पतन होगा । मनुष्य की चेतना उत्पादन के साधनों के विकास के साथ विकसित होती है । जितने साधन विकसित होते हैं, उतनी ही भीतर की चेतना को चुनौती मिलती है और वह विकसित होती है । साधन छीन लो, और चेतना अविकसित हो जायेगी ।

बंगाल के जंगलों में आज से बीस-तीस वर्ष पहले दो बच्चियां पकड़ी गयी थीं, जिनको भेड़िये उठाकर ले गये थे । भेड़िये उठाकर ले गये दो आदमियों की बच्चियों को । उन भेड़ियों ने उन्हें पाला । फिर शिकारियों ने उन्हें पकड़ लिया । उनकी दस और बारह साल के करीब उम्र थी, उन बच्चियों की । लेकिन उन बच्चियों में आदमी का कोई भी चिन्ह न था । आदमी की चेतना का कोई भी लक्षण नहीं था । वे चार हाथ-पैर से चलतीं, भेड़िये की तरह चिल्लातीं । मांस देखकर, कच्चे मांस को खा जातीं, आदमी पर झपट्टा मारतीं । बहुत हैरानी हुई कि आदमी की दो लड़कियां हैं, इनकी यह हालत हो गयी । भेड़ियों की जीवन-व्यवस्था में जीने पर जो चेतना विकसित होगी, वह आदमी की विकसित चेतना नहीं होगी,

भेड़ियों की ही होगी।

अभी दो-तीन वर्ष पहले उत्तर-प्रदेश में भी एक लड़के को पकड़ा गया था जंगल में, जिसकी कोई चौदह-पन्द्रह साल की उम्र थी। उसे भी भेड़ियों ने पाला था। वह भेड़ियों जैसा हो गया था। उसे छः महीने लग गये सीधा खड़ा होना सिखाने में। दो पैर से खड़ा होना सीखने के लिए उसे छः महीने लग गये। एक शब्द बोलने के लिए, राम उसका नाम रख दिया था, राम बोलने के लिए उसे डेढ़ साल लग गया डेढ़ साल में वह उच्चारण कर पाया राम। क्या हो गया इसकी चेतना को? भेड़ियों की व्यवस्था में रहने पर इसकी चेतना भेड़ियों जैसी हो गयी है।

जितना विकसित समाज, जितनी विकसित यन्त्र-व्यवस्था, जितना विकसित विज्ञान, उतना मनुष्य की चेतना को विकसित होने की चुनौती मिलती है। मनुष्य के भीतर अनन्त सम्भावनाएं हैं विकास की, लेकिन चुनौती मिलनी चाहिए, चैलेंज मिलना चाहिए। गांधी जिस समाज की बात करते हैं, वह चैलेंज देने वाला समाज नहीं है अपना कपड़ा बना लो, अपने चरखे पर बुन लो, अपनी घर की खेती-बाड़ी कर लो, अपने झोंपड़े में रह जाओ, राम भजन करो, और आराम से जियो—इससे मनुष्य की चेतना को चुनौती नहीं मिलती।

आदमी आगे क्यों बढ़ आया उन स्थितियों को छोड़कर?

वह इसीलिए आगे बढ़ आया कि उन स्थितियों में आत्मा के विकास का अवसर नहीं था। विश्व-चेतना मनुष्य की चेतना को विकसित करने के लिए तीव्र सन्देश दे रही है। ये यन्त्र आकस्मिक रूप से पैदा नहीं हो रहे हैं, ये परमात्मा के खिलाफ पैदा नहीं हो रहे हैं। यह परमात्मा की ही मर्जी होगी। मनुष्य का जो भी विकास हो रहा है, वह परमात्मा की मर्जी से हो रहा है। क्योंकि उसकी मर्जी के बिना और कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन, महात्मा गण परमात्मा की मर्जी के खिलाफ बहुत कुछ बातें करते रहते हैं। हालांकि उनकी कोई सुनता नहीं। समाज अपनी ही धारा से बढ़ता है। लेकिन थोड़ा बहुत विलम्ब वे जरूर पैदा कर देते हैं। उनका विलम्ब पैदा करना नुकसान का कारण हो जाता है।

हिन्दुस्तान में पीछे लौटने और लौटाये जाने वाले लोगों की लम्बी परम्परा है। इन सन्तों-महात्माओं के कारण भारत की आत्मा विकसित नहीं हो पाती है। और भारत की आत्मा जब तक संतों-महात्माओं से मुक्त नहीं होती, तब तक भारत के पास एक वैज्ञानिक प्रतिभा का जन्म नहीं होगा, इसे सुनिश्चित मान लिया जाना चाहिए।

तीन-चार हजार वर्ष से हम क्या कर रहे हैं?

मैं गांधी के अवैज्ञानिक चिन्तन का स्पष्ट रूप से विरोध करता हूं। और यह विरोध करना इसलिए भी बहुत जरूरी हो रहा है कि गांधी इतने महिमाशाली

व्यक्ति हैं कि उनकी भूलें और नासमझियां और उनकी झक और उनके फैड, सब हमारे दिमाग में पकड़ जायेंगे। इसका पूरा खतरा है। वे जो कहेंगे, वे जो करेंगे, वह हमें प्रीतिकर लगने लगेगा। वे आदमी ही इतने प्रीतिकर हैं। इसलिए बड़ी लड़ाई की जरूरत है कि हम उनके विचार को समझें और देखें कि वह विचार देश को आगे ले जाने वाला सिद्ध होगा कि पीछे ले जाने वाला सिद्ध होगा। और अगर हमें दिखायी पड़ता हो कि पीछे ले जाने वाला सिद्ध होगा तो गांधी को पूरी तरह प्रेम करते हुए, गांधी की महिमा के लिए पूरा सम्मान देते हुए, गांधी की सेवाओं के लिए पूरा सत्कार देते हुए, गांधी के उन हिस्सों से देश को बचाना पड़ेगा, जो देश को अन्धकार में ले जा सकते हैं और गर्त में गिरा सकते हैं।

लेकिन यह बात कहनी बहुत मुश्किल हो गयी है। क्योंकि यह बात कहने का मतलब है कि न्यस्त स्वार्थों को, भेस्टेड इन्टरेस्ट को नाराज कर देना है। गांधी ने किसी पत्र में लिखा है कि मेरा वश चले तो मैं न टेलिग्राफ रहने दूं, न रेलगाड़ी रहने दूं। बड़े मजे की बात है। अगर गांधी का वश चले तो टेलिग्राफ रेलगाड़ी इन सबको खत्म कर दें। तो आदमी कहां जाये? आदमी हो जाये गुहा-मानव। गिर जाये पीछे अतीत के पतन में। हमें पता नहीं है कि इन सारे यन्त्रों ने भी बहुत कुछ मनुष्य की आत्मा को और धर्म को विकसित होने में सहयोग दिया है। हजारों समझाने वाले लोग नहीं समझा सके थे कि भंगी के पास बैठो, लेकिन रेलगाड़ी ने आपको भंगी के पास त्रिठा दिया। हजारों महात्मा नहीं समझा सके थे यह बात भंगी के पास बैठकर खाना खा लो, लेकिन रेलगाड़ी में बैठकर आपने भंगी के साथ खाना खा लिया है। लाखों महात्मा जो नहीं कर सके, वह एक मुर्दा रेलगाड़ी ने कर दिया है।

जिन्दगी बहुत अनूठे ढंगों से विकसित होती है। जिन्दगी के रास्ते बहुत अनूठे हैं। और रेलगाड़ी को बन्द कर देने का मतलब क्या है? रेलगाड़ी का क्या कसूर है? टेलिग्राफ का क्या कसूर है? बड़े यन्त्रों का, हवाई जहाज का क्या कसूर है? एक कसूर है, और वह कसूर यह है कि विज्ञान जितना विकसित होता है, उतना मनुष्य का तर्क विकसित होता है; और जितना तर्क विकसित होता है उतना अन्धविश्वास के आधार पर खड़े हुए सारे गढ़ गिरने शुरू हो जाते हैं। विज्ञान का विकास तथाकथित धार्मिक आदमी को भयभीत करता है। विज्ञान का सारा विकास तथाकथित धार्मिक आदमी को भयभीत करता है। क्योंकि उसकी सारी बुनियादें अतर्क पर, अन्धेपन पर, विश्वास पर खड़ी हैं। एक तरफ विज्ञान विकसित होगा, तो दूसरी तरफ यह अन्धविश्वास पर खड़े हुए मन्दिर इनके शिखर गिरने शुरू हो जायेंगे। इसलिए उचित यही है कि विज्ञान विकसित न हो। उचित यही है कि वैज्ञानिक बुद्धि विकसित न हो। उचित यही है कि

मनुष्य का तर्क विकसित न हो। उचित यही है कि आंख बन्द करके आदमी अन्धे की तरह महात्माओं के पीछे चलता रहे। ताकि हजारों साल से जो भी कहा जा रहा है—चाहे वह ठीक हो, चाहे वह गलत हो—वह आदमी मानता चला जाये। आदमी को एक मानसिक गुलामी के लिए तैयार किया गया है। विज्ञान ने वह गुलामी तोड़नी शुरू कर दी। इसलिए दुनिया भर के सन्त-महात्मा बुनियादी रूप से विज्ञान के विरोधी हैं। विरोध वे अनेक-अनेक रूपों में करते हैं, जो ख्याल में नहीं आता। और इतने व्यवस्थित ढंग से वह विरोध चलता है कि शायद उन्हें भी पता न हो कि वे क्या कर रहे हैं?

अब हिन्दुस्तान की आबादी बढ़ रही है। विज्ञान कहता है, संतति-नियमन का उपयोग करो बर्थ-कण्ट्रोल का उपयोग करो। विज्ञान ने एक अद्भुत बात खोज निकाली कि आदमी जन्म के ऊपर अधिकार रख सकता है। आदमी का पैदा होना आदमी के वश में है। लेकिन गांधीजी और विनोबाजी कहते हैं—संतति-नियमन! इससे तो अनाचार फैल जायेगा। संतति नियमन कभी नहीं, ब्रह्मचर्य का पालन करो। लेकिन पांच हजार वर्षों से तुम समझा रहे हो, कितने ब्रह्मचारी पैदा करवाये, और कब तक तुम इस बकवास को जारी रखोगे? कभी हजार दो हजार आदमी में एक आदमी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है। तो उससे हम नहीं कहते कि बर्थ-कण्ट्रोल का उपयोग करे, उससे कोई जबरदस्ती नहीं करते। लेकिन जो लोग नहीं उपलब्ध हो सकते हैं ब्रह्मचर्य को, इन सारे लोगों को ब्रह्मचर्य की आड़ में बच्चे पैदा करते रहने देना सारे समाज के लिए स्यूइसाइड, आत्मघात सिद्ध होगा।

सारी दुनिया ने अपनी संतति पर नियमन पैदा कर लिया है। फ्रांस की संख्या थिर हो गयी है। जापान ने अपनी संख्या पर बहुत तीव्रता से काबू पा लिया है। लेकिन भारत अपनी संख्या को पागल की हैसियत से बढ़ाये चला जा रहा है। हम सिवाय मरने के और कहीं भी नहीं पहुंचेंगे। लेकिन गांधी और विनोबा का अवैज्ञानिक चिन्तन कहेगा कि नहीं, संतति-नियमन, यह तो कृत्रिम उपाय है।

सब उपाय कृत्रिम हैं। उपाय मात्र कृत्रिम होते हैं। उपाय कोई आसमान से पैदा नहीं होते, आदमी ईजाद करता है। कृत्रिम उपाय का उपयोग मत करो, संयम रखो। लेकिन तुम्हारे संयम की शिक्षा का क्या फल है? तुम्हारे संयम की शिक्षा अगर दस हजार साल भी चले तो कोई परिणाम नहीं होने वाला है। और दस हजार साल में इस देश में कीड़े-मकोड़ों की तरह आदमियों की भीड़ इकट्ठी हो जायेगी। इस भीड़ का जीना असम्भव होगा, सिर्फ मरना ही आसान रह जायेगा। लेकिन आप मरोगे तो वे कहेंगे, इसमें हमारा क्या कसूर? हम तो कहते थे, ब्रह्मचर्य का पालन करो। तुमने नहीं किया, तुम मरो, तुम्हारी जिम्मेवारी है, तुम्हारी गलती है। लेकिन वैज्ञानिक साधनों का उपयोग मत करने

देना। और बड़े मजे की बात, वे कहेंगे कि वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करने में अनैतिकता बढ़ जायेगी, जैसे कि अनैतिकता बहुत कम है! अब और अनैतिकता क्या बढ़ जायेगी?

अनैतिकता काफी बढ़ गयी है, चरम सीमा पर पहुंच गयी है। कम से कम इस देश को तो अब और पतित होने का कोई और उपाय नहीं रह गया है। अब तो कोई बहुत ही इन्वेंटिव माइंड पैदा हो, आविष्कारक, तो भी नहीं बता सकता कि और चरित्रहीनता के नुस्खे क्या हो सकते हैं। सब नुस्खे हमें पूरी तरह मालूम हैं। अब और क्या चरित्रहीनता होगी? लेकिन नहीं, वह अवैज्ञानिक बुद्धि नैतिकता की दलीलों को लेकर अपने अविज्ञान को छिपाये चली जायेगी। और हमको भी बातें अच्छी लगेंगी, क्योंकि उन बातों को सुनने की हमारी लम्बी आदत हो गयी है। जिस बात को हम बहुत बार सुनते हैं, बहुत बार सुनने के कारण वह सही लगने लगती है।

हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है किसी भी झूठ को बार-बार दोहराते रहो, धीरे-धीरे वह सच हो जाता है। बस झूठ को बार-बार दोहराने की जरूरत है, वह सच हो जायेगा। असली सवाल बार-बार दोहराने का है।

और हम तो हजारों साल से कुछ बातें दोहरा रहे हैं। इतनी बार हमने उनको दोहराया है कि वे सच हो गयीं हैं। और आज उन झूठी बातों को, जो सच दिखायी पड़ने लगी हैं, छोड़ना एक बड़ी मुश्किल बात हो गयी है। पहाड़ तोड़ना आसान हो गया; उन झूठी बातों को, जो सच नहीं हैं, तोड़ना बहुत मुश्किल हो गया है। लेकिन, अगर किसी को महात्मा बनना हो, तोड़ने की कोशिश ही नहीं करनी चाहिए। महात्मा बनने की सरल तरकीब यह है। और इस देश में महात्मा बनने से ज्यादा सरल और कोई भी चीज नहीं है। और कुछ भी बनना बहुत कठिन है, महात्मा बनना एकदम सरल है। और महात्मा बनने का रामबाण नुस्खा यही है कि जो भी नासमझी चलती रही हो, तुम उसका ही गुणगान जारी रखो। जो भी नासमझी चलती रही है, तुम उसकी ही हां में हां भरते रहो। समाज तुम्हें आदर देगा, क्योंकि तुम समाज की नासमझियों का आदर देते हो। समाज उत्तर में तुम्हारा सम्मान करेगा, क्योंकि तुम समाज का सम्मान करते हो। और अगर थोड़ी-सी भी क्रान्ति की बात कही, कि जिन्दगी को बदलना जरूरी है, विचार को बदलना जरूरी है, तो तैयार रहो फिर। फिर महात्मा नहीं हो सकते, फिर साधु नहीं हो सकते।

हिन्दुस्तान ने एक तरकीब निकाली है। हिन्दुस्तान के सारे विचारशील लोगों को एक तरकीब से, एक रिश्वत देकर क्रान्ति से विमुख बनाया गया है। और वह रिश्वत यह है कि हम तुम्हें सम्मान देंगे, अगर तुम क्रान्ति की बात न करो। और अगर तुमने क्रान्ति की बात की तो अपमान के सिवाय और कुछ भी नहीं

मिलेगा। इसलिए हिन्दुस्तान में सन्त-महात्मा पैदा हुए, क्रान्तिकारी पैदा नहीं हो सके हैं। हिन्दुस्तान के पांच हजार साल के इतिहास में एक भी क्रान्ति नहीं हो सकी। यह बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण मालूम पड़ता है। हमसे छोटे-छोटे मुल्क सौ दो सौ वर्षों में क्रान्ति कर लेते हैं, और हमने कोई क्रान्ति नहीं की। क्या हमारी आत्मा मर गयी है? क्या हम कोई भी बदलाहट करने में समर्थ नहीं रहे?

गांधी का चिन्तन भी सुधारवादी है, क्रान्तिवादी नहीं। यह दूसरा बिन्दु मैं आपसे कह देना चाहता हूं।

गांधी क्रान्तिवादी चिन्तक नहीं हैं, रिफॉमिस्ट, सुधारवादी चिन्तक हैं। अगर हिन्दुस्तान में अस्पृश्य चल रहा है, अछूत चल रहा है तो उसको अच्छा नाम दे देंगे; कहेंगे, हरिजन। वे यह नहीं कहेंगे कि हिन्दू धर्म सड़ा हुआ धर्म है। वे नहीं कहेंगे कि उस हिन्दू धर्म को लगा दो आग, जिस हिन्दू धर्म ने यह सब बेईमानी पैदा की। नहीं, वे कहेंगे, हिन्दू धर्म तो बहुत महान धर्म है। थोड़ी-सी भूल हो गयी है, किसी तरह समझा-बुझा कर अछूत को निकट ले आओ, बीमारी जारी रहने दो। थोड़ी-सी भूल रह गयी है, उसको सुधार लो। कहीं थोड़ा-सा पलस्तर बदल दो, कहीं खिड़की बदल दो, कहीं रंग-रोगन बदल दो। समाज तो पुराना बिल्कुल ठीक है। गांधी क्रान्तिवादी नहीं हैं। वे कहेंगे, हिन्दू भी ठीक है, मुसलमान भी ठीक है, दोनों भाई-भाई हैं। जबकि दोनों बीमारियां हैं, कोई भाई-भाई नहीं हैं। न हिन्दू की जरूरत है, न मुसलमान की जरूरत है; हिन्दुस्तान को आदमी की जरूरत है। हिन्दू मुसलमान की बिल्कुल जरूरत नहीं है। लेकिन गांधी कहेंगे, हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई।

यह सुधारवादी, समझौतावादी दृष्टिकोण है। यह क्रांति ले आने वाला दृष्टि-कोण नहीं है। वे कहेंगे कि दोनों ठीक हैं। वे कहेंगे कि अल्ला-ईश्वर तेरे नाम। भगवान का कोई भी नाम नहीं है। न अल्ला उसका नाम है, न ईश्वर उसका नाम है। वह अनाम है और सब नाम झूठे नाम हैं, आदमियों के दिये हुआ नाम हैं। लेकिन किसी झूठ को खोलने की वह हिम्मत नहीं जुटायेंगे। वे कहेंगे, तुम्हारा झूठ भी ठीक, तुम्हारा झूठ भी ठीक। झगड़ा मत करो, दोनों भाई-भाई हो।

भाई-भाई होकर—नतीजा हम देख रहे हैं, क्या हुआ?

हिन्दुस्तान-पाकिस्तान कटा। और इस कटने में गांधीजी ने हिन्दू-मुसलमान को भाई-भाई बनाने की जो बात कही, वह बुनियादी आधार बनी। अगर हिन्दुस्तान के नेताओं ने, विचारशील लोगों ने हिन्दू और मुसलमान को बीमारी कहा होता और हिन्दू और मुसलमान दोनों तत्त्वों के खिलाफ लड़ाई जारी रखी होती, तो हिन्दुस्तान के बंटवारे का कभी कोई सवाल नहीं उठ सकता था। देश भी बंट गया, बीमारी जारी है और हजारों साल तक वह बीमारी जारी रहेगी।

हिन्दुस्तान को वैसे क्रान्तिकारी लोग चाहिए, जो इसे बीमारियों से छुटकारा

दिलायें, जो बीमारियों के साथ एडजस्ट होने की, समायोजित होने की बातें न करें। जो समझौते की बातें न करें, जो जिन्दगी को बदलने के लिए हिम्मत जुटायें।

और यह हिम्मत जुटानी हो तो गांधी के समझौतावादी रुख के खिलाफ सारे देश के मन में एक आवाज पैदा होनी अत्यन्त जरूरी है।

गांधी एक समझौतावादी है।

हिन्दुस्तान हमेशा से समझौतावादी रहा है। समझौतावादी होने से यह हमने सब खो दिया है। अब कब मौका आयेगा कि हिन्दुस्तान समझौतावादीपन की पुरानी आदतें छोड़ दे। वह हिम्मत से जो ठीक हो उसको करने की कोशिश करे। जो सही दिखायी पड़े, जो मुल्क के चिन्तन में सही आये, उसके साथ समझौता न करे। क्योंकि समझौता करने वाली कौम धीरे-धीरे इम्पोटेंट, नपुंसक हो जाती है। उसका बल चला जाता है, उसका आग्रह चला जाता है, उसका वीर्य चला जाता है, उसकी लड़ने की क्षमता चली जाती है, उसकी बदलाहट की ताकत खो जाती है। वह सब खो गयी है।

गांधी क्रान्तिकारी नहीं हैं। गांधी की जो बात बहुत क्रान्तिकारी मालूम पड़ती है, वह बात भी उतनी क्रान्तिकारी नहीं है, जितनी कि घोषणा की जाती है। गांधी कहते हैं कि अहिंसा—और अहिंसा की बात सच में बड़ी क्रान्तिकारी है। लेकिन गांधी के अनशन और सत्याग्रह को मैं अहिंसक नहीं मानता हूं। अगर कोई भी अनशन जाहिर रूप से किया जाये तो हिंसात्मक हो जाता है। अगर मुझे किसी व्यक्ति का हृदय-परिवर्तन करना है तो मौन में, एकान्त में बिना किसी को पता चले, ध्यान में, समाधि में मुझे हृदय-परिवर्तन की प्रार्थना करनी चाहिए। अगर मैं बड़ौदा में घोषणा करके कि मैं फलां आदमी का हृदय-परिवर्तन करूंगा, अनशन करता हूं और सारा बड़ौदा मेरे अनशन के पास घूमता है, और अखबारों में खबरें छपती हैं तो मैं उस आदमी पर दबाव डाल रहा हूं। यह दबाव अहिंसा-त्मक नहीं है।

सत्याग्रह अहिंसात्मक हो सकता है, लेकिन वह होगा मौन में, एकान्त में, अंधेरे में जहां किसी को पता भी न चले। उस आदमी को भी पता न चले, जिसका हृदय-परिवर्तन करने की कोशिश कर रहा हूं। और तब उस मौन में भी हृदय बदले जाते हैं, उस मौन में भी हृदय से हृदय तक आवाज पहुंचायी जाती है। वह तो अहिंसात्मक हो सकता है।

लेकिन इस तरह के सत्याग्रह और अनशन अहिंसात्मक नहीं हैं; ये हिंसा के नये रास्ते हैं, नये रुख हैं। यह हिंसा की नयी तरकीब है।

नहीं, गांधी के द्वारा जो क्रान्ति हो गयी, वह अहिंसात्मक क्रान्ति नहीं है। और वह क्रान्ति सम्भव हो सकी, वह इसलिए नहीं कि भारत अहिंसात्मक आंदो-

लन कर रहा था, बल्कि भारत इतना कायर, इतना कमजोर और इतना निर्वीर्य हो गया है कि उसमें लड़ने की कोई हिम्मत नहीं रही । गांधी ने भी आजादी मिलने के बाद यह बात स्वीकार की। गांधी ने यह बात स्वीकार की कि अब मैं समझता हूं, क्योंकि आजादी मिलते ही जो हिंसा का दौर छूटा पूरे मुल्क में, उससे सब बात पता चल गयी कि यह मुल्क कितना अहिंसक है । गांधी ने भी यह बात स्वीकार की कि मैं समझता हूं कि हिन्दुस्तान ने कमजोरी की वजह से अहिंसा की बातें मान ली थी । हिन्दुस्तान अहिंसक नहीं है ।

कौन-सी अहिंसात्मक क्रान्ति हो गयी ! वह जो क्रान्ति गांधी के साथ चली भी, वह क्रान्ति भी बहुत अद्भुत थी । वह क्रान्ति, वह विरोध, वह बगावत अंग्रेजों के तो खिलाफ थी, लेकिन हिन्दुस्तान की सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ नहीं थी । जब तक अंग्रेजों की खिलाफत चली तब तक तो ठीक था । अब आगे नहीं बढ़ना है इसलिए ।

हिन्दुस्तान से अंग्रेजी हुकूमत गयी, हिन्दुस्तान आजाद नहीं हुआ ।

हिन्दुस्तान से अंग्रेजी हुकूमत गयी और हिन्दुस्तानी पूंजीपति के हाथ में हुकूमत आ गयी । हिन्दुस्तान की गुलामी जारी है । अंग्रेज पूंजीपति की जगह हिन्दुस्तानी पूंजीपति आ गया, लेकिन हिन्दुस्तान की गुलामी में कोई फर्क नहीं पड़ा है। और इसीलिए हिन्दुस्तान का पूंजीपति गांधी के आसपास चक्कर लगाता था, क्योंकि गांधी से उनको आशा थी कि इस आदमी के कारण तो जनता हिंसा नहीं कर सकेगी, क्योंकि हिंसा की अगर क्रान्ति होती तो हिन्दुस्तान का पूंजीपति भी उस क्रान्ति में बह जाता, यह निश्चित था ।

गांधी के कारण हिंसात्मक क्रान्ति नहीं हो सकेगी, पूंजीवादी सुरक्षित है ।

और गांधी की समझौतावादी प्रवृत्ति के कारण ही अंग्रेज पूंजीपति से सत्ता हमारे हाथ में आ जायेगी, यह भी हिन्दुस्तान की पूंजीवादी व्यवस्था को पता था । इसलिए जैसे ही हिन्दुस्तान को आजादी मिल गयी, हिन्दुस्तान को पूंजीपतियों और हिन्दुस्तान के नेताओं ने गांधी को एक तरफ फेंक दिया । काम खत्म हो गया, वह चली हुई कारतूस सिद्ध हो गये । काम पूरा हो गया था । जो काम होना था, हो चुका था । अब गांधी खतरनाक थे, अब गांधी की कोई जरूरत न थी । इसलिए गांधी ने मरने के कुछ दिन पहले कहा कि मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूं । अब मेरी कोई पूछ नहीं है, अब मुझे कोई नहीं पूछता है । लेकिन फिर भी वह यह नहीं समझ पाये कि अब उन्हें कोई क्यों नहीं पूछता है ? इसलिए नहीं पूछता है, कि जो उन्हें पूछ रहे थे लोग, उनका काम पूरा हो गया है। अंग्रेज के हाथ से सत्ता हिन्दुस्तान के पूंजीपति के हाथ में आ गयी है । गांधी का काम पूरा हो गया है, अब गांधी की कोई भी जरूरत नहीं है । और गांधी का मौजूद रहना खतरनाक सिद्ध हो सकता है ।

यह जो क्रान्ति हुई, यह क्रान्ति नहीं थी । यह केवल सत्ता का एक पूंजीपति वर्ग से दूसरे पूंजीपति वर्ग के हाथ में हस्तांतरण था । यह ट्रांसफर था, यह कोई क्रान्ति नहीं थी । समाज की जिन्दगी वैसी की वैसी है, बल्कि बदतर हो गयी है । बीस सालों में आजादी के बाद हिन्दुस्तान का चित्त, हिन्दुस्तान की चेतना और आत्मा पतित हुई है, विकसित नहीं हुई है । असल में अपना पूंजीपति और भी खतरनाक सिद्ध हुआ है ।

और मैं आपको कहता हूं, अंग्रेज पूंजीपति तो गांधी के प्रति सदय रहा, भारत के पूंजीपति गांधी के प्रति सदय भी नहीं रह सकता था । और गांधी की हत्या इसका सबूत है । अंग्रेज हुकूमत के बीच गांधी जिन्दा रह सके । अंग्रेज ने गांधी की हत्या नहीं की । मुसलमान ने गांधी को गोली नहीं मारी । एक हिन्दू ने और हिन्दुस्तान के आजाद होने के बाद गोली मारी, यह आकस्मिक नहीं है, एक्सिडेंटल नहीं है । यह बताता है कि हमारा पूंजीपति, हमारे देश का सत्ताधिकारी पश्चिम के सत्ताधिकारियों से भी खतरनाक सिद्ध हो सकता है । हम ज्यादा खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं । वह जो काला पूंजीपति है, वह गोरे पूंजीपति से ज्यादा खतरनाक सिद्ध हो रहा है ।

गांधी के एक भक्त हैं । जब हिन्दुस्तान आजाद हुआ, तब उन सज्जन के पास केवल तीस करोड़ की पूंजी थी, आज उनके पास तीन सौ तीस करोड़ की पूंजी है । बीस वर्ष में तीन सौ करोड़ के करीब की पूंजी का इकट्ठा हो जाना मिरेकल है, चमत्कार है । लेकिन मानना चाहिए कि सत्संग का फायदा होता है । ग्रन्थों में लिखा है, सत्संग से बहुत फायदा होता है । उन को भी गांधी के सत्संग से फायदा हुआ है ।

नहीं, गांधी कोई क्रान्तिकारी विचारद्रष्टा नहीं हैं, गांधी एक सुधारवादी, चिन्तक हैं ।

और उन्होंने जो समाज की रूपरेखा दी है, वह कोई क्रान्ति की रूपरेखा नहीं है । और इसलिए मैं गांधी के अवैज्ञानिक चिन्तन का, उनकी क्रान्ति विरोधी दृष्टि का, उनके प्रतिगामी और पीछे लौट चलने वाली प्रतिक्रियावादी मनोवृत्ति का स्पष्ट रूप से विरोध करता हूं ।

लेकिन यह गांधी का विरोध नहीं है । गांधी के व्यक्तित्व के प्रति मुझे समादर है, लेकिन गांधी के विचार अगर गलत हैं तो चाहे कोई भी परिणाम हो, मैं उन विचारों को गलत कहना चाहता हूं । और मैं इतनी आशा करता हूं मुल्क की नयी पीढ़ियों से, मुल्क के विचारशील लोगों से कि वे, सिर्फ मुझे गालियां कोई अगर दे तो इससे मेरी बात को गलत नहीं समझ लेंगे । बल्कि मुझे दी गयी गालियां यह बताती हैं कि मैंने जो भी कहा है, उसका एक भी उत्तर नहीं दिया जा रहा है, सिर्फ मुझे गालियां दी जा रही हैं और गालियां कमजोर देते हैं । जो

मैं कह रहा हूं, उसका उत्तर दिया जाना चाहिए। मैं उत्तर के लिए तैयार हूं।

और मेरा दावा नहीं है कि जो मैं कहता हूं, सही है, क्योंकि मैं तो विचार और तर्क में विश्वास करता हूं। मैं दावा नहीं करता कि मेरी अन्तर्वाणी जो कहती है, वही होना ही चाहिए। वह गलत हो सकता है, लेकिन मेरी बातों का उत्तर चाहिए। मुझे गालियां देने से कुछ परिणाम नहीं निकल सकता, और गालियां देकर जनता को बहुत दिन तक गुमराह भी नहीं रखा जा सकता। जनता से मुझे आशा है और इस बात की आशा नयी पीढ़ियों से और भी ज्यादा है कि भविष्य, अब सोचने वाला भविष्य होगा भारत का। बहुत दिन हम बिना सोचे जी लिए अन्धेरे में। क्या कभी भगवान वह मौका नहीं देगा कि यह देश भी विचार करे, यह देश भी जागे और सोचे?

उसी विचार की दिशा में मैं प्रश्न कर रहा हूं। एक अकेले आदमी की आवाज कितनी हो सकती है, जिसके पास न कोई संगठन है, न कोई संस्था है, न कोई साथी है, न कोई सम्पत्ति है? एक अकेले आदमी की आवाज कितनी हो सकती है? लेकिन मैं इस आशा में आवाज दिये ही चला जाऊंगा, जब तक कि वह मेरी आवाज बिल्कुल बन्द ही न कर दें। मुझे यह ख्याल है कि कुछ लोग यह आवाज सुन लेंगे। और अगर आवाज में कोई सत्य होगा तो यह आवाज रुकवायी नहीं जा सकती, यह गांव-गांव, कोने-कोने, एक-एक आदमी तक जरूर पहुंच जायेगी। अगर परमात्मा की यह मर्जी होगी कि भारत सत्य के प्रकाश में जागे तो यह होकर रहेगा। इसे कोई भी रोक नहीं सकता है।

और बहुत-सी बातें रह गयीं, वह कल सुबह मैं बात करूंगा। मेरी बातों को इतने प्रेम और शान्ति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें। ●

बड़ौदा, दिनांक १३ फरवरी १९६९

१०. मेरी दृष्टि में रचनात्मक क्या है ?

मेरे प्रिय आत्मन,

बहुत से प्रश्न पूछे गये हैं। एक मित्र ने पूछा है कि क्या मैं बोलता ही रहूंगा, कोई सेवा कार्य नहीं करूंगा, कोई रचनात्मक काम नहीं करूंगा ? क्या मेरी दृष्टि में सिर्फ बोलते ही जाना पर्याप्त है ?

इस बात को थोड़ा समझ लेना उपयोगी है। पहली बात तो यह कि जो लोग सेवा को सचेत रूप से करते हैं, कॉन्शसली करते हैं, उन लोगों को मैं समाज के लिए अहितकर और खतरनाक मानता हूं। सेवा जीवन का सहज अंग हो छाया की तरह, वह हमारे प्रेम से सहज निकलती हो, तब तो ठीक; अन्यथा समाज-सेवक जितना समाज का अहित और नुकसान करते हैं, उतना कोई भी नहीं करता है।

समाज-सेवा भी अहंकारियों के लिए एक व्यवसाय है। दिखायी ऐसा पड़ता है कि समाज-सेवक तो विनम्र है, सबकी सेवा करता है; लेकिन सेवक के अहंकार को देखेंगे तो पता चलेगा कि सेवक भी सेवा करके मालिक बनने की पूरी चेष्टा में संलग्न होता है।

मेरी दृष्टि में जीवन में शान्ति हो और अन्तस्तल पर प्रेम का उद्घाटन हो तो आदमी जो भी करता है, वह सेवा है। और रास्ते पर बुहारी लगाना ही रचनात्मक नहीं है; आपकी खोपड़ी में बुहारी लगाना ज्यादा रचनात्मक है। मैं

सिर्फ बोल नहीं रहा हूं। विचार से बड़ी और कोई रचना जगत् में नहीं है। विचार से महीन, विचार से ज्यादा अद्भुत, विचार से ज्यादा शक्तिशाली कोई क्रान्ति नहीं है। क्योंकि मूलतः विचार के बीज ही हृदय में जाकर अन्ततः जीवन को, समाज को, रूपान्तरित करते हैं। लेकिन अगर गांधीजी और विनोबाजी के कारण एक ऐसी बात फैल गयी है कि कोई सड़क पर बुहारी लगाये या कोई जाकर किसी बीमार आदमी का हाथ-पैर धो दे, या कोढ़ी का पैर दबा दे तो वह विचार देने से भी बड़ी सेवा कर रहा है, यह तो बात निहायत नासमझी से भरी हुई है।

इस जगत् में जो कुछ भी फलित हुआ है, इस जगत् में जो भी श्रेष्ठ है, इस जगत् में जो भी सुन्दर है, मनुष्य के जीवन ने जो भी ऊंचाइयां छुई हैं, वे ऊंचाइयां अन्ततः विचार की ऊंचाइयां हैं। और ये जो सेवा में रत लोग हैं, वे भी सेवा के किसी विचार-बीज के कारण अनुप्राणित हैं। मुझे यह समझ में नहीं पड़ता, मैं इसे नितान्त मूढ़ता की बात समझूंगा कि वे बैठकर किसी गांव की बुहारी लगायें और कहीं जाकर किसी झोंपड़े की सेवा करें। जो मैं कर सकता हूं, उसके मुकाबले वह करना देश के लिए नुकसान पहुंचाना होगा।

मेरी दृष्टि में तो भारत के विचार की शक्ति खो गयी है; भारत के पास विचार की ऊर्जा नष्ट हो गयी है। भारत ने हजारों साल से सोचना बन्द कर दिया है। भारत सोचता ही नहीं है। यह इतना बड़ा पत्थर भारत के प्राणों पर है कि अगर कुछ हजार लोग अपने सारे जीवन को लगाकर इस पत्थर को हटा दें तो भारत का जितना हित हो सकता है, उतना इन तथाकथित रचनात्मक कहे जाने वाले कामों से नहीं हो सकता। और जो लोग इन रचनात्मक कामों के लिए अतिशय बात करते हुए प्रतीत होते हैं, उनको भी समझ लेना जरूरी है।

समाज को बदले बिना सारे रचनात्मक काम पुराने समाज को बचाने वाले, टिकाने वाले सिद्ध होते हैं। समाज की जीवन-व्यवस्था में आमूल रूपान्तरण न हो तो समाज में चलने वाली सेवा, समाज में चलने वाला रचनात्मक आन्दोलन पुराने समाज के मकान में ही प्लस्तर बदलने, रंग-रोगन करने, खिड़की-दरवाजों को पोतने वाला सिद्ध होता है। नहीं, आज समाज को रचनात्मक काम की नहीं, विध्वंसात्मक काम की जरूर है आज समाज को कंस्ट्रक्शन की नहीं, एक बहुत बड़े डिस्ट्रक्शन की जरूरत है। आज समाज के पास इतना कचरा, इतना कूड़ा है हजारों साल का कि इसमें आग देने की जरूरत है। इस वक्त हिम्मत करके जो लोग विध्वंस करने को राजी हैं, वे ही लोग एकमात्र रचनात्मक काम कर रहे हैं। यह समाज जाये, यह सड़ा गला समाज नष्ट हो, इसके लिए सब कुछ किया जाना आज जरूरी है।

मुझे दिखायी पड़ता है कि ये जो रचनात्मक काम करने वाली बातें हैं, ये

पुराने दकियानूस समाज को किसी तरह बचाये रखने की चेष्टाओं से ज्यादा नहीं हैं। सब सुधारवाद अन्ततः सड़ गये, जाते हुए, बिदा होते हुए समाज को बचाने की अंतिम चेष्टा का फल होता है। और जो लोग सेवा के लिए उत्सुक होते हैं, जैसा कि विनोबा कहते हैं कि सेवा धर्म है, वे गलत कहते हैं, यह बात निहायत गलत है।

धर्म सेवा हो सकता है, लेकिन सेवा कभी भी धर्म नहीं हो सकती।

इस फर्क को समझ लेना जरूरी है। सेवा करने से कोई धार्मिक नहीं हो सकता है। हां, धार्मिक व्यक्ति सेवा करता है। असल में तो यह है कि धार्मिक व्यक्ति जो भी करता है, वह सेवा है। धर्म से तो सेवा पैदा होती है, लेकिन सेवा से कोई धर्म पैदा नहीं होता। और हम देख रहे हैं कि दुनिया में दो-तीन हजार वर्षों से जिन लोगों ने भी सेवा को धर्म करने की बात बतायी हैं, उन्होंने धर्म को भी नष्ट किया है और सेवा को भी विकृत किया है।

मैंने एक छोटी-सी घटना सुनी है। मैंने सुना है, एक चर्च में मुहल्ले-पड़ोस के बच्चे रविवार की सुबह इकट्ठे होते थे। चर्च के पादरी ने उन बच्चों को कहा कि एक सेवा का कार्य जरूर रोज करना चाहिए, क्योंकि यही परमात्मा की सच्ची प्रार्थना है। उन बच्चों ने पूछा, कैसा सेवा का कार्य? उस पादरी ने कहा कि जैसे कोई नदी में डूबता हो तो उसको बचाना चाहिए; कोई बीमार हो तो उसके लिए दवा ला देनी चाहिए; कोई बूढ़ा आदमी रास्ता पार न कर पाता हो तो उसको सहारा देकर रास्ता पार करवा देना चाहिए। और अगले रविवार को जब तुम आओ, तब एक सेवा का कार्य जरूर करके आना। मैं पूछूंगा।

अगले रविवार को बच्चे इकट्ठे हुए। उस चर्च के पादरी ने पूछा कि तुममें से किसी ने सेवा का कार्य किया? उन्नीस बच्चों में से तीन बच्चों ने हाथ उठाये कि हमने सेवा का कार्य किया है। उस पादरी ने कहा, 'बहुत अच्छा! कम से कम तीन ने किया है, यह भी अच्छा है। सेवा ही प्रार्थना है। सेवा ही परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग है। जो सेवा करेंगे, वे ही असली धन को, आत्मिक धन को उपलब्ध होते हैं। तुमने, बेटे, कौन-सी सेवा की?'

पहले लड़के ने खड़े होकर कहा कि मैंने एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया है। पादरी ने कहा, बहुत अच्छा किया। बूढ़े आदमियों को रास्ता पार करवाना चाहिए। दूसरे से पूछा कि बेटे, तुमने क्या किया? उसने कहा, मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया। वह पादरी थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, दोनों को बूढ़ी औरतें रास्ते पर मिल गयीं? लेकिन कोई आश्चर्य नहीं, बहुत बूढ़ियां हैं, मिल सकती हैं। तीसरे से पूछा, बेटे, तुमने क्या किया? उसने कहा, मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया। उसने कहा, बड़ी हैरानी की बात है, तुमको तीन बूढ़ियां मिल गयीं? उन तीनों ने कहा, तीन नहीं, बूढ़ी एक ही थी। हम तीनों ने उसी को पार करवाया। और पादरी ने पूछा, क्या बूढ़ी इतनी बूढ़ी थी कि तीन आदमियों की जरूरत पड़ी उन्हें पार करवाने के लिए?

उन तीनों ने कहा, वह पार नहीं होना चाहती थी, जबरदस्ती पार करवाया है। वह तो भागती थी इस तरफ कि हमें वहां जाना नहीं है। लेकिन आपने कहा था कि बिना सेवा किये परमात्मा नहीं मिल सकता तो हमने उसे जबरदस्ती पार करवा दिया। वह बहुत चिल्लाती थी कि मुझे उस तरफ नहीं जाना है।

यह जो सेवा को पकड़े हुए प्रोफेशनल सेवक हैं, यह जो धन्धा बनाये हुए हैं सेवा का, इनको तो बूढ़ियों को रास्ता पार करवाना है, इनको तो कुछ भी करवाना है, डूबते को बचाना है। यहां तक भी, अगर डूबते न मिलें तो किसी को डुबाकर भी बचाने का इन्तजाम किया जा सकता है। नहीं, ऐसी सेवा वगैरह के समर्थन में मेरे मन में कोई बात नहीं है। इन तथाकथित सेवकों को मैं मिस्चीफ मांगर्स कहता हूं, ये समाज में सबसे ज्यादा मिस्चीवियस एलिमेंट हैं, ये समाज में सबसे ज्यादा उपद्रवकारी तत्व हैं। इनको सेवा करनी है। इनको सेवा करनी ही है, चाहे कुछ भी हो जाये।

इस तरह की सेवा से हित नहीं हुआ है। मैं नहीं कहता हूं कि सेवा धर्म है। मैं जरूर कहता हूं कि धर्म सेवा है। अगर कोई व्यक्ति धर्म को उपलब्ध हो तो उसके जीवन में जो भी है, वह सब सेवा बन जाता है। लेकिन तब वह कॉन्शस नहीं होता; तब वह सुबह से निकलता नहीं है कि किसकी सेवा करें। तब वह जीवन में जीता है और उसके जीने से सेवा निकलती है। जितना भी उसका जीना है, उसकी चर्या है, उसको श्वास भी लेनी है, वह सब अनजाने ही, बिना पता चले, सेवा बन जाती है। जहां हृदय में प्रेम है, वहां व्यक्ति में सेवा है। फिर वह चिन्ता नहीं लेता कि सेवा दिखायी पड़े, अखबारों में उसकी खबर छपे, फोटो निकाला जाये फोटोग्राफर तैयार रहे, जब सेवक सेवा करता हो।

क्योंकि आजकल कोई सेवक बिना फोटोग्राफर के सेवा नहीं करता है, यह आपको मालूम है। फोटोग्राफर को पहले खबर कर आता है कि आज हम सेवा करने जा रहे हैं। फिर इसी तरह के धोखेबाज सेवकों की जमात हमेशा बन जाती है। हम तो देख रहे हैं, हिन्दुस्तान में यह हो गया है। जिनको हम उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले सेवक की तरह जानते थे, उन्नीस सौ सैंतालीस के बाद एक आधी रात के परिवर्तन में, पन्द्रह अगस्त के बाद वे सब एकदम मालिक हो गये। और तब उसका असली रूप हमें दिखायी पड़ा कि ये जो सेवक मालूम पड़ते थे, सुबह बैठ कर चरखा चलाते थे, हरिजन कॉलोनी की सफाई करते थे, ये आदमी बिल्कुल दूसरे सिद्ध हुए। जब इनके हाथ में ताकत आयी, तब ये बिल्कुल और हो गये। इनको पहचानना मुश्किल हो गया कि वे वही लोग हैं! यह कैसा चम-

त्कार हो गया ! यह पन्द्रह अगस्त की रात बड़ी मिरैक्यूलस, बड़ी चमत्कारी मालूम पड़ती है । और अंग्रेज बड़े जादूगर थे, मालूम होता है । जरा-सी तरकीब और हिन्दुस्तान के सारे सेवक क्या से क्या हो गये !

नहीं, यह आकस्मिक नहीं है । लेकिन न गांधीजी इस बात को पहचान पाये और न भारत अभी इस बात को पहचान पाया है कि सेवा करना भी प्रेस्टीज, इज्जत पाने की तरकीब है । और अगर दूसरी तरकीब मिल जाये पाने की तो सेवक फौरन सेवा छोड़कर मंच पर आसीन हो जायेगा, कुर्सियों पर बैठ जायेगा ।

वह सेवा भी अहंकार की तृप्ति का मार्ग है । इसलिए दो सेवकों को अगर आप कह दो कि फलां सेवक आपसे बड़ा सेवक है तो उसे दुख हो जाता है कि यह कैसे हो सकता है कि मुझसे बड़ा कोई सेवक हो । सेवक भी मानता है कि मुझसे बड़ा कोई भी नहीं है । यह सब अहंकार की चेष्टा है । अहंकार से जो सेवा पैदा होती है, वह सेवा सिर्फ बहाना है । अन्ततः भीतर गहरे में यशाकांक्षा, पद-प्रतिष्ठा अस्मिता और अहंकार की ही यात्रा करती है ।

नहीं, ऐसी किसी सेवा के पक्ष में नहीं हूं ।

मैं जरूर उस सेवा के पक्ष में हूं जो व्यक्ति के आत्मिक रूपान्तरण से उपलब्ध होती है, जो सहज हो जाती है । उसे पता भी नहीं चलता । उसे पता भी नहीं चलता कि वह सेवा कर रहा है । अगर आप उससे कहने जायें कि आप सेवा कर रहे हैं तो वह हैरान होगा । वह कहेगा, कैसी सेवा ? मैंने तो कुछ भी नहीं किया । मैं जो कर सकता था, वह हुआ है ।

मैंने सुना, एक संन्यासी भारत आया । वह अफ्रीका में था । वह हिमालय की यात्रा, बद्री-केदार की यात्रा को गया । जब वह पहाड़ चढ़ रहा था, तेज धूप थी, आकाश से आग बरस रही थी । पहाड़ की चढ़ाई थी, वह हांफ रहा था, पसीना बह रहा था । तभी उसे एक पहाड़ी लड़की भी दिखायी पड़ी जो पहाड़ पर चढ़ रही थी । उस लड़की की उम्र ज्यादा नहीं है, तेरह-चौदह साल की होगी । बहुत नाजुक है, उसके चेहरे पर आग झलक रही है, पसीना बह रहा है । वह थक गयी है, वह हांफ गयी है । और कंधे पर अपने भाई को बिठाये हुए है । वह भी तगड़ा है, छोटा है लेकिन मजबूत है, वजनी है । संन्यासी उसके पास पहुंचा तो सिर्फ दयावश उसने कहा कि बेटी, बहुत बोझ लग रहा होगा तुझे ? उस लड़की ने बहुत चौंककर संन्यासी को देखा और कहा, स्वामीजी, बोझ आप लिए हुए हैं; यह तो मेरा छोटा भाई है । बोझ आप लिए हुए हैं । संन्यासी अपना बिस्तर वगैरह बांधे हुए हैं । लड़की ने कहा, यह मेरा छोटा भाई है, बोझ नहीं है ।

उस संन्यासी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मेरी जिन्दगी में मुझे इतना अमृत वचन पहले कभी सुनने को नहीं मिला था । बहुत शास्त्र मैंने पढ़े थे, लेकिन यह अद्भुत सत्य पहली दफे मुझे पता चला, उस पहाड़ी लड़की ने कहा, यह भाई

है मेरा छोटा, यह बोझ नहीं है !

छोटा भाई बोझ नहीं होता । एक कंधे पर छोटे भाई को ले जाना सेवा भी नहीं हो सकता है । यह तो प्रेम का कृत्य है । इसमें कहीं कोई सेवा नहीं है । इस छोटी लड़की को पता भी नहीं है कि वह सेवा कर रही है । जिस दिन सेवा इतनी अनकॉन्शस, इतनी सहज, बिना जाने, बिना पता चले जब सेवा होती है तो वैसी सेवा धर्म है ।

लेकिन वैसी सेवा तभी होती है जब कि भीतर धर्म का उदय हो । भीतर धर्म का जागरण हो तो जीवन सेवा बन जाता है ।

लेकिन इधर उल्टा चल रहा है । इधर समझाया जा रहा है कि तुम बाहर जीवन सेवा का बना लो तो भीतर धर्म का जन्म हो जायेगा । यह सरासर व्यर्थ और गलत बात है । ऐसा कभी नहीं हो सकता । आप लाख सेवा करो, मन धार्मिक नहीं हो जायेगा ।

जीवन में जो क्रान्तियां हैं, वे बाहर से भीतर की तरफ नहीं होती हैं । जीवन की सारी क्रान्तियां भीतर से बाहर की तरफ होती हैं । अगर हम यहां एक दीया जलाएं इस भवन में तो अन्धेरा बाहर निकल जायेगा, यह सच है । लेकिन अगर कोई यह कहे कि तुम अन्धेरा बाहर निकाल दो तो दीया जल जायेगा तो वह बिल्कुल ही फिजूल बातें कह रहा है । आप अंधेरे को बाहर नहीं निकाल सकते हैं, और अन्धेरे को आप कितना ही बाहर निकालने की कोशिश करें, अन्धेरा बाहर नहीं निकलेगा । और निकल भी जाये तो भी दीया नहीं जल जायेगा , दीया जल जाये तो अन्धेरा बाहर निकल जाता है । लेकिन अन्धेरा बाहर निकालने से कोई दीया नहीं जलता है ।

भीतर प्रकाश जले धर्म का तो उसकी किरणें जीवन को, आचरण को सेवा बना देती हैं । लेकिन इस भूल में आप मत रहना कि हम जीवन को सेवा बना लेंगे और भीतर की आत्मा रूपान्तरित हो जायेगी । लेकिन वह बहुत बुनियादी भूल है । और यह बुनियादी भूल इस देश के चरित्र को हजारों साल से विकृत कर रही है । इसको थोड़ा समझ लेना और भी उपयोगी होगा, क्योंकि इस सम्बन्ध में दो प्रश्न और हैं । वे भी इस सन्दर्भ में समझ में आ सकेंगे ।

महावीर को हमने देखा; महावीर का आचरण हमें दिखायी पड़ा । आत्मा तो किसी की दिखायी नहीं पड़ती, आचरण ही दिखायी पड़ता है । आचरण बाहर होता है, आत्मा तो भीतर होती है । सिर्फ व्यक्ति को दिखायी पड़ती है, बाहर से दूसरे को नहीं दिखायी पड़ सकती । मैं भीतर क्या हूं, वह तो नहीं दिखायी पड़ सकता । मेरे बाहर मैं क्या करता हूं, वही दिखायी पड़ सकता है । लेकिन जो भी मैं करता हूं, वह मेरे होने से आता है । मेरे करने से मेरा होना नहीं निर्मित होता, मेरे होने से, मेरी बीइंग से मेरी डूइंग निकलती है । मैं जो हूं, वह मेरे

करने में आता है। लेकिन मेरे करने से मेरी बीइंग, मेरी आत्मा निर्मित नहीं होती।

महावीर को हमने देखा उदाहरण के लिए; उनकी जिन्दगी में दिखायी पड़ी अहिंसा। वे पांव भी फूंक-फूंक कर रखते हैं कि कोई कीड़ी न दब जाये। वे पलक भो ख्याल से झपते हैं कि कोई कीटाणु न मर जाये। वे रात करवट भी नहीं बदलते सोने में कहीं करवट बदलने में कोई कीड़ा-मकोड़ा आ गया हो और दब न जाये। वे अन्धेरे में चलते नहीं, कि कहीं किसी के जीवन को चोट न पहुंच जाये। उनके जीवन में हमें दिखी अहिंसा कि वह फूंक-फूंक कर जी रहे हैं। हमको आचरण दिखायी पड़ गया, महावीर की आत्मा तो दिखायी न पड़ी। आपने महावीर को देखा कि यह आदमी फूंक-फूंक कर चलता है, पानी छान कर पीता है, रात करवट नहीं बदलता। आपने तय किया कि हम भी अहिंसक होंगे, रात करवट नहीं बदलेंगे, पांव फूंक-फूंक कर रखेंगे, पानी छान कर पियेंगे।

आप पिएं पानी छानकर जिन्दगी भर, सारे समुद्र छान डालें और आप पांव फूंक-फूंक कर रखें, और चाहें तो पांव रखें ही मत और करवट मत बदलें, चाहें तो करवट लें ही मत, लेटें ही मत; लेकिन महावीर की आत्मा पैदा नहीं हो जायेगी। लेकिन हजारों संन्यासी महावीर के पीछे इसी नासमझी को दोहराये चले जाते हैं। महावीर के पांव फूंक-फूंक कर रखने के कारण आत्मा का जन्म नहीं हो गया है। आचरण से आत्मा निर्मित नहीं होती, आत्मा से आचरण प्रवाहित होता है।

महावीर ने भीतर आत्मा को जाना है, इसलिए यह आचरण पैदा हुआ है। और हम? हम आचरण करेंगे और आत्मा को जानना चाहेंगे जो कि उल्टा हो गया। उल्टा नहीं हो सकता है। तो हजारों साल से महावीर के पीछे अहिंसक खड़े हो रहे हैं, लेकिन महावीर की सुगन्ध किसी को भी उपलब्ध नहीं हुई। ठीक महावीर जैसे नंगे खड़े हो जाते हैं; नंगे खड़े होने से कोई महावीर नहीं बन जायेगा। लेकिन वे महावीर जैसे बाल-वाल घोंटाकर खड़े हो जाते हैं; महावीर जैसे चलते हैं, महावीर जैसे बैठे हैं। यह सब एक्टिंग है, अभिनय है। इससे कोई महावीर पैदा नहीं हो सकता। यह आचरण का आरोपण है। इसको थोपते चले जाओ, इससे कुछ भी नहीं होगा। महावीर की ऊर्जा इससे पैदा नहीं होगी। ऐसे हजारों संन्यासी हैं महावीर के, लेकिन कहां महावीर की सुगन्ध, कहां वह जीवन, कहां वह ज्योति, कहां वह संगीत? कुछ भी कोई खबर नहीं देता है। नहीं मिल सकती है।

ठीक ऐसा सारे तत्वों के सम्बन्ध में होता है। हम देखते हैं आचरण, और वैसा आचरण करने लगते हैं। गांधी चरखा चलाते हैं। नकल-चोर पीछे बैठकर चरखा चलाने लगेंगे और सोचेंगे कि बन गये गांधी! इतना सस्ता और आसान

नुस्खा होता तो दुनिया में सब कुछ अभी तक ठीक हो गया होता। हां, यह आदमी बिल्कुल धोखे में पड़ गया है। यह बिल्कुल खड़ा हो जायेगा। अभी विनोबा के पास जाएं तो दो-चार उनकी शक्ल के आदमी मिल जाते हैं। ठीक वैसी ही दाढ़ी-वाढ़ी बनाये, कपड़ा-वपड़ा लपेट कर वैसे ही खड़े हो गये हैं। इन नासमझों के कारण जिन्दगी को फायदा नहीं होता है, नुकसान होता है।

नहीं, बाहर की नकल से कभी भी कोई भीतर का असल पैदा नहीं होता है। भीतर का असल कैसे पैदा होता है, वह सवाल है। आचरण से नहीं, भीतर का असली तत्व पैदा होता है समाधि से, ज्ञान से। कल रात मैं आपसे बात करूंगा कि वह ध्यान कैसे पैदा हो सकता है। अभी इतना ही कहना चाहता हूं कि सेवा नहीं है महत्वपूर्ण, महत्वपूर्ण है वह हृदय कि जहां से सेवा प्रवाहित होती है। और अगर वह हृदय न हो तो आप सेवा कर सकते हैं; लेकिन आपकी सेवा हितकर नहीं होगी, अमंगल सिद्ध होगी, अहितकर सिद्ध होगी। और दुनिया में जितने सेवक कम हों इस तरह के, उतनी दुनिया शान्ति से जी सकती है। वे दुनिया को शान्ति से नहीं जीने देते। उन्हें सेवा करनी है।

मैं कोई सेवक नहीं हूं। और मुझे किसी की कोई सेवा नहीं करनी है, अपनी ही कर लूं तो पर्याप्त है। लेकिन अगर आप अपनी ही सेवा कर रहे हैं तो आपकी जिन्दगी में वह सुगन्ध पैदा होगी, जिससे बहुतों की सेवा हो जायेगी। लेकिन उसका कभी आपको पता भी नहीं चलेगा।

तो सचेत रूप से सेवा करने वालों के पक्ष में मैं नहीं हूं।

और आप पूछते हैं कि रचनात्मक कार्य क्या करूंगा?

किस बात को रचनात्मक कार्य कहते हैं आप? किस बात को रचनात्मक कार्य कहते हैं? जो गोरख-धन्धा रचनात्मक कार्यों के नाम से चलता है, उसे रचनात्मक कार्य कहते हैं? यह रचनात्मक कार्य है?

रचनात्मक कार्य है मनुष्य की चेतना को ध्यान में रखना और वह यह कि मनुष्य की चेतना का आविर्भाव कैसे हो, मनुष्य कैसे स्वतंत्र हो, मनुष्य की सोयी हुई आत्मा कैसे जागे, मनुष्य के भीतर जो छिपा हुआ है, वह कैसे प्रगट हो। इसके अतिरिक्त कोई रचनात्मक कार्य नहीं है। और वह प्रगट हो जाये तो हजार-हजार रचनात्मक कार्य जागी हुई चेतना के आसपास संगठित होने शुरू होते हैं, प्रगट होने शुरू होते हैं।

लेकिन हमारी पकड़ में क्षुद्र चीजें एकदम आती हैं। हम इतने मैटीरियलिस्ट हम इतने पदार्थवादी हैं कि हमको यही समझ में आता है। हमको समझ में नहीं आयेगा कि श्री अरविंद भी कोई सेवा कर रहे हैं शांति के लिए बैठकर। हम कहेंगे, क्या सेवा कर रहा है यह आदमी? यह आदमी सेवा नहीं कर रहा है, बैठा है पांडीचेरी के भवन में बन्द होकर, यह क्या सेवा कर रहा है? सेवा

विनोबा जी कर रहे हैं जो कि पैदल चल रहे हैं, गांव-गांव घूम रहे हैं। यह आदमी क्या सेवा कर रहा है, श्री अरविंद ? यह अन्धेरी कोठरी में बैठ कर क्या कर सकता है ?

लेकिन आपको पता नहीं है कि अरविंद जितनी सेवा कर रहा है उतना आपके सेवकों में से कोई भी सेवा नहीं कर रहा है। लेकिन वह जरा फिर खोज की बात है कि अरविंद क्या कर रहा है वहां बैठकर ?

क्या आपको पता है कि विचार की क्रांति क्या है ? क्या आपको पता है कि विचार की तरंगे सारे जगत् को आंदोलित और प्रभावित करती हैं ? क्या आपको पता है कि मैं अपने मौन में बैठकर भी आपके प्राणों को प्रवाहित कर सकता हूं ?

अभी रूस में एक वैज्ञानिक प्रयोग हुआ। क्योंकि अरविंद की बात को बताना मुश्किल होता, लेकिन रूस के वैज्ञानिक प्रयोग को समझना आसान हो जायेगा। फयादेव नाम के एक वैज्ञानिक ने एक बहुत अद्भुत प्रयोग किया है। और रूस में हुआ है, इसलिए और भी महत्वपूर्ण है; क्योंकि रूस तो इस तरह की बातों को मानने को एकदम राजी नहीं होता। फयादेव ने यह प्रयोग किया कि दूर, कितनी ही दूर व्यक्ति हों, विचार की तीव्र तरंगों से उन व्यक्तियों को प्रवाहित किया जा सकता है। प्रभावित किया जा सकता है।

मास्को में बैठकर तिफलिस में, एक हजार मील दूर प्रयोग चलता है। मास्को में फयादेव बैठा हुआ है अपनी प्रयोगशाला में और तिफलिस में विचार की तरंगे भेजता है। सिर्फ विचार से तिफलिस के बगीचे में एक दस नम्बर की सीट पर प्रयोग चलता है। आसपास लोग छिपे बैठे हैं देखने को कि क्या परिणाम होता है ? एक अजनबी आदमी आकर दस नम्बर की सीट पर बैठा है। फोन से खबर की गयी फयादेव को कि दस नम्बर की सीट पर एक आदमी बैठा है; तुम वहां से विचार के द्वारा इसे सो जाने की सलाह दो। फयादेव ने एक हजार मील दूर आंख बन्द करके उस दस नम्बर की सीट पर बैठे आदमी को आंतरिक सुझाव दिया कि तू सो जा ! तीन मिनट के भीतर वह आदमी सो गया।

लेकिन यह भी डर है कि वह संयोग की बात हो कि वह थका-मांदा यात्री सो गया हो। वहां जो लोग छिपे बैठे थे, उन्होंने फोन से खबर की कि अब यह आदमी सो गया है। लेकिन तुम ठीक पन्द्रह मिनट बाद उसे उठा दो तो हम समझेंगे कि तुम्हारे विचार से कुछ हो रहा है। फयादेव ने ठीक पन्द्रह मिनट बाद उस आदमी को एक हजार मील दूर से उठा दिया कि उठ जाओ। वह आदमी चौंक कर उठा। मित्र हैरान हो गये। ठीक पन्द्रह मिनट बाद वह उठा था। एक आदमी ने जाकर पूछा कि आपको कुछ लगा ? उसने कहा, मैं बड़ा हैरान हुआ। जब मैं आया तो मुझे ऐसा लगा कि कोई मुझसे कह रहा है कि सो जाओ, बहुत

थके हुए हो। मैंने समझा कि मैं ही कह रहा हूं। लेकिन अभी अचानक मुझे नींद में आवाज सुनायी पड़ी कि उठ जाओ, इसी वक्त उठ जाओ। और मैं उठ आया हूं।

अमरीका की एक प्रयोगशाला में एक छोटा-सा प्रयोग चलता था। डिलाबार लेबोरेट्री में उन्होंने एक अद्भुत प्रयोग किया। एक आदमी को बहुत ही संवेदनशील कैमरे के सामने बिठाया गया और उससे कहा गया कि तुम बहुत केन्द्रित रूप से मन में कोई विचार करो—किसी एक चीज का। उस आदमी ने आंखें बन्द करके छुरी का विचार किया। वह पांच मिनट तक छुरी का चित्र मन में सोचता रहा। और कैमरे के छोटे प्लेट पर निकालने पर छुरी का चित्र अंकित हो गया।

डिलाबार लेबोरेट्री के इस प्रयोग ने सारी दुनिया को चकित कर दिया कि क्या मन के भीतर सोचे गये विचार का प्रतिबिम्ब भी फोटो कैमरे में पकड़ा जा सकता है ? फयादेव के प्रयोग ने सारे रूस में हवा पैदा कर दी कि यह क्या हुआ ? क्या एक हजार मील दूर बैठा हुआ आदमी अपनी विचार की तरंगों से किसी को प्रभावित कर सकता है ?

मैं आपसे यह कहता हूं, अरविन्द यह प्रयोग कर रहे थे। और हिन्दुस्तान की चेतना को उन्होंने जितना प्रभावित किया है; न गांधी ने और न किसी और ने प्रभावित किया है। लेकिन वह जरा इसोटैरिक है, वह कंस्ट्रक्टिव काम जरा और तरह का है। तो जो लोग बुहारी लगाने को कंस्ट्रक्टिव काम समझते हैं, वे अरविन्द के काम को कंस्ट्रक्टिव नहीं समझेंगे। लेकिन कितना ही बुहारी लगाओ, उससे क्या होता है ?

मनुष्य की चेतना पर असली काम किया जाना जरूरी है। बुद्ध और महावीर रचनात्मक कार्यकर्त्ता नहीं थे। तो अगर रचनात्मकवादियों ने कभी कोई इतिहास लिखा तो बुद्ध, महावीर और जीसस के नाम उसमें नहीं लिखे जायेंगे। वे कहेंगे कि ये सब फिजूल के लोग थे। इन्होंने कोई रचनात्मक कार्य नहीं किया। न तो किसी कोढ़ी के पैर दाबे, न कोई अस्पताल बनाया और न सड़कें साफ कीं और न भंगी कालोनी में निवास किया; ये सारे लोग रचनात्मक नहीं थे। और ये सब फिजूल के लोग थे। और इन्होंने अपना समय खराब किया और लोगों का समय खराब किया।

नहीं, ये रचनात्मक काम करने वाले लोग उस अर्थ में दो कौड़ी के भी नहीं हैं, जिन अर्थों में बुद्ध, जीसस, शंकर और महावीर के काम हैं। लेकिन उस काम को देखने के लिए भी समझ चाहिए, आंखें चाहिए। उसको पहचानने के लिए भी थोड़ी प्रबुद्ध प्रज्ञा चाहिए।

मैं कोई रचनात्मक कार्य में नहीं लगा हुआ हूं, न लगूंगा।

मेरी दृष्टि में विचार की क्रान्ति इस देश की इस समय एकमात्र जरूरत है।

तो सारी चेष्टाओं से कोशिश करूंगा कि सोया हुआ विचार जग जाये सब तरह के शॉक्स दूंगा, सब तरह के धक्के पहुंचाऊंगा, सब तरह से आपको हिलाऊंगा कि नींद न टूट जाये। आप नाराज भी होंगे। क्योंकि नींद किसी की भी तोड़ो तो वह नाराज होता है। आप क्रोध से भी भर जायेंगे। आप मुझपर पत्थर भी फेंक सकते हैं, मुझे गालियां भी दे सकते हैं कि हम सो रहे हैं आराम से, सपना देख रहे हैं सुखद और यह आदमी आकर जगाये चला जा रहा है।

लेकिन, इस समय देश को तीव्रता से जगाने वाले कुछ लोगों की जरूरत है। इस नींद से भरे देश में अभी किसी रचनात्मक काम से कुछ न होगा। अभी एक ही काम की जरूरत है कि देश की चेतना जागे। और दूसरे काम की जरूरत है कि देश के पास जो लाखों वर्षों की जंजीरें इकट्ठी हो गयी हैं अतीत की, उनको नष्ट करने के लिए कोई भी तीव्र, तीव्रतम आन्दोलन हो कि उन सब जंजीरों को तोड़कर मुल्क की चेतना को हम नये जगत् के साथ खड़ा कर दें। लेकिन नहीं, हमारे नेता, हमारे धर्मगुरु, हमारे समाज-सुधारक, वे सब पीछे की कड़ियों से बांधने की कोशिश करते हैं। वे हमें मुक्त नहीं होने देते वहां से।

क्या आपको पता है रूस ने पचास वर्षों में जो काम किया है, वह हम एक हजार वर्षों से नहीं कर सकते। लेकिन रूस ने क्यों किया यह काम? क्या आपको पता है, अमरीका ने तीन सौ वर्षों में जो काम किया है, वह तीन हजार वर्षों की कोई कौम नहीं कर सकती। क्या कारण है, लेकिन?

एक ही कारण है जो कि ख्याल में नहीं आता है और जिस दिन इस देश के ख्याल में आ जायेगा, हम भी उतना ही विकास करने में तत्काल समर्थ हो जायेंगे। और वह कारण यह है कि रूस ने उन्नीस सौ सत्तरह की क्रान्ति के बाद अपने अतीत से सारे सम्बन्ध विच्छिन्न कर लिए, एकदम से सम्बन्ध विच्छिन्न कर लिए। अतीत जैसे खत्म हो गया; भविष्य रह गया, वर्तमान रह गया, अतीत जैसे नहीं रहा। उन्नीस सौ सत्तरह के बाद एक अन्तराल पैदा हो गया; नहीं है कोई अतीत, बस है भविष्य, बस है वर्तमान। और अमरीका के पास तो कोई अतीत है ही नहीं। उनकी तो कौम की उम्र ही तीन सौ वर्ष है। उनके साथ अतीत नहीं है, अतीत का बोझ नहीं है। इसलिए अमरीका की सबसे नयी कौम सबसे ज्यादा समृद्ध, सबसे ज्यादा विकासशील, सबसे ज्यादा जवान हो गयी। उसका और कोई राज नहीं है, उसके पीछे मुर्दों का बोझ नहीं है। हजारों वर्ष की लाशें नहीं हैं, कब्रिस्तानों की लम्बी कथा नहीं है। उसमें अटकाव नहीं है। भविष्य है सिर्फ। और भविष्य की तरफ चेतना को विकास का मौका है।

भारत के सामने एक ही रचनात्मक काम है कि अतीत से कैसे भारत का सम्बन्ध क्षीण हो, कैसे भविष्य की तरफ भारत की आंखें उन्मुख हों।

लेकिन हमारे समझदार लोग समझते हैं कि हमारा अतीत तो सतयुग था,

स्वर्णयुग था—राम हुए, बुद्ध हुए, कृष्ण हुए। हमारे सब तीर्थंकर, सब अवतार हो चुके। हमारी सब श्रेष्ठ रचनाएं हो चुकीं, गीता लिखी जा चुकी, बुद्ध-वचन कहे जा चुके, रामायण हो गयी, महाभारत हो गया। सब हो चुका हमारा। हमारा भविष्य? भविष्य हमारा कुछ भी नहीं है। सब अतीत है।

क्या आपको पता है, बूढ़ा आदमी हमेशा अतीत की तरफ देखता है, क्योंकि भविष्य में मौत होती है, और कुछ भी नहीं होता। बच्चे हमेशा भविष्य की तरफ देखते हैं, क्योंकि पीछे कुछ भी अतीत नहीं होता। बच्चे की जो चेतना है, वह हमेशा भविष्योन्मुखी होती है। बूढ़े की जो चेतना है, वह हमेशा अतीतोन्मुखी होती है। बूढ़ा हमेशा पीछे की तरफ देखता है। वह हमेशा पीछे जो हो चुका—जवानी के गीत, जवानी के प्रेम, बचपन की स्मृतियां, वह उनका ही गुणगान करता रहता है, वह उन्हीं में खोया रहता है। उसके आगे-आगे कुछ भी नहीं है।

ध्यान रहे, जो कौम आगे देखना बन्द कर देती है, उस कौम की आत्मा भी बूढ़ी हो जाती है। बूढ़े होने का लक्षण यह है—पीछे देखना। युवा होने का, विकासमान होने का लक्षण यह है—आगे देखना। लेकिन हमारी गर्दन तो पीछे मुड़ी है, और इतने दिनों से मुड़ी है, कि उसकी हड्डियां मजबूर होकर जुड़ गयी हैं, पैरालाइज्ड हो गयी हैं। अब आगे की तरफ हम देख नहीं सकते, पीछे मुड़े हुए हैं। जैसे किसी कार में पीछे की तरफ लाइट लगा हो और आगे चल रही हो गाड़ी, वैसी हमारी स्थिति हो गयी है। वह तो भगवान बहुत नासमझ है हिन्दुस्तान के लिए। अगर उसमें थोड़ी भी अक्ल हो तो उसे हमारी आंखें खोपड़ी के पीछे लगानी चाहिए। आगे लगाने की कोई जरूरत नहीं है। आगे आंखों की कोई आवश्यकता ही नहीं है। आंखें पीछे होनी चाहिए उस रास्ते को हमें देखने में बड़ा मजा आता है जो रास्ता गुजर चुका और जिस रास्ते पर अब कभी भी गुजरना नहीं हो सकता है। उड़ती हुई धूल को ही देखते रहते हैं पीछे। पर आपको पता नहीं है।

पीछे लौटना असम्भव है। लेकिन गांधीजी कहते हैं, रामराज्य चाहिए। पीछे लौटना इम्पॉसिबिलिटी है कोई कभी पीछे नहीं लौट सकता। समय बचता नहीं है पीछे जाने को; एक क्षण पीछे नहीं लौटा जा सकता। हमेशा आगे ही जाना होता है। जाने का अर्थ है आगे जाना। लेकिन पीछे की याद की जा सकती है। और जितनी ज्यादा आप याद करेंगे पीछे की, उतना आगे चलने वाले कदमों में बाधा पड़ेगी। क्योंकि पीछे की याद करने वाला मन आगे चलने वाले कदमों से टूट जाता है; उसमें विसंगति पैदा हो जाती है। उसमें जोड़ नहीं रह जाता है। आगे चलने वाला मन भी चाहिए आगे चलने वाले पैरों के लिए। पैर आगे चल रहे हैं हिन्दुस्तान के, मन पीछे चल रहा है। यह विसंगति हिन्दुस्तान के प्राणों को जड़ किये दे रही है, नष्ट किये दे रही है।

नहीं, चित्त को ले जाना है आगे।

एक विध्वंस की जरूरत है। यह शब्द बहुत कठोर मालूम पड़ेगा। लेकिन हमें पता ही नहीं है कि जो विध्वंस की क्षमता खो देते हैं, वे सृजन की क्षमता भी खो देते हैं। विध्वंस का मतलब सिर्फ विध्वंस नहीं होता। विध्वंस का मतलब होता है तोड़ना, ताकि बनाया जा सके। लेकिन क्योंकि हमने तोड़ने की हिम्मत खो दी है, इसलिए हमें बड़ा अच्छा लगता है, जब कोई कहता है कि रचनात्मक कार्यक्रम चाहिए। तब हम बड़े प्रसन्न होते हैं। लेकिन कभी आपने देखा है कि किसी ने कहा कि विध्वंसात्मक कार्यक्रम चाहिए। हमें रचनात्मक कार्यक्रम बड़ा अच्छा लगता है।

लेकिन रचना कौन कर सकते हैं ? वे जो तोड़ सकते हैं।

मैंने सुना है, एक गांव में बहुत पुराना चर्च था। वह इतना पुराना था कि उस चर्च के भीतर कोई भी जाने से डरता था। वह कभी भी गिर सकता है। हवाएं चलतीं थीं तो चर्च कंपता था। आकाश में बादल गरजते थे तो चर्च कंपता था। जोर का तूफान आया था। तो लगता था, अब गिरा, अब गिरा। अन्धेरी रात में जरा आवाज होती थी तो गांव के लोग बाहर निकल कर देखते थे कि चर्च गिर तो नहीं गया ? अब ऐसे चर्च में कौन प्रार्थना करने जाये। प्रार्थना करने वाले लोगों ने जाना बन्द कर दिया। तो चर्च की कमेटी ने बहुत विचार किया कि क्या करें। फिर चर्च की कमेटी बुलायी गयी। पादरी और कमेटी और ट्रस्टी सब इकट्ठे हुए। वे भी चर्च के भीतर इकट्ठे नहीं हुए। वे भी चर्च के बाहर इकट्ठे हुए, बाहर उन्होंने बैठक रखी, क्योंकि वहां भीतर कौन जाता ? और नेता तो हमेशा अनुयायियों से ज्यादा होशियार होते हैं। जब अनुयायी तक नहीं जा रहे हैं तो नेता कैसे जा सकता है ?

और यह तो आपको पता है कि नेता हमेशा अनुयायी के पीछे चलते हैं। दिखायी आगे पड़ते हैं, चलते हमेशा पीछे हैं। क्योंकि कोई नेता इतना हिम्मतवर नहीं होता कि अनुयायी के आगे चले। क्योंकि नेता की जान अनुयायी के वोट और समर्थन पर निर्भर रहती है। अगर अनुयायी पीछे से खिसक जाये तो नेता की जान निकल गयी। नेता की अपनी कोई जान होती है ? अनुयायियों को देखकर चलना पड़ता है। जब अनुयायी तक भीतर नहीं आते तो नेता कैसे भीतर आ सकते हैं ? हालांकि नेता गांव में जाकर लोगों को समझाते थे कि चर्च में जरूर आना चाहिए। और गांव के लोग मन ही मन में हंसते थे कि बड़ी अद्भुत बात है। नेता खुद कभी नहीं जाते, लेकिन हमको समझाते हैं। जैसे हिन्दुस्तान में होता है सब जगह। नेता समझाते हैं, यह करना चाहिए, वह करना चाहिए। जनता सुनती है और ताली पीटती है और समझती है कि नेता भी नहीं करते हैं यह और हमसे कहते हैं, करना चाहिए। लेकिन जनता समझती है

कि ठीक है, कभी हम भी नेता हो जायेंगे तो हम भी मंच पर चढ़कर यहीं कहेंगे कि यह करना चाहिए। करना-वरना तो किसी को है नहीं। एक पाखण्ड, एक धोखा चल रहा है पूरे देश में। वह उस गांव में भी चलता होगा।

कमेटी बाहर बैठी, और कमेटी सोचने लगी, क्या किया जाये। कोई प्रार्थना करने नहीं आता। बड़े दुख से उन्होंने एक प्रस्ताव पास किया कि पुराने चर्च को गिराना चाहिए। सर्व सम्पत्ति से यह तय किया। लेकिन पुराने को गिराने में बड़ा दुख होता है। मुर्दा लोग पुराने को गिरा ही नहीं सकते। मरे-मराये लोग इतना डरते हैं पुराने को गिराने से ! लेकिन डरते क्यों हैं ?

डरते इसलिए हैं कि नये को बनाने की क्षमता नहीं है। पुराना गिर गया तो फिर क्या होगा ? डरते हैं इसलिए। जिनको नये को बनाने की क्षमता है, वे पुराने को गिराने से कभी भी नहीं डरते। बल्कि वे आतुर होते हैं कि जल्दी पुराना गिरे तो नये का निर्माण किया जा सके। बहुत डरे थे, बहुत दुखी थे। फिर दूसरा प्रस्ताव किया कि नया चर्च बनाना जरूरी है। सर्व सम्पत्ति से उसे भी स्वीकार किया। फिर तीसरा प्रस्ताव जल्दी से स्वीकार किया कि नया चर्च ठीक पुराने जैसा बनायेंगे। नक्शा वही रहेगा, जरा भी फर्क नहीं करेंगे। नींव पुरानी रहेगी, नीव नहीं डालेंगे। नींव तो पुरानी ही रखेंगे, क्योंकि अपने बाप-दादों ने जी नींव डाली थी, उसको हम कैसे बदल सकते हैं ? बाप-दादे तय कर गये हमेशा के लिए नींव, अब कोई नहीं बदल सकता है उसको। बाप-दादे भविष्य को भी तय कर गये। अपने वक्त को तय करते तो ठीक था, लेकिन आने वाले लोगों की आत्मा को भी कर गये। नींव डाल गये, अब उस नींव पर ही मकान बनेगा। उन्होंने कहा, हम पुरानी नींव पर ही बनायेंगे। और ध्यान रहे, पुराने दरवाजे, पुरानी ईंटें, पुराना कूड़ा-कबाड़ सबका उपयोग करेंगे। क्योंकि वह साधारण कूड़ा-कचरा नहीं, वह सैक्रेड है, पवित्र है। पूर्वजों के द्वारा लगायी गयी ईंटें हैं। साधारण ईंटें नहीं हैं। हम सबका मकान का सामान वही लगायेंगे।

उसी जगह मकान बनायेंगे, उसी नींव पर बनायेंगे। सर्व सम्पत्ति से बड़ी खुशी से यह भी उन्होंने स्वीकार किया।

और फिर चौथा प्रस्ताव स्वीकार किया, वह भी सर्व सम्पत्ति से, कि जब तक नया न बन जाये, तब तक पुराने को गिरायेंगे नहीं।

बस, वह पुराना चर्च पड़ा है वहीं का वहीं। अभी भी हवाएं आती हैं, अभी भी प्राण कंपते हैं। वह नया कभी नहीं बनेगा। वह नया कैसे बन सकता है ? कहीं पुराने के आधार पर दुनिया में नया बना है ? कहीं पुराने के आधार पर दुनिया में नया बना है ? यह ऐसे ही है, जैसे एक आदमी बूढ़ा होकर मर जाये और भगवान उसमें नयी आत्मा डाल दें। नहीं, पुराने शरीर में नहीं डाली जा सकती। नयी आत्मा फिर नया शरीर ग्रहण करती है। फिर नया बच्चा, फिर नयी आत्मा

पुराने शरीर को दफना देना पड़ता है। पुराने में पुराने के आधार पर निर्मित नहीं होता। बल्कि पुराने के आधार पर नया निर्माण करने का वह जो पागल मोह है, उसकी वजह से नया कभी निर्मित नहीं हो पाता नहीं बना वह नया चर्च। नहीं बनेगा।

ऐसा ही भारत में हो रहा है। हजारों साल से पुराना इकट्ठा होता चला जाता है। वह इतना भारी हो गया है। आज की भारत की आत्मा एकदम बोझिल हो गयी है, उठ नहीं सकती—जैसे एक-एक आदमी के ऊपर हजारों मुर्दे बैठे हों, उसकी खोपड़ी पर मुर्दा का भार लदा हो, अम्बार लगा हो। उसके कारण हमने नये निर्माण की क्षमता खो दी।

दूसरा महायुद्ध हुआ, जर्मनी तहस-नहस हो गया। रूप के नगर बर्बाद हो गये। जापान मिट्टी में मिल गया। लेकिन जाकर देखो अब। पता भी नहीं चलेगा कि दूसरा महायुद्ध कभी हुआ। सब फिर निर्मित हो गया। वे जो बर्बाद हो गये, फिर आबाद हो गये—और पहले से ज्यादा अच्छे।

मेरे एक मित्र ने जापान से मुझे लिखा कि नागासाकी और हिरोशिमा तो बिल्कुल मिट्टी हो गये थे, बर्बाद हो गये थे। जहां आज से बीस साल पहले देख कर कोई कहता कि अब कभी यहां पौधे में अंकुर नहीं निकलेगा, अब कभी कोई फूल नहीं खिलेगा, अब कभी यहां कोई प्राण आबाद नहीं हो सकेंगे, अब यहां कोई बस्ती नहीं बसेगी, सब जलकर राख हो गया है, वहां बस्तियां आबाद हो गयी हैं। और उन बस्तियों में रहने वाले लोग खुशी से यह कहते हैं कि बड़ा अच्छा हुआ, एटम गिर गया, पुराना सब समाप्त हो गया। सब नया हो गया; नये रास्ते हैं, नये मकान हैं, नये स्कूल हैं। पुराना कबड़ा-कबाड़ सब एकदम नष्ट हो गया, जिसको नष्ट करना बहुत मुश्किल था। सारा सब नया हो गया। अद्भुत लोग हैं। जवान मालूम होते हैं।

और हम बूढ़े हैं, हमारी बड़ी अद्भुत हालत है। महाभारत के बाद कोई युद्ध ही नहीं हुआ है हमारे यहां। लेकिन अभी भी उसका जो नुकसान हुआ है, वह जारी है। वह बदलता नहीं। महाभारत के युद्ध में जो मकान गिर गया होगा, खोज करना, वह अभी भी यहां गिरा हुआ पड़ा होगा। उसमें कोई फर्क नहीं हुआ होगा। क्योंकि महाभारत में युद्ध हो गया है न, उसका दुख हम अभी तक झेल रहे हैं। अब उस युद्ध से कभी छुटकारा होने वाला नहीं है। अब हम हमेशा के लिए बर्बाद ही रहेंगे, महाभारत में युद्ध हुआ न। उसी वजह से सब तकलीफ चल रही है। वह कब हुआ युद्ध ?

यह पुराने का मोह नये के निर्माण की क्षमता का विनाश करता है। नये का आग्रह और नये का मोह चाहिए। नये का आमंत्रण चाहिए, नये की खोज चाहिए।

लेकिन नहीं, अगर कोई मुसीबत आ जाये तो खोलो गीता और निकालो उत्तर ! अजीब बात है। कोई हमने पागल होने का ठेका ले रखा है ? जिन्दगी आज है, समस्या आज खड़ी है। बेचारे कृष्ण को क्यों परेशान कर रहे हो ? हमारे पास कोई बुद्धि नहीं है ? हम फेस नहीं कर सकते किसी समस्या को। गीता-माता में खोजने जाते हैं सब कुछ। कृष्ण भी होंगे कहीं तो सिर ठोंकते होंगे आकाश में, कहां से इन मूढ़ों के बीच मैंने उपदेश दिया ? अभी तक पीछा पकड़े हुए हैं। कृष्ण ने तो जिन्दगी में एक समस्या खड़ी की अर्जुन के सामने, दिया उत्तर। लेकिन वह उत्तर सबको बांधने वाला नहीं है। लेकिन हम उत्तरों से बंध गये हैं।

और जब भी मुसीबत आये, मुसीबत हमेशा नयी होती है। परिस्थितियां हमेशा नयी होती हैं। वे हमेशा नया जवाब मांगती हैं। और हमारे पास जवाब रेडीमेड, पुराने हैं। नयी परिस्थिति, पुराना जवाब, कोई तालमेल नहीं बैठता है। हम हारते चले जाते हैं।

मैंने सुना है, जापान के एक गांव में दो मन्दिर थे। एक दक्षिण का मन्दिर कहलाता था, एक उत्तर का मन्दिर कहलाता था। दोनों मन्दिरों में झगड़ा था; जैसा कि मन्दिरों में होता है। मन्दिरों में दोस्ती तो कभी होती नहीं, झगड़े ही होते हैं। वे अड्डे ही झगड़े के हैं। और जब तक रहेंगे जमीन पर, तब तक झगड़े जारी रहेंगे। बड़ा झगड़ा था उत्तर के और दक्षिण के मन्दिरों में। इतना झगड़ा था कि पुरोहित एक दूसरे को देखते भी नहीं थे। रास्तों पर से भी नहीं गुजरते थे कि एक दूसरे का मुकाबला न हो जाये।

दोनों पुरोहितों के पास दो छोटे बच्चे थे, सेवा-टहल के लिए, काम-धाम के लिए। दोनों ने समझा रखा था अपने-अपने बच्चे को कि कभी भी भूल के भी दूसरे मन्दिर के बच्चे से बात मत करना। वे हमारे दुश्मन हैं। लेकिन बच्चे तो बच्चे होते हैं, बूढ़े बिगाड़ने की कोशिश भी करते हैं तो एकदम से नहीं बिगाड़ पाते हैं। थोड़ा वक्त लग जाता है। बच्चे कहीं एकदम बूढ़ों की मानते हैं ? और बच्चे अगर बूढ़ों की मान लें तो समझना बच्चे से वे बूढ़े हो गये हैं, अब बच्चे नहीं रहे। वे बच्चे भी नहीं मानते थे। कभी-कभी वे मौके-बेमौके अकेले में मिल जाते थे तो बात कर लेते हैं। बच्चों को भी पुरानी दुश्मनी देने में, ट्रांसफर करने में थोड़ा समय लगता है बूढ़ों को—समझाने में कि तुम हिन्दू हो, तुम मुसलमान हो, तुम इस मन्दिर के हो, तुम उस मन्दिर के हो। बच्चों को कुछ पता नहीं होता। भगवान इस तरह की बातें सिखाकर भेजता नहीं है। उन बच्चों को नहीं लगता था कि झगड़ा क्या है मन्दिरों में।

एक दिन उत्तर के मन्दिर का बच्चा जा रहा था रास्ते से; दक्षिण के मन्दिर का बच्चा भी वहां से निकला। उसने पूछा कि दोस्त, कहां जा रहे हो ? दक्षिण

का पुजारी छत पर से देख रहा था कि दोनों बात कर रहे हैं तो उसको आग लग गयी। हिन्दू-मुसलमान बात करें तो पुजारी को बड़ी आग लग जाती है, पता है आपको ? पुरोहित को बड़ी आग लग जाती है, धर्मगुरु के प्राण जलने लगते हैं, क्योंकि उसका धन्धा टूटा। अगर हिन्दू-मुस्लिम में बात हो गयी तो उसका धन्धा गया। उनमें झगड़ा रहे तो धन्धा चलता है, नहीं तो धन्धा नहीं चलता है। यह धन्धा धर्म का पूरे का पूरा झगड़े पर खड़ा है, नहीं तो यह चल नहीं सकता। पुजारी नीचे आया, उसने उस लड़के को बुलाया कि तुमने क्या बात की ? उस लड़के ने कहा, आज तो मैंने बात की और मैं हार भी गया। तो मुझे बड़ा दुख है। मैंने उस लड़के को पूछा कि दोस्त, कहां जा रहे हो ? उसने कहा, जहां हवाएं ले जायें। यह मेरी समझ में नहीं आया कि अब और क्या बातचीत आगे चलाऊं।

उस पुजारी ने कहा, हमारे इस मन्दिर का कोई आदमी कभी उस मन्दिर से नहीं हारा। यह इतिहास में पहली घटना घटी है कि तू हार कर आया, यह बहुत बड़ी बात है। उसको उत्तर देना जरूरी है, उसको हराना पड़ेगा। यह हमारी इज्जत का सवाल है, यह हमारी पुरखों की इज्जत का सवाल है। यह हजार साल पुराना झगड़ा है। कल तू फिर जाना और उससे पूछना कि कहां जा रहा है और वह कहे कि जहां हवाएं ले जायें तो पूछना कि अगर हवाएं बंद हों तो, कहीं जाओगे कि नहीं ? तब वह भी ठप रह जायेगा।

दूसरे दिन लड़का उत्तर तैयार करके गया। और आप पक्का समझ लेना, जो उत्तर तैयार करके जाते हैं उनके पास बुद्धि कभी नहीं होती है। क्योंकि तैयार उत्तर हमेशा मिडियॉकर माइंड का लक्षण है, क्षीण बुद्धि का लक्षण है। बुद्धिमान आदमी को सवाल सामने खड़ा होता है, उत्तर आता है। आना चाहिए। तैयार उत्तर का क्या मतलब होता है ? जब अभी सवाल ही नहीं उठा तो उत्तर कैसे हो सकता है ? लेकिन हम सभी उत्तर तैयार करने वाले लोग हैं। वह लड़का भी उत्तर कण्ठस्थ करके बिल्कुल चला गया कि पूछूंगा आज। खड़ा रहा रास्ते पर; निकला वह लड़का। पूछा, कहो दोस्त कहां जा रहे हो ? लेकिन वह लड़का बड़ा बेईमान था। उसने कहा कि जहां पैर ले जायें। अब बड़ी मुश्किल हो गयी। बंधा हुआ उत्तर, वह गीता-माता का उत्तर था। अब क्या होगा ? अब वह फिर खड़ा रह गया। गुरु ऊपर से देखता था, वह फिर हार गया। लौट कर आया तो पूछा क्या हुआ ? उसने कहा, वह लड़का तो बहुत बेईमान मालूम होता है। बदल गया वह तो। उस पुजारी ने कहा, उस मन्दिर के लोग सदा से बेईमान रहे हैं। उनका कोई भरोसा नहीं है। सुबह कुछ कहेंगे, सांझ कुछ कहने लगते हैं। लेकिन उसे हराना जरूरी है। उसने क्या कहा ? गुरु ने पूछा। वह लड़का तो कहने लगा, जहां पैर ले जायें। अब मैं क्या कहता, उत्तर तो तैयार था। उस उत्तर की कोई संगति न थी। उसने कहा, कल फिर से पूछना। जब वह लड़का कहे कि जहां पैर ले जायें, तो कहना, भगवान न करे कि लंगड़े हो जाओ। अगर लंगड़े हो जाओगे तो कहीं जाओगे कि नहीं। वह लड़का खुश हुआ, लेकिन फिर भी उसे पता नहीं था कि फिर वही भूल कर रहा है कल वाली। फिर तैयार उत्तर ! दूसरे दिन वह फिर खड़ा हो गया रास्ते पर जाकर। उत्तर तैयार है, घोख रहा है मन में। आया है लड़का दूसरे मन्दिर का, पूछा—कहां जा रहे हो ? उसने कहा, सब्जी लेने बाजार जा रहा हूं।

तैयार उत्तर हमेशा फिजूल हो जाते हैं। और जिन कौमों के पास उत्तर तैयार हैं, वे सारी कौमें नपुंसक हो जाती हैं। जिन्दगी मांगती है सीधा एन्काउंटर, जिन्दगी मांगती है मुकाबला। जिन्दगी कहती है आओ, नयी हैं परिस्थितियां, खड़ी करो अपनी चेतना को; नयी परिस्थितियों का उत्तर दो। और नयी परिस्थितियों का उत्तर तभी दिया जा सकता है, जब पुराने उत्तर मन पर बोझिल न हों।

लेकिन यहां मुल्क का सारा चित बोझिल है। महात्मा, साधु, संन्यासी, तीर्थंकर, अवतार इतने हो चुके हैं हमारे, और वे सब उत्तर दे गये हैं। और सबके उत्तर हमारे सिर पर बैठे हुए हैं। हमारा अपना कोई उत्तर नहीं है। हमारा अपना कोई प्रेजेंस, हमारा कोई वर्तमान व्यक्तित्व नहीं है। हमारी कौम की आज कोई वर्तमान आत्मा नहीं है। और यह सारी आत्मा सिर्फ रटे हुए उत्तर दोहरा रही है। इसलिए हम दुनिया में पिछड़ते चले जाते हैं, रोज पिछड़ते चले जाते हैं। और जब पिछड़ जाते हैं, तब भी हम अपनी किताब में से सोचते हैं कि जरूर हमने कुछ गलत याद कर लिया होगा। किताब तो गलत हो नहीं सकती। फिर उसी किताब में खोज के नयी व्याख्या निकालते हैं कि नहीं, यह मतलब रहा होगा, इसीलिए हार गये।

और जिन्दगी रोज बदलती जाती है, जिन्दगी बड़ी बेईमान है। जिन्दगी रुकती नहीं, जिन्दगी ठहरी नहीं है, जिन्दगी भागती चली जाती है। जैसे गंगा रोज बदल रही है। जो पानी कल था गंगा में, वह आज नहीं है। जो अभी था, वह अभी नहीं है। हेराक्लतु ने कहा है कि एक ही नदी में दुबारा उतर नहीं सकते—यू कैन नॉट स्टेप इन दि सेम रिवर ट्वाइस। उसने ठीक कहा है; जिन्दगी की नदी में भी दुबारा नहीं उतर सकते हो। जो होने को था, वह हो चुका। जो नहीं हुआ है, वह होगा। इसलिए जो हो चुके हैं उत्तर, वे उसके लिए जो नहीं हुए हैं कारगर नहीं होंगे।

इसलिए भारत पुराना पड़ता जाता है; क्योंकि उत्तर पुराने हैं उसके पास।

कब छुटकारा होगा हमारा शास्त्रों से ? कब छुटकारा होगा अतीत से ? कब मुक्त होंगे हम पीछे से ? और कब हम जागेंगे और देखेंगे भविष्य को ?

इसका मतलब यह नहीं है कि मैं कहता हूं कि गीता मत पढ़ना । इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कहता हूं कि रामायण मत पढ़ना । इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कहता हूं कि गांधी को मत समझना । इसका यह मतलब है कि समझना, पर उत्तर किसी के कंठस्थ मत करना । उत्तर अपने आने देना और जैसा युग, जैसा समय और जैसी परिस्थिति है, उसके अनुकूल अपने चित्त को दर्पण बनाना कि वह हर उत्तर ला सके, हर उत्तर ला सके । बैलगाड़ियों के जमाने में दिये गये उत्तर अंतरिक्ष-यान के जमाने में सही साबित नहीं हो सकते । लेकिन कुछ लोग जिद् करेंगे कि हम बैलगाड़ी के जमाने से आगे नहीं जायेंगे, हमारे पुरखों ने बैलगाड़ियों में बैठकर उत्तर दिये थे, हमने तो कसम खा ली है कि हम पुरखों के आगे नहीं जायेंगे । हमने तो लक्ष्मण-रेखा खींच दी है, उसके आगे सीता, अब मत निकलना । सारे मुल्क को सीता बनाये हुए हैं ये पुरखे और लक्ष्मण-रेखा खींचे हुए हैं कि आगे मत जाना । इससे आगे जाओगे तो बड़ा खतरा हो जायेगा । और देखो, सीता गयी थी तो कितने खतरे में पड़ गयी थी । इसलिए जाना मत आगे रेखा से ।

सारी दुनिया सब रेखाओं को छोड़कर अंतरिक्ष की यात्राओं पर निकल जायेगी और तुम पिछड़ जाना इस जमीन पर । तुम इसी गन्दी जमीन पर रह जाना । और न मालूम सारी दुनिया अंतरिक्ष पर कितनी दूर-दूर के लोगों को खोजेगी, सत्यों के न मालूम कितनी अनजान पर्तें उठायेगी, न मालूम सत्य की कितनी प्रतिमाओं को उघाड़ेगी, न मालूम कितने दुस्साहस के काम करेगी ? न मालूम कितने एडवेंचर करेंगे दूसरी दुनिया के बच्चे दूसरे मुल्कों के बच्चे ? और हमारे बच्चे ? हमारे बच्चे क्या कर सकते हैं ? हनुमान जी के मंदिर पर नारियल फोड़ेंगे । क्या करेंगे ? जब तुम चांद-तारे पर चले जाना दूसरे मुल्कों के लोगों, तब भी हमारे बच्चे हनुमान जी के मंदिर पर नारियल फोड़ते रहेंगे और किसी सड़क के किनारे बैठे बेवकूफों से हाथ की रेखाएं दिखलाते रहेंगे और ताबीज बांधते रहेंगे । क्या हमारे बच्चे यही करते रहेंगे ?

यह बहुत हो चुका । यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है । यह नहीं होना चाहिए । यह नहीं होने दिया जा सकता है । लेकिन कौन रोकेगा ? कौन इस धारा को तोड़ेगा ? कौन इस बंधे प्रवाह को मिटायेगा ? कौन इन जंजीरों को तोड़ेगा ? मन बहुत शंकित हो उठता है । कौन करेगा यह ?

लेकिन एक आशा बंधती है, एक आशा बंधती है कि शायद वक्त आ गया है कि हमारी चेतना इसके लिए तैयार हो । और वक्त शायद इसलिए आ गया है कि या तो हमें तैयार होना होगा या हमें मिट जाना होगा । दो के अतिरिक्त तीसरा कोई उपाय नहीं रहा है । शायद इतने दबाव में, इतने प्रेशर में, मिटने की स्थिति में शायद हमें होश आ जाये, शायद हम जाग जाये, शायद हम आंख

खोलकर देखें कि दुनिया कहां चली गयी, इतिहास कहां चला गया ? हम कंटेम्पोरेरी नहीं हैं, सम-सामयिक नहीं हैं ।

इस भूल में मत रहना कि हम बीसवीं सदी में रह रहे हैं । हम बीसवीं सदी में नहीं रह रहे हैं । हम कोई दस सदियां पीछे हैं । हम दसवीं सदी में होंगे । और हमारे बीच भी जो दसवीं सदी में होंगे, वे बड़े प्रोग्रेसिव मालूम पड़ेंगे; क्योंकि हमारे बीच पांचवीं सदी और पहली सदी के लोग भी हैं । हम इस जगत् में आज के काल में कंटेम्प्रेरी नहीं हैं और इसलिए हमें जितनी पिछड़ी बात हो उतनी ज्यादा अपील करती है जिसका कोई हिसाब नहीं है । क्योंकि हमारा चित्त पिछड़ा हुआ है ।

इसलिए अगर विनोबा पैदल चलते हैं तो हमारा हृदय गद्‌गद् हो जाता है कि धन्यभाग, कितना अच्छा किया जा रहा है । वे अन्तरिक्ष यानों पर यात्रा करेंगे और तुम पैदल चलने वाले महात्मा की इसलिए प्रशंसा करोगे कि वह पैदल चलता है । पिछड़ जाओगे, मर जाओगे, बच नहीं सकोगे । भविष्य तुम्हारे साथ खड़ा नहीं होगा । कोई पैदल चले इसकी खुशी है, मजे की बात है । फायदे की बात है विनोबा के लिए पैदल चलना, स्वास्थ्यपूर्ण है, लेकिन पैदल चलने का आदर दुर्भाग्यपूर्ण है । वह आदर गलत है, वह पिछड़ेपन का आदर है । जिन्दगी को नये-नये रास्तों पर ले जाने का द्वार उससे नहीं खुलता ।

यह हमारी कठिनाई कब छूटेगी ?

एक ही रास्ता दिखता है कि लोगों के मन को झकझोरा जाये, लोगों को हिलाया जाये, उनकी नींद तोड़ी जाये, उनको चोट की जाये कि शायद चोट से वे तिलमिला उठें । लेकिन कुछ लोग इतने मर गये हैं कि चोट ही नहीं लगती । वे तिलमिलाते भी नहीं हैं । वे गुस्से में भी नहीं मरते, ऐसी कुछ मौत आ गयी है । गुस्से में भी मर जाये तो भी कुछ हो जाये । इसकी जरूरत है । वह मैं कर रहा हूं । जो मुझे रचनात्मक मालूम पड़ता है, वह मैं कर रहा हूं । जो मुझे सेवा मालूम पड़ती है, वह मैं कर रहा हूं ।

लेकिन सेवा के नाम से और रचना के नाम से जो सब चल रहा है, वह मैं नहीं कर रहा हूं । नहीं कर रहा हूं, इसलिए कि उसे न मैं सेवा मानता हूं और न रचना मानता हूं ।

विचार इस देश में जग जाये, इसके लिए जो भी किया जा सकता है, वह सब किया जाना जरूरी और अत्यन्त आवश्यक है ।

ये थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं । मेरी बातों को इतना प्रेम और शान्ति से सुना, इससे बहुत अनुगृहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें ।

बड़ौदा, दिनांक १४ फरवरी १६६६

११. गांधीवाद ही नहीं, वाद मात्र के विरोध में हूं

प्रश्न—आपके प्रवचनों से गुजरात में एक हलचल मच गयी है । कृपया इस सम्बन्ध में आप खुलासा करें—जैसे गांधीजी के बारे में या और किसी व्यक्ति के बारे में—हालांकि न आपने गांधीजी की निन्दा की है, और न ही क्राइस्ट की । फिर कुछ गलतफहमी हो गयी हैं सारे गुजरात में कि आपने गांधीजी की निन्दा की या किसी अन्य व्यक्ति की निन्दा की। कृपया इसका स्पष्टीकरण करें।

किसी व्यक्ति की निन्दा करने का मेरे मन में कोई सवाल ही नहीं है । और व्यक्ति की निन्दा का प्रयोजन भी नहीं है । वाद के लिए मेरे मन में बहुत निन्दा है । वाद, सम्प्रदाय, चाहे वह राजनीतिक हो, चाहे धार्मिक हो, सब तरह के वाद टूटने चाहिए, और मनुष्य का मन सोचने-समझने के लिए मुक्त होना चाहिए ।

रूस में जाऊंगा तो मार्क्सवाद का विरोध करूंगा; हिन्दुस्तान में गांधीवाद का विरोध करूंगा । गांधीवाद से भी विरोध नहीं है; वाद से मेरा विरोध है ।

अब तक दुनिया में जैसा कि हुआ है, चाहे क्रांतियां हुई हैं, सब क्रांतियां वाद-आधारित हुई हैं। इसलिए सारी क्रांतियां असफल गयीं, कोई क्रांति सफल नहीं हो सकी । और प्रत्येक वाद मनुष्य के मन को मुक्त करने में सहयोगी नहीं हुआ, बांधने का कारण बना । और जरूरत इस बात की है कि मनुष्य की समझ इतनी मुक्त हो, समझ विकसित होनी चाहिए, और इतनी विकसित होनी चाहिए कि

हम प्रत्येक समस्या का सीधा साक्षात्कार कर सकें ।

गांधी का उपयोग मेरे लिए यह समझ में आता है कि गांधी को हम समझ कर इस योग्य बनें कि देश के सामने जो समस्या आये, उसका हम साक्षात कर सकें । लेकिन हमेशा यह होता है कि वाद से घिरा हुआ जो मन है, वह समस्या का सीधा साक्षात्कार कभी नहीं करता; उसका वाद ने उत्तर पहले दे रखा है । समस्या नयी है, उत्तर पुराना है । क्योंकि उत्तर पुराने उत्तर को थोपने की कोशिश करता है समस्या के ऊपर । उससे समस्या तो हल नहीं होती, और उलझती चली जाती है ।

प्रत्येक महापुरुष अपनी समस्या का साक्षात्कार करने की कोशिश करता है; लेकिन न तो वह समय रह जाता है पीछे, न वह समस्या रह जाती है । अनुयायी उस समस्या और समाधान को लेकर पीछे की तरफ खींचने में उपद्रव खड़ा करते हैं । उससे नुकसान पहुंचता है । गांधी ने अपनी समझ, अपनी सूझ के अनुसार किन्हीं स्थितियों में कुछ प्रयोग किये; जैसे कि चरखे का प्रयोग था । गांधी की समझ के लिए जो भी उपयोगी मालूम पड़ा, उन्होंने किया । शायद उन स्थितियों में कुछ और किया जाना कठिन भी था । लेकिन अब खादी और चरखा सिद्धान्त की तरह हमारे पीछे पड़ गया है । और आने वाले समय में हम उसका उपयोग आर्थिक सिद्धांन्त की तरह करना चाहेंगे तो हम नुकसान पहुंचाते हैं मुल्क को ।

इसलिए मैंने कहा है कि अगर हम वाद को पकड़ कर चलते हैं तो हम देश की हत्या कर देते हैं । और लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि मैंने कह दिया कि गांधीजी देश के हत्यारे हैं । मैंने कहा कि अगर गांधी के वाद को हम आगे भी मानते हैं तो देश की हत्या हो जायेगी ।

और यह सवाल गांधी के वाद का ही नहीं है, किसी भी वाद के लिए है, वह अपने समय की और परिस्थिति का उत्तर होता है । समय और परिस्थिति रोज बदल जाती है और वाद कभी बदलता नहीं है । वाद जिद् करता है कि हम वही रहेंगे, जैसे हम थे । और हर नयी परिस्थिति में हर पुराना वाद उपद्रव का कारण होता है । इसलिए जिस देश को जितनी शीघ्रता से विकसित होना हो, उसको वाद से उतना मुक्त होना चाहिए । समझ विकसित होनी चाहिए । और हम नयी परिस्थिति का सामना कर सकें, उसके योग्य हमें बनना चाहिए । जैसे मेरा कहना है कि आने वाले भविष्य में भारत में टेक्नॉलॉजी का जितना विकास हो उतना हितकर है । और अगर चरखा और खादी जैसी बातों पर अटकते हैं तो वे टेक्नॉलॉजी के विरोध की बातें हैं, उससे टेक्नॉलॉजी विकसित नहीं होती । वे टेक्नॉलॉजी को नुकसान पहुंचाते हैं ।

हर महापुरुष परिस्थिति का उत्तर होता है । परिस्थिति बदल जाती है और महापुरुष मर जाता है । लेकिन उत्तर पकड़ जाता है । और फिर हम उत्तर को

थोपते चले जाते हैं। और अगर उत्तर का कोई विरोध करे तो हम समझते हैं कि उस महापुरुष का विरोध हो गया। यह इतनी नासमझी की बात है, जिसका कोई हिसाब नहीं है।

प्रश्न—देश में जो प्रगति अवरुद्ध हो गयी है और अनेक समस्याएं खड़ी हो गयी हैं, उसके लिए क्या करना चाहिए ? और आपने बताया कि मन से सोचकर समस्या का हल करना चाहिए, एक रास्ता आपने बताया। क्या और कोई रास्ते हैं ?

असल बात यह है, एक-एक परिस्थिति का सवाल नहीं है, परिस्थिति का सामना करने की वृत्ति का सवाल है। वह मुल्क के पास नहीं है। मुल्क के पास नहीं है। मुल्क के पास समस्याएं हैं, परिस्थितियां हैं, लेकिन कैसा व्यक्तित्व इन परिस्थितियों का मुकाबला कर सकता है, वह व्यक्तित्व नहीं है मुल्क के पास। और उस व्यक्तित्व को बनाने की न ही कोई चेष्टा करते हैं और न ही हमने तीन हजार वर्षों में इसके आधार रखे कि वह व्यक्तित्व बने। बल्कि वह व्यक्तित्व न बने, इसकी हमने सारी कोशिश की है। और अब हम क्या करते हैं कि हम एक-एक परिस्थिति का मुकाबला करने की कोशिश करते हैं जो कि गलत है। इससे वह, जो आप कहते हैं, उलझन पैदा हो गयी है।

यानी मामला ऐसा है कि एक बच्चे के सामने गणित के पचास प्रश्न रख दिए। वह एक प्रश्न को हल करने की कोशिश करता है और पूछता है, इसको हल कैसे करूं। इसको हल कर लेता है तो दूसरा उसके सामने रख देते हैं और उसके सामने सवाल उठता है कि कैसे हल करूं। सवाल असल में एक सवाल हल करने का नहीं है, सवाल गणित को हल करने की बुद्धि पैदा करने का है। यह एक-एक पार्टीकुलर सवाल नहीं है महत्त्वपूर्ण, महत्त्वपूर्ण मुल्क के व्यक्तित्व में सवालों को हल करने की क्षमता का है। राजनीतिज्ञ को सवाल होता है एक-एक सामने, कि आज यह भाषा का सवाल आ गया है, इसको हल कैसे करें, कल प्रांत का सवाल आ गया, इसको कैसे हल करें, परसों वह सवाल आ गया। ये सवाल रोज आते रहेंगे। अगर आप हल भी कर लेंगे तो पच्चीस दूसरे सवाल आ जायेंगे।

असली सवाल यह है कि मुल्क के पास सवालों का साक्षात्कार करने की, हल करने की प्रतिभा नहीं है। और प्रतिभा को विकसित करने के जो उपाय हैं, उनका हम कोई उपयोग नहीं कर रहे हैं। अब जैसे मेरा ख्याल है, मेरा कहना यह है कि प्रतिभा को विकसित करने का पहला तो उपाय यह है कि भारत के मन को सब तरह के अन्धविश्वास से मुक्त करना चाहिए। क्योंकि अन्धविश्वास सोचने नहीं देता है।

वैज्ञानिक दृष्टि पैदा की जानी चाहिए। भारत के पास कोई वैज्ञानिक दृष्टि नहीं है। तो किसी भी सवाल से हम जूझते हैं, हमारी दृष्टि बिल्कुल अवैज्ञानिक है।

उदाहरण के लिए, जिनकी वजह से विवाद सारे खड़े हो गए हैं, जैसे मेरा कहना है कि भारत के सामने पिछले पचास वर्षों में सवाल था हिन्दू-मुसलमान का। हमने उस सवाल के साथ जो भी व्यवहार किया, बिल्कुल अवैज्ञानिक था। उसके परिणाम में हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बंटा। और वह सवाल खत्म भी नहीं हुआ। वह सवाल अपनी जगह खड़ा है और पूरा मुल्क बंट गया। वह एक अलग बेवकूफी हुई। और वह पूरा मुल्क बंटकर हमेशा के लिए सवाल खड़ा कर गया जो कि अब चलेगा, जिसका कि अन्त नहीं सूझता कि अब क्या होगा। तो हमने उस सवाल के साथ जो भी किया, वह अवैज्ञानिक था। यही मेरा कहना है, और यही सारी की सारी बातें लोगों को लगती है कि मैंने गांधीजी के खिलाफ कह दिया। गांधीजी से उनका कुछ लेना-देना नहीं है।

लेकिन हमने पचास साल में क्या किया, वह हमें सोचना पड़ेगा। मेरा कहना है, हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात उठाकर हमने मुल्क को नुकसान पहुंचाया। सवाल था। भारतीय एकता का, सवाल हिन्दू-मुस्लिम एकता का था ही नहीं कभी। लेकिन जैसे ही हमने कहा, हिन्दू-मुस्लिम यूनिटी, वैसे ही हमने हिन्दू और मुसलमान को बहुत महत्त्व दे दिया; जो महत्त्व अतिशय हो गया। और जितना हम यह कहते गये, हिन्दू-मुस्लिम एकता, उतना मुसलमान को भी दिखायी पड़ने लगा कि मेरे बिना कुछ होता नहीं, मैं महत्वपूर्ण हूं। हमने एक सिग्नीफिकेंस दिया मुसलमान को और हिन्दू को, और दोनों को हमने उपद्रव बना लिया। जरूरत इस बात की थी कि हम कहते—भारतीय एकता; न हिन्दू का सवाल है, न मुसलमान का। और हम इस बात पर जोर देते कि जो आदमी हिन्दू होने का दावा करता है और मुसलमान होने का दावा करता है, वह भारतीय एकता को तोड़ता है। तो हमने उल्टा किया।

हमने कहा, हिन्दू-मुस्लिम दोनों भाई-भाई हैं, अल्ला-ईश्वर तेरे नाम हैं। और हमने जो-जो प्रक्रिया की, उसमें हमने हिन्दू-मुस्लिम को मिटाने की कोशिश नहीं की, बल्कि हिन्दू-मुस्लिम को स्वीकार कर लिया, उनको स्वीकृति दे दी। फिर उनको स्वीकार करके मिलाने की कोशिश की। और मेरा कहना यह है कि यह स्वीकृति खतरनाक हो गयी, यह महंगी पड़ गयी। और गांधी जैसे भले आदमी भी इस भूल को नहीं पकड़ पाये और अपने को हिन्दू कहते रहे निरन्तर कि मैं हिन्दू हूं। अगर गांधी ने भी यह हिम्मत कर ली होती यह कहने की कि मैं सिर्फ आदमी हूं और मैं भारतीय हूं, मैं हिन्दू-मुस्लिम नहीं हूं तो हिन्दुस्तान का इतिहास दूसरा होता। लेकिन वह नहीं हो सका। और जो हमने कोशिश की, वह तोड़ने वाली सिद्ध हुई, वह कोशिश बनाने वाली नहीं हो पायी।

अब भी वह हाल है। अब भी हम वही सब कहे चले जाते हैं। और दूसरी समस्याएं खड़ी होती हैं तो उनके सामने भी हम वही पुराने हल मौजूद

करते हैं।

कुल दो-तीन हजार साल से भारत की कुछ दृष्टियां हैं, जो उसको सवाल हल नहीं करने देती हैं। जैसे भारत मानता है कि जो भी हो रहा है, वह भाग्य से हो रहा है। और जो कौम भी मानती है कि भाग्य से हो रहा है, वह परिस्थितियों का मुकाबला करने में असमर्थ हो जाती है। वह कैसे समर्थ हो सकती है? परिस्थिति सामने आ जाती है और वह भाग्य को मानने वाली कौम है! जब तक हिन्दुस्तान के दिमाग से भाग्य की धारणा नहीं मिटती, तब तक पुरुषार्थ की सम्भावना पैदा नहीं हो सकती। यानी मेरा कहना है कि यह बेसिक सवाल है। यह कोई आज की राजनीति का सवाल नहीं है, कल की राजनीति का सवाल नहीं है। भारत की प्रतिभा को भाग्यवादी होने से बचाने की जरूरत है। लेकिन बच्चों को हम आज भी भाग्यवाद के खिलाफ कुछ भी नहीं समझा रहे हैं। और हम चाहते हैं कि समस्याएं हल हो जायें।

अगर बीस साल तक आने वाली पीढ़ी को हम भाग्यवाद के खिलाफ समझा सकें और पुरुषार्थ के लिए तैयार कर सकें और आने वाली पीढ़ी के दिमाग में यह बात बिठायी जा सके कि जो भी हो रहा है वह अन्यथा हो सकता है, बदला जा सकता है, वह हमारे हाथ में है, और कोई भगवान तय नहीं कर रहा है, भाग्य तय नहीं कर रहा है, तो बीस साल के भीतर भारत की प्रतिभा में खूबी आ जायेगी कि वह समस्याओं का सामना कर सके। पश्चिम में समस्या खड़ी होती है तो वे उसको हल करने की कोशिश करते हैं। हमारे सामने समस्या खड़ी होती है तो हम उसके कारण खोज लेते हैं और इस पर खतम हो जाती है बात कि समस्या क्यों है। वह कैसे बदलेगी, यह सवाल नहीं है।

अगर भारत गुलाम हो गया तो हम कहते हैं फूट थी, इसलिए गुलाम हो गया। बस जैसे कि एक्सप्लेनेशन मिल गया, कारण मिल गया और बात खत्म हो गयी। और एक हजार साल हम गुलाम नहीं रहते कभी भी; वह हमारा भाग्यवादी दृष्टिकोण था, जिसने हमको गुलाम रखा। फूट-वूट का कारण नहीं है। मेरी अपनी समझ यह है; क्योंकि जितनी फूट हममें है, दुनिया की सब कौमों में है। कोई फूट हममें ही है, ऐसा नहीं है। प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक उतना ही लड़ते हैं जितना हिन्दू-मुसलमान लड़ते हैं। यह सारी दुनिया लड़ती है। फूट हममें ही नहीं है। हममें और उनमें एक ही फर्क है कि वे चीजों को बदलने का विश्वास रखते हैं कि हमारे हाथ में है, और हम मानते हैं कि चीजें हो रही हैं, हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है।

और आज भी साधु-संन्यासी समझाये चला जा रहा है; यही बातें समझा रहा है गांव-गांव में वह। अब मेरा कहना यह है कि पचास साल के लिए हिन्दुस्तान को साधु-सन्तों से बचाने की कोशिश करनी चाहिए, नहीं तो हिन्दुस्तान

मर जायेगा। यह खतरे की बात है, यह झगड़े की बात है। मेरा कहना यह है कि साधु, जिसको संन्यास लेना है वह छोड़कर चला जाये, जंगल में बैठे, जिसको जाना हो वह वहां जाये; लेकिन अब गांवों में साधु-संन्यासी को शिक्षा देने का उपाय बन्द किया जाना चाहिए। जिसकी मर्जी हो, संन्यास लेना हो वह जंगल में जाये, उनके पास बैठे, सीखे, कोई मनाही नहीं है। लेकिन अब भारत की जो पिटी पिटायी परम्परा है, उसको यहां सिखाने का स्रोत बन्द होना चाहिए। नहीं तो हम फिर नयी पीढ़ी को बिगाड़ जाते हैं।

अब एक स्कूल का लड़का है, वह भी जाकर ज्योतिषी को चार आना देकर हाथ दिखलाता है। यह भारत के भविष्य के लिए अच्छा नहीं है। यह एक स्कूल का बच्चा है, यह स्कूल में पढ़ने वाला बच्चा है, एम० एस० सी० पढ़ता है, लेकिन परीक्षा के वक्त हनुमान जी पर जाकर फूल चढ़ाता है। इससे भारत की प्रतिभा विकसित नहीं हो पायेगी। इससे भारत की प्रतिभा को नुकसान पहुंच रहा है।

इसलिए मेरे सामने इमिडिएट सवाल नहीं है, तात्कालिक सवाल नहीं है कि यह सवाल कैसे हल हो। मेरे सामने सवाल यह है कि हमारा माइंड किसी सवाल को हल क्यों नहीं कर पाता है और फिर हम उसमें उलझ जाते हैं। हल होता नहीं है, सवाल खड़ा रहता है, हम उलझते चले जाते हैं। यह तो एक साइंटिफिक आउटलुक, वैज्ञानिक दृष्टि पैदा करने का सवाल है। सारे मुल्क के विचारशील लोगों को इस दिशा में लग जाना चाहिए कि वह साइंटिफिक आउटलुक कैसे पैदा हो।

अभी मैं कलकत्ते में था। एक मित्र डॉक्टर के यहां ठहरा। डॉक्टर एफ० आर० सी० एस० है, पढ़ा-लिखा आदमी है, योरोप से लौटा हुआ है। मैं घर से निकलने लगा तो उसकी लड़की को छींक आ गयी और उसने कहा कि दो मिनट रुक जायें। तो मैंने उससे कहा, तुम तो डॉक्टर हो, तुम्हें समझना चाहिए कि छींक क्यों आती है? तुम भी नहीं समझते तो और लोग कैसे समझ सकते हैं? उन्होंने कहा, लेकिन हर्ज क्या है, दो मिनट रुक गये तो हर्ज क्या है। अब यह जो माइंड है, यह मुल्क की समस्याएं हल नहीं होने देगा, यह नहीं होने देगा। क्योंकि समस्या के लिए संघर्ष करने वाला मन चाहिए, जो चीजों को बदलने की सोचे, तोड़ने की सोचे और नया करने की सोचे। वह हमारे पास नहीं है।

प्रश्न—समाज पिछड़ा हुआ है, इस पिछड़ेपन से निकलने का उपाय क्या है?

यह तो ठीक कहते हैं। समाज तो तैयार है ही नहीं। मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ जो हलचल मची उससे। वह तो मैं जानता था कि वह मचेगी। आश्चर्य मुझे इससे हुआ कि जो लोग मेरे पक्ष में हैं, उनकी हिम्मत मुझे बिल्कुल नहीं मालूम पड़ती। मेरे विपक्ष में जिन लोगों ने कहा, उन्होंने तो हिम्मत से कहा,

उन्होंने हलचल भी मचायी। लेकिन जो मेरे पक्ष में हैं, वे प्राइवेट रूप से मुझसे कहते हैं कि हम आपके पक्ष में हैं, वे मुझे पत्र लिखते हैं, लेकिन खुले में वे कहने की तैयारी में नहीं हैं। आश्चर्य मुझे इतना ही होता है। मैं तो चाहता हूं कि हलचल मच जाये। इसमें क्या हर्ज होने वाला है? मुझे दस-पच्चीस गाली पड़ती है, इससे क्या बनता-बिगड़ता है? इस मुल्क में कुछ लोगों को गाली खाने के लिए तैयार रहना चाहिए, नहीं तो हलचल होगी ही नहीं। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।

आश्चर्य मुझे इससे हुआ कि जिन लोगों से हम आशा कर सकते हैं कि वे सोचते हैं, विचारते हैं, इंटिलेक्चयूअल वे भी हिम्मत करके बाहर पक्ष में खड़े हो सकते हैं, वह मुझे नहीं दिखायी पड़ा। वह जो प्रतिक्रियावादी वर्ग था, वह तो शोरगुल मचायेगा ही जोर से, इसमें कोई शक-सुबहा नहीं है। वह तो मचाना चाहिए, न मचाता तो आश्चर्य होता। वह तो बिल्कुल ही ठीक हुआ, उसमें कोई अड़चन नहीं हुई। और वह चीजों को तोड़-मरोड़कर भी मचायेगा, क्योंकि उसके सिवाय मचा नहीं सकता। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं, सीधे-सीधे उसका विरोध नहीं किया जा सकता है। उसका तो उपाय एक ही है कि प्रसंग के बाहर मेरी बातों को निकाल कर और उनको नये अर्थ देकर उसका विरोध किया जाये। वह तो मेरी समझ में आता है कि हमेशा का रास्ता वह है। इससे कोई हैरानी नहीं हुई। हैरानी मुझे इससे हुई कि यह जो विरोध में इतना शोरगुल मचा, इसके विरोध में एक इंटिलेक्चयूअल, सोच-विचारशील लोगों का जो साथ मिलना चाहिए, वह हिम्मत से पब्लिक में साथ देने को तैयार नहीं है। उससे मुझे आश्चर्य हुआ।

लेकिन उसकी भी चिन्ता नहीं है; क्योंकि मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मेरे साथ कोई है कि नहीं। क्योंकि न तो मुझे किसी की पूजा चाहिए, न कोई सम्प्रदाय बनाना है, न कोई ऑर्गनाइजेशन बनाना है। मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। न कोई मेरा स्वार्थ है कि नुकसान होगा या फायदा होगा। वह कुछ भी नहीं है। इसलिए कितने लोग मुझे गाली देते हैं, कितने लोग मुझे स्वीकार करते हैं, इससे फर्क नहीं पड़ता है। एक ही मुझे फर्क-सा मालूम पड़ता है कि विचार की प्रक्रिया अगर पैदा हो। और वह हमेशा शॉक से पैदा होती है, और किसी से पैदा नहीं होती।

प्रश्न—अस्पष्ट

मेरा जो कहना है, उसमें मैं समय का इन्तजार नहीं कर रहा हूं। दो साल में क्या फर्क पड़ने वाला है? बीस साल में इस मुल्क में फर्क नहीं पड़ने वाला है। इस मुल्क में दो हजार साल में फर्क नहीं पड़ता तो दो साल में क्या फर्क पड़ेगा? यानी हमारी चिन्तन की प्रक्रिया इतनी अवरुद्ध हो गयी कि दो हजार

साल में भी हम में कोई खास फर्क नहीं पड़ा। यह वैसे ही चलता है। यह सवाल नहीं था। मैं तो केवल प्रतीक्षा कर रहा था इसका कि मुझे सुनने वाला वर्ग तो हो जिससे मैं कह सकूं, कि एक दफा मैं घूम लूं, लोग मुझे सुन लें आखिर। नहीं तो इतना शोरगुल भी नहीं मचा सकता था। इतना शोरगुल मचा, वह भी इसीलिए मच सका कि मुझे सुनने वाला एक वर्ग पैदा हुआ है और स्वार्थी तत्व को घबराहट पैदा हुई है कि मुझे सुनने वाला वर्ग मुझे सुनेगा तो खतरा है। सुनने वाला वर्ग ही न हो तो मेरी बात को सुनने की क्या जरूरत है? मैं कह भी दूं तो कौन उसकी फिक्र करता है? जो मैं कह रहा हूं, हिन्दुस्तान में हजारों लोग कहते हैं। आपमें से कई लोग कहते होंगे, पर वह शोरगुल नहीं मचता है। क्योंकि मचने का कारण तब होता है, जब कि मुझसे कोई खतरा पैदा हो। नहीं तो नहीं होगा।

शोरगुल मचता है, वह एक लिहाज से अच्छा लक्षण है। उसको मैं अच्छा लक्षण मानता हूं। मैंने समझा कि वे मुझे खतरनाक मानते हैं। यह अच्छा है। वे इतना मानते हैं कि मेरी लोगों तक पहुंच हो सकती है, लोग मेरी बात सुन सकते हैं। और इससे उनको डर पैदा हुआ। और मेरी बात न पहुंचे, इसकी वे कोशिश में लगे। तो मैं समझता हूं कि यह अच्छा हुआ है, यह शुभ लक्षण है।

अब सवाल यह है कि इसका कैसा उपयोग किया जाये।

मैं देख कर हैरान हुआ, बम्बई के पत्रकार जिन्होंने इन्टरव्यू लिया मुझसे, वे एक-एक कर मुझसे कह कर गये कि आपकी बात हमें बहुत पसन्द है। वे पीछे भी हमसे बोले कि हमें बहुत दुख है कि जो पत्रों में निकला, वह हम नहीं चाहते थे। आखिर बड़े मजे की बात है, यह बड़े मजे की बात है। फिर तो बड़ी कठिन बात हो गयी। चन्द्रकान्त वोहरा मुझे कह कर गये थे कि यह हमें बहुत दुख है कि हम जो चाहते थे, वह नहीं हुआ, कुछ और ही हुआ। लेकिन यह अच्छा है एक लिहाज से, एक लिहाज से अच्छा है। इसमें मुझे कोई दुख का कारण नहीं दिखायी पड़ता है। मैं तो चाहता ही यह हूं कि वह जो हलचल मची है, वह बन्द न हो जाए। उसको जारी रखिये। कुछ फिक्र नहीं, मेरे विरोध में भी चले तो कोई हर्ज नहीं है, वह जारी रहे। वह जारी रहे तो मैं निबटारा कर लूंगा। आखिर अगर कोई पत्र मेरे सम्बन्ध में गलत लिखकर भी प्रचार करे तो कितनी देर कर सकता है? आखिर मैं जनता से जाकर सीधे भी तो बात कर लूंगा, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

मेरे खिलाफ अभी एक किताब लिखी गई है सूरत में। लेखक को मैंने चिट्ठी लिखी, उन्होंने जवाब भी नहीं दिया। मैंने चिट्ठी लिखी कि बहुत मैं तुम्हें धन्यवाद करता हूं, इसको गांव-गांव पहुंचाओ, ताकि जगह-जगह लोग प्रश्न पूछने लगें, तो मैं उत्तर दे सकूं। वे पूछें तो मुझसे। वे जिस सम्बन्ध में पूछना चाहें, मैं

उत्तर देने को तैयार हूं। तो वह जो हलचल चली है, उसको जारी रखना है।

और यह मैं चाहता हूं कि शॉक जोर से लगे। वह तो सिर्फ गुजरात में हुआ, मैं चाहता हूं कि पूरे मुल्क में हो। इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता कि शॉक लगाने में मैं बिल्कुल खत्म हो जाऊं। तो भी हर्ज नहीं है। अगर इतना भी काम हो जाए कि लोग सोचने लगें कुछ मुद्दों पर, तो भी काम पूरा हो जाता है। तो भी काम पूरा हो जाता है। कुछ लोगों को तो कुर्बानी देनी पड़ेगी, सिर्फ इसलिए कि लोग सोचने लगें। वह जो मैं चाहता हूं, वे सोचेंगे, वह जो बहुत दूर की बात है; लेकिन वे सोचें तो भी काफी है।

मेरी अपनी समझ यह है कि एक बार आदमी सोचना शुरू कर दे तो गलत चीज के साथ बहुत देर तक राजी नहीं रह सकता है। उसमें कुछ शुरू होगा।

और यह आप ख्याल कर लें कि हिन्दुस्तान में शॉक देने की व्यवस्था ही नहीं है। यहां प्रशंसा की इतनी लम्बी परम्परा है हमारी कि वह शिष्टाचार का ही हिस्सा हो गया है। अगर मुझे कोई कहता है कि मैं गांधीजी के सम्बन्ध में बोलूं, तो यह शिष्टाचार का हिस्सा है कि मैं उनकी प्रशंसा करूं। अगर मेरे सम्बन्ध में आपको बोलने के लिए लाया जाये तो आप शिष्टाचार मानकर मेरी प्रशंसा करेंगे। यह बड़ी झूठ बात हो गयी है। इससे चिन्तन पैदा नहीं होता है। तो मैं तो चाहता हूं कि कुछ लोग शॉक दें, कुछ लोग चीजों को तोड़ें, कुछ तो बहुत दिन से कहा चला जा रहा है उसके खिलाफ कुछ कहें। यह भी हो सकता है कि शॉक देने में उनको थोड़ी अतिशयोक्ति भी करनी पड़े। यह भी हो सकता है। मैं उसके लिए भी राजी हूं। एक दफा शॉक लगे, चिन्तन शुरू हो, तो अतिशयोक्ति तो मिट जायेगी। उसे कितनी देर लगती है, वह जो डायलॉग पैदा हो जायेगा, उसमें मिट जायेगी। लेकिन यह जो रटी-रटायी परम्परा चल रही है प्रशंसा करने की, यह बहुत खतरनाक और महंगी पड़ गयी है। बहुत महंगी पड़ गयी है।

प्रश्न—अस्पष्ट

मजा यह है, आखरी उपाय वही रह जाता है। मैं जो कह रहा हूं, अगर उसका कोई उत्तर देने का उपाय न रह जाये, जो मैं कह रहा हूं, उसका खण्डन करने का कोई मार्ग न हो, या सीधा मुझसे बात करने का उपाय न रह जाये, तो फिर एक ही उपाय रह जाता है कि मेरे चरित्र को कुछ कहना शुरू किया जाये। और मेरे चरित्र को बहुत-कुछ कहा जा सकता है। क्योंकि मैं चरित्र के मामले में बंधा हुआ आदमी नहीं हूं। क्योंकि मैं तो किसी मामले में भी बंधा हुआ आदमी नहीं हूं।

तो वहां जो घटना हुई, मनू भाई को मैंने वहीं कहा था कि यह घटना हो गयी तो मैं इसकी कल सुबह पब्लिक मीटिंग में बात कर लूं। आप भी यहां मौजूद

हैं, वह बहन भी यहां मौजूद है, वे सारे लोग भी मौजूद हैं, जिनके सामने घटना हुई। तो अभी यह बात करना बहुत साफ होगा। पीछे दो महीने, चार महीने बाद आप बात शुरू करेंगे, जो मैं जानता हूं, फिर साफ करना बहुत मुश्किल हो जायेगा। क्योंकि वे सारे लोग नहीं होंगे, मैं नहीं होऊंगा, वह बहन नहीं होगी।

घटना कुछ इतनी हुई कि एक बनारस यूनिवर्सिटी की प्रोफेसर—और जैसा उन्होंने लिखा है कि जवान स्त्री थी, लेकिन वह पैंतालीस साल की है, पच्चीस साल का तो उसका जवान लड़का है, पैंतालीस साल की महिला, और कोई साधारण शिक्षिता नहीं, हिस्ट्री की प्रोफेसर बनारस यूनिवर्सिटी में है—मेरे साथ आयी हुई थी। जैसे हिम्मत भाई मेरे साथ आये हुए हैं, तो वह मेरे साथ आयी हुई थी। वह मेरे साथ रुकी। एक दिन कोई बात नहीं हुई। वह मेरे साथ रुकी हुई थी, जहां मैं रुका हुआ था। एक दिन कोई बात नहीं हुई।

दूसरे दिन दोपहर को प्रेस कॉन्फ्रेंस हुई, और उसमें गांधीजी के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पूछे गए, जिनका मैंने उत्तर दिया। वह जो संस्था है, गांधीवादियों की संस्था है। लाला लाजपत राय भवन में मैं रुका था। और वह सर्वेन्ट ऑफ पिपुल सोसाइटी का है, जिसके मनू भाई भी सदस्य हैं। वे सारे लोग वहां थे। वे सारे लोग जिन्होंने आयोजन किया था—क्योंकि मुझे तो कठिनाई पड़ गयी—उनमें से नब्बे प्रतिशत तो गांधीवादी थे। और सारे मुल्क में यही हाल है। क्योंकि आजकल आयोजक भी वे हैं, नेता भी वे हैं, सब कुछ वे हैं। जो भी कहना है, वे ही कहते हैं। आयोजक दिल्ली के सारे गांधीवादी थे, मनू भाई भी आयोजक थे उसमें। वह जो प्रेस कॉन्फ्रेंस में मैंने सारी बातें कहीं, उनसे उनको बेचैनी हुई। पर उस रात तो कुछ नहीं हुआ।

अब मुझे पता नहीं कि उन्होंने क्या सोचकर निकाला? दूसरे दिन शाम को जब मैं मीटिंग से लौटा तो उन्होंने उस स्त्री का सामान और बिस्तर सब बाहर निकाल दिया था। वह खड़ी दरवाजे पर रो रही थी। आया तो मैं हैरान हुआ। और दस-पच्चीस लोग मेरे साथ आये थे, उन्होंने पूछा कि क्या हुआ? उस स्त्री ने कहा 'कुछ हुआ नहीं, आपके पैर छूने के लिए मैं रुकी हूं, मैं पैर छू लूं, फिर जाऊं। मैं जा रही हूं, 'तो मैंने कहा, अभी तेरे जाने की बात नहीं थी, हुआ क्या? उसने कुछ कहना पसन्द नहीं किया, क्योंकि एक भद्र और शिक्षित महिला है। उसने कहा, मुझे कुछ भी नहीं कहना है और इस बात को खत्म कर देना है। लेकिन वह मुझे अच्छा नहीं मालूम हुआ कि बिना कुछ पता चले वह चली जाये। तो मैंने उससे पूछने की कोशिश की, तो उसने मुझे अन्ततः बताया कि मेरा सामान बाहर निकाल दिया है और मेरे साथ अभद्र व्यवहार किया है, और मुझसे कहा कि आप हमारी संस्था से बिना पूछे उनके साथ कैसे रुकीं?

तो यह तो पहले दिन, जब वह मेरे साथ आयी थी, तब बात उठानी थी।

और अगर कुछ भी कहना था तो मुझसे कहना था। क्योंकि मैं उनका मेहमान था, वह मेरे साथ थी। मगर आयोजकों ने उस महिला को कहा कि आप उनके साथ क्यों रुकी? और यह अनुचित है उनके साथ यहां रुकना, और इसलिए हम आपको दूसरे कमरे में ले जाते हैं। यहां से आपको ले जायेंगे। उसका जबरदस्ती सामान निकाला तो वह हैरान हो गई। और उस भद्र महिला को वह व्यवहार अजीब-सा मालूम पड़ा। मैंने कहा भी आकर कि यह तो मुझे कहना था। और यह भी डेढ़ दिन बाद आप कह रहे हैं, जैसा कि दो महीने बाद उन्होंने वक्तव्य दिया। डेढ़ दिन बाद उन्होंने वह काम किया। फिर भी मैंने कहा, कोई हर्ज नहीं है।

तो मैंने उसको समझाने की कोशिश की कि अभी फिलहाल मान जाये। लेकिन वह महिला भी जिद्द पकड़ गयी कि मेरा अपमान हुआ है, अब मैं रुकूंगी तो यहीं रुकूंगी, मैं दूसरे मकान में जाने को राजी नहीं हूं, क्योंकि मैंने न कोई पाप किया है, और न कोई बुराई की है। क्षमा इन्हें मांगनी चाहिए कि मेरा सामान इन्होंने बाहर निकाला। वह यह जिद्द पकड़ गयी। और वे सारे लोग यह जिद्द पकड़ गये कि इसको इस कमरे में रहने नहीं देंगे। मेरी समझ के बाहर हो गया। मैंने कहा कि इसमें कुछ भी निबटारा होना चाहिए। और मैंने उनसे कहा कि इसमें मनू भाई, भूल मैं आपकी समझता हूं। क्योंकि यह बात मुझसे कहनी थी पहली बात, डेढ़ दिन पहले कहनी थी। और अभी भी कहनी थी तो मुझसे कहनी थी आकर, तो इसका कोई भी रास्ता हो सकता था। उससे सीधे आपको बात नहीं करनी थी। बड़ी अशोभन बात हुई है। और इसलिए मैं उसके पक्ष में हूं, मैं उसके पक्ष में हूं कि वह ठीक कह रही है। उसे जिद्द करनी चाहिए। और मैंने कहा कि उसको आज रात रुकने दें, कल सुबह मैं उससे कहूंगा कि तू दूसरे कमरे में चली जा। वह मेरी समझ की बात होगी, लेकिन अभी यह गड़बड़ मत करें। पर वे सारे लोग जिद्द पकड़ बैठे पूरा का पूरा, जैसे कि एक कंस्पिरेसी हो, षड्यन्त्र हो कि नहीं, इसको हम यहां रहने नहीं देंगे।

तो फिर मैंने कहा, अब तो एक ही रास्ता है कि मैं भी आपकी संस्था छोड़कर चला जाऊं, और मैं प्रोटेस्ट में आपकी संस्था छोड़कर जाता हूं। क्योंकि यह अभद्र व्यवहार आपने किया है। रह गयी मेरी बात, मैंने उनसे कहा, मुझे कोई कठिनाई नहीं है कि मेरे कमरे में कौन आकर रुकता है। मैंने कहा, आप भी आकर रुक जायें अगर बहुत तकलीफ हो कि यह महिला यहां सो रही है। रात में आपको उसकी बहुत चिन्ता हो तो आप भी इसी कमरे में आकर रुक जायें, यह मेरी समझ में आता है। और दो जन भी आकर इस कमरे में रुक जायें, ताकि आपको चिन्ता न रहे, परेशानी न रहे।

फिर मैंने कहा, दूसरे दिन कल सुबह मैं पब्लिक मीटिंग में उसकी बात कर

लूंगा, ताकि यह बात जाहिर हो जाये, क्योंकि यह बात तो चलेगी; क्योंकि चलाने के लिए आयोजन किया गया है, ऐसा हमें मालूम पड़ता है। तो उन्होंने इससे मुझे रोका कि नहीं, इसकी बात मत करिये, इससे संस्था का अपमान होगा। माफ करिये, जो हो गया हो गया।

दूसरे दिन जो सब्जेक्ट था, वह था 'सेक्स एण्ड लाइफ' या 'काम-वासना और जीवन'। उस सब्जेक्ट को उन्होंने बदल दिया। कहा कि इस सब्जेक्ट को बदल दें। उनको डर हुआ कि कहीं मैं इसके सिलसिले में वह बात न करूं। उन्होंने कहा, उसको भी बदल दीजिये, धर्म पर ही बोलिये। यह सारा हुआ। तीसरे दिन सांझ को चलते वक्त ये सारे लोग मुझसे क्षमा मांगने आये और बोले कि माफ करिये, वह जो हो गया हो गया, गलती हो गयी। मैंने कहा, उसकी मुझे चिन्ता नहीं, जो हो गया है। अब पीछे इसकी क्या चर्चा चलाइयेगा, वह थोड़ा सोचने का है। क्योंकि चर्चा तो यह चलेगी, यह रुकने वाली नहीं है। और मुझे चलाने नहीं दिया। मैं चला देता तो अच्छा होता।

दो महीने वे चुप रहे। अब प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाकर वह सारी बात कही है। और पीछे जो हिस्सा उन्होंने जोड़ दिया, वह मैं नहीं सोचता था कि मनू भाई वगैरह को पीछे से करना चाहिए था।

मुझसे तीसरे दिन सांझ को बैठक में यह बात हुई कि अगर कोई स्त्री आपका आलिंगन करे तो क्या आपको एतराज न होगा? मैंने कहा मुझे कोई स्त्री, भूत, प्रेत, कोई भी आकर आलिंगन करे तो मुझे कोई एतराज न होगा। मैं किसी का आलिंगन करने नहीं जाता हूं। मेरा कोई आलिंगन करे तो मुझे कोई एतराज नहीं है। तो फिर उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मानते हैं कि आलिंगन सेक्सुअल नहीं है? मैंने कहा, आलिंगन सेक्सुअल हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है; यह करने वालों पर निर्भर है। एक मां अपने बेटे का आलिंगन कर सकती है, एक बहन अपने भाई का कर सकती है, एक पत्नी अपने पति का कर सकती है। यह इस पर निर्भर है कि करने वाले क्या कर रहे हैं। वह सेक्सुअल भी हो सकता है, और स्प्रीचुअल भी हो सकता है। यह कोई जरूरी नहीं है कि वह कैसा है, यह करने वालों पर निर्भर है।

और मैंने कहा कि तीसरा आदमी कभी तय नहीं कर सकता कि दो करने वालों का आलिंगन कामुक था, कि नहीं था। और मैंने कहा, तीसरा आदमी अगर तय करने जाता है तो वह तो सेक्सुअल है, यह पक्का है। उसको तो कम से कम नहीं तय करने जाना चाहिए। अगर मनू भाई से कोई आलिंगन कर रहा है तो मैं कैसे तय करूं कि वह आलिंगन सेक्सुअल है कि नहीं। और मैं करूं भी क्यों? और अगर मैं करता हूं तो मैं सेक्सुअल हूं, इतना तो पक्का हो जाता है। और उनका आलिंगन कामुक हो या न हो, यह मुझे कुछ पता नहीं।

तो उन्होंने वह सारा का सारा उसमें जोड़ दिया कि मैं आलिंगन को, चुम्बन को, कामुक नहीं मानता हूं। बच्चों जैसी बात है, कोई बहुत समझदारी की बात नहीं है। वह समझदारी की बात नहीं मालूम पड़ी मुझे। और फिर मेरे जैसे आदमी के लिए जो कि पब्लिक में सारी बातें करने को हमेशा राजी है, उसके लिए फिर दो महीने छिपा कर अहमदाबाद में, जहां मैं मौजूद नहीं हूं, वहां वक्तव्य देना क्या बतलाता है? लेकिन चलेगा, यह सब चलेगा।

प्रश्न—आपने रिफ्यूज नहीं किया?

रिफ्यूज क्या, इन्कार क्या, बात तो ठीक ही है। जो मैंने कहा न, रिफ्यूज क्या करता हूं? रिफ्यूज का क्या मतलब है? घटना तो बिल्कुल ठीक है कि वह महिला मेरे साथ रुकी थी। इसमें कोई झूठ बात नहीं है। मैंने कहा, उसको रुकना चाहिए, यह भी झूठ बात नहीं है। उसके प्रोस्टेस्ट में मैं महिला को लेकर दूसरे घर में चला गया, वह भी बात सच है। इसमें कुछ बात झूठ नहीं है। इन्टरप्रेटेशन को रिफ्यूज करता हूं। बात झूठ नहीं है, बात तो बिल्कुल ही सही है, लेकिन व्याख्या उसकी गलत है। जैसे कि नारगोल के चित्र को छाप दिया था। वह तो हजार लोगों के सामने वह महिला मेरे गले से मिल गयी थी। उसका फोटो निकाल लिया, फिर उस फोटो को छाप दिया। सैकड़ों लोगों का मन हो सकता है गले मिलने का। और मैं नहीं मानता कि गले मिलने में कोई पाप हो गया।

लेकिन हमारा जो दिमाग है, सोचने का जो ढंग है, वह तो ठीक नहीं है। वे जिस ढंग से सोचते हैं हमको, उससे ख्याल में आ गयी बात कि यह बहुत पाप हो गया, बहुत गलत हो गया। और मैं तो, चूंकि सेक्स से सम्बन्ध नहीं है, मेरी दृष्टि बहुत और तरह की है। और सप्रेसिव माइंड जो है, मैं उसके बहुत विरोध में हूं। मैं इस पक्ष में भी नहीं हूं कि पुरुष और स्त्री के बीच इतना फासला हो, जितना फासला हमने बनाकर रखा है। क्योंकि मेरा मानना है, यह फासला आदमी को कामुक बनाने का कारण बनता है। स्त्री और पुरुष जितने नजदीक होंगे, जितने निकट होंगे, स्त्री और पुरुष के बीच जितना फासला कम हो, और स्त्री और पुरुष स्त्री पुरुष होने के लिए जितने कम कॉन्शस रह जायें, उतना अच्छा होगा। बच्चे और बच्चियां इस तरह पाली जायें कि उन्हें पता ही न चले कि वे लड़के हैं या लड़कियां हैं; वे इतना निकट खेलें और कूदें, साथ तैरें और दौड़ें कि उनके बीच में एक दीवार खड़ी न हो जाये। उतना ही अच्छा और कम सेक्सुअल समाज हम निर्मित कर सकेंगे। जितना फासला होगा, जितनी दीवार होगी, जितनी हम दूरी को बनाये रखने की कोशिश करेंगे, उतना सेक्सुएलिटी समाज में पैदा होगी।

तो यह जो हमारा समाज है, मेरी दृष्टि में, पश्चिम से भी ज्यादा सेक्सुअल

समाज है। हालांकि पश्चिम में हमें दिखायी पड़ता है कि लोग साथ नाच रहे हैं और नंगे घूम रहे हैं और तालाबों में तैर रहे हैं, लेकिन उनसे ज्यादा कामुक हमारी दृष्टि है। हम ऊपर से तो दूर-दूर दिखायी पड़ते हैं और चित्त भीतर से निरन्तर यही सोचता है।

और यही मैंने मनू भाई और वहां उन मित्रों को कहा था कि मैं वहां सोया हूं उस कमरे में, चिन्ता मुझे होनी चाहिए, या चिन्ता उस महिला को होनी चाहिए। लेकिन मनू भाई अपने कमरे में सो रहे हैं और रात भर नहीं सो पाये और चिन्तित हों तो बड़ी आश्चर्य की बात है। इसलिए तुम यहीं आ जाओ, यहीं सो जाओ, यह भी समझ में आता है। लेकिन तुम अपने कमरे में क्यों परेशान हो? और दो महीने तक परेशान रहो, और दो महीने तक तुम्हें नींद न आये और चलता रहे दिमाग में, तो यह सेक्सुअल माइंड का लक्षण है। यह कोई अच्छे चित्त का लक्षण नहीं है।

प्रश्न—क्या पश्चिम का समाज अपने समाज से अच्छा है?

इतना एकदम नहीं कहता हूं, क्योंकि पूरे समाज की बाबत नहीं कह रहा हूं। यानी जितना हां और ना में उत्तर दे सकता हूं कि उनसे अच्छा है या बुरा है, कुछ मामलों में हमसे अच्छा है, कुछ मामलों में हमसे बहुत बुरा है।

प्रश्न—अस्पष्ट

हां, हमसे अच्छा है। लेकिन जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं है। तो मैं कह रहा हूं, हमसे अच्छा है, लेकिन जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं है। क्योंकि हमसे अच्छा जो वह है वह सिर्फ इसी कारण है कि सप्रेशन उठ गया है। लेकिन सप्रेशन इतना पुराना था और इतनी तेजी से उठ गया है कि दूसरी अति पर डोलने की स्थिति पैदा हो गयी है। ऐसे ही जैसे एक आदमी बीस दिन उपवास कर ले और फिर एकदम से उसको भोजनालय में छोड़ दिया जाये तो वह एकदम से पागल की तरह खाने लगे और बीमार पड़ जाये। फिर भी मैं कहूंगा कि भूखे मरने के बजाय ज्यादा खाकर मर जाना अच्छा है। फिर भी मैं यह कहूंगा, भूखे मर जाने के बजाय ज्यादा खाकर मर जाना अच्छा है। यह मैं कहूंगा, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मैं ज्यादा खाने वाले की तारीफ कर रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि खाना सम्यक् होना चाहिए, लेकिन अगर बहुत दिन तक समाज को भूखा रखा जाये तो लोग ज्यादा खाकर मरने की हालत में हो जाते हैं।

हिन्दुस्तान का समाज उतना सप्रेसिव, दमनशील नहीं था, जितना सप्रेसिव ईसाइयत रही पश्चिम में। उस सप्रेशन की, दमन की वजह से, जब सप्रेशन टूटा तो लोग पागल की तरह सेक्स की तरफ दौड़ पड़े। लेकिन वह सम्यक् हो जायेगा। कितनी देर तक दौड़ेंगे? आने वाले बीस-पच्चीस वर्षों में पश्चिम की यह हालत कम हो जायेगी। लेकित हमारी हालत कम कभी नहीं होगी। हमारा

दमन, हमारा रिप्रेशन जारी है, जारी है। हम सिखाये चले जा रहे हैं वही। हमारा बूढ़ा आदमी भी सेक्स से मुक्त नहीं हो पाता है। वह अस्सी साल का हो जाये तो भी मुक्त नहीं हो पाता है। उसका माइंड वही काम करता है। वह जिन्दगी भर का दबाया हुआ हिस्सा पीछे पड़ता है।

तो मेरी दृष्टि यह है कि चित्त की जो सहजता और सरलता है, उसकी स्वीकृति होनी चाहिए। उसको ऊंचाई की तरफ रूपान्तर करने की चेष्टा होनी चाहिए। लेकिन दमन के मैं पक्ष में नहीं हूं। और उसी को लेकर आपके गुजरात में काफी चला है कि मैंने कहा, बच्चे और बच्चियों को बहुत देर तक नंगे रहने दिया जाये, जहां तक हमसे बन सके, उन पर वस्त्र पहनने का आग्रह नहीं लगाना चाहिए। मेरा कहना यह है कि जब छोटे बच्चे, सात-आठ साल के बच्चे, घर में हों तब तक तो हमें बिल्कुल आग्रह नहीं लगाना चाहिए। वे नंगे घर में घूम सकें, खेल सकें। तेरह-चौदह साल के भी बच्चे हो जायें और घर के बाथरूम में नंगे नहाना चाहें तो उनको नहाने देना चाहिए। अगर तेरह-चौदह साल तक के बच्चे, लड़के और लड़कियां एक दूसरे के शरीर से परिचित हों तो शरीर के प्रति जो जुगुप्सा पैदा होती है, बाद में वह विलीन हो जायेगी। नहीं तो आज बहुत जुगुप्सा है, बहुत तीव्र इच्छा है एक दूसरे को देखने की। बूढ़े से बूढ़ा आदमी भी स्त्री को देखेगा तो उसकी आंखें उसके कपड़े में घुस जायेंगी। वह खोज उसकी बचपन से अटकी रह गयी है। वह इन्क्वायरी, वह पकड़ी है उसके दिमाग में और उसको खाये जा रही है।

आदिवासी के पास जाकर देखें तो उसको कोई फिक्र नहीं है।

मेरे एक मित्र कोई तीस वर्ष तक आदिवासियों के बीच रहे। उन्होंने कहा, जब शुरू-शुरू में मैं गया, तो अद्भुत बात देखने को मिली। आप आदिवासी स्त्री के स्तन पर हाथ रखकर पूछो कि यह क्या है, तो वह कहेगी कि यह बच्चे को दूध पिलाने के लिए है। बस इतना कहेगी, एक इंक्वायरी की बात है। हम पूछेंगे, यह क्या है तो वह कहेगी इससे बच्चे को दूध पिलाते हैं, यह स्तन है। अब यह स्वच्छता, लेकिन, हमारे मन में कैसे हो सकती है? यह हमारी कल्पना के बाहर है। मगर होना यही चाहिए। शरीर का कोई भी भाग किसी-न-किसी काम का है।

फिर एक तरफ हम दमन करते हैं और दूसरी तरफ हम नंगी तस्वीरें बनाते हैं, नंगी फिल्में बनाते हैं, नंगे पोस्टर बनाते हैं, नंगी किताबें छापते हैं। फिर उनसे हम तृप्ति लेते हैं देख-देखकर। अब मेरा कहना यह है कि अगर नंगा ही देखने की इच्छा है तो नंगा आदमी ही देख लो; वह अच्छा है, स्वस्थ है बजाय नंगी तस्वीर के। क्योंकि यह मेरी समझ है कि नंगा आदमी देखकर आप नंगा देखने की इच्छा से मुक्त हो जायेंगे, नंगी तस्वीर देखकर आप कभी मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि तस्वीर बहुत तरकीब से नंगी बनायी गयी है। उससे आप मुक्त

कभी नहीं हो सकते। वह आपको और पकड़ेगी, और खींचती चली जायेगी।

तो उसका भी शोरगुल मचाया कि मैं यह कहता हूं कि तेरह-चौदह साल के बच्चों को नंगा घुमाया जाना चाहिए। यह मैंने कभी नहीं कहा कि नंगा घुमाया जाना चाहिए। मेरा कहना यह है कि वस्त्रों पर रोक-टोक कम होनी चाहिए और कम से कम घर में भाई-बहिन तो नंगे बाथरूम में नहा सकें, इकट्ठे घर के कुएं पर नहा सकें। घर में तो इतनी बाधा न हो कि घर में बहन या भाई कपड़ा बदलें तो बहुत डरें और दीवार के पीछे जायें। अगर बच्चे देख लें मां-बाप को नंगा, बच्चे एक दूसरे को नंगा देख लें तो नंगा देखने की जो तीव्र आकांक्षा है, वह क्षीण हो जायेगी। और वह क्षीण हो जाये तो नंगा पोस्टर विलीन हो जायेगा अपने आप, नंगी फिल्म विलीन हो जायेगी।

अब एक तरफ हमारे साधु-संत कहते हैं कि नंगा पोस्टर नहीं होना चाहिए, एक तरफ कहते हैं कि नंगी फिल्म नहीं बननी चाहिए, नंगी किताबें नहीं लिखी जानी चाहिए, और दूसरी तरफ आदमी को ढांकते चले जाते हैं। अब इन दोनों बातों में विरोध है। वह इसी नंगे आदमी को देखने की इच्छा वहां पूरी की जा रही है। उनको बिगाड़कर तो रखा ही जा सकता है।

अभी कल मुझे बम्बई में एक कार्टून में दिखलाया है, वह किसी गुजराती अखबार में निकला है। गांधीजी का एक चित्र है और एक बूढ़ी चरखा कात रही है; नीचे दर्शनी लिखा हुआ है। और मेरा एक चित्र है और दो नंगे लड़के और लड़कियां खड़े हुए हैं; नीचे दार्शनिक लिखा हुआ। दिखाया यह गया है कि मैं चाहता हूं कि आदमी नंगे खड़े हो जायें। और मजा यह है कि मैं यह चाहता हूं कि आदमी का नंगापन मिट जायें।

और नंगापन पैदा किया है हमारे छिपाने ने। जितना हमने छिपाया, आदमी उतना नंगा हो गया। और कपड़े, यदि सोचते हैं, छिपाने के लिए हैं तो आप बिल्कुल गलती में हैं। कपड़े हजारों साल से उघाड़ने के काम में आ रहे हैं। एक नंगी औरत इतनी खूबसूरत कभी नहीं होती, जितनी कपड़ों में बांधकर, खड़ी होकर दिखायी पड़ती है। नंगी औरत से आप घबरा जायेंगे, थोड़ी देर में कहेंगे, देवी, कपड़ा पहन लो। लेकिन वह जो कपड़े में छिपी औरत है, वह आपकी जिज्ञासा को जगाती चली जाती है, जगाती चली जाती है। औरत का पचास परसेंट सौंदर्य तो कपड़े देते हैं। और जितनी समझ बढ़ती जा रही है कपड़े की बाबत, उतनी औरत सुन्दर होती चली जा रही है। औरत सुन्दर-बुन्दर नहीं है, शरीर में क्या सुन्दर जैसा होने वाला बहुत-कुछ है? कपड़े उघाड़ रहे हैं शरीर को, छिपा नहीं रहे हैं। और कपड़े उघाड़-उघाड़ कर शरीर को ही बता रहे हैं।

और सारी कपड़ों की टेकनीक अब जो रह गयी है, वह यह है कि कपड़ा शरीर को कितना नंगा कर दे। इसकी तरकीब है पूरे कपड़े के साथ। नंगा शरीर

इतना नंगा कभी भी नहीं होता, जितना कपड़ों में तरकीब से दिखाया गया शरीर नंगा होता है। क्योंकि आदमी की क्यूरिऑसिटी, उसका कुतूहल जगाने के लिए कुछ रास्ते हैं। कुछ दिखाओ, कुछ छिपा लो तो आदमी को क्यूरिऑसिटी बढ़ जाती है। पूरा दिखा दो तो क्यूरिऑसिटी खत्म हो जाती है। तो शरीर की अब जो तरकीब चल रही है सारी दुनिया में, उसमें यह है कि कुछ छिपाओ, कुछ दिखाओ। वह जो कुछ दिखाओ, उसमें जो छिपा है, उसको देखने की प्रवृत्ति और बढ़ती है।

प्रश्न—अस्पष्ट

हां, वह सब निकलेगा, वह निकलेगा ही। क्योंकि हम शरीर को देखना भी चाहते हैं नंगा और दिखाना भी चाहते हैं। दोनों बातें ख्याल रख लें। वे हमारे स्वभाव के हिस्से हैं। हम देखना भी चाहते हैं और दिखाना भी चाहते हैं। और जब इन दोनों स्वाभाविक इच्छाओं को दबाये हुए हैं, तो फिर हम तरकीब निकालेंगे। अब झूठे स्तन बाजार में बिकते हैं, जिनको स्त्री लगा ले और दिखायी पड़े। आप हैरान होंगे कि यूनान में झूठी पुरुष की जननेंद्रियां भी बिकती हैं जो वह फुलपैंट के ऊपर लगा ले और फुलपैंट पर से दिखायी पड़े कि उसकी जो जननेंद्रिय है, वह बहुत बड़ी है।

अब इसको मैं नंगापन कहता हूं। यह हद पागलपन हो गया है। यानी यह तो पागलपन की बात हो गयी। ये जो कपड़े चुस्त होते जा रहे हैं, ये शरीर को दिखाने के लिए हैं, कि शरीर दिखना चाहिए भीतर से कि शरीर कैसा है। और कपड़े चुस्त से चुस्त होते चले जा रहे हैं। और उन चुस्त कपड़ों में नंगे शरीर को दिखाने की आकांक्षा तीव्र होती चली जा रही है। देखने की भी इच्छा है, दिखाने की भी आकांक्षा है। और हम सबको जाल में छिपाते हैं और सीधी-साफ बात करना नहीं चाहते हैं।

तो कठिनाई तो है, जो मैं कह रहा हूं उसमें कठिनाई तो है। उसको बिगाड़-कर भी रखा जा सकता है, उसके खिलाफ भी हलचल मचाई जा सकती है। लेकिन वही मैं कहूंगा कि जो मुझे ठीक लगता है। वह कहना चाहिए। और कुछ लोगों को हिम्मत करनी चाहिए कि वे कहें। तो शायद समाज धीरे-धीरे सोचने-विचारने को राजी हो, कुछ तो समझ बढ़े।

प्रश्न—अस्पष्ट

वे तो करेंगे। जब तक वाद चलेगा, तब तक वाद अग्रेसिव होगा, आक्रमक होगा। क्योंकि वाद के लिए संस्था चाहिए, अनुयायी चाहिए। और बाजार है अनुयायियों का। और आप दस अनुयायी हैं और तीन संस्था वाले हैं तो तीनों कोशिश करेंगे कि आप उनको मिल जायें। और ग्राहक के लिए चेष्टा में आक्रमण होगा। दुनिया में जब तक वाद हैं, तब तक आक्रमण जारी रहेगा। अगर वाद

ही मिट जायें तो आक्रमण मिट सकता है। अगर वाद ही मिट जायें तो आक्रमण मिट सकता है। और वाद मिट सकते हैं।

अगर हम एक-एक व्यक्ति को वह समझाने की कोशिश करें कि तुम वाद में मत पड़ना तो वाद मिट सकते हैं। हिन्दू बढ़ेगा तो मुसलमान पर आक्रमण जारी रहेगा। मुसलमान बढ़ेगा तो हिन्दू पर आक्रमण जारी रहेगा। क्योंकि दोनों दुकानदार एक ही बाजार में हैं और ग्राहक सीमित हैं। और उन्हीं को लाना है, ले जाना है। वह जारी रहेगा। अच्छी दुनिया पैदा करनी हो, तो वाद, धर्म, सम्प्रदाय, सब जाने चाहिए।

और कुछ कठिनाई नहीं है। और बीस साल के लिए मुल्क तय कर ले, और स्कूल और कॉलेज में बच्चों के दिमाग से हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और जैन होने का भाव मिटा दे, तो बीस साल में खत्म हो जाये दो हजार साल का पागलपन। इसमें कोई ज्यादा दिक्कत की बात नहीं है। लेकिन वह नहीं होता। वह तो स्कूल-कॉलेज में भी धर्म-शिक्षा देने की चेष्टा चलती है। वहां भी कोशिश चलती है कि उनको पकड़े रहो अपने जाल में, वे निकल न जायें। वे तो अग्रेसिव हैं।

प्रश्न—अस्पष्ट

नहीं, मैं उसका विकल्प नहीं कहता हूं, और न मैं उसके खिलाफ हूं। मेरा कहना है कि अगर ग्रामोद्योग और चरखा चले तो वह हमारी मजबूरी हो, सिद्धान्त नहीं। वह मजबूरी है हमारी। यानी अगर गांव में कोई दवा उपलब्ध नहीं है और आप होमियोपैथी की गोली खाते हैं तो मैं कहता हूं, यह मजबूरी है आपकी। लेकिन वह एलोपैथी का सब्स्टीट्यूट नहीं है। मेरा मतलब समझे न ? कोशिश तो हमारी एलोपैथी पैदा करने की होनी चाहिए। नहीं मिलती है तो हम राख भी खा लेते हैं किसी गुरु की। ठीक है, नहीं मिलने की हालत में ठीक है। भारत की मजबूरी हो चरखा अगर, तो मैं समझता हूं ठीक है। लेकिन सिद्धान्त नहीं है वह कि हमें उसके आधार पर इकोनॉमी या अर्थ व्यवस्था खड़ी करनी है। यह हमें जानना चाहिए कि इकोनॉमी तो हमें इण्डस्ट्री के आधार पर खड़ी करनी है। और आज नहीं कल चरखा चला जाये, इसकी कोशिश करनी है। चरखा रह न जाये। यानी हमारी चेष्टा तो यह रहेगी कि चरखा विलीन होता चला जाये। चेष्टा हमारी यह रहेगी कि ग्रामोद्योग न रहे। उद्योग इतना केन्द्रित हो, इतना विकसित हो, इतना ऑटोमैटिक हो, इतना टेक्नॉलॉजिकल हो कि छोटे-छोटे उद्योग न रह जायें। चेष्टा हमारी यह होनी चाहिए। मेरा मतलब आप समझे न ?

लेकिन मेरी बात को गलत समझा जाता है। मैं यह नहीं कहता कि आप चर्खे को आग लगा दें अभी। चर्खे कुछ काम कर रहे हैं, उनको करने दें। लेकिन चरखा मजबूरी है, जैसे बैलगाड़ी मजबूरी है। चेष्टा तो हमारी यह होगी कि बैलगाड़ी

नहीं बचने देंगे मुल्क में। हमारा लक्ष्य तो यह होना चाहिए कि बैलगाड़ी नहीं बचने देंगे। इसका मतलब यह नहीं है कि आज बैलगाड़ी जो भी कर रही है, उसको न करने दें और उसमें हम आग लगा दें। लेकिन ध्यान रहे कि हमको बैलगाड़ी हटा देनी है। उसकी जगह नये वाहन ले आने हैं।

लेकिन विनोबा और गांधी का मामला मजबूरी का नहीं है। विनोबा और गांधी के लिए तो बड़ी इण्डस्ट्री ही मजबूरी है। वह मिट जाये, इसकी चेष्टा वे करेंगे। आप मेरा फर्क समझे न? विनोबा और गांधी के लिए जो बड़ी इण्डस्ट्री है, वह मजबूरी है। छोटी इण्डस्ट्री ही होनी चाहिए।

और धीरे-धीरे बड़ी इण्डस्ट्री विकृत हो जाये, टूट जाये, बिखर जाये, विकेन्द्रित हो जाये और छोटी इण्डस्ट्री आ जाये, इसे मैं अवैज्ञानिक मानता हूं। पांच सौ परिवारों के लिए पांच चौके काफी हो सकते हैं। और पांच चौके कम खर्च के होंगे, ज्यादा सुविधा के होंगे। ज्यादा वैज्ञानिक हुआ जा सकता है। एक डायटीशियन रखा जा सकता है जो सारी जानकारी रखता हो खाना की बाबत। कम श्रम लगेगा, कम औरतें उलझेंगी। और औरतों को दूसरे काम में लगाया जा सकता है। सारी चीजें जितनी केन्द्रित होती हैं, उतना कम श्रम लेती हैं, उतनी ज्यादा सुविधा लाती हैं, ज्यादा वैज्ञानिक हो जाती हैं। अब हिन्दुस्तान भर में कारें बनें, यह बिल्कुल फिजूल बात है। एक नगर को कार बनानी चाहिए; पूरे मुल्क के लिए कार का काम पूरा होगा। उस गांव का शिल्प भी विकसित होगा। जब वहां कार बनेगी; दस-पांच पीढ़ियों तक तो वहां के लोग पैदाइश से कार बनाने के शिल्प को लेकर पैदा होंगे। उनमें दृष्टि होगी, खोज होगी, कुशलता होगी। सारे मुल्क में पचास कारखाने खड़े करने की जरूरत नहीं है।

जगत् का जो विकास है, वह केन्द्रीकरण की तरफ है। और जितनी केन्द्रित व्यवस्था होती है, वह उतनी धन उत्पन्न करने वाली व्यवस्था होती है। हिन्दुस्तान हमेशा से विकेन्द्रित है, इसलिए दरिद्र है। और अगर आगे भी विकेन्द्रित रहेगा तो दरिद्र ही रहेगा। क्योंकि धन पैदा होता है केन्द्रित टेक्नॉलॉजी से।

चर्खे से धन पैदा नहीं होता है, सिर्फ किसी तरह कपड़ा पैदा होता है। किसी तरह से तन ढंग सकते हैं आप। लेकिन चरखा धन पैदा नहीं कर सकता है, यह ध्यान रहे। और तन भी बहुत महंगा ढंकता है। क्योंकि अगर एक आदमी अपने लायक कपड़ा पैदा करना चाहे तो कम से कम चार घंटे रोज उसको चरखा चलाना है, तब वह अपने लायक कोट, कमीज, पायजामा, चादर, साल भर के लिए पैदा कर पायेगा। चार घंटे आदमी की जिन्दगी के सिर्फ कपड़े पहनने के लिए खर्च हो जायें, यह बहुत महंगा हो गया। यह आदमी की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ हो गया।

प्रश्न—अस्पष्ट

पूरे कपड़े का मतलब जरा दूसरा हो जायेगा। फिर गांधी जैसा कपड़ा पहनना पड़ेगा। मेरा मतलब समझे आप? फिर पूरे कपड़े का मतलब होगा गांधी जैसा कपड़ा पहनना। तब आधा घण्टा भी चरखा चलाना न पड़े। आदमी बिल्कुल कपड़ा न लगाये, महावीर जैसा कपड़ा पहने। फिर तो नंगा खड़ा हो सकता है। यह तो हमारे सिकोड़ने का सवाल है।

अगर आदमी को सिकोड़ना है तो मैं सिकोड़ने के पक्ष में नहीं हूं। मेरा कहना है, आदमी का स्वभाव विस्तार का है और आदमी प्रफुल्लित होता है विस्तार से। सिकोड़ने से कभी प्रफुल्लता नहीं होती। इसलिए साधु-संन्यासी आपको कभी प्रफुल्लित नहीं मालूम पड़ेंगे। हमेशा उदास और रोते हुए मालूम पड़ेंगे। जितना चित्त को आप सिकोड़ेंगे, उतना आप उदास होते चले जायेंगे। मैं इसलिए गांधीजी से सहमत नहीं हूं, रवीन्द्रनाथ से सहमत हूं। मैं रवीन्द्रनाथ से सहमत हूं। रवीन्द्रनाथ का कहना है कि कपड़ा इतना पहनें जिससे ज्यादा पहना न जाये। वे कोट ऐसा पहनेंगे जो जमीन छूना चाहे। और मुझे लगता है कि यह बात ठीक है।

आदमी को विस्तार का मौका देना चाहिए। बड़ा मकान होना चाहिए। छोटा मकान आदमी के दिमाग को भी छोटा करता है। कपड़े भी ढीले और बड़े होने चाहिए। बंधे हुए और छोटे कपड़े आदमी को सिकोड़ते हैं। एफ्लुएंस होना चाहिए आदमी के चारों तरफ, प्रचुर समृद्धि होनी चाहिए, उसे लगे कि सब है। लेकिन भारत की अब तक की दृष्टि जो है, वह है अपरिग्रह की—कम से कम, कम से कम। कम से कम दृष्टि मुल्क को दरिद्र बनाती है। मैं इसके पक्ष में नहीं हूं। मेरा कहना है कि ज्यादा से ज्यादा की दृष्टि मुल्क को समृद्ध बनाती है। क्योंकि जो दृष्टि होगी, वही हम करेंगे। अगर ज्यादा लाना है मुल्क में तो हम ज्यादा की चेष्टा करेंगे। अगर लाना ही नहीं है तो चेष्टा किसलिए करेंगे?

तो मैं गांधीजी और विनोबाजी की बात के विरोध में हूं। मैं सिकोड़ने के पक्ष में नहीं हूं। मेरा कहना है, मुल्क फैलना चाहिए। यह मैं जानता हूं कि मुल्क गरीब है। और हमारे कहने से नहीं फैल जायेगा, यह भी मैं जानता हूं। यह भी मैं जानता हूं कि मजबूरी में हमें चर्खे आदि साधनों का उपयोग करना पड़ेगा दस-बीस वर्ष। लेकिन ध्यान रहे, वह हमारी मजबूरी है और उनको मिटा देना है। उनको बचने नहीं देना है। यानी एक मुल्क हमें पैदा करना है जिसमें चर्खे की जरूरत नहीं होगी, जिसमें बैलगाड़ी की जरूरत नहीं होगी। यह मेरी दृष्टि है, जो मैं कह रहा हूं।

सिद्धान्ततः मैं पक्ष में नहीं हूं चर्खे के। मजबूरी की तरह स्वीकार करता हूं, नहीं तो स्वीकार नहीं करता। और यही फर्क है विनोबा और मेरी दृष्टि में। विनोबा के लिए तो सिद्धान्त है। और ऐसा होना चाहिए सारी दुनिया में, यह

ख्याल है। और यह भी ख्याल है कि ऐसा होगा तो दुनिया में शान्ति होगी। यह मेरा ख्याल नहीं है।

प्रश्न—अस्पष्ट

कोई यंत्र न तो मारक होता है, न तारक होता है। आदमी के हाथ में यह तय होता है कि क्या होगा। अभी इस पेंसिल को मैं मारक बना सकता हूं, इससे आपकी आंख फोड़ सकता हूं। यह पेंसिल अभी मारक हो जायेगी। मेरा मतलब समझे न! कोई यंत्र न तो मारक होता है, न तारक होता है। आदमी की बुद्धि यंत्र का उपयोग करती है। और आदमी मारक हो तो कोई भी यंत्र मारक है—कोई भी यंत्र। आप यह फोन उठाकर किसी की जान ले सकते हैं, खोपड़ी फोड़ सकते हैं। यह सवाल नहीं है। यह सब जो तरकीबें हैं न। यह यंत्रों से बचाव के लिए वे हिसाब बांधते हैं कि इतने यंत्रों से बचें, इतने यंत्रों से बचें। एटम बम भी मारक नहीं है। वह किनके हाथ में है, यह सवाल है।

और मेरी अपनी दृष्टि यह है कि कोई यंत्र मारक नहीं है। यंत्र कैसे मारक हो सकते हैं, जब तक आप नहीं मारेंगे? सारे यंत्र साधक हैं। आदमी को हमें बनाने की जरूरत है; आदमी को विकसित करने की जरूरत है। उसकी शांति और प्रेम को बढ़ाने की जरूरत है, ताकि वह यंत्रों का मारक उपयोग न करे। और नहीं तो संन्यासी जो डण्डा लेकर चलता है, उससे भी वह आपकी खोपड़ी फोड़ सकता है। यह सवाल नहीं है। यह जो विनोबाजी कहते हैं कि मारक और तारक क्या है, वे कुछ मतलब की बातें नहीं हैं। कुछ मारक-वारक नहीं है।

प्रश्न—अस्पष्ट

शोषण की शक्ति आदमी में है, यंत्रों में नहीं है। यंत्र में नहीं है शोषण की शक्ति। यह भी विनोबा और गांधी गलत बातें कहते हैं। किसी यंत्र में शोषण की शक्ति नहीं है। शोषण की शक्ति आदमी में है। वह यंत्र अगर समाजवादी समाज हो तो शोषक नहीं होगा, और पूंजीवादी समाज हो तो शोषक होगा। तो वे पूंजीवादी समाज को मिटाना नहीं चाहते हैं, यंत्र को मिटाना चाहते हैं? यह फिर बेईमानी की बातें हैं। अगर यंत्र शोषक है तो इसका मतलब है कि वह शोषकों के हाथ में है। तो शोषकों के हाथ से तो छीनना नहीं है, उनको तो ट्रस्टी बनाना है और यंत्र को मिटाना है। बड़ी अजीब बातें कर रहे हैं आप। यंत्र रूस में शोषक नहीं है, हिन्दुस्तान में शोषक है। तो हिन्दुस्तान में यंत्र कोई खास ढंग का होता है? यंत्र शोषक रहेगा, अगर शोषकों के हाथ में है। यंत्र शोषकों के हाथ में नहीं रहना चाहिए, समाज के हाथ में रहना चाहिए। मगर गांधी और विनोबा इसके लिए भी राजी नहीं होते कि यंत्र समाज के हाथ में रहे। वे इसके लिए राजी हैं कि यंत्र ही न रह जाये। यह बड़ी अजीब बात है।

प्रश्न—अस्पष्ट

आप मेरी बात समझे कि नहीं? मेरा कहना यह है कि आदमी के पास जिन्दगी बहुत छोटी है और बेवकूफियों में गंवाने के लिए नहीं है। वह अपना मकान भी बनाये, वह अपना जूता भी बनाये, वह अपना कपड़ा भी बनाये, ये पागलपन की बातें हैं। आदमी के पास जिन्दगी इतनी थोड़ी है कि इस थोड़ी जिन्दगी को हमें लम्बा करना चाहिए। अगर एक आदमी पचास साठ साल जीता है तो बीस साल तो सोने में निकल जाते हैं। बीस साल उसके दाढ़ी बनाने, कपड़ा धोने, जूता साफ करने और बाजार जाने में निकल जाते हैं। बीस साल बचते हैं केवल, दफ्तर में नौकरी करता है, शत्रुओं से लड़ता है, मित्रों से पूछताछ करता है, सोसाइटियां बनाता है। आदमी के पास वक्त नहीं बचता है कि ऊंची उड़ानें ले सके।

आपको पता है कि दुनिया में जो भी समृद्ध घर हैं, या समृद्ध परिवार हैं, उन्होंने ऊंची उड़ानें लीं। बुद्ध कोई भिखमंगे के घर में पैदा नहीं होते हैं। और न महावीर भिखमंगे के घर में पैदा होते हैं। ये सारे के सारे करोड़पतियों के घर में पैदा होते हैं, जहां लक्जरी की, विलास की पूरी व्यवस्था है। तब मन को उड़ने का मौका है। आप पक्का समझ लीजिये कि अमरीका में वैज्ञानिक पैदा होगा। विचारक पैदा होगा। वह रूस में पैदा होगा। यहां कहां से पैदा होगा? यहां रोटी खाने की तकलीफ है। समाज एफ्लुएंट होता है तो माइंड ऊपर जाता है। और गांधी-विनोबा की बात आप मान लें तो आदमी जूते की कीलें ठोंकता, साबुन बनाता और चरखा चलाता रह जायेगा। इससे ऊपर नहीं जा सकता।

प्रश्न—अस्पष्ट

मेरा कहना यह है कि समाज का जितना उत्पादन है, वह सारा का सार उत्पादन धीरे-धीरे ऑटोमेटिक टेक्नॉलॉजी के हाथ में चला जाना चाहिए।

प्रश्न—अस्पष्ट

बेकारी बढ़ेगी, अगर पूंजीवादी समाज रहेगा। अगर समाज पूंजीवादी है तो यंत्र के बढ़ने से बेकारी बढ़ेगी। अगर समाज समाजवादी है तो यंत्र के बढ़ने से आदमी को समय की सुविधा बढ़ेगी, बेकारी नहीं बढ़ेगी। जो आदमी आठ घण्टे काम करता है, वह छः घण्टे करेगा, चार घण्टे करेगा, तीन घण्टे करेगा। लेकिन अगर पूंजीवादी समाज है, तो यंत्र काम कर देगा कि दस आदमियों को बेकार कर देंगे और एक ही आदमी से काम चल जायेगा। अगर समाजवादी समाज है तो जितना काम दस आदमी करते थे, वह काम दस करेंगे आदमी ही, लेकिन कल आठ-आठ घंटे करते थे, आज दो-दो घंटे करेंगे। तो समाज बदलना चाहिए, यंत्र नहीं। यंत्र तो समाज के लिए बड़ा हितकारी है। हमें भी तकलीफ हो रही है, जैसे आपके यहां उपद्रव चलता है कि कोई मिल में अगर कम्प्यूटर लगाना है, फलां करना है या इंश्योरेंस वाले लाना चाहते हैं तो हमको तकलीफ होती है। वह तकलीफ पूंजीवादी समाज की है, कम्प्यूटर की नहीं है वह तकलीफ। कम्प्यूटर

लगता है तो काम हल्का हो जायेगा, कम हो जायेगा और आदमी के पास सुविधा बचेगी कि कुछ ज्ञान सीखे, कुछ खोजे, कुछ ध्यान करे, कुछ और करे, कुछ उसको सुविधा हो कि संगीत ही सीखे।

आप एक बात ध्यान में रखिये कि आदमी जो काम भी रोटी कमाने के लिए करता है, वह काम कभी आनन्दपूर्ण नहीं हो सकता। चाहे कोई विनोबा समझायें, दुनिया में कोई समझायें, रोटी कमाने वाला काम कभी भी आनन्दपूर्ण नहीं हो सकता। जो काम आदमी हॉबी की तरह, सुख की तरह करता है, वह आनन्दपूर्ण हो सकता है। एक आदमी सितार बजाये खुद ही तो एक बात है, और आप किसी से दो घण्टे की नौकरी देकर सितार बजवायें, बिल्कुल बात दूसरी हो जायेगी। बिल्कुल बात दूसरी हो गयी। आदमी की जिन्दगी में उतना ही आनन्द बढ़ता है, जितना वह अपनी मौज से कुछ कर सके। और मौज से कर सके, इसके लिए जरूरी है कि दुनिया में यांत्रिकता का अधिकतम विस्तार हो।

लेकिन यांत्रिकता खतरनाक सिद्ध होगी पूंजीवाद के लिए। पूंजीवाद में यांत्रिकता बढ़ेगी तो बेकारी बढ़ेगी। तो क्रांति की सम्भावना बढ़ती है और इसलिए मैं कहता हूं, गांधी-विनोबा की बात पूंजीवाद को बचाने के लिए सबसे कारगर तरकीब है। अगर समाज को पुराने यंत्रों पर ले जाया जा सके तो समाज पूंजीवाद के भी पीछे लौट जायेगा।

समाजवाद पूंजीवाद के आगे की मंजिल है। पीछे की मंजिल नहीं है वह। जब तक केन्द्रिय उद्योग न हों, पूंजीवाद पैदा नहीं होता है! और पूंजीवाद पैदा न हो तो समाजवाद भी नहीं आ सकता। अगर चरखा और यह सब मान लिया जाये, हालांकि कोई मानेगा नहीं, न कोई मानता है, तो समाज की स्थिति पूंजीवाद से पिछड़ी स्थिति हो जायेगी।

और अगर एक-एक आदमी चरखा कातने लगे तो यह जो प्रोलिटरियट का, मजदूर का जो वर्ग है, वह खत्म हो जायेगा। वह तो इसलिए पैदा हुआ है कि एक केन्द्रित उद्योग पैदा हुआ है। एक इण्डस्ट्री है, उसमें दस हजार मजदूर इकट्ठे हैं। वहां दस हजार मजदूर की ताकत हो गयी है—इकट्ठी। अगर घर-घर में चरखा हो जायेगा तो मजदूर की ताकत कम हो जायेगी, उसका इकट्ठा होना खत्म हो जायेगा। वह कहीं रह नहीं जायेगा। और अगर हम इस तरह सारे उद्योग को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ दें तो पूंजीवाद की जो व्यवस्था है, वह पीछे लौट जायेगी। तब सामंतवाद हो जायेगा। उस सामन्तवादी व्यवस्था से समाजवाद कभी नहीं आ सकता।

तो एक लिहाज से विनोबा से भी ज्यादा बिड़ला समाजवाद के लाने में सहयोगी हैं। अगर समझा जाये ठीक से तो विनोबा और गांधी से ज्यादा बिड़ला और डालमिया और साहू सहयोगी हैं समाजवाद के लाने में। इसलिए जितना पूंजीवाद

तीव्र होता है, जितना यन्त्र बढ़ता है, बेकारी बढ़ती है, नीचे का मजदूर बढ़ता है, उतनी क्रान्ति होने की सम्भावना रहती है। और वह क्रान्ति आयेगी। तो या तो यन्त्र कम करने पड़ेंगे या क्रान्ति लानी पड़ेगी। क्योंकि बढ़ते हुए यन्त्र समाज को बदलने के लिए मजबूर करते हैं। और आपको एक व्यवस्था लानी पड़ेगी, जिसमें कि यन्त्र आदमी को बेकार न कर सके, बल्कि आदमी को समय दे।

तो आप ठीक कहते हैं। अभी तो बेकारी बढ़ती है। लेकिन हमको समाज बदलना चाहिए, यन्त्र नहीं रोकना चाहिए। समाज बदलना चाहिए। बीमार को मार नहीं डालना चाहिए, बीमारी बदलनी है। यह तो बात ठीक है कि बीमार मर जाये तो बीमारी अपने आप खत्म हो जाती है। लेकिन इससे बीमार को मार डालने की कोशिश नहीं होनी चाहिए। यन्त्र को नहीं मार डालना है। यंत्र के कारण जो बीमारी पैदा हो रही है, वह यन्त्र के कारण नहीं हो रही है, वह पूंजीवाद की वजह से पैदा हो रही है। यानी मैं यह कहना चाहता हूं कि यन्त्र न तो खराब है, न मारक है, न विध्वंसक है। यंत्र का हम कैसा उपयोग करें और कैसा समाज हो, इस पर निर्भर करेगा सब कुछ। यन्त्र तो बढ़ते जाना चाहिए, समाज को बदलना चाहिए। समाज को बदलने से जो डरते हैं, वे कहेंगे यन्त्र को ही मत लाओ बीच में। क्योंकि वह आयेगा तो बदलाहट जरूरी हो जायेगी। ●

बड़ौदा, दिनांक १३ फरवरी १९६९

देख कबीरा रोया

(अप्रकाशित प्रवचन)

१२. समाजवाद का पहला कदम : पूंजीवाद

जैसे ही समाज में सुविधा बढ़ती है, सुख बढ़ता है, धन बढ़ता है, वैसे ही परेशानी बढ़ती है। जब आप भी सुखी थे तो आपने भी परेशान आदमी अनुभव किया। वह हरे राम जो आप भज रहे थे, वह आपके सुखी समाज ने पैदा किया था, वह गरीब आदमी ने पैदा नहीं किया था। वह बुद्ध या महावीर किसी अमीर घर के बेटे जाकर हरे राम कर रहे थे। गरीब आदमी इतने परेशान हों कि और परेशान होने का उसे उपाय नहीं है। इसलिए यह जो आप सोचते हैं, एस्केपिज्म नहीं है। यह सुविधा है—होता क्या है, कठिनाई क्या है? मुझे एक तकलीफ है। मुझे खाना नहीं मिलता है तो मेरा चौबीस घण्टा तो खाना जुटाने में व्यतीत होता है। मुझे रहने को मकान नहीं है तो मैं उसमें परेशान हूं, और मेरे सारे सपने ऐसे होते हैं कि मुझे खाना कैसे मिल जाये, मकान कैसे मिल जाये, कपड़ा कैसे मिल जाये, एक औरत कैसे मिल जाये?

जब मुझे यह सब मिल जाये, तब असली परेशानी शुरू होती है कि अब क्या? क्योंकि जब तक यह नहीं मिला है तब तक तो यह आशा रहती है कि एक अच्छी औरत मिलेगी, एक अच्छा मकान मिलेगा, एक कार होगी, तो सब स्वर्ग हो जायेगा। जब सब मिल जाता है तब पहली दफे सवाल उठता है, अब क्या? अब मिलने को कुछ भी नहीं, अब क्या करें? सारी कठिनाइयां तब शुरू होती हैं—अगर भगवान आपकी सारी इच्छाएं पूरी कर दे तो आप फौरन स्युइसाइड

कर लेंगे। और कोई उपाय नहीं रह जायेगा। आत्महत्या भी है, वह पूरी इच्छा हो जाने के बाद की इच्छा है। फिर करियेगा आप क्या? करने को कुछ भी नहीं बचता है। तो जहां-जहां समाज एफलुएन्ट होता है, वहां-वहां तकलीफ शुरू होती है।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि एफ्लुएन्ट समाज न हो। इसका मतलब यह है कि एफ्लुएन्ट समाज नयी तरह की तकलीफें पैदा करेगा। वह उसमें थोड़ा वक्त लग जाता है और वह जो बीच का गैप है वह तकलीफ कर गया होता है। और तकलीफों के भी स्तर होते हैं। एक गरीब आदमी की तकलीफ है, एक अमीर आदमी की तकलीफ है। दोनों में चुनना हो तो मैं कहूंगा, अमीर आदमी की तकलीफ चुननी चाहिए। गरीब आदमी की तकलीफ कभी नहीं चुननी चाहिए। एक गरीब आदमी की अनैतिकता है, एक अमीर आदमी की अनैतिकता है। अगर चुनाव करना हो तो मैं अमीर आदमी की इन्मॉरैलिटी को पसन्द करूंगा। आप जो कह रहे हैं, मैं उसके पक्ष में नहीं हूं। आप कहते हैं, हमारा आदमी बड़ा अच्छा है। हमारा आदमी बड़ा अच्छा गरीबी की वजह से है, और गरीबी की वजह से बड़ा अच्छा होना इतना बुरा है कि कोई हिसाब नहीं।

आपको सारी सुविधा हो और आप अच्छे आदमी हों, तो तब तो कुछ समझ में आता है। यानी मेरी छाती पर बन्दूक लगी हो और मैं चोरी न करूं तब मेरी नैतिकता का कोई मतलब नहीं है। मेरी छाती पर बन्दूक भी नहीं है और मैं चोरी नहीं करता, तब कुछ मतलब है। आपके, जिसको आप अच्छा आदमी कह रहे हैं उसको बुरा होने का उपाय कहां है? बुरा होने के लिए सुविधा चाहिए। बुरा होने का उपाय नहीं है। आप सिर्फ उपाय से रोके हुए हैं। मैं नहीं मानता हूं कि यह कुछ बहुत अच्छी बात है। और, फिर दूसरी बात यह है कि जब बेचैनी बढ़ती है, तब नयी दिशाओं में खोज शुरू होती है।

जिस दिन हम सारी दुनिया में आदमी की सर्वसामान्य तकलीफों को दूर कर देंगे उस दिन हम बड़ी-बड़ी नयी तकलीफों की ईजाद करेंगे, और वे नयी तकलीफें हमें नयी दिशाओं में खोज में ले जायेंगी। चांद पर ले जायेंगी, तारों पर ले जायेंगी, नये संगीत में ले जायेंगी, नये केमिकल्स और नये ड्रग्स में ले जायेंगी। धर्म, और फिलॉसॉफी, और पोयट्री और पेंटिंग सब में ले जायेंगी। वह सब सुविधा सम्पन्न आदमी की तकलीफें हैं जो अपने हाथ से वह पैदा कर रहा है।

लेकिन बड़े मजे की बात है, जो तकलीफ हमारे सिर पर आती है, वह बहुत दुखद होती है। जो हम पैदा करते हैं, वह फिर भी सुखद है। वह हमारी चॉइस है। अब एक आदमी है जिसको कुछ करने के लिए…वह पेन्ट कर रहा है। हो सकता है, पेन्ट करने में वह उतनी मेहनत कर रहा है, जितना कि मजदूर सड़क पर गड्ढा खोदने में न कर रहा हो। वह मजदूर कभी-कभी मौका देखकर आराम

भी करता है, कोई नहीं देखने वाला होता है तो सुस्ताता भी है। लेकिन यह आदमी दिन रात लगा हुआ है। इसको कोई नहीं कह रहा है कि तुम यह करो, लेकिन यह इसका अपना चुनाव है। और मैं मानता हूं कि सबसे अच्छा समाज वह है, जहां तकलीफें भी हमारे चुनाव से···हम चुनते हों, जो हमारे ऊपर से न आती हों। हमारे ऊपर जो न पड़ती हों। और यह बड़े मजे की बात है कि अगर मुझे कोई जबरदस्ती सुख भी देवे तो वह दुख हो जायेगा। और, अगर मैं अपनी मौज से दुख को भी चुन लूं तो वह सुख हो जायेगा। बहुत गहरे में मेरी चॉइस असली चीज है।

तो आज अमरीका में आपको जो दिखायी पड़ता है···अगर आज एक अमरीकी लड़का सड़क पर खड़े होकर और हिप्पी होकर, बीटल होकर भीख मांग रहा है तो यह उसकी चॉइस है। अगर हम भीख मांग रहे हैं, हमारी मजबूरी है। इन दोनों में इतना फर्क है कि इन दोनों की कभी आप एक साथ मत तुलना करना, ये एक चीजें नहीं हैं। अगर बुद्ध, एक राजा के लड़के को शौक आ जाता है और वह सड़क पर भीख मांगने लगता है तो यह उसकी मौज है। लेकिन एक गरीब का लड़का जब सड़क पर भीख मांगता है तो यह मौज नहीं है, इसलिए गरीब का लड़का जब भीख मांगेगा तो उसके चेहरे पर वह चमक नहीं हो सकती है, जो बुद्ध के चेहरे पर है। वे दोनों भीख मांग रहे हैं। और गरीब का लड़का सदा धोखे में पड़ेगा कि बुद्ध के चेहरे में जो चमक है वह मेरे चेहरे पर क्यों नहीं आती है? वह आ नहीं सकती।

बुद्ध ने तकलीफ को चुना है। यह कोई मजबूरी नहीं थी, यह कोई जबरदस्ती न थी। मेरा कहना यह है कि जिसको हम अपने मुल्क की गरीबी, और सदाचार और बड़ा अच्छा आदमी है, कहते हैं, सब झूठी बातें हैं। हम नाहक अपने को धोखा देने की कोशिश करते हैं और हमने बहुत सालों तक, हजारों साल तक धोखा दिया है, और यह धोखा हम अब भी जारी रखे हुए हैं। मैं नहीं कहता, किसी आदमी को गरीब होने का शौक है तो वह हो, लेकिन वह उसका चुनाव होना चाहिए। यानी मुझे एक झोंपड़े में रहना है, तो मुझे रोकना नहीं चाहिए किसी को कि मैं झोंपड़े में रहूं। लेकिन यह मेरा चुनाव होना चाहिए। झोंपड़े में मुझे रहना न पड़े। तब मजबूरियां शुरू हो जाती हैं, तकलीफें शुरू हो जाती हैं।

इस दफा पहली दफा ऐसा हुआ है अमरीका जैसे मुल्कों में, पहली दफा समृद्ध समाज पैदा हुआ है। इसलिए जो तकलीफें कभी-कभी कुछ लोगों को अनुभव हुई थीं, वह पूरे समाज को अनुभव हो रही हैं। यह बिल्कुल ही फेनॉमिनर है। इसकी हमें कल्पना भी न थी कि यह जो हो रहा है—यह नया मौका है दुनिया में। इसमें उनको भी समझ में नहीं पड रहा है कि क्या करें? उनका जो भारी रस है आपके संन्यासी में—सूडो-संन्यासी में भी एक रस है—उसका कुल कारण

इतना है कि वह अनुभूति के, सुख के नये रास्ते खोजने में संलग्न है। और वह एल० एस० डी० से कह रहा है, इससे मिलेगा, मैस्कलीन से कह रहा है, इससे मिलेगा। कोई कह रहा है ध्यान करने से, तो वह इसका भी प्रयोग करने को राजी है।

असल में पुराने सब दुख खत्म हो गये हैं। अब नया दुख पैदा करना जरूरी है, नहीं तो समृद्धि रुक जाती है। और पुराने सब सुख मिट गये हैं। अब नये सुख खोजने बहुत ज्यादा जरूरी हैं। अब नये सुख की खोज है। और मैं मानता हूं कि एक बड़ी क्रान्ति करीब है—यहां, जो कई तरह के नये सुख ला देगी, जो आदमी ने कभी नहीं जाने। अब, जैसे एल० एस० डी० का सुख भी बहुत नये तरह का सुख है, वह आदमी को ठीक उसकी पहचान कभी भी न थी। और बहुत बड़ी सम्भावना है, एक केमिकल्स रेवोल्यूशन हो जाने की। और कुछ न कुछ करना पड़ेगा, नहीं तो आदमी करेगा क्या? आदमी खाली नहीं बैठ सकता, उसको कुछ चाहिए करने को। हरि भजन करेगा और ध्यान सीखेगा।

और मेरा मानना है कि अगर गरीब आदमी हरि भजन करता है, तब वह हरि भजन भला करता हो, मन में उसके रुपया चलता है और अब मंदिर में जाकर जो झांझ-मंजीरा पीटता है, वह पीटता इसलिए है कि मेरे लड़के को नौकरी मिल जाये, मेरी पत्नी की बीमारी दूर हो जाये। मेरे घर में पैसा नहीं है, पैसा कैसे मिल जाये?

मैं ट्रेन में जाता हूं और मेरे सब मित्र छोड़ने जाते हैं तो वह जो हमारे ए० सी० कोच के सर्वेन्ट हैं, वह समझते हैं कि मेरे आशीर्वाद से कुछ हो सकता है। इधर से आप मुझे छोड़ते हैं, उधर वे मुझे पकड़ लेते हैं। कुछ न कुछ जरूर आपके पास होने चाहिएं, नहीं तो इतने लोग क्यों आपको छोड़ने आते? जब तक कोई लाटरी का नम्बर न बता पाओ, क्यों छोड़ने आये? तो एक नम्बर एक दफा बता दीजिये। और आप जिस भगवान की पूजा करने को कहें, वह हम करने को राजी हैं। अब इस आदमी को क्या मतलब है हरि भजन से?

हरि भजन जो है वह लास्ट लक्जरी है जो आदमी कर सकता है, यानी ऐसा आदमी, जिसको करने को कुछ भी नहीं रहा। जो बैठकर झांझ-मंजीरा पीट सकता है, सिर हिला सकता है, गीत गा सकता है, कोई तकलीफ नहीं है। इनमें बहुत बुनियादी फर्क है। जब एक आदमी को कुछ भी करने को नहीं है, तब वह परमात्मा से एक तरह का सम्बन्ध जोड़ सकता है, जो गरीब आदमी कभी भी नहीं जोड़ सकता है। बीच में उसकी गरीबी खड़ी ही रहेगी। और अगर परमात्मा भी उसे मिल जायेगा तो वह उससे कहेगा, एक पांच रुपये का नोट मुझे दे दो। आखिर करेगा क्या?

तो मैं मानता हूं कि गरीब आदमी धार्मिक हो ही नहीं सकता। वह जो

रिलिजस होना है, वह बहुत समृद्ध चित्त की सम्भावना है। गरीब आदमी की सम्भावना नहीं है। गरीब आदमी रिलिजस नहीं हो सकता है। रिलिजस से मेरा मतलब यह है कि जिन्दगी जहां काम नहीं रह जाती है और खेल हो जाती है, लीला हो जाती है। लीला हमारा शब्द है न! हम कहते हैं रामलीला या कृष्णलीला।

लीला का मतलब यह है कि जहां जिन्दगी खेल हो गयी है। अब जहां जिन्दगी को कोई काम नहीं है, अब जहां जिन्दगी एक आनन्द हो गयी है। जहां जिन्दगी का कोई साध्य नहीं है करने को, जहां होना ही आनन्द है। तो रिलिजस माइंड ऐसा आदमी, जो जहां है, वहां आनन्द में है। अगर वह पानी पी रहा है तो पानी पीना आनन्द है और नाचता है तो नाचना आनन्द है। ये किसी चीज के मीन्स नहीं हैं। आगे कोई एण्ड नहीं है, जिसको पाना है उसे, और जब कोई आदमी इस भांति जीने लगे कि उसका एक-एक क्षण आनन्द हो जाये। और वह तभी हो सकता है, जब मीन्स न रहें। जो कुछ भी हो सभी एंड्स हो जायें। तो रिलिजस माइंड ऐसे आदमी को कहता हूं, जिसकी पूरी जिन्दगी एक खेल हो गयी है। लेकिन यह गरीब आदमी के लिए नहीं हो सकता है। इसलिए मैं मानता हूं।

प्रश्न—अस्पष्ट

मैं आपकी बात समझा। एक व्यक्ति के सम्बन्ध में यह सम्भव है। समाज के सम्बन्ध में सम्भव नहीं है। जो मैं कह रहा हूं, वह समाज के लिए कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि हमें सभी लोगों को संगीत सिखाना पड़ेगा, तब वह संगीत सीखेंगे। आप कहते हैं, एक ऐसा आदमी है जिसने कभी नहीं सीखा है, लेकिन कुछ भी बजाकर संगीत पैदा कर लेता है, उसको मैं स्वीकार करता हूं। लेकिन वह इंडिविज्युअल एक्सेपशन है। सोसाइटी उसको मानकर नहीं चल सकती। मैं मानता हूं कि एक राममूर्ति जैसा आदमी हो सकता है, लेकिन अगर किसी दूसरे व्यक्ति को होना है तो।

प्रश्न—यह तो परस्पर विरोधी हैं। आप मानते हैं कि जैसे-जैसे समृद्धि बढ़ेगी, वैसे-वैसे दुख बढ़ेगा।

गरीबी जो है, वह दुख नहीं है, कष्ट है और इन दोनों में थोड़ा फर्क कर रहा हूं। गरीबी कष्ट है अभाव का। पेट में रोटी नहीं है, शरीर पर कपड़ा नहीं है, दवा चाहिए, दवा नहीं है। गरीब अभाव से है। कष्ट जो है बिल्कुल फिजिकल बात है और दुख बिल्कुल ही साइकोलाजिकल बात है। जब कष्ट हमारे खत्म हो जाते हैं, तब दुख शुरू होता है। एक आदमी दुखी हो सकता है, कष्ट उसे बिल्कुल नहीं है। उसके पास मकान अच्छा है, खाना अच्छा है, कपड़ा अच्छा है, सब हैं उसके पास, और वह कहता है, मैं बहुत परेशान हूं।

गरीबी को मैं मानता हूं, कष्ट की अवस्था है। अमीरी को मैं मानता हूं, दुख की अवस्था है। दुख की अवस्था को मैं कष्ट की अवस्था से श्रेष्ठ मानता हूं, क्योंकि वह ज्यादा भीतरी दुख है। तो जिस तल पर हमारा दुख होता है, उसी तल पर हम सुख भी पा सकते हैं। अगर गरीब को कोई सुख मिलेगा, तो उस सुख में सुविधा है। उसको रोटी है, भूख लगी है, भूख में तकलीफ हो गयी। आपने उसको रोटी दे दी तो रोटी से कोई सुख नहीं मिलने वाला है, सिर्फ दुख मिट जाने वाला है। सुविधा मिलेगी। लेकिन अगर दुख है आपके भीतर और वह दुख हल हो जाये, तो आपको सुख मिलेगा।

जितने ऊंचे तल पर हमारा दुख होगा उतने ही ऊंचे तल पर हमारे सुख की सम्भावना होती है। गरीबी को मैं मानता हूं कि वह कष्ट है, और कष्ट में किसी आग्रह का होना क्राइम है। हम सब भी जिम्मेदार हो जाते हैं उसके। हां, दुख में, किसी आदमी का होना उसकी बिल्कुल निजी बात है। इसलिए दुख के लिए, मैं आपके दुख के लिए जिम्मेवार नहीं रहता। आपके कष्ट के लिए मैं जिम्मेदार हो सकता हूं। तो समाज की ऐसी व्यवस्था तो करनी चाहिए, वहां कष्ट में कोई न रह जाये। लेकिन समाज ऐसी व्यवस्था कभी भी नहीं कर सकता है, जो दुख में···क्योंकि दुख बिल्कुल आपकी व्यक्तिगत और निजी बात है। और उसके लिए समाज कुछ भी नहीं कर सकता है। आपको कुछ करना पड़ेगा। और इसमें विरोध नहीं है। विरोध इसलिए है कि हम दुख और कष्ट को एक समझ रहे हैं। यानी मेरी अपनी समझ यह है कि मुझे दुख का अनुभव ही तब होता है, जब कष्ट समाप्त हो जायें।

समझ लीजिए कि मैं यहां बैठा हूं और यह आवाज आ रही है, बिजली की आवाज आ रही है और मेरे पैर में भारी दर्द है, मुझे यह आवाज सुनायी पड़ने वाली नहीं है। और मेरे पैर का दर्द ठीक हो गया, वह मुझे आवाज सुनायी पड़नी शुरू हो जायेगी। हमारे जो दुख हैं उनको अनुभव करना भी एक ऊंचाई की बात है।

अब जैसे बुद्ध को यह लगता है कि जीवन का क्या अर्थ है? यह हमेशा भरे पेट आदमी को सवाल उठता है। यह खाली पेट आदमी को सवाल नहीं उठता कि जीवन का क्या अर्थ है? क्योंकि सवाल उठता है कि रोटी कहां है? लाइफ के मीनिंग से होना और नहीं मीनिंग के होने का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि लाइफ के बचाने का सवाल है। जब लाइफ बच जायेगी तब हम समझेंगे कि मीनिंग क्या है? अभी तो अगर मेरी लाइफ को अगर बचाने का सवाल हो, तो मैं यह पूछने नहीं जाता। किसी गरीब आदमी ने कभी नहीं पूछा कि जीवन का अर्थ क्या है? गरीब आदमी पूछता है कि रोटी कहां है? कपड़ा कहां है, मकान कहां है? हां, जब यह सब मिल जायेंगे तब वह पूछेगा कि जीवन का क्या अर्थ

क्योंकि हमारे जिन्दगी के भी तल हैं और इसलिए मैं मानता हूं कि गरीब से इस प्रश्न पर नहीं रह जाना चाहिए।

कष्ट का मतलब है, अभाव। जो चीजें जरूरी हैं आदमी के लिए—जैसे भोजन है, कपड़ा है, छाया है, ये जरूरी चीजें हैं, जिनके बिना जिन्दगी सर्वाइव नहीं करेगी। यानी ऐसा समझ लीजिए कि उस सीमा तक मैं कष्ट कहूंगा, जब तक आप लाइफ का मीनिंग नहीं पूछते हैं। यानी जब तक आप यह पूछने नहीं आ जाते हैं कि जिन्दगी का मतलब क्या है, तब तक मैं कहूंगा, आप कष्ट में हैं। और जैसे ही आपको खाना, कपड़ा, रहना, सारी सुविधा मिल गयी, आप पूछने ही वाले हैं कि जिन्दगी का मतलब क्या है, जिन्दगी का अर्थ क्या है? क्या है, किसलिए जी रहे हैं? जब तक आप पूछते हैं हम कैसे जियें, तब तक मैं कहूंगा, आप कष्ट में हैं। जिस दिन पूछने लगें कि हम कैसे जियें? और जीना तो हमें मिल गया है, हम कैसे जियें, जीने से मिलेगा क्या? होगा क्या? तब मैं कहूंगा, आप कष्ट के बाहर आये और दुख की दुनिया शुरू हुई। दुख के भी बाहर जाया जा सकता है।

रिलिजस आदमी है, उसको मैं कहता हूं, दुख के भी बाहर गया है। अमीर आदमी है, उसको कहता हूं, वह कष्ट के बाहर गया। धार्मिक आदमी उसको कहता हूं जो दुख के भी बाहर गया। लेकिन दुख के बाहर जाने के लिए दुख में होना तो पहली शर्त है। इसलिए गरीब आदमी दुख के बाहर नहीं जा सकता। वह अभी दुख में ही नहीं आया। वह दुख के रैल्म से गुजरना भी जरूरी है, वह भी एक सफरिंग है अनिवार्य, जिससे हमारी मैच्युअरटि आती है। और आज तो यह सम्भावना हो गयी है कि अब दुनिया में कोई आदमी कष्ट में न रहे। पहले तो यह सम्भव नहीं था। आज यह सम्भव है।

आज अब कोई कठिनाई नहीं रह गयी कि कोई आदमी कष्ट में न रहे। इसका उपाय हो सकता है। और मैं मानता हूं कि दुख में होना बड़ी भारी घटना है। हर आदमी को दुख से गुजरना ही चाहिए, क्योंकि तभी वह दुख के पार जा सकेगा, नहीं तो बियॉन्ड जायेगा कैसे? उसे दुख से गुजरना चाहिए। उसे जिन्दगी के सारे गहरे सवाल उठने चाहिए, जिनका कोई उत्तर नहीं है। उसे ऐसे जिन्दगी के सवाल उठने ही चाहिए जो कि कुछ भी मिलने से पूरे नहीं होंगे। उसे किसी ट्रान्सफार्मेशन से गुजरना पड़ेगा, तभी वह रिलीजस हो पायेगा।

यानी मैं यह मानता हूं, गरीब समाज धर्म का ढोंग कर सकता है, धार्मिक हो नहीं सकता। अमीर समाज में ही धर्म के होने की सम्भावना खुलती है। इसलिए, जो मैं कह रहा हूं वह समाज को ध्यान करके कह रहा हूं। एकाध व्यक्ति के लिए नहीं कह रहा हूं। इतने ज्यादा सेंसिटिव लोग हो सकते हैं कि दूसरे आदमी को अमीर देखकर भी उनकी अमीरी बेकार होगी, इसमें बहुत कठिनाई नहीं है।

यह व्यक्ति के लिए सम्भव है कि मैं आपकी अमीरी देखकर अमीरी के चक्कर के बाहर हो जाऊं क्योंकि मैं पाऊं कि आदमी तो दुख में ही है। मगर इतना संवेदनशील होना बहुत मुश्किल बात है। लेकिन कभी-कभी घटना घटती है। और जिनको आप कहते हैं कि आमतौर से हमारे जो माने हुए रिलीजस हैं, उनको। उसमें तो सौ में से नब्बे तो माने हुए ही हैं। लेकिन हमारे मानने को भी हमने मापदण्ड ईजाद किये हुए हैं।

एक गरीब समाज है—गरीब समाज उस आदमी को आदर देना शुरू कर देता है, जो अपने हाथ से अपने ऊपर कष्ट ले। उसको गरीब समाज आदर देता है। क्योंकि गरीब आदमी के लिए जो सबसे बड़ी कठिन चीज है, वह कष्ट को झेलना है। अगर कोई भी आदमी अपने आप कष्ट झेलने लगे, तो गरीब समाज उसको बहुत आदर देगा। अगर कोई आदमी पैदल चलने लगे, तो वह उसको महात्मा कहेगा। अगर कोई आदमी भूखा रहने लगे, उपवास करने लगे, तो वह उसके पैर छुयेगा। कोई आदमी नंगा खड़ा हो जाये, तो वह कहेगा, यह परम ज्ञानी है।

उसका कारण कुल इतना है कि जो चीजें वह नहीं सह पा रहा है और बड़ी तकलीफें दे रही हैं, उस आदमी को, यह आदमी सहर्ष स्वीकार कर रहा है। इस तरह के जो लोग हैं, जो अपने को कष्ट देने की चेष्टा में लगे हुए हैं, मैं मानता हूं, पैथोलॉजिकल हैं।

मनुष्य अगर ठीक से स्वस्थ हो तो न अपने को कष्ट देना चाहेगा, न दूसरों को कष्ट देना चाहेगा। और अगर आदमी के दिमाग में कुछ बीमारी हो, तो दो ही रास्ते हैं—या तो वह दूसरों को तकलीफ दे या खुद को तकलीफ दे। पैथोलॉजिकल है वह आदमी। उसके दो ही रास्ते हैं, या तो वह किसी को सताने की कोशिश करे, या तो हिटलर जैसा हो जाये, या गांधी जैसा हो जाये। ये दोनों ही मेरे हिसाब से एक ही तरह के लोग हैं। उसी को मैं मैच्युअर कहूंगा, जो आदमी न किसी दूसरे को तकलीफ देने की कोशिश में लगा हुआ है, न अपने को तकलीफ देने की कोशिश में लगा है। लेकिन इस तरह के आदमी को आपको पहचानना मुश्किल हो जायेगा। पहचानना इसलिए मुश्किल हो जायेगा…हम दो तरह के आदमी पहचान लेते हैं। हम पहचान लेते हैं कि यह आदमी दूसरे को सता रहा है, तो भी हम पहचान लेते हैं कि बुरा आदमी है। और इसी बुरे आदमी से हमने एक परिभाषा निकाली है, जो अपने को सता रहा है, वह अच्छा आदमी है।

लेकिन जो सता रहा है, वह मेरी दृष्टि में बुरा आदमी है, चाहे वह किसी को सता रहा हो, चाहे अपने को, चाहे दूसरे को।

प्रश्न—अस्पष्ट

असल में जिन्दगी में सब तरह से साइमलटेनियस है। बात-चीत हमें उनको

टुकड़ों में तोड़ लेना पड़ता है। जिन्दगी में सब तरफ से साइमलटेनियस है। जब आप जवान हो रहे हैं, तब आप बूढ़े भी हो रहे हैं, साइमलटेनियसली, आप सिर्फ जवान नहीं हो रहे हैं, साथ में बूढ़े भी हो रहे हैं। जब आप जिन्दा हैं, तब आप मर भी रहे हैं, साइमलटेनियसली। जिन्दगी जो है वह तो साइमलटेनियसली हैं। यहां सब चीजें एक साथ हो रही हैं। और इसलिए जब हम बात-चीत करते हैं, बात-चीत साइमलटेनियस नहीं हो सकती। उसमें हिस्सों में तोड़ लेने पड़ते हैं। जब हम एक आदमी से कहते हैं, जिन्दा है, तब एक मतलब होता है। जब हम कहते फलां आदमी मर गया है तो दूसरा मतलब है। हालांकि ये दोनों घटनाएं एक साथ ही घट रही हैं।

यह जो पैथोलॉजिकल माइंड है, या तो किसी को सता रहा है, या खुद को सता रहा है। अब तक हमने पूरे इतिहास में, एक ही तरह के लोग पैदा किये हैं, बड़ी संख्या में, दूसरे को सताने वाले लोग पैदा किये हैं और खुद को सताने वाले लोग पैदा किये हैं। दूसरे को सताने वाले को हम गालियां दे रहे हैं, बुरा कह रहे हैं। अपने को सताने वाले को हम भला कह रहे हैं।

वह जो सौ में से नब्बे हमारे जो महात्मा हैं, वे इस तरह के बीमार लोग हैं। असल में, इतना कष्ट है समाज में कि हम किसी महात्मा को भी सुखी नहीं देख सकते। महात्माओं को हम हंसने नहीं देते। हंसना बड़ा जुल्म होता है। अब जीसस के बाबत ईसाई कहते हैं, ही नेवर लाफ्ड, हंसे नहीं कभी। और मैं मानता हूं कि अगर जीसस नहीं हंस सकते तो कौन हंसेगा ? यानी जीसस को हंसना चाहिए, जरूर हंसते हैं। लेकिन ईसाई नहीं हंसने देंगे। अगर महावीर हंसते हुए मिल जायें, तो जैन नाराज होते हैं। वे कहेंगे कि कुछ गड़बड़ हो गया है। हमारा तीर्थंकर कुछ बिगड़ गया है। कुछ गलत सोहबत में पड़ गया है। बिलकुल असम्भव है कि हम महावीर को हंसता हुआ सोचें। कठिन हो जायेगा। इतने कष्ट में समाज गुजरा है कि हम एक तरफ से सेडिस्ट पूजा कर रहे हैं—जीसस की हम पूजा कर रहे हैं, सूली पर लटका कर ! वह हमारे मन में जो कष्ट इतना भारी है कि उसने पूजा की जगह ले ली है, वह वर्शिपिंग है, वह सेन्टर बन गया है। और इसे किसी तरह छोड़ना पड़ेगा। किसी तरह हमें दुख की जगह सुख को केन्द्र पर लाना चाहिए।

प्रश्न—शायद आप कहते हैं सुख में आना या दुख में जाना आसान है, लेकिन दुख से सुख में आना शायद अधिक कष्टकर है ?

नहीं, सोमानी जी, बात बहुत उल्टी है। कष्ट से सुख में जाना बहुत कठिन है, क्योंकि आप अकेले पर निर्भर नहीं करता है, पूरी समाज की व्यवस्था पर निर्भर करता है, पूरे ढांचे पर निर्भर करता है।

प्रश्न—आज के समाज में भी ?

हर हालत में, हर समाज में। धीरे-धीरे कम होता जायेगा, लेकिन हर समाज में अक्सर तो यह हालत रही है कि आपको अगर धनी होना है तो बड़ा संघर्ष है। इस संघर्ष में दूसरे पर भी ध्यान रखना जरूरी है। अगर आपको बड़ा मकान बनाना है, तो आपके चारों तरफ जो छोटे मकान हैं उनको गिराना पड़े, या न गिराना पड़े, तो उनसे रक्षा का इन्तजाम करना पड़े, पुलिस वाले बीच में खड़े करने पड़ें। हुकूमत ऐसी बनानी पड़े कि वह आपके मकान में न घुस आयें, सारा इन्तजाम करना पड़ेगा।

मैं यह कह रहा हूं कि कठिन है कष्ट से सुख में जाना, क्योंकि कष्ट से सुख में जाने में दूसरे भी इन्वाल्वड हैं। लेकिन दुख से आनन्द में जाना बहुत सरल हैं क्योंकि वह बेसिकली इंडिविजयुअल है, उसमें कोई इन्वाल्व नहीं है। किसी से मुझे पूछना नहीं है, किसी सरकार से नहीं, किसी समाज से नहीं, किसी पड़ोसी से नहीं। वह बिलकुल निजी मेरी बात है। इसलिए उससे ज्यादा सरल कुछ भी नहीं है। लेकिन होता क्या है, हमें वह कठिन मालूम पड़ता है। और कठिन हमें इसलिए मालूम पड़ता है कि हमने कष्ट से सुख में जाने के लिए जो-जो तरकीबें अख्तियार की हैं, वे कोई भी तरकीबें वहां लागू नहीं हैं। और वह हमारी आदत बन गयी है, वह हमारी टेक्नोलॉजी है। जिससे हम कष्ट से सुख में चले आये उसमें जिन्दगी गुजर जाती है और हमारी खास तरह की आदत बन जाती है। वह आदत तोड़नी मुश्किल हो जाती है।

प्रश्न—मैं यह तर्क कर रहा हूं कि देखा नहीं जाता है—एक करोड़ में एक आदमी दुख से सुख में जाता हो ?

उसका कारण वही है। और भी बहुत कारण हैं। जैसा कि अभी एस्केपिज्म की आपने बात की—आमतौर से जिसको हम दुखी आदमी कहें, वह आनन्द की तलाश कम करता है, दुख को भुलाने की तलाश करने लगता है, तब वह कभी भी नहीं जा पायेगा। लेकिन एक दुखी आदमी है, न वे चिन्ताएं हैं, परेशानियां हैं, जिन्दगी में कोई अर्थ मालूम नहीं पड़ता है, और ऊब मालूम पड़ती है। कल क्यों न उठूं सुबह, यह भी समझ में नहीं आता, कोई जरूरत भी नहीं मालूम पड़ती। कोई नहीं मालूम पड़ता जिससे प्रेम करो···कोई नहीं मालूम जिसके प्रेम से कोई आनन्द मिल जायेगा, कुछ भी नहीं मालूम पड़ता है।

तो ऐसे आदमी के सामने दो ऑल्टर्नेटिव हैं—इसीलिए शराब और धर्म की बहुत गहरी लड़ाई है, और कोई कारण नहीं है। दो ऑल्टर्नेटिव हैं उसके सामने या तो यह है कि वह अपने भूलने की किसी तरकीब में लग जाये कि कल सुबह वह उठे तो उसे पता ही न हो कि वह कौन है ? वह फिर सुबह उठ आये। सांझ होते-होते जब तक उसे पता चले कि मैं वही चिन्तित और परेशान आदमी हूं, तब वह फिर शराब पी ले, फिर कुछ कर ले और सो जाये। शराब हो, सेक्स

हो, सिनेमा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। भजन कीर्तन हो, उसमें भी अगर वह भुलाने की कोशिश कर रहा हो तो एक ही बात है। दो ऑल्टर्नेटिव हैं दुखी आदमी के सामने, या तो दुख को भुलाने में लग जाये। अगर वह दुख को भुलाने में लग गया है, तो जितनी देर नशे में होगा, डूबा रहेगा। फिर वापस दुख खड़ा हो जायेगा। फिर यह जिन्दगी भर एक सर्कल चलता रहेगा। या फिर वह दुख को मिटाने में लग जाये।

दुख को मिटाने में लग जाये तो मामला बहुत कठिन नहीं है। मगर हमें आमतौर से ख्याल में जो आता है सबसे पहले, वह भुलाने का ख्याल आता है। अगर मुझे कोई तकलीफ है तो मैं भूल जाना चाहता हूं। भूलने से कुछ मिटता नहीं है, सिर्फ मैं मिटता हूं। लेकिन दुख है, उसे भूलने की कोई जरूरत नहीं है। और मेरी अपनी समझ है कि दुख सौभाग्य है। क्योंकि कष्ट दुर्भाग्य है और दुख बड़ा सौभाग्य है। वह मिला है, इसका मतलब है कि हम कष्ट के बाहर आ गये हैं। अब इस सौभाग्य को खो देने की जरूरत नहीं है। अब इस दुख का पूरा सामना, इसका एन्काउन्टर करने की जरूरत है। और इसका मुकाबला करने की जरूरत है।

और इस दुख के मुकाबले हम थोड़े भी खड़े होने की कोशिश करें, तो इसी को मैं साधना कहता हूं। दुख के सामने खड़े होने की, भूलने की नहीं। और अगर दुख के सामने खड़े होने की थोड़ी-सी भी कोशिश हो, तो फिर इतना सरल है, क्योंकि मजे की बात यह है कि कष्ट का वास्तविक अस्तित्व है, दुख का सच में कोई अस्तित्व नहीं है। वह बिल्कुल साइकोलॉजिकल इलूजन है। दुख जो है, उसका कोई अस्तित्व नहीं है। कष्ट का तो अस्तित्व है। अगर मेरे पेट में रोटी नहीं पड़ी है, तो भूख का अस्तित्व है। गरीब की तकलीफें तो वास्तविक हैं, अमीर की तकलीफें काल्पनिक हैं। इसलिए काल्पनिक तकलीफ को मिटाना तो बहुत आसान है। और एक दफा उसे हम भुलाने में लग गये, तो बहुत मुसीबत हो जायेगी।

जैसे समझ लें कि मेरे पीछे एक छाया है, और उससे मैं डर कर भाग रहा हूं। मैं आंख पर पट्टी बांध लेता हूं कि मुझे वह छाया दिखायी न पड़े। इससे वह छाया मिटने वाली नहीं है। जब भी पट्टी उघाडूंगा, तब वह छाया मौजूद मिलेगी। मुझे उस छाया का मुकाबला कर ही लेना चाहिए। लौटकर मुझे ठीक से जांच पड़ताल कर लेना चाहिए कि वह है कि नहीं। यह बड़े मजे की बात है कि अगर आप दुख को खोजने जाइयेगा, तो दुख जितना आप खोजेंगे, विलीन हो जायेगा। और अन्त में आप अचानक पाते हैं कि दुख नहीं है। दुख को जितना आप खोजियेगा, जितना ऑब्जर्व कीजियेगा, जितना उसके पीछे लग जाइयेगा उतना आप पाते हैं कि वह हमारी कल्पना था, वह गया, वह है ही

नहीं।

जिस दिन आप अपने मन के सारे कोने-कोने में इसकी खोज कर लेते हैं कि कहां है, उस दिन दो घटनाएं घटती हैं—दुख को खोजने से आप में सेल्फ-नॉलेज को उपलब्ध होते हैं। लोग आमतौर से कहते हैं कि सेल्फ-नॉलेज को उपलब्ध होने वाला आदमी दुख के बाहर हो जाता है, वह उल्टी बात है। दुख की जो खोज करता है, वह सेल्फ-नॉलेज को उपलब्ध हो जाता है। क्योंकि दुख की खोज में उसे अपने भीतर एक-एक कोना देखना पड़ता है कि कहां है दुख? और जैसे-जैसे वह खोजने जाता है, ऐसे ही हो जाता है—जैसे दीये को लेकर मैं अपने घर में अन्धेरे को खोजने जाऊं। जब तक दीया लेकर न जाऊं, तब तक कमरे में अन्धेरा है और दीया लेकर खोजने जाऊं कि कहां है अन्धेरा, तो मेरा दीया ही उस अन्धेरे को मिटाने का कारण हो जाता है। वह जो हमारा ऑब्जर्वेशन है, वह जो हमारी खोज है, वह दुख को मिटा देती है। क्योंकि वह वस्तुतः है नहीं, वह एक ख्याल है। उसके भी कारण हैं।

मेरी अपनी समझ यह है कि आदमी इतने कष्टों में रहा है कि जब उसके कष्ट मिट जाते हैं, तो वह काल्पनिक कष्ट पैदा करना शुरू करता है; क्योंकि यह मान ही नहीं पाता है कि बिना कष्ट के हो कैसे सकता हूं? हम इतने कष्टों में रहे हैं कि अगर सारे कष्ट एकदम से मिट जायें, तो नये कष्ट ईजाद कर लूंगा; क्योंकि मैं बिना कष्टों के हो कैसे सकता हूं? यह कैसे हो सकता है कि कोई कष्ट हो ही नहीं?

प्रश्न—दुख त्याग से जा सकता है?

दुख त्याग से नहीं जा सकता। दुख त्याग से कैसे जायेगा? त्याग से आप कष्ट में हो जायेंगे। यह बहुत अच्छा सवाल पूछा है। अभी जो मैं कह रहा था, मैं यह कह रहा था कि अगर आप त्याग करने लगते हैं, तो आप दुख से नीचे उतर कर कष्ट की दुनिया में वापस आ गये, जहां आप थे। वहां दुख नहीं है। एक गरीब आदमी है, वह रात गहरी नींद सोता है। गहरी नींद सोने का कारण शांति नहीं है। गहरी नींद सोने का कारण यह है कि अभी वह उस जगह नहीं पहुंचा है, जहां अशान्ति को जान सके। अभी वह अशान्ति की सीमा से पहले है।

प्रश्न—अगर आदमी समझकर और सम्भल कर नहीं चलेगा तो त्याग कैसे करेगा?

नहीं-नहीं, यह मैं कह नहीं रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि अगर आप दुख में हैं, साइकोलॉजिकल सफरिंग में हैं, तो त्याग से आप वहां पहुंच जायेंगे, जहां आप साइकोलॉजिकल सफरिंग के पहले थे। पहले की अवस्था में पहुंच जायेंगे, नीचे गिर जायेंगे। क्योंकि आप ऐसे कष्ट पैदा कर लेंगे—समझ लें एक आदमी

उपवास करने लग गया।

प्रश्न—त्याग के बाद तो कष्ट होता ही नहीं।

न न, यह आप जो कह रहे हैं, त्याग खुद ही कष्ट है और कष्ट को जब आप चुनते हैं, तो निश्चित ही आप दुख से नीचे की अवस्था में आ जाते हैं, जहां गरीब आदमी है। जहां कष्ट में भरा हुआ आदमी है। मैं त्याग करने को नहीं कहता। मैं यह कह रहा हूं कि अगर आप दुख के ऊपर उठ गये—दुख के नीचे नहीं आना है—अगर आप दुख के ऊपर उठ गये हैं और आपने पाया, दुख है ही नहीं तब आपकी जिन्दगी से बहुत-सा त्याग फलित होगा, लेकिन आपको पता भी नहीं चलेगा।

अस्तित्व का ध्यान ही दुख है। गौर से देखें तो, जब तक हमें ध्यान रहता है, तब तक दुख में हैं। मेरे पैर में कांटा गड़ता है तो मुझे पता चलता है कि पैर है।

प्रश्न—अगर पैर ही नहीं है, तो समय पर कांटा लगता ही नहीं।

नहीं, पैर नहीं है, यह अगर आपने समझा है, सिर्फ, तब तो आपको कांटा लगता ही रहेगा, सिर्फ आप भुलाते रहेंगे। मैं भूलने का नहीं कह रहा हूं।

प्रश्न—भूल त्याग नहीं है?

न।

प्रश्न—त्याग भूल नहीं है?

न।

प्रश्न—त्याग अस्तित्व है, भूल अस्तित्व है?

न, आप मेरी बात को नहीं समझे। जिस त्याग को आप करते हैं, वह तो कष्ट है, लेकिन जो त्याग आपसे हो जाता है, वह बड़ा आनन्द है। और इन दोनों में फर्क है। त्याग तब हो जाता है—जैसे, समझ लें, मैं हाथ में कंकड़-पत्थर लिए चला जा रहा हूं और मैंने समझा हुआ कि ये हीरे-मोती हैं। रंगीन पत्थर हैं, और कल मुझे एक खदान मिल गयी, जहां हीरे-जवाहरात मिल गये। मुझे ख्याल नहीं रहा, मैंने हाथ खाली करने के लिए पत्थर छोड़ दिये और हीरे उठा लिए। त्याग हो गया, किया नहीं गया। त्याग तभी होता है, जब आपके लिए बड़ा आनन्द उपलब्ध होता है, तो आप पुराने हाथ खाली करते हैं।

मेरी बात आप समझें—त्याग तब होता है, जब आपको कुछ विराट मिलता है, तो क्षुद्र छूटता है। और त्याग करना तब पड़ता है जब आपको लगता है कि नहीं, यह हीरा ही है और फिर भी आप छोड़ते हैं। अभी आपको यह लगा नहीं कि यह कंकड़ पत्थर है। अगर कंकड़ पत्थर लग जाये, तब तो त्याग की बात करनी ही नहीं पड़ती। हां, इसीलिए मैं कह रहा हूं कि ज्ञानी त्याग करता ही नहीं, सिर्फ अज्ञानी त्याग करते हैं और इसलिए दुख उठाते हैं। मैं यही कह रहा

हूं। ज्ञानी त्याग नहीं करता। जो व्यर्थ है, वह छूट जाता है, जो सार्थक है, वह रखा है। अज्ञानी सिर्फ त्याग करता है और तब वह दोहरे दुख झेलता है। मैं जो कह रहा हूं, यह कह रहा हूं आपसे कि दो तरह की यह सम्भावना हो सकती है—या तो यह चादर मैं इसलिए हटा दूं कि नग्न होने का आनन्द मुझे अनुभव हो जाये।

प्रश्न—और तब उस चादर को आप चादर न समझेंगे।

न समझूंगा कैसे। मैं ही न समझूंगा, न। अगर मैं यह भी कहता हूं कि यह चादर नहीं है, तो भी मैं भली भांति समझ रहा हूं कि यह चादर है। यह तो··· यह भी कहने का कोई मतलब नहीं है। न समझने के पीछे भी···अगर मैं यह कहता हूं, यह धन नहीं है, यह धन नहीं है, तो फिर मैं समझ रहा हूं कि यह धन है, नहीं तो कह किससे रहा हूं? बात खत्म हो गयी, मुझे उठ जाना चाहिए।

प्रश्न—अगर धन न होने से यह समझे कि धन नहीं है तो बात अलग है। अगर धन समझ के बाद में समझे कि धन नहीं है तो बात अलग है।

कैसे समझेगा? यह सम्भव ही नहीं है। अगर मैं कहता हूं यह धन है और मैं इसको धन नहीं मानता, तो यह बिल्कुल इम्पॉसिबल है। मेरी समझ में कुछ चीजें जब आपको दिखायी पड़ती हैं, जैसे रोज सुबह घर से बाहर आप कचरा फेंक देते हैं, तो वह त्याग नहीं है। क्योंकि आप जानते हैं कि कचरा है। जिस दिन जिन्दगी में आपको ऐसी बहुत-सी चीजें दिखायी पड़ने लगती हैं व्यर्थ और छोड़ देने जैसी, उस दिन तो छोड़ना अर्थपूर्ण है, और उस दिन उसका कोई भाव नहीं छूटता पीछे और अगर आप सब ऐसी छूट जाती हैं चीजें जैसे सूखा पत्ता गिर जाता है वृक्ष से। और कच्चे पत्ते को तोड़ते हैं तो पत्ते में भी घाव होता है, वृक्ष में भी घाव होता है। पूरे वृक्ष के प्राणों को खबर मिलती है कि कोई चीज टूट गयी। इसलिए तो त्याग करते हैं, उनको त्याग का भाव सदा बना रहता है।

प्रश्न—अगर वह कच्चे पत्ते को कच्चा पत्ता समझकर छोड़ दे तो···?

वह कैसे छोड़ेगा? कच्चा पत्ता कच्चा ही है। यानी मैं यह कह रहा हूं, कच्चा पत्ता कच्चा ही है और पका पत्ता पका ही है। आपके समझने का सवाल नहीं है। पकना चाहिए।

प्रश्न—वह पकना कब चाहिए।

आपकी समझ से पकेगा। आप जितना जिन्दगी को समझेंगे, उतना पकेगा। इसलिए आपको त्याग करने को मैं नहीं कह रहा। जब पक जायेगा, तब गिर जायेगा। आपको कुछ नहीं करना है, आपको करना ही नहीं है। और अगर आपने कुछ किया तो आप मुसीबत में पड़ जायेंगे और दूसरे को भी मुसीबत में

डालेंगे। अब एक आदमी है, वह चार दिन का उपवास कर ले। तो फिर वह चार दिन उपवास किया और आपने अगर चार दिन खाना खाया तो आपकी गर्दन पकड़ने को तैयार बैठा हुआ है। वह हजार तरकीब से आपको जंचवायेगा कि मैंने चार दिन उपवास किया और आप चार दिन खाना खाये।

प्रश्न—वह नैचुरल नहीं रहेगा ?

नहीं नहीं, वह नैचुरल भी नहीं है। और न सवाल है। वह आदमी कोई बहुत अच्छी हालत में नहीं रहेगा, वह आदमी पागल होगा।

प्रश्न—ज्ञानी हो गया तो फिर भी पागल जैसा होगा ?

नहीं नहीं, पागल जैसा नहीं है। पागल जैसे हम हैं, जिनको ज्ञान नहीं हो गया है।

प्रश्न—रामकृष्ण तो देखने में पागल जैसे ही थे।

रामकृष्ण को मत फंसाइये—इसलिए मत फंसाइए कि रामकृष्ण सच में ही बहुत बेहतर हिस्टेरिक हैं, अगर किसी दिन उनका इलाज हो सकता, तो वह हिस्टेरिक में फंसते। हमारी तो तकलीफ यह है कि हमने अपने साधु-सन्तों की जांच परख तो कभी की नहीं कि कौन साधु-सन्त कहां है और क्या है ? और हम इतनी डरी हुई कौम हैं कि हम कभी फोकस में कोई साधु-संत को खड़ा भी नहीं करते, कि समझने की कोशिश करें कि मामला क्या है ? हम खुद ही डरते हैं कि समझ लें, तो कहीं मामला गड़बड़ न हो जाये। ये जो हमारी तकलीफें हैं। यह जो आप कह रहे हैं, अद्वैत हो गया है, सब एक हो गया। यह सब एक हो जायेगा, तो दीवार, मुझे दीवार दिखायी पड़ेगी। दरवाजा, दरवाजा दिखायी पड़ेगा कि नहीं दिखायी पड़ेगा ? तो फिर मैं दीवार से निकल सकूंगा ? फिर मैं कुर्सी पर बैठूंगा या कुर्सी के पास कहूंगा कि क्या करूं ? कुर्सी मुझे दिखायी पड़ेगी तो मैं उस पर बैठूंगा, उसे मैं कुर्सी मानूंगा। और आपसे बात करूंगा तो बोलने वाला, सुनने वाला अलग-अलग होगा।

अद्वैत का मतलब क्या है ? अद्वैत का मतलब यह थोड़े ही कि दीवार दरवाजा हो गयी, दरवाजा दीवार हो गयी ! और पानी को छोड़ दूंगा और गिलास को पी जाऊंगा। ऐसा तो नहीं अद्वैत का मतलब हो जायेगा ? ऐसा हो जाये तो मैं पागल हूं। और ऐसा अद्वैत कभी नहीं हुआ और न हो सकता है। हां, पागलखाने में हो जाता है। पागलखाने में सम्भव है। या एल० एस० डी० के बहुत ज्यादा गहरे प्रभाव में हो जाता है।

अभी एक आदमी कूद पड़ा, क्योंकि उस आदमी को रात सपने आते रहे निरन्तर कि मैं पक्षी होकर उड़ जाता हूं। उसने एल० एस० डी० लिया और एल० एस० डी० लिया तो जो भी आपके ख्याल में है, उनको पक्का कर दिया। वह अपने तीस मंजिल के मकान की खिड़की से उड़ गया। यह भ्रम कि वह पक्षी

हो गया। यह जो आदमी है, यह आदमी परम-ज्ञान को उपलब्ध हो गया ? इस आदमी का बोध ही चला गया, क्योंकि बोध ही नहीं रहा।

और जिसको हम अद्वैत कहते हैं—अद्वैत का मतलब ही कुल इतना होता है कि बुनियाद में, आधार में चीजें एक ही मूल से आती हैं। तो बुनियाद में तो एक हैं गुलाब भी वहीं से आता है, उन्हीं एटम से, उन्हीं हाइड्रोजन से, उन्हीं अणुओं से, जिनसे पानी आता है लेकिन फिर पानी प्यास बुझाता है और गुलाब से प्यास बुझने वाली नहीं है। ओरिजनल सोर्स जो है, वह एक होता है। लेकिन इसका मतलब कभी यह नहीं है कि चीजें एक हैं। दीवार, दीवार है, दरवाजा, दरवाजा है। और सोना, सोना है; मिट्टी, मिट्टी है। और जब कोई आदमी कहता है, नहीं सोना भी मेरे लिए मिट्टी हो गया है, तो कभी उसको सोना मिट्टी हुआ नहीं। तो कहता कैसे कि सोना मेरे लिए मिट्टी हो गया। अभी भी मिट्टी मिट्टी है, सोना सोना है। अभी भी सारी चीज उसके सामने रख दो तो वह यह नहीं कहता है कि यह सोना है। अभी सोना उसके सामने रख दो तो वह कहता अब यह मेरे लिए मिट्टी है। उसकी कॉन्शसनेस पूरी की पूरी उसे बता रही है कि यह सोना है। मैं इसको सोना नहीं मानता, वह यह कह रहा है। वह कह रहा है कि मैं इसको मिट्टी मानता हूं। लेकिन आपके मिट्टी मानने से सोना मिट्टी नहीं हो जायेगा।

और रामकृष्ण के पास सोना ले जाइए तो वह चिल्लाकर खड़े हो जाते हैं कि मुझे छुआ मत देना। और मिट्टी ले जाइए तो बिल्कुल नहीं चिल्लाते। तब तो सवाल यह है, सोचने जैसा है कि मिट्टी नहीं हो गया है सोना। रामकृष्ण दिन भर सुबह से शाम तक समझा रहे हैं कि कांचन-कामिनी से बच कर रहना। स्त्री से बच कर रहना और फिर···वह बोध कहीं चला नहीं गया। क्योंकि जब तक आप यह कह रहे हैं कि सोना छोड़ो, तब तक सोना मिट्टी नहीं हो गया। मिट्टी को कोई छोड़ता है ? नहीं। मिट्टी को छोड़ने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। कोई नहीं सिखाया अब तक, किसी शास्त्र ने कि मिट्टी का त्याग करो। कोई सिखाते नहीं और फिर भी कोई मिट्टी को पकड़े हुए नहीं पाया गया। सब शास्त्र सिखाते हैं, सोने का त्याग करो। सब शास्त्र मानते हैं, सोना सोना है, मिट्टी नहीं है। और त्याग पैदा करने के लिए इलूजन पैदा करो कि सोना जो है, वह मिट्टी है। इसको पहले सिर में ठोंको कि यह सब मिट्टी है। लेकिन अगर कोई आदमी बार-बार सोचकर, ऑटो-सजेशन से निरन्तर चिल्ला-चिल्ला कर यह समझ ले कि सोना मिट्टी है।

प्रश्न—त्याग इलूजन तो नहीं है ?

त्याग जब आप करते हैं, तब इलूजन है। जब होता है, तब बड़ी सच्चाई है। जब आप करते हैं, तब तो इलूजन है।

प्रश्न—'करते हैं' और 'होते हैं' में क्या फर्क है ?

करते में आपको विल का उपयोग करना पड़ता है। आपको कहना पड़ता है कि यह सोना है, मैं इसको छोड़ता हूं, और जब होता है तब होने में आपको विल का उपयोग नहीं करना पड़ता है। आप कहते हैं मेरे लिए बेकार हो गया, बात खत्म हो गयी। छोड़ना-बोड़ना कुछ भी नहीं पड़ता है। मैं जाता हूं। आप पीछे लौटकर यह भी नहीं कहते कि हिसाब रखना है कि मैंने इतना सोना छोड़ दिया।

कोई गलत नहीं समझ रहा है। सोना सोना है ही, मिट्टी मिट्टी ही है। इसमें कोई गलत नहीं समझ रहा है। अब सवाल यह नहीं है कि सोने को मिट्टी बनाना है। सवाल यह है कि सोने के प्रति हमारी जो इतनी गहरी पकड़ है, उस पकड़ को समझना है। अगर समझने से छूट जाये, ठीक है। समझने से न छूटे, न छूटे। यह मैं समझता हूं कि समझने से छूट जाता है। लेकिन वह छोड़ना नहीं पड़ता है। छोड़ना हमेशा नासमझी का कृत्य है। अगर मैं समझता हूं और मुझे लगता है कि यह ठीक है तो इसमें कुछ अर्थ नहीं है। यह मुझे दिखायी पड़ता है। यह मेरी समझ में आता है।

प्रश्न—जब आदमी समझने जाता है, तो पकड़ ज्यादा होती है। क्योंकि समझता है कि यह पकड़ है।

नहीं, कभी नहीं। अगर समझता है कि यह पकड़ है, अगर समझता है कि यह पकड़ अर्थ की है कि व्यर्थ की है। सार्थक है कि निरर्थक है। समझ उसे अगर दिखा देती है कि मैं व्यर्थ की चीज को पकड़े हुए हूं तो छूट जाती है। अगर दिखा देती है कि सार्थक है तो और जोर से पकड़ लेता है।

प्रश्न—समझाने वाला तो चाहिए ?

समझाने वाला नहीं, समझने वाला। समझाने वाला नहीं, वह समझाने वाले का एक बहुत बड़ा चक्कर है। समझने वाला। आपकी जिन्दगी है, मैं क्यों समझाने आऊंगा ? मैं अपनी जिन्दगी समझूं आप अपनी जिन्दगी समझें। अगर ऐसा हो जाता, तो दुनिया में बहुत समझदार लोग पैदा हो चुके होते।

प्रश्न—उसी की वजह से ज्यादा समझदार लोग पैदा हुए हैं।

उससे आपकी समझ नहीं बढ़ती है। कृष्ण समझ लेते हैं, बुद्ध समझ लेते हैं, क्राइस्ट समझ लेते हैं। गाइडेंस सदा आपकी अपनी जिन्दगी की तकलीफ से आती है। गाइडेंस कहीं से नहीं आती है।

प्रश्न—जिन्दगी की तकलीफ से तो तकलीफ आती है, गाइडेंस नहीं आती है।

मजा यह है कि बताने वाले पचास हैं। कोई कह रहा है, यह मंदिर है, कोई कह रहा है यह मस्जिद है, कोई कह रहा है, यह दोनों नहीं है।

प्रश्न—समझाने वाले को समझ लिया जाता है कि यह आदमी बराबर समझा रहा है कि गलत समझा रहा है।

आप ही समझेंगे न, आखिर में। अगर अन्ततः आपको ही निर्णय करना है कि यह आदमी ठीक कह रहा है कि गलत कह रहा है, तब फिर क्या बात रह गयी ?

प्रश्न—आप किस फिलॉसफी के प्रकार को मानते हैं। क्या आप रेशनालिस्ट को मानते हैं ?

उत्तर—नहीं कहूंगा। इसलिए क्योंकि आदमी अकेला रीजन अगर हो तब तो ठीक है। आदमी अकेला रीजन नहीं है। आदमी इमोशन भी है। और रेशनालिस्ट की फिलॉसफी की जो खराबी है, वह यह है कि आदमी का आधा हिस्सा उससे तृप्त ही नहीं हो पाता। और जब तृप्त नहीं हो पाता है, वह बदला लेता है। और अक्सर यह होगा कि बहुत रेशनालिस्ट आदमी बूढ़ा होते-होते बहुत इर्रेशनालिस्ट हो जायेगा।

अक्सर यह होगा कि एक मजिस्ट्रेट है, चीफ जस्टिस है, फलां है, ढिकां है आखिर में, बिल्कुल नासमझ के पैर पकड़े हुए है किसी संन्यासी का। और यह संन्यासी लोगों को यह समझा रहा है कि यह चीफ जस्टिस है, यह बड़ा एडवोकेट है। यह बड़ा डॉक्टर है, देखो, यह भी हमारा पैर पकड़े हुए बैठा है। रेशनालिस्ट आदमी के साथ खराबी है कि जब रीजन थक जायेगा, आधा हिस्सा अतृप्त रह जायेगा सदा, जो कि रीजन है ही नहीं, तब वह मुश्किल में पड़ जायेगा। इसलिए बेसिकली रेशनालिस्ट मैं अपने को नहीं कहता। न तो टोटलिस्ट हूं। टोटलिस्ट का मतलब यह कि आदमी की टोटल पर्सनलिटी हो। उसमें इमोशन है और इमोशन बिल्कुल इर्रैशनल है। इमोशन कोई रीजन नहीं है।

या ऐसा कहें कि इमोशंस की अपनी रीजन है। जिनको कि हम बुद्धि के रीजन नहीं कह सकते और उनकी हमें जगह बनानी चाहिए। यानी मैं यह मानता हूं कि अगर मैं किसी को प्रेम करने लगूं और आप मुझसे पूछें कि क्यों प्रेम करते हो ? तो मैं कहूंगा कि आपका पूछना गलत है। क्योंकि प्रेम के साथ क्यों नहीं लगाया जाता है ? और जिस दिन हम प्रेम के साथ क्यों लगायेंगे, उस दिन प्रेम भी समाप्त हो जायेगा, उसमें क्यों के लिए कोई उपाय नहीं रह जायेगा। लेकिन प्रेम भी मेरी जरूरत है जो कि रीजन के बाहर है। मुझे भूख लगती है, वह न इमोशन है, न रीजन है। वह बिल्कुल ही फिजिकल डिमान्ड है।

प्रश्न—यह जो आप कहते हैं 'प्रेम करते हैं'। कोई सोचे कि आपका प्रेम करना भी गलत है, तो पीछे क्या सवाल है ?

यह सवाल नहीं है। अगर मैं प्रेम करता हूं तो मैं कहूंगा कि यह गलत प्रेम बहुत अच्छा है। ठीक प्रेम मुझे करना नहीं है। उसका कारण यह है कि प्रेम होना ही अपने आप में ठीक होना है। गलत प्रेम जैसा कोई प्रेम ही नहीं होता। गलत प्रेम जैसा प्रेम नहीं हो सकता। या तो प्रेम होता है, या नहीं होता है। और अगर कोई आदमी जवाब देने आये कि मेरे प्रेम का यह-यह कारण है, तो

वह आदमी प्रेम नहीं कर रहा है। वह अपनी बुद्धि से जी रहा है। जिन्दगी हमारी बड़ी है रीजन से। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हम जिन्दगी को इर्रैशनल आधार दें। यानी मेरा मानना यह है कि हमें रीजन का पूरा उपयोग करना चाहिए, लेकिन लिमिटेशंस जब रीजन के आ जायें, तो जिद्द नहीं करनी चाहिए कि इसके आगे हम न जायेंगे, क्योंकि रीजन आगे नहीं जाता। रीजन का हमें पूरा उपयोग कर लेना चाहिए, ताकि हम बियॉन्ड रीजन भी जा सकें। बिलो रीजन के मैं पक्ष में नहीं हूं, लेकिन बियॉन्ड रीजन के मैं बिल्कुल पक्ष में हूं। घड़ियां हैं जब कि आप रीजन के बाहर जायेंगे, और जाना जरूरी है। सारी जिन्दगी का सारा रस आपको वहीं से मिलेगा। अगर एक फूल मुझे बहुत अच्छा लग रहा है तो रीजन तो कुछ भी नहीं है। और चांद अगर मुझे प्यारा लग रहा है, तो रीजन तो कुछ भी नहीं है।

प्रश्न—तो इसमें तो फिर क्रोध भी आ सकता है।

मैं मानता हूं कि बराबर आयेगा।

प्रश्न—और उसको आप एप्रूव नहीं करेंगे?

न न, बिल्कुल एप्रूव करूंगा। एप्रूव इन अर्थों में करूंगा कि मैं यह मानता हूं कि आप क्रोध से इसीलिए परेशान हैं कि उसको आप एप्रूव नहीं कर पाये। अगर उसे एप्रूव कर लें तो फिर छुटकारा हो जाये। मेरा मतलब यह है कि जैसे क्रोध हमारा, हमने कभी क्रोध किया ही नहीं। जिसको क्रोध की इंटेंसिटी कहें, वह हमने कभी की नहीं।

अगर मेरे हाथ में शिक्षा हो तो मैं बच्चों को क्रोध करना सिखाऊं और इंटेंस क्रोध करना सिखाऊं, ताकि वह अपने क्रोध से पूरी तरह परिचित हो। वह जाने कि क्रोध क्या है और एक दफा वह जान ले कि क्रोध क्या है, क्रोध में कंप जाये और जल जाये, पसीना आ जाये उसे क्रोध में, तो हमें किताबें पढ़ाने उसे न जाना पड़े, जिनमें लिखा है कि क्रोध जहर है।

इसे वह जान ले। इसे वह जान ले फिर उसकी जिन्दगी। फिर जहर पीने का हकदार हर आदमी फिर भी है। मैं यह मानता हूं कि अगर मुझे जहर ही पीना है तो मुझे दुनिया में कोई रोकने का हकदार नहीं है। फिर वह पिये। लेकिन अपने को कष्ट कोई देना नहीं चाहता। लेकिन क्रोध कभी आपको कभी कष्ट ही नहीं दे पाया, आपकी चेष्टाओं ने उसे इतना डिसएप्रूव किया है कि वह कभी आपको पकड़ नहीं पाया कि आप उसको पूरा जहर समझ लेते, दंश समझ लेते, उसकी लपट से जल जाते, हाथ पर फफोला पड़ जाता, वह नहीं हुआ। इसीलिए आप धीमा-धीमा, मरा-मरा हैं।

मैं मरी-मरायी चीज के खिलाफ हूं। क्रोध करना हो तो ठीक से करना और पूरा करना, ताकि एक दफा निकास हो सके। ऐसा क्रोध करना, जिसको ल्यूक वार्म कहते हैं,

वैसा कुछ नहीं होना चाहिए। उसकी वजह से हम किसी चीज से कभी नहीं छूटते। न हम कभी प्रेम पूरा करते हैं, न कभी सेक्स पूरा करते हैं, न कभी क्रोध पूरा करते हैं। किसी भी चीज को उसकी पूरी गहराइयों में हम कभी नहीं उतरते। अगर हम उतर जायें तो वे गहराइयां आनन्दपूर्ण हों और किसी आनन्द के मंदिर तक ले जाती हों, तो हम बार-बार उतरें। और गहराइयां अगर नर्क में ले जाती हैं, तो हमारा छुटकारा हो जाये।

तो मैं तो प्रत्येक चीज को, परमात्मा ने जो भी दिया है या प्रकृति ने जो भी दिया है, सबको एप्रूव करता हूं। जब उसने एप्रूव किया है तो मैं क्यों झंझट डालूं? आपको क्रोध मिला हुआ है। वह आपने पैदा नहीं किया है। और निश्चित ही प्रकृति के कोई गहरे अर्थ हैं, उस क्रोध के साथ। अगर किसी बच्चे में हम बचपन से क्रोध को निकाल लें तो उसमें रीढ़ ही निकल जायेगी उस बच्चे की। उस बच्चे को कभी जिन्दगी नहीं आयेगी, वह बच्चा इतना मरा हुआ हो जायेगा। क्रोध आपका तेज भी है, क्रोध आपका बल भी है।

एक छोटा-सा बच्चा भी जब क्रोध में पैर पटकता है तो उसकी शान देखने लायक है। इतना छोटा-सा, कोई ताकत नहीं है। मगर जब वह पैर पटक कर खड़ा हो जाता है, तो ऐसा लगता है कि चांद-तारों को तोड़कर ही रहेगा। दुनिया की कोई ताकत उस क्रोध में नहीं टिकेगी। तो मैं मानता यह हूं कि जिन्दगी में जो भी है, मेरे लिए बुरा नहीं है। बुराई सिर्फ मेरे लिए एक यह है कि जब हम किसी चीज को अधूरा छूते हैं तो न तो हम जान पाते हैं कि वह अच्छा है, न हम जान पाते हैं वह बुरा है। इसलिए हमेशा बीच में अटके रहते हैं। न तो आप कभी क्रोध कर पाये और न प्रेम कर पाये। मैं मानता हूं कि जो भी करने को लगता हो उसे पूरा करना आप। फल भोगना उसका, उसकी तकलीफ भोगना, उसकी पीड़ा को झेलना।

प्रश्न—कभी क्रोध में आदमी किसी का खून कर डाले तो?

कर डालिये न, फिर जो फल होगा वह भोगिये न! मैं आपसे यह कह रहा हूं कि आप चूंकि क्रोध नहीं कर पाये इसलिए आपके द्वारा किसी का खून हो जाने की सम्भावना है, इसको आप समझ लें। आमतौर से जो लोग खून करते हैं, आप जानकर हैरान होंगे, वह रोज-रोज छोटा-छोटा क्रोध करने वाले लोग नहीं होते। जो लोग खून करते हैं, वे वे लोग होते हैं जिन्होंने बहुत क्रोध इकट्ठा कर लिया है, सप्रेस कर लिया है और किसी दिन सारा क्रोध फूट पड़ा और किसी का खून कर दिया। अगर एक आदमी सुबह छोटी-सी बात पर अपनी पत्नी पर नाराज होकर गिलास फोड़ देता हो, तो ऐसा आदमी जितनी तेजी से जाता है उतनी तेजी से वापस लौटता है। पांच मिनट बाद वह कहता है, यह क्या हुआ? वह आदमी कभी हत्या नहीं कर पायेगा।

मैं यह कह रहा हूं, कि अगर···जिसको मैं कह रहा टोटल इंसेंसिटी अगर हम किसी को सिखायें, तो दुनिया में हत्याएं कम हो जायें। हत्याएं इसीलिए हो रही हैं कि हम सप्रेशन सिखा रहे हैं लोगों को। और आप इतना क्रोध इकट्ठा कर लेते हैं धीरे-धीरे कि एक दिन किसी की हत्या किये बिना कुछ काम ही नहीं चलता, कांच तोड़ने से काम नहीं चलता फिर। फिर दिवार पर मुक्का मारने से काम नहीं चलता, फिर किसी की गर्दन मरोड़ने से काम चलता है। उसके बिना काम नहीं चलता। वह आपको करना ही पड़ेगा किसी दिन। आपने इतना एकुमिलेट कर दिया क्रोध कि अब छोटा-मोटा काम नहीं हल होने वाला है।

दुनिया में जितनी सभ्यताएं बढ़ती हैं उतनी हत्याएं बढ़ती हैं। और सभ्यता का बढ़ने का अनिवार्य हिस्सा है कि हम किसी भी इमोशन को पूरा नहीं प्रगट होने देते, सबको दबा देते हैं।

प्रश्न—ये हिप्पी जो हैं, आपका क्या एक्सप्लेनेशन है ?

बिल्कुल ही, यह क्रिश्चिएनिटी का फल है। पश्चिम में जो सप्रेशन क्रिश्चिएनिटी ने किया है उसका फल है, उसका रिएक्शन है। हिन्दुस्तान में हिप्पी नहीं हैं। उसका कारण है कि हिन्दुस्तान में अगर जैनी प्रभावी होते तो हिप्पी पैदा होता। जैनी प्रभावी नहीं हो सके हिन्दुस्तान में। नहीं तो हिन्दुस्तान में भी हिप्पी पैदा हो जाता। वह उनसे भी ज्यादा सप्रेसिव है, क्रिश्चिएनिटी से भी ज्यादा। लेकिन वे प्रभावी नहीं हो सके। हिन्दुस्तान में जो धर्म प्रभावी रहा है, वह बहुत सप्रेसिव नहीं है। इसलिए हम खजुराहो के अन्दर भगवान भी बना सकते हैं, बाहर सेक्स की प्रतिमा भी बना सकते हैं। लेकिन किसी क्रिश्चियन चर्च में आप कल्पना नहीं कर सकते कि बाहर हो मैथुन की प्रतिमा, इन्टरकोर्स करती हुई प्रतिमा बने, यह असम्भव है। चर्च इसको बर्दाश्त नहीं करेगा।

तो चर्च ने जो पश्चिम में दबाव डाला है, आदमी के मन पर, वह इतना भयंकर हो गया है कि उसके परिणाम होने वाले हैं। वे परिणाम हुए हैं। पश्चिम में इधर तीन सौ वर्षों में जितने भी तरह के रिएक्शन हुए हैं, उस सबकी जिम्मेदार पश्चिम में क्रिश्चिएनिटी का सप्रेशन है। उन्होंने इस बुरी तरह से दबाया हर चीज को कि हर चीज एक सीमा के बाहर टूटने के लिए तैयार हो गयी। और फिर हिप्पी और भी कारण है। मनी का भी मामला है।

दूसरा बड़ा कारण यह भी है कि जब भी कोई समाज ऐफ्लुएन्ट हो जायेगा, जहां समृद्धि बहुत हो जाती है, वहां बच्चों को करने जैसा कुछ भी नहीं सूझेगा। हिप्पी होने के लिए आपको जो सारी सुविधाएं चाहिए, वे आपको नहीं हैं और आप हिप्पी अपने ढंग से हो रहे हैं। आपका लड़का किसी लड़की को धक्का मार रहा है, कहीं पत्थर मार रहा है, कहीं गिलास फेंक कर मार रहा है, कहीं एसिड फेंक रहा है, कहीं शोरगुल मचा रहा है। वह कर रहा है, जो वह कर सकता है,

जो उसकी सीमा में सम्भव है। असल में हिप्पी होने का मतलब हिप्पी होने के योग्य हम अभी समृद्धि को उपलब्ध नहीं हुए हैं। जब हम होंगे तब होने वाला है। बिल्कुल होने वाला है। मेरे लिहाज से अच्छा लक्षण है। अच्छा लक्षण यह नहीं है कि मैं चाहता हूं कि दुनिया में हिप्पी रहें।

मेरे लिहाज से यह हमारी सप्रेसिव मॉरैलिटी को तोड़ने का एक बीच का वक्त है। जब सप्रेशन टूटेगा, हमको फिर से विचार करके समाज को नया आधार देना पड़ेगा। हिप्पी तो चला जायेगा। वह कोई सदा रहने वाली चीज नहीं है। वह रहे तो कोई हर्जा नहीं है। वह रह नहीं सकता। वह रह इसलिए नहीं सकता कि बिल्कुल ट्रांजिशन के पीरिएड की घटनाएं हैं, जो कि स्थायी नहीं होतीं।

अभी भी जो पांच साल पहले हिप्पी था, वह जब एक लड़की को प्रेम करने लगता है, तो हिप्पी होना बन्द हो जाता है उसका फॉर्म। क्योंकि जैसे ही वह एक लड़की को प्रेम करना शुरू करता है, कल उसके एक बच्चा होता है, वह एक घर बनाना चाहता है। उसको नौकरी करनी है, उसको दफ्तर जाना है, बस वह वापस लौट जायेगा। अभी आप हिप्पी पैंतीस साल के बाद का आदमी नहीं पायेंगे। बस पैंतीस साल के बाद वे सब वापस लौट जायेंगे। मैं तो कह रहा हूं, वह जो पैंतीस साल के बाद लौट आयेगा। अभी तो हिप्पी नयी घटना थी। पन्द्रह साल के भीतर हिप्पी बाप होंगे और उनके बच्चे हिप्पी कभी नहीं होंगे, क्योंकि हिप्पी होने के लिए आपका बाप होना जरूरी था। सप्रेसिव माइंड का बाप होना जरूरी था। अगर बाप हिप्पी हो गया तो बेटा फिर हिप्पी होने वाला नहीं है, क्योंकि वह सप्रेशन गया, वह चीजें खुद ही हो जायेंगी। एक फेड है, जो पन्द्रह-बीस साल, पच्चीस साल टिकेगा, इससे ज्यादा टिकने वाला नहीं है। अच्छा फेड है। और हम तो अभागे हैं, हमारे पास ऐसा फेड नहीं है। हो भी नहीं सकता। हमारा लड़का कुछ करता भी तो बिल्कुल बेहूदा है और बिल्कुल अर्थहीन है।

प्रश्न—लेकिन क्या प्रेम और क्रोध की परिपूर्णता आसक्ति की परिभाषा में आ सकती है ?

नहीं, बिल्कुल नहीं। तभी आप अनासक्त होते हैं। प्रेम की परिपूर्णता बिल्कुल अनासक्ति है। आपकी जो प्रेम की कमी है, वही आसक्ति बन जाती है।

प्रश्न—अस्पष्ट

यह सवाल तो बहुत कीमती है। दो तीन बातें ख्याल में लेनी पड़ेंगी। एक तो सेल्फ रिअलाइजेशन कोई ऐसी चीज नहीं है कि कोई कह सके कि अचीव कर लिया। सेल्फ रिअलाइजेशन कोई एण्ड नहीं है, जहां आप पहुंच जाते हैं और कह सकते हैं, पा लिया। यानी सेल्फ रिअलाइजेशन को कभी भी आप पास्ट नहीं कह सकते। आप ऐसा नहीं कह सकते कि वह फलां ने पा लिया, बात खत्म हो

गयी। सेल्फ रिअलाइजेशन कॉन्सटेंट प्रोसेस है। आप उसमें प्रवेश तो करते हैं, उसके बाहर आप कभी नहीं होते। क्योंकि बाहर होने का उपाय नहीं है। सेल्फ के बाहर कहां जाइएगा ?

जो आदमी भी कहता हो कि मैंने पा लिया सेल्फ रिअलाइजेशन, गलत बात कहता है। गलत इसलिए कह रहा है कि यह कोई पाने की चीज नहीं है कि आपने पा लिया। यह तो प्रतिपल प्रवेश की बात है और अन्तहीन प्रवेश है। ऐसा कभी भी नहीं है कि आप किनारे पर पहुंच जायें। यह पहुंचते ही चले जायेंगे। इसमें पहुंचना कभी नहीं आता, पहुंचना होता ही रहता है। कोई स्टेटिक स्थिति नहीं है जिसमें आप पहुंच जाते हैं।

इसे समझ लें—कि एक आदमी मुझसे कहे कि क्या आपने प्रेम पा लिया ? इसका क्या मतलब है ? कोई अर्थ नहीं होता है। बात तो बिल्कुल ठीक है कि क्या आपने प्रेम पा लिया है ? मैं इतना ही कह सकता हूं कि प्रेम पा रहा हूं। पा लिया जिस दिन कह दूंगा, उस दिन सब मर जायेगा। प्रेम खत्म हो जायेगा। मैं बाहर हो जाऊंगा। मैं तत्काल बाहर हो जाऊंगा। एक डेड चीज हो जायेगी मेरे हाथ में, जिस दिन यह कहूंगा कि मैंने पा लिया।

धन आप पा सकते हैं, मकान आप पा सकते हैं लेकिन जीवन में जो भी जितना गहरा और महत्वपूर्ण है उसको आपको निरन्तर पाना होता है। ऐसा कभी भी नहीं आता है कि आप कह दें कि पा लिया। जितना ही आप पायेंगे उतना ही आप पायेंगे और विराट खुल गया। यानी आप जितना आगे जायेंगे, आप पायेंगे क्षितिज और बड़ा हो गया। पाने को सदा शेष है। और हम जिसको आत्म साक्षात्कार और सेल्फ रिअलाइजेशन कहें, वह शब्द ही गलत है, क्योंकि शब्द रिअलाइजेशन जो है, उसमें ऐसा भाव है कि कोई चीज पूरी हो जाये। कुछ पूरा नहीं होता। इसलिए हम परमात्मा को अनन्त कहते हैं।

अनन्त का मतलब यह है कि जिसे आप पा भी लेंगे और फिर भी न कह सकेंगे कि पा लिया। आप पाते ही नहीं हैं, पाते ही नहीं हैं, फिर भी ऐसा न कह सकेंगे कि वह कुछ कम हो गया है, इतना मैंने पा लिया और इतना अभी बाकी है। आप पाते हैं।

क्या आपने जीवन को पा लिया ? क्या कहियेगा ? अगर पा लिया तो आप मर गये। क्योंकि अगर जीवन को पा लिया है, तो अब आप कहां हैं ? अब आप मर गये। नहीं, जीवन को पाते ही नहीं, और जीवन अनन्त है।

सेल्फ रिअलाइजेशन शब्द और भी कई लिहाज से बड़ा बेहूदा है, एकदम एब्सर्ड है। एक तो जब आप इस अनन्त गहराई में उतरते हैं तो सेल्फ खो जाता है। जैसे-जैसे आप उतरते हैं, वैसे-वैसे आप मिटने लगते हैं। कुछ होने लगता है, लेकिन आप मिटने लगते हैं जिसको आप पहचान सकते हैं, जिसका नाम-धाम

पता ठिकाना है, जो कि आइडेन्टिटि थी। किसी का लड़का था, पति था, यह था, वह था, वह खोने लगता है। वह तो खो जाता है। और जो बच रहता है, वह इतना आनन्द है कि उसका कोई ओर-छोर नहीं है। इसलिए पा लेने की भाषा में कहा ही नहीं जा सकता। वह जो लैंग्विज ऑफ अचीवमेंट है, वह वहां कारगर नहीं है। और अगर कभी कोई कहे, पा लिया तो वे सिर्फ ईगोइस्ट घोषणाएं हैं, वे सिर्फ अहंकार की घोषणाएं हैं। उनसे कोई आत्म साक्षात्कार का मतलब नहीं है।

सवाल बिल्कुल बढ़िया है, लेकिन उत्तर नहीं हो सकता। और कोई उत्तर देगा, तो दे रहा है, इसलिए गलत हो जायेगा, वह देने से ही गलती हो जायेगी।

प्रश्न—देश की परिस्थितियों पर आपका क्या विचार है, और पोलिटिकली आपका क्या विचार है ? यानी क्या होना चाहिए और क्या करने जैसा है ?

बहुत-सी बातें हैं। एक तो भारत की जो मनःस्थिति है, वह अत्यन्त अप्रौढ़ है, इमैच्योर है। और हम बहुत समय से सिर्फ नारों पर जी रहे हैं, स्लोगन्स पर जी रहे हैं। और ऐसा लगता है कि जोर से कोई नारा लगा देगा, तो सब हल हो जायेगा। ऐसे ही हम आजादी लिए। नारे लगाते रहे कि आजादी आजादी से सब ठीक हो जायेगा। हमारा बड़े से बड़ा बुद्धिमान आदमी भी ऐसे ही मानता रहा कि बस जो गड़बड़ है, वह इतना है कि आजादी नहीं है। बाकी तो सब ठीक हो जायेगा—आजादी। आजादी से सब ठीक हो जायेगा। जैसे आजादी जो थी, वह शुरुआत न थी, अन्त था। उसके आ जाने से सब ठीक हो जाने वाला था। और हमने इस तरह के सपने मुल्क में जगाये, लोगों के मन में कल्पनाएं पैदा कर दी कि आजादी; आजादी से सब ठीक हो जायेगा।

आजादी आ गयी, और लोगों ने सोचा कि कल सुबह उठेंगे तो सब ठीक हो जायेगा। इस मुल्क में जो आजादी के बाद बीस साल का फ्रस्ट्रेशन है, उसके लिए जनता जिम्मेवार नहीं है, उसके लिए पिछले पचास साल की लीडरशिप जिम्मेवार है। उसने वह पैदा करवाने का इन्तजाम कर रखा था। उसने यह कहा था, आजादी आने से सब आ जायेगा। उसने यह कहा था कि अंग्रेज के होने की वजह से हमारी सारी तकलीफ है। अंग्रेज गया कि सब तकलीफ मिट गयी। वह मुल्क की तरह हो जाने वाली बात थी।

अंग्रेज तो चला गया, आजादी आ गयी, कोई तकलीफ नहीं मिटी। बल्कि हमने पाया, हम और नयी तरह की तकलीफों में खड़े हो गये, जो कि स्वाभाविक था। स्वतन्त्रता नयी तरह की तकलीफें लाती हैं, लायेगी ही। एक दायित्व लायेगी, इन्सान का अपने ऊपर जिम्मा लायेगी, और एक गुलाम कौम, जो हजार साल तक गुलाम रही हो, उसके हाथ में स्वतन्त्रता मुसीबत बन सकती है। यह हमें जगाना था ख्याल, यह साफ करना था कि स्वतन्त्रता एक दायित्व होगा, रैस-

पॉन्सिबिलिटी होगी और एक उपद्रव हो जायेगा। स्वतन्त्रता हम चाहते हैं, लेकिन स्वतन्त्रता सुख नहीं ले आयेगी, सिर्फ स्वतन्त्र प्रकार की दुख लायेगी।

यानी दुखों का चुनाव फिर हमीं करेंगे। इसमें कोई हमारे लिए निर्णय नहीं करेगा कि कौन-सा दुख हम झेलें ? हमीं अपना दुख का चुनाव करेंगे। वह हमें कभी बताया नहीं था। हम आजादी का एक सपना लेकर जीते रहे। अब बीस साल में वह नारेबाजी खत्म हो गयी, क्योंकि अब आजादी आ गयी, और कुछ भी न हुआ। अब हमको नये नारे चाहिए। अब फिर हम नये नारे पकड़ रहे हैं सोशलिज्म के।

एक शब्द पकड़ लिया है कि समाजवाद आ जायेगा, सब ठीक हो जायेगा। अब हम उससे भी बड़ी भूल कर रहे हैं। क्योंकि फिर हम वही पागलपन कर रहे हैं। फिर एक हवा पैदा कर रहे हैं मुल्क में कि समाजवाद आ जायेगा तो सब ठीक हो जायेगा। जैसे कि समाजवाद नहीं है, बस यही थे। उसके आ जाने से सब ठीक हो जाने वाला है। अब फिर बीस पच्चीस साल, पचास साल नासमझी में गंवा देंगे। और मजा यह है कि वह जो पुरानी नासमझी थी, वह इतनी खतरनाक नहीं थी।

आजादी किसी भी स्थिति में आ सकती है। क्योंकि आजाद होने का प्रत्येक व्यक्ति हकदार है। चाहे वह योग्य हो, चाहे अयोग्य हो। आजादी के लिए कोई यह नहीं कह सकता है कि आप अभी योग्य नहीं हैं, इसलिए आजादी नहीं मिलेगी। आजादी के लिए कोई योग्यता नहीं होती, होना ही आजादी के लिए काफी योग्यता है। लेकिन समाजवाद बड़ी और बात है। अब मैं समझता हूं कि जब तक कोई मुल्क ठीक से पूंजीवादी न हो जाये तब तक उसे समाजवाद की बातें खतरे में और बहुत गड्ढे में ढकेल देंगी। मेरी नजर में पूंजीवाद और समाजवाद विरोधी व्यवस्थाएं नहीं हैं।

मेरी नजर में पूंजीवाद का अन्तिम परिणाम समाजवाद है। वह बिल्कुल सहज व्यवस्था है। उसके लिए किसी क्रांति में से गुजरने की जरूरत नहीं है। असल में पूंजीवाद ही वह क्रांति है, जिसके फल में समाजवाद आता है। पूंजीवाद ही वह क्रांति है जिससे समाजवाद आ जाता है, अनिवार्यरूपेण। क्योंकि पूंजीवाद एक काम कर देता है, सम्पत्ति को पैदा करने का। और यह इतना बड़ा काम है कि पूंजीवाद के अलावा कोई भी नहीं कर सकता।

न तो फ्यूडल सिस्टम कर सकती है, क्योंकि फ्यूडल सिस्टम जो थी सामन्तवादी राजाओं की, रजवाड़ों की, वह लूट की व्यवस्था थी। किसी सम्राट ने कोई सम्पत्ति पैदा नहीं की। सम्राट लुटेरा है। वह लूटता है। सम्पत्ति कोई और पैदा करता है, किसान पैदा करता है, कोई और पैदा करता है, सम्राट सिर्फ लूटता है। सम्राट क्रिएटिव फैक्टरी नहीं है। सम्पत्ति को पैदा नहीं करता और सम्राट

जो है वह बड़े किस्म का लुटेरा है, बड़ा डाकू है। उसके पास बड़ी ताकत है।

लेकिन पूंजीवाद बहुत भिन्न तरह की क्रांति है। वह सम्पत्ति को पैदा करने की व्यवस्था है। और पहली दफा दुनिया में पूंजीवाद ने वेल्थ को क्रिएट किया है। जो सम्पत्ति नहीं थी जमीन पर, उसको पैदा किया है। अगर पूंजीवाद पूरी तरह सम्पत्ति पैदा न कर पाये और हम बीच में समाजवाद की बातें करें, तो फिर सम्पत्ति कभी पैदा न हो पायेगी। समाजवाद सम्पत्ति बांट सकता है, और सम्पत्ति अगर पैदा हो गयी हो, तो बहुत ही धीमी गति से सम्पत्ति पैदा भी कर सकता है।

प्रश्न—आज जनता जो है, वह यह कहती है कि पूंजीवादी भी लुटेरे हैं।

यह गलत बात है।

प्रश्न—तो उनको कैसे समझाया जाये ?

इसको बिल्कुल ही समझाया जा सकता है, क्योंकि यह बात ही गलत है। और बड़ी मजे की बात तो यह है कि गलत बात अगर समझायी जाये तो वह समझ में आ गयी है। यही ख्याल है समाज को, और गरीब का यही ख्याल बहुत स्वाभाविक मालूम होता है कि उसको लगे कि मुझको लूटकर आप अमीर हो गये हैं। लेकिन हालत बिल्कुल उल्टी है। हालत ऐसी है कि वह गरीबी जो जिन्दा है, वह सिर्फ इसलिए जिन्दा है कि सम्पत्ति पैदा की गयी नहीं, तो वह जिन्दा नहीं होता।

बुद्ध के जमाने में हिन्दुस्तान की आबादी दो करोड़ थी। और दो ही करोड़ रही, इससे ज्यादा नहीं हो सकी। सारी दुनिया की आबादी पिछले डेढ़ सौ वर्षों में एकदम आकाश की तरफ गयी है। दस बच्चे पैदा होते थे तो आठ बच्चे मरते थे। आज दस बच्चे पैदा होते हैं तो एक बच्चा मरता है। और कल वह भी शायद नहीं मरेगा। अभी जो बात उठी थी कि एक बड़ा मकान बनता है, तो वह दूसरे मकानों को छोटा करके बनता है। असलियत बिल्कुल उल्टी है।

असलियत यह है कि जब एक बड़ा मकान बनता है, तो छोटे मकान भी बन जाते हैं। अगर बड़े मकान को यहां से हटा दिया जाये तो दस पास के जो मकान हैं, वे विदा हो जायेंगे। क्योंकि इस बड़े मकान को उठाने में वे बने हैं। जब एक बड़ा मकान बनता है, तब एक राज काम करता है, एक मिट्टी लाने वाला काम करता है, एक जोड़ने वाला काम करता है। बड़ा मकान जब बनता है तो दस छोटे मकान बिना बनाये बन ही नहीं सकता। दस छोटे मकान बन ही जायेंगे। लेकिन जब बनकर खड़े हो जायेंगे तो सड़क पर से देखने वाला यह कह सकता है कि यह बड़ा मकान जो है इन दस को लूटकर बड़ा हो गया है। जब कि ये दस होते ही नहीं, अगर यह बड़ा मकान नहीं बनता।

पंजी पैदा की है, पूंजी थी नहीं। आज अमरीका में जो पूंजी है, वह कभी भी न

थी। वह सब पैदा हुई है। और पूंजी पैदा हो जाये और इतनी पैदा हो जाये कि उस पर व्यक्तिगत स्वामित्व का कोई अर्थ न रह जाये, तब तो समाजवाद सहज अपने आप आता है। लेकिन पूंजी बहुत थोड़ी हो और समाज बांटने का आग्रह करने लगे, तो पूंजी पैदा करने की जो व्यवस्था विकसित हो रही थी, वह भी टूट जाती है। और समाज सम्पत्ति पैदा नहीं कर सकता। तो हिन्दुस्तान के सामने जो बड़े से बड़ा सवाल है, वह यह है कि अगर हम समाजवादी व्यवस्था को आज स्वीकार करते हैं, जैसा कि लगता है कि पागलपन है और वह स्वीकृत हो जाये तो हिन्दुस्तान सदा के लिए गरीब होने का जिम्मा ले लेगा, ठेका ले लेगा।

प्रश्न—जैसे मैं एक कला केन्द्र चलाता हूं और वहां की कला को वे दो रुपये में खरीद कर दो सौ में बेचें, तो क्या यह शोषण नहीं है?

मैं आपसे पूछता हूं कि यह आदमी अगर दो सौ रुपये में न बेचे तो वह आदमी दो रुपये में तो क्या दो आने में भी बेच लेगा? यह आदमी दो सौ रुपये में न बेचे तो वह जिसको आप कलाकार कह रही हैं, वह उसे दो आने में भी बेच लेगा? यह आदमी उसे दो रुपये में दे रहा है, यह आपको दिखायी नहीं पड़ता। गांव में एक आदमी है, उससे दो रुपये की चीज लेकर एक आदमी दो सौ रुपये में बेच रहा है। साफ दिखायी पड़ रहा है कि एक सौ अट्ठानवे रुपये इसने लूट लिए। इसने किससे लूट लिए? उस गांव के आदमी ने लूट लिए? वह दो सौ रुपये में बेच लेगा? मैं जो पूछता हूं, मैं दूसरी बात कह रहा हूं। मैं इसलिए कह रहा हूं ऐसा कि यह आदमी अगर उसे दो सौ रुपये में बेच रहा है, तो वह गांव वाले को दो रुपये दे रहा है क्योंकि उसको मिलने वाले थे ही नहीं। वह जो दो रुपये उसको मिल गये हैं न। सबसे बड़ा मजाक यह है, यह दो सौ रुपये जो लेने वाला है, इसको मिटा दो।

यह बड़ा सीधा तर्क है। मेरी पूरी बात समझ लें। सोशलिज्म का तर्क तो इतना सहज मालूम होने लगा है हमारे मन में। यह बहुत सीधा हो गया है कि एक गरीब आदमी की दो रुपये की चीज लाकर आपने दो सौ रुपये में बेच दी और आपने एक सौ अट्ठानवे रुपये बचा लिया। लूट लिया।

पूंजीवाद की जो व्यवस्था है, व्यवस्था कुल इतनी है कि कुछ लोग सम्पत्ति को पैदा करने की कुशलता में लगे हुए हैं। आपको ख्याल में नहीं है।

प्रश्न—पैदा करने वाले दूसरे हैं। दूसरों की मेहनत पर ये लोग पैसा बनाते हैं।

यह हमारा ख्याल है। मजा यह है कि वह जो दूसरे की मेहनत है, अगर यह पैसा बनाने वाला न हो, तो न तो दूसरे की मेहनत बचती है, न मेहनत करने वाला बचता है। वे दोनों नहीं बचते। मेरी पूरी बात समझ लें। मैं जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि वह जो हमें दिखायी पड़ रहा है कि कुछ लोगों द्वारा

शोषण किया जा रहा है कुछ लोगों का, उन लोगों को शोषण जो हमको दिखायी पड़ रहा है, उस शोषण में दो तरह की भ्रांति हो रही है। एक तो यह भ्रांति हो रही है कि अगर यह शोषण की व्यवस्था टूट जाये तो वह बड़े सुखी हो जायेंगे। क्योंकि जिससे आप मुफ्त में ले आये थे, वह उसको दो सौ में बेच लेगा। एक तो हमको यह ख्याल हो रहा है। अगर वह दो सौ रुपये में बेच सकता होता तो वह दो सौ में बेच ली होती। और तब वह पूंजीपति हो गया होता। यह नहीं हुआ होता, वह हो गया होता। जो सम्पत्ति पैदा हो रही है, वह भी हमें दिखायी पड़ती है कि सम्पत्ति पैदा हो रही है। एक मजदूर गड्ढा खोद रहा है, वह सम्पत्ति पैदा कर रहा है। एक आदमी खेत में गेहूं पैदा कर रहा है, वह सम्पत्ति पैदा नहीं कर रहा है। ये सम्पत्ति पैदा कर रहे हैं। और अगर इनके हाथ में यह समाज छोड़ दिया जाये तो समाज भूखा मर जायेगा।

सम्पत्ति पैदा करना बहुत और तरह की बात है। इन सबका उपयोग किया जा रहा है, सम्पत्ति पैदा करने के लिए, लेकिन ये सम्पत्ति पैदा नहीं कर रहे हैं। सम्पत्ति पैदा और ढंग से की जा रही है, उसमें इनका उपयोग हो रहा है। और मैं मानता हूं, इनका उपयोग ही होगा। अगर कल सोशलिज्म आ जाता है, जैसे रूस में, तो गड्ढा खोदने वाला आदमी गड्ढा खोद रहा है। उसमें कोई दो सौ रुपये मिल रहे हैं, इस ख्याल में आप मत रहना। अब वह जो उसकी पेन्टिग जिसने दो सौ रुपये में बेची थी, वह उसकी अब दो में भी नहीं बिक रही है। क्योंकि हुआ क्या है? हुआ है यह ज्यादा से ज्यादा यही हो सकता है कि कुछ लोगों से यह सारी व्यवस्था छीन कर राज्य के हाथ में दे दें। और राज्य इस पर हावी हो जायेगा।

पूंजीवाद का एक ऐतिहासिक रोल है। पूंजीपति से मुझे मतलब नहीं है। पूंजीपति कोई मूल्य नहीं है क्योंकि पूंजीपति आज 'अ' है, कल 'ब' होगा, कल 'स' होगा। आज 'अ' मजदूर है, कल 'ब' पूंजीपति हो सकता है, कल 'स' मजदूर हो सकता है। यह कोई सवाल नहीं है। पूंजीपति से कोई प्रयोजन नहीं है। पूंजीवाद की जो व्यवस्था है उस व्यवस्था ने पूंजी पैदा करने के हजारों रास्ते ईजाद किये हैं। उन रास्तों का इतना उपयोग हो सकता है कि सम्पत्ति इतनी पैदा हो जाये कि सम्पत्ति पर व्यक्तिगत मालकियत रखने में कोई अर्थ न रहे। व्यक्तिगत मालकियत का अर्थ तभी तक है, जब तक सम्पत्ति न्यून है। जब तक सम्पत्ति इतनी कम है।

प्रश्न—यह प्रश्न तो ऐसा है—अब जनता को कैसे समझाया जाये?

यह बड़ा सवाल जनता को समझाने का उतना नहीं है, जितना आपको समझने का है। कठिनाई क्या है? बड़ी कठिनाई क्या है? आज हिन्दुस्तान में जिसको हम समझदार वर्ग कहते हैं, उसको भी कुछ ख्याल में साफ नहीं है कि बात क्या

है ? किसी के ख्याल में बात साफ हो, फिर भी साहस नहीं है कि वह सीधी और साफ बात कहे ।

मैं मानता हूं कि समाजवाद अनिवार्य है, लेकिन हिन्दुस्तान में पचास, साठ, सत्तर साल बाद । पचास-साठ साल हिन्दुस्तान को इतनी सम्पत्ति पैदा करनी चाहिए, और सम्पत्ति पैदा करने के लिए इतनी सुविधाएं जुटानी चाहिए कि पचास साल में हमें तय कर लेना चाहिए कि हम सम्पत्ति ही पैदा करेंगे । और जो लोग भी सम्पत्ति को पैदा करने में किसी भी तरह सहयोगी हो सकते हैं, उनके लिए सारी सुविधाएं दें । और हमें फिक्र इसकी करनी चाहिए । और इसका मतलब यह होगा कि एक बार भी इस मुल्क के पास—यह मुल्क तो हजारों साल से गरीब है । इसकी गरीबी इतनी क्रॉनिक है, इतनी लम्बी है कि अगर इस मुल्क को सौ पचास वर्ष का पूंजीवाद का ठीक से सम्पत्ति पैदा करने की व्यवस्था न मिले तो यह मुल्क स्थायी रूप से गरीब हो सकता है ।

अगर आज समाजवाद ले आये, तो जो थोड़ी सम्पत्ति कहीं-कहीं पैदा हो रही है, वह बन्द हो जायेगी । और सम्पत्ति पैदा करने के लिए नया कोई—आज जितना गवर्नमेंट एण्टरप्राइज है, गवर्नमेंट कुछ भी हाथ में ले ले, वहीं नुकसान लगना शुरू होता है । उसका कारण है कि मुल्क इतना गरीब रहा है कि सम्पत्ति पैदा करने का उसे बोध नहीं है । तो जब सरकार के हाथ में चला जाता है मामला, तो सम्पत्ति पैदा करने की बात खत्म हो जाती है । सम्पत्ति तो पैदा होती नहीं, उल्टा नुकसान लगना शुरू हो जाता है । सरकार जो भी हाथ में लेती है, उसमें नुकसान लगता है ।

प्रश्न—सरकार को यह महसूस क्यों नहीं होता है ?

सरकार के साथ मजा यह है कि मुल्क का बड़ा हिस्सा गरीब है । गरीब की ईर्ष्या को जगाकर उससे कुछ भी करवाया जा सकता है । आज राजनीतिज्ञ के पास जो ताकत है, वह गरीब की ईर्ष्या को जगाने में है । और जो समझ सकते हैं, वह पता नहीं, उनको साफ नहीं है । हिन्दुस्तान में अगर पूंजीवाद बिना लड़ाई लड़े मर जाता है, तो हिन्दुस्तान के लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य कुछ भी नहीं होगा । और यह सवाल पूंजीपति का है ही नहीं । यह व्यवस्था का है कि पचास साल यह व्यवस्था इस मुल्क को इतनी तीव्रतम रूप से चलानी चाहिए कि सम्पत्ति हमारे पास इतनी हो । अभी तो मजा यह है कि सम्पत्ति है नहीं, हम बांटने की बातें करते हैं । इसलिए नासमझी की बातें हैं ।

हिन्दुस्तान में ऐसे बीस हजार परिवार भी नहीं हैं, जिनको हम कह सकें कि ये समृद्ध हैं । और दस-पांच परिवार हैं जिनको कि हम कह सकें कि हां, इनको हम किसी तल पर करोड़पतियों में गिनें । इनकी सारी सम्पत्ति उठाकर भी आज बांट दी जाये तो मेरे पास दो-चार आने ही पड़ता है, जिसका कि कोई अर्थ नहीं

रह जाता । और इस सारे बंटवारे में गरीब टूट सकता है, क्योंकि गरीब की समझ कितनी है ?

पहली तो बात यह है कि वह नासमझ है, इसलिए वह गरीब है । उसकी गरीबी के होने में वह भी हिस्सा है कि वह नासमझ है । अब उसकी ईर्ष्या को तो भड़काया जा सकता है । उसकी ईर्ष्या के साथ बहुत खेल खेला जा सकता है। वह ईर्ष्या जगा दी गयी है । इस वक्त मुल्क को बहुत स्पष्ट रूप से समझाने की जरूरत है कि पूंजीवाद का रोल क्या है ? और पूंजीवाद क्या कर सकता है ? पूंजीवाद को अपनी पूरी फिलॉसफी साफ रखने की जरूर है । और मैं नहीं मानता कि कठिन है मामला ।

प्रश्न—मैं इतना मानता हूं कि आप जैसे व्यक्ति इसको समझा सकते हैं । हम तो समझाने जायें, तो वे गलत समझेंगे ।

यह तो आप ठीक कहते हैं । बेसिक सवाल जो है, सबसे बड़ा वह यह है कि एक तो आज पूंजीवाद की पूरी फिलॉसफी को मुल्क के सामने रखने की जरूरत है । समाजवाद के सीधे कंट्रास्ट में कि समाजवाद क्या करेगा ? पूंजीवाद क्या कर सकता है ? पूंजीवाद क्या कर सकता है मुल्क में, इसकी पूरी स्पष्ट फिलॉसफी मुल्क के सामने रखने की जरूरत है । इसको जोर से प्रचारित करने की जरूरत है । और समाजवाद क्या करेगा, उसको भी बहुत साफ रखने की जरूरत है कि क्या कर सकेगा, क्या हो सकता है ? इसके बाबत तो पूरा का पूरा, सारे आंकड़े सारी व्यवस्था, रूस में क्या हुआ, चीन में क्या हुआ, हिन्दुस्तान में क्या हो सकता है, समाजवाद के नाम से, उस सबकी सारी की सारी रूपरेखा स्पष्ट करनी चाहिए ।

अब रूस में कोई एक करोड़ लोगों की हत्या करनी पड़ी—अस्सी लाख से लेकर एक करोड़ लोगों की । और इसके बावजूद भी उन्नीस सौ सतरह के पहले रूस अपना अन्न खुद पैदा कर रहा था । और इसके बाद निरन्तर पूंजीवादी मुल्कों से खरीदता है । दूसरे महायुद्ध के बाद रूस सारा निर्भर है, कनाडा पर भोजन के लिए । और रूस में जो सबसे बड़ा प्रॉब्लम है, वह यह है कि इंसेंटिव खत्म हो गया है, कोई काम नहीं करना चाहता है । तो रूस जैसे मुल्क में इंसेंटिव खत्म हो जाये, तो हिन्दुस्तान जैसे मुल्क में, जिसमें इन्सेंटिव है ही नहीं, खत्म करने का तो कोई सवाल ही नहीं है । वह कभी था ही नहीं । वह होता तो हम कुछ कर लिए होते, वह कभी था ही नहीं । कुछ थोड़े से लोगों में वह पैदा हुआ है, तो उनको हम काट दे सकते हैं । उनको काटने में कोई कठिनाई नहीं है ।

दूसरी बात, हमको यह समझाना पड़ेगा उनको कि पचास साल का प्रयोग रूस में असफल हुआ है । रूस अमीर नहीं हो सका । रूस आज भी गरीब मुल्क है । और इसलिए रूस रोज कदम उठा रहा है कि अमरीका के निकट कैसे पहुंच

जाये ? और कैसे धीरे-धीरे पूंजीवादी व्यवस्था का जो लाभ है, वह लेने लगे ? इसकी पूरी फिक्र चल रही है ।

एक बहुत बड़ा मिरेकल घटित हो रहा है । अमरीका रोज समाजवादी होता जा रहा है, रूस रोज पूंजीवादी होता जा रहा है । अमरीका का समाजवादी होना बहुत ही और बात है । मेरा मानना है कि अमरीका जिस दिन समाजवादी होगा, वह स्वागत के योग्य उसका समाजवाद होगा । क्योंकि उसने पूंजी पैदा कर ली है और वह बांटने की बातें कर सकता है । और बांटने का कोई सवाल नहीं है, बंटी जा रही है । उसमें करियेगा क्या ? पूंजी का अर्थ क्या है ? तो मैं मानता हूं, अमरीका के ही रास्ते से कोई मुल्क समाजवादी होगा तो ही शुभ है, अन्यथा अशुभ है । वह दिक्कत में पड़ जाने वाला है बहुत । हम तो बहुत दिक्कत में पड़ जाने वाले हैं । हमारा तो कोई हिसाब ही नहीं है । क्योंकि मुल्क में कोई काम करने की प्रेरणा रही ही नहीं है कभी । सम्पत्ति पैदा करने की प्रेरणा नहीं है मुल्क में, क्योंकि हजारों साल से हमने सम्पत्ति के विरोध में लोगों को समझाया है ।

हमने समझाया, आवश्यकताएं कम रखना । गरीब की हमने पूजा की है । दरिद्रनारायण भगवान बनाकर बिठाया हुआ है । हमारा जो पूरा का पूरा मुल्क है, जहां कि आवश्यकताओं को कम रखने पर जोर है, गरीबी की महानता है, दीनता का गौरव है, गुणगान है । जहां प्रेरणा नहीं है काम करने की किसी को, उस मुल्क को समाजवाद की बात करनी, इतने खतरे में ले जा सकती है जितनी दुनिया में किसी को भी नहीं ले जा सकती है ।

फिर दूसरे मजे की बात यह है कि लोकतांत्रिक ढंग से हम समाजवाद लाने के ख्याल में लगे हैं । माओ जैसा आदमी, या स्टैलिन जैसा आदमी जो दस-पचास लाख लोगों की हत्या करने को सीधा तैयार हो, तो इंसेंटिव की जगह बन्दूक के कुन्दे से काम ले सकता है । वह भी असफल हो गया । रूस में बन्दूक का कुन्दा भी असफल हो गया । और स्टैलिन के साथ में उन्होंने जो मरने के बाद में जो व्यवहार किया है, वह उसी की खबर है कि जिस आदमी ने कम्युनिज्म लाया, जो आदमी पूरी जिन्दगी खपाकर, इतना मुश्किल में डालकर मुल्क को, समाजवाद लाया, उसकी उन्होंने लाश निकाल कर उसकी कब्र से फिंकवा दिया । क्योंकि उसने पचास साल पूरे रूस को एक कारागृह बनाकर रखा था, और फिर भी कोई फल नहीं हुआ । और भी कुछ बुनियादी बातें हैं, जो बुनियादी बातें हमें सीधे तथ्यों की तरह मुल्क के सामने रखने चाहिए, उसके व्यापक प्रचार की जरूरत है ।

मेरा मानना ऐसा है कि समाजवाद की जो नारेबाजी है, उसके खिलाफ कोई व्यापक प्रचार नहीं है । मजा तो यह है कि जो उसके खिलाफ हैं, वे भी समाज-

वाद का ही नाम लेंगे । उनकी भी दहशत इतनी ज्यादा है कि वह समाजवाद का नाम लिए बिना काम नहीं करेंगे ।

प्रश्न—पंडितजी ने ब्रेनवॉशिंग करवा लिया है ।

उसको मिटाया जा सकता है । और जब मामला यह है कि तथ्य उसके विपरीत हैं, तो मिटाने में कोई कठिनाई नहीं है ।

प्रश्न—लेकिन पूंजीवादियों से ही सबसे बड़ा सहयोग उनका है । वह लोग अगर इस चीज को सोचें तभी ठीक बन सकती है ।

इसके लिए पूरा मंच बनाने की जरूरत है । अखबार चाहिए, प्रचार के लिए मंच चाहिए ।

प्रश्न—पूंजीवाद और समाजवाद दोनों ही ठीक हैं और अच्छे हैं । लेकिन हमारे मुल्क की प्रकृति के अनुकूल इन दोनों में से कौन ठीक रहेगा ?

ठीक कह रहे हैं कि दोनों अच्छे सिस्टम्स हैं, चुनाव की बात है । लेकिन एक बुनियादी फर्क ख्याल में होना चाहिए । वह यह है कि समाजवाद पूंजीवाद के बाद की स्थिति है, पूंजीवाद के पहले की नहीं है । दोनों ही इकोनॉमिक फिलॉसफी हैं, बिल्कुल ही ठीक बात है और दोनों में से चुनने की बात है, यह भी बिल्कुल ठीक है । लेकिन, पूंजीवाद के बाद की अवस्था है, पहली तो बात यह ख्याल में लेनी चाहिए । और क्यों बाद की है ? कि पूंजीवाद को जो काम पूरे कर देने हैं सोसाइटी में, वे पूरे हो जाने चाहिए । तब तो एक नैचुरल ग्रोथ सोशलिज्म की तरफ जाती है ।

इतना आसान नहीं चुनाव । जब मैं यह कह रहा हूं कि पूंजीवाद जब तक सम्पत्ति को इतना पैदा न कर ले कि हम एक समाजवादी ढांचे में उस सम्पत्ति का उपयोग कर सकें ।

डिफेंस हो सकता है, कोई कठिनाई नहीं है । जब तक सम्भव न हो जाये, तब तक प्रि-मैच्योर कुछ भी करना खतरे में ले जायेगा, वह मेरा कहना है । दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं, वह यह कहना चाहता हूं कि इस मुल्क की जो गरीबी है, इस मुल्क की गरीबी का कारण पूंजीपति का होना तो है ही । इस मुल्क की गरीबी के जो दूसरे कारण हैं, वे कारण मद्देनजर हो जाते हैं । सिर्फ एक ही ख्याल सामने रह जाता है कि किसी तरह शोषण बन्द हो जाये, तो सब गरीबी मिट जायेगी ।

जब भी हम समाजवाद की बात करते हैं तो एक बुनियादी भूल हो जाती है, और वह बुनियादी भूल यह हो जाती है कि बात तो समाजवाद की होती है, लेकिन जाने अनजाने उस सारी बात के पीछे स्टेट खड़ी हुई है, राज्य खड़ा हुआ है । समाजवाद की बात होती है, लेकिन स्टेट कैप्टिलिज्म तक बात जाती है । इससे आगे कहीं जाती नहीं है ।

क्योंकि जब भी आप समाजवाद की बात करते हैं—जब आप कहते हैं सोसाइटी के हाथ में रहे, तो सोसाइटी शब्द बड़ा भ्रान्त है। सोसाइटी का मतलब होता है स्टेट। और जब भी आप सोचते हैं कि प्रोडेक्शंस के मीन्स जो हैं, वे सोसाइटी के हाथ में चले जायें, तब वह नाम सोसाइटी का होता है, पहुंच जाते हैं स्टेट के हाथ में। समाजवाद के नाम से जो हम ला सकते हैं वह ज्यादा राज्य पूंजीवाद, स्टेट कैंप्टिलिज्म ही हो सकता है, इससे भिन्न होने वाला नहीं है। क्योंकि सोसाइटी कहां है, जिसके हाथ में चले जायें—राज्य के हाथ में चले जायें।

और जिस मुल्क में—हमारे जैसे मुल्क में—जहां पोलिटिकल ताकत राज्य के हाथ में बुरी तरह से उपयोग में हो रही है, वहां उसके हाथ में सारी इकोनॉमिक प्रोसेस की ताकत भी पहुंचा देंगे हम, तो दोहरी सयूइसाइड का काम होने वाला है। एक तो सच है जब राज्य के हाथ में दोनों ताकतें एक साथ इकट्ठी हो जायें, उसके हाथ में देश की सम्पत्ति की मालकियत भी चली जाये, और देश की राजनीतिक ताकत भी उसके हाथ में चली जाये, तो हम राज्य को इतनी ताकतें दे रहे हैं, जो ताकतें खतरनाक सिद्ध हो सकती हैं। खतरनाक सिद्ध हुई हैं।

जरूरत तो यह है कि राज्य के हाथ से धीरे-धीरे ताकत खत्म हो। और बड़े मजे की बात यह है कि ख्याल तो यही था, रूस में जैसा हुआ है—ख्याल यही था कि पूंजीवाद मिटेगा तो क्लासेस मिट जायेंगे, लेकिन दो नयी क्लासेस पैदा हो गयीं। एक मैनेजर्स की क्लास पैदा हो गयी है और एक मैनेज्ड की क्लास पैदा हो गयी है। अमीर और गरीब तो चला गया, लेकिन उसमें दो नयी क्लासेस हो गयीं—मैनेजर्स की एक क्लास। पचास आदमियों का छोटा-सा ग्रुप पिछले पचास सालों से हुकूमत कर रहा है। उस पचास आदमी में से आदमी बदल जाता है, लेकिन वह पचास आदमी का एक छोटा-सा ग्रुप है, जो पूरी हुकूमत कर रहा है।

प्रश्न—अस्पष्ट।

यानी मेरा जो कहना है, वह यह है कि समाजवाद जो है, वह पूंजीवाद सम्पत्ति को पैदा कर ले, तभी वह समाजवाद की व्यवस्था में रूपान्तरित हो सकता है, नहीं तो नहीं हो सकता है। और अगर हमने पहले से रूपान्तरण करने की कोशिश की, तो पूंजीवाद जो काम करता है, वह रुक जाता है और समाजवाद पूंजी पैदा नहीं कर सकता है। उसके पास कोई इंसेंटिव नहीं है।

मैं तो यह कहता ही हूं कि समाजवाद पूंजी पैदा करने में समर्थ नहीं है। और यह भी मेरी समझ है कि समाजवाद अगर लाया जायेगा, चेष्टित, थोपा जायेगा ऊपर से, तो उससे फायदे होने वाले नहीं हैं, नुकसान हो जाने वाले हैं। वह अगर एक आउट ग्रो हो, समाज के भीतर से धीरे-धीरे विकसित हो, जो होना चाहिए, तब बहुत और स्थिति होगी। और जितने भी नुकसान उससे होने वाले हैं, तब नहीं होंगे। जैसे—उदाहरण के लिए—अगर हम समाजवाद को ऊपर से थोपते हैं, तो वह सब तरह की स्वतन्त्रता की हत्या किये बिना नहीं थोपा जा सकता। वह असम्भव है। स्वतन्त्रता की हत्या करनी पड़े तो हम उसे ऊपर से थोप सकते हैं।

प्रश्न—जिस तरह देश में समाजवाद लादा जाये, उसी तरह पूंजीवाद भी लादा जाता है।

मैं नहीं कहता, लादा जाये, मैं अगर कहूं कि पूंजीवाद लाना है, तब तो गलत बात हो जाये। पूंजीवाद है। वह आया है, लादा नहीं गया। जो भी यहां है, वह लादा नहीं गया है। आया है। आने और लादे जाने में फर्क है। इसी तरह समाजवाद भी किसी दिन आये, यह मैं चाहता हूं। यह मैं चाहता हूं, जिस तरह जो भी व्यवस्था आज है या कल होगी, वह आनी चाहिए, वह नैचुरल ग्रोथ होनी चाहिए। वह फोर्स्ड इम्प्लीमेंटेशन नहीं होना चाहिए। पोज्ड इम्प्लीमेंटेशन जो है, वह गलत है। वायलेंस होगी ही उसमें और गहरे में स्वतन्त्रता की हत्या भी होगी।

और यह भी मेरी समझ है—इसको अलग से थोड़ी बात कर लेना चाहूंगा, यह भी मेरी समझ है कि मौलिक रूप से समाजवाद जब थोपा जाये, तो व्यक्ति की हत्या करेगा, इंडिविज्युअल को मिटायेगा, और जब आये, तो वह इंडिविज्युअल को मिटाने वाला सिद्ध होने वाला नहीं है। तब इंडिविज्युअल को मिटाने की कोई जरूरत नहीं है। ऐफ्लुएन्ट सोसाइटी की जरूरत है कि हमारे पास इतनी समृद्धि हो कि सम्पत्ति बांटना किसी भी तरह की कठिनाई की बात न रह जाये। किसी को राजी करने की जरूरत ही न हो कि सम्पत्ति बांटने के लिए आप राजी हो जायें। बल्कि हमें सम्पत्ति रखना मुसीबत का कारण हो जाये। उसे बांटना ही सरल हो जाये। इसलिए मैंने कहा कि अमरीका अगर आने वाले तीस-चालीस वर्षों में रोज समाजवादी होता चला जाये, तो वह नैचुरल ग्रोथ होगी। और अमरीका में जो समाजवाद आयेगा, उसका सौन्दर्य बहुत अलग होगा। वैसा सुन्दर समाजवाद हम गरीब मुल्कों में नहीं ला सकते।

प्रश्न—हिन्दुस्तान के बारे में आपका क्या विचार है?

यही मेरा कहना है कि हिन्दुस्तान को पचास वर्ष तो कम से कम व्यवस्थित पूंजीवाद में बिताना चाहिए।

प्रश्न—अस्पष्ट।

असल में मुझसे कोई कहे, मनुष्यता को प्रेम करो तो मैं किसको प्रेम करूं। मनुष्यता कहीं मिलती नहीं। जहां मिलता है, कोई आदमी मिलता है। एब्स्ट्रेक्ट शब्दों में कहीं भी कुछ है नहीं। आप जब किसी को प्रेम करेंगे तो किसी कंक्रीट

इंडिविज्युअल से मनुष्यता को कैसे करेंगे ? मनुष्यता को प्रेम नहीं किया जा सकता। क्योंकि मनुष्यता तो बड़ी ठण्डी चीज है, है ही नहीं, पहली तो बात है। कहां मनुष्यता को गले लगाइयेगा ? मनुष्य का जो स्वभाव है, वह स्वभावतः एब्स्ट्रेक्ट और हवाई बातों के लिए नहीं है, न हो सकता है, इसलिए जितना जिन्दा आदमी होगा, उतना कंक्रीट होगा। जितना मरा हुआ आदमी होगा, मुर्दा आदमी होगा उतना एब्स्ट्रेक्ट बातें करेगा।

अगर आपको किसी आदमी से प्रेम नहीं करना है, तो आप मनुष्यता से प्रेम कर सकते हैं। फिर कोई दिक्कत नहीं है, फिर कोई तकलीफ नहीं है। और मनुष्य की सीमा है। जितनी सीमा से दूर होती जाती है बात, उतना उसके हाथ के पहुंच के बाहर होती जाती है। अब राष्ट्र, वह मेरी हाथ की पहुंच के बाहर हो जाता है। अब सारे राष्ट्र को स्वच्छ करने की बात हो, तो हाथ के बाहर हो जाती है, क्या करूं, कैसे करूं ? लेकिन इस कमरे को स्वच्छ करना हो, तो मेरे हाथ के भीतर होती है बात। हमें मनुष्य के स्वभाव को समझना चाहिए।

सोशलिज्म जो है, वह मनुष्य के स्वभाव को समझने के लिए बिल्कुल ही तैयार नहीं है। वह मनुष्य के ऊपर एक तरह का स्वभाव लाद रहा है, जो कि सच नहीं है। जैसे कि अभी आपने कहा, वह गलत कहते हैं आप। आप कहते हैं, एवरीबडी सोशलिस्ट, कोई नहीं है। जो सोशलिस्ट कहता है वह भी नहीं है। उसको भी एक बड़ी कार दे दो, एक बड़ा बंगला दे दो, खूबसूरत औरत दे दो, वह भी नहीं है। वह भी नहीं है। आप कहते हैं, सब आदमी सोशलिस्ट है, बिल्कुल गलत कहते हैं। सब आदमी इंडिविज्युअलिस्टस हैं। सोशलिस्ट होना आसान मामला कहां है ? सोशलिस्ट होने का मतलब ही क्या है ? कोई आदमी सोशलिस्ट नहीं है। सोशलिस्ट होने का कोई मतलब नहीं होता।

हर आदमी इंडिविज्युअलिस्ट है और बुराई भी नहीं है इसमें। बिल्कुल स्वाभाविक यही है। और न ही यह बात सच है कि आप सब लोगों को समान मानते हैं। कोई आदमी नहीं मानता है। और न मैं यह कहता हूं कि सब आदमी समान हैं। कोई आदमी है भी नहीं। हो भी नहीं सकता। और हर आदमी की अपनी जिन्दगी है।

मैं एक स्त्री को प्रेम करता हूं, तो उसके लिए मैं एक घर सजाना चाहता हूं। घर का सजाना अपने आप में मूल्यवान है ही नहीं। आपकी जिन्दगी में कोई स्त्री नहीं है तो आप कैसे भी कपड़े पहने हुए बैठे हैं। और एक स्त्री आपकी जिन्दगी में आ गयी, आपके कपड़े संवर गये, सुधर गये, आपके कपड़े को देखकर समझा जा सकता है कि स्त्री जिन्दगी में है या नहीं। कोई जिन्दगी में आ रहा है, तो आपकी जिन्दगी में एक प्रेरणा आ रही है। और उस प्रेरणा की···ऐसे—जैसे हम नदी में एक पत्थर फेंकते हैं, तो जो पहला वर्तल उठता है, वह बड़ा होता है,

फिर उसके बाद छोटे होते हैं, फिर जितने वर्तुल फैलते जाते हैं। उतने सबसे छोटे होते चले जाते हैं। ऐसा ही मनुष्य है।

हर आदमी अपने केन्द्र पर गहरे से गहरा वर्तुल उठा रहा है। फिर वह जैसे-जैसे दूर होता जाता है, उतना छोटा होता जाता है। यह स्वाभाविक है। इसलिए अगर आपने बहुत बड़े वर्तुल बना लिए और आपने कहा कि उनके लिए जियो, तो वह तो बेमानी हो गयी, आपके हाथ के बाहर हो गयी। इसलिए सोशलिज्म के पास इंसेंटिव नहीं है। सोशलिज्म के पास एक वायलेंस है। वायलेंस तभी तक काम करती है, जब तक जिनके पास है, उनसे आप नहीं छीन लेते हैं। जब आप छीन लेंगे, तब वह खत्म हो जाती है। तब क्या करियेगा ? अभी यह बात है बिल्कुल पक्की। जिस दिन उन्नीस सौ सतरह में रूस ने जार के महल पर हमला किया, तो उसके महल में बड़ा बहुमूल्य कालीन था, उसके घर में। अब उसको सैकड़ों लोग इकट्ठा खींचने लगे, उस कालीन को ले जाने के लिए। उसे कैसे ले जायेंगे, इतने लोग कैसे ले जायेंगे। तो फिर यह हुआ कि लोगों ने फिर टुकड़े काट-काट कर, फिर जरा-जरा सा टुकड़ा अपने-अपने घर ले गये। अपने घर में टांग लिया कि हमारे घर में लाखों रुपये के कालीन का एक टुकड़ा है। वह लोगों ने बांट लिया। वह घर जो सुन्दर था, वह भी उजड़ गया, लेकिन उससे उनका घर सुन्दर नहीं हो गया, चीथड़ा भर लटक गया, जिसका कोई मतलब नहीं। और मजे की बात यह है कि वह टुकड़ा जब वे घर ले गये, तो लटकाया अपने ही घर में। उसको भी जाकर किसी पब्लिक प्लेस में नहीं जोड़ आये।

आदमी का जो दिमाग है, वह स्वाभाविक है कि उसके अपने वर्तुल हैं, उनके भीतर वह जीता है। इसलिए मैं मानता हूं कि सम्पत्ति पैदा करवाने की जो दौड़ है, वह पूंजीवाद तो आपको इसलिए दे देता है कि आप एक घर चाहते हैं, कार चाहते हैं, अपने बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा चाहते हैं, मकान चाहते हैं। इसलिए आप में एक इन्सेंटिव है। लेकिन यह इन्सेंटिव आपसे छीन लिया गया है, तो फिर आप किस लिए हैं ? सोसाइटी, समाज, देश, मनुष्यता सारी मनुष्य जाति, ये शब्द सुनने में आते हैं, लेकिन कहीं ठीक नहीं है।

आइंस्टीन से किसी ने पूछा कि आप छः शब्द, जो आपकी जिन्दगी में सबसे कीमती हैं, बता दें। उसने पत्नी पहला शब्द रखा और ईश्वर अन्त में। समझा कि ईश्वर सबसे कम ठीक है। तब वह कहता है कि ईश्वर कहीं मेरी पसन्द में नहीं आता—पत्नी। मैं ऐसे कहूं तो वह आदमी बड़ा ईमानदार था। हमारे मुल्क में शायद ही कोई आदमी पत्नी को नम्बर एक रख सकता हो। उसने कहा, पत्नी पहला। फिर ऐसा बढ़ता चला गया। आखिर में उसने कहा, परमात्मा, आखिरी वर्तुल मेरा वह है, जिसको मैं छू नहीं पाता, लेकिन है मेरे मन में एक वर्तुल। कभी उसको भी छू लेना है। लेकिन निकट तो मेरे पत्नी ही पड़ेगी।

तो हमारे वर्तल हैं व्यक्तित्व के। समाजवाद जो वर्तुल पैदा करता है, इतने फासले पर हैं कि वे कहीं छूते नहीं हैं। जो हमारी कठिनाई है। और इसलिए जैसे यह मुल्क है। हम रोज देखते हैं, लेकिन हमारे ख्याल में नहीं आता है। हमारा पूरा मुल्क बहुत छोटे वर्तुल बनाता है। महाराष्ट्र का वर्तुल है, मैसूर का वर्तुल है, राष्ट्र का वर्तुल तक नहीं है। कोई ऐसा भाव ही नहीं है, जो राष्ट्र को बनाता हो। ब्राह्मण का है, भंगी का है, जैन का है, हिन्दू-मुसलमान का है, ईसाई का है। ये वर्तुल छोटे वर्तुल हैं।

आखिर में आप हैं, आपका छोटा-सा परिवार है, और उस परिवार में भी अगर चुनाव का मौका आ जाये तो अन्त में आप अकेले हैं। वह आखिरी आपका व्यक्ति का जहां सबसे ज्यादा सोर्स है, ताकत का वहां। उस पर हमें मेहनत करनी पड़ेगी। यानी मेरा मानना यह है कि पूंजीवाद का भरोसा व्यक्ति के ऊपर है और व्यक्ति एक सच्चाई है। और समाजवाद का भरोसा समाज पर है।

समाज सिर्फ एक शब्द है। यह कहीं है नहीं। इसलिए पूंजी पैदा करने की सामर्थ्य नहीं है उसमें। आप पूंजी, एक दफा पूंजीवाद पैदा कर लें, तो समाज बांट लेगा और फिर काम-चलाऊ ढंग से चलता जायेगा, दस साल में एफ्लुएन्स आ जायेगा तो फिर दिक्कत भी नहीं। जैसे अमरीका जैसे मुल्क में अगर पचास साल बाद समाजवाद आता है तो काम चल जायेगा, इसलिए कि पचास साल में सब ऑटोमेटिक हो जाने वाला है। मजदूर की कोई जरूरत भी नहीं रह जाने वाली है बड़े पैमाने में। सारी मशीनें काम करने लगेंगी। आदमी के काम की भी जरूरत नहीं है। मशीन को इंसेंटिव की भी जरूरत नहीं है। मशीन पूछती नहीं कि हम किसलिए पैदा कर रहे हैं। पैदा करती चली जा रही है।

तो जैसे-जैसे मशीन के हाथ में व्यवस्था आ जायेगी समाज की, वैसे-वैसे समाजवाद सरल हो जायेगा। जब तक व्यक्ति के हाथ में पूंजी पैदा करने की व्यवस्था है, तब तक समाजवाद सम्भव नहीं है। और अगर सम्भव हम बनायेंगे तो व्यक्ति की हम हत्या कर देंगे। और मजा यह है कि सारे व्यक्तियों में भी एक-सा नहीं है। सम्पत्ति पैदा करना भी ऐसा ही है। इस सम्बन्ध में बड़ा दुर्भाव ही रहा है।

अगर आदमी एक कवि है तो हम कहते हैं, यह जन्मजात है। लेकिन एक आदमी सम्पत्ति पैदा करता है, तो हम नहीं कहते कि वह आदमी जन्मजात सम्पत्ति पैदा करने में समर्थ है। वह भी है। एक आदमी पेन्ट करता है, तो हम कहते हैं, जन्मजात पेन्टर है। पेन्टर बनाया नहीं जा सकता, पेन्टर पैदा होता है।

मैं कहता हूं, पूंजीपति भी नहीं बनाया जा सकता है। वह भी पैदा होता है। पूंजी पैदा करना भी एक प्रतिभा है। किसी की पेन्ट करना प्रतिभा है, किसी

का वीणा बजाना प्रतिभा है। मेरे जैसे आदमी को कितनी ही पूंजी दे दो, दूसरे दिन हजार रुपया दे दो, उससे कुछ पैदा ही नहीं कर सकता। वह मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। उसे मैं बांट सकता हूं। उसे लुटा सकता हूं। उसे चोर ले जायें, उसे कोई कुछ करे, यह हो सकता है। तो पूंजी भी कुछ थोड़े से लोगों ने ही पैदा की है, सारी मनुष्यता ने पैदा नहीं की है। अमरीका में हम आठ-दस नाम अलग कर दें, फोर्ड है, मार्विन है, रॉकफेलर है, आठ-दस नाम अलग कर दें, तो अमरीका में वैसे दरिद्र हैं, जैसे हम हैं। दस आदमी ने पूंजी का वर्तुल पैदा कर दिया है। और जब उन्होंने पैदा करना शुरू किया तो उस वर्तुल में छोटे-छोटे वर्तुल पैदा हुए; और छोटे-छोटे लोग आये, और छोटे-छोटे लोग आये; और एक-एक के पास सम्पत्ति पैदा हुई।

अब पूंजीवाद को हटाकर आप जब राज्य के हाथ में यह बात दे देते हैं, तो राज्य के पास ऐसा कोई वर्तुल नहीं है, इंसेंटिव नहीं है, कहीं कुछ बात नहीं है। तब फिर जबरदस्ती एक रास्ता रह जाता है कि हम कोड़े के बल पर काम करवा लें। बन्दूक लगा दें छाती के पीछे। उसके बल पर काम करवा लें। तो सम्पत्ति पैदा करने के लिए अगर बन्दूक लगानी पड़े, तो मैं समझता हूं कि वह ज्यादा खतरनाक है, बजाय इसके कि जो हो रहा है। इसको हमें सुधारना है, और व्यवस्था देनी चाहिए।

मेरा मानना ऐसा नहीं है कि पूंजीवाद जैसा चल रहा है वैसा ही चले, यह भी मेरा मानना नहीं है। क्योंकि जैसा चल रहा है, वह बिल्कुल अन्धी दौड़ है। उसे हमें सुनियोजित करना चाहिए, वेल प्लैन्ड करना चाहिए और सीलिंग हमें नीचे से बनानी चाहिए, ऊपर से नहीं। हमें यह नहीं कहना चाहिए कि फलां आदमी इससे ज्यादा सम्पत्ति नहीं रख सकेगा। हमें सीलिंग यह बनानी चाहिए कि इससे कम सम्पत्ति के आदमी को बर्दाश्त न करेंगे। इसको हम मिटा कर रहेंगे। इससे कम सम्पत्ति हम न देखेंगे किसी आदमी के पास। सीलिंग नीचे बनानी चाहिए। हम कहें कि हम सौ रुपये से कम किसी आदमी को न मिलने देंगे चाहे कुछ भी हो जाये। सारा मुल्क ताकत लगायेगा कि हम सौ रुपये से कम न मिलने देंगे, किसी को।

एक आदमी करोड़ों रुपया कमाता है, उसकी हमें फिक्र नहीं है। सौ से कम कोई आदमी न रह जाये। सीलिंग नीचे लानी है। क्योंकि अभी हम जिसे पूंजीवाद कह रहे हैं वह बहुत कन्फ्यूज्ड है, साफ नहीं है। तो हमें सारी व्यवस्था ऐसी करनी चाहिए कि सम्पत्ति कैसे अधिकतम पैदा हो जाये। जो लोग पैदा कर सकते हैं, उन्हें सारी सुविधा देनी चाहिए। तो अभी उल्टी हालत हो गयी है। सोशलिज्म का भूत सवार है। वह जो सम्पत्ति पैदा करते हैं, उसको सारी असुविधा का इन्तजाम किया जा रहा है! उसको सुविधा दे देना, जो पैदा नहीं

कर सकता—वह करेगा नहीं। जो कर सकता था वह कर न पायेगा। यह पूरी की पूरी बात मुल्क की चेतना के सामने रख देने की जरूरत है।

प्रश्न—सबको सुविधा होनी चाहिए कि यदि वह समाजवादी ढंग से जीना चाहे, तो समाजवादी ढंग से जिये और पूंजीवादी ढंग से जीना चाहे, तो उस ढंग से जिये।

पूंजीवाद तो यह कर सकता है कि जिसको समाजवादी होना हो, हो। समाजवादी यह नहीं कर सकता। इसलिए पूंजीवाद में ही डेमोक्रैसी हो सकती है। सोशलिज्म में डेमोक्रेसी नहीं हो सकती। तो पूंजीवाद तो यह कर सकता है कि जिसको समाजवादी होना हो हो। कल्याण जी को फितूर चढ़ जाये, समाजवादी होने का, हो जायें। बांट दें अपनी सम्पत्ति, इन्हें कोई मना नहीं करता। लेकिन समाजवादी बर्दाश्त नहीं करेगा कि आपके पैसा इकट्ठा हो। इसलिए समाजवादी बुनियादी रूप से एन्टी डेमोक्रैटिक है। वह डेमोक्रैटिक हो नहीं सकता है। क्योंकि वह तो किसी चीज को जबरदस्ती थोपना चाहता है। समाजवादी डेमोक्रैटिक तब हो पायेगा, जब पूंजी इतनी ज्यादा हो जाये कि उसको इकट्ठा करना पागलपन हो।

जैसे कि आज हवा बहुत ज्यादा है, तो आप अपने घर में हवा बन्द करके नहीं रखते। हम कहते हैं, जिसको बन्द करके रहना हो, बन्द करके रख ले। लेकिन कोई बन्द करके नहीं रखता। क्योंकि बन्द की तो और सड़ जायेगी। खिड़की खुली रखो, तो आ जा रही है। लेकिन कल अगर हवा कम हो जाये, ऑक्सीजन कम हो जाये, तो जिसके पास सुविधा है हवा बन्द कर लेगा, जिसके पास असुविधा है, वह मरने लगेगा बिना हवा के।

न्यून चीजें जब तक हैं, तब तक व्यक्तिगत दावे का सवाल उठता है। जब चीजें इफरात हो जाती हैं तो सवाल नहीं है। अगर दुनिया में कभी समाजवाद लाना हो, तो सम्पत्ति इतनी कर देनी चाहिए कि सम्पत्ति पर मालकियत का कोई अर्थ न रह जाये। यानी मेरा जोर इस बात पर है कि सम्पत्ति इतनी एफ्लुएन्ट कर दो कि उसकी कोई मालकियत का सवाल न रह जाये। तुम अभी अपनी एक कार पर मालकियत रखते हो कि मेरी कार है। लेकिन कल अगर हर आदमी के पास कार हो जाये, तो क्या कहने का मतलब है कि मेरी कार है ? कोई मतलब नहीं है। वह है मेरी कि नहीं यह कोई पूछता भी नहीं। मेरे का जो मजा है, वह तभी तक है। इधर मेरा मानना ऐसा है, हिन्दुस्तान के लिए अगर कोई रास्ता है, तो वह व्हाया वाशिंगटन है, वह व्हाया मास्को नहीं है। ●

बम्बई, दिनांक ५ मार्च १९७०

१३. समाजवाद : पूंजीवाद का विकास

मेरे ख्याल में कि अगर कोई बात सत्य है, उपयोगी है, तो सत्य अपना माध्यम खोज ही लेता है। नहीं अखबार थे तब की दुनिया में, सत्य मरा नहीं। बुद्ध के लिए कोई अखबार नहीं था, महावीर के लिए कोई अखबार नहीं था, क्राइस्ट के लिए कोई अखबार नहीं था। तो भी क्राइस्ट मर नहीं गये। अगर बात में कुछ सच्चाई है, तो सत्य अपना माध्यम खोज लेगा। अखबार भी उसका माध्यम बन सकता है। लेकिन अखबार की वजह से कोई सत्य बचेगा, ऐसा नहीं या अखबार की वजह से कोई असत्य बहुत दिन तक रह सकता है, ऐसा भी नहीं है। माध्यम की वजह से कोई चीज नहीं बचती है, कोई चीज बचने योग्य हो, माध्यम मिल जाता है। अखबार भी मिल ही जायेगा। नहीं मिले, तो भी इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। हम जो कह रहे हैं, वह सत्य है, इसकी चिन्ता करनी चाहिए। अगर वह सत्य है तो माध्यम मिलेगा। और नहीं मिला तो भी क्या हर्ज है, तो भी कोई हर्ज नहीं है।

लेकिन इस युग में फर्क पड़ा है, और वह फर्क यह है कि थोड़े बहुत दिन तक प्रचार के द्वारा, असत्य को भी चलाया जा सकता है। प्रॉपेगैण्डा, असत्य को भी थोड़ी देर तक तो चला ही सकता है। सत्य भिखारी जैसा लग सकता है। और थोड़ी देर तक, प्रॉपेगैण्डा सत्य को भी प्रचारित होने से रोक ही सकता है। लेकिन यह चरम बात नहीं है, यह थोड़ी देर के लिए बात है।

प्रश्न—अस्पष्ट

यह बिल्कुल स्वाभाविक है। जो मैं कह रहा हूं, बहुत से न्यस्त-स्वार्थों के विपरीत कह रहा हूं, जो मैं कह रहा हूं, बहुत से पण्डितों, पुरोहितों और वादों के विपरीत कह रहा हूं। जो मैं कह रहा हूं, जो पुराना है, उसके विपरीत कह रहा हूं। तो पुराना अपनी रक्षा के उपाय करेगा। लेकिन मेरी समझ यह है कि जब भी कोई विचार रक्षा की, डिफेंस की हालत में आ जाता है, तो उसकी मौत करीब है। जब भी कोई विचार डिफेंसिव हो जाता है और रक्षा करने लगता है तब उसकी मौत करीब आ जाती है। और जब विचार जीवंत होता है, तब वह आक्रामक होता है और जब मरने लगता है, तब वह रक्षात्मक हो जाता है। इसलिए मेरे लिहाज से वह सब लक्षण हैं। अगर एक आदमी को न्यूट्रलाइज करने के लिए, दो साल मेहनत करनी पड़े, तो ये बड़े शुभ लक्षण हैं। और मुल्क भर में सारे लोगों को, अगर एक आदमी से लड़ना पड़ता हो···और मैं एक दिन के लिए आऊं और उनको साल भर लड़ाई चलानी पड़ती हो, तो ये बड़े शुभ लक्षण हैं। साधारण लक्षण नहीं हैं। बड़े शुभ लक्षण हैं। मतलब यह है कि एक बात उनकी समझ में आ गयी है कि वे डिफेंस में हैं।

दूसरी बात यह है कि जो मैं कह रहा हूं, और जो वह कह रहे हैं, हम दोनों के बल अलग हैं। अलग का मेरा मतलब यह है कि मेरा बल भविष्य में है, आने वाली पीढ़ी में है, उनका बल अतीत में है, जाने वाली पीढ़ी में है। उनका जो बल है, वह जाने वाली पीढ़ी में है और अतीत में है। उनका बल डूबते हुए सूरज में है। मेरा बल उगते हुए सूरज में है।

इसलिए मुझे उनकी कोई बहुत चिन्ता लेने जैसी बात नहीं है। अगर बीस साल वे इसी तरह गुजरते हैं, तो भी आप देखेंगे कि उनका सूरज डूब जायेगा। क्योंकि जिनका उनको बल है, वे बीस साल में विदा हो जायेंगे, जिनका मेरा बल है, वे बीस साल में शक्तिशाली हो जायेंगे। इसलिए लड़ाई आज भला ऐसी कुछ लग सकती है कि मैं कुछ कहकर जाता हूं, फिर साल छः महीने में उसको लीप-पोत दिया जाता है, लेकिन ऐसा विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता है। और एक बड़े मजे की बात यह है कि जब मुझे गलत सिद्ध करने में, या मैं जो कह जाऊं, उसे लीप-पोंछ डालने में उनको सारी ताकत लगानी पड़ रही है, तो वे कुछ दे नहीं पायेंगे और बीस साल में उनका काम सिर्फ इतना ही रह जायेगा, जैसा कि घर में सुबह नौकर घर को साफ करता हो, कचरा साफ करता है, उससे ज्यादा उनका मूल्य नहीं रह जायेगा। वे क्रिएटिव देने की हालत में कुछ भी नहीं हैं।

मैं उनकी चिन्ता नहीं लेता। मुझे जो कहना है, वह मैं कहे चला जाऊंगा। मुझे जो ठीक लगता है, वह मैं दोहराये चला जाऊंगा। मुझे जो अच्छा लगता है, उसे मैं बनाये चला जाऊंगा। मेरा भरोसा क्रिएटिविटी में है। मेरा भरोसा इतना

नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं, मैं उनसे जूझने जाऊं, क्योंकि मैं मानता हूं कि वे हारी हुई बाजी लड़ रहे हैं। इसलिए उनकी चिन्ता लेने की जरूरत नहीं है।

और फिर एक बात है कि कुछ चीजें हैं, जो मर चुकी हैं—सिर्फ कुछ स्वार्थ हैं, उनको जिन्दा रखने को—लाशें हो चुकी हैं। मकान गिर चुका है; लेकिन कुछ लोग बल्लियां लगाये हुए सम्भाले खड़े हैं। क्योंकि उनका सारा स्वार्थ उस में है। और हम इतने बड़े संक्रमण के समय में हैं, इतना बड़ा ट्रांसफार्मेशन करीब है, इतने जोर से सारी दुनिया बदल रही है कि बल्लियां बहुत ज्यादा देर नहीं रोकी जा सकतीं। और न बहुत ज्यादा इस मुर्दे को अब जिन्दा रखा जा सकता है। वह तो गिरेगा।

तो मेरा काम इतना ही है कि मैं यह बता जाऊं कि यह जो लाश पड़ी है, यह जिन्दा नहीं है। और मैं मानता हूं कि अगर एक दफा आपको दिखायी पड़ जाये कि लाश है, जिन्दा नहीं है तो पचास गुरु भी आपको समझाकर नहीं बता सकते हैं कि यह जिन्दा है। एक दफा दिखायी पड़ जाना चाहिए फिर बहुत मुश्किल है।

जैसे राजकोट जैसी जगह है, यहां दो लाख आदमी रहते हैं। दो लाख तो मुझे नहीं सुनते हैं। थोड़े से लोग मुझे सुनते हैं। जरूरी नहीं है कि वे ही लोग उनको सुनते हों, जो मेरा विरोध कर जाते हैं। लेकिन एक मेरी समझ है और मेरी समझ यही है कि मुझे सुनने में रोज-रोज, नये से नया युवक उत्सुक हो रहा है। उस पर मेरी यात्रा है। और अगर कोई वृद्ध भी मेरी इन बातों में उत्सुक हो रहा है, तो मैं मानता हूं कि किसी गहरे अर्थ में वह वृद्ध नहीं है, क्योंकि मेरे साथ वृद्ध खड़ा ही नहीं रहता। अगर कोई बूढ़ा आदमी मेरे पास आ रहा है, तो किसी न किसी अर्थ में उसकी आत्मा जवान है, तो मेरे पास आ रहा है, नहीं तो नहीं आता।

और वे जो मेरे विरोध में काम कर रहे हैं, उनके पास अगर देखेंगे, तो वहां आपको बिल्कुल मुर्दे मिलेंगे, जिनका एक पैर चला गया है कब्र में। वे लोग आपको दिखायी पड़ेंगे। मन्दिर में, मस्जिद में, पुरोहित के पास, गुरु के पास···मरा हुआ आदमी दिखायी पड़ेगा। उससे आशा नहीं बांधी जा सकती है।

और यह भी मेरी समझ है कि दुनिया में जब भी कोई क्रान्तियां होती हैं तो सारा मुल्क क्रान्ति नहीं करता। एक चुना हुआ वर्ग, एक सोच-विचारशील वर्ग, एक इंटेलीजेंसिया, जो बहुत छोटा-सा हिस्सा होता है, वह क्रान्ति करता है। यह मेरी समझ है कि वह जो इंटेलीजेंसिया है, वह जो सोच-विचारशील वर्ग है, वह पुराने गुरुओं के पास नहीं है। न हो सकता है, वह उससे चला गया है। वह उसके पास नहीं है। चित्रकार हो, मूर्तिकार हो, कवि हो, लेखक हो, विचारक हो, दार्शनिक हो, चिन्तक हो, वह वहां नहीं है, जो मेरे विरोध में है। लेकिन वह

धीरे-धीरे मेरी बातों में उत्सुक हो रहा है।

तो मेरी अपनी समझ यह है कि देश की जो इंटेलीजेंसिया है, जो देश का सोचने वाला वर्ग है, जरूरी नहीं है कि सोचने वाला वर्ग धनी हो। अक्सर ऐसा नहीं होता है। अक्सर सोचने वाला वर्ग धनी नहीं होता। सोचने वाला वर्ग अक्सर मध्य वर्ग से आता है। सारी दुनिया की जो क्रान्ति है, वह सब मध्यम वर्ग से आती है। तो मेरी नजर में वह ख्याल में है, वह वर्ग मुझ में उत्सुक हो रहा है, और यह भी बड़े मजे की बात है, जो वर्ग मुझमें ही उत्सुक हो सकता है, वह वर्ग उनमें उत्सुक नहीं हो सकता है। उसके और उनके बीच के सेतु टूट गये हैं। इसकी मुझे चिन्ता नहीं है।

मैं अपनी बात कहे चला जाता हूं, और फिर मुझे इसका भी फर्क नहीं पड़ता कि क्या परिणाम होगा? इतनी बड़ी जिन्दगी में हमें परिणाम की चिन्ता में नहीं पड़ना चाहिए। मैं जो कर रहा हूं, वह ठीक होना चाहिए, यह भरोसा होना चाहिए, परिणाम क्या होगा इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। वह कोई हिसाब-किताब भी नहीं किया जा सकता। मुझे ठीक लग रहा है, वह कहने में मैं आनंदित हूं, बात खत्म हो गयी। अगर उसमें उपयोगिता होगी, तो लोग उसका उपयोग कर लेंगे अन्यथा लोग उसे भूल जायेंगे।

ऐसा भी मेरा आग्रह नहीं है कि जो मैं कह रहा हूं, वह लोगों को मानना ही चाहिए। ऐसा भी मेरा आग्रह नहीं है कि मेरी बात मानकर ही सब कुछ हो जाना चाहिए। अगर वह ठीक होगी तो वह मान लेंगे, अगर ठीक नहीं होगी तो अच्छा ही है कि न मानें। संघर्ष तो चलेगा इसलिए मैं मानता हूं कि जो आदमी आकर कहता है कि मैं गलत कह रहा हूं, वह मेरे काम में सहयोगी है। क्योंकि हो सकता है कि मैं गलत ही कह रहा हूं। हो सकता है मैं सही कह रहा हूं, तो उसके गलत कहने से यह बात बहुत देर चलने वाली नहीं है। लोग भी सोचेंगे, समझेंगे। जो ठीक होगा उन्हें दिखायी पड़ेगा। इसलिए मैं आग्रहशील नहीं हूं।

जैसा आप कहते हैं, आपके मिशन का क्या होगा? एक अर्थ में मेरा कोई मिशन नहीं है, क्योंकि मिशन का मतलब आग्रह होता है। यानी मैंने कोई ठेका ले रखा हो कि ऐसा ही हो जाना चाहिए दुनिया में, ऐसा मेरे मन में कोई भाव नहीं है, मिशनरी मैं नहीं हूं। मुझे जो ठीक लग रहा है, वह आपसे कह देता हूं। इतना मैं अपना दायित्व समझता हूं कि जो मुझे ठीक लग रहा हो···तो थोड़ी मनुष्यता की मुझमें कमी है।

जो ठीक लग रहा था वह मैंने आपसे कह दिया है, मेरा काम पूरा हो गया है। आप रास्ते से जा रहे हैं। मैंने देखा, पास में गड्ढा है जिसमें मैं गिर सकता हूं। और मैंने आपसे कहा कि पास में गड्ढा है और बात खत्म हो गयी। फिर भी आप गिरते हैं, वह आपकी मौज रही, उसका मुझ पर कोई जिम्मा न रहा।

लेकिन मैं बैठा हूं, आप गड्ढे में जा रहे हैं। मैं बैठा देखता हूं। आप गड्ढे में गिर जायें और मैं देखता रहूं, तो आपके गड्ढे में गिरने में, मैं भी जिम्मेदार था। इसका दायित्व मुझ पर भी हो जायेगा। तो मेरा काम इतना है कि मैं चिल्लाकर आपको कह दूं कि ऐसा हो रहा है। फिर आपकी मर्जी।

और हर आदमी को हक है कि अपनी मर्जी से तय करे और इसलिए हजारों करेंट चलते हैं जिन्दगी में, कि कोई एक करेंट निर्धारित हो ही नहीं सकता। इन सबके चिन्तन का इकट्ठा परिणाम अन्त में निर्धारित होता है। अगर हम बीस लोग यहां बैठकर बात करें, तो न तो मैं सत्य का निर्धारक हो सकता हूं, न आप। लेकिन अगर हम सत्य के खोजी हैं और बीस लोग विवाद करें, वाद करें, संवाद करें, चर्चा करें, तो अन्त में जो सत्य बीस लोगों की चर्चा से निकलेगा, न तो मेरा होगा, न वो आपको होगा। लेकिन अगर इन बीस लोगों ने ईमानदारी से सत्य की खोज की है, तो मैं जिसको सत्य कहता था, उससे भी ज्यादा सत्यतर होगा, आप जिसे सत्य कहते थे, उससे ज्यादा सत्यतर होगा।

तो जिन्दगी तो एक बड़ा डायलॉग है। उसमें जो गलत कह रहा है, सही कह रहा है, वह सबका उपयोग है। और मुल्क एक स्थिति में है, जहां हमें कुछ निर्णय लेने हैं, जो हमने हजारों साल तक पोस्टपोन किये थे। तो उन निर्णय लेने की स्थितियों में मेरे विचार मुझे सामने रख देने हैं। आपको अपने रख देने हैं, किसी को अपने रख देने हैं। एक डायलॉग होगा, पूरा मुल्क सोचेगा, समझेगा, उससे कुछ निकलेगा। वह निकला हुआ न मेरा होगा, न आपका होगा, न किसी का होगा। वह हम सबका सम्मिलित फल होगा। और उस सम्मिलित फल के लिए मेरी चिन्ता है।

इसलिए मेरा कोई मिशन नहीं है। अगर मिशन की भाषा में कहें तो मेरा यही मिशन है कि मुल्क में एक संवाद चल पड़े। एक बात चल पड़े, एक चर्चा होने लगे, लोग सोचने लगें, लोग चेतने लगें, लोग बात करने लगें, लोग तय न रह जायें, लोगों के पुराने कंक्लूजन न रह जायें। वह मेरा काम मैं पूरा कर रहा हूं और वह जो मेरे विरोध में बोल रहे हैं वे भी मेरे काम में सहयोगी हो रहे हैं।

मैं चाहता हूं, मुल्क ऐसी स्थिति में आ जाये, नो कंक्लूजन में, जिसके पास निष्कर्ष नहीं है, क्योंकि जिस कौम के पास निष्कर्ष पक्के हो जाते हैं, वह कौम सोचना बन्द कर देती है। फिर सोचने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। हमेशा हमारा कंक्लूजन पहले से तय होता है, सोचने की कोई जरूरत नहीं है, हमने कोई दो तीन हजार साल से सोचा नहीं है। इसलिए मैं मानता हूं कि मुल्क अगर संदिग्ध हो जाये, इतना काम मैं करूंगा। इतना मैं हर मुद्दे पर कर दूंगा, इतना काम हो जायेगा। इसमें कोई शक ही नहीं है। मैं सन्देह में डाल दूंगा। जो मेरे विरोध में आयेंगे, वे भी मेरा काम कर जायेंगे, क्योंकि वे मेरे साथ भी आपको

निस्संदिग्ध न होने देंगे, मेरे साथ भी संदिग्ध कर देंगे।

मुल्क सन्देह की स्थिति में आ जाये—ए मूड ऑफ डाउट पैदा हो जाये तो काम पूरा हो जायेगा। उस संदेह से बहुत कुछ पैदा हो सकता है। बहुत सृजनात्मक विचार का जन्म हो सकता है।

और दुनिया में जो भी ऐसे युग हुए हैं, जिन्होंने दान किया है, वे संदेह के युग हैं। जैसे बुद्ध और महावीर के वक्त, आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले बिहार ने कुछ दान दिया। वह बड़े संदेह का युग था, बिहार के लिए। बिहार में कोई आठ तीर्थंकर थे और वे आठों अपनी बात कह रहे थे, और आठों बाकी सात के विरोध में थे। तो बिहार ने दान दिया था। एथेंस में सॉक्रटीज और प्लेटो और अरस्तू के जमाने में संदेह का युग था। पच्चीसों विचारक थे, जो अपनी बात कह रहे थे। एथेंस जो उस समय दे गया, फिर नहीं दे सका कभी भी।

आज मैं मानता हूं कि उस तरह का संदेह जहां भी है, जिस देश में है। जैसे रूस में नहीं है, पिछले पच्चीस साल में रूस की बुद्धिमता ने कोई बहुमूल्य चीजें, नहीं दीं। आश्चर्यजनक है कि उन्नीस सौ सत्तरह के पहले रूस एक संदेह का युग था, तो दोस्तोवस्की पैदा हुआ, उसी से लेनिन पैदा हुआ, उसी से ट्राटस्की पैदा हुआ, उसी से टाल्स्टाय पैदा हुआ, उसी से गोर्की पैदा हुआ, उसी से सुग्रनोव पैदा हुआ, उसी से चेखोव पैदा हुआ। रूस में बहुत अद्भुत लोग पैदा हुए। उन्नीस सौ सत्तरह के पहले रूस में कोई बीस ऐसे अद्भुत आदमी हुए, जो कि किसी भी कौम को हजारों साल के लिए गौरव दे दें। लेकिन उसके बाद नहीं हो सके। उसके बाद जड़ हो गये, क्योंकि रूस के पास कंक्लूजन हो गया, उसके पास पक्का कंक्लूजन हो गया। उसको अब कोई सोचने की जरूरत न रही।

तो मैं यह कहता हूं, यह जो मुल्क है, कोई दो तीन हजार साल से अन्धेरे में जी रहा है। एथेंस, या उन्नीस सौ सत्तरह के पहले का रूस या बुद्ध के जमाने का बिहार, ऐसा इस मुल्क में नहीं हो पा रहा है। इतना काम भी पूरा हो जाये तो मेरा काम पूरा हो जाये।

प्रश्न—आज के भारत में जो क्लाइमेक्स आ गयी है—अगर यही स्थिति है और पन्द्रह-बीस साल तक और चली गयी तो ऐसा नहीं है कि…।

हां हो सकता है, इसलिए जल्दी करने की जरूरत है। इसलिए मुल्क जल्दी चिन्तन करे, इसकी चिन्ता करते की जरूरत है। और जो आप कहते हैं, क्लाइमेक्स तक पहुंच गये हैं, वह मैं नहीं मानता। क्योंकि क्लाइमेक्स पर पहुंचकर सदा क्रान्ति हो जाती है। हम क्लाइमेक्स पर नहीं पहुंच रहे हैं। बल्कि हम इतनी कमजोर कौम हैं कि छोटी-सी गड़बड़ होती है, उसको हम क्लाइमेक्स कहते हैं। हम इतने भयभीत लोग हैं, जरा-सी गड़बड़ होती है, उसे क्लाइमेक्स कहते हैं। और कुछ गड़बड़ नहीं होती है। कोई क्लाइमेक्स नहीं हो गया है, क्लाइमेक्स तक

पहुंच जायें तो सौभाग्य है हमारा। क्लाइमेक्स के बाद परिवर्तन अनिवार्य है। सौ डिग्री पर पानी उबलने लगे तो भाप बनेगी ही, लेकिन भाप बनती नहीं है और हम कहते हैं क्लाइमेक्स पर पहुंच गये हैं!

प्रश्न—अभी आपने फरमाया कि उन्नीस सौ सत्तरह तक रूस में संदेह का युग था और उसे कंक्लूजन मिल गया, निष्कर्ष पर आ गयी वह कौम, वह मुल्क, तो अब उसे जड़ता आ गयी विचारों में। तो आप यह कह सकेंगे कि रूस का जो निष्कर्ष है वह किसी स्वरूप में भारत के लिए लाभप्रद बन सकता है?

एक ही अर्थ में लाभप्रद बन सकता है, एक ही अर्थ में। और वह यह कि भारत में जो संदेह की हवा चाहिए, उसमें वह सहयोगी हो सकता है। लेकिन कंक्लूजन की तरह लाभप्रद नहीं हो सकता। अगर भारत सोचता हो कि कम्युनिज्म हमारा निष्कर्ष बन जाये तो मूढ़ता होगी। एक ही अर्थ में उपयोगी हो सकता है कि हमारी जो चिन्तन की हवा पैदा हो रही है, उसमें वह भी चिन्तन का एक मुद्दा हो। हम उस पर भी सोचें, उसको भी हम कंक्लूजन की तरह न पकड़ लें और ऐसा मुझे डर लग रहा है कि हम पकड़े ले रहे हैं। हम पकड़े ले रहे हैं।

एक तो चिन्तन से पकड़ी गयी बातें होती हैं, जो चिन्तन से निष्कर्ष की तरह निकलती हैं। और एक घबराहट में पकड़ी गयी बातें होती हैं, जो कि कोई सहारा न मिलने से हम उसको पकड़ लेते हैं। भारत के साथ जो डर है वह यह है कि यह सदा का विश्वासी मुल्क है। यह बड़ा खतरा है। यह इतना बड़ा खतरा है कि अविश्वास तक में विश्वास कर सकता है। यह इतना विश्वासी मुल्क है कि अगर यह महावीर को, कृष्ण को छोड़ेगा तो मार्क्स को, स्टैलिन को, माओ को पकड़ सकता है, उतनी ही पागलपन से। इसका जो पकड़ने का ढंग है वह अन्धा है। चिन्तन का इसके पास ढंग नहीं है।

तो मैं मानता हूं कि कम्युनिज्म पर भी चिन्तन होना चाहिए—चिन्तनीय है। और इस समय सबसे ज्यादा चिन्तनीय है। लेकिन मुझे डर ऐसा लग रहा है कि धीरे-धीरे हमारे मन में वह स्वीकृत होता जा रहा है। चिन्तनीय हो रहा है। समाजवाद की जो हम बातें कर रहे हैं, साम्यवाद की जो हम बातें कर रहे हैं, उसको हम इस तरह मान रहे हैं जैसे कि कोई तैयार कंक्लूजन है, जो कि हमने स्वीकार कर लिया तो सब हल हो जायेगा।

कोई चीज तैयार नहीं है। किसी एक मुल्क का अनुभव किसी दूसरे मुल्क के लिए रेडीमेड नहीं होता है, न हो सकता है। क्योंकि हर मुल्क में हालतें इतनी भिन्न हैं, चित्त दशा इतनी भिन्न हैं, सोचने के ढंग इतने भिन्न हैं कि जो उसके लिए सम्भव था, वह हमारे लिए सम्भव नहीं हो सकता है। जो रूस के लिए सम्भव था, वह हमारे लिए सम्भव नहीं हो सकता, जो चीन के लिए सम्भव है, वह

हमारे लिए सम्भव नहीं हो सकता, लेकिन विचारणीय है। तो हम चीन पर भी सोचें, हम रूस पर भी सोचें। न तो हम स्टैलिन पैदा कर सकते हैं, न हम माओ पैदा कर सकते हैं। हम पैदा नहीं कर सकते। आखिर पैदा करने के लिए हमारी भूमि में वह क्षमता चाहिए, जो हमारे पास नहीं है। हम और तरह के लोग पैदा कर सकते हैं। हम महावीर पैदा कर सकते हैं, हम बुद्ध पैदा कर सकते हैं। वह हमें आसान है पैदा करना। लेकिन सारे जगत् में जो हो रहा है, वह हमें सोचने जैसा है।

मेरी अपनी समझ यह है कि हमें सिर्फ कम्युनिज्म ही सोचने जैसा नहीं है। एक चीज जिसको हम बिल्कुल नहीं सोच रहे हैं, हमें केपिटलिज्म भी सोचने जैसा है। यानी हमारे लिए मास्को ही सोचने जैसा नहीं है, वाशिंगटन भी हमारे लिए बहुत सोचने जैसा है। जिसको हम सोच ही नहीं रहे और हमने एक भ्रांति समझ रखी है कि हम यह बात मानकर बैठ गये हैं कि हम पूंजीवादी हैं, हम पूंजीवादी भी नहीं हैं अभी। समाजवादी होना तो बहुत दूर की बात है, हम अभी पूंजीवादी भी नहीं हैं।

अभी हम करीब-करीब सामन्तवादी हैं। पूंजीवाद भी आज पूरे मुल्क को नहीं हो गया है सम्भव। न कोई नेशनलाइजेशन हुआ है, न औद्योगीकरण हुआ है, न मुल्क के पास पूंजी है, न हमारे पास इतनी सम्पत्ति है, जिसको हम बांट सकें। क्योंकि हम बड़े चक्कर में पड़ सकते हैं। चक्कर में इसलिए पड़ सकते हैं कि हमारी हालत ऐसी है कि अगर आज हम इस भाषा में सोचने लगें कि साम्यवाद, समाजवाद कैसे आये तो हम गलती में भी पड़ सकते हैं।

क्योंकि साम्यवाद या समाजवाद पूंजीवाद की एक क्लाइमेक्स के बाद की स्थिति है। पूंजीवाद जब परिपूर्ण हो जाये, या पूंजीवाद इतनी पूंजी पैदा कर ले कि बांटी जा सके, तब तो बंटवारे की बात अर्थ रखती है। अभी भारत की हालत ऐसी है कि अगर हम बांटेंगे तो सिर्फ गरीबी बांटेंगे। अमीरी तो हमारे पास है ही नहीं, जिसको की हम बांट लें। तो मेरी अपनी समझ यह है कि भारत न केवल मास्को को सोचे, बल्कि वाशिंगटन को और भी ज्यादा सोचे।

और बड़े मजे की बात है कि मास्को आज निरन्तर वाशिंगटन के करीब सरक रहा है। क्योंकि मास्को के पचास साल का अनुभव यह है कि रूस गरीब है। रूस अमीर नहीं हो सका। पचास साल की निरन्तर मेहनत के बाद भी रूस अमीर मुल्क नहीं है। रूस आज भी गरीब है, और उसको यह भी समझ में आ रहा है कि अमरीका ने पचास वर्ष में इतनी सम्पत्ति पैदा कर ली कि विचारणीय है कि मामला क्या है? रूस में रोज इंसेंटिव नीचे गिरा है, लोगों की प्रेरणा कम हुई है, काम करने की।

ख्रुश्चेव ने सत्ता से जाने से पहले जो सबसे बड़ी चिन्ता प्रगट की थी, वह यह थी

कि उसका कोई युवक काम करने के लिए उत्सुक नहीं है। रूस में रोज उत्पादन नीचे गिर रहा है। अब यह हैरानी की बात है कि रूस पचास साल की समाजवादी व्यवस्था के बाद भी अपना गेहूं पैदा करने में समर्थ नहीं है। उसे पूंजीवादी मुल्कों से आज भी खाना लेना पड़ रहा है।

तो रूस तो चिन्तन कर रहा है रोज कि कुछ न कुछ गड़बड़ हो गयी है, हमारा उत्पादन नीचे गिर रहा है और अमरीका का उत्पादन रोज बढ़ रहा है कि वह आज सारी दुनिया के भूखे लोगों को खाना दे पा रहा है। सम्पत्ति भी रोज बढ़ती जा रही है। और बड़े मजे की बात यह है कि जिसको अमरीका में गरीब कहते हैं, वह जो आदमी अमरीका में गरीब है, वह आदमी रूस में अमीर है। उसके पास कार है। यानी रूस के अमीर के पास कार नहीं है और अमरीका के गरीब के पास भी कार है। यह हमें सोचना है सारी बातें, क्योंकि जब किसी मुल्क को निर्णय लेना हो तो उसे जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।

मेरी अपनी समझ तो यह है कि हिन्दुस्तान को पचास साल सुनियोजित पूंजीवाद की जरूरत है, प्लैण्ड कैपिटलिज्म की जरूरत है। हिन्दुस्तान पचास साल में इतनी सम्पत्ति पैदा करने में संलग्न हो कि बांट सके। हिन्दुस्तान के लिए समाजवाद की बात पचास साल बाद अर्थ की होगी, और अभी आतमघाती है, सुइसाइडल है। अभी हमने बात की कि हम मरे। और अगर हमने अभी समाजवाद पकड़ लिया, जैसा कि हमें डर लग रहा है कि हम पकड़ लेंगे, क्योंकि नीचे गरीब जनता का जो दबाव है, वह दबाव हमें समाजवाद पकड़वाने के लिए राजी कर रहा है।

समाजवाद पकड़ने के लिए हमारा चिन्तन हमें राजी नहीं कर रहा है, नीचे की गरीब जनता का दबाव हमें राजी कर रहा है। यानी गरीब जनता की नीचे की ईर्ष्या हमसे कह रही है कि बांट डालो, पूंजी को। नहीं बांटोगे तो हम तुम्हें हटाते हैं सत्ता से। तो सत्ता में जो बैठा है, वह गरीब क्या मांग कर रहा है, वह पूरा करने को उत्सुक है। उसको यह कोई ख्याल नहीं है कि मुल्क की अर्थ व्यवस्था ···यह सम्भव हो सकता है कि नहीं हो सकता है। यह आज सम्भव भी नहीं हो सकता। हिन्दुस्तान में मुश्किल से बीस हजार परिवार हैं जिनको समृद्ध कहा जा सके। साठ करोड़ के मुल्क में बीस हजार परिवार समृद्ध हों तो इनको बांट दो, तो बीस हजार परिवार और गरीब होंगे, और कुछ भी होने वाला नहीं है। कोई अन्तर ही नहीं पड़ने वाला है। अभी हिन्दुस्तान ने पूंजी ही पैदा नहीं की।

इसलिए मेरी अपनी समझ यह है कि हिन्दुस्तान को तो अभी मास्को पर भी सोचना चाहिए, जो वहां हुआ है, पचास सालों में। जो दस सालों में चीन में हुआ है, उसे भी सोचना चाहिए, और जो पचास सालों में वाशिंगटन में हुआ है, अमरीका में हुआ है, उसे भी बहुत गौर से सोच लेना चाहिए। और इस सबको

सोचकर निर्णय लेना चाहिए। निर्णय नीचे के दबाव से नहीं लेने चाहिए, निर्णय भविष्य की दिशा से लेने चाहिए। यानी यह हो सकता है कि एक भूखा आदमी आज ज्यादा खा जाये और निर्णय ले ले कि चूंकि मैं भूखा हूं, इसलिए ज्यादा खाने का हकदार हूं। लेकिन ज्यादा खाने से मर जाये और भूल से चाहे न मरता।

मुझे कोई बता रहे थे कि अभी कोई सन्त आये और उन्होंने कहा कि गायों को लड्डू खिला दें। डोंगरे महाराज ने कहा कि गायों को लड्डू खिला दो और बड़ी प्रशंसा पा रहे हैं। और उन लड्डुओं से कई गायें मर गयीं, क्योंकि एक तो लड्डू से गाय का कोई सम्बन्ध नहीं। लड्डू से गायों को क्या मतलब है? हां, महाराज लोग लड्डू खाते हैं, तो वह सोचें, उनकी गाय को खिला देने चाहिए। और चूंकि गाय, जो अकाल पीड़ित जगह से आयी है, वह ज्यादा खा जायेगी। और उसे कुछ पता नहीं है। वह मर जायेगी खाकर, भूखी दो चार दिन जिन्दा भी रह जाती। लेकिन ज्यादा खाकर मर जायेगी। गाय के सम्बन्ध में समझदारी बरतने की जरूरत है।

भूखे आदमी को कैसा देना, इसकी फिक्र करनी चाहिए। भूखे का ख्याल नहीं करना चाहिए कि भूखा क्या मांगता है! इस समय सबसे बड़ा सवाल है मुल्क का कि नीचे का गरीब क्या मांगता है! ऊपर की लीडरशिप उसको पूरा करने को उतारू है। क्यों? क्योंकि नहीं तो नीचे का आदमी कहता है कि लीडरशिप से नीचे उतरो, नेतृत्व से नीचे हटो। हम उसको नेता बनायेंगे जो हमारी बात पूरी करता है।

इसलिए नेता इस वक्त अनुयायियों का अनुयायी हो गया है। वह नीचे का आदमी जो कह रहा है, उसको पूरा करने को हर हालत में तैयार है। अब उसको कोई फिक्र नहीं कि इसका फल क्या होगा, परिणाम क्या होगा! मेरी अपनी समझ यह है कि अगर हिन्दुस्तान समाजवाद का कदम उठाता है, तो हिन्दुस्तान अपने इतिहास का सबसे दुर्भाग्यपूर्ण कदम उठायेगा अभी। पचास साल बाद यह सार्थक बात हो सकती है। पचास साल हम पहले नेशनालाइज कर दें मुल्क को, औद्योगीकृत कर लें, सारे मुल्क को कृषि व्यवस्था से मुक्त करके उद्योग व्यवस्था पर ले जायें। सम्पत्ति इतनी पैदा हो जाये कि बांटी जा सके, तब तो समाजवाद अर्थ रखता है, नहीं तो अर्थ नहीं रखता है। इसलिए मैंने कहना शुरू किया है सोशलिज्म, व्हाया वाशिंगटन।

मैं मानता हूं कि हिन्दुस्तान में समाजवाद आयेगा, आना चाहिए, लेकिन वह आयेगा व्हाया वाशिंगटन। वह व्हाया मास्को नहीं आ सकता।

प्रश्न—क्या आप इस बात से सहमत होंगे कि सक्रिय राजनीति में आपका प्रयोग देश के लिए लाभप्रद साबित हो सकता है?

नहीं, अभी नहीं हो सकता है। क्योंकि मेरी समझ यह है कि सक्रिय राजनीति

में प्रवेश की जो शर्तें हैं—सक्रिय राजनीति में प्रवेश की जो शर्तें हैं, अगर मुझे सक्रिय राजनीति में प्रवेश होना है, तो मुझे भी नीचे के आदमी की बात की फिक्र ज्यादा करनी पड़ेगी, बजाय बाद की फिक्र करने की। हां, क्योंकि सक्रिय राजनीति की तो शर्तें हैं न ! इसलिए मुझे तो निष्क्रिय राजनीति में ही रहना होगा, ताकि मैं वह कह सकूं जो मुझे कहना है, मुझ पर कोई दबाव न हो, मुझ पर किसी पद का, कोई सत्ता का, कुछ भी दबाव न हो। मैं अकेला आदमी रहूं तो भी कह सकूं, पचास करोड़ मेरे खिलाफ हों तो भी कह सकूं।

तो मुझे अगर वही कहना है, जो मुझे ठीक लगता है, तो मुझे सारी तरह की सक्रियता से बाहर रहना पड़ेगा। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न ? हां, लेकिन जो लोग सक्रिय हैं, वे मेरी बात सुन सकते हैं और मेरी बात के ढंग से सक्रिय हो सकते हैं। जो लोग निष्क्रिय हैं, वे मेरी बात सुन सकते हैं और मेरे ढंग से सक्रिय हो सकते हैं।

लेकिन मेरा काम तो इस वक्त तो उस आदमी की तरह है, कि मकान में आग लग गयी हो, कि बजाय इसके कि वह जाकर कुएं से एक बाल्टी भर कर लाये, क्योंकि एक बाल्टी से कुछ होने वाला नहीं है, ज्यादा बेहतर है कि वह गांव में चिल्लाकर पूरे गांव को जगा दे। और उनसे कहे कि तुम कुएं से बाल्टी भर के पानी से मकान को बुझा दो। हालांकि हो सकता है, जिसको मैं जगाना चाहूं, वह मुझसे कहे कि आप क्यों नहीं पानी भर कर कुएं से, मकान को बुझाते ? मैं कहूंगा, मैं जा सकता हूं, किन्तु एक बाल्टी ले जा सकूंगा। मुझे तो यह ज्यादा उपयोगी लग रहा है कि मैं पूरे गांव को जगा दूं। अभी बाल्टी ले जाने की उत्सुकता मेरी नहीं है, क्योंकि वह काम कोई और भी कर लेगा। गांव को जगाने का ख्याल मेरे ख्याल में है।

तो इसलिए मैं किसी सक्रिय राजनीति में उपयोगी नहीं हो सकता हूं। उसमें न मेरा कोई अर्थ है। मेरा अर्थ हो सकता है इस देश को एक चिन्तना देने का, और जिसको भी चिन्तना देनी हो, उसे सक्रियता के बाहर होना चाहिए, क्योंकि सक्रियता की अपनी शर्तें हैं, जो चिन्तन में बाधा डालती हैं। तो मेरी समझ यह है कि मुल्क के पास एक पॉलिटिकल फिलॉसफी भी हो। मुल्क के पास अभी कोई राजनीति दर्शन भी नहीं है।

आप ध्यान रखें, कि मार्क्स ने, जिसने कि कम्युनिज्म दिया, वह बिल्कुल ही निष्क्रिय व्यक्ति है। जिसने कम्युनिज्म दिया सारी दुनिया को और आधी दुनिया आज कम्युनिस्ट है, और पूरी दुनिया भी हो जायेगी और हो सकती है, वह आदमी एक लाइब्रेरी में बैठकर ही काम करता रहा। उसने और कोई काम नहीं किया। वह एलेक्शन भी लड़ सकता था, वह कम्युनिज्म लाने की काशिश भी कर सकता था, लेकिन बहुत बड़ा नुकसान होता दुनिया का। दुनिया को कम्युनिज्म कभी

मिलता ही नहीं। वह आदमी तो दस-दस, बारह-बारह, अट्ठारह-अट्ठारह घण्टे ब्रिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में बैठकर ही काम करता रहा। वह तो एक विचार दे गया। उस विचार की सक्रियता फैलती चली गयी।

तो मेरा काम एक विचार की भूमिका खड़ी कर देने का है। उससे ज्यादा मेरी उत्सुकता नहीं है। मैं मानता हूं उसमें जो उत्सुक होंगे, जो सक्रिय हो सकेंगे वे हो जायेंगे। लेकिन उसका भी मुझे कोई हिसाब नहीं है कि कोई सक्रिय हो, न हो। इतना मेरे ख्याल में है कि मुल्क अगर गड्ढे में गिरे तो जानते हुए गिरे कि गड्ढे में गिर रहा है। और गड्ढे में गिरे तो उसे अनुभव हो कि बात कही गयी थी और गड्ढे में हम गिर गये। यानी ऐसा न हो कि कल यह कहने को हो कि कोई कहने वाला भी नहीं था कि गड्ढे में हम गिर रहे थे और किसी ने कहा भी नहीं और आवाज भी नहीं दी कि गड्ढे में गिर रहे हो। वह काम मुझे करने जैसे लगता है, वह मैं कर रहा हूं। सक्रिय राजनीति में मेरा कोई उपयोग नहीं हो सकता।

प्रश्न—आज की फिलॉसफी में छोटे से छोटे आदमी का भी महत्त्व है, क्योंकि वह अज्ञान में है। तो पचास करोड़ आदमियों को एजुकेट करने का काम तो बहुत महत्वपूर्ण है। इसके लिए तो काम करना ही पड़ेगा। एक आदमी कैसे कर सकता है ?

एजुकेट करने का काम बहुत कठिन है, लेकिन मिस-एजुकेट करने से कम कठिन है। तो जब मिस-एजुकेट कर सकते हैं लोग तो एजुकेट भी किया जा सकता है। इसलिए मेरा कहना यह है कि गाइड करना बहुत कठिन है। लेकिन मिस-गाइड करना जब आसान पड़ रहा है, तो गाइड भी किया जा सकता है। और अभी भी मेरी समझ है कि आज मुल्क को कोई भी आदमी गाइड कर रहा है, वह कहीं भी ले जा रहा है, कहीं भी मुल्क जा रहा है। बल्कि अब पक्का ही नहीं है कि कोई गाइड कर रहा है कि नहीं कर रहा है। यह भी पक्का नहीं है कि वह जो आगे दिखायी पड़ रहा है, वह आगे किस वजह से है। मैं एक कहानी कहता रहता हूं।

एक स्कूल में बच्चों का एक्जीबीशन हो रहा है, बच्चों का एक प्रदर्शन हो रहा है। बच्चों ने जो परेड की है, वह ऊंचाई के हिसाब से बच्चे खड़े किये गये हैं। छोटा बच्चा आगे है, उससे बड़ा पीछे है, उससे बड़ा पीछे है। ऐसी दस कतारें हैं, लेकिन एक कतार में बड़ा बच्चा आगे है, उसके बादा छोटा बच्चा और फिर बड़े। तो ऐसा लगता है कि कुछ भूल हो गयी है। तो प्रिन्सिपल से एक आदमी पूछता है, जो देखने आया है कि महानुभाव, यह क्या मामला है ? यह लड़का आगे क्यों है ? क्या यह सबका नेता है ? उसने कहा, यह बात नहीं है। इसको आगे रखना पड़ता है, क्योंकि इसको किसी के पीछे नहीं रखा जा

सकता है। बात क्या है ? पीछे से च्यूंटी निकालता है किसी की भी। इसको पीछे रखा ही नहीं जा सकता। आगे रखना पड़ता है। तो इसको आगे इतना रखा हुआ है कि इसके आगे कोई न हो। यह कोई लीडर नहीं है, मगर इसका कोई उपाय नहीं है। इसको आगे ही रखना पड़ता है, इसको पीछे रखने में तकलीफ देता है, किसी को भी तकलीफ देता है।

मुल्क में हालत करीब-करीब ऐसी हो गयी है कि जो लीडरशिप है, वह करीब-करीब उस तरह के लोगों की है जो पीछे रहेंगे तो तकलीफ देंगे। इसलिए उनको आगे रखना जरूरी है। उनको आगे कर दो, लेकिन नुकसान हो रहा है, नुकसान होगा ही, क्योंकि जिसको नेतृत्व कहें, वह नहीं है। और इतना बड़ा मुल्क है और इस बड़े मुल्क में आपका कहना ठीक ही है कि एक आदमी कैसे एजुकेट करे ? यह बात बिल्कुल ही ठीक है कि एक आदमी कैसे एजुकेट करेगा ? मगर एक आदमी यह कर सकता है।

प्रश्न—अस्पष्ट

पता चलाकर भी क्या हो गया है तुम्हें ? यानी मजा तो यह है कि पता चलाकर क्या हो गया है ? सबको पता है कि क्या बुरा है और क्या अच्छा है ? हो क्या गया है इससे ? बुरा मिट गया है ? अच्छा आ गया है ? कुछ भी तो नहीं हो गया है। पता चलाकर हो गया होता, तो मेरे पास आने की जरूरत नहीं थी। हम थोपे हुए हैं, हम थोपे हुए हैं।

प्रश्न—एक आदमी की पत्नी है और वह यदि दूसरे की पत्नी की ओर जाता है तो यह तो व्यभिचार हो गया ?

क्यों हो गया व्यभिचार ? एक औरत के सात चक्कर तुमने लगवा लिए तो व्यभिचार नहीं हुआ। जिसके नहीं लगाये सात चक्कर, उससे व्यभिचार हो गया। तो व्यभिचार का मतलब इतना ही हुआ कि जिसके साथ सात चक्कर लगाया हो उसके साथ व्यभिचार नहीं होता, जिसके साथ सात चक्कर न लगाये हों, उसके साथ व्यभिचार हो जायेगा। तो व्यभिचार बड़ा बचकाना हो गया। तुम्हारी तकलीफ जो है न, तुम्हारी तथ्य को जानने की तकलीफ नहीं है। तुम्हारी तकलीफ आदर्श को पाने की है, व्यभिचार से कैसे बचें ? मैं यह कह रहा हूं, व्यभिचार को जानोगे भी कि कहां है ? नहीं, व्यभिचार दूसरे की पत्नी को प्रेम करने में उतना नहीं है, जितना अपनी पत्नी को प्रेम न कर पाने में है। व्यभिचार, अगर खोजोगे तो यहां मिलेगा। मैं अपनी पत्नी को प्रेम नहीं करता, ऐसे भी कोई अपनी पत्नी को प्रेम नहीं करता। वह तो सेकेन्डरी है सदा। लेकिन हमारा समाज अद्भुत है। वह कहता है, दूसरे की पत्नी की तरफ देखना व्यभिचार है, और अपनी पत्नी की तरफ बिल्कुल मत देखो, यह व्यभिचार नहीं है। लेकिन यही मूलतः व्यभिचार है, वह दूसरा इसके बाद पैदा होगा।

अगर मैं अपनी पत्नी की तरफ न देख पाऊं, तो फिर दूसरे की पत्नी की तरफ देखना ही पड़ेगा। आखिर पुरुष तो पत्नी की तरफ, स्त्री की तरफ देखेगा। तो वह जो देख रहा है, वह आयेगा। अच्छा, मगर समाज कहेगा, दूसरे की तरफ देखना व्यभिचार है। पत्नी की तरफ बिल्कुल मत देखो, तीस साल बैठे रहो, पीठ किये उसकी तरफ, चालीस साल, वह व्यभिचार नहीं है। अगर कुछ भी व्यभिचार है, तो यह प्रेम की कमी व्यभिचार है। अगर कुछ भी व्यभिचार है। जिस स्त्री को तुमने प्रेम नहीं किया है, उसके साथ तुम सो रहे हो, तो मैं नहीं समझता कि व्यभिचार कैसे नहीं है।

व्यभिचार को तुम्हें खोजने जाना पड़ेगा। मैं यह कह रहा हूं, तुम इसको मान मत लेना। यह तो मैं तुमसे इसलिए कह रहा हूं कि तुम्हें खोजना पड़ेगा कि व्यभिचार क्या है। मैं नहीं कह रहा कि ऐसा मान लेना, मैं तो सिर्फ खोज के लिए धक्के देने की कोशिश करता हूं कि थोड़ा धक्का तुमको दे दूं, तो शायद तुम अपनी जगह से हिल जाओ और थोड़े यहां वहां चलकर देख लो। हम पहले से ही मानकर बैठे हुए हैं। अब हम कितने ही व्यभिचार कर रहे हों, दिखायी नहीं पड़ते। क्योंकि जिस समाज ने हमको बताया है कि व्यभिचार क्या है। एक स्त्री से कभी तुमने प्रेम नहीं किया था, उससे तुमने विवाह कर लिया, यह व्यभिचार नहीं है ? जिस स्त्री को तुमने कभी प्रेम नहीं किया, उससे विवाह व्यभिचार नहीं है ?

जिस स्त्री को तुमने कभी देखा नहीं था, दो पंडितों ने मिलकर जन्मपत्री मिला दी थी, उससे तुम्हारा विवाह हो गया और तुम चालीस साल उसके साथ रहोगे, यह व्यभिचार नहीं है ? इसमें पंडित भी भागीदार, तुम्हारे बाप भी भागीदार, तुम्हारी मां भी, तुम्हारी पूरी सोसाइटी भी। जिस स्त्री को प्रेम नहीं किया, उस स्त्री के साथ तुम्हारा सम्बन्ध वेश्या से ज्यादा कैसे हो सकता है ? चाहे तुम उसको पत्नी कहो। इतना ही हुआ न, सर्टिफाइड वेश्या हुई। सोसाइटी ने मान रखा है, इसको स्थायी। एक वेश्या के पास तुम रात में जाते हो, चार रुपये फेंककर आ जाते हो। इस स्त्री के सामने तुमने जिन्दगी भर का खाना, कपड़ा, रोटी फेंक दिया है, यह जिन्दगी भर की स्थायी वेश्या है, परमानेंट वेश्या है, और क्या होगा इससे ज्यादा मतलब ? हां फर्क इतना ही है, सोसाइटी ने बैण्ड-बाजा बजाकर, मंत्र इत्यादि फूंककर कह दिया कि यह सर्टीफाइड है, यह पवित्र वेश्या है। इसको हमने सबने मान लिया है कि इसमें कोई पाप नहीं है।

व्यभिचार क्या है। अब इस व्यभिचार से हजार व्यभिचार पैदा होंगे, क्योंकि मौलिक व्यभिचार हो गया। मेरी दृष्टि में जिस विवाह में प्रेम नहीं है, वह मौलिक व्यभिचार है। इसलिए जिस समाज में बिना प्रेम के विवाह हो रहा है, वह समाज व्यभिचार होगा। वह बच नहीं सकता। वह इधर वेश्या भी खड़ी

करेगा, इधर दूसरे की पत्नी से भी प्रेम करेगा, इधर यह करेगा, उधर वह करेगा, यह सब फैलेगा। और फिर वह समाज इस सब को कहेगा कि यह व्यभिचार है, और इसका जो ओरिजनल सोर्स है तो उसको वह कहेगा, वह तो विवाह है। विवाह तो भगवान की साक्षी में हुआ है, बड़ा पवित्र है।

मैं नहीं कहता कि मैं जैसा कहता हूं, वैसा मान लेना। मैं सिर्फ इसलिए कह रहा हूं कि ऐसा खोजने जाओ, जल्दी में तय मत कर लो कि क्या व्यभिचार है। खोजने जाओ, उस खोज से तुम्हें जिस दिन तथ्यों का दर्शन होगा, उस दिन बदलाहट होगी। न होगी बदलाहट तो समझना कि दर्शन न हुआ। न हो दर्शन तो समझना कि तुम दर्शन की शर्तें पूरी नहीं कर रहे हो। और पहली शर्त है, तटस्थता। पहली शर्त है कि पहले से तय मत कर लेना कि यह बुरा है, यह अच्छा है। तुमने पहले ही तय कर लिया तो अब क्या खोजना होगा? अब खोजने को क्या बचता है? अब खोजने को कुछ भी नहीं बचता।

मेरे पास तुम आये और तुम तय करके आये कि यह आदमी सन्त है, अब मुझसे समझने को क्या बचता है? तुम तय करके आये कि यह आदमी शैतान है, अब दूसरा समझने को क्या बचता है? तुम तो समझ कर ही आये हो, और तुम जो समझकर आये हो, तुम उसमें थोड़ा-सा और एडीशन करके लौट जाओगे। अगर तुम सन्त मानकर आये हो तो और थोड़ा-सा जोड़ कर लो उसमें कि हां भाई, है संत जरूर। क्योंकि तुम वही देख लोगे, जो सन्त की मान्यता वाला देख सकता है। उसमें मेरा कोई कसूर नहीं है। तुम और मुझे बड़ा सन्त मानकर लौट जाओगे। अगर शैतान समझ कर आये हो तुम, तो मुझे और थोड़ा शैतान बनाकर लौट जाओगे। और हो सकता है, दो आदमी साथ ही मेरे पास आयें और मैं एक के लिए बड़ा सन्त होकर लौटूं, और एक के लिए बड़ा शैतान बन जाऊं। वह अपनी बात नहीं है। और मेरा कुछ लेना-देना नहीं है, क्योंकि मैं जो हूं, हूं। उसमें सन्त और शैतान का हिसाब तुम्हारा है। अब वह तुम अपना हिसाब लगा रहे हो। तुम पहले से तय करके चले आ रहे हो।

नहीं, एक ओपेन माइंड चाहिए, जिन्दगी को समझने के लिए, जहां हमने कुछ भी तय नहीं किया। और अगर आज तुम मेरे पास आओ तो निश्चित ही, अगर घण्टे भर मेरे पास रहोगे तो कुछ न कुछ तय करोगे। लेकिन थोड़ा सोचना कि एक आदमी को सत्तर साल जीना है, उसकी जिन्दगी में हमने एक घण्टे झांका, एक घण्टा झांककर क्या हम तय कर सकते हैं? यह ऐसा ही है जैसे हजार पृष्ठ की एक किताब है और हमने आधा पन्ना फाड़कर पढ़ लिया, और हमने पूरी किताब के बाबत कुछ तय कर लिया। पता नहीं, सब गड़बड़ हो जाये। इस आधे पन्ने में जो है, उससे कुछ पक्का नहीं होता कि आगे-पीछे क्या होगा? कुछ भी पक्का नहीं होता है। हम किसी आदमी को कभी पूरा नहीं जानते हैं, किसी तथ्य

को कभी पूरा नहीं जानते हैं।

प्रश्न—आपने अपने लेक्चर में पहले बताया है कि गांधी कहते हैं कि आत्मा कुछ नहीं करती। जो करता है, वह कोई और करता है। और जैसा अच्छा और बुरा, कुछ भी कर्म करते हैं, उसकी वजह से उनको भला या बुरा नतीजा कुछ मिलता है।

यह सब मैंने नहीं कहा कब सुन लेते हो, पता नहीं!

प्रश्न—यह जो भाव···गलत था उसका कहना? उसका कहना गलत है, तो आज आप कहते हैं, आत्मा अकर्म है?

हां, बिल्कुल कहता हूं—बिल्कुल कहता हूं।

प्रश्न—तो कंफ्यूजन हो गया है।

हां, कंफ्यूजन तो करता हूं, पूरी तरह। वही हमारा काम है। असल कठिनाई क्या होती है कि हमारी सोचने की जो आदतें हैं, वह जिन्दगी के साथ बहुत दुर्व्यवहार करने की हैं। दुर्व्यवहार करने का मतलब यह है कि हम जिन्दगी के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं कि जैसे जिन्दगी कोई बंधी हुई पटरियों पर चलती है। तो हम कहते हैं, यह आपने कहा गलत और यह आपने कहा सही। मैं यह कह रहा हूं, एक स्थिति में वह बात गलत हो सकती है, एक स्थिति में सही। स्थिति को बिना देखे जल्दी से निर्णय मत लेना।

समझ लें, अगर मेरे पास एक पापी आये, तो मैं तो उससे कहूंगा कि हां, आत्मा पाप करती है, क्योंकि पापी के पास पाप से ऊपर कोई आत्मा ही नहीं होती है। पापी के पास पाप के अतिरिक्त कोई आत्मा ही नहीं होती, उसको और कुछ पता नहीं होता है—पाप ही उसकी आत्मा है। उससे तो मैं कहूंगा, आत्मा पाप करती है। अगर पापी से मैंने यह कहा कि आत्मा तो कुछ करती ही नहीं, आत्मा तो शुद्ध बुद्ध है, तो पापी बड़ा प्रसन्न होगा। वह कहेगा, फिर हमने कभी कुछ नहीं किया। तो फिर जो हम कर रहे हैं, वह जारी रह सकता है, क्योंकि हमने तो कभी किया ही नहीं। उससे हमारा कोई सम्बन्ध ही नहीं। नहीं, पापी से मैं यह नहीं कहूंगा। पापी से मैं यह नहीं कहूंगा—पापी से तो मैं यही कहूंगा कि यह तुम कर रहे हो।

और मजे की बात यह है कि जब पापी यह समझेगा कि यह मैं कर रहा हूं और इसका दंश, पाप का, उसके पूरे प्राणों को घेर लेगा, सब तरफ से छिद जायेंगे, सुई की तरह उसके पाप उसको, और मुश्किल हो जायेगा करना, और न करने की वजह से सारा पाप गिर जायेगा। उस दिन वह जान पायेगा, आत्मा क्या है, उस आत्मा को जो कभी कुछ नहीं करती, उसी दिन जान पायेगा।

तो मैं किससे कह रहा हूं, यह सदा ध्यान में रखने की बात है, कब कह रहा हूं, यह भी ध्यान में रखने की बात है। अकर्म जो है, वह अंतिम बात है। अकर्म

जो है, वह अंतिम अनुभूति है। यह पहले मैं तुमसे कहूंगा कि तुम हिंसा कर रहे हो। न केवल यह कहूंगा कि हिंसा कर रहे हो, बल्कि कहूंगा तुम हिंसा हो। मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि तुम ब्रह्म हो। यह जानते हुए कि तुम ब्रह्म हो, मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि तुम ब्रह्म हो। मैं तो तुमसे कहूंगा कि तुम हिंसा हो। इसलिए कहूंगा कि अगर यह तथ्य तुम्हें पूरी तरह दिखायी पड़ जाये, तो छलांग लग जाये। तुम हिंसा के बाहर हो जाओगे, उससे तुम जान लोगे कि तुम ब्रह्म हो। यानी मेरा कहना यह है कि आदमी का ब्रह्म होना या शूद्र होना, या सत्य होना, उसके मानने की बात नहीं है। उसके मानने की बात नहीं है। इस छलांग के बाद का वह अनुभव है। इस अनुभव को अगर तुमने नीचे दोहराया, उस तल पर जहां सारा वर्ग इकट्ठा हुआ है तो व्यर्थ है, वे वहां बड़े मजे से जी रहे हैं।

हिन्दुस्तान में, न केवल हिन्दुस्तान में वरन् सारी पृथ्वी पर हम सबसे ज्यादा अनैतिक हैं। कोई पूछता नहीं कि इसके बुनियादी कारण क्या हैं, इसके इतने अनैतिक होने के! जहां इतने हजारों साल से धर्म की चर्चा होती हो, जहां ब्रह्म-ज्ञान के नीचे बात न उतरती हो, जहां नीति पर इतना मन्थन हुआ हो, वहां अनैतिकता इतने बड़े विस्फोट की तरह क्यों प्रगट होती है; उसका कारण है कि हिन्दुस्तान दो तल पर जी रहा है।

हिन्दुस्तान ने एक तल पर परम बातें कह दीं, और परम बातों की वजह से नीचे का तल बिल्कुल व्यर्थ हो गया। उस व्यर्थ के तल पर उसको कोई चिन्ता ही नहीं। यानी जब उसे आत्मा की बात करनी है, तब वह कहता है, आत्मा शुद्ध-बुद्ध है, अजर-अमर है, उस पर कभी कर्म का लेप नहीं चढ़ता है। उस पर कर्म कभी लगता ही नहीं, उसको कर्म कभी छूता ही नहीं। इधर वह यह बात कर लेगा। और तब वह मुक्त हो गया है, वह नीचे कुछ भी करे—चोरी करे, व्यभिचार करे। भ्रष्टाचार करे, रिश्वत ले, दे—यह सब नाटक है, यह सब लीला है! वह कहेगा यह खेल चल रहा है, इसमें कुछ मामला नहीं है। असली बात तो वहां है, वहां तो कुछ होता ही नहीं कभी।

हमने इस तरह का एक अद्भुत समझौता किया है। पहली दफा जब उपनिषदों का अनुवाद हुआ जर्मनी में, तो जर्मनी में अनुवाद के बाद जो सबसे बड़ा सवाल उठा, वह यह उठा कि इन उपनिषदों में नीति की कोई चर्चा नहीं है। तुम ब्रह्म हो, तुम यह हो, तुम वह हो, और तो कोई बात नहीं है! वह परम निष्पत्तियां हैं। उनको हैरानी हुई कि ऐसी किताब को मानने वाली कौम अनैतिक हो सकती है। चूंकि यह किताब जो है, यह परम अनुभव की तो बात कहती है; लेकिन परम अनुभव तो उसका है, जिसको हुआ है। और सुनने वाले का तो नहीं है। उसका तो कोई अनुभव नहीं है। यह ऐसा ही है, जैसे कि एक बीमार आदमी हमारे पास आये और हम उससे कहें कि आत्मा तो सदा स्वस्थ है। सब बीमारों को हम

समझा दें कि आत्मा सदा स्वस्थ है। अस्पताल बन्द कर दिये जायें, क्योंकि आत्मा सदा स्वस्थ है। और यह बात सच है कि आत्मा कभी बीमार नहीं पड़ती। लेकिन आत्मा के लिए अस्पताल भी कौन बना रहा है, अस्पताल तो हम शरीर के लिए बना रहे हैं, जो बीमार पड़ता है। समझे न!

तो जो सारी नैतिकता का चिंतन है, वह मन के लिए हो रहा है, उसको बदलना पड़े। और बड़े मजे की बात यह है कि वह जो स्वस्थ आत्मा है, उसे भी बीमार शरीर वाला नहीं जान सकता है। क्योंकि बीमार शरीर वाला बीमारी में इतना उलझ जाता है कि नजर ही उसके पीछे नहीं जाती। स्वस्थ शरीर जरूरी है, ताकि तुम भीतर जा सको। बीमार आदमी बाहर अटक जाता है। अगर तुम्हारे पैर में एक कांटा गड़ा है तो तुम्हें ब्रह्म, आत्मा की किसी की याद न आयेगी, कांटे की याद आती रहेगी। छोटा-सा कांटा, ब्रह्म वगैरह को नदारद कर देगा एकदम। एक छोटा-सा कांटा पैर में गड़ा है, फिर न उपनिषद बचा, न ब्रह्म बचा, न कुछ बचा, न वेदान्त रहा, कांटा रह गया। अब तुमको कांटा चुभ रहा है।

जीसस के जीवन में एक उल्लेख है कि जिस दिन जीसस को सूली हुई, उस रात एक आदमी का दांत दुखता रहा। तो रात उसकी पत्नी उसे दो-चार बार कहती है कि आज मुझे नींद नहीं आ रही, कल सुबह जीसस को सूली लग जायेगी। वह कहता है, नींद तो मुझे भी नहीं आ रही है, मेरे दांत में बहुत दर्द है। बार-बार यह बात चलती है, लेकिन वह कभी जीसस का नाम नहीं लेता है, वह कहता है, बहुत तकलीफ है मेरे दांत में। करवट बदलता है, दवा लगाता है, लेकिन दांत का दर्द नहीं जाता। सुबह से लोग आते हैं, वे बाहर से निकलते हैं और कहते हैं, सुना तुमने, जीसस को सूली होने वाली है। वह कहता है, रात भर नींद नहीं आयी, दांत में बहुत दर्द है, बहुत! फिर जीसस को सूली हुई, जीसस का जुलूस भी निकल जाता है, फिर भी वह अपने दांत के दर्द की बातें करते चला जाता है।

जिसके दांत में दर्द हो, उसको जीसस की सूली कैसे याद आये? दांत की तकलीफ इतनी बड़ी है कि कहां जीसस और कहां क्या? अभी कांटा गड़ जाये तो आत्मा एकदम तिरोहित हो जाती है। कठिनाई जो है, अगर कोई कौम यह समझ ले कि आत्मा सदा स्वस्थ है। और एक आत्मा बीमार भी कैसे पड़े। बीमार भी पड़ना चाहे, तो बीमार कैसे पड़े। आत्मा सदा स्वस्थ है। फिर वह कौम मैडिसिन विकसित नहीं कर पायेगी, क्योंकि मैडिसिन विकसित तो तभी की जाती है जब हम स्वीकार कर लें कि बीमारी है। तब तो विकसित करते। नहीं तो नहीं करते।

यह जो हमारी कठिनाई है—हमारी कठिनाई यह है कि जो परम निष्पत्तियां

हैं, जो कंक्लूजंस हैं, जो अनुभूति के आखिरी छोर हैं, उनको हमने शिक्षा का पहला कदम बनाया हुआ है। वह सब गड़बड़ हो जायेगा। कन्फ्यूजन तुम्हें ही नहीं है, कन्फ्यूजन तो सारे मुल्क में है। और कन्फ्यूजन इतना स्थायी हो गया है कि अब किसी को चाहिए कि इसको उखाड़ने के लिए, सब को कन्फ्यूज्ड कर दे, एक दफा पूरी तरह से, नहीं तो यह कन्फ्यूजन टूटने वाली नहीं है। नहीं तो यह टूटने वाला नहीं है, क्योंकि यह बिल्कुल मजबूत हो गया है।

हम पूरे वक्त दो तल पर जी रहे हैं, और वह जो तल, जिसकी हम बातें कर रहे हैं, वह हमने कभी जाना नहीं है, ओर जिसको हमने जाना है, उसको इन्कार किये चले जा रहे हैं। इन्कार करने की वजह से, उसको सुधार भा नहीं पाते हैं।

जिस बोकोजू की मैं बात किया हूं, उसका गुरु मर गया। गुरु से भी ज्यादा प्रसिद्ध था, उसका यह शिष्य बोकोजू। लाखों लोग आये इसकी वजह से इसकी प्रसिद्धि थी। लाखों लोग आये और बोकोजू दरवाजे के सामने छाती पीटकर रो रहा है। तो लोगों ने उसको कहा, जो निकट के डिसाइपल्स थे, उनको बड़ी फिक्र होती है। उनको भारी फिक्र होती है कि कहीं गुरु की बदनामी न हो जाये, कि यह न हो जाये, कि वह न हो जाये। वे गुरु की रक्षा करते रहते हैं। वे सब इकट्ठे हुए हैं। उन्होंने कहा, रोओ मत तुम, अभी लाखों लोग आ रहे हैं। अगर उन्होंने देख लिया कि बोकोजू रोता है, तो वे कहेंगे कि कैसा ब्रह्म-ज्ञानी है? तो उसने कहा, ऐसे ब्रह्म-ज्ञान को मैं लात मारता हूं, जिसमें रो भी न सकूं। ऐसे ब्रह्म-ज्ञान से मुझे क्षमा कर दो। अब मुझे रोना आ रहा है तो मैं तो रोऊंगा।

उन्होंने कहा, लेकिन यह तो बड़ा मुश्किल हो जायेगा। लोग तो आपको समझते हैं कि यह परम-ज्ञान को उपलब्ध हो गया है। लोग क्या कहेंगे? उसने कहा, लोग क्या कहेंगे अगर इसकी भी फिक्र परम-ज्ञानी को है, तो अज्ञानी कौन है? लोग क्या कहेंगे, इसकी फिक्र मैं करूं? लोग जो कहेंगे, सो कहेंगे। इससे मुझे क्या लेना-देना है? उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, और उन्होंने जल्दी से घेरा बना लिया। उन्होंने कहा कि अब और आम जनता न देख ले कि उनका गुरु रो रहा है। उन्होंने कहा, तुम जल्दी चुप हो जाओ। तुम तो कहते थे, आत्मा अमर है, तुम रो रहे हो? उसने कहा, मैं आत्मा के लिए रो कहां रहा हूं? जो अमर है, उसके लिए रोने से फायदा क्या है? लेकिन वह शरीर भी बहुत प्यारा था और वह शरीर अब इस जगत् में दुबारा नहीं आ सकता। मैं उसी के लिए रो रहा हूं।

तो उन्होंने कहा, शरीर के लिए? मगर हम तो समझते हैं कि तुम आत्मवादी हो। उसने कहा, मैं आत्मवादी हूं, इसीलिए तो शरीर के लिए भी रो सकता हूं। क्योंकि मैं समझता हूं कि शरीर सीढ़ी बनाता है, शरीर मंदिर बनाता है,

उसमें निवास हुआ था, उसमें यह आत्मा इतने दिन तक रही थी, और यह अद्भुत आत्मा जिस शरीर में रही थी, अभी हम उसको मिट्टी में मिलायेंगे, फिर आग में जलायेंगे। एक मन्दिर गिरने के करीब है, जिसमें एक अद्भुत आदमी पचास साल, साठ-सत्तर साल तक रहा था। तो मैं तो रोऊंगा।

अब यह जो आदमी है, तुम कहोगे कि यह आदमी बड़ा कन्ट्राडिक्ट्री है। यह कहता है, आत्मा अमर है, और रोता है। कुछ कंट्राडिक्शन नहीं है। कंट्राडिक्शन इसीलिए है कि तुम समझ नहीं पा रहे हो। जिन्दगी बहुत अद्भुत है और बहुत रहस्यपूर्ण है। उसमें आत्मा को अमर मानने वाला भी रो सकता है। बल्कि मेरी अपनी समझ यह है कि यह आदमी अद्भुत ही था।

अब तिलक जैसे आदमी थे—तिलक की पत्नी मर गयी। खबर आयी दफ्तर में कि पत्नी मर गयी है। उन्होंने घड़ी देखी, उन्होंने कहा कि पांच के पहले मैं दफ्तर से कैसे जा सकता हूं! तो तिलक पर लिखने वाले लोगों ने कहा कि यह स्थितप्रज्ञ है। इस आदमी को कोई मतलब ही नहीं है कि कौन मरता है, कौन जीता है! यह तो पार हो गया है! अगर मुझे चुनना हो, तो मैं बोकोजू को चुनूंगा कि यह आदमी अद्भुत है। और अगर तुमने तिलक को चुना, तो दुनिया को तुम उदास कर डालोगे। अगर तुमने तिलक को चुना, तो मार डालोगे दुनिया को। क्योंकि मेरी नजर में नहीं है इसका मूल्य है—मेरी नजर में कुछ भी मूल्य नहीं है। और यहां बहुत बातें हो सकती हैं। यह तिलक का दिमाग बिल्कुल दुकानदार का दिमाग है। कहता है, पांच बजे दफ्तर बन्द करेंगे! और हो सकता है, इसने अपनी पत्नी को कभी प्रेम न किया हो, और हो सकता है ये पक्का सिद्धान्त बांध कर बैठे हुए हैं कि सिद्धान्त का पालन करना पड़ेगा, तो पांच बजे उठकर जायेंगे! इसलिए मैं नहीं मानता। अगर धर्म इतना अमानवीय बनाता हो तो मनुष्य होना बेहतर है, धार्मिक होना बेहतर नहीं है।

और धर्म ने बहुत तरह की अमानवीयताएं पैदा की हैं। लेकिन उनको ऐसा गार्बेज है, ऐसा उनका शब्दजाल है, कि उस सब के पीछे, वह बिल्कुल ठीक है। वह बिल्कुल ठीक है—अगर धर्म प्रेम और करुणा और आनन्द और दुख और पीड़ा, इन सबसे ही आदमी को निकाल देता हो और पथरीला कर देता हो, पत्थर बना देता हो, तो ऐसे धर्म की कोई जरूरत नहीं है। ऐसा धर्म चाहिए जो सब तलों पर क्रांति कर देता हो, सब तलों पर।

अब तुम रुको, उनके सवाल हो जाने दो, नहीं तो रह जायेंगे।

प्रश्न—परसों मैंने अखबार में पढ़ा, जिसमें आपने सोशलिज्म के बारे में कहा, कि भारत में सोशलिज्म की आवश्यकता नहीं है—ऐसा अखबार में पढ़ा और मुझे मालूम नहीं है कि आपने क्या कहा। आपने प्लैन्ड कैपिटलिज्म की बात कही—तो यह तो कोई रहस्यवाद की बात नहीं है, प्लैन्ड कैपिटलिज्म कहीं है

नहीं—चूंकि कैपिटलिज्म का बुनियादी स्वभाव जो है, वह अनार्किक है । तो फिर हिन्दुस्तान में अगर कैपिटलिज्म चलता है, तो इससे हिन्दुस्तान में बुरा न होगा ? पचास वर्ष तक चलाने की बात आप कह रहे हैं और सोशलिज्म लाने की बात कह रहे हैं, तो मेरी समझ में नहीं आता है कि आप यह क्या कह रहे हैं ।

असल में, जिसको हम सोशलिज्म कहते हैं, जिसको कम्युनिज्म कहते हैं, वह सब प्लैन्ड कैपिटलिज्म है—चाहे रूस में हो, चाहे चीन में हो, चाहे और कहीं हो । सोशलिज्म तो दुनिया में कहीं भी नहीं है । जो भी हैं, वे दो तरह के कैपिटलिज्म हैं । एक कैपिटलिज्म है, जो अनप्लैन्ड है, जैसा अमरीका में है । वह पूरा अनप्लैन्ड नहीं है, उसमें भी प्लैनिंग प्रवेश कर रही है । और एक तरह का रूस में है, जो प्लैन्ड है । प्लैन्ड कैपिटलिज्म का मतलब है स्टेट कैपिटलिज्म । पहली बात तो यह समझ लें ।

असल में, समाजवाद तो कहीं भी नहीं है और सम्भावना भी नहीं दिखती कि जिसको हम समाजवाद कहें वह कभी हो सके, वह बहुत यूरोपियन है । हो सिर्फ यह सकता है कि व्यक्तियों के हाथ में सम्पत्ति का अधिकार राज्य के हाथ में चला जाये, तो राज्य-पूंजीवाद हो जाये, पूंजीवाद की जगह । व्यक्ति-पूंजीवाद की जगह राज्य-पूंजीवाद हो जाये । यह हो सकता है, यही हुआ है । राज्य-पूंजीवाद ही, समाजवाद हमको दिखायी पड़ने लगता है, तब हम शोरगुल मचाते हैं कि समाजवाद है, लेकिन होता राज्य-पूंजीवाद है । पूंजीपतियों की व्यक्तिगत जो सामर्थ्य है या व्यक्तिगत जो उत्पादन के साधनों की जो उनकी मालकियत है, वह राज्य के हाथ में चली जाती है । राज्य दोनों हो जाता है, सत्ताधिकारी भी और पूंजीवादी भी । दोनों काम राज्य करने लगता है । स्टेट कैपिटलिज्म है सब जगह जिनको हम सोशलिस्ट कण्ट्रीज कहते हैं । एक ।

दूसरी बात । जब मैं कहता हूं कि प्लैन्ड कैपिटलिज्म, तो मेरा मतलब यह है कि समाजवाद जो है वह पूंजीवाद है । ऐसा समाजवाद जिसको कि राज्य-पूंजीवाद कहें, ऐसा समाजवाद भी पूंजीवाद के एक विकसित अवस्था के बाद ही सम्भव है । इसलिए सम्भव है कि राज्य पूंजी अपने स्वामित्व में ले, या पूरे मुल्क को स्वामित्व का अधिकार दे—इसके पहले पूंजी होनी जरूरी है । जिस देश के पास पूंजी न हो, जैसे भारत जैसा देश—भारत जैसा देश अभी भी नब्बे परसेंट सामन्तवादी है । अभी भी वह दस परसेंट ही पूंजीवादी है । अभी भी हम यह नहीं कह सकते कि वह पूंजीवादी है । क्योंकि जिसको औद्योगिक क्रान्ति कहें, ऐसी कोई चीज से हम गुजर नहीं गये । बम्बई देखने से भ्रम पैदा हो जाता है, लेकिन इस बड़े मुल्क को देखने से पता चलता है कि पूंजीवाद कहां ? हमारा गांव तो हजार साल पहले जहां था, वहीं जी रहा है, वहीं खड़ा हुआ है ।

हिन्दुस्तान अभी, पूंजीवादी भी नहीं है । यानी यह ऐसा ही है, जैसे कोई बच्चा

अभी जवान भी नहीं हुआ है और बूढ़े होने की बातचीत हमने शुरू कर दी कि इसको बूढ़ा कैसे करें । रूस में जो हुआ, वह भी प्रीम्योच्योर हुआ । रूस में भी मार्क्स की कल्पना के बाहर था कि रूस में, और समाजवाद आ जायेगा । और अगर कोई मार्क्स को कहता है कि रूस में समाजवाद आ जायेगा, तो वह भी थोड़ी हैरानी से देखता है कि रूस में कैसे आ जायेगा । क्योंकि रूस उन्नीस सौ सतरह में दुनिया के अविकसित देशों में एक था । वहां समाजवाद की मार्क्स के हिसाब से भी सम्भावना कम दिखती है । हां, रैवोल्यूशन हुआ, इसलिए प्रीम्योच्योर है, जैसे कि पांच महीने का बच्चा पैदा हो जाये । पांच महीने का बच्चा पैदा हो जाये तो जो पांच महीने के बच्चे के साथ ब्लीडिंग हो, वह रूस में हुई अच्छी तरह । कोई एक करोड़ आदमियों की हत्या हुई पूरी क्रान्ति में । और इसके बाद भी रूस समृद्ध न हो सका, आज भी रूस गरीब ही है ।

और इतने पचास साल की क्रान्ति के बाद भी, आज भी रूस अपने भोजन के लिए पूंजीवादी मुल्कों पर निर्भर है ! और पचास साल के निरन्तर प्रयोग के बाद ख्रुश्चेव ने जाने के पहले यह कहा है कि हमारे सामने अभी भी सवाल यही है कि हम इन्सेंटिव पैदा नहीं कर पाते कि लोग काम कैसे करें ? और रोज इन्सेंटिव कम हुआ है । काम करने की वृत्ति कम हुई है । या तो काम जबरदस्ती लेना पड़ता है, कोड़े के बल पर या बन्दूक के बल पर, या साइबेरिया के डर से काम लेना पड़ा । स्टैलिन ने काम उसी तरह लिया । और या फिर इन्सेंटिव खो जाता है ।

आज भी रूस पूंजी पैदा नहीं कर पाया है । और उसका कारण है, उसमें रूस की गलती नहीं है । रूस की गलती यही है कि जैसे पांच महीने का बच्चा पैदा कर लिया और उसको किसी तरह पाल-पोस कर जिन्दा भी रख रहे हैं, लेकिन फिर भी वह पिछड़ गया है, बुरी तरह से । पचास साल में अमरीका ने जितनी पूंजी पैदा की है, पचास साल में रूस उतनी पूंजी पैदा नहीं कर पाया । वह उससे बहुत पीछे छूट गया है, पूंजी पैदा करने के मामले में । और बड़े मजे की बात यह है कि अमरीका में जिसको गरीब कहते हैं हम, वह आदमी रूस में आज अमीर मालूम पड़ सकता है । अमरीका का गरीब भी रूस में आज अमीर मालूम पड़ सकता है, हालतें ऐसी हैं ।

तो मेरी अपनी समझ यह है कि समाजवाद तो अनिवार्य है । अनिवार्य इन अर्थों में है कि जैसे जवानी के बाद बुढ़ापा अनिवार्य है । पूंजीवाद विकसित हो जाये तो समाजवाद में अपने आप परिवर्तित होना अनिवार्यता है । मैं जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि पूंजीवाद का ठीक विकास अनिवार्य रूपेण समाजवाद में ले जाता है । तो समाजवाद और पूंजीवाद में विरोध नहीं है । पूंजीवाद की अग्रिम अवस्था है समाजवाद, अनिवार्य अवस्था है, जिसको उसको जाना पड़ेगा, बच नहीं सकता । लेकिन हम चाहें तो जोर जबरदस्ती से, जल्दी भी ले जा सकते हैं ।

नौ महीने में बच्चा पैदा हो, यह तो ठीक है, लेकिन जोर जबरदस्ती और ऑपरेशन करके हम पांच महीने में बच्चे को निकाल ले सकते हैं। गर्भपात करवाया जा सकता है। कोई बहुत अड़चन नहीं है। यह जो इसमें कोई ऐसी अड़चन नहीं है गर्भपात है, इसके मैं पक्ष में नहीं हूं। मैं मानता हूं कि भारत में अभी जो होगा समाजवाद, वह गर्भपात होगा। क्योंकि भारत पूंजीवादी मुल्क ही नहीं है।

दूसरी बात यह है, रूस का जो अनुभव है, रूस के अनुभव का हम पूरा उपयोग करें, न करें तो नासमझ हैं। रूस ने एक बड़ा प्रयोग किया है और उस बड़े प्रयोग से सारी दुनिया को अनुभव लेना जरूरी है। चीन भी एक बड़ा प्रयोग कर रहा है, उसका भी अनुभव लेना जरूरी है। अगर हम वह अनुभव करें, तो रूस में पिछले दस वर्षों से निरन्तर व्यक्तिगत सम्पत्ति की तरफ ढलाव आ रहा है। निरन्तर व्यक्तिगत सम्पत्ति को धीरे-धीरे छूट देने की बात आ रही है। चीन और रूस के बीच आज झगड़ा ही वही है। माओ को लगता ही यह है कि रूस जो है, वह किसी तरह से पूंजीवादी कैम्प में सम्मिलित होता जा रहा है। और रूस पचास वर्ष के अनुभव से यह कर रहा है। क्योंकि पचास वर्ष के अनुभव ने यह बताया है कि मनुष्य और व्यक्ति को, व्यक्तिगत सम्पत्ति कुछ ऐसी अनिवार्य बात है कि अगर वह उससे छूट जाती है, तो व्यक्तित्व किसी अर्थ में फीका और खाली और एम्प्टी हो जाता है। और काम करने की जो प्रवृत्ति है और श्रम करने का जो आग्रह है और पैदा करने का जो नशा है, वह सब खो जाता है। वह आदमी खड़ा-सा रह जाता है, सब खो जाता है। यानी व्यक्तित्व में, व्यक्तिगत सम्पत्ति का कोई अनिवार्य रोल है, यह रूस को इधर पचास वर्ष में ख्याल आया है। अभी उन्होंने इधर पांच-सात वर्षों में व्यक्तिगत कार रखने की छूट दे दी है।

मैं यह कह रहा हूं कि पचास वर्ष के रूस के अनुभव यह बताते हैं कि अब किसी मुल्क को समाजवादी सोच-समझ कर होना चाहिए, क्योंकि पचास साल के बाद यह जो परिणाम हुआ है—यह चीन में भी होगा। अभी माओ उसी नशे में है, जैसे रूस में स्टैलिन आज से पचास साल पहले था। नशा वही है भूल वही होने वाली है, क्योंकि वहां वही सब होने वाला है। मेरी समझ में जो है, वह यह है कि यह तो सौ वर्ष में तय होगी बात। मेरी समझ यह है कि सिर्फ अमरीका आज इस हालत में आता जा रहा है कि समाजवादी हो सके—सिर्फ अमरीका। और अमरीका जिस दिन समाजवादी होगा, तो समाजवाद की गरिमा ही और होगी। वह बहुत ही ठीक, पीसफुल सोशलिज्म होगा। और कब आ गया चुपचाप, उसके पदचिन्ह भी सुनायी नहीं पड़ेंगे।

मैं इसलिए कह रहा हूं—इसलिए मेरी नजर में जो मैंने कहा है, उसमें मैंने यही कहा है कि मैं मानता हूं कि हिन्दुस्तान में समाजवाद जो आयेगा, वह व्हाया वाशिंगटन ही आयेगा। व्हाया वाशिंगटन से मेरा मतलब है कि हिन्दुस्तान को

पूंजीवाद विकसित करना पड़ेगा। वाशिंगटन—वह व्हाया वाशिंगटन ही आने वाला है, व्हाया मास्को का अब कोई रास्ता नहीं है। तो पचास वर्ष हमें पूरी मेहनत करनी चाहिए, पूंजीवाद को विकसित करने की। तो स्टेट कैपिटलिज्म के लिए नहीं कर रहा हूं। मैं तो व्यक्तिगत पूंजीवाद के लिए कह रहा हूं। बिल्कुल ही पचास वर्ष हमें व्यक्तिगत पूंजीवाद को देने हैं।

और जब मैं प्लैण्ड कह रहा हूं, तो प्लैण्ड से मेरा मतलब यह है कि हम पूंजीवाद को एक मजबूरी की तरह नहीं ढोते हैं, पचास साल, हम जानकर ढोते हैं, एक अनिवार्य प्रक्रिया की तरह ढोते हैं। हम क्रोध और गुस्से में नहीं ढोते हैं, हम जानकर ढोते हैं कि समाजवाद के लिए यह कदम है। तब हम पूंजीवादी को गाली देकर नहीं ढोते हैं, बल्कि हम पूंजीवादी को पूरा प्रोत्साहन देकर ढोते हैं। और इस तरह मेरी दृष्टि यह है कि सीलिंग अगर प्लैण्ड कैपिटलिज्म की कल्पना हो, तो सीलिंग ऊपर की तरफ नहीं होगी, नीचे की तरफ होगी। ऐसी सीलिंग करना खतरनाक है, जिसमें हम तय करें कि एक लाख रुपये से ज्यादा किसी के पास नहीं होंगे। मेरी दृष्टि में सीलिंग ऐसी होगी कि सौ रुपये से कम हम किसी आदमी के पास नहीं होने देंगे। सीलिंग नीचे की तरफ—प्लैण्ड कैपिटलिज्म की तरफ मेरी जो नजर होगी।

और कैपिटलिज्म को कैसे विकसित किया जाये?

अमरीका में कैपिटलिज्म भी धीरे-धीरे विकसित हुआ है। अमरीका में कोई प्लैण्ड कैपिटलिज्म विकसित नहीं हुआ, धीरे-धीरे विकसित हुआ है। लेकिन हिन्दुस्तान जैसे मुल्क को जिसे सारी दुनिया के साथ आने वाले पचास वर्षों में कदम मिलाना हो, वह अगर उतने धीरे-धीरे का इन्तजाम करे, तो तीन सौ साल उसको लगें, और तीन सौ साल में अमरीका किन्हीं चांद-तारों पर हो, तब फिर हमारा हिसाब कभी मिलने वाला नहीं है। हमें तो पचास साल में तीव्र गति करनी पड़ेगी, एक इन्टेंसिटी लानी पड़ेगी। जब वह इन्टेंसिटी और प्लैनिंग किस तरह की हो। वह सोशलिज्म के लिए हो सीधी? मैं मानता हूं गलत होगी, वह कैपिटलिज्म के लिए ही हो, वह उद्योग को मौका दे, उद्योग को बढ़ने का मौका दे, उसको फलने-फूलने का मौका दे, सारी दुनिया की पूंजी को निमन्त्रित करे।

प्रश्न—अस्पष्ट

मैं कुछ और कहा। मैं कुछ और कहा, वह समझे नहीं। मैं कहा यह, जैसे कि माओ को पैदा करने की बात हो। नहीं हो सकता। नहीं हो सकता, वही मैं कहा कि यह सम्भव नहीं है। और इसलिए जो प्रयोग हमें करना है, वह एक अर्थ में नया ही प्रयोग होगा। सदा नया ही प्रयोग होता है वह। हम दूसरे के प्रयोग से थोड़ा-बहुत लाभ ले सकते हैं, किसी प्रयोग को पुनरुक्त नहीं कर सकते। पुनरुक्त करना असम्भव भी है, क्योंकि सब बदल चुका होता है सब बदला होता है। लेकिन

होती क्या है कठिनाई ? जब जैसे यह सब क्लाइमेट और हवा, यह उन्होंने जोड़ लिया, यह मैंने कोई बात ही नहीं की । कैनेडी का मैंने नाम ही नहीं लिया, वह कैनेडी भी उनकी जोड़ है । वह ख्याल में आ जाता है, जुड़ जाता है । वे बेचारे, समझ में जो आता है, वे लिखते हैं ।

प्रश्न—मार्क्स के बारे में आपने कहा कि वह निष्क्रिय राजनीति में रहा । तो क्या निष्क्रिय पॉलिटीशियन मार्क्स है, ऐसा आप कहते हैं ?

मैं जिस अर्थ में कहा हूं, वह इस अर्थ में कहा हूं कि मार्क्स की जिन्दगी का महत्वपूर्ण हिस्सा तो ब्रिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में बैठकर गुजरा—बड़ा हिस्सा। बीस साल तो उसका कैपिटल लिखने में गुजरा । मार्क्स का जो दान है—छोटी-मोटी पॉलिटिक्स में भाग ले रहा था वह । पूरे यूरोप की रैवोल्यूशन के बीच सम्बन्धित था; विवाद चल रहे थे, कांफ्लिक्ट थी, सब था, वह सब चल रहा था। लेकिन मार्क्स का जो कन्ट्रीब्यूशन है—मार्क्स का सारा कन्ट्रीब्यूशन एक थ्योरीटिशियन का है । मैं जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि मार्क्स जो है, वह कम्युनिज्म की एक फिलॉसफी का जन्मदाता है । और स्वाभाविक है कि जब भी फिलॉसफी पैदा होती है, कोई तत्व-दर्शन पैदा होता है, और जब एक आदमी अपनी छोटी-सी जिन्दगी में, इतने बड़े विचार को जन्म देता है, तो बहुत स्वाभाविक है कि उसकी अधिकतम जिन्दगी निष्क्रिय हो । निष्क्रिय इन अर्थों में नहीं, वह विचार में सक्रिय तो है ही । हां, जो मैंने कहा, वह मैंने यही कहा कि जरूरत होती है ऐसे लोगों की भी, जो सक्रिय राजनीति के बाहर खड़े होकर विचार को जन्मा पायें । और विचार जन्म जाये, तो विचार की अपनी सक्रियता है ।

जैसे मानता हूं, हिन्दुस्तान में पॉलिटिकल फिलॉसफी जैसी चीज पैदा नहीं हो पा रही है । उसका एक बड़ा कारण यह है कि हिन्दुस्तान के पास, जिसको कहें थ्योरीटिशियन, वह नहीं पैदा हो पा रहा है ।

हिन्दुस्तान के पास जितनी पॉलिटिक्स है, और जितने पॉलिटिशियन्स हैं, वे डे टू डे पॉलिटिक्स में, इस भांति उलझे हुए हैं कि उनको न कोई मौका है, न कोई फुर्सत है । चौबीस घण्टे एलेक्शन में खड़ा हुआ है, कुर्सी पर पहुंच गया है, तो कुर्सी बचाने में लगा हुआ है । अब मैं हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञों के पास कभी ठहरता हूं, तो मैं हैरान हो जाता हूं । वे न कुछ पढ़ पाते हैं,न सोच पाते हैं, उसकी गुंजाइश नहीं है, उसके पास ।

मैं समझ गया आपकी बात—मूवमेंट का तो मामला ऐसा है । मैं जब एक्टिव पॉलिटिक्स की बात कर रहा हूं, तो मैं एक्टिव मूवमेंट में नहीं था, ऐसा भी नहीं कह रहा हूं । मेरा कहना यह है कि ऐसे तो अगर मैं भी तीस-चालीस साल घूमता रहूंगा, चिल्लाता रहूंगा तो एक मूवमेंट खड़ा कर दूंगा । और एक्टिव मूवमेंट में हूं चौबीस घण्टे—मैं किसी लाइब्रेरी में नहीं लिख पा रहा—आप से लड़ ही रहा

हूं, किसी से लड़ रहा हूं, वह चल रहा है । एक्टिव हूं पूरे वक्त । लेकिन जब मैं कहता हूं एक्चुअल पॉलिटिक्स, तो मेरा मतलब कुल इतना था कि कोई सरकार का एलेक्शन लड़ रहा हो, किसी की हुकूमत को चला रहा हो, किसी हुकूमत पर बैठ गया हो, यह सब सवाल नहीं था, बड़ा सवाल मार्क्स के लिए यह था कि एक विचार-दृष्टि जन्म जाये ।

प्रश्न—अस्पष्ट

मैं आपकी बात समझा । पहली तो बात यह है कि जो मैं कहूं, अगर वह उपनिषद् से मेल खाये, इसलिए उपनिषद् की इको नहीं हो जाता । वह मेरा भी अनुभव हो सकता है । उपनिषद् की इको होना जरूरी नहीं है और इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है कि जो मेरा अनुभव है, वह उपनिषद् में भी है । उपनिषद् के लेखक को भी नहीं पकड़ा जा सकता कि उसका कोई कसूर है । तो एक तो यह है कि वैसा मेरा अनुभव है, और जो अनुभव है, वही रियलटि है । आप कहते हैं कि वह अनरियल हो जाता है , अनरियल नहीं हो जाता । क्योंकि अनुभव ही रियल है । अगर मेरा ऐसा अनुभव है कि मैं यह नहीं हूं, या मेरा ऐसा अनुभव है कि मैं ब्रह्म हूं, तो अनरियल कैसे हो जायेगा, क्योंकि अनुभव ही रियलटि है ? और अनुभव के अतिरिक्त रियलटि का कोई और मापदण्ड भी नहीं है ।

हम इतना ही कह सकते हैं कि ऐसी रियलटीज भी हैं, जो हम सबके अनुभव में नहीं आतीं । इतना ही हम कह सकते हैं यानी अगर मुझसे आप आकर कहें कि मैं ब्रह्म हूं, तो मैं इतना ही कह सकता हूं कि इस रियलटि को मैंने नहीं जाना । मैं यह नहीं कह सकता कि अनरियलटि है, और अनरियलटि कहूं, तो भी इतना ही मतलब होता है मेरे लिए अनरियल है । लेकिन अनरियलटि कहना जरा ज्यादा नतीजा ले लेना है । इतना ही हम कह सकते हैं कि यह मेरा अनुभव नहीं है, मेरे लिए अभी यह यथार्थ नहीं है । यह आपके लिए हो सकता है । तो मैं तो रियलटि की ही बात कह रहा हूं ।

अब यह जो मामला है—यह जो मामला है, यह साबित करना मुश्किल है । यह जो कहना है आपका···साबित करना तो यह भी मुश्किल है कि आपके सिर में दर्द है । नहीं, वह फिजिकल नहीं हो सकता है । अभी यह अनुभव करना मुश्किल हो सकता है कि आपके हृदय में प्रेम है । इसका कोई उपाय नहीं है, साबित करने का । डिसकशन नहीं कर रहा हूं, मैं जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं, कि दे आर दि रियलटीज बट कैन नाट बी प्रूव्ड पर हैं । अगर मेरे हृदय में किसी के लिए प्रेम है, तो ऐसा हो सकता है कि मैं अपनी जान गंवा दूं । आप अगर मेरी सारी जांच-पड़ताल करने बैठें और मुझे सिद्ध करना पड़े तो मैं कुछ भी सिद्ध न कर पाऊंगा । मगर इससे फिर भी नाराज न होऊंगा कि प्रेम जो था अनरियल था कि नहीं था । मैं किसी भ्रम में पड़ा हुआ था या मेरे भीतर प्रेम जैसी

कोई घटना नहीं घट रही थी। वह घट रही थी।

जिन्दगी में अनुभव हैं, जिन अनुभवों को पकड़ना जरूरी नहीं है कि प्रूफ में सम्भव हो जाये। और मजा यह है कि जो अनुभव प्रूफ में नहीं आता, वह डिस-प्रूफ में भी नहीं आता।

राजकोट, दिनांक ७ मार्च १९७०

१४. पूंजीवाद का दर्शन

इस वक्त तकलीफ यह है कि समाजवादी तो कह रहा है, और पूंजीवाद चुप है, वह सब देख रहा है। अपने घर में बैठ कर कह रहा है कि यह हो रहा है। तब वह मर ही जायेगा, कोई उपाय नहीं है।

प्रश्न—समाजवादी आपके पास आकर कहता नहीं है कि आप गलत बात कर रहे हैं ?

मुझसे कोई आकर कहे तो मैं सदा तैयार हूं समझने को, अपनी बात समझाने को। अगर आप किसी बात को ठीक से कह रहे हैं और ठीक है बात, तो बहुत कठिनाई है ऐंटी सोशलिज्म की बात में। तो फिलॉसफी नहीं बना सकेंगे आप, इसलिए कहते हैं। जब तक आपके पास अपने आर्ग्युमैन्ट न हों···सोशलिज्म के पास अपने आर्ग्युमैन्ट हैं इसलिए आप परेशानी में पड़ जाते हैं। आपके पास आर्ग्युमैन्ट नहीं हैं। और बिना आर्ग्युमैन्ट के आप जब कुछ कहते हैं तो ऐसा लगता है कि सिर्फ आपका इंट्रेस्ट है इसलिए आप बकवास कर रहे हैं।

असल में कैपिटलिस्ट खुद ही डिफेंस के मूड में है। यह उसकी तकलीफ है। वह खुद ही मान रहा है कि कैपिटलिज्म है तो खराब चीज, इसलिए वह लड़ नहीं पाया। उसका कारण है कि यह सारा का सारा जो है—हमारे मन तो बहुत कुछ प्रापेगैंडा पर चलते हैं। सोशलिज्म का प्रापेगैंडा सौ साल का है और जब भी कोई व्यवस्था बनी होती है, उसके विरोध में यह प्रॉपेगैंडा करता है। वह तो

प्रापेगैंडा करता है ठीक से, लेकिन जिसकी व्यवस्था बनी होती है, वह सोचता है क्या कर लेगा ? इसलिए वह कुछ प्रापेगैंडा करता नहीं और अंत में हारता है।

सोशलिज्म ने सौ साल अपनी बात कही। उसके पास अपनी फिलॉसफी है, अपना रिलीजन है, अपनी साइंटिफिक चीजों के आर्ग्युमैन्ट हैं और कैपिटलिज्म तो चुपचाप देखता रहा है। कैपिटलिज्म को अपनी डेव्लप करनी चाहिए। अगर आप डिफेंस के मूड में रहें तो हार निश्चित है। इस दुनिया में डिफेंस से कोई नहीं जीत सकता। जीतना हो तो एग्रेसिव फिलॉसफी चाहिए। हां, आप यही न कहें कि सोशलिज्म गलत है। आपको यह भी कहने की हिम्मत करनी पड़ेगी कि कैपिटलिज्म सही है। और उसमें मनुष्यता का कुछ हित होने वाला है, यह आपको साफ करना पड़ेगा। डिफेंस की भाषा ही हारने की भाषा है। जिस आदमी ने डिफेंस की भाषा बोलनी शुरू की, उसको समझना चाहिए कि वह हारेगा, जायेगा।

प्रश्न—अस्पष्ट

कैपिटलिज्म के लिए कुछ फिलॉसफी चाहिए कि वह कह सके कि हम इसलिए खड़े हैं। वह फिलॉसफी न हो तो सिर्फ मालूम पड़ता है आप अपना पैसा बचाना चाहते हैं। पैसा बचाने के लिए इस दुनिया में बहुत उपाय नहीं हैं। और दूसरी बात है कि कैपिटलिज्म की कोई क्लास नहीं है।

प्रश्न—तब उसे ऐसा कहना चाहिए कि हम जो कमा रहे हैं, वह आखिर बांटने के लिए कमा रहे हैं।

यह बांटने की बात तो वह शुरू करता है न, वहीं से उसने सोशलिज्म को स्वीकार करना शुरू कर लिया। उसे यह कहना चाहिए कि जो कमा रहा है, वह कमाने का मालिक है। बांटना उसकी खुशी है। किसी का अधिकार नहीं है। जिस दिन आप कहते हैं कि हम बांटने के लिए कमा रहे हैं, उस दिन तो यह भी कहा जा सकता है कि आप काहे के लिए मेहनत कर रहे हैं ? मेरा तो कहना यह है कि बांटना खुशी है, किसी का अधिकार नहीं। और जिस दिन हम कमाने वाले को मजबूर करते हैं कि वह गैर कमाने वाले को बांट दे, उस दिन हम इन्जस्टिस कर रहे हैं। और ऐसी सोसाइटी अनजस्ट सोसाइटी है।

सच्चाई यह है कि जो नहीं कमा रहा है, उसको भी इंसेंटिव दो कि वह भी कमा सके। और मेरी अपनी समझ यह है कि जिस दिन कैपिटल ऐफ्लुएन्ट हो जाती है, उस दिन वह बंटना शुरू हो आती है। आपको बांटना नहीं पड़ता। मेरा कहना यह है कि सोशलिज्म जो है, इट विल कम ऐज ए बाइ-प्रॉडक्ट।

कैपिटलिज्म ठीक से विकसित हो तो सोशलिज्म आता है, बल्कि तभी आता है और कोई रास्ता नहीं है उसको लाने का। जिस दिन सम्पत्ति ज्यादा हो जाये वह बटेगी; क्योंकि सम्पत्ति का उपयोग करना पड़ता है। उपयोग से वह बंटती

है। और जिस दिन ज्यादा हो जाती है उस दिन करियेगा क्या ? अभी असल में उसको पकड़ने का मजा ही यह है कि वह बहुत कम है। दो के पास है और हजार के पास नहीं है। तो वे दो सख्त इन्तजाम करते हैं उसको पकड़ने का। कल को हजार के पास हो तो पकड़ ही खो जाती है। असली सवाल यह नहीं है कि कैपिटलिज्म कैसे आ जाये ? असली सवाल यह है कि ऐफ्लुएन्ट कैपिटल कैसे पैदा हो ?

असल में जो है, वह यह है कि इतनी सम्पत्ति पैदा हो जाये कि सम्पत्ति पर पकड़ खो जाये। अगर ऐसा नहीं होता है सोशलिज्म सम्भव ही नहीं है। और जब आप भी कहते हैं कि हम बांटने के लिए ही कमा रहे हैं, तभी आप गलत बात करना शुरू कर देते हैं। वह झूठी बात कह रहे हैं। और यह ध्यान रखिये कि झूठी बात में कोई बल नहीं होता। और जो मैं कह रहा हूं वह इसलिए नहीं कह रहा हूं कि कैपिटलिस्ट बचना चाहिए। अगर बचाने के लिए कह रहा हूं तो बचने वाला नहीं है मामला।

नहीं, मुझे तो लगता यह है कि कैपिटलिज्म के पास अपनी वैल्यूज हैं, जो सोशलिज्म के पास नहीं है। और उन वैल्यूज को बचाना चाहिए। वह वैल्यू सोशलिज्म में नहीं बचेगी। यानी मुझे कैपिटलिज्म से कोई मतलब नहीं। कुछ वैल्यूज हैं, डेमोक्रेसीज हैं, फ्रीडम हैं। ये वैल्यूज कितनी कीमती हैं, मनुष्य जाति की हजारों साल की बमुश्किल तकलीफ के बाद हम उन तक पहुंचे हैं। और उनको हम दो मिनट में खो सकते हैं।

प्रश्न—वह कोई बोलने को तैयार नहीं है। यह तकलीफ है।

मैं बोलने को तैयार हूं।

प्रश्न—आप कैपिटलिस्ट नहीं हैं।

यही सुविधापूर्ण है। मैं अगर कैपिटलिस्ट हूं तो मेरा बोलना बहुत अर्थपूर्ण नहीं है।

प्रश्न—सारी दुनिया सोशलिज्म की बात करती है और वे ही नारे लगा रहे हैं।

उसका कुछ मामला नहीं है। सौ साल से प्रचार कर रहे हैं। दूसरी बात यह है कि धनपति अल्पमत है। दुनिया में इस समय सबसे छोटी माइनारटि धनपति की है। गरीब मेजॉर्टी में हैं। तो गरीब की ईर्ष्या को भड़कायेगा। लेकिन सवाल यह है कि गरीब की ईर्ष्या को भड़काने से गरीब का हित है ? यानी मेरी अपनी समझ यह है कि उसकी ईर्ष्या भड़का सकते हो, पूंजीपति को मिटा भी सकते हो, पूंजीवाद की पूरी सिस्टम भी तुड़वा सकते हो। अब इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन इससे गरीब का कोई हित नहीं होगा। यह गरीब को कहना पड़ेगा। और गरीब को भड़काया जा रहा है जिस बात से वह यही है कि उसका हित होगा।

अगर हम गरीब को यह समझा पायें कि उसका हित नहीं, अहित होगा तो मामला खत्म हो जाये। लेकिन आप सोचते हो कि कैपिटलिज्म के हित के लिए गरीब को राजी किया जा सके तो आप गलती में हैं। गरीब को यह ख्याल साफ होना चाहिए कि कैपिटलिज्म उसके हित में है। और इसलिए मैं कह रहा हूं कि कैपिटलिज्म की पूरी फिलॉसफी, पूरा ऑर्ग्युमैन्ट, वह कैसे विकसित हुआ है, उसने क्या दुनिया के लिए दिया है, उसका क्या रोल है, उस सब को साफ करना चाहिए। उसको खोकर क्या खो जायेगा, इसकी बात जाहिर करनी चाहिए कि जस्टिस की सारी हैसियत खो जायेगी। यही सारी बात उसको साफ करनी चाहिए।

प्रश्न—आपने अपने लेक्चर में जो समझाया कि आदमी एक मशीन हो जाता है, वह बहुत अच्छी बात आपने बतायी। क्योंकि आत्मा बहुत इम्पोटेन्ट है।

क्योंकि सोशलिज्म का सबसे बड़ा खतरा वही है। सोशलिस्ट फिलॉसफी बेसिकली मैटिरिअलिस्ट है। अब यह बड़े मजे की बात है कि हम आमतौर से कैपिटलिस्ट को मैटिरिअलिस्ट कहते हैं। बेसिल मैटिरिअलिस्ट सोशलिस्ट है।

प्रश्न—उसकी ईर्ष्या कुछ कम हो जाये, ऐसा कुछ रास्ता बनाना चाहिए।

उसके रास्ते जरूर बनाने पड़ेंगे। उसकी ईर्ष्या बढ़ाने में भी हम रास्ता बनाते हैं। असल में मेरी समझ यह है कि कैपिटलिस्ट ऐज ऐ क्लास कॉन्शस होना चाहिए। अगर कैपिटलिस्ट उत्सुक भी होता है तो वह कैपिटलिस्ट इंडिविज्युअल की हैसियत से अपने को बचाने को उत्सुक है। अगर 'अ' नाम का कैपिटलिस्ट उत्सुक है तो वह अपने को बचाने को उत्सुक है। और अगर 'ब' नाम के कैपिटलिस्ट को नुकसान पहुंचता है तो वह खुश हो रहा है। बल्कि वह सारी कोशिश कर रहा है कि 'ब' को नुकसान पहुंच जाये।

कैपिटलिस्ट ऐज ए क्लास कॉन्शस नहीं है। उसके अपने-अपने इंडिविज्युअल हैं, हित हैं, उसके लिए उत्सुक है। अगर बिड़ला उत्सुक है तो टाटा को नुकसान पहुंचने में उत्सुक हो जाता है। कैपिटलिज्म की यह जो तकलीफ है नीचे का वर्ग है, दीन है, दरिद्र है, वह क्लास की तरफ कॉन्शस हुआ है। अगर आप क्लास की तरह कॉन्शस होते हैं, तो आप फिर सोच सकते हैं कि ह्यूमन रिलेशनशिप हमारी जो आज है, 'हैव और हैव नॉट' के बीच जो सम्बन्ध है, उसे बदलने पड़ेंगे। और थोड़ी-सी बदलाहट से बहुत कुछ बदलेगा। यानी मेरी अपनी समझ यह है कि कैपिटलिज्म में अभी जो मैनेजमेन्ट है, वह ईर्ष्या जगाने वाला है। उस मैनेजमेन्ट में बहुत रैवोल्यूशनरी चेंज की जरूरत है, और ह्यूमन एलिमेन्ट की कीमत बढ़ाने की जरूरत है।

मजदूर की हैसियत सिर्फ मजदूरी से नहीं आंकी जानी चाहिए। एक मनुष्य की हैसियत से ही उसकी हैसियत है। और उस मामले में वह बिल्कुल आपके

बराबर है। एक तो ह्यूमन साइकॉलोजी और ह्यूमन रिलेशनशिप, ह्यूमन इंजीनियरिंग पर बहुत काम करने की जरूरत है। सोशलिज्म का सारा प्रभाव गरीब और अमीर के बीच गलत सम्बन्धों का परिणाम है। उन सम्बन्धों को बिल्कुल बदला जा सकता है।

प्रश्न—मजदूर और जो फार्मर्स हैं, उनको कैपिटलिस्ट की फिलॉसफी में एक दफा जो इन्वाल्वड कर दें। ऐसा कोई आइडिया लगायें तो मेजॉर्टी कनवर्ट नहीं हो जायेगी ?

यह तो बात ठीक ही है। लेकिन यह बात बहुत पीछे भी है। लम्बी सी नहीं है। एक दफा कैपिटलिज्म ऐज ए फिलॉसफी पूरा मुल्क स्वीकार कर ले, तब यह हो सकता है, जो आप कह रहे हैं। जब तक पूरा मुल्क कैपिटलिज्म को ऐज ए फिलॉसफी स्वीकार न कर ले, 'ऐज ए मोड ऑफ लीविंग', स्वीकार न कर ले, तब तक जो आप कह रहे हैं, वह नहीं हो सकता।

प्रश्न—समाजवाद से सावधान जो आपकी सीरीज है, उसके साथ मिल कर कुछ करने को हो तो आप उसे कैसे आगे बढ़ायेंगे ?

यह जो क्लास कॉन्शसनेस पैदा करने की बात है न, उसके लिए निश्चित ही कुछ बातें की जा सकती हैं कि वह क्लास कॉन्शस कैसे हो ? एक तो कुछ छोटे ग्रुप सेमिनार—जैसे किसी हिल स्टेशन पर दस-बीस मुल्क के खास तरह के लोग छः-सात दिन के लिए इकट्ठे हो जायें। एक बार यह ख्याल आ जाये कि क्लास की तरह आप बच सकते हैं और कोई रास्ता बचने का नहीं है। और सवाल एक कैपिटलिस्ट के या दूसरे कैपिटलिस्ट के बचने का नहीं है, यह एक बात ख्याल आ जाये। और यह ख्याल लाया जा सकता है। इसके लिए चिन्तन पैदा किया जा सकता है। इसके लिए लिटरेचर तैयार किया जा सकता है। इसके लिए कैम्प्स रखे जा सकते हैं। ये सारी बातें की जा सकती हैं। इसके लिए ऐसे ग्रुप हो सकते हैं जो इस पर सारी खोजबीन करें। इकॉनोमिस्ट हो सकते हैं, जो इस पर सारी की सारी बात करें। और एक पूरी की पूरी फिलॉसफी, सोशलिज्म जो भी कह रहा है, उसके ठीक मुकाबले, प्वाइंट टू प्वाइंट, ठीक मुकाबले फिलॉसफी रखने की बात है। उसे प्रचारित करने की बात है। सारे मुल्क में उसका साहित्य फैलाने की बात है।

अब क्या मजा हो रहा है ? मजा यह हो रहा है कि सोशलिस्ट कंट्रीज से, कम्युनिस्ट कंट्रीज से हिन्दुस्तान में जो भी प्रचार करते हैं, उनकी डाइरेक्ट योजना है, जो प्रचार करते हैं। बीच में गवर्नमेन्ट नहीं है मामले में। बीच में कोई और नहीं है। हिन्दुस्तान का कम्युनिस्ट है, हिन्दुस्तान का सोशलिस्ट है। कम्युनिज्म कंट्रीज से उसका सीधा सम्बन्ध है। साहित्य पहुंचा रहे हैं। कैपिटलिस्ट कंट्री अगर कुछ भी हिन्दुस्तान के लिए करती है तो वह व्हाया गवर्नमेन्ट करती है।

कैपिटलिस्ट कंट्री ने सोशलिस्ट मुल्कों के लिए करोड़ों रुपये खपा दिये। चीन में अमरीका ने करोड़ों अरबों रुपये खपाये। वे फिजूल गये। और हिन्दुस्तान में फिजूल जायेगा। उसका कोई मतलब होने वाला नहीं है।

यानी अमरीका का रुपया अमरीका के प्रति सद्भाव पैदा नहीं करता है, बल्कि यह भाव पैदा करता है कि यह बदमाश है और हमको चूसने के लिए है। पैसा हम उनका खा जायेंगे, गेहूं खा जायेंगे और उसका कोई परिणाम नहीं है। मेरा माना है, वह वर्ल्ड कैपिटलिज्म ही ऐज ए क्लास कॉन्शस नहीं है। सारी दुनिया के कैपिटलिस्ट को यह फिक्र करनी चाहिए। जिन-जिन मुल्कों में कैपिटलिज्म डूब रहा है, वहां उसकी डाइरेक्ट प्रॉपेगैंडा होनी चाहिए, व्हाया गवर्नमेन्ट नहीं। क्योंकि एशिया की सभी गवर्नमेन्ट, आज नहीं कल, सोशलिस्ट हो जायेंगी। क्योंकि जहां गरीब की मेजॉरिटी है, वहां कोई गवर्नमेन्ट ज्यादा देर तक कैपिटलिस्ट नहीं रह सकती। वह समस्या ही नहीं है। क्योंकि उसको वोट जिससे लेना है, उसे उसकी बात करनी पड़ेगी। और आज नहीं कल, यह सवाल कोई हिन्दुस्तान का नहीं है।

पूरा एशिया एक न एक दिन कम्युनिस्ट हो जाने वाला नहीं है। इसलिए गवर्नमेंट के माध्यम से जो भी पैसा आयेगा, वह कैपिटलिज्म के किसी काम में आने वाला नहीं है। उसका कोई मूल्य नहीं है। यह समझ लें कि कभी बिहार में कल्पना थी कि दो करोड़ के आस-पास लोग मरेंगे, लेकिन अकाल में चालीस ही लोग मरे। सारी दुनिया से उसके लिए पैसे आये, लेकिन उससे बिहार के गरीब में आप पैसे वालों के प्रति पैदा नहीं कर सके। उससे कुछ मतलब नहीं है। वह एक इतना बड़ा मौका था कि सारे हिन्दुस्तान के गरीब हैं, दीन हैं, दरिद्र हैं, उसके प्रति कैपिटलिज्म के प्रति सद्भाव पैदा हो सके। या अगर किसी ने कुछ किया या कोई कुछ करता है तो उसको पर्सनल आदर मिलता है। उसके कैपिटलिज्म के लिए कुछ भी नहीं मिलता है। वह एक आदमी को आदर मिल जाता है कि फलां आदमी ने इतना काम किया, बहुत अच्छा काम किया।

आप जो करते हैं, उसका ऐज ए क्लास कोई मतलब नहीं होता है। आप एक कॉलेज बनाये, एक यूनिवर्सिटी बनाये, हॉस्पिटल बनाये, वह एक आदमी का होता है। और गरीब जो है वह आपके प्रति क्लास की तरह दुश्मन हो रहा है। यह आपको ख्याल में नहीं आ रहा है। यह कांफ्लिक्ट सारी की सारी है। वह कांफ्लिक्ट यह है गरीब ऐज ए क्लास और कैपिटलिस्ट ऐज ए इंडिविज्युअल। यह फाइट में जीत होना असम्भव है। जीत नहीं हो सकती।

दूसरा मेरा मानना यह है कि वर्ल्ड कैपिटलिज्म को भी कान्शस किया जाना चाहिए। हिन्दुस्तान दस साल में डूब जायेगा और डूब जाने के बाद निकालना असम्भव है। एक दफा माओ के हाथ में चीन गया तो अब कोई उपाय नहीं है।

एक दफे गया तो कोई उपाय नहीं। और आप हैरान होंगे कि दो साल से ज्यादा बंगाल नहीं रुकेगा अब। रुकना असम्भव हो जायेगा। बम्बई में जो बैठा है, वह सोचता है बंगाल जा रहा है, क्या मतलब है ? और उसको पता नहीं कि बंगाल जाता है तो हिन्दुस्तान जाने का दरवाजा खुल जाता है। और बंगाल जायेगा तो आप बैठे देखते रहेंगे। उसके लिए पूरे हिन्दुस्तान का कैपिटलिस्ट क्या कर रहा है कि बंगाल न जाये ? उसके कोई ख्याल में नहीं है बात। यानी सारी ताकत बंगाल में लग जानी चाहिए। सारी फिक्र छोड़ दें। वहां गरीबी के लिए क्या कर सकते हैं ? वहां रिलेशनशिप बदलने के लिए क्या कर सकते हैं ? वहां जो गैंग्स पैदा हो रहे हैं उनके तोड़ने के लिए क्या कर सकते हैं ? सारी ताकत बंगाल पर लगा देनी चाहिए।

लेनिन ने आज से पचास साल पहले कहा था कि मास्को से लन्दन तक कम्युनिज्म का जो रास्ता है, वह पेकिंग होता हुआ, कलकत्ता होता हुआ जायेगा। और उसकी भविष्यवाणी बड़ी अद्भुत है। पेकिंग तक तो गया और कलकत्ता तक पगडंडियां आ गयीं, रास्ता बन जायेगा दो साल के अन्दर। और मजा यह है, जब भी आप चिन्तित होते हैं, जब भी मैं ऐसे आदमी से बात करता हूं, मुझे लगता है कि वह इसी में उत्सुक है कि वह कैसे बच जाये ? आपके बचने का कोई मतलब ही नहीं है। आप बचते हैं या नहीं बचते हैं, यह बहुत मूल्य की बात नहीं है। एक सिस्टम बचती है कि नहीं यह सवाल है। तो जब आप उत्सुक होते हैं तो आप सोचते हैं कि मैं कैसे बच जाऊं ?

इधर मार्क्स ने सौ वर्ष पहले कम्युनिस्टों के लिए लिखा हुआ है कि दुनिया के गरीबों, इकट्ठे हो जाओ, क्योंकि तुम्हारे पास खोने के सिवाय जंजीरों के और कुछ भी नहीं है। जब तुम्हारे पास खोने को कुछ है ही नहीं। मैं अभी गया हुआ था दिल्ली तो मैंने वहां कहा कि दुनिया भर के पूंजीपतियों, इकट्ठे हो जाओ, क्योंकि तुम्हारे पास सब कुछ खोने को है सिवाय जंजीरों के। और सब खो दोगे तो जंजीरें ही बचेंगी और कुछ बचने वाला नहीं है।

मेरी समझ यह है कि हमें क्लास के लिए कॉन्शसली सारी एफर्ट करनी चाहिए और एफर्ट बिल्कुल हो सकती है। आज की दुनिया में, जहां कि प्रॉपेगैंडा बिल्कुल ही साइंटिफिक मैथडॉलॉजी हो गयी, जहां कि कोई भी फिजूल चीज दिमाग में डाली जा सकती है, जहां कोई भी चीज बेची जा सकती है। आज जब हमारे पास साइंटिफिक मीडिया है सारा का सारा···यानी बड़ा मजा यह है कि गरीब जिसके पास कुछ भी नहीं है, वह जीतेगा। और अमीर जिसके पास सब कुछ है, वह हार जायेगा। जिसके पास सब इन्तजार है, जो सब कर सकता है, वह हारेगा सिर्फ इसीलिए कि उसको ख्याल ही नहीं है कि वह भी जीतने के लिए एक कलेक्टिव एफर्ट कर सकता है ऐज ए क्लास।······।

एक तो क्लास कॉन्शसनेस नहीं है इसलिए हारेगा। दूसरा, ज्यादा लम्बा वक्त नहीं है। आप दो-चार साल में कुछ करते हैं तो करते हैं, अन्यथा करने का कोई मतलब नहीं रह जायेगा। उसे बहुत तीव्रता से करना है। और हिन्दुस्तान में सीधी पोलैरिटी खड़ी करने की जरूरत है।

हिन्दुस्तान की पॉलिटिक्स में भी पोलेरिटी लाने की जरूरत है। हिन्दुस्तान की पॉलिटिक्स में भी क्या बेवकूफियां हो रही हैं कि वह जो सोशलिज्म की बात कर रहा है, वह तो कर ही रहा है। जो सोशलिज्म नहीं चाहता है, वह भी बात सोशलिज्म की कर रहा है। वह भी यह सोचता है कि सोशलिस्ट शब्द की कीमत है, इसका उपयोग ले लो। उसको पता नहीं है कि इसका उपयोग तुम न ले पाओगे, सोशलिस्ट तुम्हारा उपयोग ले लेंगे। सोशलिस्ट शब्द इतना बड़ा है कि कैपिटलिस्ट भी सोचता है कि हम भी सोशलिज्म की बात करके और इस शब्द की आड़ में बचा लें अपने को। उसे पता नहीं, वह शब्द का प्रचार करके शब्द उसको भी ले डूबे।

पोलैरिटी साफ होनी चाहिए कि कौन सोशलिस्ट है और कौन ऐंटी-सोशलिस्ट है। और इस पोलैरिटी को साफ करने की फिक्र करनी चाहिए। कौन-सी पॉलिटिकल पार्टी-सोशलिस्ट है, इसकी साफ बात होनी चाहिए, क्योंकि सोशलिस्ट पार्टी साफ बात बोलती है। वह कंफ्यूज्ड नहीं है, आप कंफ्यूजन क्रियेट करते हैं, आप लफ्फाजी करते हैं। आप मानते हैं कि सोशलिज्म नहीं आने देना है, लेकिन बातें फिर भी सोशलिज्म की करनी हैं। और जब दुश्मन के शब्द का आप उपयोग करें तो समझें कि आपकी हार शुरू हो चुकी है, आप हार चुके हैं। वस्तुतः अब आपके जीतने की आशा बहुत नहीं है।

प्रश्न—आप साफ बात करने की सलाह देते हैं, लेकिन उसका मार्कसिस्ट के ऊपर रिएक्शन क्या होगा ?

आप नहीं समझते, मार्कसिस्ट के ऊपर सत्य का सदा रिएक्शन अच्छा होता है। और कंफ्यूज्ड आदमी पर, और दोहरे चेहरे वाले आदमी पर रिएक्शन अंततः बुरा होता है। आप आज भले थोड़ा-सा धोखा दे लें, लेकिन कल देखेंगे कि आपकी सब टेक्टिक्स तो कैपिटलिज्म को बचाने की बात है और बात आप सोशलिज्म की करते हैं। आप बेईमान आदमी हैं। और कैपिटलिस्ट की बाबत जो सबसे बड़ा ख्याल है, वह उसकी बेईमानी का है। कैपिटलिस्ट की बाबत ऑनेस्ट होने का ख्याल नहीं है मार्कसिस्ट को। तो आप अपनी ईमानदारी की कोई छाप भी नहीं छोड़ पाते हैं। और उसका कारण यह है कि आप जिसको कहते हैं कि दोहरी चालें हैं, डबल बाइंड खेल खेलना चाहते हैं, वह सब गलत बात है। मैं कहता हूं, हारते हैं तो ऑनेस्टली हारें यानी अगर कैपिटलिज्म हारता है तो ऑनेस्टली हारे—यह जानते हुए कि हम हारे, और हम लड़े और हमने

आपकी फाइट की। और दस साल बाद जब हिन्दुस्तान मरे सोशलिज्म में तब आप कह तो सकें कि हमने फाइट पूरी तरह की; और तुम गधे थे, तुम अपने हाथ से गये। लेकिन आप भी सोशलिज्म की बात करेंगे, तो कल आप यह भी लौटकर नहीं कह सकेंगे कि हमने तुमको इन्कार किया था, हमने तुम्हें बचाना चाहा, हमने तुम्हें रोकना चाहा—यह कहने के लिए आपके पास मुंह नहीं रहेगा।

मैं यह मानता हूं कि फाइट ऑनेस्ट हो। इस वक्त आपको पॉलिटिक्स न बचा सकेगी, ऑनेस्टी बचा सकेगी। फाइट हो और वह इतनी साफ हो तो हमको पता चले कि पोलैरिटी क्या है, तब हम पोलैरिटी पैदा भी कर सकेंगे। आज तकलीफ यह है कि आप किसी राजनीतिज्ञ को पक्का नहीं जानते कि वह क्या है? वह जब देखता है कि आपसे कुछ फायदा है तो आपके पास खड़ा होता है और जब देखता है कि नहीं कुछ फायदा है, तो गरीब के पास खड़ा होता है। वह देखता है कि उसका क्या फायदा है। लेकिन न आप से मतलब है, न गरीब से मतलब है। आपको साफ करना पड़ेगा कि कैपिटलिस्ट क्लास से एक पैसा नहीं जायेगा उस पॉलिटिकल पार्टी को, जिसके बाबत हमें जरा भी शक है, वह सोशलिज्म की बात करेगी। शक भी है तो बात बन्द। उसको एक पैसा भी नहीं जायेगा। अगर अपने इंट्रेस्ट भी खोने पड़ेंगे तो वह हम खोयेंगे। लेकिन कैपिटलिस्ट क्लास ऐसी किसी पार्टी से, पॉलिटिकल लीडर से, पॉलिटिकल प्रोग्राम से साफ फाइट देगी। ऐसा नहीं कि वह पीछे-पीछे चलायेगी। चेम्बर की बैठक हो तो उसको भी इन्दिरा गांधी ही नौमिनेट करेगी। इस गधा-पच्चीसी से काम नहीं चलेगा, क्योंकि ये दोहरी तरकीबें हैं। और मजा यह है कि वह आपको भी गाली देगी और करेगी क्या?

मेरा कहना है कि ऑनेस्ट फाइट की तैयारी करनी चाहिए। डिस्ऑनेस्ट फाइट का तो मुझे कुछ मतलब नहीं मालूम पड़ता है। उससे तो आप हारेंगे और सारी दुनिया में हारेंगे। मजा यह है कि जो आप यहां कर रहे हैं, वही चीन का कैपिटलिस्ट भी कर रहा है—वही टेक्टिक्स। वही बर्मा का भी कर रहा है, वही रूस में भी हो रहा है, वहीं इंगलैण्ड में भी हो रहा है। यानी मजा यह है कि हम इतिहास से कुछ भी नहीं सीखते हैं। हम कभी-कभी रूटिन ट्रिक्स उपयोग करते है और देख लेते हैं, वह दस जगह मार नहीं पाते, फिर हम वही करेंगे।

प्रश्न—आप ऑनेस्ट फाइट की बात करते हैं, पहले ऑनेस्टी तो आनी चाहिए?

ऑनेस्टी का मामला ऐसा है कि वह आपके लाने से नहीं आने वाली है। कम से कम फाइट तो बिल्कुल ऑनेस्ट हो सकती है। इसमें आप क्या कर रहे हैं, इससे कोई सम्बन्ध नहीं है? फाइट तो बिल्कुल ऑनेस्ट हो सकती है। एक दफा यह ख्याल आपको साफ हो जाये। मैं मानता हूं कि आपको भी यह साफ नहीं है

कि कैपिटलिज्म के पास कोई वैल्यू है। आपको भी यह साफ है कि कैपिटलिज्म में हमारे पास एक बड़ा मकान है, बड़ी गाड़ी है, बड़ा इन्तजाम है।

कैपिटलिज्म के पास कोई वैल्यूज हैं बचाने को, जिनसे मनुष्यता का कोई हित होगा। तो सोशलिज्म के पास कुछ ऐंटी-वैल्यूज हैं, जो मनुष्यता को नुकसान पहुंचायेगी, यह आपको ही कोई साफ नहीं है। मैं जो समझता हूं वह यह कि कैपिटलिस्ट को ही समझाने की जरूरत है कि कैपिटलिज्म मूल्यवान चीज है, जिसको तुम मर मत जाने देना। बड़ा मामला उल्टा है। यानी मामला ऐसा नहीं है कि आपको पता ही है। और जब आप कहते हैं कि हां, बचना चाहिए तो आपका अपना ही ख्याल है कि यह बच जाये तो मैं बचाता हूं, नहीं तो नहीं। और कुछ मतलब नहीं है आपका। इसलिए मैं कह रहा हूं कि कैपिटलिज्म ऐज ए फिलासफी ऑफ लाइफ कभी न हो पायेगा। उसकी हमें फिक्र करने की जरूरत है। और वह फाइट न केवल हिन्दुस्तान के लिए मूल्यवान होगी, सारे वर्ल्ड के कैपिटलिज्म के लिए मूल्यवान हो सकती है।

असल में अब कंट्री का सवाल ही नहीं है। कैपिटलिज्म या सोशलिस्ट कंट्री का अब सवाल नहीं है। जैसा कि मार्क्स ने मजदूरों को समझाया है कि तुम्हारी कंट्री नहीं है; और दुनिया में दो ही कंट्री हैं—एक गरीब है और एक अमीर। लेकिन कैपिटलिस्ट अभी भी बिल्कुल आउट ऑफ डेटेड बातें कर रहा है। वह कह रहा है कंट्री फलां। उसको भी साफ होना चाहिए कि दुनिया में दो ही क्लास हैं और दो ही कंट्री हैं। क्योंकि उसका भी हिन्दुस्तान के मजदूरों से उतना सम्बन्ध नहीं है, जितना अमरीका के कैपिटलिस्टों से सम्बन्ध है। और कल अगर एग्जिस्टैन्स को एक नया ढंग देना है या बदलना है तो सारे वर्ल्ड कैपिटलिस्ट को एक ख्याल होना चाहिए कि उसके पास एक फिलॉसफी है जिसको बचाना है।

और यह जो पिछले अतीत की बातें करते हैं, उसके तो बहुत दूसरे कारण हैं। कैपिटलिज्म के ऊपर कभी हमला नहीं हुआ। हमला पहली दफा सौ वर्षों में पैदा हुआ है। यह ऐतिहासिक घटना पहले कभी थी नहीं। हमला था एक मुल्क का दूसरे मुल्क के ऊपर। एक वर्ग का दूसरे वर्ग के ऊपर। दुनिया में कभी हमला ही नहीं हुआ था। यह हमला बिल्कुल पचास साल की ईजाद है। और ईजाद इसलिए हो सकी, और कारण भी हैं साफ उसके।

दुनिया के मजदूर कभी एक जगह इकट्ठा नहीं हुए; इसलिए क्लास कॉन्शसनेस कभी पैदा न हो सकी। एक आदमी आपके घर में काम करता था और मेरे घर में काम करता था। एक आपके प्रति मानता था, किसी के घर में रोटी बनाता था। वह इकट्ठा कभी था नहीं। इण्डस्ट्रियलाइजेशन के बाद एक-एक लाख-लाख मजदूर इकट्ठे होते हैं। जब एक लाख मजदूर इकट्ठा हुआ तो सारा

मामला बदल गया। कैपिटलिस्ट अकेला है। मजदूर भी अकेला था, कैपिटलिस्ट भी अकेला था। और कैपिटलिस्ट मजदूर से ज्यादा ताकतवर था। मजदूर तो इकट्ठा हो गया है लाख की तादाद में एक जगह, और कैपिटलिस्ट चार रह गये एक जगह। और उन चारों के भी इंट्रेस्ट एक दूसरे के विपरीत होने से वे कभी साथ खड़े नहीं होते। और मजदूर इकट्ठा खड़ा हो गया। आप समझ रहे हैं ?

दुनिया में जो डायनामिक्स है, वह बड़ी अजीब है। जैसे कि यूथ का प्रॉबलम है, वह कभी भी नहीं था, क्योंकि यूथ भी इकट्ठे नहीं हुए। यूनिवर्सिटी में इकट्ठे हो गये। और प्रॉबलम ही नहीं था; एक बाप था, उसका बेटा था। बाप हमेशा बेटे को दबा लेता था। आज दस हजार बेटे एक जगह इकट्ठे हो गये हैं और दस हजार बाप कहीं भी इकट्ठे नहीं हो रहे हैं, इसलिए फाइट मुश्किल हो गयी है। कठिनाई जो है, बाप अकेला पड़ गया है, दस हजार बेटे इकट्ठे हैं। तो दस हजार बेटे बाप की बात मानने वाले नहीं हैं। एक बेटा तो एक बाप को मानता ही था, मानना ही पड़ता था, कोई उपाय नहीं था। क्योंकि उस फाइट में बाप हमेशा जीत जाता था। इसलिए दुनिया में जेनरेशन की फाइट कभी भी नहीं हुई। यूनिवर्सिटी की वजह से जेनरेशन की फाइट पैदा हो गई। अब वहां दस हजार लड़के हैं जो कि एक जेनरेशन के हैं। और दस हजार बाप कहीं इकट्ठे नहीं हैं जो कि एक जेनरेशन के हैं। लड़ेंगे कैसे ? बाप हारेगा। बाप की कोई क्लास नहीं है, बेटे की क्लास है। यह सारी बात साफ करनी पड़ेगी। अगर ये सारी बात साफ हो तो बात हल हो सकती है। इसमें कोई अड़चन नहीं है।

प्रश्न—अस्पष्ट

इसमें दो तीन बातें ख्याल में लेने की जरूरत है। पहली बात कि जो आप कहते हैं, सोशलिज्म के बहुत से मोड्स और हैं उसमें पचास साल में बहुत फर्क हुआ है। ये दोनों बातें ठीक हैं। लेकिन बेसिकली सोशलिज्म की आत्मा एक है और जो मोड्स का फर्क है वह केवल सिचुएशन्स का फर्क है। यानी जिस मुल्क में फ्रीडम ज्यादा है, वहां सोशलिज्म दूसरे तरह का होगा। क्योंकि उसको किसान को भड़काना है। जिस मुल्क में रैवोल्यूशन हो गया है और मजदूर हैं मेन क्लास, वहां सोशलिज्म दूसरा रुख लेगा। क्योंकि वहां किसान को नहीं भड़काना है, वहां मजदूर को भड़काना है। जिस मुल्क में मिडिल क्लास ज्यादा बड़ी है, वहां सोशलिज्म कम्युनिज्म की शक्ल नहीं लेगा। वहां सोशलिज्म डेमोक्रेटिक सोशलिज्म और दूसरी शक्ल लेगा। क्योंकि उसको मिडिल क्लास पर निर्भर रहना पड़ेगा। लेकिन बेसिक स्पिरिट सोशलिज्म की एक है। और यह जो जितने फर्क आपको दिखाई पड़ रहे हैं पचास साल में, अलग-अलग कन्ट्रीज में यह अलग-अलग कंट्रीज की सोशल सिस्टम है। उसका मोड ऑफ एग्जिस्टैन्स और वहां कौन से क्लास को एक्सप्लाइट करके कम्युनिज्म लाना है, इस पर निर्भर कर रहा है।

बाकी बेसिक फर्क नहीं है। बेसिक बुनियाद एक है।

और पचास साल में जो भी फर्क पड़े, वह फर्क फाइट के अनुभव से पड़े। उससे स्पिरिट में कोई फर्क नहीं पड़ा। फाइट के अनुभव में फर्क पड़ा। यह समझ में आया है कि अब जरूरी नहीं है कि तलवार के द्वारा और बन्दूक के द्वारा एक क्रान्ति की जाये। अब डेमोक्रेसी का भी उपयोग किया जा सकता है। इसलिए अब डेमोक्रेसी की बात डाल दी जाये बीच में।

सवाल यह है कि—सोशलिज्म के सामने सवाल है कि किसी भी तरह शासन हाथ में होना चाहिए, स्टेट हाथ में होना चाहिए। वह उसकी बेसिक मांग है, क्योंकि वह स्टेट के बिना कुछ भी कर नहीं सकता। अब एक दफा स्टेट उसके हाथ में हो तो वह नेशनालाइजेशन कर सकता है सारी व्यवस्था का। वह कैपिटलिस्ट को ऐज ए क्लास विदा कर सकता है। स्टेट कैसे हाथ में हो इसकी टेक्टिक्स में फर्क पड़ता है। लेकिन स्टेट हाथ में हो यह बेसिक ख्याल छूटता नहीं। और स्टेट हाथ में आते ही देश की कैपिटल स्टेट की हो जाये, यह भी ख्याल में भेद पड़ता नहीं।

मैं जो बेसिक बातें मानता हूं वह दो हैं—एक तो प्रॉडक्शन के जितने भी मीन्स हैं, वे स्टेट के हाथ में हों। यह सोशलिज्म की बेसिक बात है। और दूसरी बात—स्टेट सोशलिस्ट के हाथ में हो। स्टेट ओनरशिप हो और स्टेट पर डिक्टेटरशिप हो, ये उनके दो बेसिक ख्याल हैं। इसमें हर मुल्क में अलग-अलग फर्क पड़ता है। उन फर्क की कोई कीमत नहीं है, वे सब धोखे के हैं, जब आप यह कहते हो।

दूसरी बात जब आप कहते हैं कि हमें नयी जेनरेशन को पकड़ना पड़े, वह तो बिल्कुल ठीक ही है। लेकिन नयी जेनरेशन को आप पकड़ न पायेंगे। अत्यन्त कठिन है। क्योंकि नयी जेनरेशन इधर जो आज—यूनिवर्सिटी हों या कॉलेज हों या पिछले पचास साल की जो भी हवा हो, वह सारी की सारी हवा में नये जनरेशन को तो सोशलिस्ट माइंड ज्यादा अच्छी तरह इन्वॉल्व किया हुआ है। आप सब उसमें सहयोगी हैं। हमें पता नहीं चलता कि हम किस तरह सहयोग दे रहे हैं, लेकिन हम सब सहयोगी हैं। अगर एक कैपिटलिस्ट को भी एक थैली दिलवानी है तो जयप्रकाश नारायण से दिलवानी है। हमको पता नहीं है कि इन्डाइरेक्टली पूरी जेनरेशन को सोशलिज्म के लिए तैयार कर लिए हैं। तो नये जेनरेशन का जो माइंड है, वह तो सोशलिस्ट पैटर्न में ढला हुआ माइंड है। उसकी तो मांग है। कैपिटलिज्म की बात सुनकर ख्याल में न आयेगा कि आप क्या बात कर रहे हैं।

मेरी अपनी समझ है कि वह जो ओल्ड जेनरेशन है, बेसिक फाउन्डेशन उसको ही बनाना पड़ेगा। बेस उसी को बनाना पड़े और वही बेस बन सकती है। क्योंकि

उसके दिमाग में सोशलिज्म का प्रॉपेगैंडा इतनी गहराई तक रूटेड नहीं है। उधर से जल्दी काम हो सकता है। जैसे कि सोशलिस्ट को लगता है कि ओल्ड जेनरेशन काम में नहीं लायी जा सकती। सोशलिस्ट को लगता है कि नयी जेनरेशन काम में लायी जा सकती है। और आपको भी लगता है कि नयी जेनरेशन काम में लायी जा सकती है तो आप गलती में हैं। सोशलिस्ट का लगना ठीक है।

उन्नीस सौ सतरह के बाद सारी दुनिया में जितने बच्चे पैदा हुए हैं, वे किसी न किसी रूप से रशिया ओरिएन्टेड हैं, चाहे वह किसी घर में पैदा हुआ हो। उन्नीस सौ सतरह के बाद इतना सतर्क प्रॉपेगैंडा है और इतनी तीव्रता से चल रहा है कि आपको पता ही नहीं है, वह सब तरफ से आपको घेरे हुए है। अल्टीमेट शिफ्ट की बात नहीं कर रहा हूं। मैं तो बेस की बात कर रहा हूं। अल्टीमेट शिफ्ट बाद की बात है, बेस तो आपको ओल्ड जेनरेशन बनाना पड़ेगा। और अगर ओल्ड जेनरेशन राजी हो जाये, तो अल्टीमेट शिफ्ट नयी जेनरेशन में भी दी जा सकती है। क्योंकि ये ताकतें आज भी ओल्ड जेनरेशन के हाथ में हैं।

ओल्ड जेनरेशन एक दफा ख्याल से भर जाये तो नयी जेनरेशन को शिफ्ट दी जा सकती है। इसमें तकलीफ नहीं है। क्योंकि चाहे प्रोफेसर्स हों, चाहे बाप हो, चाहे सारी जो भी व्यवस्था के की-पॉइंट हैं, वे ओल्ड जेनरेशन के हाथ में है। अगर वे सारे इस ख्याल से भर जायें तो नयी जेनरेशन को बदल देने में कठिनाई नहीं है।

फिर मजा यह है कि नयी जेनरेशन का जो लगाव है सोशलिज्म से, वह सोशलिज्म से कम है। सोशलिज्म ने कुछ वेल्यूज की बात की है, उनसे ज्यादा है। और मजा यह है कि जिन वेल्यूज की सोशलिज्म बात करता है, उनकी यह हत्या करता है। यह बड़े मजे की बात है। सोशलिज्म जिन वेल्यूज की बात करता है कि हम दुनिया में समानता ले आयेंगे, सोशलिज्म कन्ट्री असमानता से शुरू होती है, और समानता कभी भी नहीं लाती। और ला सकती नहीं। कहती है, हम स्वतन्त्रता ले आयेंगे। स्वतन्त्रता की हत्या से सब शुरू होता है।

अगर नयी जेनरेशन को प्रभावित भी करना है तो आपको दो बातें करनी पड़ेगी। एक तो यह कि सोशलिज्म जिन वेल्यूज की बात करता है, वह उनकी हत्या करेगा, उनको ला नहीं सकता। झूठा है वह दावा। इस दावे को झूठा सिद्ध करना पड़ेगा। और सोशलिज्म जिन वेल्यूज की बात करता है, कैपिटलिज्म उनको ला रहा है और ला सकता है। और कैपिटलिज्म ही ला सकता है। यह आपको साफ करना पड़ेगा।

और वह जो आप कहते हैं कैपिटलिज्म की बात छोड़कर हम एक नये विचार को विकसित करें, जो आप कहते हैं, वह असम्भव है। असम्भव कई कारणों से है। क्योंकि आज फाइट इधर सीधा कैपिटलिज्म और सोशलिज्म के बीच है।

और अगर आप नयी की बात करते हैं तो आपको इन दो पौलेरिटी में कहीं बंट जाना पड़ेगा। और नयी की बात में बहुत सम्भावना आपको सोशलिस्ट पोलैरिटी के साथ खड़ी होने में होगी। मैं तो कहता हूं फाइट सीधी है। दो पोल सीधे हैं। लड़ाई यहां होने में है।

कम्युनिस्ट निरन्तर यह कहते रहे हैं कि जो हमारे साथ नहीं है, वह हमारा दुश्मन है। इसलिए कम्युनिस्ट की फाइट बहुत सीधी रही है और पचास साल में वह निरन्तर जीता है। उसकी जीत की टैक्टिक्स बहुत साफ है। वह कन्फ्यूजन में नहीं रहना चाहता। वह कहता है, या तो आप हमारे साथ नहीं हैं। वह सेफ नहीं मानता दुश्मनी। वह यह नहीं कहता कि यह दुश्मन थोड़ा हमारे पास ज्यादा है। वह दुश्मन थोड़ा हमसे ज्यादा दूर है। वह दुश्मन कभी राजी हो जायेगा, यह दुश्मन कभी राजी नहीं होगा। वह कहता है या तो आप कम्युनिस्ट हों या एन्टी कम्युनिस्ट हों। एन्टी कम्युनिस्ट को वह सेफ नहीं मानता, इसलिए उसको फाइट करने में बड़ी सुविधा रही है। वह फिजूल के झंझट में नहीं पड़ा। इसलिए पचास साल में वह निरन्तर जीता है। सच बात यह है कि सेफ हो भी नहीं सकता।

हिन्दुस्तान में भी वही मामला हुआ। जैसे ही बीस साल पहले हमारे हाथ में आजादी आयी, हमको यह पागलपन पकड़ा फौरन कि हम दुनिया में जो बंटी हुई पोलैरिटीज हैं, वह उसके साथ में खड़े होकर नया पोल खड़ा करें। उसमें हम मर गये। सबको ख्याल पकड़ता है कि कुछ नया खड़ा कर लें तो बंटी हुई पोलैरिटी साथ थी। लेकिन हमने उन दोनों के बीच नया खड़ा कर दिया। नया खड़ा करने में ही हम धीरे-धीरे रोज रूस की तरफ पहुंचते चले गये। क्योंकि नया जो है, उसको अनिवार्य रूप से लेफ्टिस्ट भाषा बोलनी पड़ती है। ओल्ड जो है उसको राइटिस्ट भाषा बोलनी ही पड़ती है। क्योंकि पिछले दो हजार साल में यह भ्रम पैदा हो गया है कि नया अनिवार्य रूप से लेफ्टिस्ट होगा।

यह हमारे माइंड की कंडीशनिंग हैं। इसलिए बड़ी मुश्किल हो गई; कोई यह कह नहीं सकता कि मैं राइटिस्ट हूं और नया हूं। राइटिस्ट है मतलब आप ओल्ड हैं। लेफ्टिस्ट हैं, मतलब आप नये हैं। यह बड़ी कनिंग कंडीशनिंग है। और उसमें आपने नये की बात कही कि आप धीरे-धीरे गये। और नये की बात जब आप करते हैं, तब भीतर कहीं आपकी कॉन्शस में निकल रहा है। आप जानते हैं कि कैपिटलिज्म के पक्ष में कैसे बोलें? तो कुछ नये की बात करनी चाहिए। मैं कहता हूं, अगर है पक्ष में बोलने लायक तो सीधा बोलें। नहीं है पक्ष में बोलने लायक तो मर जाने दें और उसके मरने में सहायता दें। अगर कैपिटलिज्म मर जाने लायक लगता हो तो फिर लड़ें मत। सब हथियार डालकर कहें कि यह हम मरने को तैयार हैं।

प्रश्न—अस्पष्ट

पहली तो बात यह है कि जो चेकोस्लोवाकिया या यूगोस्लाविया या अन्य कम्युनिस्ट कन्ट्रीज में प्राइवेट ओनरशिप की तरफ जो झुकाव है, वह इस बात का सबूत है कि जो कोर्स सोशलिज्म से लाया गया, वह गलत सिद्ध हुआ। और किसी बात का सबूत नहीं है। वहां कम्युनिज्म नहीं बदल रहा है, वहां कैपिटलिज्म वापस लौट रहा है। आप कहते हैं, वहां कम्युनिज्म बदल रहा है, मैं नहीं कहता। मैं कहता हूं, वहां कैपिटलिज्म वापस लौट रहा है। आज माओ का जो विरोध है रशिया से, वह भी विरोध बेसिकली यही है कि उसको ख्याल है कि रशिया धीरे-धीरे कैपिटलिस्ट में टर्न हो रहा है।

मेरी तो अपनी समझ यह है कि अब दुनिया में अगर कोई भी थर्ड वर्ल्ड वार होगी तो अब रूस और अमरीका के बीच में नहीं होने वाली है। असम्भव हो गई बात। क्योंकि रूस रोज कैपिटलिस्ट होगा। क्योंकि पचास साल अनुभव ने यह बताया उसको कि प्राइवेट ओनरशिप के बिना उत्पादन को जारी रखना असम्भव है। यानी मैं यह कह रहा हूं कि इसका आपको उपयोग करना चाहिए कि कैपिटलिस्ट सिस्टम जो है, जो आप पूछते हैं कि क्या है; तो मैं उसकी परिभाषा यह करता हूं कि व्यक्ति सम्पत्ति को पैदा करे और व्यक्ति सम्पत्ति का मालिक हो—यह धारणा कैपिटलिज्म की बुनियादी धारणा है।

उत्पादन और उत्पादन के साधन की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और व्यक्तिगत मालकियत कैपिटलिज्म की बुनियादी धारणा है। और वह धारणा वापस लौट रही है। क्योंकि पचास साल में रूस ने जबरदस्ती प्रोडक्शन करवाने की कोशिश की, लेकिन फिर भी नहीं हुआ। और मजा यह हुआ कि जिस जेनरेशन ने क्रांति की थी, उसने तो कुछ काम किया, क्योंकि वह क्रान्ति के फेवर में थी। फिर नयी जेनरेशन आयी। उसके बाद जिसे क्रांति का कुछ पता नहीं था, उस जेनरेशन ने तो काम करना बन्द कर दिया। ख्रुश्चेव ने हटने से पहले यह कहा कि सबसे बड़ी तकलीफ यह है कि रूस का लड़का कोई काम करना नहीं चाहता। क्योंकि काम करने का जो बेसिक इन्सेन्टिव है, वह खत्म हो गया है।

आदमी की जो चेतना है, वह बड़ी छोटी दायरे में जीती है। मेरी पत्नी बीमार है तो मैं पागल की तरह दौड़ता हूं। मुझे यह पता लगे कि मनुष्यता बीमार है तो घर में बैठा रहूं। मुझे कहीं पकड़ में नहीं आता कि मनुष्यता के बीमार होने से मैं कहां दौड़ूं और क्या करूं? मनुष्यता बीमार है तो अच्छा है, बीमार रहे। जैसे एक छोटा-सा दीया जलता है, उसकी चार फीट के घेरे में रोशनी पड़ती है। ऐसे ही आदमी की चेतना की रोशनी चार फीट के घेरे पर पड़ती है। और जितने घेरे पर पड़ती है, उसी को मैं फैमिली कहता हूं, वही परिवार है। वह उसका बेसिक इंसेन्टिव है। उसके आगे उसकी चेतना जाती नहीं है। चिल्लाओ कितना ही—मनुष्यता, राष्ट्र, फलां-ढिकां—उसकी चेतना जाती नहीं। उसकी चेतना जितने ऊपर जाती है और वह उतने के लिए ही जीता और मरता है। और कुछ करता है तो रूस या यूगोस्लाविया में, वहां भी झुकाव बदले हैं, उस अनुभव का परिणाम है कि आपने जो एक्सपेरिमेन्ट किया था, वह सफल हो गया है। लेकिन इसको स्वीकार करना कठिन मालूम होता है। इसलिए धीरे-धीरे···और जो अमरीका के लिए कहते हैं, वह भी सच है। मेरी तो मान्यता यह है कि कैपिटलिज्म जब ठीक से प्रौढ़ हो जाये तो सोशलिज्म अनिवार्य है। इसलिए अमरीका रोज सोशलिस्ट हो रहा है बिना जाने और रूस रोज कैपिटलिस्ट हो रहा है जानते हुए।

यह जो आप थर्ड फोर्स की बात करते हैं न, यह असम्भव है। क्योंकि थर्ड कोई क्लास नहीं है जिस पर आप फोर्स पैदा कर लें। लेकिन जो सारी तकलीफ है—फोर्स पैदा होती है क्लास से। मिडिल क्लास जो है, वह क्लास नहीं है। वह सिर्फ लिक्विडिटी है, जो डोल रही है दो क्लास के बीच; जिसमें से कुछ लोग आगे चले जायेंगे, कुछ लोग पीछे गिर जायेंगे। क्लास तो दो ही हैं। तो मिडिल क्लास फोर्स बन सकती है अगर क्लास हो, लेकिन मिडिल क्लास कोई क्लास ही नहीं है, क्योंकि मिडिल क्लास में कोई भी आदमी राजी नहीं है। मिडिल क्लास में जो भी आदमी है, वह चाहता है कि या तो नम्बर वन हो जाये। तो मिडिल क्लास है ही नहीं कोई आदमी, और वह नहीं नम्बर वन हो पाये, तो वह नम्बर तीन में जाने की तैयारी कर रहा है। तो यह जो आप कहते हैं थर्ड फोर्स, थर्ड फोर्स को जेनरेट करने के लिए कोई क्लास नहीं है। इसलिए अगर थर्ड फोर्स भी अगर आपको बनाना है तो इन ओल्ड फोर्सों की किसी पोलैरिटी में बनता है। दुनिया में कोई नहीं बना सकता।

अगर बात ख्याल में नहीं आती है तो प्रोग्राम बहुत मुश्किल है और बात ख्याल में आ जाये तो प्रोग्राम तो बहुत ही आसान बात है। प्रोग्राम कोई बड़ी बात नहीं है, एक दफा ख्याल में आ जाये। हमारी सारी उत्सुकता होती है कि प्रोग्राम कहो और फिलॉसफी हमारे पास नहीं है। बिना फिलॉसफी के प्रोग्राम होने वाला नहीं है। और प्रोग्राम हुआ तो इम्पोटेन्ट होगा और मर जायेगा। वहां जाकर बचेगा नहीं। मैं प्रोग्राम में उतना उत्सुक नहीं हूं।

प्रश्न—अस्पष्ट

लेकिन वॉरफुटिंग के लिए कुछ ख्याल तो हो जाये आपको कि कुछ लड़ने को हमारे पास है। यह जो आप कह रहे हैं थाउजेन्ड इयर, यह कभी प्रॉबलम नहीं था। कम्युनिज्म कभी खतरे में नहीं था और थाउजेन्ड इयर पहले कैपिटलिज्म था भी नहीं। कैपिटलिज्म अभी पचास साल की ग्रोथ है।

प्रश्न—अस्पष्ट

यह आप अगर उनको समझा दें साफ तो इतना जल्दी मरने को राजी नहीं होंगे। उनको लग यही रहा है कि कोई तरकीब से बच जायेंगे। यह हमारे प्रोग्राम का हिस्सा होना चाहिए कि हम साफ कर सकें कि हम दो साल में मर जायेंगे।

प्रश्न—अस्पष्ट

उनको जानने का सवाल नहीं है। मेरा जो कहना है, वह कैपिटलिस्ट के लिए नहीं है कैपिटलिस्ट के लिए है। कैपिटलिस्ट की कोई मानी नहीं है। सारा सवाल कैपिटलिज्म का है। जो आप प्रैक्टिकल डिफिकल्टी बताते हैं, वह है। लेकिन अगर आपको ऐसा पता चल जाये कि आपको कहूं कि घर में आग लग गई है, आप बाहर निकलिए। आप कहें कि प्रैक्टिकल डिफिकल्टी है, वह यह है कि मेरे पैर में दर्द है, या वह यह है कि दरवाजा बन्द है, या वह यह है कि सीढ़ी टूटी हुई है।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि चाहना कॉन्शस नहीं होगा। इसका यह मतलब नहीं है कि आप कॉन्शस नहीं हो सकते। यह मामला ऐसा नहीं है कि आपके पड़ोस में एक आदमी टी० बी० से मर गया है तो आप कहेंगे कि मैं अस्पताल क्यों जाऊं? बगल वाला टी० बी० में चला गया। वह ले जाया गया अस्पताल, वह नहीं गया है। इसलिए आपको जल्दी जाने का सवाल है। और इसका मतलब यह नहीं है कि वह नहीं गया तो आपका न जाना कोई भाग्य बन गया है। आप जा सकते हैं, लेकिन और तरकीब की बात सिखायी है, और कण्डीशनिंग के लिए बड़ी जरूरी है। कम्युनिस्ट प्रॉपेगेंडा सच में एक यह भी बात आदमी को सिखाती है कि कम्युनिज्म जो है, वह इनएविटेबल है। उसने भाग्य की पुरानी ट्रिक का उपयोग कर लिया।

प्रश्न—अस्पष्ट

इसमें भी कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर हमें यह लगे कि वह ठीक है तो हमें लड़ते हुए मरना चाहिए। लड़ते हुए पार जाना चाहिए। यह सवाल नहीं है कि हम जीत पायेंगे कि नहीं। सवाल यह है कि ठीक है क्या? अगर ठीक नहीं है, तब तो लड़ने की कोई जरूरत नहीं।

प्रश्न—अस्पष्ट

आपको मैं कहूं कि यह डेमोक्रेसी के वजह से बहुत कन्फ्यूजन पैदा हुआ है। सोशलिज्म की फाइट सीधी है। आप हमेशा कोई न कोई चेहरा अख्तियार करना चाहते हैं। आप कहेंगे, डेमोक्रेसी वर्सेस सोशलिज्म है। आप ऐसा नहीं कहेंगे कि कैपिटलिज्म वर्सेस सोशलिज्म है। असल में डेमोक्रेसी की जब आप बात शुरू करते हैं, तब आपको पता नहीं कि आप सिर्फ कन्फ्यूजन पैदा करते हैं। क्योंकि सोशलिज्म भी डेमोक्रेसी की बात करता है। इसमें कोई समस्या नहीं है। आप

जिन वेल्यूज की बात करते हैं, अगर वे वेल्यूज सोशलिज्म भी उपयोग कर सकता है, तो आप मरेंगे। क्योंकि आप विचार करें तो वह कहेगा कि डेमोक्रेसी तो हम भी मानते हैं। हम कहां कहते हैं कि डेमोक्रेसी नहीं है। नहीं, आपको तो उसी बिन्दु पर खड़ा होना चाहिए जिस पर दावा सोशलिज्म कर ही न सके। आप कहते हैं कैपिटलिज्म के लिए लड़ रहे हैं। इसका दावा सोशलिज्म नहीं कर सकता। इसलिए फाइट सीधी होगी। डेमोक्रेसी की फाइट सीधी नहीं होने वाली है। आपकी गलती क्या है कि कैपिटलिज्म शब्द से आप खुद ही घबराये हुए हैं। बहुत गलत मालूम होता है, कि कैपिटलिज्म शब्द कुछ पाप है।

प्रश्न—अस्पष्ट

इन्वॉल्व करने का सवाल ही नहीं। सवाल यह है कि जो सिस्टम मौजूद है कैपिटलिज्म की, वह इन्वॉल्व होगी तो बहुत नयी तरह की हो जायेगी। अपने आप हो जायेगी। इस दुनिया में कुछ भी पुराना टिकता नहीं। वह तो नया होता चला जाता है। मेरी तो समझ यह है कि अगर कैपिटलिज्म ठीक से बढ़ता चला जाये तो बहुत साइलेन्टली सोशलिज्म उसकी बाइ-प्रॉडक्ट होगी ही। वह कोई सवाल ही नहीं है। जैसे मैं आपसे कह रहा हूं कि सोशलिज्म कहेगा कि डेमोक्रेसी की तो हम भी बात करते हैं, तो बजाय इसके आप कहें कि कैपिटलिज्म में ही हम बात करते हैं और आप मानते हैं कि कैपिटलिज्म से सोशलिज्म अपने आप बाइ-प्रॉडक्ट की तरह आने वाला है। और दूसरा कोई आने का उपाय ही नहीं है। यह फाइट सीधी होनी चाहिए।

प्रश्न—अस्पष्ट

मैं यह कहता हूं कैपिटलिज्म के जो सबूत है, उसको हटा दें, तो कैपिटलिज्म कभी बनने वाला नहीं है। रशिया के अन्दर या चीन के अन्दर भी हालांकि कम्पलीट कन्ट्रोल वहां उन्होंने कर दिया है, कब्जा कर दिया है—प्रॉपेगेंडा मशीन है, ब्रेन-वॉशिंग हो रहा है, फिर ही जाकर वे दबा सके। मगर संघर्ष हमारा कम्युनिज्म के साथ नहीं है।

प्रश्न—आप हमें कोई ऐसी तरकीब बताइये जिससे हमारे देश के बुद्धिवादी लोग, जो हमारे देश में हैं उनके दिमाग में यह बात डाल दी जाये कि जब हम लोकशाही की बात करते हैं तो हम सच्ची लोकशाही की बात करने वाले हैं या नहीं।

लोकशाही की जो व्याख्या है, वह हम समझ नहीं सकते हैं। मैं तो यह कहता हूं कौन-सा समाजवाद है हमारे देश में कि जो समाजवाद लोगों के हकों को खत्म करने वाला है? आज हमारे देश के समाजवादी हमको यह कहते हैं। इन्डिविज्युअल राइट की बात करो तो कहते हैं कि रिएक्शनरी बात है! फ्रीडम की बात करो तो रिएक्शनरी बात है! कान्स्टीट्यूशन के जो फण्डामेन्टल राइट्स है,

उसकी हम बात लेकर चलते हैं तो यह रिएक्शनरी बात है ? तब हम यह नारा लगाते हैं कि जो किसान खेत में काम करता है, जमीन उसकी होनी चाहिए । मगर वे कहते क्या हैं ? और कार्यवाही उनकी यह है कि ऐसी परिस्थिति आ जाये कि इस देश में किसी भी आदमी के पास कोई चीज उसकी अपनी कहने का अधिकार न हो तो किस तरह हमारा यह बुद्धिवादी वर्ग है ? बुड्ढों की तो बात छोड़िए, नयी पीढ़ी जो है हमारी, उसके अन्दर हमको अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने का जो डर होता है, वह डर खत्म कर देना चाहिए ।

प्रश्न—अस्पष्ट

मधुजी, टैक्टिक्स की बात बहुत मूल्यवान नहीं है । टैक्टिक्स की जो बात है, वह डे टु डे पॉलिटिक्स के लिए मूल्यवान है ।

जैसे जस्टिस की वैल्यू है, तो जस्टिस की ठीक-ठीक डेफिनिशन मुल्क के हृदय में पहुंचानी चाहिए । इसकी फिक्र मत करिये आप कि आप अपने को जस्ट सिद्ध करने की कोशिश करें । आप सिर्फ जस्टिस की ठीक डेफिनिशन मुल्म के माइंड में पहुंचायें । वह डेफिनिशन तय करे कि क्या ठीक है । और अगर आपने जल्दबाजी की कि हम जस्ट हैं सिद्ध करने को, आप खो देते हैं मामले को । इसलिए मैं फिलॉसफी की बात कर रहा हूं, प्रोग्राम की नहीं । जो मेरा जोर है आप जस्टिस को डिफाइन करिए । मुल्क के सामने जस्टिस का कोई ख्याल ही नहीं कि जस्टिस यानी क्या है ? तो इसलिए जस्टिस शब्द को कोई भी एक्सप्लाइट करता है ।

डेमोक्रेसी, यानी मुल्क के सामने ख्याल ही नहीं है, इसलिए कोई भी एक्सप्लाइट करता है । कम्युनिस्ट भी डेमोक्रेट हैं, सोशलिस्ट भी डेमोक्रेट हैं, कैपिटलिस्ट भी डेमोक्रेट है । क्योंकि डेमोक्रेसी की मुल्क के माइंड के सामने कोई साफ डेफिनिशन नहीं है । मेरा जो कहना है कि बजाय इसके कि हम यह सिद्ध करें कि मैं डेमो-क्रेट हूं—क्योंकि ये सारे लोग सिद्ध करने में लगे हुए हैं—हमें एक व्यवस्था करनी चाहिए कि डेमोक्रेसी क्या है ? इससे हमें कोई मतलब नहीं है कि कौन डेमोक्रेट है, कौन नहीं है ।

डेमोक्रेसी की बिल्कुल ही निष्पक्ष परिभाषा मुल्क के मन पर पहुंचाने की कोशिश करनी चाहिए । समानता यानी क्या ? अधिकार यानी क्या ? यह सवाल नहीं है कि किसको क्या अधिकार है ? प्योर डेफिनिशन नहीं है मुल्क के माइंड में कुछ भी । क्योंकि कोई भी उसको कुछ कह देता है, वह कहता है यह इनजस्टिस हो रहा है । और हमारी समझ में नहीं आता कि क्या इनजस्टिस हो रहा है ? मालकियत क्या है ? वेल्यूज हमें साफ करने की फिक्र करनी चाहिए ।

प्रश्न—बेसिक कैरेक्टर क्या चीज है ?

वह तो कभी था ही नहीं । अगर मैं आपसे पूछूं कि बेसिक कैरेक्टर किसको आप कहते हैं ? तो आप मुश्किल में पड़ जायेंगे । कोई नहीं जानता क्या है बेसिक

कैरेक्टर ? उनको यह लगता है कि मेरे इन्ट्रेस्ट में ही हो रहा है, तभी कर रहा हूं । कोई नहीं कर रहा है अपने इन्ट्रेस्ट के खिलाफ । तो इसको बेसिक कैरेक्टरलेस नहीं कहूंगा । इसमें कैरेक्टर का कोई सवाल नहीं है मुझे दो इंच तक दिखाई पड़ता है, दस इंच तक नहीं दिखता तो मेरा कैरेक्टर खराब है ऐसा कुछ नहीं । इतना ही कि मेरी आंख बड़ी पास देखती है । इमीडिएट मामला है मेरे सामने । बस उसको मैं देख रहा हूं ।

प्रश्न—आप वर्ल्ड की बात कर रहे हैं, सारे वर्ल्ड को इन्सिस्ट करना भी पड़ेगा ।

इण्डिया से शुरू करते तो बड़े काम होते । और वह सब तरफ से हो सकता है । सब तरफ से हो तो बहुत जल्दी हो । प्रॉपेगेंडा की सारी मशीनरी का उपयोग चाहिए । मजा यह है कि मशीन भी आपके हाथ में हो तो भी उपयोग न होगा । मुझे पचास हजार लोग सुन रहे हैं, लेकिन आपका एक अखबार खबर नहीं दे रहा है । बड़ा मजेदार मामला है । पचास हजार लोग मुझे सुन रहे हों तो भी अखबार खबर नहीं दे रहे हैं !

प्रश्न—हजारों वर्ष से ऐसा होता आया है कि राम, कृष्ण या बुद्ध ने अपनी बात समझाने के लिए किसी न किसी प्रकार के संगठन और सम्प्रदाय बनाये और उन्हें अपनी बातें समझायी । आज भी समय और परिस्थिति ऐसी है कि हम सारे लोगों को समझायें । साधारण आदमी जो है, वह ऐसे प्रेरित नहीं हो सकता और हर आदमी को हम प्रेरित करने जायें तो मुश्किल है । हम एटमॉस्फियर बनाये और सेन्ट्रलाइज्ड करें और सिम्बल्स का उपयोग भी किया जा सकता है ।

बिल्कुल किया जा सकता है । पुराने सिम्बल्स का भी बहुत अच्छा उपयोग किया जा सकता है ।

अभी दो दिन से एक संन्यासी मुझे सुनने आते हैं । उनका काफी प्रभाव है । पंजाब में हजारों लोग उनको सुनने आते हैं । उन्होंने दो दिन के बाद सुनकर कल मुझे कहा कि यह तो बड़ा आश्चर्य है कि मुझे तो पता ही नहीं था कि समाजवादी यानी क्या, और पूंजीवादी यानी क्या ! मैं तो परमात्मा और ब्रह्म की बात करता रहा । मैं तो पहले समझा कि मुझे जाना ही नहीं चाहिए ये बातें सुनने । क्योंकि समाजवाद से सावधान सुनने से मुझे क्या मतलब । बम्बई में भी उनके सैकड़ों भक्त हैं । बीसवीं सदी में एक संन्यासी, जिसको हजारों लोग सुनते हैं, उसको पता नहीं है कि समाजवाद क्या है ?

हिन्दुस्तान में पचास लाख संन्यासी हैं । और इतनी बड़ी फोर्स अगर तैयार हो तो पचास लाख संन्यासी में से एक लाख संन्यासी तो आज खींचे जा सकते हैं जो सारे हिन्दुस्तान को आज चैनेलाइज कर दें । इसमें कोई कठिनाई नहीं । क्योंकि इनका प्रभाव है, इनकी ताकत है आज । मगर यह क्यों नहीं कर पा रहे हैं ?

सिम्बल्स तो मौजूद हैं। आज अगर एक लाख गेरुआ वस्त्र पहने हुए संन्यासी पूरे हिन्दुस्तान को कैपिटलिज्म के वेल्यूज की बात कहें तो आप कहां कम्युनिस्ट को खड़ा कर सकते हैं, कहां चीन को प्रवेश दिलवा सकते हैं ? और इसको खड़ा करने की जरा कठिनाई नहीं है। मगर वह आपके ख्याल में नहीं है। और सारे ओल्ड सिम्बल्स का उपयोग हो सकता है। नये सिम्बल्स भी आज खड़े करने की जरूरत नहीं है।

मैं तो कर ही रहा हूं, जो मैं कर सकता है। एक आदमी जो कर सकता है, दिन-रात, मुझे जो करना है, वह मैं कर ही रहा हूं। लेकिन एक आदमी जो कर सकता है, वह उतना ही कर सकता है। मैं बोल रहा हूं। मुझे पचास हजार लोग सुन लेंगे, फिर मैं चला जाऊंगा। लेकिन पचास हजार से फोर्स बनाने की व्यवस्था होनी चाहिए। अगर पचास हजार मुझे सुन रहे हैं, उनमें से पांच सौ आदमी भी मुझसे राजी हो रहे हैं तो उसका एक फॉलोअप होना चाहिए ! और पीछे उसके लिए काम की व्यवस्था होनी चाहिए। वह मैं अकेला आदमी कैसे करूंगा ? आखिर मेरे करने की सीमाएं हैं।

मैं जो कर सकता हूं, वह तो कर ही रहा हूं। इसके लिए आप एक प्रॉपेगेंडा मशीन पैदा करें। एक इन्तजाम करें कि ये सारी की सारी बातें अखबारों में चर्चा हो सके, महफिल में चर्चा हो सके। इस ढंग की फिल्म बनायें, इस तरह के गीत बनाये जा सकें, नाटक बनाये जा सकें इसके लिए आप कैम्प का इन्तजाम करें कि मैं एक हजार संन्यासियों को तीन दिन लाकर रख सकूं। उनको समझा सकूं। एक लिट्रेचर बनायें जो बेसिक हो, किसी को भी दिया जा सके। वह पढ़ सके, समझ सके, उस पर काम कर सके। उस बेसिक लिट्रेचर का इस मुल्क की परम्पराओं, इस मुल्क की संस्कृतियों से सम्बन्ध जोड़ा जा सके। यह सब बिल्कुल सरल सा है। इसमें बहुत कठिनाई नहीं है।

लेकिन कोई सोचता हो कि मैं अकेला ही कर लूं तो पागलपन की बातें सोच रहा है। तीस-चालीस नगरों में आप व्यवस्था करें। मैं समय देने को तैयार हूं और व्यवस्था करने को आप तैयार हों। तीन महीने में शुल्क का पूरा दौरा किया जाये और उस दौरे की हवा पूरे मुल्क में पैदा की जाये। इसके बाद दो-चार कैम्प का आयोजन करें, जहां संन्यासी, साधुओं के चार-पांच दिन का कार्यक्रम रखा जाये। उन कैम्प की फिक्र कर लें। इस बीच कुछ लिट्रेचर पैदा करने की फिक्र कर लें। बम्बई में एक ऑफिस बना डालें, एक फण्ड क्रियेट करें उसके लिए। जहां से कुछ मैगजीन्स, कुछ फ्री बुलेटिन बांटी जा सके। जैसे मैं एक गांव में बोलता हूं जाकर, तो मैं दो दिन बोल सकता हूं, लेकिन पूरे गांव में प्रॉपेगैंडा लिट्रेचर—घर-घर पहुंचाया जा सके, उसे मुफ्त बांटा जा सके—उसे खरीदने की फिक्र न करवायी जा सके कि कोई इसे खरीदे।

प्रश्न—कितने लोग पढ़ सकते हैं ?

आप नहीं समझते हैं। यही तो आपकी कमजोरी है। एक कम्युनिस्ट पचास साल से वही करके आपको मारे डाल रहा है। मगर आप की अक्ल में नहीं आती है बात। वह वही सब टैक्टिक्स का उपयोग कर रहा है, लेकिन आप कहते हैं कितने लोग पढ़ सकते हैं ? मास्को फिक्र नहीं कर रहा है कि दस करोड़ किताबें भेजी, कितने लोग पढ़ते हैं ! दस करोड़ देखेंगे तो ! कवर तो देखेंगे। अन्दर बच्चों की छपी फोटो चेहरे तो देखेंगे कि बच्चे कितने गोल और सुर्ख हैं रशिया में। फेंकी जा रही हैं पत्रिकाएं हर घर में मुफ्त। मत पढ़ो, लेकिन कभी तो कोई बैठे क्षण में पन्ने उलट लेता है। और वह इतना तो देख लेता है कि रशिया में कैसा स्वस्थ बच्चा है। कैसी स्कूल की बिल्डिंग है। यह सब तो इन्डाइरेक्टली हो रहा है चुपचाप उसके माइन्ड में कि रशिया में कुछ है।

यह कोई सवाल नहीं है कि आपने पहुंचा दिया तो वे मान ही लेंगे। मजा यह है कि जब धनपति और धन पैदा करने वाला, सारी प्रॉपेगैंडा मशीन का उपयोग कर लेते हैं—आप चिल्लाये जा रहे हैं कि लक्स टॉयलेट अच्छा साबुन है और पनामा सिगरेट पी लेना उम्दा बात है। और आप अच्छी तरह समझ रहे हैं कि कोई पढ़ेगा कि नहीं पढ़ेगा, इसकी फिक्र नहीं। पनामा शब्द तो दिखाई देगा। दस दफे, पचास दफे सिर्फ पनामा शब्द दिखाई पड़ेगा—वह दुकान में गया कि उसने कहा कि पनामा सिगरेट दे दो। वह सोच रहा है कि मैं ही सोच कर बोल रहा हूं। कोई सोचकर बोल नहीं रहा है। मजा यह है कि हमें साइंटिफिक प्रोसेस से कोई मामला नहीं है। फिल्में ऐसी बनवायें जो कि सारे मुल्क में दिखाई जा सके, जिनकी थीम, जिनके गीत मुल्क को पकड़ लें।

आज रामायण जिन्दा सिर्फ इसलिए है कि रामलीला चलती है, नहीं तो कभी की मर जाती। कोई किताब जिन्दा इतने दिन तक नहीं रह सकती है। दुनिया में कोई किताब इस तरह जिन्दा नहीं है, जिस तरह रामायण जिन्दा है। उसका ड्रामा बन गया, गांव-गांव में घुस गया। अब कोई वजह नहीं है कि रामायण के स्टेज का उपयोग क्यों न करें ? क्यों मुल्क भर में रामलीला की स्टेज पर आपका काम न हो ? कोई कठिनाई नहीं है, कोई वजह नहीं है कि सारे मुल्क के मन्दिर और मस्जिद, मठ आपके काम में क्यों न आ जाये ? क्योंकि वे सब मिटेंगे। उनमें कॉन्शस वर्क करने की जरूरत है कि कम्युनिज्म आयेगा तो सब पोंछ डालेगा। मुश्किल यह है कि आप मुझसे पूछ भी लेंगे, मुझसे रोज लोग पूछ लेते हैं, फिर बात खत्म हो जाती है। कठिनाई यह है कि कोई सोचता हो कि मैं यह सब करने जाऊंगा, कितनी मुश्किल है ये बातें !

बम्बई, दियांक १६ अप्रैल १९७०

१५. भौतिक समृद्धि : आध्यात्म का आधार

जो ठीक है और सच है वह मुझे कहना ही पड़ेगा। इसकी मुझे जरा भी परवाह नहीं। आखिर जो सत्य है, लोगों को उसके साथ आना पड़ेगा—चाहे वे आज दूर जाते हुए मालूम पड़ें। और लोग पास हैं इसलिए मैं असत्य नहीं बोल सकता। क्योंकि सच जब भी बोला जायेगा, तब भी प्राथमिक परिणाम उसका यही होगा कि लोग दूर भागेंगे। क्योंकि हजारों वर्षों की धारणा में वे पले हैं, उस पर चोट पड़ेगी। सत्य का हमेशा ही यही परिणाम हुआ है। सत्य हमेशा डिवास्टेटिंग है। एक अर्थ है कि वह जो हमारी धारणा है उसको तो तोड़ डालेगा। और अगर धारणा तोड़ने से हम बचना चाहें तो हम सत्य नहीं बोल सकते। जानकर मैं किसी को चोट नहीं पहुंचाना चाह रहा हूं। डेलिब्रेटलि मैं किसी को चोट नहीं पहुंचाना चाहता। लेकिन सत्य जितनी चोट पहुंचाता है उसमें मैं असमर्थ हूं; उतनी चोट पहुंचेगी। उसको बचा भी नहीं सकता हूं। फिर मैं कोई राजनीतिक नेता नहीं हूं कि मैं इसकी फिक्र करूं कि लोग मेरे पास आयें, कि मैं इसकी फिक्र करूं कि पब्लिक ओपिन्यिन क्या है ?

मैं इस चिन्ता में हूं कि लोकमानस सत्य के निकट पहुंचना चाहिए। मैं लोकमानस के अनुकूल बनूं, इसकी मुझे जरा भी चिन्ता नहीं। सत्य के अनुकूल लोकमानस बनाया जाये, इसकी मुझे चिन्ता है। और निश्चित ही बहुत-सी बातें मैं कह रहा हूं जो चोट पहुंचाने वाली हैं, आघात करने वाली और विध्वंसकारी हैं।

लेकिन असल में सच में कहा जाये तो पूरी बातें नहीं कह रहा हूं, जो कि और भी चोट करने वाली होंगी, जो कि और भी विध्वंसकारी होगी।

तो जैसे-जैसे लोगों को सुनने की भूमिका विकसित होती चली जायेगी कि मैं उन सारी चीजों को कहना चाहूंगा। वह तो प्रारम्भ है एक यात्रा का। अभी इसमें और बहुत कुछ कहने जैसा है, क्योंकि जीवन के सारे मसलों पर हमारी दृष्टि थोथी और झूठी है। तो मैं जीवन के प्रत्येक मसले पर जहां-जहां झूठ है, मैं कहना चाहूंगा। ओर न केवल कहना चाहूंगा, बल्कि अगर सम्भावना बन सकी और शक्ति इकट्ठी हो सकी तो उस चीज को बदलने की पूरी चेष्टा करूंगा।

जैसे कि सेक्स के बाबत अभी मैंने कहा। यह तो तीन वर्षों तक मैंने शुभ भूमिका बनाने की फिक्र की। कभी-कभी थोड़ा मैं कुछ बोलता रहा था—कभी ब्रह्मचर्य के संदर्भ में, कभी किसी और के संदर्भ में। लेकिन पूरी तरह बात नहीं कही थी। फिर मुझे लगा कि अब भूमिका बनी है, अब उस बात को कहा जा सकता है, वह मैंने कही। लेकिन अभी सेक्स पर बहुत कुछ कहने को है और वह जैसे भूमिका बनेगी, मैं कहूंगा। ऐसे ही शिक्षा पर, ऐसे ही परिवार पर, ऐसे ही आर्थिक व्यवस्था पर, ऐसे ही देश की राजनीति पर।

मुझे लगता ऐसा है कि हिन्दुस्तान में कोई तीन हजार वर्षों से जो लोग विचारक हुए, उनमें से किसी पर चोट करने के लिए कोई हिम्मत नहीं जुटा पाया। तो उसने ज्यादा से ज्यादा फिक्र यह की कि वह पुराने ढांचे में पुराने शब्दों का ही उपयोग करते, पुरानी मान्यताओं को ही स्वीकार करते, थोड़ा बहुत हेरफेर कर सकते तो करते। लेकिन सीधी चोट करने की हिम्मत नहीं जुटाई जा सकी और इसलिए हिन्दुस्तान में विज्ञान पैदा नहीं हुआ। क्योंकि साइंस तभी पैदा हो सकती है, जब हम अनन्य रूप से सत्य के प्रति समर्पित हों। हम इसकी फिक्र छोड़ दें कि क्या परिणाम होगा ?

जो सत्य है, नग्न सत्य, उसको स्वीकृत करने की हिम्मत से विज्ञान शुरू होता है नहीं तो फिर आदमी फिक्शन में ही जीता है। और हमारा मुल्क पुराण-कथाओं में जी रहा है, विज्ञान में नहीं। उसके चिन्तन का ढंग साइंटिफिक नहीं। और हिन्दुस्तान की यह तकलीफ है कि हम सब व्यक्तियों से बंधे हुए हैं। कोई महावीर से बंधा हुआ है, कोई कृष्ण से बंधा हुआ है, कोई गांधी से बंध गया है। और जो लोग भी व्यक्तियों से बंध जाते हैं उनकी सत्य के प्रति यात्रा बन्द हो जाती है। क्योंकि फिर वे सदा यह सोचते हैं कि इसने जो कहा है वही सत्य है, उससे अन्यथा सत्य नहीं हो सकता।

तो अभी तो मैं सिद्धान्तों पर चोट कर रहा हूं जो उतनी खतरनाक नहीं है। आने वाले दिनों में मैं व्यक्तियों पर भी चोट करूंगा। जो कि ज्यादा खतरनाक और डिवास्टेटिंग मालूम होगी। क्योंकि अगर मैं अहिंसा के सम्बन्ध में कुछ बात

करता हूं तो उतनी चोट नहीं पहुंचती है, अगर मैं यह कहूं कि महावीर ये गलत कहते हैं तो चोट और ज्यादा पहुंचने वाली है। क्योंकि व्यक्तियों से हमारे मोह ज्यादा हैं। फिर भी अब थोड़ी-थोड़ी चोट पहुंची है लेकिन उसके लिए तैयारी करनी पड़ेगी ताकि चोट पहुंचायी जा सके।

प्रश्न—अभी परसों आपने कहा कि हिटलर हिप्नोटाइज करता रहा। लेकिन जहां तक नेहरू का सम्बन्ध है, मैंने बीस वर्षों से एक रिपोर्टर की हैसियत से उन्हें देखा और सुना है। मैं यह नहीं सोचता कि वे लोगों को हिप्नोटाइज करने की कोशिश करते रहे ?

मैंने कहा जरूरी नहीं है। मैं जानकर यह कर रहा हूं। जानकर करना जरूरी नहीं है, लेकिन वह हो रहा है। और मजा यह है कि न केवल लोगों को हिप्नोटाइज कर रहे हैं, नेहरू खुद भी लोगों से हिप्नोटाइज होते हैं। अभी अच्युत पटवर्धन ने कहा, मैं यह बात कह रहा था तो उनको भी यह ख्याल आया और मुझसे आकर कहे कि नेहरू जी के साथ मैं मद्रास में था। उन्होंने दिन में कोई तीस मीटिंग अटेंड की थीं और वे सांझ को बिल्कुल ताजे मालूम होते थे। तो मैंने उनसे पूछा कि आप थके नहीं तीस मीटिंग के बाद ? तो उन्होंने कहा, कि एक मीटिंग में बोलने के बाद मुझे वह असर होता है जो एक व्हस्की के पेग से होता है। न केवल लोगों को हिप्नोटाइज कर रहे हैं वे, बल्कि इतनी आंखें हैं, उनको भी आखिर हिप्नोटाइज कर रही हैं और उनको भी सुख मिल रहा है इस बात से। हजारों आदमी, दस लाख आदमी अगर एक आदमी को आधा घण्टे तक देख रहे हैं तो लोग हिप्नोटाइज हो रहे हैं, तो ठीक ही है, लेकिन वह आदमी भी आखिर हिप्नोटाइज हो रहा है। और उसको मजा इसमें आ रहा है कि इतनी आंखों में जो केन्द्रित बन जाते हैं, वे खुद हिप्नोटाइज हो रहे हैं। व्हस्की का असर हो सकता है। नेहरू ने गलत नहीं कहा। तो यह जो मैं व्यक्तियों पर चोट करने की तैयारी करूंगा। क्योंकि जब तक उन पर चोट नहीं की जा सकती, इस मुल्क में कोई चिन्तन पैदा ही नहीं किया जा सकता।

प्रश्न—मुझे यह गलतफहमी हो रही है कि आप हिटलर और नेहरू की तुलना कर रहे हैं ?

नहीं, नहीं। कम्पेयर नहीं कर रहा हूं। लेकिन जहां तक हिप्नोटाइज करने का सवाल है, वे कम्पेयर किये जा सकते हैं। और किसी मामले में कम्पेयर नहीं कर रहा हूं। नेतागिरी ही उस बेसिस पर खड़ी हुई है। लीडरशिप जो है, वह भी उसी बेसिस पर खड़ी हुई है। लीडर होने का मतलब यही है कि जाने-अनजाने हिप्नोटाइज करना; नहीं तो आप लीडर बन नहीं सकते। और जिस दिन दुनिया में हिप्नोटीज्म के बाबत पूरी तरह जानकारी हो जायेगी, उस दिन लीडर की मौत हो जाने वाली है। नेता जिन्दा नहीं रह सकते। तो अब वे सतर्क

होकर उसके रास्ते खोज रहे हैं, जिनमें कि आपको कुछ भी पता न चले।

अभी मैंने पढ़ा कि एक एक्सपेरिमेन्ट वे अमरीका में करते हैं। अभी फिल्म के ऊपर एडवरटाइजमेन्ट करते हैं आपके सामने। तो सामने का आदमी सचेत हो गया है एडवरटाइजमेन्ट से, क्योंकि एडवरटाइजमेन्ट की जो हिप्नोसिस है, वह अमरीका में आज जाहिर हो गई कि एक-एक को। लक्स टायलेट साबुन को बार-बार रिपीट करने से आदमी हिप्नोटाइज हो जाता है। तो अब जनता को पता चल गया तो अब रेजिस्टेंस पैदा हो गया है। अब उसको इतने सूक्ष्म रूप से करने लगे कि उसका पता न चले तो फिर नयी अजीब बात निकाली उन्होंने। वह यह है कि फिल्म चल रही है, चलती हुई फिल्म के बीच में सेकेण्ड के हजारवें हिस्से में लक्स टायलेट की बीच में से स्मृति निकल जायेगी, वह किसी को दिखायी नहीं पड़ेगी। फिल्म चल रही है, बीच में 'लक्स टायलेट सोप'! आपको दिखायी नहीं पड़ेगा आंख से। तो इस पर एक्सपेरिमेंट कर रहे हैं। यह परिणाम हुआ कि वह दिखायी तो नहीं पड़ रहा है आंख से, लेकिन अन्कॉन्शस माइंड उससे इम्प्रेस हो जाता है। और अगर वह एक फिल्म में तीस बार दोहरा दिया जाये तो आपको पता भी न चलेगा कि लक्स टायलेट साबुन, अच्छा साबुन है, लेकिन वह आपका माइंड पकड़ लेगा कहीं, और माइंड काम करेगा। तो जैसे ही हिप्नोटिज्म की पूरी जानकारी हो जायेगी, लीडरशिप को नये रास्ते खोजने जरूरी हो जायेंगे। उनकी लीडरशिप हमेशा से हिप्नोटाइज करती रही है—चाहे वे जानकर करें, चाहे वे जानकर न करें।

तीन तरह के लीडर हैं। जो लीडर जन्मजात हिप्नोटाइजर हैं, उनको कभी पता नहीं रहता कि हम हिप्नोटाइज कर रहे हैं। वह तो उनके जीवन का हिस्सा है, वह चलता चला जाता है। दूसरे वे हैं, जो व्यवस्था से लीडरशिप पैदा करते हैं। उनको पूरा काम कॉन्शस होता है, क्या करना है, क्या बोलना है, कैसा कपड़ा पहनना है। उनके पास हार्ट इम्प्रेशंस की पूरी व्यवस्था है। तीसरे वे हैं, जिन्हें जबरदस्ती लीडर बना दिया जाता है। उनको न पता होता, न तो उनको कोई सहज भाव होता है। वे बेचारे सिर्फ थोप दिये गये लीडर हैं। ये तीन तरह के लीडर हैं। इसमें हिटलर दूसरे तरह का लीडर है, जो पूरी की पूरी व्यवस्था से लीडरशिप पर जा रहा है। स्टैलिन दूसरे तरह का लीडर है, जो पूरी व्यवस्था से है। नेहरू पहले तरह के लीडर हैं। कोई व्यवस्था नहीं है, लेकिन हिप्नोसिस पर है, और वह जन्मजात है, वह व्यक्तित्व का हिस्सा है।

प्रश्न—दो लाख व्यक्तियों को हिप्नोटाइज करने के बजाय यदि नेहरू देश के दो दर्जन रिपोर्टरों को हिप्नोटाइज कर लेते तो उनके माध्यम से वे देश की जनता तक बड़ी आसानी से पहुंच जाते।

उनको नहीं हिप्नोटाइज किया जा सकता है। सच तो यह है कि डजन कॉर-

स्पॉन्डेन्ट को हिप्नोटाइज करने के लिए पहले दस लाख लोगों को हिप्नोटाइज करना जरूरी है। वह उनको हिप्नोटाइज करने का हिस्सा है। आप मुझसे प्रभावित होंगे, जब दस लाख आदमी आप मुझसे प्रभावित देखेंगे। तब कॉरसपॉन्डेन्ट प्रभावित होता है। कॉरसपॉन्डेन्ट तो प्रभावित होता है दस लाख लोगों की हिप्नोसिस को देखकर। तब वह सोचता है कि यह आदमी अर्थ का है, इसकी बात अर्थ की है। अगर मेरे पास एक आदमी है तो आप मुझसे पूछने नहीं आयेंगे। मेरा मतलब नहीं है, मैं इंडिविज्युअल नहीं हूं। मास-हिप्नोसिस की सम्भावना पूरी है। और इंडिविज्युअली हिप्नोटाइज करने में देर लगती है, मास-हिप्नोसिस बहुत आसान है। एक-एक आदमी को हिप्नोटाइज करने में एक-एक आदमी रेजिस्ट करता है। मास-हिप्नोसिस से रेजिस्टेन्स नहीं है किसी का; और आपके आस-पास लोग हिप्नोटाइज होंगे तो आपको पता ही नहीं चलता कि आप कब हिप्नोटाइज हो गये हैं। तो एक इंडिविज्युअल को हिप्नोटाइज करना कठिन है, क्राउड को हिप्नोटाइज करना हमेशा आसान है, क्योंकि क्राउड के पास रेजिस्टिव फोर्स नहीं रह जाता। इसलिए जितने लीडर हैं वे सब क्राउड लीडर हैं। पर्सनल रिलेशनशिप में हिप्नोटाइज करना कठिन बात है क्योंकि आप पूरे इम्प्रेस्ड हैं।

मैं यह जानकर हैरान हुआ हूं, अगर मैं आपसे बात कर रहा हूं और आपने प्रश्न पूछा तो उस प्रश्न के उत्तर में आपको प्रभावित करना ज्यादा कठिन है। शरद बाबू बैठे सुन रहे हैं। लोगों ने प्रश्न पूछा, वे सिर्फ सुन रहे हैं, तो उनको प्रभावित करना ज्यादा आसान है, क्योंकि वह रेजिस्टेन्स नहीं कर रहे हैं। तो भीड़ हमेशा जल्दी हिप्नोटाइज होती है और भीड़ को हिप्नोटाइज देखकर जो आदमी उसमें आता है इंडिविज्युअल, वह हिप्नोटाइज होता है। उसको समझ में नहीं आता कि जहां दस लाख लोगों को उसने देखा, वह एकदम से जो दस लाख लोगों का साइकिक एडमास्फीअर है, उसमें वह डूब जाता है। तो चाहे कोई जानता हो या न जानता हो, आदमी को हिप्नोटाइज किया जा रहा है। और अगर हम मनुष्य को आध्यात्मिक रूप से सबल बनाना चाहते हैं तो उसे सचेत करना जरूरी है कि वह हिप्नोटाइज न हो। उसको इतना सचेत करना जरूरी है कि वह सम्मोहित होकर प्रभावित न हो। प्रभावित होना तो बिल्कुल दूसरी बात है, वह बहुत रेशनल बात है। आपको मैं समझाऊं, तर्क करूं और विचार करूं और अलोन छोड़ दूं, फिर आपकी मर्जी, तो आपको मैं हिप्नोटाइज नहीं कर रहा। लेकिन हिप्नोसिस एक तरह की ट्रिक है क्योंकि मैं आपको समझाता हूं तो माइंड आरगू करता है।

यह एक बल्ब लगा हुआ है रास्ते पर, और पूरे वक्त जल रहा है, बुझ रहा है, आपको एडवरटाइज किया जा रहा है। पहले यह तो पता था। पहले आप देखते थे, एडवरटाइजमेंट स्थिर था। वह बल्ब जलता-बुझता नहीं था। अभी वह

हिप्नोटिस्ट ने बताया है कि उसको जलाने-बुझाने से हिप्नोटिज्म ज्यादा होगी, क्योंकि वह रिपीट हो रहा है, वैसे रिपीट नहीं होता।

लिखा है 'अम्मा' तो आपने पढ़ लिया। यह तो खत्म हो गयी बात, लेकिन फिर जला, फिर बुझा तो जितनी बार वह जला बुझा, उतनी बार आपको कहना पड़ा 'अम्मा'। वह तो मजबूरी हो गयी। वह तो हिप्नोटिस्ट बता रहा है कि उसको जलाओ, बुझाओ जल्दी-जल्दी, ताकि वह आदमी निकलते-निकलते बीस दफा पढ़े कि 'अम्मा; अम्मा'। तो बीस दफा पढ़ने से रिपीट होगा तो उसके भीतर घुस जायेगा।

अब यह बदमाशी है। यह आदमी को नुकसान पहुंचायेगी। उससे हम कुछ भी कर सकते हैं। इसका मतलब यह है कि आज, तो ब्रेनवाश, माइंडवॉश पर रूस और चीन में इतना काम हो रहा है, कि आप यह समझ लीजिये कि आदमी की स्वतन्त्रता मुश्किल से पचास वर्ष बचने वाली है। अगर आदमी नहीं समझ गया तो, बिल्कुल पचास वर्ष से ज्यादा बचने वाली नहीं है आदमी की स्वतन्त्रता। अभी हम यहां बैठकर इतनी बात कर रहे हैं, इसलिए सम्भावना रह जाने वाली है, क्योंकि आपके माइंड को कंट्रोल भीतर से किया जाता है बिल्कुल ही, और आपको पता भी नहीं चले कि आप जो बोल रहे हैं, वह आपसे बुलवाया जा रहा है। जो आप कह रहे हैं, वह आपसे कहलवाया जा रहा है। और अभी तो साइको-एनलिसिस—और यह सब का काम जितना बढ़ गया, वह उतना घबराने वाला है—कि आपको माइंड में इलेक्ट्रोड लगाकर रखा जा सकता है। और ट्रांस-मीटर होगा मेरे हाथ में, और मैं दुनिया में कहीं रहूं और वहां से कहूं कि आप इस वक्त सो जाइये, तो आपको सोना पड़ेगा उसी वक्त। तो माइंड में आपके इलो-क्ट्रोड रख दिया गया है, वह बिल्कुल ट्रांसमीशन का काम कर रहा है, रेडियो जैसा। वे कहेंगे नींद आ रही है, नींद आ रही है! इससे इस बात की सम्भावना बन गयी है कि सारी मनुष्यता को कण्ट्रोल किया जा सकता है। इतना-सा आदमी कुछ भी कंट्रोल कर सकता है और कुछ भी करवा सकता है। और इतना काम उस तरफ हो रहा है कि अगर हम लोगों को सचेत नहीं करते हैं तो आने वाले पचास वर्षों में मनुष्यता की सारी स्वतन्त्रता खत्म हो जाने वाली है, कोई स्वतन्त्रता नहीं रह जायेगी।

अभी पिछले कोरियन वॉर में जिन अमरीकन कैदियों को चीन ने पकड़ रखा था, उनका पूरा माइंड वॉश करके भेजा। नौ महीने में वे माइंड वॉश कर देते हैं। नौ महीने बाद वे अमरीका पहुंचे तो वे कम्युनिज्म की प्रशंसा करते हुए पहुंचे और अमरीका को गाली देते हुए पहुंचे कि कैपिटलिज्म सब खराब है। और वे यह कहते हुए पहुंचे कि मेरे साथ बहुत अच्छा सलूक किया गया है। उनके साथ बहुत बुरा सलूक किया जा रहा है। रूस में जितनी भी ट्रायल्स हुई पिछले चालीस

वर्षों में, सारी ट्रायल्स में जिस आदमी को सजा दी, उससे कन्फेस करवा लिया कि हमने यह पाप किया है। एक भी आदमी ने रेजिस्ट नहीं किया। और अच्छे-अच्छे लोगों से, जो कि बड़ी कोटि के विचारक थे, उनसे अदालत में कहलवा लिया कि हमने यह किया, यह पाप किया ! मैंने स्टैलिन को मारने की कोशिश की ! और न तो उजरतदारी की जरूरत रही कुछ। और सिर्फ माइंडवॉश किया उन विचारों का। उनको छः छः चार-चार महीने बन्द रखकर उनके मन में रिपीटिडली यह भाव डलवाया गया कि तुमने स्टैलिन की हत्या की कोशिश की। क्योंकि एक आदमी को सात दिन जगाया जाये, सोने न दिया जाये और सात दिन हर हालत जगाये रखा जाये और सजेस्ट किया जाये कि तुमने स्टैलिन को मारने की कोशिश की। दो-तीन दिन तक तो वह कहेगा कि नहीं, मैंने तो नहीं कोशिश की। फिर नींद की कमी, और शक पैदा होगा कि कहीं मैंने की तो नहीं, इतने लोग कह रहे हैं। और सात दिन में वह आकर कहने लगेंगे कि मैंने कोशिश की है स्टैलिन को मारने की। अदालत में खड़ा करके उससे कन्फेस करवा लिया कि मैंने स्टैलिन को मारने की कोशिश की। तो मेरी चेष्टा यह है कि लीडरशिप अब खतरनाक अवस्था पर आदमी को ले जायेगी। तो उसे हिप्नोटिक स्थिति के प्रति सचेत करना है।

जैसा आप कहते हैं, मेरी बातें उस वक्त कई भाव पैदा कर देती हैं आपके मन में, लेकिन अभी कोई रास्ता नहीं है, जब कि वह भाव पैदा न करूं। वह भाव पैदा होगा तो आप पूछेंगे, सवाल उठेंगे और मैं तैयार हूं सवाल-जवाब के लिए। मैं तो पूरे मुल्क को एक डायलॉग में डाल देना चाहता हूं दस साल के भीतर। तो जितने प्रश्न उठेंगे, बातें साफ हो सकेंगी। यह तो स्वाभाविक है कि मुझे सुनकर पच्चीस प्रश्न आपको उठें। जरूर मैं चाहता हूं कि उठने चाहिए। सिर्फ जो जड़बुद्धि हैं उनको नहीं उठेगा, नहीं तो जो विचारशील हैं, उनको उठना चाहिए।

प्रश्न—आप मैटिरिअल डेव्लपमेंट चाहते हैं या फिलॉसफिकल डेव्लपमेंट ?

मेरी दृष्टि में मैटिरिअल डेव्लपमेंट जो है, वह फिलॉसफिकल डेव्लपमेंट की पहली सीढ़ी है। कोई भी देश, कोई भी समाज जब तक आर्थिक, भौतिक समृद्धि से भरा हुआ न हो, तब तक दार्शनिक विकास नहीं हो सकता। और नहीं हो सकता है, क्योंकि दार्शनिक विकास के लिए यह एक बुनियादी जरूरत है कि भौतिक रूप से समृद्ध हो। जब आदमी की रोटी की, कपड़े की और छप्पर की चिन्ता पूरी हो जाती है, तब पहली दफा स्प्रीच्युअलटि की इच्छा पैदा होती है। तब वह सोचता है कि अब क्या ? फिर ? तो जिसको रोटी नहीं, कपड़ा नहीं, मकान नहीं मिल रहा है, उसको आप कह रहे हैं कि आत्मा-परमात्मा का चिन्तन करो, तो आप निहायत फिजूल बात कर रहे हैं हिन्दुस्तान में जिन दिनों धार्मिक चिन्तन

किया गया है और फिलॉसफी का डेव्लपमेंट हुआ, बुद्ध या महावीर या कृष्ण—ये सारे के सारे लोग समृद्ध हिन्दुस्तान की पैदाइश हैं। ये समृद्धि देखी है मुल्क ने। लोग खुशहाल थे। और इसमें अत्यन्त बड़े मजे की बात है कि ये खुशहाल इसलिए थे कि सब राजपुत्रों के लड़के थे। ये सब शाही घरों के लड़के हैं। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम राजाओं के लड़के हैं। जहां लक्जरी पूरी होती है जिन्दगी की, वहां सब सीमायें तृप्त हो जाती हैं, वहां आदमी की जो इनक्वायरी है, वह ऊपर उठती है। और वह पूछता है जो पहले पूछ ही नहीं सकता था।

तो मेरी दृष्टि में आने वाले दिनों में फिलॉसफिकल जो भी सम्भावनाएं हैं वे रूस और अमरीका में फलित हो सकती हैं, हिन्दुस्तान में नहीं। तो मेरी दृष्टि में—जैसा अब तक समझा जाता रहा है—रिलिजस या फिलॉसफिक या स्प्रीच्युअल डेव्लपमेंट और मैटिरिअल डेव्लपमेंट विरोधी बातें हैं, ऐसा मैं नहीं मानता। मैं मानता हूं, मैटिरिअल डेव्लपमेंट नेसेसरी डेव्लपमेंट है स्प्रीचुअल डेव्लपमेंट के लिए।

कैसे यह हिन्दुस्तान में आयेगा ?

दो-तीन बातें मुझे दिखायी पड़ती हैं—एक तो हिन्दुस्तान की पूरी चिन्तना बदलनी पड़ेगी इस सम्बन्ध में। समृद्धि का विरोधी है हिन्दुस्तान और गरीबी का पक्षपाती है ! यह अत्यन्त मूढ़तापूर्ण दृष्टि है। तो पहले तो पूरे मुल्क की यह दृष्टि हमें बदलनी पड़ेगी कि समृद्धि कोई अशुभ बात नहीं है, बल्कि समृद्धि होगी तो ही हम धार्मिक हो सकेंगे। अभी क्यों हमारे मन में आ रहा है कि धार्मिक होने के लिये दरिद्र होना जरूरी है ? यह बिल्कुल पागलपन की बात है। तो एक तो हमें मुल्क के विचार से यह बात निकाल देनी है कि गरीबी कोई पूजा की चीज है, या गरीबी होना कोई बहुत अच्छी बात है, कि एक आदमी लंगोटी लगाकर खड़ा हो जाता है तो कोई बहुत महान् कार्य कर रहा है। तो अभी एक फिलॉसफी ऑफ पावर्टी, दरिद्रता का दर्शन हमारे चित्त में बैठा हुआ है। कम से कम में जीऊं, कम से कम आवश्यकता। छोटा से छोटा मकान हुआ, दाल-रोटी खा ली और अपना एक चादर ओढ़ लिया और गुजार लिया। जितनी कम जरूरत हो सकती है, उतनी कम जरूरत है। कम जरूरत जिन लोगों के ख्याल में बहुत महत्वपूर्ण है, वे देश को दरिद्र बना देंगे। मैं कहता हूं जरूरत बढ़नी चाहिए। जरूरत इतनी बढ़ाओ कि तुम्हें जरूरत बढ़ाने की वजह से नये-नये मार्ग खोजने पड़ें। उनको पूरा करने के लिए, नयी दिशायें खोजनी पड़ें तो समृद्धि की तरफ गति शुरू होती है।

तो पहले तो एक समृद्धि का दर्शन। वह दरिद्रता का दर्शन हटाने की जरूरत है। पहले तो मेंटली तैयारी करनी पड़े, तब मैटिरिअली तैयारी होती है। दूसरी बात पहले तो मेंटली तैयारी बहुत जरूरी है। अभी तो माइंड से हम गरीब हैं

और गरीब रहने को हम तत्पर हैं। बल्कि सच यह है कि जो अमीर हैं, जिनसे हम भीख मांग रहे हैं, उनको हम गाली दे रहे हैं कि अमीरी तो भौतिकवाद है, मैटिरिअलिज्म है। बड़े मजे की बात है कि अमरीका से हम भीख मांगकर जी रहे हैं और हम अमरीका को गाली दिये जा रहे हैं कि तुम भौतिकवादी हो, तुम मैटिरिअलिस्ट हो, तुम फलां हो, ढिकां हो, मैं आध्यात्मिक हूं। और तुम्हारा अध्यात्म यह है कि तुम्हें भौतिकवादी से भीख मांगनी पड़ रही है। तो पहले तो हमारे मन में यह साफ हो जानी चाहिए कि समृद्धि लक्ष्य है। एक-एक व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में, आने वाली पीढ़ी और विद्यार्थियों के मन में समृद्धि का विचार गहराई से डालने की जरूरत है। ताकि हजारों सालों की दरिद्रता का पागलपन खत्म हो जाये।

दूसरी बात, कोई भी मुल्क तभी समृद्ध हो सकता है, जब टेक्नालॉजी में विकसित हो। और हमारा मुल्क टेक्नालॉजी में विकसित नहीं रहा, बल्कि हम टेक्नालॉजी के दुश्मन रहे। और गांधी ने और मुसीबत खड़ी कर दी अभी पीछे। वे भी टेक्नालॉजी के दुश्मन थे। वह विनोबा भी टेक्नालॉजी के दुश्मन हैं। तो इस मुल्क में टेक्नालॉजी के खिलाफ एक हवा रही है वह यह, कि अगर पैदल चलने से काम चलता है तो कार में जाने की क्या जरूरत है? हवाई जहाज की जरूरत क्या है? बड़ी मशीन की जरूरत क्या है? चर्खे से काम चला लो, तकली कात लो। अब अगर तकली और चर्खे कातने को मिलें तो हम कभी समृद्ध नहीं हो सकते हैं। सारे देशों की समृद्धि मूलतः नब्बे प्रतिशत टेक्नालॉजी का फल है। जो सम्पत्ति पैदा होती है वह सौ में से नब्बे प्रतिशत टेक्नालॉजी का फल है। तो हिन्दुस्तान के माइंड को टेक्नालॉजिकल बनाने की जरूरत है। यह बेवकूफी, खादी की, चर्खे की, तकली की—आग लगा देने की जरूरत है। यह ग्रामोद्योग की बकवास बन्द करने की जरूरत है। बड़े उद्योग, केन्द्रित उद्योग। यह विकेन्द्रीकरण की बात घातक है कि डि-सेंट्रलाइज करो, क्योंकि जितना डि-सेंट्रलाइज्ड होगी, एकानॉमी, उतनी ही गरीब होगी।

प्रश्न—इंडस्ट्रियल डेव्लपमेंट हम कैसे कर सकते हैं, क्योंकि इसके लिए फॉरेन एक्सचेंज, रॉ-मैटिरिअल आदि की बड़ी समस्यायें हैं।

उसकी बात मैं आपसे कहता हूं। मेरे लिए बड़ा सवाल तो यह है कि—यह तो दूसरा सवाल है—बड़ा सवाल यह है कि हमारा माइंड टेक्नालॉजी के लिए राजी नहीं है। माइंड राजी हो तो रूस ने कहां से किया, किससे फाइनेंस किया है पिछले पचास सालों में? और उन्नीस सौ सतरह की क्रांति के बाद रूस की हालत हमसे बदतर थी, हमसे बेहतर नहीं थी। रूस को तो कोई सहायता नहीं थी दूसरे मुल्कों से, क्योंकि दूसरे मुल्क तो नष्ट करने को तैयार थे रूस को। लेकिन पचास साल में वह टेक्नालॉजिकली अमरीका से भी किन्हीं मामले में आगे

हो गया। कैसे?

प्रश्न—रूस और अमरीका की तुलना कैसे कर सकते हैं?

मेरी मान्यता यह है कि जो डेमोक्रेसी लोगों को काम करने के लिए कम्पेल न कर सके, वह निकम्मी डेमोक्रेसी है। असल में हम शब्दों से इतने ज्यादा परेशान हैं, यह मामला कुछ ऐसा हो गया है कि डेमोक्रेसी अगर ठीक से समझी जाये तो वह भी एक समृद्ध समाज की जीवन व्यवस्था है। एक दरिद्र समाज डेमोक्रेसी होने की बात करता है, यह वैसा ही है, जैसे एक दरिद्र आदमी घर में हवाई जहाज रखने की बात करता है। डेमोक्रेसी जो है, वह पूर्ण शिक्षित, समृद्ध, सुसम्पन्न समाज की व्यवस्था है। जब तक समाज उतना सुसम्पन्न, सुशिक्षित नहीं हो जाता, तब तक डेमोक्रेसी का मतलब सिर्फ इतना ही होगा कि यह सदय डिक्टेटरशिप है, बेनिवोलेंट डिक्टेटरशिप है। उसका यही मतलब होगा। बिल्कुल ही यही डेमोक्रेसी नुकसान कर रही है। बीस साल में मुल्क को नुकसान पहुंचा है, भारी नुकसान पहुंचा है। आज तो जरूरत है कि तीस चालीस साल तक मुल्क को एक मिलिटरी कैम्प की शक्ल में खड़ा करके मेहनत करें। तब तो हम समृद्ध हो सकते हैं, अन्यथा हम समृद्ध नहीं हो सकते। इस तरह समृद्धि नहीं आने वाली है। बल्कि बीस साल का फल यह हुआ है कि अंग्रेज के समय में हमारी जितनी एफिसियेंसी है, वह बहुत नीचे गिर गयी। काम करने की क्षमता भी नीचे गिर गयी, काम करने का मन भी नीचे गिर गया। कोई काम करना नहीं चाहता। और एक ख्याल पैदा हो गया।

रूस में क्रांति हुई तो वहां एक मजाक चला। जिस दिन उन्नीस सौ सतरह में पहले दिन क्रांति हुई अक्तूबर में और मास्को क्रांतिकारियों के हाथ में चला गया तो एक मोटी औरत बीच रास्ते पर चलती हुई पायी गयी। पुलिस के आदमी ने कहा, तुम यह कहां चली? बीच रास्ता चलने का है? उसने कहा, अब हम स्वतन्त्र हो गये हैं। अब हमें यह कोई नहीं कह सकता कि बायें चलो कि दायें चलो। स्वतन्त्रता का मतलब और लोकतन्त्र का मतलब ऐसा ही हम पकड़े हुए हैं इधर बीस सालों में। नहीं, स्वतन्त्रता का मतलब है कि दायित्व और बढ़ गया। लोकतन्त्र का मतलब है कि रिस्पॉन्सिबिलिटी और गहरी हो गयी। एक बेनिवोलेंट डिक्टेटरशिप से ही लोकतन्त्र आगे बढ़ेगा और डेमोक्रेसी बन सकती है। तो हिन्दुस्तान में अभी पूर्ण लोकतन्त्र की बात ही करनी फिजूल है।

प्रश्न—तो आप कब कहने वाले हैं? डेमोक्रेसी है तो अच्छा है।

जब भी कहिये। मैं तो हमेशा तैयार हूं। बल्कि ऐसा मुश्किल हो गया है कि मुझे इतनी बातों के बारे में कहना है, लेकिन न मंच है, न मौका है। तो यह तो जो लोग मंच बना लेते हैं उनको श्रेय है। मंच बना लेते हैं इसलिए वह बात मुझे कहनी पड़ रही है। मैं मित्रों से कह रहा हूं कि आने वाले दिनों में बम्बई में

चार दिन इस सम्बन्ध में चार लेक्चर रखें।

तो जरूरी है मुझे इतनी नुकसानदायक लग रही है डेमोक्रेसी की बातचीत, इतनी खतरनाक कि हमको नष्ट किये दे रही है। अभी मुल्क को कोई जरूरत नहीं है डेमोक्रेसी की।

प्रश्न—यदि आप खुली मीटिंग में इस पर बोलेंगे तो इससे विवाद बढ़ेगा।

हां, वह तो कहूंगा, लेकिन मैं उसके लिए लड़ने को तैयार हूं। बात की जा सकती है तो मैं तो एक बेनिवोलेन्ट डिक्टेटरशिप चाहता हूं, एक सदय अधिनायक-शाही मुल्क में होनी चाहिए। और टेक्नालॉजी की बात हमें फोर्स करनी पड़ेगी, क्योंकि मुल्क का इनरशिया पांच हजार साल पुराना है। बिना फोर्स किये कुछ कर नहीं सकते। अगर आप सोचते हैं कि बस हम कह देंगे कि बर्थ-कंट्रोल कर लो तो बर्थ-कंट्रोल हो जायेगा, यह हद बेवकूफी की बात है। इधर तो जब तक बंदूक सामने न होगी, तब तक बर्थ-कंट्रोल होने वाला नहीं है। तो वह जो चरखा चलाने वाला आदमी है, वह एकदम से ऑटोमेटिक मशीन पर पहुंच नहीं सकता। उसका माइंड कैसे पहुंच जायेगा? उस तक पहुंचाना पड़ेगा और फोर्स करना पड़ेगा। एक पन्द्रह बीस साल के लिए सारे मुल्क को एक सैन्य शिविर की तरह व्यवहार करना पड़ेगा तो हम उस हालत में पहुंचेंगे कि डेमोक्रेसी फिर हम ला सकें तो तकनीक पर मेरा जोर है दूसरा। और तकनीक को बढ़ाने के लिए हमें मुल्क पर दबाव डालना पड़ेगा, ऐसे काम चलने वाला नहीं है।

प्रश्न—क्या आप इसके लिए युवक संगठन बना रहे हैं?

हां, मैं युवक संगठन बना रहा हूं इस बात के लिए, और प्रयत्न करूंगा। तीसरी बात सारे जगत् में जो सम्पत्ति आयी है, वह सम्पत्ति जैसा लोग सोचते हैं कि कहीं रखी नहीं है। सम्पत्ति कहीं रखी हुई नहीं है, वह तो क्रियेशन है। कैपिटल हैज टु बि क्रियेटेड। कहीं है नहीं कि हम गये और हमने उसे उठाकर कब्जा कर लिया। वह तो क्रियेशन है। उसके क्रियेशन के लिए मुल्क की जिन्दगी की सारी जीवनचर्या बदलनी पड़ेगी। यह जीवनचर्या उसको क्रियेट करने वाली नहीं है। यह जो हमारा ढंग है अभी उठने, बैठने, चलने, सोने का, उससे वह पैदा होने वाली नहीं है हमें पूरी की पूरी जीवनचर्या मुल्क की बदलने के लिए। तो खासकर होस्टल्स और विद्यार्थियों में मैं काम करना चाहता हूं। इसलिए कि लोगों को इस योग्य बना सकूं, कि यह समझा सकूं कि कितनी देर में हम कितना पैदा कर सकते हैं और कैसे कर सकते हैं और कितने सहयोग से कर सकते हैं। कितने लोगों की जरूरत पड़ेगी, कितनी मशीन की जरूरत पड़ेगी और हम कितने कम समय में कितना ज्यादा पैदा कर सकते हैं। एक ही ध्यान रखना है—कम शक्ति में, कम समय में, कम श्रम से अधिकतम कैसे पैदा किया जा सकता है।

प्रश्न—तो फिर आप कम्युनिज्म का समर्थन करते हैं?

एक तरह का कम्युनिज्म तो मुल्क में लाना ही पड़ेगा।

प्रश्न—यानी कम्यून?

हां, कम्यून। बिल्कुल ही ठीक है। कम्युनिज्म की जरूरत पड़ेगी। मैं इसके बाबत विचार करता हूं। जरा एक हवा पैदा हो तो मैं कुछ ग्रुप पूरे मुल्क में छोटे-छोटे कम्यून बनाऊं जिनकी सोशल लिविंग हो। एक छोटा-सा गांव हो, जिसमें पूरा का पूरा सोशल लिविंग हो। बच्चे भी सामूहिक रूप से पाले जायें, सामूहिक रूप से शिक्षित हों, सारे लोग सामूहिक रूप से फार्मों में काम करें और टेक्नालॉजी पर ज्यादा से ज्यादा जोर दें और आदमी के श्रम को कम से कम उपयोग में लायें। जितना आदमी का श्रम बचता है, उतना श्रम इंटलेक्ट में ट्रांसफॉर्म होता है। मेरी अपनी समझ यह है इस मुल्क में इंटलेक्ट विकसित नहीं हो सकी, क्योंकि हम आदमी को श्रम से मुक्त नहीं कर सके। श्रम से मुक्त होने पर ही उसकी शक्ति इंटेलिजेंस में विकसित होनी शुरू होती है। इंटेलिजेंस उन समाजों में विकसित होती है, जहां लक्जरी पैदा होती है।

प्रश्न—रूस में दबाव है।

इंडिविज्युअल है कहां? आपको यह सिर्फ ख्याल है। है कहां? कहीं हो, तो आये। इंडिविज्युअल है कहां? लेकिन इंडिविज्युअल है नहीं। अभी भी नहीं है। आपको भ्रम है कि आपके कम्पलशन के कारण नहीं आ रहा है। आपकी पत्नी आपको खींच रही है आपके पिता आपको खींच रहे हैं, स्टेट खींच रही है, समाज खींच रहा है, बॉस खींच रहा है। आप सिर्फ भ्रम में जी रहे हैं कि आप कम्पैल्ड नहीं हैं। आप एक-एक इंच कम्पैल्ड हैं। सच तो यह है कि जितना सामूहिक यूनिट होगा और जितना मशीन सेंटर उत्पादन हो जायेगा, उतना ही व्यक्ति को मुक्त किया जा सकता है। इस पर तो लम्बी बात करनी पड़ेगी और इनकी बात रुक जायेगी, जो कर रहा था।

प्रश्न—आप किससे प्रभावित हैं—स्वामी विवेकानन्द, भगवान बुद्ध, महावीर, रामकृष्ण परमहंस? इनमें किससे प्रभावित हैं?

किसी व्यक्ति से मैं प्रभावित नहीं हूं, लेकिन कुछ-कुछ सबसे प्रभावित हूं, जो मुझे प्रीतिकर रही। कुछ चीज मार्क्स में भी उतनी प्रीतिकर है, जितनी बुद्ध में। कुछ मुझे नीत्से में भी प्रीतिकर है और गांधी में भी। तो मेरे सामने कोई एक व्यक्ति मुझे प्रीतिकर नहीं है। सारे जगत् की जो देन है, उसमें जो भी मुझे श्रेष्ठतर लगता है, चाहे वह किसी से आता हो, मुझे अंगीकार है सदा। तो मेरे साथ बड़ी कठिनाई हो गयी है। कभी मैं मार्क्स की प्रशंसा में बोलता हूं, कभी नीत्से की प्रशंसा में भी बोलता हूं, कभी मैं गांधी के खिलाफ भी बोलता हूं, कभी बुद्ध की प्रशंसा जो करता हूं और कभी बुद्ध के खिलाफ भी बोलता हूं। कभी रामकृष्ण की प्रशंसा करता हूं, कभी खिलाफ। तो लोगों को बहुत मुश्किल हो

गयी। मैं किसी व्यक्ति के पक्ष में नहीं हूं। मुझे जो ठीक दिखायी पड़ता है, वह जिस व्यक्ति में भी दिखायी पड़ता है, मैं उतनी देर तक उसका प्रशंसक भी हूं।

प्रश्न—क्या आप किसी के व्यक्तित्व से प्रभावित हैं?

नहीं, जरा भी नहीं। मुझे तो सारा हेरिटेज—पूरी मनुष्यता की ही फिक्र है। उस पूरे हेरिटेज से डिराइव करना है जो कुछ करना है। उसके लिए मन में जरा भी भाव नहीं जाता कि महात्मा हैं या क्राइस्ट हैं। सारी दुनिया में जो भी मनुष्य ने आज तक सोचा है, उसकी जो भी क्रीम है, वह सब मुझे अंगीकार है। वह जो सब श्रेष्ठतर है, सब स्वीकार है। वह चाहे एक ऐसे आदमी ने कहा हो, जो वेश्यागामी हो, शराब पीता हो, इसकी मुझे फिक्र नहीं। वह अगर सत्य है तो मुझे अंगीकार है। और चाहे वह एक ऐसे आदमी ने कहा हो, जैसे वह शराब नहीं पीता है, और ब्रह्मचारी है और दिन-रात भजन-कीर्तन करता है, लेकिन बेवकूफी की बात कहे तो वह बेवकूफी की बात है। उसमें मैं फर्क नहीं करता। तो सारी मनुष्यता का आज तक का जो अनुभव है, उस सारे अनुभव से मुझे प्रेम है। और उसमें जो भी श्रेष्ठतर है उसे मैं हमेशा से स्वीकार करता हूं, लेकिन मेरे मन में किसी व्यक्ति का कोई स्थान नहीं है।

प्रश्न—देश के सामने बहुत बड़ी-बड़ी समस्याएं हैं, जैसे इम्पोर्ट नहीं है, रा-मैटिरिअल नहीं है, आदि आदि। तो यदि चरखा दे दिया एक-एक आदमी को, तो उससे वे चार आना रोज तो कमा ही लेंगे?

असल बात यह है कि जो मैंने तीन बातें कहीं, जब तक वे नहीं हो जातीं, और आपको फॉरिन कैपिटल भी मिल जाये तो भी आप इंडस्ट्रियलाइज्ड नहीं कर पायेंगे। माइंड का मेकप हमारा इंडस्ट्रियल नहीं है। वह क्रान्ति नहीं हो सकती, जो औद्योगिक क्रान्ति पश्चिम में हुई। उस क्रांति के पीछे जो रिनासां का युग बीता, उसने सारे माइंड बदल दिये लोगों के। वैसा कोई रिनासां भारत में कभी हुआ नहीं। और बड़ी इंडस्ट्रियां आप खड़ी कर दें, वह उनसे चलने वाला नहीं है। कैपिटल का सवाल नहीं है, मेरे लिए सारा सवाल माइंड का है। एक बार माइंड तैयार हो तो। जिन मुल्कों में, योरोप में इंडस्ट्री बनीं, वे कहां से फॉरिन कैपिटल लाये थे? आज से डेढ़ सौ साल पहले, वहां कहां की इंडस्ट्री थी? हम समझ लें कि हम उसी हालत में हैं। मैं यह पूछता हूं कि योरोप में डेढ़ सौ साल पहले कहां से कैपिटल आयी, कहां से इंडस्ट्री आयी, कहां से टेक्निशियंस आये। कहीं से भी नहीं आये।

प्रश्न—आज की तरह उनके सामने जनसंख्या का सवाल नहीं था?

यह सवाल नहीं है। यदि पापुलेशन प्रॉबलम उनके सामने बड़ी होती तो इंडस्ट्री और बड़ी आती। माइंड का सवाल है। आपके सामने पापुलेशन का प्रॉबलम आज है, पचास साल पहले तो नहीं था, आपने तब इंडस्ट्री क्यों पैदा नहीं

कर ली?

प्रश्न—तब हम गुलाम थे।

वह गुलाम भी आप क्यों थे? गुलाम भी आप इसलिए हुए कि टेक्निकली आप विकसित नहीं हुए। बल्कि टेक्निकली जब भी ज्यादा विकसित कौम आपके मुकाबले आयी, आप को हार जाना पड़ा। आप हैरान होंगे पिछले हजार सालों का इतिहास देखकर, कि जब भी आप हारे, जिससे आप हारे, वह कौम ज्यादा आपसे ताकतवर नहीं थी, सिर्फ टेक्निकली ज्यादा ताकतवर थी। पहली दफा मुसलमान हिन्दुस्तान में आये तो हिन्दुस्तान का राजा हाथी पर लड़ने गया। वह टेक्निकली गलत था। घोड़े पर लड़ने वाले से हार जाने वाला था। घोड़े पर लड़ने वाला टेक्निकली होशियार था, क्योंकि घोड़ा ज्यादा तेज जानवर है, जल्दी से बचता, भागता है। हाथी बिल्कुल बेहूदा जानवर है। उस पर आप सवारी निकालिए किसी महाराजा की तो ठीक है, लेकिन वह युद्ध के मैदान का जानवर थोड़े ही है! तो आप हाथी से लड़ने गये। टेक्निकली गलत थी यह बात। घोड़े पर लड़ने वाला जीत गया। जो कौमें आपसे लड़ने आयी थीं, वह आपसे कमजोर कौमें थीं, ज्यादा ताकतवर कौमें नहीं थीं। उनकी संख्या ज्यादा नहीं थी, न कुछ था, न उनके पास रोटी थी खाने को, न कुछ और था, सिर्फ टेक्निकली वह आपसे ज्यादा इम्प्रूव्ड साधन लेकर आयी थीं। वे आ गये थे घोड़ा लेकर।

इसके बाद भी आप हारे। आप बन्दूक से लड़ते, तो दूसरे तोप लेकर आ गये। अंग्रेज से हारने का कोई बड़ा कारण नहीं था, बस आपके पास बन्दूकें थीं और अंग्रेज के पास तोपें थीं। टेक्निकली वे आपसे ज्यादा होशियार थे। अंग्रेज की ताकत कितनी थी हिन्दुस्तान में जीत जाने की? हिन्दुस्तान में इतने दूर देश से आकर एक कौम खड़ी हो जाये थोड़े से लोगों को लेकर और जीत जाये!

और हमारे नेता बेवकूफी की बातें समझाते हैं कि चूंकि हममें भेदभाव था इसलिए हम हारे। यह सब बिल्कुल गलत बातें हैं। ये सही बातें नहीं हैं। असल बात यह थी कि आप हमेशा टेक्निकली पीछे थे। जब भी दुश्मन आया आपके सामने, वह टेक्निकली आपसे ज्यादा बड़ा साधन लेकर आया था। आप ठप हो गये थे। अभी आज भी आप पर चीन आ जायेगा तो आप हारने वाले नहीं हैं, यह कौन कहेगा? क्योंकि टेक्निकली आप चीन से पीछे हैं हमेशा। आप जीत नहीं सकते चीन से। और आप यह पक्का मानिये कि दस साल में पाकिस्तान से भी टेक्निकली आप पीछे हो जाने वाले हैं, क्योंकि आपका पूरा माइंड नॉन-टेक्निकल है। बड़ा मजा यह है कि, अभी आप बड़े खुश हो लिए, थोड़ी-सी जीत हो गयी। दस साल के भीतर आप पाकिस्तान से भी जीतने में समर्थ नहीं रह जायेंगे। क्योंकि वह टेक्निकली आगे जा रहा है। वह अणु-भट्ठियां खड़ी कर रहा

है, वह सब कर रहा है और यहां हम इसका विचार करते हैं कि हमें अणु-भट्ठियां बनाना है कि नहीं बनाना ! यही बेवकूफी हजार बार कर चुके हैं । वह बन्दूकवाला सोचता रहा था तोप बनाने के लिए । और अंग्रेज तोप बनाकर आ गये छाती पर । उसने नहीं पूछा कि बनाने के लिए कि बनाओ, कि नहीं बनाओ, कि महावीर स्वामी क्या कहते हैं, बुद्ध भगवान क्या कहते हैं, महात्मा गांधी क्या कहते हैं ? अणु बनाना है कि नहीं बनाना है। अहिंसा की फिलॉसफी क्या कहती है ? दस साल में पाकिस्तान अणु बना लेगा ।

प्रश्न—अब तो भारत में एटम बनाने की पूरी सम्भावना है ।

बिल्कुल ही, पॉजिटिवली । टेक्नालॉजी है, वेटर टेक्नालॉजी है । एटम बम का सवाल नहीं है, टेक्नालॉजिकली हमें श्रेष्ठ होना चाहिए । हर दिशा में टेक्नालॉजिकली श्रेष्ठ होना चाहिए । अणु बम टेक्नालॉजी का श्रेष्ठतम हिस्सा है । हमें बनाना चाहिए । जरूरी नहीं है कि हम लड़ने जायें, लेकिन आणविक, एटॉमिक एनर्जी की टेक्नालॉजी में जाना ही चाहिए, खड़ी कर लेनी चाहिए, क्योंकि बच्चों के लिए सवाल कल खड़ा हो सकता है । आई ऐम फार टेक्नालॉजी । इसमें अणु बम का सवाल नहीं है ।

अब दुनिया में एलोपैथी विकसित हो रही है और यहां के बेवकूफ आयुर्वेदिक की बातें करते चले जाते हैं और उनको गवर्नमेंट सहायता दे रही है ! टेक्नालॉजिकली की जगह बेवकूफी की बातें करते हैं । दो हजार साल में मेडिकल साइंस कहां से कहां पहुंच गयी और वह इधर जड़ी-बूटियों की बातें कर रहे हैं और गवर्नमेंट दान दे रही है ! और औषधालय बनवायेगी ! और यह करो, और आयुर्वेद हमारा है ! हमारा तुम्हारा सवाल नहीं है, टेक्नालॉजिकली कौन आगे है ? तो हर चीज में यह देखना है कि कौन आगे है ? और जब हम सारे जीवन में टेक्नालॉजी का ध्यान देकर चलेंगे, तो मैं आपसे कहता हूं कि पचास साल में हिन्दुस्तान बिना किसी से सहायता लिए खड़ा हो सकता है ।

प्रश्न—आप पब्लिक को विश्वास कैसे दिलायेंगे, कंविंस कैसे करेंगे ?

बिल्कुल ही प्रेक्टिकल होने की कोशिश है । बिना एप्रोच किये पब्लिक का माइंड बदला नहीं जा सकता, क्योंकि वे उस माइंड को पकड़े हुए हैं ।

प्रश्न—पब्लिक का माइंड बदलने के लिए आपको पब्लिक के पास आना पड़ेगा ?

हां, वह तो मैं कोशिश करूंगा । उसमें आप सहयोगी बनिये । लेकिन सवाल यह है कि अगर हिन्दुस्तान का माइंड गांधी की पूजा करता चला जाता है तो मैं मानता हूं कि टेक्नालॉजिकली हिन्दुस्तान विकसित नहीं होगा । ये दोनों बातें जुड़ी हुई हैं, क्योंकि गांधी बिल्कुल ही टेक्नालॉजी के दुश्मन हैं । तो अब अगर मैं टेक्नालॉजी के लिए लोगों को विकसित करना चाहता हूं तो गांधी मेरे आड़े आते

हैं, और कोई आड़े नहीं आता । तो गांधी से मुझे लड़ना पड़ेगा । गांधी अच्छे आदमी हैं, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है, लेकिन अच्छे आदमियों का क्या करेंगे ? सवाल तो यह है कि वह जो फिलॉसफी खड़ी कर रहे हैं, वह मुल्क के लिए घातक है । तो मुझे तो बात करनी पड़ेगी, क्योंकि जब मैं टेक्नालॉजी की बात करूं, तो जो भी सीधा सवाल उठता है कि गांधी की बाबत आपका क्या ख्याल है ? या तो टेक्नालॉजी का बात करूं या ग्रामोद्योग की बात करूं । मैं मानता हूं कि ग्रामोद्योग की बात करने वाला मुल्क का हत्यारा है । मुल्क को डुबा देगा, मार डालेगा । ग्रामोद्योग तो चल रहा है पांच हजार साल से और हम मरते जा रहे हैं ।

प्रश्न—आप बोले कि गांधी जी मुल्क के हत्यारे थे । सम्भव है कि आपकी भी कोई हत्या कर दे ।

कोई हर्जा नहीं । एक दफा मेरी भी हत्या हो जाये तो गांधी से मेरी टक्कर सीधी-सीधी हो जाये ।

प्रश्न—तो फिर काम रुक जायेगा ?

काम नहीं रुकेगा । एक दफा मेरी हत्या हो जाये तो फिर गांधी से मेरा मुकाबला बिल्कुल सीधा ही सीधा हो जाये । फिर टेक्नालॉजी के पक्ष में भी कोई आदमी मरता है तो मुल्क में विचार शुरू हो जायेगा । उसमें कोई हर्जा नहीं है । मेरे मरने से क्या फर्क पड़ता है ? लेकिन मेरे मरने से पचास लोगों के मन में ख्याल आ सकता है और बात चल सकती है । पच्चीस दूसरे लोग खड़े हो जायेंगे । टेक्नालॉजी के लिए कोई मरे भी तो ! टेक्नालॉजी के लिए कोई मरा नहीं । इस मुल्क में आज तक । तो कोई हर्जा नहीं है, मर जाये । मेरे मरने से क्या फर्क पड़ता है ?

प्रश्न—मरने से तो काम रुक नहीं जायेगा ?

कुछ काम नहीं रुकता किसी के मरने से । क्राइस्ट मर गये तो कोई काम रुकता है क्रिश्चियेनिटी का ? मार्क्स मर गये तो कोई कम्युनिज्म रुकता है ? आदमी मर जाते हैं और जिन विचारों के लिए मरते हैं, वे विचार बलशाली हो जाते हैं । उनके मरने से वे खाद बन जाते हैं । तो उसमें कोई हर्जा नहीं है, जरा भी हर्जा की बात नहीं है । एक दफा मार ही डालें तो उसमें बड़ा हित हो जाये, उसमें कोई नुकसान नहीं ।

प्रश्न—बहुत कुछ पूछना है । आप देख ही रहे हैं कि जहां ऐसी मीटिंग होती है, वहां सामान्यतया बहुत कम लोग होते हैं । उनके सामने पैसे की और अन्य कई समस्याएं हैं···।

बहुत कुछ किया जा सकता है । असल में मेरी जो बेसिक थीसिस है सारी बातों में । हिन्दुस्तान में अच्छे आदमियों को राजनीति में नहीं आनी चाहिए ऐसी

धारणा है सदा से। धारणा है इसलिए नहीं आते। क्योंकि यह समझाया गया है कि अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं आना चाहिए, वह बदमाशों की चीज है। इस समझाने का परिणाम यह हुआ बदमाश ही बदमाश इकट्ठे हो गये हैं, अच्छा आदमी वहां जाता नहीं। और अगर अच्छा आदमी जाये तो आप उसको कहेंगे कि तुम भी हो गये गड़बड़। तो इसकी जरूरत है मुल्क में कि हम अच्छे आदमी को कहें कि तुम जाओ राजनीति में। तुम वहां प्रविष्ट करो तो वे हम उन बदमाशों से बचा सकेंगे।

प्रश्न—साधन नहीं है, सम्पत्ति नहीं है, इसलिए कैसे जायेंगे ?

ऐसा जरूरी नहीं है कि अच्छे आदमी के पास साधन नहीं है, सम्पत्ति नहीं है। अच्छे आदमी के पास भी साधन, शक्ति-सम्पन्नता है, लेकिन अच्छे आदमी के पास साहस नहीं है। वह सिर्फ इसलिए कि मेंटल मेकप हमारा जो है, मेकप हमारा यह है कि···अभी मैं हूं, अगर मैं कहता हूं कि मैं राजनीति में जाता हूं तो वह जो मेरी पूजा करता है, वह कहेगा कि गड़बड़ हो गये हैं, अब तो राजनीति में चले गये हैं।

गांधी, हिन्दुस्तान की हुकूमत हाथ में आयी तो भी गांधी साहस नहीं जुटा पाये कि वे एग्जिक्यूटिव बॉडी में खड़े हो जायें, कि वे प्रधान मंत्री बन जायें। क्योंकि अगर वह प्रधान मंत्री बनते तो सदा के लिए 'महात्मा' खत्म हो गये होते इस मुल्क में। वे महात्मा फिर कभी नहीं कहे जा सकते। अब महात्मा को बचाना है कि प्रधान मंत्री बनना है ?

एक अच्छे आदमी थे गांधी मेरी दृष्टि में। आदमी के लिहाज से एकदम अच्छे आदमी थे। उनकी अच्छाई में कोई इंच भर कमी नहीं है। उनकी समझ में कितनी भी गलती हो, उनकी बुद्धि चाहे कितनी ही साधारण हो, लेकिन आदमी बहुत अद्भुत हैं और अच्छे आदमी हैं। लेकिन वह गड़बड़ हो गयी बात। अगर गांधी वहां हुकूमत में बैठते तो दो परिणाम होते। एक तो गांधी की अच्छाई का परिणाम होता और अच्छे लोग पूरे मुल्क के आकर्षित होते और राजनीति की तरफ जाते। क्योंकि जब गांधी जा सकते तो भय टूट जाता, खत्म हो जाती बात। दूसरा यह होता कि गांधी को एक मौका मिलता कि वे जो बातें कर रहे थे उनको प्रयोग करके दिखलाते। या तो वे प्रयोग कर लेते तो मुल्क बदल जाता और या तो असफल हो जाते तो हमारी गांधी से झंझट छूट जाती। दो में से कुछ भी फल हो जाता। तो होशियारी हो गयी। गांधी वहां से बच गये जाने से। उन्होंने अपना महात्मापन बचा लिया और राजनीति में वे नहीं गये।

प्रश्न—क्या नेहरू को उन्होंने राजनीति में नहीं भेजा ?

जरा भी नहीं। नेहरू और गांधी में जमीन आसमान के फर्क हैं। नेहरू पॉलिटीशियन हैं, गांधी पॉलिटीशियन नहीं हैं, राजनीतिज्ञ बिल्कुल नहीं हैं। ये सीधे

सच्चे आदमी हैं। उनकी सच्चाई ज्यादा मूल्यवान है बजाय राजनीति के। नेहरू तो पॉलिटीशियन हैं। तो नेहरू ने पॉलिटिक्स के जो खेल थे, वे वहां सब शुरू किये। सारे खेल शुरू हुए वहां। जितने नेहरू के नीचे अच्छे आदमी थे, जिनसे नेहरू को खतरा हो सकता था, उनको धीरे-धीरे कांग्रेस से बाहर फेंकने के सब उपाय कर दिये—जैसे जयप्रकाश हैं, कृपलानी हैं, चाहे कोई हो। जिन लोगों से नेहरू को कम्पटीशन का डर था, उनकी जड़ें काट दी गयीं।

पॉलिटीशियन हमेशा अपने से छोटे आदमी को पास रखना पसन्द करता है, अपने बराबर के आदमी से कभी बात नहीं करता, क्योंकि उससे तो खतरा है। चाहे राजगोपालाचारी हों, चाहे जयप्रकाश हों, चाहे कोई भी हो। धीरे-धीरे एक-एक आदमी की जड़ काटकर सारे अच्छे आदमियों को, कीमती आदमियों को अलग कर दिया। और दो कौड़ी के आदमी धीरे-धीरे उनकी जगह बैठा दिये जो कि हमेशा जी हुजूरी करें। मुल्क में बदमाशों को इकट्ठे करने का काम नेहरू के ऊपर है, इस जिम्मे से उनको बचाया नहीं जा सकता है। क्योंकि सारे अच्छे आदमियों की जड़े काट डालीं और सारे साधारण आदमी को नीचे ले आये, क्योंकि वे हमेशा जी हुजूरी करेंगे। राजनीतिज्ञ का माइंड यह है कि हमेशा अपने से छोटे आदमियों की भीड़ को चारों तरफ घेर कर रखो। अपने मुकाबले का आदमी कभी साथ न आ जाये।

तो नेहरू और गांधी में जमीन आसमान के फर्क हैं। अगर गांधी ने हिम्मत जुटायी होती तो यह कभी नहीं हो सकता था कि जयप्रकाश, कृपलानी और राजगोपालाचारी कांग्रेस के बाहर जाते। यह असम्भव था, यह बिल्कुल असम्भव था। हिन्दुस्तान के सारे अच्छे आदमी गांधी के साथ खड़े होते, हिन्दुस्तान की हुकूमत दूसरी शक्ल की हुकूमत होती। उसमें नेहरू भी होते, जयप्रकाश भी होते। उसमें लोहिया भी होता, उसमें राजगोपालाचारी भी होते, उसमें मुल्क के सारे अच्छे लोग होते। एक शक्ल बदल जाती हिन्दुस्तान की। लेकिन गांधी महात्मापन को बचा गये, हिन्दुस्तान को डुबा गये। उनके सामने यह दिक्कत सीधी है कि करना क्या है ? क्योंकि सारा मुल्क कहता कि अरे, बस डांवाडोल हो गये ! और जैसे ही गांधी ने हाथ में सत्ता नहीं ली कि सारे मुल्क ने कहा, यह है सच्चा महात्मा। और पता नहीं सच्चा महात्मा कितना मंहगा पड़ गया हमारे लिए।

गांधी और नेहरू में जो मैं फर्क कर रहा हूं, वह फर्क यही कर रहा हूं कि गांधी के व्यक्तित्व के साथ बहुत से लोग खड़े हो सकते थे। नेहरू के व्यक्तित्व के साथ बहुत-से बड़े लोग खड़े नहीं हो सकते थे। यह मैं नहीं कहता हूं कि गांधी के साथ सभी खड़े हो सकते थे। एम० एन० राय खड़े नहीं हो सकते थे, सुभाष खड़े नहीं हो सकते थे, लेकिन ये बहुत इक्के-दुक्के थे। और गांधी इतने कुशल और समझदार आदमी थे कि सुभाष को भी खड़ा कर सकते थे, यह कठिन

नहीं था ।

गांधी अगर सत्ता में गये होते तो हिन्दुस्तान की सत्ता की पूरी शक्ल बदल गयी होती । नीचे से ऊपर तक का पूरा मेकप, ढांचा बदल गया होता । वह पॉलिटीशियन का ढांचा नहीं रह गया होता, वह अच्छे आदमी का ढांचा रह गया होता । और सारे मुल्क से जिन लोगों को जाने का मौका मिलता, वे दूसरे तरह के लोग होते, टाइप बदल गया होता । लेकिन वह गांधी हिम्मत नहीं जुटा पाये और हमने नहीं जुटाने दी हिम्मत । सारे मुल्क को कम्पेल करना था गांधी को कि हम आपको भेजेंगे, आपको जाना चाहिए । लेकिन सारा मुल्क खुश हुआ कि महात्मा हमारा कितना सच्चा है कि आगे राजगद्दी हाथ में है और लात मार दी । क्योंकि हजारों साल से हम यही मानते हैं कि राजगद्दी को जो लात मार दे, वह बड़ा ऊंचा आदमी है—चाहे उसका फल कुछ भी हो । तो मैं कहता हूं, मेरे लिए सारा चिन्तन जो है बेसिक, वह यह है कि पूरे माइंड का फ्रेम हमारा बदले । अच्छा आदमी राजनीति में पहुंचाया जाना चाहिए ।

तो मेरी दृष्टि है कि गांव-गांव में नागरिक समितियां होनी चाहिए, मुहल्ले-मुहल्ले । काम बढ़े तो मैं चाहता हूं कि एक-एक गांव में नागरिक समिति हो और नागरिक समिति यह तय करेगी कि जो आदमी अपने तरफ से खड़ा हो जायेगा और कहेगा कि मैं अच्छा उम्मीदवार हूं, उसको हम वोट नहीं देंगे, उसको हम डिसक्वालिफिकेशन समझेंगे कि यह आदमी खुद अपने को कहता है कि मैं अच्छा उम्मीदवार हूं, मुझको भेजो । नागरिक समिति अच्छे लोगों से प्रार्थना करे कि आप खड़े हो जायें । और आप खड़े होते हैं तो नागरिक समिति आपका समर्थन करेगी । न हम दल की फिक्र करना चाहते हैं, कि तुम किस दल के हो । तुम अच्छे आदमी हो, तुम चिन्तनशील हो, तुम विचारशील हो, हम तुम्हें भेजना चाहते हैं ।

अगर पन्द्रह-बीस वर्ष मुल्क के कौने-कौने में नागरिक समितियां हों, भले आदमी को एप्रोच करें और कहें कि इस आदमी को हम खड़ा करना चाहते हैं और इसको नागरिक समिति पूरा समर्थन देगी और कोई दल का हम विचार नहीं करते । किसी दल का हो—कम्युनिस्ट हो, कांग्रेस हो, सोशलिस्ट हो । आदमी अच्छा है, इसको वोट दिया जाये । तो अच्छे आदमी को बीस साल तक हमें मुल्क से भेजने की चेष्टा करनी चाहिए और यह फिक्र करनी चाहिए कि अच्छा आदमी धीरे-धीरे बुरे आदमी को रिप्लेस कर दे ।

अभी यह हो रहा है कि अच्छे आदमियों को बुरा आदमी रिप्लेस कर रहा है । और बुरा आदमी एक दफा जब अच्छे आदमी को हटाता है, तो उसका परिणाम यह होता है कि पांच साल बाद उससे भी बुरा आदमी उसको हटा सकेगा, उससे और बुरा आदमी आ सकेगा । तो हर पांच साल में हिन्दुस्तान और गुंडों

के हाथ में चला जायेगा, क्योंकि जो वहां बैठा है, उसको उससे बड़ा गुण्डा ही हटा सकता है, उससे अच्छा गुण्डा नहीं हटा सकता है । जो हर पांच साल में हिन्दुस्तान गुण्डों के हाथ में उतरता चला जायेगा । आने वाले तीस साल में हिन्दुस्तान पूरा गुन्डाइज्म का मुल्क होगा, जहां अच्छे आदमी को तो जाने का सवाल ही नहीं है, जीना मुश्किल हो जायेगा ।

तो हमें सचेत होना पड़ेगा और कुछ करना पड़ेगा उसके सामने, कि हम नागरिक समितियां खड़ी करेंगे, अच्छे आदमी को प्रोत्साहन दें, अच्छे आदमी को हिम्मत दें, बल दें । और इस बात की हवा पैदा करें कि यह अच्छे आदमी का कर्तव्य है कि राजनीति में जाये । यह ड्यूटी का हिस्सा है । आदमी कोई कीमती नहीं है, लेकिन आदमी अगर पचास साल भी हिम्मत से सत्य के लिए कुछ करे तो अपनी जिन्दगी में ही परिणाम देख सकता है, इसमें कठिनाई नहीं है । ●

नारगोल, दिनांक ५ मई १९७०

१६. विध्वंस : सृजन का प्रारम्भ

यह सवाल नहीं है। पहली बात तो यह कि मैं निपट एक व्यक्ति की भांति, जो मुझे ठीक लगता है वह मैं कहूं। न तो मेरी कोई संस्था है, न कोई संगठन। हां, कोई संगठन बनाकर मेरी बात उसे ठीक लगती है और लोगों तक पहुंचाये, तो वैसे संगठन जीवन जागृति केन्द्र है। वह उनका संगठन है, जिन्हें मेरी बात ठीक लगती है और वह लोगों तक पहुंचाना चाहते हैं। लेकिन मैं उस संगठन का हिस्सा नहीं हूं और उस संगठन का मेरे ऊपर कोई बन्धन नहीं है, इसलिए वह संगठन रोज मुश्किल में है। क्योंकि कल मैंने कुछ कहा था, वह संगठन के लोगों को ठीक लगता था। आज कुछ कहता हूं, नहीं ठीक लगता है। वे मुश्किल में पड़ जाते हैं। मेरी तो उनसे कोई शर्त नहीं है, उनसे मैं बंधा हुआ नहीं हूं, इसलिए जितनी प्रवृत्तियां चलती हैं, जिन्हें मेरी बात ठीक लगती है, उनके द्वारा चलती हैं।

मेरे द्वारा तो सिर्फ एक ही प्रवृत्ति चलती है कि जो मुझे ठीक लगता है, वह मैं कहता रहता हूं। उससे ज्यादा मेरी कोई प्रवृत्ति नहीं है और जो मुझे ठीक लगता है, इसलिए निरन्तर निवेदन करता रहता हूं कि जो मुझे ठीक लगता है, वह आपको ठीक लगे, यह जरूरी नहीं है। बहुत ज्यादा सम्भावना तो यही है कि वह न लगे। क्योंकि दो व्यक्तियों को एक-सी बात ठीक लगे, यह जरा असम्भावना है। असल में दो व्यक्ति इतने भिन्न-भिन्न हैं कि एक ही बात पर राजी नहीं होते। तो पूछा जा सकता है कि फिर मैं क्यों कहता हूं, अगर दूसरे

को मुझे राजी नहीं करना है, प्रभावित नहीं करना है, दूसरे को अपने साथ बांधना नहीं है, संगठन नहीं, अनुयायी नहीं, शिष्य नहीं, तो फिर मैं क्यों कहता हूं?

असल में मैं आज तक निरन्तर तभी कोई बोला है, जब उसे संगठन बनाना हो। तभी कोई बोला है, जब उसे किसी को प्रभावित ही करना हो, तभी तक बोला है, उसे पंथ और सम्प्रदाय ही बांधना हो। इसलिए यह सवाल उठता है। इसलिए बोलना सहज बात नहीं रह गयी। मैं बोलने को अत्यन्त सहज बात मानता हूं। मुझे जो ठीक लगता है, उसे कहने में मुझे आनन्द आता है, इसलिए कहता हूं, आपको प्रभावित करने के लिए नहीं। एक फूल खिलता है और उस फूल से सुगन्ध गिरती है। यह रास्ते से चलने वाले लोगों को प्रभावित करने के लिए नहीं। फूल को आनन्द है, वह खिला है, उसकी सुगन्ध मिलती है।

मैं जब आपसे बोल रहा हूं तो मैं आपको प्रभावित करने के लिए नहीं, जो मुझे आनन्दपूर्ण लगता है, बोलना, वह बोल रहा हूं। और मेरी अपनी समझ यह है कि जो आपको प्रभावित करने के लिए बोल रहा है, वह आपका दुश्मन है, क्योंकि किसी भी तरह की प्रभावित करने की चेष्टा, बहुत गहरे में, दूसरे व्यक्ति को गुलाम बनाने की चेष्टा है। सब प्रभाव बहुत आध्यात्मिक गुलामी है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि लोग प्रभावित करने की डर की वजह से, बोलेंगे नहीं, कहेंगे नहीं।

एक चित्रकार एक पैन्टिंग बना रहा है। हो सकता है, वह सिर्फ प्रभावित करने के लिए बना रहा हो। यह भी हो सकता है कि दूसरों से कोई प्रयोजन ही न हो। बनाना उसका आनन्द हो और वह जब दूसरों को दिखा रहा है, तब भी सिर्फ अपने आनन्द की अभिव्यक्ति की भांति। शब्द भी चित्र की भांति या रंगों की भांति अभिव्यक्ति हैं। आपको प्रभावित करने को नहीं, मुझे व्यक्त करने को और इसलिए निरन्तर आपसे निवेदन करता रहता हूं कि भूल से मुझसे प्रभावित न हों।

लेकिन ध्यान रहे, प्रभावित होने के दो ढंग हैं। मेरे पक्ष में प्रभावित होना भी प्रभावित होना है, मेरे विपक्ष में भी प्रभावित होना प्रभावित होना है। इसलिए इस ख्याल में मत रहना कि जो मेरे पक्ष में हैं, वे मुझसे प्रभावित हो गये हैं और जो विपक्ष में हैं, वे प्रभावित नहीं हुए हैं। वह विपक्ष में हैं, वे भी मुझसे प्रभावित हैं। प्रभावित से बचना हो तो पक्ष विपक्ष से बचना पड़ता है, नहीं तो प्रभाव पड़ ही जाता है। जो आदमी वेश्या के घर की तरफ जा रहा है, वह भी प्रभावित है, जो वेश्या के घर से बचकर दूसरे रास्ते से गुजर रहा है, वह भी प्रभावित है। असल में प्रभाव के दो ढंग हैं। अक्सर हमें लगता है कि पक्ष वाला प्रभावित है, विपक्ष वाला प्रभावित नहीं है। विपक्ष वाला भी उतना ही प्रभावित है।

मार्क्स मरा तो उसकी कब्र पर बहुत लोग नहीं थे । जो उसे विदा करने गये थे, दस बीस मित्र थे । फिर भी एंजिल्स ने, जो उसकी कब्र पर दो बातें कहीं हैं, उनमें से एक बात बड़ी कीमती थी । बीस-पच्चीस आदमी, जिसको विदा करने आये हों, उसकी कब्र पर बोलते हुए एंजिल्स ने कहा कि मार्क्स दुनिया का बहुत बड़ा आदमी है । तो एक आदमी ने पूछा कि जिसको विदा करने बीस-पच्चीस लोग आये, उसको आप बहुत बड़ा आदमी कहते हैं ? तो एंजिल्स ने कहा कि मैं इसलिए बहुत बड़ा आदमी कह रहा हूं कि मार्क्स की कोई बात सुने तो प्रभावित हुए बिना नहीं बच सकता । उस आदमी ने कहा, बहुत से लोग मार्क्स के दुश्मन हैं । एंजिल्स ने कहा, मैं यही कह रहा हूं, या तो पक्ष या विपक्ष । मार्क्स के सम्बन्ध में कोई निर्णय लेना ही पड़ेगा । यही प्रभाव है ।

लेकिन मैं कोई बड़ा आदमी नहीं हूं और मैं मानता हूं कि सब बड़े आदमियों ने दुनिया को नुकसान पहुंचाया है, क्योंकि दूसरों को छोटा बनाये बिना, बड़ा होना असम्भव है । तो दूसरों को छोटा बनाना ही पड़ेगा, बड़े होने के लिए । मैं कोई बड़ा आदमी नहीं हूं और मैं मानता हूं कि बड़े आदमी होने की जो आकांक्षा है, वही दूसरे को प्रभावित करने का रूप लेती है और बड़े आदमी की जो आकांक्षा है, वह बहुत गहरे में किसी इन्फिरिऑरिटी कॉम्प्लेक्स से, किसी हीनता की ग्रन्थि से पैदा होती है । इसलिए सब बड़े आदमी, बहुत भीतर, हीन-ग्रन्थि से पीड़ित होते हैं । वे दूसरे को प्रभावित करके, अंततः अपने को प्रभावित करना चाहते हैं कि मैं बड़ा आदमी हूं । इतने लोग मुझसे प्रभावित हैं, तो मैं बड़ा आदमी होना ही चाहिए । यह बहुत वाय मीडिया, दूसरों के जरिये, वे अपने को विश्वास दिलाना चाहते हैं ।

मैं जो हूं, उसमें राजी हूं । आपको प्रभावित करके, मैं अपने को कोई विश्वास नहीं दिलाना चाहता कि मैं कौन हूं ? मैं जो हूं, उससे मैं राजी हूं और छोटे और बड़े दोनों की परिभाषा के बाहर खड़ा हूं, क्योंकि छोटे और बड़े की परिभाषा, दूसरों से तुलना करने से पैदा होती है, कंपेरीजन करने से पैदा होती है और मेरी ऐसी समझ है कि एक-एक आदमी इतना अपने जैसा है कि कंपेरिजन असम्भव है । तुलना हो नहीं सकती । आप मुझसे बड़े हैं या छोटे, यह सवाल असंगत है, क्योंकि मैं मैं हूं, आप आप हैं । इसमें कोई तुलना का उपाय नहीं है ।

मैं मानता हूं, एक-एक मनुष्य अतुलनीय है, इन्-कॉम्पेरेबल है । इसलिए छोटे-बड़े की सब बातें मुझे बकवास मालूम पड़ती हैं। इसलिए प्रभावित करने का तो कोई सवाल नहीं है । लेकिन अपनी बात कहना जरूर चाहता हूं और अपनी बात में, आपको सुनने के लिए साझीदार भी बनाना चाहता हूं । जो मुझे दिखायी पड़ता है, वह मैं आपसे निवेदन कर देना चाहता हूं । वह निवेदन है, वह आग्रह

नहीं है । मानने न मानने की आपके लिए छूट है ।

मेरा तो निवेदन यही है कि आप मानने की फिक्र करना, न न मानने की । आप सुन लेना । वह आपको एक विचार की प्रतिक्रिया में ले जा सके, तो काफी है । वह विचार प्रतिक्रिया, अंततः मेरी नहीं रह जायेगी, आपकी ही हो जायेगी । लेकिन मेरे मित्र हैं, मेरे शत्रु हैं । मेरी तरफ से कोई मेरा मित्र नहीं है, मेरी तरफ से मेरा कोई शत्रु नहीं है । उनकी ही तरफ से वह है, क्योंकि मैं कोई कारण नहीं देखता, मित्रता और शत्रुता की जो पोलैरिटी है, उसको बनाने का—कोई कारण नहीं देखता । हम सब साझीदार हैं, एक जगत् में । लेकिन मेरे मित्र कुछ करेंगे, मेरे शत्रु भी कुछ करेंगे ।

नानू भाई ने बड़ा अच्छा सवाल पूछा । उन्होंने एक किताब छापी है 'आचाय रजनीश काय मार्गे' उसमें भी मेरी फोटो छापी है और मैं समझता हूं कि मेरे मित्रों ने जितनी अच्छी फोटो छापी है, उन सबसे अच्छी फोटो छापी है । हालांकि किताब मेरी आलोचना है । मुझसे तो पूछा नहीं था, फोटो छापते वक्त । मेरे मित्रों ने भी नहीं पूछा । उनको प्रीतिकर लगता है कि मेरी शक्ल वे लोगों तक पहुंचा दें, वे पहुंचा देते हैं ।

अब रह गयी बात यह कि मैं रोकता क्यों नहीं, पॉजिटिवली ? मैं कह सकता हूं कि मत छापो फोटो । मैं कह सकता हूं, मत छुओ मेरे पैर । कभी मैंने किसी से कहा नहीं कि मेरे पैर छुओ । निश्चित ही मुझे दूसरी बात नानू भाई ने ठीक पूछी है कि आप पॉजिटिवली कहते क्यों नहीं कि मत छुओ मेरे पैर । लेकिन मेरी समझ है कि जो आदमी कहता है, छुओ मेरे पैर, वह भी अहंकारी है, जो कहता है, मत छुओ मेरे पैर, वह भी अहंकारी है । असल में मैं कौन हूं, जो आपको आज्ञा दूं कि आप क्या करो, छुओ कि न छुओ । मैं कौन हूं ? मैं आपसे नहीं जाऊंगा कहने कि मेरे पैर छुओ । अगर कहने जाऊं तो मैं खतरनाक आदमी हूं । लेकिन दूसरे छोर पर भी खतरा है ।

पंडित नेहरू इलाहाबाद की एक सड़क से गुजर रहे थे । वे बड़े सख्त थे । मत छुओ मेरे पैर । मैं पैर न छुआऊंगा । एक अस्सी साल की बूढ़ी औरत ने पैर छुए, तो उन्होंने लात मार दी । वह औरत गिर पड़ी । मैं समझता हूं, यह दूसरी छोर पर अन्याय शुरू होगा । मुझे कोई हक नहीं है कि मैं कहूं कि मेरे पैर छुओ । यह हक मुझे कहां है कि मत छुओ । मैं दूसरे की स्वतन्त्रता में, इतनी भी बाधा नहीं डालना चाहता हूं । यह उसकी मौज है ।

और अभी एक गांव में ऐसा हुआ, जो नानू भाई को जानना अच्छा होगा कि एक आदमी ने मेरे पैर न छुए, मेरा सिर छुआ । दो आदमी साथ खड़े थे मेरे । उन्होंने कहा, यह क्या करते हैं ? मैंने कहा, उसे करने दो । उसको सिर छूने की मौज आयी है, उसे करने दो । और इसलिए मैं आपसे निवेदन करता हूं कि किसी

को अपना पैर भी मेरे सिर को छुलाने की मौज आ जाये, तो मैं मना न करूंगा। अगर मना करूं तो आप मुझसे पूछ लेना कि यह बात क्या है? पैर छूते वक्त मना नहीं किया और आपके सिर पर छुला रहे हैं, तो आप मना क्यों कर रहे हैं? नहीं करूंगा।

नहीं, मेरी समझ यह है कि सब तरह के पॉजिटिव असर्शन, सभी तरह के विधायक वक्तव्य, श्रद्धा पैदा करवाते हैं और आपको जानकर यह मजा होगा कि दुनिया में उन लोगों के पैर सर्वाधिक छुए गये हैं, जिन्होंने कहा, मत छुओ, मत छुओ, मत छुओ। लोगों ने कहा, अद्‌भुत आदमी है, इसके तो छूने ही पड़ेंगे।

बुद्ध कहते हैं, मत छुओ मेरे पैर। लेकिन 'बुद्धं शरणं गच्छामि' जितना बुद्ध के सामने कहा गया है उतना किसी के सामने नहीं कहा गया है। बुद्ध कहते हैं, मत बनाओ मेरी प्रतिमाएं। जितनी प्रतिमाएं बुद्ध की हैं उतनी किसी आदमी की नहीं हैं। आश्चर्यजनक है, आदमी का मन बहुत आश्चर्यजनक है। निषेध भी, निमंत्रण भी।

यहां दरवाजे पर लिख दें कि यहां झांकना मना है, फिर सूरत में इतना हिम्मतवर आदमी बहुत मुश्किल होगा, जो बिना झांके निकल जाये। होगा? नहीं होगा, और अगर कोई सज्जन किसी वक्त संयम साध कर निकल गये, तो फिर कोई बहाना खोज कर भी, इस गली से उनको लौटना पड़ेगा और अगर दिन में हिम्मत करके न लौट पायें, तो रात सपने में जरूर लौटेंगे। वहां है क्या? मेरे पैर में कुछ भी नहीं है। इतना भी नहीं है कि मैं आपसे कहूं कि मत छुओ, इतना भी नहीं है कि मैं निषेध करूं। निषेध ही निमंत्रण है।

इसलिए मैं आपको कोई आज्ञा नहीं देना चाहता। आज्ञा में ही गुरु बनना शुरू हो जाता है। आज्ञा पूरी होती है, यह सवाल नहीं है। पैर छूने की है कि नहीं छूने की है। यह सवाल नहीं है—आज्ञा। जो आपसे पॉजिटिवली कहती है, यह करो, यह मत करो, वह गुरु बनना शुरू हो जाता है। मैं किसी का गुरु नहीं हूं।

ठीक उन्होंने पूछा है कि आप शिष्य जाने बनाते हैं या अनजाने। नहीं, न जानकर बनाता हूं, न अनजान के, लेकिन कोई बन जाये तो मेरे पास कोई उपाय नहीं है, उसे रोकने का। मुझे पता भी नहीं चलता। पता चलता है, तब तो मैं लड़ता हूं। कोई मुझसे आकर कहता है कि मैं आपका शिष्य हूं, तब तो मैं लड़ता हूं, लेकिन कोई आये ही न, मुझे पता ही न चले, तब बड़ी कठिनाई हो जाती है। और जब कोई मुझसे कहने भी आता है कि मैं आपका शिष्य हूं, तब भी मैं यह नहीं कहता कि तुम मेरे शिष्य नहीं हो, क्योंकि यह हक मुझे नहीं है। इतना ही मैं कहता हूं कि मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं, क्योंकि दूसरे को, मैं कैसे किसी को रोक सकता हूं? इतना ही मैं कह सकता हूं कि मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं। न जाने,

न अनजाने, मैंने किसी का गुरु होने का भार नहीं लिया है। क्योंकि मैं मानता हूं, सभी गुरु पंगु करने वाले सिद्ध होते गये हैं।

असल में गुरु बनने का मतलब यह है कि तुम्हारा बोझ मैं लेता हूं।

मैं किसी का बोझ नहीं लेता। अपना ही बोझ जिन्दगी में काफी है। किसी दूसरे का बोझ लेने का सवाल नहीं है और अगर मुझे कोई बात ठीक लगती है तो आपसे कह देता हूं, लेकिन इससे मेरा आपका कोई लेन-देन का सम्बन्ध नहीं बनता है। बल्कि मैं अनुगृहीत हूं कि आपने सुन लिया। आपकी तरफ से अनुग्रह नहीं मानता, क्योंकि लेन-देन के बड़े सूक्ष्म नियम हैं। कहीं पैसे लिए जाते हैं, कहीं श्रद्धा ली जाती है, कहीं अनुग्रह लिया जाता है, लेकिन सब बड़े सूक्ष्म नियम हैं।

आपसे मैं कुछ नहीं लेता, धन्यवाद देता हूं आपको कि आपने मेरी बात सुन ली यह भी क्या कम है? किसके पास समय है, किसके पास सुविधा है? बात खतम हो गयी। इसके आगे मुझे प्रयोजन नहीं है। लौटकर हिसाब नहीं रखूंगा कि आपने माना कि नहीं माना।

लेकिन यह जो हमारा देश है, यह हजारों साल से गुरुओं के नीचे जी रहा है। यह बिना सम्बन्ध बनाये नहीं रहता। यह सम्बन्ध बनाने की चेष्टा करता है। आदेश मानता है, चाहे विपरीत आदेश ही क्यों न हों। आदेश मानता है। यह कहता है, कुछ हमें आदेश दे दो, जो हम मानकर चलें। मैं कोई आदेश नहीं देता। मेरा जो भी है, वह निवेदन है और जैसा नानू भाई ने कहा कि अब धीरे-धीरे व्यवस्थित हो रहा है, ढांचा बन रहा है। मेरी तरफ से नहीं, बल्कि जो बना रहे हैं, वह मेरी तरफ से रोज मुश्किल में हैं। असल में मेरे आस-पास ढांचा बनाना मुश्किल ही है, क्योंकि मैं कोई ढांचे का आदमी नहीं हूं।

नारगोल में जमीन मिलती थी, मेरे मित्रों ने सब विधान बनाया था। कैबिनेट तक बात हो गयी थी। मंत्री राजी थे, छः सौ एकड़ जमीन देने को। वह दो-चार दिन में सब तय हो जाने वाला था। गांधी जी के सम्बन्ध में, एक वक्तव्य मैंने दिया। मित्रों ने आकर कहा कि इस वक्तव्य को अभी बाहर प्रगट न किया जाये। पहले वह जमीन मिल जाये, फिर हम वक्तव्य प्रगट करेंगे। मैंने कहा, जमीन के लिए अगर वक्तव्य रुकेगा, तब तो अंततः मैं ही रुक जाऊंगा।

जमीन जाने से, मित्र बहुत दुखी हुए, मुझे छोड़कर ही चले गये, दुश्मन ही हो गये। क्योंकि मित्र जब दुखी होते हैं, तो दुश्मनी से कम पर नहीं रुकते हैं। इसलिए मित्र बनाना खतरनाक है। इसलिए मैंने कहा, न हम मित्र बनाते हैं, क्योंकि मित्र बनाने का मतलब है, पोटेंशियल शत्रु बनाना, आज नहीं कल, बिल्कुल बन सकता है। मित्र के सिवाय शत्रु कोई नहीं बनता, तो मित्र भी नहीं बनाता। निपट अकेला आदमी हूं, ऐसा घूमता रहता हूं। अब आपको अच्छी लगती है मेरी बात, आप चार मित्र मिलकर कुछ करते हैं, मैं आपको रोक नहीं सकता, न

रोकता हूं, लेकिन आप मुझे नहीं बांध सकेंगे, किसी ढांचे में, किसी व्यवस्था में। आपका ढांचा जब तक बनेगा, तब तक...।

अभी कार में आ रहा था तो एक बहन ने कहा कि अगर मैं छः महीने तुम्हारे पास रह जाऊं तो डुप्लीकेट बन जाऊं, तुम्हारी सारी बातों की। मैंने कहा, वह तो हो जायेगा, लेकिन तब तक ओरिजनल बदल जायेगा। तुम तो पक्की बन जाओगी, लेकिन मैं नहीं रुका रहूंगा। मेरी कोई निष्ठा नहीं है, मेरी कोई श्रद्धा नहीं है, इसलिए मेरे साथ ढांचा बनाना मुश्किल है, क्योंकि ढांचा बनता है श्रद्धा पर, निष्ठा पर और ढांचा बनता है, उन लोगों के साथ, जिनमें एक तरह की कंसिस्टेंसी होगी, जो, जो आज कहेंगे, कल भी कहेंगे, परसों भी कहेंगे, तब आप ढांचा बना सकते हैं। लेकिन अगर आप ढांचा बनायें कल मैं कुछ कहूं, परसों भी वही कहूं, तब आप ढांचा बना सकते हैं। लेकिन अगर आप ढांचा बनायें, कल मैं कुछ कहूं, परसों कुछ कहूं तो ढांचा बन न पाये और कुछ गड़बड़ कर दूं।

मेरे जैसे लोगों के पास ढांचा कभी नहीं बनता, इसलिए ढांचा तभी बनता है, जब मैं मरने की तैयारी करूं कि आज मैं फाइनली मर जाता हूं। अब मैं कल से वही कहूंगा, जो मैंने आज कहा। अब मेरे कल, आज की पुनरुक्ति होंगे, अब मेरा कोई कल नया नहीं होगा। अब हर आने वाला कल मेरी आज का ही रिपीटीशन होगा, तब ढांचा बनता है। मेरे जैसे आदमी के पास कुछ ढांचा बनता नहीं।

अभी कुछ मित्र उत्सुक हैं, थोड़े दिन में थक जायेंगे तो समझ जायेंगे कि आदमी गड़बड़ है, इसके पास ढांचे नहीं बन सकते। मगर वक्त लगेगा। वक्त लगेगा, दो-चार मित्र फ्रस्ट्रेट होते चले जाते हैं, दूसरे दस-पांच आ जाते हैं। वह अपना शुरू कर देते हैं, फिर वह चले जाते हैं। अभी इधर तीन साल के मेरे मित्रों के नाम का आप पता लगायेंगे, तो आपको पता चल जायेगा कि जो मित्र छः महीने पहले थे, छः महीने बाद मुझे नहीं मिलता। उसमें उनका कसूर नहीं है, कसूर जो है, वह मेरा है। क्योंकि वह चाहता था कंसिस्टेंसी। वह चाहता था कि जो आपने कहा था, उसको अब इधर उधर मत करना और मैं कहता हूं जिन्दगी बहुत इन्कंसिस्टेंट है।

सिर्फ मौत कंसिस्टेंट है। जिन्दगी का भरोसा नहीं कि हम हर सुबह सूरज से कहें कि तुम कल जैसे निकले थे, वही रूप रंग में निकलो, क्योंकि कल मैंने तुमसे कहा था कि भगवान, हम तुम्हारी पूजा करेंगे और आज तुम बदल गये और कल बदलियां और रंग थी, आज और रंग हो गयीं। सूरज कहेगा तुम पूजा मत करो, लेकिन कोई और उपाय नहीं है।

यह जो नानू भाई ने सवाल उठाया है, सभी सवाल उचित हैं, मुल्क में बहुत मित्रों के मन में उठते हैं, लेकिन गहरे अर्थों में असंगत है। मुझसे उनका कोई

वास्ता नहीं है, मुझसे उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। मैं निपट अकेला आदमी हूं, जो घूमता फिरता, जो उसे ठीक लगता है, कहता रहता है। किसी को ठीक लगता है, मान लेता है। नहीं ठीक लगता है, नहीं मानता है। कोई मित्र बनता है, कोई शत्रु बनता है। वह सब आपकी तरफ से है वह मेरा काम नहीं है। उसके लिए मुझे कभी भी जिम्मेवार न ठहरा सकेंगे। उसकी मेरी कोई रिस्पॉन्सिबिलिटी नहीं है।

मेरा काम इतना ही था कि मैंने कह दिया और कल अगर लौटकर भी आपने कहा कि आपने कल यह कहा था, तो मैं कहूंगा कि कल का वह आदमी मर चुका, अब दूसरा आदमी हूं, वह आदमी हूं नहीं। तो इसलिए इन प्रश्नों की कोई संगति मुझसे नहीं है। फिर और कोई सवाल हो तो उठा लें, उनकी बार करें।

पहली बात तो यह है कि मेरे लिए कोई मामूली, सामान्य आदमी नहीं है। जिसको सामान्य आदमी कहते हैं, मेरे लिए कोई भी नहीं है और जिसको असामान्य आदमी कहते हैं, वह भी मेरे लिए कोई नहीं है। मैंने कहा कि तुलना में बड़ी हिंसा है। इस मुल्क में जगह-जगह घूमता हूं। सामान्य आदमी की बहुत तलाश की, मिला नहीं। जो भी मिला उसने कहा, यह सामान्य आदमी जो हैं, ये न समझ सकेंगे। एक भी आदमी ने न कहा कि मैं सामान्य आदमी हूं, मैं नहीं समझ सकूंगा। प्रत्येक आदमी अपने तईं विशेष है और प्रत्येक आदमी की अपनी विशेषता है, उससे हिंसा करवाती है कि दूसरा सामान्य है। कोई भी सामान्य नहीं है। सामान्य आदमी पैदा ही नहीं होता।

एक अरबी कहावत मैंने सुनी है कि भगवान जब आदमी को बनाकर भेजता है, तो जिस आदमी को भी बनाता है, उसके कान में कह देता है कि तुमसे बढ़िया आदमी मैंने कभी बनाया नहीं। सभी से कह देता है, तो हर एक यह ख्याल लेकर आता है कि मैं विशेष और दूसरे सामान्य। कोई सामान्य नहीं है और कोई विशेष नहीं है। या तो सभी सामान्य हैं या सभी विशेष हैं और कोई सोचता हो कि मैं ऐसा वर्गीकरण करूं, ऐसी क्लास बनाऊं कि विशेष लोगों के लिए कुछ और हो और सामान्य लोगों के लिए कुछ और हो, तो यह मेरे वश के बाहर है। मेरे लिए ऐसा कोई वर्ग नहीं है और मेरे पास कहने को दो बातें भी नहीं हैं। जो है यही है, मैं वही कह सकता हूं। अगर आप भी चले जायें और दीवार के सामने भी मुझे कहना पड़े, तो भी मैं वही कह सकता हूं जो आपसे कह रहा था, और कोई उपाय नहीं है।

दूसरी बात, आपने कही कि यहां कोई मंडन मिश्र या शंकर नहीं बैठे हुए हैं। अच्छा ही है कि नहीं बैठे हुए हैं, क्योंकि मंडन मिश्र अब दुबारा होंगे, तो कार्बन कापी ही हो सकते हैं। हर आदमी एक ही बार होता है। मंडन मिश्र भी एक ही बार होते हैं और आप भी एक ही बार होते हैं। यूनिकनेस इतनी गहरी

है कि एक आदमी दुबारा पुनरुक्त नहीं होता है। इसीलिए एक-एक व्यक्ति की महिमा अनन्त है। वह जैसा है, वह वैसा ही है। अगर बुद्ध अपने जैसे हैं तो जिसे हम सामान्य कहते हैं वह भी अपने जैसा है। कौन बुद्ध उसका मुकाबला कर सकता है ? अगर वह बुद्ध का मुकाबला नहीं कर सकता है, तो कौन बुद्ध उसका मुकाबला कर सकते हैं ?

लेकिन मनुष्य की चिन्तना चूंकि अहंकार केन्द्रित रही, सदा उसने वर्गीकरण किये, विभाजन किये, शूद्र बनाये, ब्राह्मण बनाये, महान पुरुष बनाये, सामान्य जन बनाये, ज्ञानी बनाये, अज्ञानी बनाये। इस जगत् में वर्ग नहीं है, व्यक्ति हैं और एक व्यक्ति बिल्कुल अकेला है, दूसरा भी नहीं है कि उसका वर्ग बनाया जा सके। वर्ग बनने के लिए कम से कम दो चाहिए। तो मैं कोई मंडन मिश्र की ज्यादा इज्जत नहीं करता आपसे और न मंडन मिश्र से कम इज्जत करता हूं आपकी। मंडन मिश्र, मंडन मिश्र हैं; आप, आप हैं। दोनों अपनी जगह अद्भुत हैं, इसलिए मुझे जो निवेदन करना है, वह मंडन मिश्र होते तो भी यही करता और आप हैं तो भी यही करूंगा। कोई उपाय नहीं है इसमें। एक फूल खिला है, जैसा मैंने कहा, और रास्ते से मंडन मिश्र निकलें, तो वह फूल कोई दूसरी सुगन्ध नहीं फेंकता है और गांव का चमार निकला तो कहता, चमार निकला—जरा सामान्य आदमी निकला, तो अपनी सुगन्ध सिकोड़ लूं। नहीं, फूल अपनी सुगन्ध फेंकता रहता है। हां, ऐसे फूल हो सकते हैं, प्लास्टिक के बनाये हुए और यांत्रिक कि जो आदमी देख कर सुगन्ध दे। पर तब प्रभावित करना लक्ष्य होगा। तो उन्होंने कहा कि सामान्य आदमी पर गौर करिये आप, क्योंकि सामान्य आदमी को प्रभावित न कर सकेंगे। मैं प्रभावित करना नहीं चाहता, इसलिए उस भाषा में मत पूछें।

और आप कहते हैं, तत्व-दर्शन की भाषा मत बोलिए। बड़ी मुश्किल बात है। बड़ी मुश्किल बात है, एक संगीतज्ञ से कहिए कि संगीत की भाषा में नहीं, जरा किसी और भाषा में संगीत सुनाइए और एक चित्रकार से कहिए कि रंगों की भाषा में नहीं, जरा किसी और भाषा में चित्र बनाइए, तब हम समझ सकेंगे, एब्सर्ड है।

मैं जो हूं, वही निवेदन कर सकता हूं, संगीतज्ञ हूं तो बीणा बजाऊंगा, चित्रकार हूं तो रंग पोतूंगा। जो मैं कर सकता हूं, वही कर सकता हूं और मेरे भीतर कोई, कई तरह के आदमी नहीं हैं। मल्टी साइकिक नहीं हूं, बहुत तरह के आदमी नहीं हूं, एक ही तरह का आदमी हूं। इसलिए बहुत तरह के चेहरे बनाना भी बहुत मुश्किल है, मेरे लिए। एक ही चेहरा है मेरे पास। सामान्य आदमी के सामने खड़ा होता हूं, तब भी वही, और जिसको आप असामान्य कहते हैं, उसके सामने खड़ा होता हूं, तब भी वही।

एक फकीर हिन्दुस्तान से कोई चौदह सौ वर्ष पहले चीन गया, बोधिधर्म। जब वह चीन पहुंचा तो वहां के लोग बहुत परेशान हुए, क्योंकि वह दीवार की तरफ

मुंह करके बैठता था, लोगों की तरफ पीठ कर लेता था। जब चीन सम्राट मिलने आया तो फकीरों ने—दूसरे फकीरों ने कहा कि आप जरा कृपा करें, यह आदत छोड़ें। सम्राट मिलने आ रहा है, वह बहुत नाराज हो जायेगा। आप उसकी तरह पीठ करके बैठेंगे। आज दीवार की तरफ मुंह न चलेगा, सामान्य आदमियों के साथ चल गया, वह बात दूसरी है, सम्राट आ रहा है।

तो बोधिधर्म हंसने लगा। उसने कहा कि मेरे लिए सामान्य, आदमी और सम्राट होता, तब तो तुम जो कहते हो, वह ठीक कहते हो। मेरे लिए तो कोई भी आये, मैं दीवार की तरफ ही मुंह करूंगा। समझाया कि ऐसा क्यों पागलपन पकड़ लिया है कि दीवार की तरफ मुंह कर रहे हो, तो उसने कहा कि दीवार की तरफ मुंह रखने का कुल कारण इतना ही है कि लोगों की तरफ मैंने बहुत बार मुंह करके देखा, वहां भी दीवार पायी तो मैंने सोचा कि नाहक क्यों परेशानी करनी है, तो दीवार की तरफ मुंह फेर लिया।

नहीं, मेरे लिए फर्क नहीं है। और उन्होंने कहा कि बुद्ध भी आये, और विनोबा भी आये। मुझे ज्यादा पता नहीं है, लेकिन मैं मानता हूं कि विनोबा आग्रही थे, प्रचारक थे, प्रोपेगेंडिस्ट थे और अगर आज नहीं हैं तो फ्रस्ट्रेशन के कारण। आग्रह था उनका कि ऐसी शक्ल दे देंगे, समाज को हम ऐसा बना देंगे। सत्याग्रह कहीं होगा आग्रह ? आग्रह था। मार्क्स आग्रही हैं, गांधी आग्रही हैं, विनोबा आग्रही हैं। वे एक शक्ल देना चाहते थे, वे व्यक्ति को एक ढांचा देना चाहते थे कि ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, एक नैतिकता देना चाहते थे, एक धर्म देना चाहते थे, एक आदत देना चाहते थे।

मैं आग्रही नहीं हूं। मैं कोई ढांचा आपको देना नहीं चाहता। मैं नहीं कहता, ऐसा आदमी अच्छा आदमी होगा और मैं नहीं कहता कि ऐसा आदमी होना चाहिए, क्योंकि मैं मानता हूं कि दो आदमी एक जैसे हो नहीं सकते। इसलिए ढांचे की बात करने वाले लोग गलती ही कर रहे हैं। आदमी मशीन नहीं है। मैं तो अच्छे आदमी का भी ढांचा नहीं देना चाहता, क्योंकि जब मैं देखता हूं तो मुझे लगता है कि अकेला राम रह जाये, तो दुनिया बहुत बेरौनक हो जायेगी, रावण के बिना बहुत बुरी हो जायेगी। मुझे तो लगता है कि रावण उतना ही जरूरी है जितना राम है, और मुझे लगता है, रामलीला कोई करके देखे रावण के बिना, तो पता चलेगा कि सब गड़बड़ हो गया, रामलीला होती नहीं, आगे नहीं बढ़ती। रामलीला में रावण जरूरी हिस्सा है।

जिसको हम बुरा कहते हैं, मेरे मन में उसकी भी स्वीकृति है। जिसको हम हिंसक कहते हैं, मेरे मन में उसकी भी स्वीकृति है, जिसको हम पापी कहते हैं, मेरे मन में उसकी भी स्वीकृति है। असल में मेरे मन में किसी की अस्वीकृति नहीं है, क्योंकि अस्वीकृति हुई कि प्रभावित करने की चेष्टा शुरू हुई। जैसे ही

मुझे लगा कि आप गलत हैं, आपका कुर्ता ऐसा होना चाहिए और आपके बाल ऐसे कटने चाहिए और आपको इस ढंग से बैठना चाहिए, मैंने आपको जैसे अस्वीकार किया कि मैंने आपके साथ दुर्व्यवहार शुरू किया।

दुर्व्यवहार के बहुत ढंग हैं और गुरु जितना दुर्व्यवहार करता है, उतना कोई भी नहीं करता है, क्योंकि वह आपको काटता है। वह कहता है कि ढांचे में आओ, ब्रह्मचर्य साधो, अहिंसा साधो, सत्य साधो, यह साधो, यह साधो। थोपता चला जाता है। वह आपको काट-पीट के जैसे पत्थर काटता हो कोई, ऐसा काटता है। महावीर को भी आग्रह है, काटने का लोगों को। बुद्ध को भी आग्रह है, गांधी को भी, विनोबा को भी। इसलिए आप मुझे मत गिनें। उन आग्रही लोगों से मेरा कोई लेना-देना नहीं। वे आदमी को एक शक्ल देना चाहते हैं।

मैं मानता हूं कि किसी आदमी को किसी दूसरे आदमी की शक्ल देने का हक नहीं है, यही हिंसा है, यही वायलेंस है। जैसे ही कोई पति कहता है कि पत्नी ऐसी होनी चाहिए, हिंसा शुरू हो गयी। बाप कहता है कि बेटा ऐसा होना चाहिए हिंसा शुरू हो गयी। जब भी कोई किसी दूसरे से कहता है ऐसे बनो, तब भीतर से हिटलर बोलने लगा। वह चाहे खद्दर के वस्त्र पहने हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

नहीं, यह जो आदमी है, यह आदमी टॉर्चर करने के बहुत कुशल रास्ते खोजता है। जो बहुत नासमझ हैं, वे छुरी छाती पर रख देते हैं, आपको टॉर्चर करने के लिए। जो ज्यादा समझदार हैं, वे अपनी छाती पर छुरे रख लेते हैं और कहते हैं हम अनशन करके भूखे मर जायेंगे; लेकिन तुम्हें ऐसा होना चाहिए। यह सब छुरेबाजी है। दूसरे की छाती पर रखते हो तो हिंसा, अपनी छाती पर रखते हो तो अहिंसा हो गयी। नहीं, असल में जैसे ही मैं दूसरे आदमी को इन्कार करता हूं, हिंसा शुरू हो गयी। जैसे ही मैं कहता हूं कि दूसरा आदमी ऐसा नहीं, तो मैंने अपने को थोपना शुरू कर दिया।

नहीं, मेरा कोई आग्रह नहीं है। मैं मानता हूं रावण अपनी जगह है और बड़ा जरूरी है और बड़ा प्यारा है, और राम अपनी जगह हैं। और अगर मैं पूजा करने जाऊंगा तो दोनों की करूंगा या दोनों की नहीं करूंगा। लेकिन हम चुनाव करना पसन्द करते हैं। हम कहते हैं, स्पष्ट कहिए, राम के पक्ष में हैं कि रावण के। मैं आदमी के पक्ष में हूं। रावण के भी नहीं और राम के भी नहीं। और आदमी एक अनन्त घटना है, उसमें अनन्त रूप हैं। मुझे गुलाब का फूल भी पसन्द है और चमेली का और चम्पा का भी और धतूरे का भी। मुझे केक्टस भी पसन्द है, कांटों वाला और मुलायम फूलों वाले पेड़ भी पसन्द हैं, लेकिन मैं नहीं कहता कि केक्टस को कांटे झड़ा देना चाहिए।

मैं परमात्मा का यह जगत् जो जैसा है, इसको समग्रता से स्वीकार कर रहा हूं, न बुद्ध स्वीकार करते हैं, न महावीर स्वीकार करते हैं, न गांधी स्वीकार करते

हैं, न विनोबा स्वीकार करते हैं। यह जो अस्वीकृति है, वह प्रभावित करने की, इनफ्लुएंस करने की, प्रॉपेगेट करने की चिन्ता आ जाती है उसमें कि आदमी को बदलो, संगठन बनाओ, पंथ बनाओ, समूह बनाओ, घेरा बनाओ, बदलो आदमी को। आदमी को ऐसा बदलो, जैसा हम चाहते हैं। लेकिन आप कौन हैं, आपको किसने कहा कि आदमी बदलो? आप हैं कौन? आप भी एक आदमी हैं, थोड़ा बोल लेते हैं ढंग से या थोड़े कपड़े छोड़कर नंगे खड़े हो जाते हैं या थोड़ा आपको कोई फेड पकड़ गया है कि चरखा चलाते हैं, कि बीड़ी नहीं पीते कि पान नहीं खाते, आपकी मौज है। लेकिन जब वह दूसरा आदमी बीड़ी पी रहा है, जब नहीं बीड़ी पीने वाला उसको पुलिस की आंखों से देखता है, तब हिंसा शुरू हो जाती है। कौन हकदार है? कोई हकदार नहीं है किसी पर थोपने का अपने को। तो इसलिए मुझे मत गिनें।

मुझे न कोई प्रचार करना है, न कोई सर्वोदय लाना है, और न कोई समाज का आदर्श बदलना है, न एक व्यक्ति को ऐसा बनाना है, वैसा बनाना है, ऐसा नहीं। तो जब मैं कुछ कह रहा हूं, तो वह कहना मेरा आनन्द होता है। उससे ज्यादा नहीं, उससे ज्यादा कोई प्रयोजन नहीं। हां, अगर मुझे लगता है कि बीड़ी पीने में मैंने बहुत दुख पाया, तो मैं निवेदन कर दूंगा कि बीड़ी पीकर मैंने बहुत दुख पाया, लेकिन तब भी मैं आपको कंडमनेशन से नहीं देख सकता कि आप बीड़ी पी रहे हैं, क्योंकि कोई आदमी बीड़ी पीकर सुख पा रहा हो, इसकी पूरी सम्भावना है। मैंने दुख पाया, वह मैं कह देता हूं। लेकिन मेरा दुख सबका दुख नहीं है और मेरा सुख सबका सुख नहीं है।

एक आदमी का नर्क, दूसरे का स्वर्ग हो सकता है। एक आदमी का स्वर्ग, दूसरे के लिए नर्क हो सकता है। यह भिन्नता की मेरे मन में स्वीकृति है। इसलिए अभी मैं एक ट्रेन में सवार हुआ। जिस कम्पार्टमेंट में मैं था—मैं था और एक मित्र और सवार थे। वह मुझे देखकर एकदम घबरा गये, जैसा कि महात्माओं को देखकर घबरा जाना चाहिए। एकदम उन्होंने नमस्कार किया और कहा, महात्मा जी! लेकिन मुझे ऐसा लगा कि मेरा आना उन्हें अच्छा नहीं लगा। असल में महात्मा का आना, किसी को भी, जिन्दगी में अच्छा नहीं लगता, क्योंकि महात्मा बिना गड़बड़ किये नहीं रह सकता, नहीं तो उसका महात्मापन खो जाये। मैंने उनसे कहा, ऐसा लगता है, मेरे आने से आप सुखी नहीं हुए। मैं दूसरे कम्पार्टमेंट में चला जाऊं?

उन्होंने का, नहीं, नहीं, बड़ा आनन्द हुआ आपके आने पर। मैंने कहा, आप जो कह रहे हैं, वह कुछ और कह रहा है, आपका चेहरा जो कह रहा है, वह कुछ और है। उन्होंने कहा कि क्या आप मेरे भीतर की बात पकड़ते हैं? मैंने कहा, भीतर की बात नहीं पकड़ता। आपका चेहरा इन्कार कर रहा है। तो उन्होंने

कहा, आपने बात ही उठा दी, तो मैं आपसे कह ही दूं कि मैं सफर में चलता हूं, तो मुझे शराब पीने की आदत है। मैंने शराब के लिए आर्डर दे रखा है। सोडा आ गया है, शराब आ रही है और आपको देखकर मैं डर गया और मैंने कहा अब मुश्किल हो गयी। अब न शराब पी सकता हूं, न आमलेट खा सकता हूं, अब बड़ी मुश्किल हो गयी है।

मैंने कहा, लेकिन क्या आप मुझे शराब पिलायेंगे ? उन्होंने कहा, नहीं, नहीं, मैं क्यों पिलाऊंगा ? मैंने कहा, आप पियेंगे तो मैं क्यों रोकूंगा ? अगर आप मेरे ऊपर होकर जबरदस्ती शराब पिलायें, जितनी हिंसा यह होगी, उससे कम हिंसा यह न होगी कि मैं आपको शराब न पीने दूं। ये दोनों बराबर हिंसाएं हैं। आप मजे से पियें। नहीं, उन्होंने कहा कि सन्त के रहते हुए मैं कैसे पिऊंगा। मैंने कहा, कैसे पागल हो गये हैं। शराब पीनी है कि एक सन्त को पीना है ? मैं दुष्ट आदमी नहीं हूं। अगर आपको फिर भी तकलीफ हो तो मैं चला जाऊं। दूसरी जगह खोज लूं।

उन्होंने कहा, नहीं, नहीं, आप बैठिये। वे बड़े डरते-डरते शराब पिये और बाद में उन्होंने मुझसे एक बात कही, जो हिन्दुस्तान भर के सब सन्तों को, जिन्दा मुर्दों को, सबको बता देनी है। उन्होंने मुझसे कहा कि आप सन्त जैसे दिखायी पड़ने वाले पहले आदमी हैं, जो मुझे भला आदमी मालूम पड़ा।

असल में सन्त भले आदमी हो ही नहीं सकते हैं।

अधिकतर सन्त सैडिस्ट होते हैं या मैसोचिस्ट होते हैं। या तो वे दूसरे को सताते हैं या खुद को सताते हैं और जो खुद को सताने में कुशल होते हैं, वह दूसरे को सताने का अधिकार पा जाते हैं। नहीं, मेरा उनसे कुछ लेना-देना नहीं है। विनोबा वगैरह को मत लायें। मेरे हिसाब से इन सबकी तो बेचारों की मानसिक चिकित्सा होनी चाहिए। मेरे हिसाब से ये कहीं जाते नहीं। ये बहुत अजीब तरह की विकृतियों में घिरे रहते हैं लेकिन यह मैं कह रहा हूं। ऐसे विनोबा हैं, ऐसा आपके मानने को नहीं कह रहा हूं। ऐसा मुझे दिखायी पड़ता है। मेरा दिखायी पड़ना गलत हो सकता है।

मेरे हिसाब से मनुष्य जाति को, जिन लोगों ने अब तक ढालने की कोशिश की है, उन ढालने वाले लोगों में, नब्बे प्रतिशत लोग मानसिक रूप से रुग्ण थे, इसलिए यह मनुष्यता पैदा हुई, जो मानसिक रूप से रुग्ण है। और यह मनुष्यता तो आयी है, पैदा की गयी है। इसमें महावीर का क्या हाथ है, बुद्ध का हाथ है, कृष्ण का हाथ है, क्राइस्ट का हाथ है, मुहम्मद का हाथ है। इन सारे लोगों ने, इन सारे शिक्षकों ने मनुष्यता को ढालने की कोशिश की और यह मनुष्यता पैदा हुई है। यह मनुष्यता बिल्कुल पागल मालूम पड़ती है। इस पागल मनुष्यता में बुद्ध को बचाया नहीं जा सकता, महावीर को हटाया नहीं जा सकता। उनका

हाथ जरूरी है और जब तक हम सीधे सत्यों को देखने की हिम्मत न जुटायें, बड़ी मुश्किल होती है।

असल में अच्छे आदमी, अनेक लोगों को बुरा बनाने का कारण बनते हैं।

अच्छे बाप के घर में, अच्छा बेटा पैदा होना बहुत मुश्किल हो जाता है। गांधी के बेटों से पूछो, हरिदास से पूछो महात्मा गांधी के बेटे हरिदास से पूछो कि तुझे क्या हो गया है, पागल ? इतना अच्छा बाप मिला और तुझे क्या हो गया कि तू मांस खाये कि तू शराब पिये कि तू मुसलमान हो जाये, तुझे क्या हो गया ? इसमें गांधी का हाथ था। इसमें गांधी का जो अति टॉर्चर करने वाला व्यक्तित्व है, जो कहता है कि नहीं, यह मत खाना। इसकी अन्तिम परिणति यही होने वाली है कि जो नहीं खाना है, वही खाना है। यह मत पीना, वह अन्तिम परिणति वही होने वाली है।

अगर कभी भी दुनिया में कहीं लेखा-जोखा होता होगा, तो हरिदास के चक्कर में गांधीजी फंसेंगे—अगर कहीं लेखा-जोखा होता है तो। जब बाप थोपता है अपने को, तो बेटे को बगावत के लिए तैयार करता है और जब सन्त थोपते हैं अपने को समाज के ऊपर, तो समाज को विकृत करते हैं। नहीं, मैं थोपने वाले लोगों के पक्ष में नहीं हूं। कम-से-कम मैं किसी तरह के थोपने के सहयोग में खड़ा नहीं हो सकता। मैं इन क्रिमिनल्स के साथ खड़ा होने को राजी नहीं हूं। मेरे लिए जो अपराधी है, वे हैं।

आपसे नहीं कहता कि आप अपराधी मान लेना। फिर थोपना हो जायेगा। मैं सिर्फ निवेदन करता हूं कि मुझे ऐसा लगता है। अब मजबूरी है। मेरी आंखें खराब हो सकती हैं तो मुझे ऐसा दिखायी पड़ सकता है, लेकिन जैसा दिखायी पड़ता है, वही मैं कह सकता हूं। नहीं, कोई योजना नहीं है मेरे पास। किसी आदमी को ढालने के लिए, कोई ढांचा नहीं है मेरे पास।

मेरी तो समझ यह है कि जब हम सब सांचे तोड़ देंगे, तब ठीक-ठीक मनुष्यता विकसित हो सकेगी। तब एक-एक आदमी वही हो सकेगा, जो होने को पैदा हुआ है। अभी हर आदमी इधर-उधर डैविएट कर जाता है। जबकि वह होने को पैदा ही नहीं हुआ। हम सब मिलकर उसको, वह होने में लगा देते हैं, जो आदमी जो होने को नहीं पैदा हुआ है।

एक मित्र कहते हैं कि आप दूसरे की निन्दा न करें, और कोई बात करें।

मैं किसी की निन्दा कर ही नहीं रहा। अपनी बात कह रहा हूं। उस अपनी ही बात में, वे भी आ जाते हैं। उसमें मेरा कसूर नहीं है और हम निन्दा और प्रशंसा के सिवाय कुछ और सोच ही नहीं सकते। सत्य की बात सोच ही नहीं सकते। मैं सिर्फ तथ्य, जो मुझे दिखायी पड़ रहा है, उसे कहता हूं। आप उसे निन्दा समझ लेते हैं, वह आपकी व्याख्या है, मेरी नहीं है। मैं कहता हूं कि गांधी

रुग्ण व्यक्तित्व हैं, मेरे लिए एक फैक्ट है, वह मैं कह रहा हूं आप कहते हैं कि निन्दा हो गयी, क्योंकि आपके मन में कोई प्रशंसा बैठी होगी कि महात्मा है, रुग्ण व्यक्तित्व कैसे हो सकते हैं ! निन्दा हो गयी । यह आपकी व्याख्या हुई । यह आपकी तकलीफ है । इससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है, इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है । मुझे दिखता है, वह मैं कहता हूं । आपके मूल्यों में भेद पड़ेगा, तकलीफ होगी, बेचैनी होगी, जिसको महात्मा कहा, वह बीमार कैसे है ?

हमको ख्याल है कि महात्मा बीमार होते ही नहीं, इसलिए हम खुद तकलीफ में पड़ जाते हैं । मैं किसी की निन्दा नहीं करता, न किसी की प्रशंसा करता, न निन्दा से कोई फायदा है, न प्रशंसा से । जो जैसा मुझे दिखायी पड़ता है, वैसा मैं कहता हूं । वह वैसा है ही, यह भी नहीं कहता । मुझे दिखायी पड़ता है, वह मैं कहता हूं ।

एक मित्र ने कहा है कि आप जो बातें कहते हैं, उससे युवा पीढ़ी के मन पर उल्टा प्रभाव पड़ेगा ।

जब मैं सीधे ही प्रभाव की फिक्र नहीं करता तो उल्टे प्रभाव की मैं कैसे फिक्र करूंगा ? मैं प्रभाव की ही फिक्र नहीं करता । और उल्टा क्या है, सीधा क्या है ? पुरानी पीढ़ी जिसे मानती है, वह सीधा है और नयी पीढ़ी जिसे वह मानती है, वह उल्टा है ? अगर आप शीर्षासन के बल खड़े हो जायें तो जितने लोग सीधे खड़े हैं, सब उल्टे खड़े हैं ? उल्टा कौन है ? और युवा पीढ़ी आपके सीधा करने की कोशिश से ही तो उल्टी नहीं हुई जा रही है, यह कभी सोचा है आपने ? आपके सीधे करने की कोशिश इतनी खतरनाक है कि कोई भी उल्टा हो जायेगा । पहले नहीं होता था, इसका कारण था, क्योंकि जाल आपका बहुत सख्त था, बहुत मजबूत था । गुलामी बहुत गहरी थी और जंजीरें आपके पास बहुत ताकतवर थीं । और हर बच्चे को आप युवा होने से ही रोक देते थे । बाल-विवाह बुनियादी तरकीब थी । उसकी वजह से कोई युवा नहीं हो पाता था । आठ साल या दस साल के लड़के की शादी कर दी, वह युवा कब हो पायेगा ? युवा होने के पहले वह बाप हो जायेगा । बाप कभी युवा नहीं होता । बूढ़ा हो गया है ।

पुरानी दुनिया में युवा थे ही नहीं । वह सौ वर्ष में पैदा हुए हैं, इसलिए आपकी पुरानी व्यवस्था में युवक था ही नहीं और युवक बिगड़ जायेगा, यह डर बाप को रहता है और उसके बाप को भी उसके सम्बन्ध में यही डर था । यह जो युवक है, जिसको आप सोच रहे हैं कि बिगड़ जायेगा, अपने बेटे के सम्बन्ध में, इसी डर में जियेगा । यह डर सनातन है । मैंने दुनिया की पुरानी से पुरानी किताब खोजने की कोशिश की । मुझे ऐसी किताब नहीं मिल सकी, जो यह कहती हो कि आज के लोग अच्छे हैं । सब किताबें कहती हैं, पहले के लोग अच्छे थे । छः हजार साल पुरानी किताब कहती हैं चीन में । वह कहती है, पहले के लोग बहुत अच्छे थे ।

आजकल की पीढ़ी बिल्कुल बिगड़ गयी है ।

इजिप्त में पत्थर मिला है, बेबिलोन में पत्थर मिला है । वे सब कहते हैं कि पहले के लोग अच्छे थे, आज की पीढ़ी, नयी पीढ़ी बिल्कुल बिगड़ गयी है । यह पहले के लोग कब थे ? ये कभी थे ? ये कभी भी नहीं थे । कभी भी पहुंच जाओ, नयी पीढ़ी बिगड़ी हुई मालूम पड़ेगी । उसकी वजह है । बाप बूढ़ा हो गया है और लड़का जवान है । दोनों एक साथ बूढ़े नहीं हो सकते, उपाय ही नहीं है । अगर कोई उपाय होता कि बाप और बेटे एक साफ बूढ़े हो जाते तो सब ठीक हो जाता ।

और ध्यान रहे, नयी पीढ़ी बिगड़ती नहीं है, नयी पीढ़ी के पास जो जीवन की धारा है, बाप के पास जीवन की धारा सूख गयी है । और जब जीवन की धारा सूखती है तो क्रोध पैदा होता है और जब क्रोध पैदा होता है तो निन्दा पैदा होती है, दुश्मनी पैदा होती है, लड़ाई पैदा होती है । बेटा वही कर रहा है, जो बाप आज भी करना चाहेगा, लेकिन नहीं कर पा रहा है, तो वह एक रस ले रहा है । रस ले रहा है कि सब बिगड़ गया, सब उल्टा हो गया, सब खराब हो गया और मजा यह है कि सब यही, वह भी करता रहा था और उसके बाप भी यही कह रहे थे ।

नहीं, कहीं कुछ नहीं बिगड़ गया है । आज जो हमें यह सवाल इतना तीव्र, मालूम पड़ता है, किन-किन बातों में आप कहते हैं कि नयी पीढ़ी बिगड़ गयी है ? पुरानी पीढ़ी वियतनाम में बम गिरा रही है और नयी पीढ़ी वियतनाम में बम न गिरे, इसलिए लड़ रही है । उल्टा कौन है ? पुरानी पीढ़ी का द्रोण एकलव्य का अंगूठा काट रहा है, नयी पीढ़ी का एकलव्य इन्कार कर रहा है कि गुरुजी, बहुत हो चुका है, अब अंगूठे न काटने देंगे । उल्टा कौन है ? कभी सोचा है कि सारा का सारा पूरा हमारा अतीत ? इसमें उल्टा है कौन ? लेकिन अपने को सीधा मान लेने की प्रवृत्ति से, दूसरे को उल्टा मान लेना बहुत आसान है । नयी पीढ़ी बहुत कमजोर होगी, आपके नीचे होगी । इस वक्त ताकतवर हो गयी है, इसके पहले कभी ताकतवर न थी, क्योंकि एक गांव में बेटा अकेला था और बाप सदा इकट्ठे थे । तो सब बाप मिलकर बेटे की निन्दा करें, तो वह खड़ा न हो सकता था । और बेटे इकट्ठे मिलकर बाप को कहीं फंसा नहीं पाते थे, क्योंकि बेटे इकट्ठे होने का कोई उपाय न था । एक-एक बेटा अपने बाप से सदा कमजोर था ।

अब हालत बदल गयी है । एक-एक यूनिवर्सिटी में बीस-बीस हजार विद्यार्थी इकट्ठे हो गये हैं । बेटे इकट्ठे हो गये हैं, बाप अलग-अलग पड़ गये हैं । बीस हजार बाप कहीं भी इकट्ठे नहीं हैं, इसलिए दबाना मुश्किल पड़ रहा है । और कोई मामला नहीं है । बीस हजार बेटे बदला ले रहे हैं । दस पच्चीस हजार साल का बदला है, स्वाभाविक है । काफी सताया है उनको, वे बदला ले रहे हैं । इसमें उल्टा वगैरह कुछ भी नहीं हो गया है ।

मैं न तो सीधे प्रभाव को उत्सुक हूं और न तो उल्टे प्रभाव को उत्सुक हूं। और उल्टे प्रभाव को कैसे रोकियेगा ? गांधीजी ने आत्मकथा लिखी, तो कई लोगों ने पत्र लिखा कि आपकी आत्मकथा पढ़कर हममें कामोत्तेजना पैदा हो गयी है। गांधीजी की आत्मकथा ने आग लगायी—कई लोगों में कामोत्तेजना पैदा हो गयी ? असल में जिसमें कामोत्तेजना है, वह किसी भी वजह से पैदा होगी और उभरेगी। गांधीजी की आत्मकथा न मिलेगी, तो भी कोई दूसरा बहाना खोजेगी। कोई कामोत्तेजना गांधीजी की आत्मकथा के लिए ठहरी नहीं थी, पहले दुनिया में। पहले भी उठती थी।

अभी हम लड़कों को कह रहे हैं कि सिनेमा देखकर बिगड़े जा रहे हो। तो पहले के लड़के क्या देखकर बिगड़े थे ? सिनेमा देखकर बिगड़े थे ? सिनेमा ने बिगाड़ दिया ? तो खजुराहो किसने बनाया ? आज के लड़कों ने ? तो सिनेमा की नंगी तस्वीरें बिगाड़ रही हैं ? तो कालिदास के ग्रंथ देखें। जितना नंगा वर्णन उनमें है, उतना आज की फिल्मों में कहीं भी नहीं है। कालीदास जंगल में जायें, तो फल नहीं दिखायी पड़ते हैं, स्त्रियों के स्तन ही लटके हुए दिखायी पड़ते हैं। अभी तो मैंने कोई फिल्म नहीं देखी, जिसमें ऐसा हो कि फलों की जगह स्त्रियों के स्तन लटके हुए हों। तो कालीदास नयी पीढ़ी के आदमी हैं ? आदमी कौन उल्टा है ?

लेकिन हम जीवन की सहजताओं को दबाने के लिए आतुर हैं कि जीवन की जो सहजता है, स्वाभाविकता है, उसको दबा दो, सप्रेस कर दो। उसको मार डालो बिल्कुल, गर्दन घोंट दो, तो बगावत होगी। यह जो सारी दुनिया में बगावत हो रही है। बूढ़ी पीढ़ी सेक्स सप्रेशन कर रही थी, नयी पीढ़ी नहीं दबा रही है, काम को। और आपको पता नहीं, पहली दफे स्टार्वेशन पैदा हुआ, पहले न था। लड़के में, लड़की में सेक्स मैच्युअरिटी आती, उसके पहले हम विवाह कर देते थे। भूख लगती, थाली लगा देते थे।

अब पन्द्रह साल में सेक्स मैच्युअरिटी आ जाती है, बल्कि और जल्दी। क्योंकि जितनी सम्पन्नता बढ़ रही है, मैच्युअरिटी जल्दी आ रही है। हिन्दुस्तान में चौदह साल की लड़कियां होती हैं मैच्युअर। और अमरीका में तेरह साल में होती थीं, अब बारह साल में हो रही हैं, दस साल में हो रही हैं। वैज्ञानिक कहते हैं नौ साल में अमरीका की लड़की मैच्युअर हो जायेगी, क्योंकि इतना पौष्टिक भोजन मिल रहा है कि मैच्युअरिटी जल्दी आ जायेगी। अब नौ साल या दस साल की लड़की मैच्युअर हो जायेगी और पच्चीस साल तक आप उसको स्टार्व करेंगे, रोकेंगे। लड़का मैच्युअर हो जायेगा चौदह साल में और उसको चौबीस-पच्चीस साल रोकेंगे कि पढ़ो, इंजीनियर बनो, डाक्टर बनो, अभी स्त्री से बचना।

और ये दस साल सबसे ज्यादा पोटेंशियल है। वीर्य की जितनी शक्ति अभी

है, इसके बाद फिर कभी न होगी। अब उसको आप मुसीबत में डाल दिये हैं। उसकी प्रकृति इन्कार कर रही है, उसकी बायोलॉजी इन्कार कर रही है और आप कह रहे हैं कि बेटे, बस, ब्रह्मचर्य ही परम-जीवन है, यह तख्ती लगाकर घर में बैठो और आंखें बन्द रखो और स्त्री वगैरह को मत देखना। लेकिन स्त्री को देखने से कहां बचोगे, कैसे बचोगे और आंख बन्द करने से स्त्री जितनी सुन्दर दिखायी पड़ती है खुली आंख से कभी दिखायी नहीं पड़ती है।

जीवन के तथ्यों को उघाड़कर रखने से ज्यादा मेरा कोई काम नहीं है। मुझे कोई प्रयोजन नहीं है क्या आदर्श है, कौन बनेगा, कौन बिगड़ेगा ? मैं यह मानता हूं कि अगर सत्य बिगाड़ता होगा, तो मेरी बातें भी बिगाड़ देंगी और अगर सत्य बिगाड़ता हो, तो मेरी समझ है कि सत्य के साथ बिगड़ना अच्छा है, असत्य के साथ-सुधरने के। अगर सत्य बिगाड़ता है तो बिगाड़ देगा। और आपने असत्य पांच-दस हजार साल से थोप रखा है। सुधारा नहीं उसने, कुछ आपको। तब एक सत्य को मौका दें कि जिन्दगी के सब सत्य सीधे और साफ हो जायें और उनको प्रगट होने दें, उनको छिपायें मत। देखें, असत्य को बहुत मौका दिया हुआ है। अब सत्य को मौका देकर देख लें कि क्या सत्य कर सकता है। मुझे नहीं लगता है कि सत्य बिगाड़ेगा और अगर सत्य भी बिगाड़ता हो दुनिया में, तब फिर मानना चाहिए, सुधरने का कोई उपाय नहीं है। फिर बिगड़ना होना ही हमारा अस्तित्व है।

एक अंतिम बात और फिर मैं अपनी बात पूरी करूं। एक मित्र ने पूछा है कि चरित्र और नैतिकता नयी पीढ़ी में, इस सम्बन्ध में कुछ कहें।

जो मैंने अभी कहा, वह आप ख्याल में लिए होंगे। चरित्र पुरानी दुनिया में था ही नहीं, नैतिकता थी, चरित्र नहीं था। नैतिकता का मतलब, समाज ने जो नियम तय किये थे, आदमी उनमें बंधकर जीने की कोशिश करता था। चरित्र का मतलब बहुत दूसरा होता है। चरित्र का और करेक्टर का मतलब होता है समाज नहीं, निर्णायक मैं हूं। और जो आदमी अपना निर्णायक नहीं हो, कभी करेक्टर का आदमी नहीं हो सकता। समाज तय करता था कि ऐसा करो, यह है नीति, इसके अनुसार चलो, अन्यथा नर्क है। नहीं तो स्वर्ग का प्रलोभन था। नर्क का डर था कि ऐसा करो।

तो नीति समाज थोपता है और चरित्र व्यक्तिगत उपलब्धि है।

और चरित्र से बड़ी कोई नैतिकता नहीं। लेकिन हमने व्यक्ति को कभी स्वीकार नहीं किया। हम व्यक्ति को इन्कार करते हैं। हम सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। हम कहते हैं सिद्धांत सदा ठीक, और गड़बड़ होती हो, तो व्यक्ति गलत, सिद्धांत ठीक। मैं आपसे कहता हूं चरित्रवान समाज, चरित्रवान युग कहेगा, व्यक्ति सदा ठीक और अगर सिद्धांत से गड़बड़ी पैदा होती है तो सिद्धांत में कोई भूल है।

एक छोटी-सी कहानी आपको कहूं। सुना है मैंने गर्मी का दिन है और कोई राजा अपनी कोठी में बैठा है, आराम से। नीचे आवाज सुनायी पड़ती है। कोई पंखे बेचता है और चिल्ला रहा है कि अनूठे पंखे हैं, सौ रुपये दाम हैं। राजा ने कहा, पंखा और सौ रुपये दाम। उसने खिड़की से झांककर देखा, तो बहुत हैरान हुआ। पंखे बिल्कुल साधारण थे, जैसे दो पैसे में मिलते हैं। पंखे वाले को बुलाया, कि या तो पागल है या हद्द चालबाज है। पंखे वाला ऊपर आया है और उससे पूछा कि ये पंखे और सौ रुपये ? क्या खूबी ? उसने कहा कि सौ साल की गारन्टी है, सौ साल तक पंखा बिगड़ेगा नहीं।

राजा ने कहा, सौ साल इस पंखे की गारन्टी है ! यह सात दिन चल जाये तो बहुत है। उसने कहा, महाराज, प्रयोग करिये और देखिये। मैं भागा नहीं जा रहा हूं। रोज इसी रास्ते से गुजरता हूं। यह रहा पंखा, आप रखिये। सौ रुपये दे दिये गये। पंखा तो दूसरे ही दिन टूट गया। राजा ने सोचा, अब वह लौटेगा नहीं। लेकिन दूसरे दिन ठीक खिड़की के नीचे आवाज लगायी। कहा कि पंखे खरीदने हैं ?

राजा ने उसे ऊपर बुलाया और कहा, कि अनूठा पंखा टूट गया। उसने एक दफा पंखे को देखा और फिर राजा को गौर से देखा और राजा से कहा कि मालूम होता है, आपको पंखा झलना नहीं आता। राजा ने कहा, पंखा झलना नहीं आता ? क्या मजाक कर रहे हो ? उसने कहा, कैसे झला था, जरा बताइए भी ? राजा ने पंखा झलकर बताया। उसने कहा, बिल्कुल गलत, बिल्कुल गलत। यह कोई ढंग है, पंखा टूटेगा नहीं तो क्या होगा ? यह तो आप बच गये, यही बहुत है, नहीं तो आप भी टूट जाते। गलत है यह ढंग। राजा ने कहा, ठीक ढंग सुनें ? पंखा, उसने कहा, हाथ में ठीक से पकड़िये, सम्भालकर और सिर को हिलाइए। पंखा—सौ साल के लिए गारन्टी है।

सिद्धांत तुम्हारे पक्के हैं। हम कहते हैं, सिद्धांत कभी गलत नहीं हैं, गलत है तो आदमी है। अगर ठीक होना है तो आदमी ठीक हो। सिद्धांत गारन्टी है, सनातन है। सौ साल नहीं, सनातन है। हमारे सब सिद्धांत बुनियादी रूप से गलत हैं। जिसको हम नैतिकता कहते हैं, वह बुनियादी रूप से गलत है और पाखंड के अतिरिक्त कुछ भी पैदा नहीं करती, करेगी। क्योंकि वह तथ्यों पर आधारित नहीं है। उसे तथ्यों पर खड़ा करना पड़ेगा और जब तथ्यों पर खड़ी होती है तो हमारे प्राण निकलते हैं, क्योंकि हमें तकलीफ मालूम होती है, क्योंकि हमारा सारा का सारा ढांचा गिरता है।

जैसे, उदाहरण के लिए एक दो बात मैं आपसे कहूं। अधिकतम नीति, नब्बे प्रतिशत नीति सेक्स सेंटर्ड है। एक तो पहली गलती यही है। बुनियादी गलती है, क्योंकि जो नीती नब्बे प्रतिशत यौन केन्द्रित हो, वह उस कौम ने बनायी होगी,

जो यौन से आकर्षित है और विक्षिप्त है। अगर हम किसी आदमी को कहें कि वह चरित्रहीन है, तो जो पहला ख्याल आता है, यह ख्याल आता है कि किसी स्त्री से वह बंधा हुआ न हो। यह ख्याल नहीं कि वह आदमी वचन का पक्का नहीं है। यह ख्याल नहीं आता कि वह आदमी टैक्स ठीक से नहीं चुकाता। यह ख्याल नहीं आता है कि वह आदमी जेब काटता है। ख्याल आता है चरित्रहीन, किसी स्त्री से बंधा हुआ है।

जिस मुल्क की दरिद्रता और जिस मुल्क की नैतिकता, केवल स्त्री पुरुष के यौन सम्बन्धों पर केन्द्रित है, वह सेक्स ऑब्सेस्ड है, वह कौम यौन विक्षिप्त है। उसकी सारी नीति वहीं खड़ी है, बस उतनी बात और सब तुल जाता है। सारा मामला इतना है, उससे ज्यादा कोई मामला नहीं है। इसलिए हम दूसरी दिशाओं में चरित्रहीन होने में सुविधा पा जाते हैं, बस एक मामले में पक्के रहो, पक्का पत्नी-व्रती रहे, कोई पति। पक्की पत्नी, पतिव्रता रहे, बाकी सब चलेगा। इतना काफी है। बाकी जिन्दगी जैसे इतने पर पूरी हो गयी।

और सच्चाई यह है कि यौन सम्बन्ध दो व्यक्तियों के बीच निजी सम्बन्ध है। सामाजिक नैतिकता को उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। असल में समाज की यह ज्यादती है कि दो व्यक्तियों के निजी सम्बन्धों में दखल-अन्दाजी करे, बीच-बीच में बार-बार झांककर देखे। हम सब जगह की-होल से झांक रहे हैं ! हमारा पूरा समाज हर एक के बाथरूम में छेद करके देखना चाहता है कि भीतर क्या हो रहा है ! हम सब एक दूसरे के भीतर पता लगा लेना चाहते हैं कि कहां क्या हो रहा है, कौन-कौन चरित्रहीन हैं।

यह चरित्रहीनता है, यह पता लगाना कि चरित्र नहीं है यह चरित्र की बात नहीं है। लेकिन तथ्य आधारित न होने से कठिनाई हो गयी है। तथ्य आधारित नहीं है बिल्कुल।

भौतिकवाद की निपट हमने निन्दा की है और हमारी नीति हमने ऐसी बनायी है कि उसमें भौतिकता के विकास के लिए गुंजाइश नहीं है। और जिन्दगी भौतिकता है। जिन्दगी तो नब्बे प्रतिशत, निन्यानबे प्रतिशत भौतिकता है जिन्दगी तो धन है, मकान है, रोटी है, कपड़ा है। और हमारी नीति इनकी बात नहीं करती ! क्योंकि यह तो मैटिरिअलस्टिक कंसीडरेशन है ! मोक्ष, आत्मा, ब्रह्म, इनकी हम कंसीडरेशन करते हैं, जो कहीं नहीं है ! जहां हमें जीना है चौबीस घंटे, उसका कोई कंसीडरेशन नहीं है। जहां हमें होना है, कभी पता नहीं, हो पायें या न। तो उसका पूरा कंसीडरेशन है। तो ऐसा मामला हो गया है कि सोचते हैं आकाश की, चलते हैं पृथ्वी पर। रोज टकरा जाते हैं। मुश्किल खड़ी हो जाती है। और इसलिए हम सारी दुनिया को गाली देते रहते हैं कि सब भौतिकवादी हैं और हम जैसा भौतिकवादी खोजना बहुत मुश्किल है। बहुत मुश्किल है, हमारी जैसी पकड़

भौतिकता की और किसी की नहीं है। लेकिन हमें सुविधा है, क्योंकि हम मंदिर में घंटा हिला आते हैं, हम आध्यात्मिक हैं, गीता पढ़ लेते हैं, जनेऊ बांधे हुए हैं।

अब जनेऊ भी भौतिक है, घंटा भी भौतिक है, और गीता भी भौतिक है, और मन्दिर भी भौतिक है। इसमें कुछ अध्यात्म नहीं है। जिस कौम ने अध्यात्म पर नीति को खड़ा करने की कोशिश की उसने सारे जीवन को अनैतिक बना दिया, क्योंकि जीवन के तथ्य हम न खोज पाये। वह तथ्य हमें पता ही नहीं हैं। हम खोजने से भी डरने लगे। धन की भी जरूरत है। अगर हम धन की जरूरत सीधी-सीधी स्वीकार कर लेते तो मुल्क कम चोर होता। जिन मुल्कों ने धन की जरूरत सीधी-सीधी स्वीकार की है, वहां आदमी कम चोर हैं। हमने कहा, धन? सब माया है। और वह महात्मा कह रहा है।

अभी मैं एक महात्मा के पास गया। वह समझा रहा है लोगों को कि धन इत्यादि सब माया है। स्वर्ण से बचो, कामिनी से बचो और लोग पैसे चढ़ा रहे हैं! वह बीच में भाषण बन्द करके, पैसे सब नीचे सरका लेता है! फिर वह कहता है, सब माया है! कामिनी कांचन इनसे बचो! फिर कोई उसको रुपया चढ़ाता है, वह जल्दी से उसको नीचे सरका देता है, फिर बैठ जाता है! सारे महात्मा यही कर रहे हैं, करेंगे। मैं नहीं कहता कि पैसा सरकाना गलत है। बिल्कुल ठीक सरका रहे हैं, लेकिन वह जो कह रहे हैं, वह गलत है। वह मत कहिये। पैसा मजे से सरकाइए, कौन नहीं कहता है? पैसा जरूरत है। मैं नहीं कहता कि साधु भी बिना पैसे के जी सकता है।

जब मैं बम्बई था, स्वामी नारायण सम्प्रदाय के दो साधु मुझसे मिलने आये, ध्यान के सम्बन्ध में समझने आये। तो मैंने कहा, संन्यासी कैसे हो गये, जब ध्यान को समझा ही नहीं? उन्होंने कहा, संन्यासी तो हो गये। मैंने कहा, संन्यासी हो कैसे सकते हो, बिना ध्यान में गये? उन्होंने कहा, नहीं, अब जानना चाहते हैं। मैंने कहा, पहले कपड़े उतारकर आओ। झूठे हैं कपड़े। कल सुबह ध्यान में हम बैठेंगे, उसमें आ जाओ।

उन्होंने कहा, बड़ी मुश्किल होगी। क्या मुश्किल होगा? उन्होंने कहा, एक तीसरा आदमी बाहर बिठा रखा है। उसको अन्दर लाये और कहा कि हमें एक दिक्कत है कि पैसा हम अपने पास नहीं रख सकते हैं। यह जो तीसरा आदमी है, पैसा रखता है। यह टैक्सी में हमारे साथ आये, पैसा चुकाये, तब हम आ सकते हैं। अगर इसको समय हो कल, तो ही हम आ सकते हैं, नहीं तो आना बहुत मुश्किल है। मैंने कहा, घबराओ मत। दो के आने से काम चल जायेगा, जहां तीन आ रहे हैं। और पैसा तुम अपने खीसे में क्यों नहीं रखते? उन्होंने कहा, हम तो रख ही नहीं सकते। मैंने कहा, और दूसरे के खीसे के पैसे का उपयोग कर सकते हो? तो तुम स्वर्ग जाओगे और यह बिचारा नर्क जायेगा, क्योंकि

तुमको ध्यान सिखलाने टैक्सी में बिठाकर इसने पहुंचाया। यह खीसे में पैसा रखे हुए तो तुम्हारे पैसे रखे हुए है?

बेईमान हो गया है मुल्क, क्योंकि हमने जीवन के तथ्य को स्वीकार नहीं किया। धन की जरूरत है। धन समाज का खून है। अगर इन्कार करेंगे तो बच न पायेंगे। इन्कार करेंगे तो हम पाखंडी हो जायेंगे, तब हमको पीछे से दरवाजे खोलने पड़ेंगे। उनको स्वीकार करने की जरूरत है। हम इतने बेईमान न होते, अगर हम धन को स्वीकार कर लेते। और इतने गरीब भी न होते, इतने कंजूस भी न होते, अगर हम धन को स्वीकार कर लेते। लेकिन हमने स्वीकार नहीं किया। अगर हम स्त्री को स्वीकार कर लेते तो इतना व्यभिचार न होता। वह हमने स्वीकार न किया। अगर हम मनुष्य के मन को समझ लेते और स्वीकार कर लेते तो इतनी परेशानी न होती। हम आदमी पर, बिल्कुल ही अनैसर्गिक चीजें थोपते हैं। अब एक आदमी ने एक स्त्री से शादी कर ली और वह स्त्री चाहती है कि वह आदमी किसी सुन्दर स्त्री को कभी गौर से न देखे। अस्वाभाविक है, असल में सौंदर्य गौर से देखने को ही बना है।

सूरत, दिनांक २२ मई, १९७०

१७. असली अपराधी : राजनीतिज्ञ

प्रश्न—आज तक आपने जो किया है, उसका मिशन क्या-क्या है—आपका उद्देश्य क्या है ? महाबलेश्वर शिविर में मैं आ चुका हूं ।

दो-तीन बातें हैं । हमारे समाज की और हमारे देश की एक जड़ मनोदशा है, जहां चीजें ठहर गयी हैं, बहुत समय से ठहर गयी हैं । उनमें कोई गति नहीं रह गयी । कोई दो ढाई हजार वर्ष से हम सिर्फ पुनरुक्ति कर रहे हैं । दो ढाई हजार वर्ष से हमने नये का स्वागत बन्द कर दिया है, पुराने की ही पुनराक्ति कर रहे हैं । तो मेरे काम का पहला हिस्सा पुराने की पुनरुक्ति को तोड़ना है । और पुरानी की पुनरुक्ति का हमारा मन टूटे, तो ही हम नये के स्वागत के लिए तैयार हो सकते हैं, वह दूसरा हिस्सा है । तो पहला तो पुराने को पकड़ने की हमारी जो आकांक्षा है, और जो नये का भय है, ये दो हिस्से हैं । पुराने को तोड़ देने का और नये के स्वागत के लिए मार्ग खोलने का ।

पुराने के पकड़ के कारण ही हम विज्ञान को जन्म न दे पाये । यद्यपि पृथ्वी पर सबसे पहले हम ही थे, जिन्होंने विज्ञान की शुरुआत की थी, लेकि हम वह नहीं हैं जो कि उसको अन्त तक ले जा सके । हम बहुत शुरू किये और रुक गये । जगत् में जितनी भी खोजें हैं, उन सबके बीज हमने शुरू किये, लेकिन फल कोई काट रहा है । तो कहीं कुछ भूल हो रही है और मेरी दृष्टि में जो भूल हो रही है, वह यह हो रही है कि वैज्ञानिक अनुसंधान निरन्तर पुराने को इन्कार करने

और नये की खोज करने से विकसित होता है । अगर एक बार हम पुराने को पूरी तरह स्वीकार कर लें, तो नये के खुलने के लिए अवकाश नहीं रह जाता है । तो वैज्ञानिक हम न हो पाये, इस वजह से ।

दूसरी, इसी वजह से—शायद हमारी धरती पृथ्वी पर सबसे ज्यादा साधन सम्पन्न है, लेकिन हम दरिद्र रह गये, क्योंकि टेक्नालॉजी तो सदा नयी है और हमारे पास चित्त जो है पुराने को दोहराने वाला है । तो जो टेक्नालॉजी को पैदा कर सके, वह सम्पत्ति को पैदा कर पाये । हम बुरी तरह पिछड़ गये ।

तीसरी बात, जो पुराने के ही पकड़ के कारण पैदा हो गयी, यह है कि जो हमें उपलब्ध हो गया था, उसे हमने संतोष बना लिया, स्वभावतः । अगर हम असंतोष रखें उसके साथ तो हमें रोज नये को खोजना पड़े । तो हमने एक गहरी संतोष की स्थिति बना ली । संतोष अगर बहुत गहरा हो जाये, तो मौत का पर्यायवाची हो जाता है । क्योंकि जीवन की ऊर्जा तो असंतोष से गति करती है । तो यह जो हमने स्टेटिक सोसाइटी बनायी है, मेरा मिशन आप कह सकते हैं कि एस्केपिज्म का यह, अवरोध का यह, गति के रुक जाने का जहां-जहां मुझे जो-जो कारण दिखायी पड़ता है, वहां-वहां चोट करूंगा । यह विध्वंसात्मक हिस्सा हुआ । यह विध्वंस का हिस्सा हुआ, यह एक पहलू है ।

जैसे ही यह पकड़ ढीली हो जाती है, वैसे ही नये आयाम, नये डायमेंशन, कहां-कहां विकसित हों, कैसे विकसित हों उसकी चिन्ता, उसका विचार, उसका तर्क, उसकी खोज शुरू होती है । अब जैसे, मुझे दिखायी देता है कि पुराने का मोह जो है, वह समाज को विश्वासी बनाता है, बिलीवर बनाता है । बिलीफ जो है, वह स्टेटिक सोसायटी पैदा करती है । और डाउट जो है, वह डायनामिक सोसायटी पैदा करता है । अगर हम शक कर सकें, संदेह कर सकें, तो अनिवार्य रूप से डायनामिक सोसायटी हो, पर कारण है संदेह के साथ जीना मुश्किल है, समाधान चाहिए ही । तो जैसे ही संदेह करते हैं, हमें वही स्थिति पैदा करनी पड़ती है जो समाधानकारी हो । तो संदेह रोज नयी स्थिति पैदा करने को मजबूर करता है । अगर हम फिर नयी स्थिति को पैदा करके विश्वासी हो जायें, तो फिर नयी स्थिति फिर कल पुरानी हो जाती है और पकड़ लेती है । इसलिए सतत् संदेह में जीना और सतत् पुराने को नष्ट करना और नये को जन्म देना, तो विश्वास को तोड़ना पहला हिस्सा होगा, और संदेह दूसरा सृजनात्मक हिस्सा होगा कि उसे हम पैदा करें ।

अब जैसे कि दो तरह की शिक्षा हो सकती है—एक शिक्षा जो विश्वास पैदा करवाती हो । एक शिक्षा जिसका आधार संदेह पर खड़ा हो, जो संदेह पैदा करवाती हो । शिक्षक भी सहयोगी होता हो, बाप भी सहयोगी होता हो, परिवार भी सहयोगी होता हो कि हम बच्चे के संदेह को कितना मुक्त कर सकें ।

जितना हम संदेह को मुक्त कर सकें, उतनी बड़ी प्रतिभा पैदा होती है। क्योंकि संदेह के साथ रुका नहीं जा सकता है, आगे बढ़ना पड़ेगा। और तत्काल किसी ऊंचे तल पर फिर से विश्वास को पैदा करना पड़ेगा, हालांकि पैदा करते ही विश्वास छोड़ने योग्य हो जाता है।

तो विश्वास की एक कीमत है कि वह पुराने संदेह को एक टर्निंग प्वाइंट एक पैसेज है। विश्वास जो है, वह ठहरने की जगह नहीं है। मुकाम नहीं है, यात्रा पथ है। तो हमने विश्वास को मुकाम बना रखा है। इसलिए हम ठहर गये हैं। संदेह जो है, वह सतत् सहयोगी है। और रोज हमें पैर उठाना पड़ेगा संदेह का और रोज नये विश्वास पैदा करने पड़ेंगे और रोज उन्हें डिस्कार्ड भी करना पड़ेगा।

तो एक तो मन के तल पर समस्त दिशाओं में—चाहे वह धन की हो, चाहे धर्म की, चाहे विज्ञान की, चाहे राजनीति की, जहां-जहां विश्वास है, वहां-वहां चोट करने की मेरी आकांक्षा है। और जहां-जहां विश्वास है, वहां-वहां संदेह को जन्म देने की भी आकांक्षा है। स्वभावतः, क्योंकि हम विश्वासी हैं और बहुत गहरे विश्वासी हैं, इसलिए हमें यह पूरी की पूरी प्रक्रिया विध्वंसात्मक और डिस्ट्रक्टिव मालूम होती है। क्योंकि हम एक पुरानी चीज में इस बुरी तरह पकड़े गये हैं कि आज कोई भी नयी चीज बनाने का संदेश भी हमें तत्काल ऐसा लगता है कि पुराने को छोड़ना पड़ेगा। और वह हमें विध्वंसक मालूम होता है। लेकिन मेरी अपनी समझ है कि सृजन के दो कदम हैं—विध्वंस पहला कदम है और सृजन दूसरा कदम है।

प्रश्न—और तीसरा पालन का ?

पालन जो है, वह तो सृजन का हिस्सा है। लेमिन हम किसी भी चीज को दो तरह से पाल सकते हैं। विश्वास की तरह से और संदेह की तरह से। और इन दोनों के फर्क को समझ लेना जरूरी है। विज्ञान भी पालन करता है, लेकिन निरन्तर अपने संदेह को जीवित रखते हुए।

एक वैज्ञानिक है, वह यह नहीं कहेगा···अभी आइंस्टीन के मरने के कोई महीने भर पहले किसी ने पूछा था कि आप एक वैज्ञानिक में और एक धार्मिक में क्या फर्क करते हैं ? तो आइंस्टीन ने कहा कि मैं यह फर्क करता हूं कि धार्मिक से सौ सवाल आप पूछें तो वह एक सौ एक जवाब देने को सदा तैयार है। और वैज्ञानिक से आप सौ सवाल पूछें तो निन्यानबे का तो वे इन्कार कर देंगे कि हमें मालूम नहीं है। एक का हम जवाब देंगे, वह भी इस भरोसे से देंगे कि अब तक इतना मालूम है। कल ज्यादा मालूम हो सकता है, इसलिए हम अपने संदेह को किसी भी स्थिति में समाप्त नहीं कर देते। हमारा विश्वास भी संदेहपूर्ण है।

इसको जो है, पालन तो करना ही पड़े, क्योंकि जिन्दगी अगर जीनी है, तो

निपट अविश्वास में नहीं जी जा सकती है। उसे तो विश्वास में ही जीना पड़ेगा। लेकिन विश्वास में जीते हुए निरन्तर संदेह को जागरूक रखा जा सकता है। तब हम किसी भी बिलीफ को ऐब्सल्यूट नहीं बनाते। तब सब बिलीफ रिलेटिव हो जाते हैं। यानी हम कहते हैं कि मैं इसे मानता हूं, लेकिन यह मेरा मानना जो है, रिलेटिव है और अब तक जो मैं जानता हूं, उसके हिसाब से ठीक है। कल जो मैं जानूंगा उसके हिसाब से गलत भी हो सकता है। इसलिए फ्यूचर हमेशा ओपन्ड है, क्लोज्ड नहीं है।

तो ऐसा विश्वास चाहिए जो संदेह कर सकता हो। और मेरी अपनी समझ है कि ऐसा विश्वास ही शक्तिशाली विश्वास है, जो संदेह भी कर सकता है। जो विश्वास संदेह करने से डरता है, उसे मैं इम्पोटेंट कहता हूं, वह नपुंसक है। वह खुद ही डरा हुआ है कि संदेह करेंगे, तो मर जायेंगे। तो जो विश्वास संदेह भी कर सकता है—संदेह को मैं विश्वास की विरोधी प्रक्रिया नहीं कहता, संदेह को मैं विश्वास की श्वास कहता हूं। उससे उल्टी नहीं है वह।

प्रश्न—संदेह और संशय में क्या फर्क है ?

संशय बहुत और बात है। डाउट और संशय में फर्क है। संशय का मतलब है इन्डिसीसिवनेस। संशय का मतलब संदेह नहीं है। संशय का मतलब है अनिश्चित। इन दोनों में बड़ा फर्क है।

गीता का वह वचन बहुत गलत समझा गया। हमने संशय का मतलब संदेह समझ लिया। संशय का मतलब है, ऐसा आदमी जो अनिश्चय में है। जो निश्चय कर ही नहीं पाता। तो जो निश्चय नहीं कर पाता, वह तो नष्ट हो जायेगा। लेकिन जो इतना निश्चय कर लेता है कि कभी संदेह नहीं कर पाता है, वह भी नष्ट हो गया है।

जिसका निश्चय ऐसा निश्चय हो जाता है कि अब वह इस ट्रुथ पर आंख उठाकर नहीं देखेगा। चाहे दुनिया बदल जाये, चाहे सत्य की सब स्थिति बदल जाये, लेकिन वह आंख बन्द करके माने ही चला जायेगा कि मैंने पक्का किया था, वही पक्का है। और अब आंख खोलने से भी डरेगा कि कहीं कच्चा न हो जाये। ऐसा आदमी नष्ट हो जाता है। ऐसा आदमी नष्ट हो जायेगा तो मैं कहता हूं संशय जिसके मन में में है वह भी नष्ट हो जाता है। और संदेहहीन विश्वास जिसके मन में है, वह भी नष्ट हो जाता है। जीता तो वह है जो संदेहपूर्ण विश्वास कर पाता है। और संदेहपूर्ण विश्वास जो है, वही डायनामिक प्रक्रिया है। और उसमें दोनों तत्व इकट्ठे हैं।

तो इस मुल्क को कैसे संशयपूर्ण विश्वास दिया जा सके, या विश्वासपूर्ण संशय दिया जा सके, यह मेरा बुनियादी तथ्य है, जिस पर मैं जोर डालना चाहता हूं।

प्रश्न—आप जो पुराना को तोड़ने को कहते तो क्या नये का स्वरूप आपके हृदय में है ? और है तो वह क्या है ?

जरूर है, अन्यथा पुराना··· । बहुत-सी बातों का ख्याल लेना पड़ेगा । असल में पुराने को तोड़ने का कोई प्रयोजन ही नहीं है, जब तक कि नया जन्म लेने के लिए तैयार न हो गया हो । असल में नया विजन में हो, तभी यह पुराना मालूम पड़ता है, नहीं तो पुराना मालूम नहीं पड़ता है । पुराना जो है, वह कम्पैरेटिव टर्म है । असल में जब आपको नया विजन में आ जाये, तभी आप कह पाते हैं कि यह पुराना हो गया है । अन्यथा आप इसको पुराना नहीं कह सकते ।

इस देश में क्या हुआ है, कि विजन देखना, हमने तोड़ दिया है । इस देश में क्या हुआ है, इस डर से कि कहीं पुराना न हो जाये, हमने विजन देखने की जो क्षमता है, वह तोड़ दी है । अब विजन की जो क्षमता है वह, अनिवार्य रूप से कुछ तत्व हैं उसमें । जैसे, रहेंगे तो हम इसमें, लेकिन सोचेंगे उसकी जो अभी नहीं हैं । रहेंगे तो ज्ञात में, सोचेंगे अज्ञात में । रहेंगे तो अतीत में, कामना करेंगे भविष्य की, तभी विजन होगा ।

यह मुल्क क्या है, रहता भी अतीत में है, सोचता भी अतीत की है ! तो विजन पैदा नहीं होता । पर हमने क्या तरकीब लगायी है कि हम सोचेंगे भी अतीत की, रहेंगे भी अतीत में ! न केवल हम राम के जमाने में रहेंगे, बल्कि राम-राज्य लाने की भी सोचते रहेंगे ! जब राम-राज्य लाने की सोचेंगे तो विजन का कोई उपाय न रहेगा । तब रिपिटीशन रहेगा कि राम-राज्य कैसा था ? तो उसको हम फिर से सोचते रहेंगे । इस देश ने दोहरा काम किया है, नया पैदा ही न हो सके, इसलिए पुराने में हम जीते हैं ।

जीना तो स्वाभाविक है । जीना सदा पुराने में होगा । असल में जो भी बन जायेगा, वह बनते ही पुराना हो जायेगा । रहेंगे तो हम पुराने में ही इसलिए इसमें कोई उपाय नहीं है । लेकिन सोचना सदा भविष्य में होगा । होना चाहिए भी । पैर तो हमारे जमीन पर हों, लेकिन सिर हमारा आकाश में होना चाहिए। और अगर पैर हमारे जहां खड़े हैं, अगर आंखें भी वहीं हैं, तो हम गड्ढे में गिरेंगे । आंखें वहां होनी चाहिए, जहां पैर कभी होंगे । अभी नहीं हैं जहां ।

हमने क्या कर लिया है, हमने एक ऐसा मानस तैयार किया है, जो पीछे की तरफ जीता है, पीछे की तरफ देखता है । और अगर भविष्य की कभी कोई कल्पना भी करता है, तो वह सदा अतीत के अनुरूप करता है । वह उसकी पुनरुक्ति ही होती है । अगर हम भविष्य का यूटोपिआ भी बनायें तो भी नाम हम राम-राज्य ही देना पसन्द करेंगे ।

इधर जो मेरा कहना है कि यह जो हमारी पकड़ है अतीत के सम्बन्ध में, यह पकड़ टूटनी चाहिए । अतीत को तोड़ने का कोई सवाल नहीं है । अतीत की पकड़ तोड़ने का, वह जो क्लिंगिंग है हमारी, वह हमें तोड़नी चाहिए । अब जैसे कि एक बाप अपने बेटे को चलना सिखा रहा है, निश्चित ही बाप ही बेटे को चलना

सिखायेगा । बाप अतीत है ।

प्रश्न—अतीत का महत्व है न ?

उसके महत्व का तो कोई इन्कार, सवाल ही नहीं है लेकिन उसका इतना महत्व नहीं है, जितना भविष्य का है । जो मेरी एम्फेसिस है । अतीत का बहुत महत्व है, लेकिन इतना महत्व नहीं है, जितना भविष्य का है, क्योंकि अतीत वह है जो जिया जा चुका । भविष्य वह है, जिसे जीना है । तो वह जो जिया जा चुका, वह हमेशा भूमिका ही बनेगा और जो जीना है, वह हमारा सपना होगा । उसमें हमारे हाथ फैलेंगे और जो जिया जा चुका है उसे सदा ट्रांसेंड करना होगा, उसे पार करना होगा । तभी हम उसे जी सकेंगे, जो अभी नहीं जिया जा सका है । इसलिए अतीत का महत्व है, लेकिन भविष्य से ज्यादा नहीं ।

इस मुल्क के मन में अतीत का महत्व इतना ज्यादा है कि भविष्य का कोई महत्व ही नहीं है । अगर हम बहुत गौर से देखें, तो हमने भविष्य के लिए जगह ही नहीं रखी है, बल्कि हमने भविष्य को हमेशा ही अंधकारपूर्ण भाषा में सोचा है । हमारा सतयुग पहले होगा, हमारा स्वर्ण युग, गोल्डन एज पहले हो जायेगी । फिर भविष्य सदा कलियुग में । और गिरा-गिरा-गिरा, अन्त में बिल्कुल ही नष्ट हो जायेगा । भविष्य जो है, वहां महाप्रलय है । अतीत जो है, वहां सब स्वर्ण युग बीत गया है । तो भविष्य में हम रोज गिर रहे हैं ।

डार्विन ने पश्चिम में एवोल्यूशन का ख्याल दिया, अगर हम अपनी फिलॉसफी को कहें, तो हमें उसे एवोल्यूशनरी नहीं कह सकते हैं । वह विकासात्मक नहीं है, वह पतनात्मक है । क्योंकि उसमें जो श्रेष्ठ है, वह पहले हो चुका, और जो निकृष्ट है, वह आने को है । तो जिस देश के दिमाग में निकृष्ट आने को है, और श्रेष्ठ हो चुका, स्वभावतः उसके लिए सबसे ज्यादा मूल्यवान अतीत होगा । और भविष्य तो एक दुख है, जिसे झेलना है । जब भविष्य एक दुख होगा, पीड़ा होगी, अन्धेरा होगा, तो फिर भविष्य को सृजन करने का मन न रह जायेगा । ऐसा भविष्य का क्या सृजन करना है ? भविष्य के सम्बन्ध में अगर कोई स्वर्ण की कल्पना न हो, तो विकासात्मक नहीं होगा समाज ।

इस मुल्क का अति मोह है अतीत के प्रति । अति मोह तोड़ना है । अतीत का अपना मूल्य है । लेकिन उसका मूल्य वैसा ही है कि जिस सीढ़ी को हम छोड़ते हैं, उस पर पैर तो रखना होता है । लेकिन पैर इसलिए रखना होता है कि अगली सीढ़ी पर हम पैर रख सकें और पिछली सीढ़ी को हम छोड़ सकें । अतीत सदा ही ट्रांसेंड करने के लिए है, वह पार जाना है; निरन्तर पार जाना है । जिसके पार जाना है, उसको पकड़ने का भाव नहीं होना चाहिए । और जिसे पाना है, कल उसे पकड़ने का निरन्तर भाव होना चाहिए । तो फ्यूचर जो है, भविष्य जो है, अधिक मूल्यवान है—यह मुल्क के चित्त में बैठना चाहिए । अतीत जो है,

यह कम मूल्यवान है। और भविष्य जो है, वह अतीत से श्रेष्ठतर होने वाला है। क्योंकि मन के कुछ नियम हैं। अगर मन एक बात स्वीकार कर ले, तो वे घट जाते हैं। अगर हम यह मान लें कि कल दुखद ही होने वाला है, इसमें कोई उपाय नहीं है। यह कल की व्यवस्था है। कल दुखद होगा ही, तो पहली तो बात यह है कि कल को सुखद बनाने का उपाय छोड़ दूंगा। और कल आसमान से नहीं आता, मुझसे ही आता है, फिर कल का जन्म मुझसे ही होता है। तो जिसने स्वीकार कर लिया कि कल दुखद होने वाला है, पीड़ापूर्ण होने वाला है, उसने सुख बनाना तो बन्द कर दिया, और वह दुख की प्रतीक्षा करने लगा। और दुख को प्रोजेक्ट भी करेगा, और कल अपनी भविष्यवाणी को पूरा करने के लिए वह कहेगा कि देखो, इतना-इतना दुख आ गया। तो वह जो सुखद आयेगा, उसको देखेगा नहीं और जो दुखद आयेगा, उसको बड़ा करके देखेगा। और भविष्यवाणी में तृप्त हो जायेगा और राजी हो जायेगा कि हमारे ऋषि-मुनि जो कह गये थे, वह सही है।

तो भारत की जो काल की व्यवस्था है, उसको मैं गलत मानता हूं। हमारा गोल्डन एज हमें भविष्य में ही रखना चाहिए और गोल्डन एज ऐसा है जो कभी आता नहीं, सिर्फ आता हुआ मालूम होता है। तभी हम गतिमान होते हैं। अगर कभी आ जाये तो फिर खतरा हो जायेगा। वह कभी आता नहीं। वह आता ही रहता है, और हम कभी उस हालत में नहीं होते कि हम कह दें कि आ गया। ऐसी हालत कभी नहीं होती कि हम कह दें कि पा लिया, क्योंकि पा लिया तो फिर पास्ट हो जायेगा। वह इटरनल लांगिंग है। तो भारत के मन में ऐसी लांगिंग नहीं है। इससे भारत का पतन बहुत स्वाभाविक हुआ।

हमारे सब ऋषि-मुनियों की भविष्यवाणी हमको पूरी ही करनी है, तो हमें पतन करना पड़ा। अपने पतन के लिए तैयार होना पड़ा। अभी भी हम तैयार हैं। अभी भी अगर, कल चीन आ जाये, अभी पृथ्वीराज जी से बात हो रही थी—अगर कल कोई दुश्मन हम पर हमला कर दे और कल हम और बर्बाद हो जायें, कल और गरीबी आये, हमें भीख मांगनी पड़े; कल उन्नीस सौ अस्सी में महा अकाल पड़ जाये और हमारे बीस करोड़ आदमियों को मरना पड़े, तो हम इसको भी एक बहुत भीतरी खुशी से स्वीकार करेंगे। हम कहेंगे कि यह होने ही वाला था, यह कहा हुआ है कि कलियुग में यह सब होने वाला है। इसको भी हम हमारी जो भविष्यवाणी है, हम उसकी पूर्ति होने देंगे। यह होने वाला है।

अभी मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि कलियुग में लोग व्यभिचारी होंगे। वह तो कलियुग में यह होने वाला है। सब आदमी सब नीति-नियम छोड़ देंगे। बड़ी खतरनाक भविष्यवाणियां हैं हमारी, यह हमें तोड़नी पड़ेंगी और इनको अगर तोड़ना है तो हमें थोड़ा महावीर पर संदेह करने पड़ेंगे। पच्चीस सौ साल का

मामला टूट नहीं सकता। और हमें तोड़ना है तो कहना पड़ेगा कि ऋषि कोई भविष्यवक्ता नहीं है, और ऋषि ने अगर ऐसा कहा है तो गलत कहा है। अब यह हमें चोटपूर्ण लगेगी।

प्रश्न—गलत कहा है, अगर वह स्थिति लोग देख रहे हैं तो उसका क्या ?

जो हम देख रहे हैं वह स्थिति हमने बनायी है, इस भविष्यवाणी का परिणाम है वह। अभी पीछे एक मजेदार घटना घटी है। कोई पांच साल पहले बम्बई से किसी मित्र ने मुझे एक पत्र लिखा। एक सज्जन रास्ते से गुजरते होंगे, और एक जैन साधु रास्ते पर अनायास उनको रोक कर, उनको कह दिया कि तुम्हारी उम्र तीन महीने और है—अनायास, कोई परिचय नहीं, बिना पूछे, सिर्फ रास्ते गुजरते वक्त। उनको कहा कि तुम्हारी उम्र तीन महीने से ज्यादा नहीं है ! वह कुछ मुख मुद्रा शास्त्र अध्ययन कर रहे होंगे और इस आदमी को उन्हें दिखायी पड़ा कि इसकी तीन महीने की उम्र है, उसके पूरे लक्षण दिखे। वह किताब पढ़ रहे होंगे, इनमें पूरे लक्षण उनको दिखायी पड़े। उन्होंने किसी बुरे भाव से इस आदमी को यह बात नहीं कहीं। उसने पहले तो इन्कार किया कि भई, ऐसे कैसे मर जाऊंगा। एक दो दिन उसने छिपाया। लेकिन ऐसी बात छिपायी नहीं जा सकती। उसने अपनी पत्नी को कहा कि मुझे अचानक साधु ने—अचानक, मैं पूछने नहीं गया, मैं परिचित नहीं हूं, मैं जैन नहीं हूं। उस आदमी का कोई प्रयोजन तो है नहीं और उसे कुछ दिखाई पड़ा और उसने मुझे कहा कि तुम तीन महीने से ज्यादा नहीं बचोगे। उसकी पत्नी का सुनना था कि उसने छाती पीटनी शुरू कर दी और उसने कहा कि मुझे तो बचपन में कहा था कि बत्तीस साल में मैं विधवा हो जाऊंगी और बत्तीस साल चल रहा है। तो अब तो बात बिल्कुल पक्की हो गयी। अब इसमें तो कोई उपाय नहीं रहा। वह खाट से लग गया। मेहमान देखने आने लगे।

तो मेरे एक मित्र परिचित उसको देखने गये। तो उन्होंने मुझे पत्र लिखा कि यह आदमी मरने की हालत में हो गया है, आप क्या कर सकते हैं। तो मैंने उसे एक पत्र लिखा कि तीन महीने तुम नहीं मरोगे, इसका पक्का मैं लेता हूं, और मैं बम्बई आता हूं। तुम उस साधु को पकड़ने की कोशिश करो, उस पर मुकद्दमा चलायेंगे। तुम उसका पता लगाने की कोशिश करो कि वह कौन आदमी है। क्योंकि उस आदमी ने ठीक मर्डर का काम किया है—तुम मार डाले जाओगे। मैंने कहा, यह मैं वचन लेता हूं—और मुझे कुछ पक्का पता नहीं है कि यह आदमी बचेगा कि मरेगा, मुझे कुछ पता नहीं, मुझे मालूम भी नहीं—पत्र में मैंने लिखा कि मैं यह वचन देता हूं कि तीन महीने में तुम नहीं मरोगे। और कभी भी मर जाओ, नही मरोगे ऐसा तो मैं नहीं कहता, लेकिन तीन महीने में तुम नहीं मरोगे, और मैं आ रहा हूं, और तुम उस आदमी की फिक्र करो।

जैसे ही मेरा पत्र उसे मिला वह खाट से उठा, और उसने कहा कि मैं जाकर

पता लगाता हूं कि वह कौन आदमी था। मन में तो उसके पकड़ ही रही थी यह बात कि इस आदमी ने मेरे साथ बुरा किया, लेकिन अकारण था, इसलिए बुरा क्यों करेगा ? उसने बमुश्किल खोजबीन करके उसका पता लगाया। और जब उसने पता लगाया और मेरा पत्र उन्हें जाकर दिखाया तो साधु भी घबरा गया, क्योंकि मैंने उसमें लिखा था कि साधु पर हत्या का मुकद्दमा चलायेंगे और तुम उसको पकड़कर पुलिस थाने में रिपोर्ट करो। वह साधु घबरा गया। उसने कहा, मुझे कुछ ज्यादा नहीं मालूम। मैं तो एक शास्त्र पढ़ रहा हूं। उसमें यह यह लक्षण हैं कि ऐसा हाथ, ऐसी चेहरे पर ऐसी स्थिति हो तो आदमी तीन महीने में मर जाता है। मुझे कुछ पक्का नहीं मालूम है। तो उस आदमी ने उसको पकड़ लिया। जब वह डर गया साधु, तो इस आदमी का जो भरोसा उसमें पैदा हो गया था, वह भी कम हो गया। उसने कहा, यह तो खुद ही डरा हुआ है, इसे भी कुछ पक्का मालूम नहीं है। मैं जब आया, तो उसने मुझसे कहा। मैंने कहा, तुम नहीं मरते हो ! अभी तक वह आदमी जिन्दा रहा। कोई ढाई साल बाद मरा।

यह जो आदमी है, यह मर सकता था तीन महीने में। इसमें कोई कठिनाई न थी। और ढाई साल में मरा, तो भी मेरी समझ है कि उस आदमी का हाथ फिर भी इसके मारने में है। इसकी जीवेषणा तो क्षीण हो ही गयी। इसका एक दफा बल जीने से तो चला ही गया, इसके पैर तो एक दफा उखड़ ही गये। जैसे किसी पौधे का एक दफा तो हमने जमीन से निकाल ही लिया। फिर से लगा दिया, वह रह गया दो साल, लेकिन उसके भीतर कुछ चीज टूट गयी। जीने की जो तीव्रता थी, वह क्षीण हो गयी। मरने का जो भाव था, वह प्रगाढ़ हो गया।

हिन्दुस्तान के साथ, पूरे मन के साथ ऐसा हुआ है। वह जो हमारी भविष्य-वाणी है, वह जो हमारी कल्पनाएं और योजनाएं दिमाग में रही हैं, उनने हमें पक्का कर दिया है। फिर जो भी घटता है, हम उसको स्वीकार कर लेते हैं। हम मान लेते हैं कि ऐसा होगा। हमने एक हजार साल की गुलामी इसीलिए स्वीकार की। हम सब तरह का भ्रष्टाचार, सब तरह की अनीति स्वीकार करेंगे। क्योंकि यह हम मानते हैं कि यह होने वाला है, यह होना ही चाहिए। यह न हो तो हम चकित होंगे। तो हमको लगेगा कि क्या गड़बड़ हो गयी ? अगर सतयुग आ जाये तो हम भरोसा न कर पायेंगे, क्योंकि हमको हमारे ऋषियों पर सन्देह करना पड़ेगा। और अगर हम सन्देह कर सकें इससे उल्टा तो हम सतयुग भी ला सकते हैं। क्योंकि जो भी आ रहा है, वह हमारे मन से आ रहा है। हम स्रष्टा हैं। और समय में जो घटनाएं घट रही हैं, वह हमारे द्वारा घट रही हैं। और हमने क्या मान रखा है, उस पर सब कुछ निर्भर है। एक बार अगर पूरे मुल्क का मान इसके लिए तैयार हो जाये कि स्वर्ग अभी लाना है, तो बहुत कठिनाई न हो, लेकिन पूरे मुल्क का मन अगर मान ले कि नर्क आना है, तो नर्क को लाना नहीं

पड़ता, वह अपने से आ जाता है। क्योंकि उसके लिए कुछ नहीं करना पड़ता है। सिर्फ हम बैठे रहें, सिर्फ देखते रहें, तो भी आ जायेगा। स्वर्ग के लिए तो कुछ करना पड़ेगा, सिर्फ देखने से नहीं आ जायेगा।

स्वर्ग हमारा सृजन है और नर्क है हमारे आलस्य की अपने आप आ गयी व्यवस्था।

तो वह आ रहा है। इसलिए मैं तो···अतीत के साथ हमारे जो बहुत आग्रह-पूर्ण सम्बन्ध हैं—अति आग्रहपूर्ण कहने चाहिए, ऑब्सेशन बन गया है; एक रुग्ण-भाव बन गया है। ऐसी हालत हो गयी है, जैसे किसी आदमी के पैर में चोट लग जाती है, तो दिन भर उसी में चोट लगती रहती है। चोट उसी में नहीं लगती, चोट तो रोज उस जगह लगती थी, लेकिन पता नहीं चलता था। अब घाव की वजह से बार-बार पता चलता है। तो हमारा अतीत एक घाव की तरह हमारी छाती पर बैठा है। वह हमारी पृष्ठभूमि नहीं है, जिस पर खड़े होकर हम आगे भविष्य में छलांग लगाते हैं। वह एक घाव की तरह है, जिसकी हमें सेवा-सुश्रुषा करके बचाना पड़ता है और उससे घाव मिटता नहीं, उससे घाव बड़ा हो रहा है। और घाव के धीरे-धीरे बड़ा होते-होते, हम सब घावग्रस्त हो गये हैं। और उस घाव के कई मुद्दे हैं। सब तरफ से उसने हमें पकड़ लिया है। जैसे; अतीत की इस घोषणा ने, अतीत की इस मान्यता ने, अतीत के इस विश्वास ने, भाग्य-वादी हमें बना दिया है, क्योंकि हमने समय की एक निर्धारित व्यवस्था स्वीकार कर ली है—एक डिटर्मिनेशन। और इसलिए मेरी अपनी समझ यह है कि हिन्दु-स्तान में अगर कम्युनिज्म किसी रास्ते से आयेगा, तो हिन्दुस्तान के डिटर्मिनेशन के रास्ते से आयेगा, क्योंकि मार्क्स दुनिया में यह सबसे बड़ा डिटर्मिनेशन है।

हिन्दुस्तान पर उसकी अपील किसी दिन भी बढ़ेगी, क्योंकि हिन्दुस्तान तो डिटर्मिनिस्ट माइन्ड है। क्योंकि हम तो सदा से यह मानते हैं कि चीजें तय हैं। अगर मार्क्स हिन्दुस्तान में पैदा होता, तो हमने उसको ठीक बड़े ऋषियों में जगह दी होती। क्योंकि वह आदमी ऐतिहासिक रूप से भाग्यवादी है। वह यह कह रहा है कि कम्युनिज्म आने ही वाला है। यह किसी के लाने की बात नहीं है। यह आपके वश की बात नहीं है इसे रोकना, यह आने ही वाला है। यह इनएवाय-टेबल है। यह तो नियति का हिस्सा है, डेस्टिनी है, कि पूंजीवाद के बाद कम्यु-निज्म आयेगा ही। अगर हिन्दुस्तान के मन में कभी भी कम्युनिज्म गहरे जायेगा, तो वह हिन्दुस्तान की भाग्यवादिता से जायेगा, कि जायेगा ही।

हम सदा से यह मानते रहे हैं कि ऐसा आयेगा। हमें कुछ करना नहीं है। हम स्रष्टा की तरह नहीं हैं। हम राहगीर दर्शक हैं। हम देख रहे हैं। जो आता है, उसको हम देख रहे हैं। इसलिए राहगीर का कोई मतलब नहीं है। जो आता है, उसे स्वीकार कर लेते हैं। यदि भारत को अपने भविष्य के बाबत कुछ भी निर्माण

करना है, तो उसे बहुत-सी अतीत की धारणाओं का विध्वंस करना पड़ेगा, उसे भाग्यवाद को तोड़ देना पड़ेगा। और एक बार हमें यह पक्का ख्याल लाना पड़ेगा कि जो भी कल होगा, वह अभी तक तय नहीं है, वह अभी तय हो रहा है, वह तय होने की प्रक्रिया में है, और हम उसके तय करने वाले लोग हैं। अगर वह तय हो चुका है, सिर्फ अन्फोल्ड हो रहा है तो फिर ठीक है; हम राहगीर, दर्शक हो जाते हैं।

हमने यह धारणा व्यक्तिगत रूप से स्वीकार की थी। उसके कारण थे कि हमारे पास। समाज की कोई धारणा ही नहीं थी। असल में यह भी सोचने जैसा है कि भारत के पास कोई सोसाइटी का कॉन्सेप्ट नहीं है। उसके पास जो कॉन्सेप्ट है, वह व्यक्ति-व्यक्ति का है। इसलिए हमारा सारा चिन्तन जो है, वह व्यक्तिवादी है। आप अपने भाग्य से तय हो रहे हैं, मैं अपने भाग्य से तय हो रहा हूं। हम दोनों का कोई सामूहिक भाग्य नहीं है। आपका अपना भाग्य है, मेरा अपना भाग्य है। आपका अपना भाग्य है, उनका अपना भाग्य है। हम सब अपने भाग्य को पार कर रहे हैं और इस वजह से कोई सामूहिक भाग्य, कोई राष्ट्र का भाग्य, कोई देश का भाग्य, कोई कलेक्टिव भाग्य—ऐसी हमारे पास कोई धारणा नहीं है कि हम सबका इकट्ठा भी कुछ है।

प्रश्न—धर्म और सम्प्रदाय के वजह से जो संगठन थोड़ा कुछ रहता था, वह तो व्यक्तिवाद तो नहीं है ?

संगठन पर अलग से थोड़ी बात करनी पड़ेगी। असल में संगठन बहुत तरह के हो सकते हैं। संगठन ऐसे हो सकते हैं जो आत्मघाती सिद्ध हों। अगर हम यहां इस कमरे में पच्चीस लोग हैं और इस कमरे के भीतर हम पांच संगठन बना लें, जो स्वविरोधी हों, एक-दूसरे को कण्ट्राडिक्ट करते हों, तो इससे तो अच्छा था कि पच्चीस ही असंगठित होते, तो इतना खतरा नहीं होता। पच्चीस लोग इस कमरे में अगर असंगठित हों, तब इतना खतरा नहीं है। लेकिन अगर पांच संगठन हों और आत्मविरोधी हों और एक-दूसरे की दुश्मनी में खड़े हों, तो यह कमरा मरेगा। हम एक-दूसरे को काटते रहेंगे, और हो सकता है कि पांचों एक-दूसरे को इस बुरी तरह से काट दें कि कमरा बिल्कुल इम्पोटेंट हो जाये, टोटली।

तो हिन्दुस्तान इम्पोटेंट हुआ, हिन्दुस्तान की अनेकता के कारण नहीं, हिन्दुस्तान की टूटी एकता के कारण। मैं नहीं मानता कि हिन्दुस्तान बरबाद हुआ है, इसकी डिस्यूनिटी के कारण। हिन्दुस्तान बरबाद हुआ, मल्टी-यूनिटी के कारण। हमारे पास बहुत तरह के यूनिट हैं—हिन्दू का अलग है, मुसलमान का अलग है। हिन्दू के भीतर भी, ब्राह्मण का अलग है, शूद्र का अलग है। ब्राह्मण के भीतर भी एक ब्राह्मण का अलग है, दूसरे ब्राह्मण का अलग है। हिन्दुस्तान को जो लोग कहते हैं, हम अनेकता के वजह से मरे हैं, वे लोग गलत कहते हैं। हिन्दुस्तान अगर अनेक

भी होता तो इतना खतरा नहीं था। क्योंकि अगर हिन्दुस्तान अनेक हो तो मेरे और आपके किसी भी दिन एक हो जाने में बाधा नहीं थी। किसी भी दिन जरूरत होती इमरजेन्सी, तो हम इकट्ठे हो जाते।

लेकिन हम एक थे। मैं और आप तो एक हो सकते थे, लेकिन मैं हिन्दू था, आप मुसलमान थे। अगर मैं भी आदमी होता और आप भी आदमी होते, तो हमारे बीच कोई संगठन न होता। तो कल अगर पूरे मुल्क में मुसीबत होती और मैं और आप इकट्ठे हो जाते तो हम दोनों की सामूहिक मौत थी। लेकिन मुसलमान पर खतरा आया, तो हिन्दू ने सोचा कि बहुत अच्छा हुआ। यह तो आ ही जाना चाहिए था पहले ही और जब हिन्दू का आया, तो हमने सोचा कि ठीक है, आ ही गया, तो बहुत अच्छा हुआ।

हिन्दुस्तान अनेकता की वजह से नहीं मरा, न एकता की कमी की वजह से मरा, हिन्दुस्तान मरा बहु-एकता की इकाइयों की वजह से। और वे सब इकाइयां अपने आप में राष्ट्र बन गयीं। हिन्दुस्तान मल्टी-नेशनल हो गया, हिन्दुस्तान एक राष्ट्र नहीं रह सका राष्ट्रीयताओं में विभाजित हो गया। यहां एक के भीतर दो, दो के भीतर तीन—यहां इतनी एकताएं हो गयीं कि उन एकताओं का इकट्ठा टोटल परिणाम जीरो हो गया। इसलिए मेरी अपनी समझ यह है कि हिन्दुस्तान को एक नहीं करना, बल्कि उसकी मल्टी-यूनिटी को तोड़ डालना है। यह उसका डिस्ट्रक्टिव कदम होगा।

और एकता ऐसी चीज है कि वह रोज की जरूरत नहीं है। मेरी अपनी समझ यह है। एकता रोज की जरूरत नहीं है, वह इमरजेन्सी की बात है। और जब भी इमरजेन्सी होती है, तो आदमी एक हो पाता है। नहीं तो नहीं हो पाता तो कारण भी नहीं है। लेकिन अगर इमरजेन्सी के वक्त में पहले से किये गये कमिटमेन्ट बाधा बन जाये, तो फिर एक नहीं हो पाते। तो हिन्दुस्तान में हम जितनी कोशिश करते हैं कि सारा देश इकट्ठा हो जाये, तो वह सब असफल होने वाली है। क्योंकि हमारी कोशिश भी अन्ततः एक और नये यूनिट को खड़ा कर जाती है। बस ज्यादा से ज्यादा जहां दस यूनिट थे, वहां हमारा एक ग्यारहवां यूनिट खड़ा हो जाता, जो कहता, सबको एक करना है। तो जो लोग उससे राजी हो जाते हैं, वे ग्यारहवीं यूनिट हो जाते हैं। तो वह उतने ही दूर के दुश्मन हो जाते हैं, जितने बाकी दूर आपस में थे।

हिन्दुस्तान में हमें एक दफा सब तरह की यूनिटी तोड़ डालनी है। वह जो छोटे-छोटे यूनिट हैं उनको मिटाने की फिक्र करनी चाहिए। जैसे गांधीजी ने कोशिश की कि हिन्दू-मुसलमान एक हो जायें, यह सफल नहीं हुआ मामला। अगर कोशिश होती कि हिन्दू का यूनिट टूट जाये, मुसलमान का यूनिट टूट जाये, तो सफलता बहुत व्यापक हो सकती थी। मैं यह कह रहा हूं जब हम कहते हैं कि

हिन्दू-मुसलमान एक हो जायें तो हम दोनों की यूनिट रिकग्नीशन दे देते हैं पहली बात। तरीके की बात है तो भी गलत है। टेक्निकली भी गलत है।

हिन्दुस्तान को बंटवाने में गांधीजी की कोशिश का जितना हाथ है, उतना हाथ किसी दूसरे आदमी की कोशिश का नहीं है। हालांकि गांधीजी ने जितनी फिक्र की एक रखने की उतनी किसी ने नहीं की है। अब ये बातें कंट्राडिक्ट्री मालूम पड़ती हैं, लेकिन मुझे कंट्राडिक्ट्री नहीं दिखायी पड़ती हैं। मेरी अपनी समझ यह है कि जितना हमने जोर दिया कि हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई, उतना हमने साफ किया कि ये दोनों अलग-अलग हैं। असल में जब हम भाई-भाई कहते हैं, तभी कहना शुरू करते हैं, जब दुश्मनी की हालत खड़ी हो जाती है। उसके पहले हम कभी कहते नहीं।

हम कभी नहीं कहते कि हिन्दी-बर्मी भाई-भाई, हिन्दी-चीनी भाई-भाई कह रहे हैं। वह भय हमें पक्का था कि आज नहीं कल अगर दुश्मनी होनी है तो वह चीन से होनी है। बर्मा से नहीं होनी है, लंका से नहीं होनी है। हमने कभी नहीं कहा कि हिन्दू-जैन भाई-भाई। हिन्दू-सिख भाई-भाई, वह हमने नहीं कहा। जो डर था, वह डर था मुसलमान का, तो हमने कहा हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई। वह हमारे भय का सबूत था। वह जितना हमने दोहराया उतना यह साफ हुआ कि उन दोनों के बीच कोई गहरी दुश्मनी है, जिसको भाई-भाई कह कर हम पूरा करना चाहते हैं। एक।

और दूसरा, गांधीजी और उनके दूसरे साथियों ने जितना जोर दिया कि हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई, उससे वह भाई-भाई तो न हुए, लेकिन बड़ा अजीब परिणाम आया और वह यह कि अगर दो भाई एक न हो सकें, तो पार्टिशन हो जाना चाहिए। जो उसका बेसिक लॉजिकल कंक्लूजन है। अगर हमने भाई-भाई पर जोर न दिया तो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान कभी पार्टीशन नहीं हुए होते। क्योंकि पार्टीशन दो भाइयों के बीच होता है। पार्टीशन का ख्याल ही नहीं आता। ख्याल ही इसलिए आया कि दो भाई एक नहीं होते तो ठीक है, जैसा बाप की जायदाद बंट जाती है वैसा हिन्दुस्तान की जायदाद बंट जानी चाहिए। जब हमने जोर दिया भाई-भाई पर, तो हमको राजी होना पड़ा पार्टीशन के लिए, क्योंकि वह उसका कंक्लूजन था। फिर आप मना नहीं कर सकते।

जब भाई-भाई हैं तो पार्टीशन ठीक है। जब राजी नहीं होते तो अलग-अलग हो जायें। जब यह देखने में उल्टा लगता है। गांधीजी ने पूरी जिन्दगी कोशिश की कि पार्टीशन बच जाये, लेकिन वे ही इसके जन्मदाता हैं। साइकोलॉजिकली वह जो व्यवस्था कर रहे थे, वह व्यवस्था जिम्मेदार है। उन्होंने कोशिश की हिन्दू-मुस्लिम एक हो जायें, उनके एक होने का अति आग्रह है, इम्फैटिकली, हिन्दू-मुस्लिम को अलग करता गया। यह जो कठिनाई है, यह अब भी आज भी मौजूद है।

आज भी हम वही चिल्ल-पों मचा रहे हैं। गुजराती-महाराष्ट्रियन भाई-भाई, हिन्दी-गैर-हिन्दी भाई-भाई। वह हम सब बकवास लगाये हुए हैं। टैक्टिक्स हमारी सब पुरानी है जो हजार दफे असफल हो चुकी है। यानी बड़ा मजा यह है कि जो चीजें हजार दफा असफल हो चुकी हैं उनको भी हम कभी छोड़ते नहीं, फिर उनका दुबारा वही उपयोग करने लगते हैं।

मेरा मानना है, यह गलत है। यूनिट तोड़ने चाहिए। गुजराती और मराठी एक न होंगे, गुजरात और महाराष्ट्र के यूनिट जाने चाहिए। हिन्दी और गैर-हिन्दी एक न होंगे—हिन्दी और गैर-हिन्दी का यूनिट हटना चाहिए। मजा यह है कि एक तरफ हम यूनिट बचाते हैं। कहीं की लिंग्विस्टिक प्रॉब्लम है तो एक तरफ यूनिट बचायेंगे, यूनिट को बसायेंगे, यूनिट को बनायेंगे, उसको डिफाइन कर देंगे, और इसके बाद हम कहेंगे कि अब सब एकता होनी चाहिए। यानी हम कुछ ऐसी एब्सर्ड कौम हैं कि जिसके दिमाग में तर्क जैसी चीज भी नहीं है कि हम कर क्या रहे हैं? अंग्रेज इस मुल्क को जिस बुरी तरह से विभाजित नहीं कर पाया, हम उतना विभाजित किये दे रहे हैं बीस साल में।

मेरा कहना यह है, जैसे इस मामले में हमें यूनिट्स तोड़ने चाहिए। जहां हमें यूनिट दिखायी पड़े, यूनिट को तोड़ना चाहिए।

प्रश्न—जैसे हिन्दू-मुस्लिम को रिकग्नाइज करते हैं, तब तो वह ये दोनों कौमें अलग हो गयीं।

मैं जो कह रहा हूं—जैसे, हिन्दुस्तान को एक फेडरल गवर्नमेंट की जरूरत है। इसको स्टेट गवर्नमेंट की जरूरत बिलकुल नहीं है। रिकग्नाइज नहीं कर रहे, बीमारी है और वह बीमारी को रिकग्नीशन दे रहे हैं, आप कभी लैंग्वेज के नाम पर कभी प्रॉविंस के नाम पर और कभी किसी दूसरी बात के नाम पर। और सबके पीछे कुल कारण इतना है कि हिन्दुस्तान के अधिकतम पोलिटीशियन की आकांक्षा कैसे तृप्त हो—तो जितना मुल्क टुकड़े में हो, उतनी तृप्त हो सकती है। उतने मिनिस्टर्स होंगे, उतनी कैपिटल्स होंगी, उतने गवर्नर्स होंगे।

असली बुनियाद, कुल जमा उतनी ही कि हिन्दुस्तान में कैसे पांच हजार आदमी मिनिस्ट्री में बैठे रहें, कैसे पचास गवर्नर हों और इसलिए रोज हर प्रान्त को दो टुकड़े करने पड़ेंगे आपको, क्योंकि उस प्रान्त के दुगुने राजनीतिज्ञ तृप्त हो जायेंगे। अगर सौराष्ट्र अलग हो जाये और गुजरात अलग हो जाये; अगर बरार अलग हो जाये और महाराष्ट्र अलग हो जाये, तो दुगुने राजनीतिज्ञों की तृप्ति होगी। वह जो बरार का राजनीतिज्ञ बम्बई में नहीं बैठ पाता है मिनिस्ट्री में, वह कल अगर अमरावती राजधानी होगी या नागपुर राजधानी होगी, तो वह इस मिनिस्ट्री में होगा।

मेरा कहना यह है कि जब हिन्दुस्तान यूनिट को स्वीकृति देता चला जाता है,

तब तक यूनिट और छोटे बनाने पड़ेंगे। पचास साल में आपको एक-एक जिला एक-एक स्टेट होगी, इससे कम में कोई उपाय नहीं है। क्योंकि आपकी जो प्रोसेस है, उसका लॉजिकल मतलब है, वह आज देख लेना चाहिए। हिन्दुस्तान को फेडरल गवर्नमेंट की जरूरत है। यहां एक गवर्नमेंट काफी है। एक गवर्नमेंट हो तो मुल्क एक होता है, नहीं तो मुल्क एक नहीं होगा। दिल्ली में एक गवर्नमेंट पर्याप्त है। बाकी ये सारी स्टेट तोड़ देनी है। मैं जो कह रहा हूं···रिकग्नीशन का मेरा मतलब यह है कि हमें बीमारी को तो पहचानना पड़ेगा।

अब जैसा मेरा समझ है कि अगर हिन्दू और मुसलमान की बात को तोड़ना था तो हमें हिन्दू और मुसलमान की बात नहीं उठानी है। बात नहीं उठाने का मतलब यह था कि यह प्रश्न आजादी का था, यह प्रश्न हिन्दू-मुसलमान का था ही नहीं। इस मामले को उठाने की जरूरत नहीं। हम सबको उठाने में गांधीजी ने खिलाफत के दिनों से उपद्रव शुरू किया। वह पूरे वक्त पहले तो मुसलमान की खुशामद करते रहे, ऐसी खुशामद जो कि बिल्कुल गैर-जरूरी है। वह इसी डर से कि मुसलमान साथ हो। अब खिलाफत से गांधीजी का कोई मतलब न था।

टर्की में खलीफा रहता है या नहीं रहता, इससे गांधीजी को लेना-देना नहीं था। हिन्दुस्तान में बहुत से लोग खिलाफत शब्द से गलती में पड़े। वह समझे कि खिलाफत का मतलब विरोध, कि आन्दोलन है। वहां खलीफा टर्की में रहता है कि नहीं रहता है, इसका कोई सेंस नहीं था। जिन्ना का टूटने का कारण यह बना कि जिन्ना गांधी से ज्यादा नॉन-सेक्टेरियन आदमी था। जिन्ना ज्यादा सेक्यूलर आदमी था। जिन्ना रिलिजस आदमी नहीं था। और जिन्ना के टूटने का कारण यह था कि जिन्ना को हैरानी हुई कि यह खिलाफत में गांधीजी किसलिए अली बन्धुओं के साथ घूम रहे हैं।

मुसलमान के मसले को गांधीजी क्यों ले रहे हैं हाथ में। गांधीजी हाथ में ले रहे हैं, क्योंकि वह मुसलमान को फुसलाना चाहते हैं, उसको इकट्ठा करना चाहते हैं। जिन्ना भयभीत हो गया, भयभीत हो जाना स्वाभाविक था। खतरनाक पॉलिटिक्स हो सकती है। हिन्दू क्यों उत्सुकता ले, इससे कोई मतलब न था। हिन्दुस्तान की राजनीति को अगर नॉन-रिलिजस बेसिस मिली होती, जो कि गांधीजी की वजह से नहीं मिल सकी, क्योंकि गांधीजी बहुत गहरे रूप से हिन्दू थे। सारा ढंग, जीना, व्यवस्था, सब हिन्दू की थी। सारा महात्मापन जो था, वह सब हिन्दू का था। गांधीजी का सारा व्यक्तित्व हिन्दू का प्रतीक था और गांधीजी कहते भी थे कि मैं बुनियादी रूप से हिन्दू हूं।

यह सारी की सारी बात ने एक स्थिति खड़ी कर दी जिसमें कि मुसलमान को भाई बनाना पड़े और कुरान को पढ़ना पड़े, गीता को पढ़ना पड़े। गीता की भी जरूरत न थी, कुरान की भी जरूरत न थी, गांधीजी के सामने। मैं जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि रिलिजस फैक्ट को हिन्दुस्तान की राजनीति में जगह देने की कोई जरूरत ही न थी। एक दफा जरूरत बनायी आपने, तो फिर रोज-रोज एक-एक कदम आगे बढ़ना पड़ा और उसके लाजिकल परिणाम यह कभी भी कहे जा सकते थे कि हिन्दुस्तान बंटेगा। और अभी भी वही हो रहा है।

अब आपने लैंग्वेज को प्रॉब्लम बना लिया। अब मैं कह सकता हूं कि हिन्दुस्तान बंटेगा। यह देर लग सकती है, दस-बीस, पचास साल की, लेकिन हिन्दुस्तान बंटेगा। दक्षिण हिन्दुस्तान, उत्तर हिन्दुस्तान किसी भी दिन टूट सकता है क्योंकि आपने अब दूसरा उपद्रव बना लिया, लैंग्वेज का। रिलीजन झंझट खत्म हुई, तो आपने लैंग्वेज की झंझट खड़ी कर ली। और जिन्होंने रिलीजन की झंझट खड़ी की, वे भी बड़े अच्छे लोग थे और जिन्होंने लैंग्वेज की झंझट खड़ी की, वे भी कम अच्छे लोग नहीं थे। और जब कोई हम मसला उठाते हैं तो बड़ा अच्छा मालूम पड़ता है।

बड़ा अच्छा मालूम पड़ता है कि प्रत्येक लैंग्वेज को उसका अलग प्रान्त होना चाहिए और एकदम अच्छी बात मालूम पड़ती है। लेकिन इसके अल्टिमेट कन्क्लूजंस क्या होंगे, वह हमारे ख्याल में नहीं है। हिन्दुस्तान हमेशा अच्छे आदमी की दलील से परेशान है। बुरा आदमी जो दलील देता है, उसकी कोई सुनता नहीं है, क्योंकि वह बुरा आदमी है। अच्छा आदमी जो दलील देता है, वह सुन ली जाती है। और अच्छे आदमी के वहम में वह दलील भी स्वीकार हो जाती है, और बड़े खतरे होते हैं।

अब जैसे हिन्दुस्तान, लैंग्वेज से बंटवायी गयी—उसका बंटवारा पक्का है। अभी भी हम उसको रिकग्नाइज करते जा रहे हैं! और रोज हम देख रहे हैं कि रोज हम रेजिस्ट करते हैं, लेकिन जब आप एक जगह स्वीकार करते हैं, तो पंजाब में कैसे बचेंगे स्वीकार करने को ? जब आप एक प्रान्त में स्वीकार करेंगे, पंजाब में कैसे बचेंगे ? और जब आपने हिन्दू-मुसलमान को अलग मानने के आधार पर दो देश स्वीकार कर लिए, तो आप नागा को अलग मानने से कब तक बचेंगे।

दिमाग तो वही है और तर्क भी वही है नागा का, वह भी कहता है, हम अलग हो जाना चाहते हैं। हम नहीं रहना चाहते आपके साथ। हमारा आपसे कोई लेना-देना नहीं है। हमारा देश अलग है, हमारा सारा जीवन अलग है। मुसलमान और हिन्दू में इतना फर्क नहीं है, जितना कि भारतीय और नागा में। तो रेशियल फर्क हैं। मुसलमान और हिन्दू तो एक ही खून के हैं, इसलिए इनमें कोई रेशियल फर्क नहीं है। इनका तो जो फर्क है वह रिलिजस, लैंग्वेज का फर्क है। बाकी बस्तर का आदमी है वह। उसको आप कब तक रोकेंगे ? वह आदमी बिल्कुल अलग है। हिन्दुस्तान एक बड़ा कांटीनेट है। उसमें जैसे आप स्वीकार करते जायेंगे, आप मुश्किल में पड़ते चले जायेंगे। तो मेरा कहना यह है कि हमें

बुनियाद से रिकग्नीशन लेना बन्द करना है।

अभी मैं अहमदाबाद था पीछे। वहां के हरिजन मण्डल के मित्र मेरे पास आये। और उन्होंने कहा कि गांधीजी आते थे, हरिजन के घर में ठहरते थे। आप क्यों नहीं ठहरते हैं? तो मैंने उनसे कहा कि अगर तुम अपने घर में मुझे बुलाओ, तो मैं आने को राजी हूं, लेकिन हरिजन के घर में मैं न जाऊंगा। क्योंकि हरिजन को इतनी भी रिकग्नीशन देना मैं पसन्द न करूंगा कि वह हरिजन है और उसके घर में ठहरता हूं। यह बड़ा अच्छा रिकग्नीशन है, लेकिन हरिजन फिर हरिजन ही बना रहता, और अब और खतरा हो जाता, क्योंकि बीमारी अब आदर योग्य मालूम पड़ती है।

अछूत होना बेहतर था, क्योंकि वह शब्द गन्दा था और किसी को पकड़ने में सुखद नहीं मालूम पड़ता था। हरिजन बड़ा अच्छा शब्द है। जैसे टी० बी० को हम अच्छा नाम दे दें और ऐसा दिल से लगाये रखें। अभी हरिजन शब्द खतरनाक है। यह बड़ा प्यारा मालूम पड़ता है और हरिजन भी गौरव अनुभव करता है कि मैं हरिजन हूं और आप मेरे घर ठहरे हैं आकर। मगर रिकग्नीशन जारी है और उसको हम फिर बांटे चले जा रहे हैं! यह हमें सारी बांटने की प्रक्रिया तोड़नी चाहिए। और जहां-जहां यह मुल्क टुकड़ों में बंटा है, वहां टुकड़े कैसे तोड़े जायें, उसका सारा इन्तजाम करना चाहिए। इस मुल्क को एक बनाने की जरूरत नहीं है, इस मुल्क की भीतरी एकताओं को तोड़ने की जरूरत है। मैं जो बेसिकली बात करना चाहता हूं—और एकता, एकता इसका सहज परिणाम होगी। उसको लाने की जरूरत ही नहीं है।

प्रश्न—वह फेडरल गवर्नमेंट के माने में…?

नहीं, बिल्कुल डेमोक्रेटिक हो, लेकिन स्टेट को अलग तोड़ने की जरूरत नहीं है। यह एड्मिनिस्ट्रेटिव ब्लॉक होने चाहिए, इसको तोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। हिन्दुस्तान की पॉलिटिक्स इतनी गन्दी न हो, अगर हम इतने डबरे न बनायें, लेकिन इतने डबरे बनाने पड़ते हैं क्योंकि इतने मेंढक-मछलियां हैं।

प्रश्न—अस्पष्ट

वह सारे के सारे मामले यह हैं कि पाकिस्तान के मामले हिन्दुस्तान से भिन्न नहीं हैं। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान एक ही माइण्ड के दो टुकड़े हैं। इनके मामले कभी भिन्न होने वाले नहीं हैं। जो मामला यहां है, वह मामला वहां है। वह तो यह भ्रांति थी, हमको कि हिन्दू-मुसलमान का मामला है, दिमाग का मामला है।

अब हुआ क्या है, जैसे बंगाल में है, अब जो पाकिस्तान का बंगाली हिस्सा है, वह जो बंगाली पाकिस्तानी है, वह पश्चिमी पाकिस्तानी के खिलाफ है, क्योंकि पंजाब से जो मुसलमान गया है या सिन्ध से जो मुसलमान गया है ढाका, वह उसका उतना ही दुश्मन है, जितना की कलकत्ते का आदमी मारवाड़ी का और गुजराती का दुश्मन है। ये सब फॉरेनर्स हैं। कलकत्ते में फॉरेनर है मारवाड़ी, ढाका में फॉरेनर है लाहौर का आदमी। इसमें कोई फर्क का मामला नहीं है।

असल में हमारा माइन्ड जो है, वह लड़ने की प्रवृत्ति वाला है। वह बहुत तरह की वृत्तियां उसमें लड़ने की हैं। एक मुद्दा खत्म होता है, हम दूसरा मुद्दा फौरन लड़ने के लिए ईजाद कर देते हैं। और मैं मानता हूं कि अगर ऐसा ही हो, तो पुराने मुद्दे पर ही लड़ना बेहतर होता है, कम से कम नये मुद्दे तो नहीं हैं। अगर हिन्दू-मुसलमान इकट्ठे रहते, तो गुजराती मराठी का झगड़ा कभी नहीं होता। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान अगर इकट्ठे होते तो गुजराती मराठी का झगड़ा कभी नहीं होने वाला था। क्योंकि एक बड़ा झगड़ा हमको काफी तृप्ति दे रहा था। अब वह झगड़ा खत्म हो गया।

हमारा दिमाग लड़ने वाला है। अब वह कहता है, नया झगड़ा कैसे खोजना? अब वह गुजराती-मराठी लड़ रहा है। आप गुजराती-मराठी का लड़ना छोड़ना बन्द कर दें, गुजरात को पूरा यूनिट बना दें, तो सौराष्ट्री और गुजराती लड़ेगा। वह बच नहीं सकता। वह माइन्ड वही है। वह तत्काल नये डिवीजन खड़े करके नयी यूनिट बनाकर लड़ाई शुरू कर देता है। इस माइन्ड को तोड़ना पड़े। माइन्ड को तोड़ने के सारे उपाय किये जा सकते हैं। लेकिन हम क्या करते हैं, हम इस माइन्ड को तोड़ना नहीं चाहते। इस माइन्ड के रहते यूनिटी चाहते हैं।

हम कहते हैं, आप मुसलमान हैं, मुसलमान धर्म बहुत अच्छी बात है। आप हिन्दू हैं, हिन्दू धर्म का तो कहना ही क्या, बहुत महान् धर्म है। अब आप दोनों एक हो जाते हैं। आपकी दोनों नासमझियों की पहले हम तारीफ कर दिये, उनको हम पुख्ता कर दिये और अब दोनों से कहा कि दोनों इकट्ठे हो जाओ। अजीब पागलपन है। कहना पड़ेगा कि तुम्हारा मुसलमान धर्म भी पागलपन है, जो आदमी को कटवा दे, तुम्हारा हिन्दू धर्म भी पागलपन है जो आदमी को कटवा दे। इतनी हिम्मत जब तक न जुटा पायें। जब तक हम दोनों को कहते रहें, तुम भी ठीक, तुम भी ठीक। और दोनों ठीक, और अल्ला-ईश्वर तेरे नाम! तुम दोनों आ जाओ और गले-गले मिल जाओ।

यह होने वाला नहीं है। हमको कहना पड़े कि उसका नाम अल्लाह भी नहीं है और उसका नाम ईश्वर भी नहीं है। उसका कोई नाम नहीं है और जब तक तुम नाम ले रहे हो, तुम बिलकुल बेसमझ हो। हमें इस तरफ से चोट करनी पड़े तो, तो हम यूनिट तोड़ सकें, और एक बार यूनिट टूट जाये, तो इस मुल्क में एकता लानी कठिनाई नहीं है। और एकता हमेशा इमरजेन्सी की जरूरत है, रोज की जरूरत है, यह भी एक पागलपन है। हम चिल्लाते हैं कि एकता, एकता—हमारे लिए रोज की जरूरत बन गयी। क्योंकि ये छोटे-छोटे टुकड़े रोज जान ले रहे हैं; नहीं तो एकता इमरजेन्सी की बात है।

जब मुल्क पर कभी हमला हो, कोई मुल्क पर दुश्मन आ जाये, तो मुल्क इकट्ठा हो पाता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। अभी भी चीन का हमला हुआ था, तो आप इकट्ठे हो गये। इसलिए एकता कोई रोज की जरूरत नहीं है। क्योंकि बीमारी जब आयेगी, तब दवा का इलाज कर लेंगे। इसकी कोई जरूरत ही नहीं है। हमको जरूरत पड़ गयी है, क्योंकि हम रोज उपद्रव में पड़े हुए हैं।

प्रश्न—अस्पष्ट

उसके कारण हैं पालीटीशियन। असल में इतने पोलीटीशियन्स हैं मुल्क में कि उनकी तृप्ति कैसे हो।

प्रश्न—यह ह्यूमन नेचर है?

यह ह्यूमन नेचर नहीं है। असल में यह बड़े मजे का सवाल आपने पूछा। ह्यूमन नेचर जैसी कोई चीज नहीं है। यानी इसका मतलब यह है कि आप ह्यूमन नेचर को जैसा बनाना चाहें, वह बन जाता है। ऐसी कोई फिक्स्ड चीज नहीं है। इसलिए अगर किसी देश में स्त्रियां महत्त्वपूर्ण हैं और पुरुष कम महत्त्वपूर्ण हैं, तो वहां ऐसा लगता है कि ह्यूमन नेचर है कि स्त्री महत्त्वपूर्ण है कि पुरुष महत्त्वपूर्ण है।

अब जैसे कुछ इलाकों में जहां कि स्त्री महत्त्वपूर्ण हैं, वहां स्त्री खड़े होकर पेशाब करेगी, पुरुष बैठकर पेशाब करेगा। इम्पार्टेन्स जिसकी है वह खड़े होकर पेशाब करेगा। यह इसकी उपाय नहीं है कि बेचारे को बैठकर करना पड़े। उस इलाके का आदमी सदा से ऐसा सोचता था कि स्त्री खड़े होकर पेशाब करती है, पुरुष बैठकर पेशाब करता है। जब पहली दफे उसने पुरुष को खड़े होकर करते देखा और स्त्री को बैठकर तो उनको पता चला कि यह ह्यूमन नेचर नहीं है। ह्यूमन नेचर जैसी कोई फिक्स्ड चीज नहीं है। ह्यूमन नेचर बहुत फ्लेक्सिबल चीज है। इसलिए हजार तरह का ह्यूमन नेचर हो सकता है। आप कैसा विकसित करते हैं। तो यह जो इण्डियन माइण्ड है, उसने एक कण्डीशनिंग विकसित की है।

अब जैसे, कुछ बातें हम विकसित करते हैं परम्परा से। लम्बे अर्से में वह फिक्स्ड हो जाती हैं। एक दफा फिक्स्ड हो जायें तो नेचर बन जाती हैं। आदत ही होती है लेकिन वह नेचर बन जाती है। अब जैसे कि यह जो लड़ने की वृत्ति है—लड़ने की वृत्ति के हजार रूप होता है। लड़ने की वृत्ति बड़ी फ्लेक्सिबल चीज है। वृत्ति है। हमने क्या किया है, पहले तो हम जो बुनियादी चीजें हैं, उनको स्वीकार नहीं करते हैं। फिर वे कनिंग रास्ते खोजकर निकलती हैं। जैसे लड़ने की वृत्ति।

इसे हमें स्वीकार करना चाहिए, यह है। लेकिन हम कहेंगे, नहीं है। मनुष्य का धर्म नहीं है लड़ना। हम क्या करेंगे? पहले तो इसको इन्कार कर देंगे, मनुष्य का धर्म ही नहीं है लड़ना, यह तो पशु का धर्म है। इसको पशु का धर्म तय कर

देंगे और मनुष्य भी लड़ने की वृत्ति से भरा हुआ है, जो स्वाभाविक है। इसके लिए हम और कुछ न करेंगे और मनुष्य को समझायेंगे कि मनुष्य कभी लड़ता नहीं। मनुष्य तो महान् है। अब वह उस बेचारे के भीतर जो वृत्ति है, वह क्या करे? अब वह कोई तरकीबें निकाल लेती है—मस्जिद के पीछे से लड़ेगा, मन्दिर के पीछे से लड़ेगा, भाषा के पीछे से लड़ेगा।

अगर हम सीधा-सीधा स्वीकार कर लें कि लड़ने की वृत्ति मनुष्य का हिस्सा है, तो हम उसके लिए आउट-लेट खोज सकते हैं, ज्यादा उचित है। जैसे, खेल में, अगर हम अपने मुल्क के लड़कों को तीन घण्टे ग्राउन्ड पर खेल खिला सकें, तो हम मुल्क के नब्बे परसेंट उपद्रव को बन्द कर दें। अब एक उम्र है, जब एक बच्चा दो घण्टे तक गेंद फेंकता है, वह उसको नहीं मिलता है फेंकने को, वह पत्थर फेंकता है। वह पत्थर बस पर फेंकेगा, कांच पर फेंकेगा। आप उसको तीन घण्टे ग्राउन्ड पर गेंद फिंकवाते हैं, स्टिक लड़वा दें, लकड़ियां तुड़वा दें, तो वह तीन घण्टे बाद तृप्त होकर घर लौट आयेगा।

यह बड़े मजे की बात है कि आमतौर से शिकारी तरह के लोग बहुत भले लोग होते हैं। उनकी हिंसा वहां निकल जाती है। और जिनको आप बहुत भले आदमी कहें, वह अक्सर बहुत बुरे आदमी होते हैं। हिटलर सिगरेट भी नहीं पीता है, शराब भी नहीं पीता है, मांस भी नहीं खाता है, नौ बजे रात सो जाता है। पक्का महात्मा है। और मनोवैज्ञानिक अब कह रहे हैं कि अगर हिटलर सिगरेट पीता होता, जुआ खेलता होता, वेश्या के घर हो आया होता, शराब पी लेता, तो दुनिया युद्ध में न जाती। इस आदमी का कुछ तो निकल जाता।

प्रश्न—तो क्या संयम से कुछ नहीं होता है।

उसके वैज्ञानिक रास्ते खोजने चाहिए। उससे ही संयम पैदा होता है। संयम जो है, वह सप्रेशन नहीं है। संयम जो है, वह समझ है। अगर एक युवक एक उम्र में जब वह लड़ना चाहता है, और मैं समझता हूं कि लड़ने की बात युवा होने का लक्षण है। और जिस दिन नहीं होगी दुनिया में, उस दिन दुनिया बड़ी फीकी हो जायेगी। अब रहा लड़ने का जो क्षण है, उस लड़ने के क्षण को हम गौरवपूर्ण बना पाते हैं कि अगौरवपूर्ण बना पाते हैं। यह हमारी सामाजिक व्यवस्था और चित्त को सोचने की बात होगी।

अब जब युवक लड़ना चाहते हैं तब वे इस ढंग से लड़ें कि लड़ना खेल हो जाये और गम्भीरता न बन जाये। लड़ेंगे तो वह पक्का। और आपने खेल न बनाया तो वे हिन्दू-मुसलमान के नाम पर लड़ लेंगे। लड़ेंगे तो पक्का ही, लड़ने से नहीं रुक सकते।

तो जो सोसाइटी निकास दे देती है, उस सोसाइटी में उपद्रव दिशा ले लेगी। फिर उन उपद्रवों को हम क्रिएटिव भी बना सकते हैं। अब जैसे कि खतरे की

एक वृत्ति है युवक के पास। एक उम्र तक वह खतरा लेना चाहता है—चाहें तो आप हिमालय पर चढ़वा लें, समुद्र पार करवा लें, वृक्षों पर चढ़वा लें, आकाश में हवाई-जहाज उड़वा लें।

अगर आप यह न करवा पाये, तो भी खतरे तो लेगा। तो पड़ोस की स्त्री को धक्का मार देगा, मगर तब वह बेहूदा हो जायेगा और बेमानी हो जायेगा। और वह भी उतना नुकसान उठायेगा और जिसके साथ वह बदला लेगा, वह भी नुकसान उठायेगा और पूरी सोसाइटी करप्ट होगी। मेरी अपनी समझ यह है कि अगर हम मनुष्य की सारी वृत्तियों को सहज स्वीकार कर लें और फिर उनके निकास की वैज्ञानिक और क्रिएटिव—सृजनात्मक दिशा खोजें। जैसे कि हम मानकर चलते हैं, हम चाहते हैं कि लड़कों में पच्चीस साल तक सेक्स ही न हो। अब यह बेहूदी की बातें मानकर हम चलते हैं ! इसको हम मान तो लेते हैं और ब्रह्मचर्य ही जीवन है, ऐसी तख्ती भी लगा देते हैं कभी-कभी। लेकिन इसका कोई परिणाम तो होने वाला नहीं है। हां, इसका एक ही परिणाम होता है कि सेक्स को जो हम क्रिएटिव मार्ग दे सकते थे, वह हम नहीं दे पा रहे हैं। और तब सेक्स पर्वर्ट होता है और हजार तरह के उल्टे रास्ते खोजता है।

प्रश्न—क्रिएटिव मार्ग क्या है ?

क्रिएटिव मार्ग का मेरी अपनी समझ यह है कि सेक्स के बहुत से डायमेंशन हैं। अगर लड़के और लड़कियों को बचपन से साथ बड़ा किया जाये, तो एक डायमेंशन उनका तृप्त हो जाता है, जो कि बहुत बड़ा डायमेंशन है। लड़के-लड़कियों को जानना चाहते हैं, लड़कियां लड़कों को जानना चाहती हैं। क्युरासिटी है। यह क्युरासिटी गलत हो सकती है। यह क्युरासिटी गलत हो गयी है। जब आप किसी के की-होल में से झांककर देखते हैं, तब यह जरा अशोभन हो गयी। या किसी की दीवार के बगल में कान लगाकर किसी के घर की बातें सुनते हैं, तब यह अशोभन हो गयी।

यही क्युरासिटी विज्ञान बन जाती है। तब भी आप कान लगाकर सुन रहे हैं, लेकिन तब आप एटम की आवाज सुनने की कोशिश कर रहे हैं कि एटम क्या कर रहा है ? यही क्युरासिटी, इसमें कोई फर्क नहीं है मानने में। और जब आप एक एटम के पास घण्टों बैठकर उधेड़बुन कर रहे हैं, तब भी वही क्युरासिटी है। लेकिन हमारे मुल्क की क्युरासिटी सेक्स के आस-पास घूमती है और नष्ट होती है। साइंटिफिक नहीं हो पाती। जिस मुल्क में सेक्स फ्रीडम होगी, उस मुल्क में साइंस का जन्म तत्काल शुरू हो जाता है।

योरोप में पिछले तीन सौ वर्षों में जिस मात्रा में सेक्स की फ्रीडम बढ़ी, उसी मात्रा में साइंटिफिक इनवेंशन बढ़ा। इसके भीतर पैरलल सम्बन्ध हैं। असल में जब सेक्स की क्युरासिटी खत्म हो जाती है, तो क्युरासिटी कहां जाये ? एक स्त्री

को आपने नग्न देख लिया, अब आप क्या करियेगा ? अब स्त्री को नग्न देखने की बात तो खत्म हो गयी। अब आप कोई और गहरे तल पर किसी और चीज को नग्न करेंगे, अनकव्हर करेंगे। अब आप प्रकृति को नग्न करने चले जायेंगे। अब आप एवरेस्ट पर चढ़ेंगे या हिमालय के गौरीशंकर को उघाड़ेंगे, या कुछ और करेंगे।

मैं नहीं कहता कि जो पश्चिम हो गया, वह बिल्कुल ठीक हो गया। कहता मैं यह हूं कि उससे हमें बहुत कुछ सीखने योग्य है। उसमें बहुत कुछ समझने योग्य है। जो भी सेक्स सप्रेसिव समाज है, वह साइंटिफिक नहीं हो पाता है। उसकी क्युरासिटी सेक्स के आस-पास रह जाती है। और मेरा मानना है कि लड़के और लड़कियों को साथ बड़ा करना चाहिए। उन्हें साथ दौड़ने दो, खेलने दो, तैरने दो। उनके बीच भी यह हिन्दू मुसलमान से भी बड़ा खतरा खड़ा किये हुए हैं—लड़की अलग और लड़का अलग !

प्रश्न—वह जो नेचरल इंस्टिक्ट है, वह कुछ न करने का कर बैठती है, तो उसके लिए क्या उपाय है ?

वह जो भय है आपका, उस भय की वजह से वह नहीं रुकती। उस भय की वजह से वह दुगुना कर बैठती है। और उल्टे रास्तों से करती है, जो कि बीमार और रुग्ण हो जाते हैं, एब्नॉर्मल हो जाते हैं। जो नॉर्मल है, करने योग्य है, उसको रोकने की वृत्ति भी आपकी गलत है। मेरा मतलब समझे, जो नॉर्मल और करने योग्य है, जैसे चौदह साल का लड़के और लड़की हो गये हैं, वे प्रेम करेंगे। अगर इनके प्रेम को हम सहज व्यवस्था दे सकें, और इनको सेक्स की पूरी शिक्षा दे सकें, इनको करीब आने का पूरा मौका दे सकें, तो ये खुद भी इतने रिस्पॉन्सिबल हो जायेंगे कि सौ में दस मौके ही उस खतरे के हैं, जो आप कह रहे हैं। और आप जो करवा रहे हैं, उसमें नब्बे मौके हैं और दस मौके बचने के हैं। जो बचेंगे वह होमोसेक्सुअल हो जायेंगे, वह और दूसरे उपद्रव कर लेंगे, जिनकी वजह से जिन्दगी भी खतरे में पड़ जायेगी। और मेरा अपनी समझ यह है—होस्टल्स और यूनिवर्सिटी में बहुत दिन रहने के बाद—बहुत मुश्किल से ऐसे लड़के मिलेंगे, जो मस्टर्बेशन नहीं कर रहे हों, होमोसेक्सुअल नहीं हैं। बहुत मुश्किल से लड़कियां मिलेंगी, जो होमोसेक्सुअल नहीं हैं। आउट-लेट वे खोजेंगी। आपने एक आउट-लेट बन्द किया, जो कि नैसर्गिक था। वह आउट-लेट खोज रहे हैं।

प्रश्न—यह जो परवर्शन्स का भय हो जाता है, वह क्या है ?

यह तो होगा न, क्योंकि जितना भी अप्राकृतिक व्यवस्था होगी, उतना ही स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाने वाली होगी। स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाने वाला नहीं है। लेकिन अगर परवर्शन पैदा हो जाये तो स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचने वाला है। अप्राकृतिक हैं वह। और दूसरी बात, एक

दफा अप्राकृतिक मार्ग बन जाये आपके दिमाग का, तो उसे प्राकृतिक मार्ग पर लौटाना असम्भव हो जाता है।

प्रश्न—अस्पष्ट

यह आप तभी तक रोक सकते हैं, जब तक आपके पास किताबें हों। अगर आपके पास बिल्कुल किताबें हों, तो स्वामी जी भाड़ में जायेंगे, आप किताब चुरा ले जायेंगे। विवेक जो है, वह भी आसमान से नहीं उतरता। वह भी व्यवस्था से आता है। असल में अगर एक लड़का और लड़कियों के साथ बड़ा हुआ है, उसने सब तरह की लड़कियों के साथ खेला और कूदा है, तो पहली तो बात यह है कि लड़की में जो एक पागल आकर्षण मालूम होता है, वह बहुत गुणा क्षीण हो जाता है। तो आपकी पत्नी को वह रास्ते पर धक्का इतनी आसानी से नहीं मार सकता। उसके भीतर भी आकर्षण में बुनियादी फर्क पड़ता है।

दूसरी बात, जैसे-जैसे वह परिचित होता है, और अगर हमारी कोई रुकावटें न हों। अब जैसे समझ लें, एक आदमी जिसे घर में खाना ठीक से मिलता है, उसको बहुत कम सम्भावना है कि अगर एक रात उसे खाना न मिले, तो वह दूसरे के घर में चोरी करने चला जाये। एक रात में यह सम्भव नहीं है। लेकिन एक आदमी को खाना ही न मिला हो और आपके सामने किचन में ही उसको बिठाकर रखा गया हो और किचन तक हाथ भी न बढ़ाने दिया जाता हो और उसको अगर आज रात मौका मिल जाये और वह भूखा हो, तो सम्भावना बहुत कम है कि विवेक काम कर पाये। विवेक के काम करने की भी सिचुएशन चाहिए। हम विवेक की तो बात करते हैं, लेकिन सिचुएशन बिल्कुल अविवेकपूर्ण है।

मेरा दोनों बात पर जोर है। मेरा कहना है पहले तो सिचुएशन ऐसी बनायें जिसमें विवेक काम कर सके। दूसरा विवेक पैदा करने का आपका क्या उपाय है? बाप कभी बात नहीं करता है बेटे से सेक्स की, मां कभी बात नहीं करती। शिक्षक कभी बात नहीं करता। विवेक आसमान से आ जाने वाला है? उसके भीतर जो नेचरल इंस्टिक्ट आयेगी, वह बिल्कुल एनिमल होगी और कोई दुनिया में उसको बताने वाला नहीं कि क्या हो रहा है उसके भीतर। वह तो यही समझेगा, मैं ही कोई एक पापी हूं, दुनिया में यह हो ही नहीं रहा है। बाप जो है, उसको यह हो नहीं रहा है।

अभी कल मुझे एक लड़के का पत्र आया है। उसने लिखा है कि मैं तो सदा ही समझता था कि मेरे बाप को सेक्स जैसी कोई चीज ही नहीं हैं, लेकिन मैंने जब उन्हें मां के साथ सम्भोग करते देखा, तो मैं हैरान हो गया कि मुझे ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया जा रहा है। और उस दिन से मैं बाप का ऐसा दुश्मन हो गया हूं। और उसने जो पत्र लिखा है, वह बहुत हैरानी का है कि बाप का मैं दुश्मन हो गया हूं तो मैं अपने बाप के प्रति श्रद्धा कैसे पैदा करूं, यह मुझे लिखिये। और

मेरे भीतर एक अजीब चीज चल रही है, जो मैं किसी को नहीं कह सकता। मैं भी अपनी मां के साथ सम्भोग करना चाहता हूं, जब बाप करता है। यह परवर्शन हो गया।

लेकिन यह इतना खतरनाक है कि यह लड़का अगर किसी लड़की से सम्भोग करना चाहे, तो नेचुरल है, लेकिन अगर यह मां से करना चाहे तो यह परवर्शन है। और यह परवर्शन इसके मां-बाप दोनों ने मिलकर पैदा किया है, क्योंकि दोनों इसको यह दिखा रहे हैं कि इस तरह की बात ही नहीं है कोई। इसको एकदम अन्धेरे में रखा जा रहा है। और इसको उपदेश पिलाये जा रहे हैं। उपदेश भी ऐसे हैं, जो उनके व्यक्तित्व के बिल्कुल विपरीत हैं। इस बात को स्वीकार करना चाहिए, कि सेक्स जीवन की सहज स्थिति है। मां को स्वीकार करना चाहिए कि सेक्स भी जीवन की सहज स्थिति है।

इस बच्चे को नॉर्मल बनाने के लिए जरूरी है कि जो इसके भीतर उठ रहा है, वह सहज इसको बताया जाये कि सहज से घबराने की कोई बात नहीं है। यह कोई बीमारी पैदा नहीं हो रही है तुम्हारे भीतर। इसको अकेले कैदखाने में डाल देने की जरूरत नहीं है कि अपनी बीमारी को खुद ही सोचे। इसको साथी मिल जायेंगे, जो इतने ही अनजान और अशिक्षित हैं। इसको लोग मिल जायेंगे, जो इसको गलत रास्तों पर डाल देंगे। सेक्स की पूर्ण शिक्षा विवेक लाने में बड़ी सहयोगी है।

एक; सेक्स के सम्बन्ध में कन्डेम्नेशन का भाव हट जाये तो विवेक आने में बड़ा सहयोग मिलेगा। सेक्स कोई पाप नहीं है, परमात्मा की तख्ती उस पर भी है। ऐसी दिव्यता की धारणा अगर पैदा की जाये, तो सेक्स का दुरुपयोग करना फिर मुश्किल हो जाये।

प्रश्न—तो साधु-सन्त जो ब्रह्मचर्य का पालन सिखाते हैं, वह गलत है?

यह बिल्कुल ही अवैज्ञानिक बकवास है। और जो भी इन बातों को कर रहा है···क्योंकि मैं मानता हूं कि इस मुल्क का साधु धोखे की बातें कर रहा है और गलत बातें कह रहा है। और वह बातें इसलिए कह रहा है, मैं तो इतना हैरान हूं कि साधारण गृहस्थ अगर मेरे पास आता है मिलने तो उसके हजार प्रॉब्लम होते हैं, उनमें एक प्रॉब्लम सेक्स होता है। लेकिन साधु मुझसे मिलने आता है तो उसके हजार प्रॉब्लम में हजार प्रॉब्लम ही सेक्स के होते हैं। वह दिन-रात ब्रह्मचर्य समझा रहा है और जब मुझसे प्राइवेट में मिलता है, तो उसका प्रॉब्लम क्या है?

अस्सी साल का हो गया है, सत्तर साल का हो गया है, तो भी! बढ़ जाता है ज्यादा। क्योंकि जितना सप्रेम किया था, लोलुपता भारी हो जाती है। और जब शक्ति कम हो जाती है, तो लोलुपता और भी उस पर हमला करती है कि अभी

समय भी चूका जा रहा है। मैं यह मानता हूं कि ब्रह्मचर्य जैसी सम्भावना है, है, लेकिन ब्रह्मचर्य सेक्स के विपरीत लड़कर कभी सम्भावना नहीं है। सेक्स को समझकर जरूर सम्भव है। लेकिन सेक्स की निन्दा अगर आप करते हैं, तब तो बिल्कुल सम्भव नहीं है, क्योंकि फाइट शुरू हो गयी और इसलिए नहीं सम्भव हो पाया। आप ऋषि-मुनियों की अगर कहानियां पढ़ेंगे तो आपको पता चल जायेगा कि ब्रह्मचर्य के नाम पर जो-जो आपके ऋषि-मुनियों का जीवन है, वह बताता है।

प्रश्न—यह तो योरोप में भी है।

कहीं भी, आपके ऋषि-मुनि ही नहीं, सप्रेशन सब जगह था। आप जैसा सप्रेशन सारी दुनिया में था। सारी दुनिया का जो पिछला दिमाग था, उसमें एक-सा सप्रेशन है। सारी दुनिया में धर्म ने वही सिखाया है। लेकिन उसके परिणाम आप जानते हैं कि क्या-क्या हुए ? पूरा भ्रष्टाचार है। अगर आप अपने ऋषियों, देवताओं की कहानियां पढ़ें तो वे सारी कहानियां भ्रष्टाचार की हैं। और मजा यह है कि उनको हम पूजे चले जा रहे हैं और ब्रह्मचर्य की बकवास किये जा रहे हैं ! वे सब उपद्रवी हैं। यह जो मामला है, हम यह नहीं देखते कि सब ऋषि-मुनियों का हो गया है।

प्रश्न—विश्वामित्र और मेनका की जो बातें हैं द्रष्टा के लिए, तो उसमें क्या है ?

यही है—असल में जहां भी ऋषि जो है, उसका स्खलन सदा आसान है। साधारण आदमी की बजाय। स्खलन तब आसान है, जबकि सप्रेशन बहुत तीव्र हो। और मेनका को लाने की जरूरत नहीं है। साधारण-सी स्त्री मेनका जैसी दिखायी पड़ेगी, अगर आपका दिमाग सप्रेशन में है। कोई अप्सरायें उधर से उतर कर यहां ऋषियों को भ्रष्ट करने आये, ऐसा कोई इन्तजाम परमात्मा का दिखायी नहीं पड़ता, और अगर ऐसा कोई भी इन्तजाम है, तो परमात्मा भी हद्द कनिंग है।

एकदम बेमानी बात है कि एक आदमी, ऋषि बेचारा साधना कर रहा है और ऊपर से अप्सराएं भेजी जा रही हैं, उसको भ्रष्ट करने के लिए ! यह परमात्मा की उत्सुकता बहुत सेक्सुअल है। और परमात्मा किसी का तपोभंग करने को उत्सुक है कि तप बढ़ाने को उत्सुक है ? यह सारी व्यवस्था हुई न। असल में कोई अप्सरा नहीं आ रही है। लेकिन साधारण-सी स्त्री बहुत सप्रेशन से अप्सरा दिखायी पड़ती है। और स्त्री न हो, तो भी दिखायी पड़ सकती है। बहुत सप्रेसिव दिमाग हो, तो प्रोजेक्शन शुरू हो जाता है। आंखें बन्द की और स्त्री ही दिखायी पड़ेगी, और कुछ ध्यान में आने वाला नहीं है। तो यह सारी की सारी अवैज्ञानिक अव्यवस्था थी।

प्रश्न—यह सेक्स के बारे में बहुत, आपके विचारों के बारे में बहुत कुछ बातें होती

हैं। उसका आपकी ओर से कुछ खुलासा करेंगे ?

बिल्कुल खुलासा करूंगा। मेरी अपनी दृष्टि ऐसी है कि एक तो जीवन में जो भी है, उसका मैं निन्दा के भाव से नहीं देखता। जीवन के प्रति मेरे मन में निन्दा का भाव ही नहीं है। समग्र जीवन के बाबत। अगर आपके भीतर क्रोध है, तो उसे भी मैं निन्दा से नहीं देखूंगा। मैं मानता हूं, क्रोध भी बहुत बड़ी शक्ति है, और उसके दोनों रूप हो सकते हैं, रचनात्मक भी, विध्वंसात्मक भी।

इसी तरह काम है, लोभ है—सब इनर्जीज हैं। इसलिए जीवन की समस्त रॉ-इनर्जीज को मैं स्वीकार करता हूं। और इनकी स्वीकृति के बाद ही मैं मानता हूं कि इनकी समग्र स्वीकृति में इनके परिष्कार का पहला कदम है, क्योंकि जिस शक्ति को हम स्वीकार नहीं करते, उस शक्ति से हम लड़ना शुरू कर देते हैं। और जिस शक्ति से हम लड़ते हैं तो हमारे भीतर हम खण्ड-खण्ड करते हैं—अपने से ही लड़ना है वह। अगर मैं अपने बायें हाथ की निन्दा करूं और दायें हाथ को लड़ाऊं, तो उसमें कुछ हारने-जीतने वाला होने वाला नहीं है। दोनों हाथ मेरे हैं। कोई जीतेगा नहीं, कोई हारेगा नहीं, सिर्फ लड़ाई चलेगी।

हां, एक हार जायेगा, मैं हार जाऊंगा आखिर में लड़ते-लड़ते। हाथ मेरे लड़ेंगे। तो मेरी सारी शक्तियां हैं, वह इंटिग्रेटेड होनी चाहिए। और अगर मैंने अपनी एक भी शक्ति से लड़ना शुरू किया, तो मैं डिस्-इंटिग्रेटेड हुआ और टुकड़ों में टूटा। और टुकड़ों में टूटा हुआ आदमी सीजोफ्रेनिक हो जाता है। इसलिए भारतीय संस्कृति को मैं सीजोफ्रेनिक कहता हूं। यह हमारा पूरा का पूरा दिमाग खण्ड-खण्ड है, टुकड़ों में बंटा है और आपस में लड़ रहे हैं अपने भीतर। यह लड़ाई मैं पसन्द नहीं करता।

मैं मानता हूं, जो मेरे भीतर है, जो मिला है प्रकृति से या परमात्मा से, इस सबको मैं कैसे सृजनात्मक मार्ग पर ले जा सकूं, यह कैसे मेरे लिए अधिकतम सुख का कारण बन सके, यह कैसे मेरे लिए अधिकतम तृप्ति ला सके, यह कैसे मेरे लिए वह जगह ला सके, जो मैं कह सकूं कि जीवन धन्य हुआ। इस दिशा में मैं इन सारी शक्तियों को कैसे ले जाऊं, इनमें से किसी शक्ति को काटना नहीं, नष्ट नहीं करना है, इसलिए सेक्स पर भी मेरी पूरी स्वीकृति है। अब यह जो स्वीकृति है, इससे भ्रान्ति पैदा होती है। लोगों का चूंकि सप्रेसिव माइंड है, इसलिए उनके लिए स्वीकार का मतलब सिर्फ होता है एकदम से।

जिस आदमी ने उपवास किया है, उसे भोजन का मतलब सदा ही ज्यादा खा जाना होता है। सदा ही। उसके लिए जो मतलब होता है। दिमाग में, क्योंकि उसके लिए वह सोच ही नहीं सकता कि भोजन मिले और ज्यादा न खाया जाये। पन्द्रह दिन से जो उपवास कर रहा है वह भोजन का मतलब ज्यादा खा जाना। तो वह दो ही काम कर सकता है, या तो वह भोजन बिल्कुल रोके रहे, तब चल

सकता है। अगर वह थोड़ा-सा शुरू करे, तो सब खा जाये, ज्यादा खा जाये, इसका डर उसको सदा है। तो वह कहेगा, भोजन को स्वीकार ही मत करो। स्वीकार किया कि मुश्किल में पड़े।

यह जो हजारों साल का हमारा दमित चित्त है, यह दमित चित्त में इतना डराता है कि हमने जड़ से स्वीकार किया है। सभी धर्म दमित हैं न। असल में सभी धर्म जो हैं, वह विज्ञान के जन्म के पहले के हैं। और विज्ञान की नवीनतम मनस् खोजों ने हमें बताया है कि दमन जो है, वह विकृत करता है, स्वीकृत नहीं करता है। असल में सभी धर्म फ्रायड के पहले के हैं, और फ्रायड के बाद अभी कोई धर्म पैदा नहीं हुआ, जबकि अब धर्म फ्रायड के बाद जो पैदा होगा, वह बड़ा भिन्न होगा।

इसलिए जो मैं कह रहा हूं, वह उस धर्म की पहली स्वीकृति होगी। मेरे हिसाब में प्रि-फ्रायडियन धर्म और पास्ट-फ्रायडियन धर्म अलग हो गये। लेकिन अभी फ्रायड के बाद कोई धर्म पैदा नहीं हो पाया है। सब धर्म जो है, प्रि-फ्रायडियन हैं। कोई दो हजार साल पहले का है, कोई हजार साल पहले का है। ये सारे के सारे धर्मों ने दमन को, सताने को, कष्ट देने को, अपने को दबाने को स्वीकार किया था। यह बिल्कुल ही स्वाभाविक था।

मनुष्य के मन के सम्बन्ध में हमारी जानकारी बहुत कम है। अब मनुष्य के सम्बन्ध में हमारी जो जानकारी है, वह कहती है, यह गलत रहा। और इस गलत के कोई फायदे कहीं हुए। धर्म की इतनी चर्चा हुई, उन्होंने कितने धार्मिक आदमी पैदा कर लिए?

और अगर कभी करोड़ दो करोड़ आदमी में एक आदमी बुद्ध हो जाये, तो यह ऐसे ही है, जैसे दो करोड़ पौधे हम लगायें और एक पौधे में फल आ जाये, तो माली की प्रशंसा करनी पड़े! यह नासमझी की बात है, इसमें कोई प्रशंसा की बात नहीं है। दो करोड़ पौधों में एक पौधे पर फल आ गया है तो यह माली निन्दा योग्य है। और मानना चाहिए कि यह फल माली के कारण नहीं आया, माली से बचकर आ गया है किसी तरह से। माली का सबूत तो दो करोड़ पौधे पर है। तो हमारा जो धर्म था, उसने कितने धार्मिक आदमी पैदा किये? अगर कुछ दस-पांच आदमी धार्मिक पैदा हो गये, जो उंगलियों पर गिने जा सकें और करोड़ों, अरबों लोग क्रिपल्ड, परेशान और चिन्ता में जियें, तो यह हमें मानना चाहिए कि इन्स्पाइट ऑफ स्वास्थ्य ये कुछ लोग पैदा हो गये हैं। यह कोई हमारा गौरव नहीं है। यह किसी तरह बच निकले।

अमरीका में विचारक हुआ थोरो। थोरो जब पढ़-लिखकर अपने गांव आया, यूनिवर्सिटी से लौटा, उसके गांव में उसका स्वागत हुआ और एक बूढ़े ने एक बहुत कीमती बात कही। और उस बूढ़े ने कहा, मैं थोरो का स्वागत करता हूं कि यह

लड़का अपने को यूनिवर्सिटी से बचाकर लौट आया है। यह जैसा गया था, वैसे ही लौट आया है, इसलिए मैं इसका स्वागत कर रहा हूं। इसने अपने को कैसे बचा लिया, यह आश्चर्य है।

मेरी समझ में बुद्ध और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट, शंकर और नागार्जुन, ये जो थोड़े से लोग हमारे हुए हैं, ये लोग कैसे हमारी संस्कृति से बचकर हो गये, यह आश्चर्य हमें करना चाहिए। ये हमारी संस्कृति के सबूत नहीं हैं। ये हमारी संस्कृति से बचकर इनमें फल आ गये। आने वाले भविष्य में मैं समझता हूं कि यहां करोड़ दो करोड़ में एकाध दो आदमी न हो पाये धार्मिक, तो हम समझेंगे कि चलेगा। तो, तो क्षम्य है। लेकिन अब ऐसा नहीं चल सकता है कि एक आदमी धार्मिक हो और दो करोड़ आदमी अधार्मिक हों, तो हमें समझना पड़ेगा कि धर्म का विज्ञान कहीं भ्रान्त है। तो मैं मानता हूं कि भ्रान्त है और उसकी सबसे बड़ी भ्रान्ति यह है कि वह मनुष्य की शक्तियों का आरोहण नहीं सिखाता है, दमन सिखाता है। तो सेक्स के बाबत हमारी सबसे ज्यादा कठिनाई है, कि उसको हमने सबसे ज्यादा दबाया है। और उसके दबाने के कुछ कारण थे।

बड़ी मजे की बात यह है कि पक्की समझ वाला कोई आदमी है ही नहीं इस दुनिया में। मुश्किल से दस-पांच हैं। वह जो बूढ़ा है, वह उससे भी ज्यादा कच्चा है, जितना कि जवान है। सिर्फ उम्र ज्यादा हो गयी है, तो वह समझ रहा है कि पक्की समझ है! पक्की समझ सप्रेसिव माइंड में कभी पैदा नहीं होती।

प्रश्न—आपका जो प्रवचन है, वह कच्चे मानस पर···

उसी के लिए तो है न, मेरा तो। उसी पर असर करना है। वह जिसको आप पक्की समझ कह रहे हैं, वह तो उस जगह पहुंच गया है कि वह प्वाइंट ऑफ नो रिटर्न पर है वह। उसको तो लाना भी नहीं है। मैं मानता हूं कि अगर आदमी ईमानदारी से नास्तिक हो सके, तो बेईमानी से आस्तिक होने से सदा बेहतर है। और जो आदमी नास्तिक भी नहीं हो सकता, वह आस्तिक होगा कभी, यह मैं शक करता हूं। नास्तिक होना पहली सीढ़ी है, आस्तिक होना अन्तिम फल है।

नास्तिकता मार्ग है, आस्तिकता उपलब्धि है।

तो मैं इनको भी विरोध में नहीं मानता। जैसे विश्वास और संदेह के लिए मैंने आपको कहा, वैसे मैं मानता हूं कि नास्तिक होना अनिवार्य हिस्सा है। एक उम्र है, जब आदमी को इन्कार करना सीखना चाहिए। और एक उम्र है कि जब उसको जल्दी हां नहीं भरनी चाहिए, क्योंकि वह कमजोरी का सबूत है। हां मजबूरी में नहीं भरनी चाहिए, हां किसी अनुभूति से भरनी चाहिए। तो मैं तो मानता हूं, युवकों को एक वक्त नास्तिकता से गुजरना ही चाहिए, और अगर वे नास्तिकता से गुजर सके, तो ही किसी दिन सिंसिअरली आस्तिक हो सकेंगे।

और हमारे मुल्क का जो आस्तिक है, वह बेईमान इसीलिए है। वह कभी

नास्तिक तक होने की ईमानदारी उसने नहीं दिखायी है। उसने ईश्वर तक के लिए झूठी हां भरी है, और दूसरी हां तो ठीक ही है—उसका ईश्वर, उसका परमात्मा, उसका मोक्ष सब झूठा हां भर रहा है। उसको कुछ भी पता नहीं और वह हां भर रहा है! तो मैं नहीं मानता कि नास्तिकता बुरी बात है। मैं तो मानता हूं, अनिवार्य मैच्योरटि में, जिसको आप पक्की समझ कह रहे हैं, उसकी सीढ़ी का हिस्सा है।

आपकी बात तो कच्ची समझ वाले पांच-दस हजार साल से सुन रहे हैं और पक्की समझ वाले नहीं हो पाये! एक पचास साल का मौका मुझे भी चाहिए, मैं जो कह रहा हूं। आपकी तो पचास हजार साल से सुन रहे हैं, अभी तक पक्की समझ वाला कोई हो नहीं पाया। उसी बात को आप फिर भी कहे चले जाना चाहते हैं! मैं मानता हूं कि मेरे साथ रिस्क है। आप तो कमजोर सिद्ध हो चुके हैं, आपका तो कोई सवाल ही नहीं है। आप तो विकल्प हैं ही नहीं। मेरे साथ रिस्क है, वह ठीक भी हो सकता है, गलत भी हो सकता है। उसमें एक सम्भावना ठीक होने की है, एक गलत होने की है। आप तो सौ प्रतिशत गलत हो चुके हैं। आप तो कोई विकल्प ही नहीं हैं। मैं मानता हूं, खतरा है ही, लेकिन हर नयी चीज में खतरा है, और खतरा होना चाहिए।

नीत्शे अपनी टेबल पर एक छोटा-सा वचन—आपको पसन्द पड़ेगा—लिखे रहता था—'लिव डेंजेरसली'। और जब किसी ने उसको पूछा कि तुम क्यों लिखे हुए हो? तो उसने कहा, और तो लिविंग का कोई मतलब ही नहीं होता, जीने का कोई मतलब ही नहीं होता है। जीना है तो खतरे में ही जीना पड़ेगा। नहीं जीना है, तो मरना बहुत सिक्योरिटी की बात है। मर गये, फिर कोई खतरा नहीं है। मरा हुआ आदमी फिर मर भी नहीं सकता, बीमार भी नहीं पड़ सकता, भूल भी नहीं कर सकता, पाप भी नहीं कर सकता।

प्रश्न—आप अपने को धर्मगुरु मानते हैं या नेता मानते हैं या क्या मानते हैं?

न मैं नेता हूं, न मैं धर्मगुरु हूं।

प्रश्न—तो फिर आपका जो चोला है, वह धर्मगुरु का है?

वह चोला मुझे पसन्द है। वह मेरी स्वतन्त्र पसन्दगी है। जो मैं कपड़ा पसन्द करूं, वह तो मुझे पसन्द करना चाहिए कि मैं कैसा कपड़ा पहनूं।

प्रश्न—लेकिन भ्रांति हो जाती है लोगों में?

वह भ्रांति तो मैं तौड़ रहा हूं चारों तरफ से। वह नहीं टिकने दूंगा। मेरे कपड़ों से भ्रांति नहीं टिकने दूंगा। मैं भी तो मौजूद हूं कपड़े के भीतर। मैं नहीं टिकने दूंगा।

प्रश्न—आप मार्क्स और फ्रायड का कुछ मिक्सचर हैं, ऐसा भ्रम होता है?

यह किसी को लग सकता है। लेकिन मार्क्सवादी से पूछेंगे तो नहीं कहेगा

ऐसा। फ्रायडियन से पूछेंगे तो ऐसा नहीं होगा। क्योंकि जब मैं फ्रायड पर पूरी बात करता हूं तो मैं मानता हूं कि फ्रायड बहुत प्राथमिक है और बचकाना है। और मार्क्स बिल्कुल आउट ऑफ डेट है। मार्क्स का कोई भविष्य नहीं है। यह तो जो मैं कह रहा था कि मार्क्स डिटर्मिनिस्ट है तो मैं यह कह रहा था कि भारत के मन में चूंकि डिटर्मिनिस्ट की जगह है, इसलिए मार्क्स को भी जगह मिल सकती है। लेकिन डिटर्मिनिज्म ही गलत है। कम्युनिज्म भी आयेगा नहीं। कोई लाये, तो ला सकता है, न लाये तो रोका जा सकता है। कोई कम्युनिज्म इन्एवायटेबिलिटी नहीं है। अभी मैंने 'समाजवाद से सावधान लेक्चर' दिये। पूरी किताब आपको भिजवा देता हूं। तो मैं तो सख्त खिलाफ हूं।

प्रश्न—लोग तो आपमें शक कर रहे हैं कि आप कम्युनिस्ट विचार के हैं?

स्वाभाविक है, मैं जो सारी चीजों में शक पैदा करवाऊं, तो मेरे बाबत भी शक पैदा हो, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमें वक्त लगेगा, क्योंकि मैं इतनी बातें कह रहा हूं और इतने विभिन्न कोणों से कहता हूं और हमारा मन ऐसा है न कि तत्काल लेबल लगाने को उत्सुक होता है। अगर मेरी एक बात सुनी, तो एक आदमी एक लेबल लगा देगा। मेरी दूसरी बात सुनी तो, तो वह तत्काल लेबल बदलने की दिक्कत शुरू हो जाती है। अब मेरी कठिनाई यह है कि जिन्दगी जो है, वह बहुत ही मल्टी डायमेंशनल है, और बड़ी जटिल है। उस पूरी जटिलता को जब आप पूरी तरह समझ पायें, तो आप कभी भी लेबल न लगाना चाहेंगे।

प्रश्न—आप धर्मगुरु हैं या नेता हैं, कम्युनिस्ट हैं, क्या हैं, आपका कोई स्वरूप पकड़ में नहीं आता है?

क्योंकि नहीं है कोई स्वरूप। हमारी कठिनाई क्या है, अभी एक घटना से आपको समझाऊं। मैं इधर पीछे एक दफा ट्रेन में चढ़ा बम्बई से। यहां सब मित्र छोड़ने गये थे। तो मेरे कम्पार्टमेंट में एक सज्जन और थे। उन्होंने देखा, बहुत से लोग छोड़ने आये। किसी ने पैर छुआ, किसी ने माला पहनायी, स्वभावतः उन्होंने मेरे कपड़े वगैरह देखे तो समझा कि कोई महात्मा हैं।

गाड़ी चली तो उन्होंने साष्टांग, बिल्कुल सिर रखकर पैर पर मुझे नमस्कार किया, और कहा कि महात्माजी, बड़ी कृपा हो गयी कि आपका साथ रात भर का मिल गया, तो साथ ही सत्संग भी होगा। तो मैंने उनको कहा कि तुम्हें पक्का पता लगा लेना चाहिए कि मैं महात्मा हूं या नहीं हूं। तुमने तो पैर पहले ही पकड़ लिए। अब अगर मैं महात्मा न निकला तो तुम वापस कैसे लोगे और मुझ पर एक नाहक का ऋण हो जायेगा और मैं इसको लौटाऊंगा भी कैसे? उन्होंने कहा, नहीं, आप भी क्या मजाक करते हैं। मैंने कहा, मैं मजाक नहीं कर रहा। मैं महात्मा नहीं हूं। मेरा शौक है ये कपड़े पहनने का। उन्होंने कहा, नहीं नहीं, आप मजाक कर रहे हैं। अब वह आदमी डर गया, कहा, नहीं आप मजाक कर

रहे हैं। मैंने कहा, मैं मजाक नहीं कर रहा हूं, मैं कोई महात्मा नहीं हूं। तो उसने कहा, कम-से-कम आप हिन्दू तो हैं! जाने दो महात्मा को। अगर हिन्दू भी हों तो चलो झंझट खत्म हुई। मैंने कहा, हिन्दू तो मैं बिल्कुल ही नहीं हूं। एक दफा महात्मा होने की भूल कर भी जाऊं, हिन्दू होने की भूल बिल्कुल नहीं कर सकता। हिन्दू बिल्कुल नहीं हूं। उसने कहा, अरे आप क्या मजाक किए दे रहे हैं, क्या गजब किए दे रहे हैं? वह इतना घबरा गया—पढ़ा-लिखा आदमी है वह, एयर कण्डीशंड में है वह, पैसे वाला आदमी है! आप यह क्या कर रहे हैं? हिन्दू नहीं हैं आप? तो आप कौन हैं? तो मैंने कहा, क्या मुझे हिन्दू या मुसलमान या ईसाई होना ही पड़ेगा? मैं निपट आदमी नहीं हो सकता? मेरे निपट आदमी होने में कोई आपको आक्षेप है? कि मुझे कोई लेबल होना पड़ेगा। कहा, नहीं नहीं, मुझे कोई आक्षेप नहीं है।

लेकिन उस आदमी ने क्या किया? वह इतना उसको कठिन पड़ा, मेरे साथ बैठना कि वह कण्डक्टर को बुलाकर बगल के कम्पार्टमेंट में चला गया। मैं बाथ-रूम गया, तो मैंने देखा, उसका सामान गया। तो मैंने उसको जाकर सुबह दर-वाजा खटखटाया। मैंने कहा, सत्संग का आपने मौका छोड़ दिया? मैं तो मजाक कर रहा था। उसने फिर भी पैर पकड़े। उसने कहा, मैं तो पहले ही कह रहा था कि आप महात्मा हैं। आपने रात भर मुझे निकलवा दिया। यह जो मैं आपसे कह रहा हूं।

जो आप पूछते हैं कि मैं नेता हूं कि धर्मगुरु हूं। न मैं नेता हूं, न मैं धर्मगुरु हूं। मैं एक निपट अकेला आदमी की हैसियत से खड़ा हूं जिसके साथ कोई लेबलिंग नहीं है। न मेरा कोई अनुयायी है।

प्रश्न—फिर आपका उद्देश्य?

उद्देश्य जो मुझे ठीक लग रहा है, जो मुझे आनन्दपूर्ण लग रहा है, वह आपसे कह देता हूं। फिर आपसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। आपने सुन लिया, इतना काफी है।

प्रश्न—इसका परिणाम होगा?

बिल्कुल फिक्र नहीं, क्योंकि परिणाम की फिक्र नहीं है—बिल्कुल नहीं है। आन्दोलन इस पर हो जाये, यह दूसरी बात है। मेरा आन्दोलन नहीं है। नहीं होगा, तो मैं इसमें कोई इन्कार करता नहीं।

प्रश्न—क्या यह निरपेक्ष भाव आपको बराबर लगता है?

बराबर का प्रश्न नहीं है, वह है, एक बात। वह मेरे लिए आनन्दपूर्ण है। और मैं मानता हूं कि ऐसे ही आनन्दपूर्ण निर्लेप भाव से अगर कुछ हो, तो वह शुभ है। अगर हम करने की कोशिश से कुछ हो, तो उसमें कुछ न कुछ हिंसा हो जाती है। गुरु हिंसा कर ही देता है। नेता भी हिंसा कर देता है और पक्ष भी पैदा कर

देता है। वह मुक्त नहीं कर पाता है, बांध ही देता है। तो मैं तो आपसे बात कह देता हूं, फिर खत्म हो गयी बात। आपको अच्छी लगी, बुरी लगी, वह आप जानें। मुझसे आपका इससे कोई सम्बन्ध पैदा नहीं होता। ज्यादा से ज्यादा मित्रता के। और आपका मेरा सम्बन्ध कभी नहीं बन पाता। और उसमें मेरी आप बात मानते हैं कि नहीं मानते हैं, वह आपका जानना है। मेरा कोई लेना-देना नहीं है। और मुझे आप न मानें, यह मेरी चेष्टा होती है। अगर मानें बात को, तो मुझसे कोई सम्बन्ध न रखेंगे। क्योंकि व्यक्ति आड़े आकर नुकसान ही पहुंचाते हैं सत्य को। वह धर्मगुरु की तरह पहुंचायें, नेता की तरह पहुंचायें, कोई फर्क नहीं पड़ता। एक हमने बात की, एक डायलॉग पूरा हो गया। एक बात मैंने आपसे की, आपने मुझसे की। मैंने आपसे कुछ सीखा, आपने मुझसे कुछ सीखा, बात खत्म हो गयी। इसमें मैं सिखाने वाला, आप सीखने वाले, ऐसा भी पक्का रिश्ता नहीं है। इसमें हम दोनों बात करते वक्त सीख रहे हैं।

इस प्रक्रिया में इसलिए कौन शिष्य है, कौन गुरु है, कौन नेता है, कौन क्या है, ये बेमानी बातें हैं और बचकानी हैं। अगर कहें तो चाइल्डिश हैं। असल में यह गुरु और नेता, यह हमारे भीतर जो बहुत चाइल्डिश माइन्ड है, उसकी वजह से पैदा होता है। नहीं तो इनकी कोई जरूरत नहीं है। हमने तो यह बात कह दी, आपने सुन ली। ठीक लगी, ठीक लगी, गलत लगी, गलत लगी, खत्म हो गयी। इतना तय है कि अगर उस में कुछ भी दम था, तो चाहे आप उसे सही मानें चाहे गलत, आप वही नहीं होंगे, जो बात सुनने के पहले थे। वह नहीं हो सकते—चाहे गलत मानें चाहे सही। एक आन्दोलन शुरू हो गया। यह आन्दोलन कोई परिणाम लाये, तो फिर हम दुकानदार हो जाते हैं। दुकानदारी से ज्यादा नहीं रह जाती बात। यहां कोई दुकान नहीं है, जिस पर कि कुछ बेचना है। यहां तो मामला कुछ ऐसा है कि जो ग्राहक आयेगा, उसका कुछ छिन ही जायेगा। यहां से तो कुछ लेकर जाने की कम ही उम्मीद है।

अभी कल दो-तीन महिलाएं आयीं। कृष्णमूर्ति उनके घर ठहरते हैं। वे बड़ी घबराई हुई आयीं। उन्होंने कहा, हमने आपको दो साल पहले सुना था, तो हम बड़े प्रसन्न हुए और हमको लगा कि आप तो बिल्कुल कृष्णमूर्ति की बात कह रहे हैं। तो हमने कृष्णमूर्ति को जाकर कहा। वे बड़े खुश हुए कि मुझे इसी वक्त मिलवाओ। अभी आपकी हमने कुछ बातें सुनीं तो हमें ऐसा लगा कि आप तो कृष्णमूर्ति के खिलाफ बोल रहे हैं तो हमें बड़ा सदमा पहुंचा। मैंने उनसे कहा कि तुम्हें अच्छा लगे या बुरा लगे! तुम्हें अच्छा लगना ही चाहिए, जिस दिन मैं ऐसा सोचूंगा, उस दिन तुम्हें क्या अच्छा लगता है, वही कहने लगूंगा।

स्वभावतः नेता कभी वह नहीं कह सकता जो अनुयायी को बुरा लगे। नेता का नेता होना, अनुयायी के अच्छे लगने पर निर्भर है। गुरु कभी वह नहीं कह

सकता, जिससे शिष्य भाग जायें। क्योंकि गुरु का गुरु होना शिष्य के रुके रहने पर निर्भर है। तो नेता और गुरु कभी भी ठीक-ठीक नग्न सत्य को नहीं कह पाते, नहीं कह सकते हैं। उसको उन्हें आवरण देने पड़ते हैं। असत्य इकट्ठा करना पड़ता है। तो दुनिया में जितने कम गुरु हों, जितने कम नेता हों, उतने सत्य की सम्भावना है। मैं उन महिलाओं को कहना चाहता था कि अब तू फिर जाकर कृष्णमूर्ति को कहना कि वह तो बिल्कुल खिलाफ कह रहे हैं और अगर वह अब भी खुश हों तो समझना, आदमी किसी काम के हैं, और अगर दुखी हो जायें, तो दुकानदारी शुरू हो गयी। तो मैं तो ऐसा मानकर चलता हूं।

प्रश्न—आप कभी कृष्ण की प्रशंसा करते हैं, कभी कृष्ण की निन्दा करते हैं। कभी क्राइस्ट और महावीर की प्रशंसा करते हैं कभी निन्दा करते हैं?

क्योंकि मेरे लिए कृष्ण साधारण व्यक्ति नहीं, बड़े असाधारण व्यक्ति हैं। और कृष्ण मेरे लिए मल्टी-डायमेंशनल हैं। कृष्ण के कोई एक आयाम नहीं हैं। कृष्ण के अनन्त आयाम है। किसी आयाम पर मैं उनसे अगर राजी होता हूं, तो कहता हूं, ठीक है। और तब अपनी प्रशंसा में कंजूसी नहीं करता। और किसी आयाम पर अगर मैं राजी नहीं होता तो कहता हूं, गलत है, और तब गलत कहने में भी कंजूसी नहीं करता। और इसमें मैं कृष्ण के साथ अन्याय नहीं करता हूं, इसमें मैं अपने साथ ही न्याय करता हूं। कृष्ण से कुछ लेना-देना नहीं है।

अगर महावीर की कोई बात मुझे ठीक लगती है, तो मैं उसको पूरे रास्ते साथ जाने को तैयार हूं। और कोई चीज मुझे गलत लगती है तो इसलिए, कोई चीज में ही न भरूंगा कि कोई और बात मुझे ठीक लगी। और यही मेरा अपने मित्रों से भी कहना है कि मेरी अगर एक बात ठीक लगे, तो इसका यह मतलब नहीं कि मेरी दूसरी बात भी ठीक लगे। एक-एक बात यूनिक है, एक-एक बात एटॉमिक है। अगर हम ठीक से समझें तो कृष्ण के चरित्र में भी हजार एटम उठे हैं। और मुझे हो सकता है कि कृष्ण के सिर पर लगी हुई मोर-पंख बहुत अच्छी लगती है और मैं कहूं कि मोर-पंख बड़ी सुन्दर है, लेकिन कृष्ण की शक्ल मुझे अच्छी नहीं लगती। और मैं कहूं, यह शक्ल मुझे बिल्कुल नहीं जचती और इस पर मोर-पंख तो और खराब हो जाते हैं। इसमें कठिनाई क्या है, हमारा मन क्या कहता है?

हमारा मन चूंकि डॉगमेटिक है, वह कहता है, एक लेबल लगा दो। तो या तो कह दो, कृष्ण भगवान हैं, या कह दो शैतान हैं तो हम निपट जायें! मतलब साफ हो जाये कि क्या हैं? और मैं मानता हूं कि कोई आदमी इतना अच्छा नहीं है कि उसमें बुरा न हो और कोई आदमी इतना बुरा नहीं है कि उसमें अच्छा न हो। और आदमी इतनी बड़ी घटना है कि रावण में भी कुछ है जो राम से बेहतर है; और राम में भी कुछ है, जो रावण से बदतर है। लेकिन हम पूरे को,

इकट्ठे को स्वीकार लें, यह सुविधापूर्ण है असल में। कन्वीनिएंस है यह कि राम भगवान और रावण शैतान।

मैं—मुझे उसके लिए ठीक नहीं लगता, इसलिए मेरे साथ दिक्कत तो हो जाती है, क्योंकि कृष्ण का भक्त एक दिन सुन लेता है कि मैंने कहा कि कृष्ण बहुत अद्भुत हैं, वह इसी प्रशंसा में चला आ रहा है। दूसरे दिन वह सुनता है कि नहीं गड़बड़ है। तब वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। उसका कारण है कि वह मुझको भी पूरा मानना चाहता है। मैं कब कहता हूं, उसको समझना चाहिए कि जब मैं कृष्ण में भाग करता हूं, तो वह मुझमें भी भाग कर ले। मेरी वह बात ठीक लगी थी, यह ठीक नहीं लग रही है, बात खत्म हो गयी। मैं कहां कहता हूं कि मेरी पूरी बात ठीक लगनी ही चाहिए। लेकिन गुरु बनना हो, तो पूरी ही लगनी चाहिए।

प्रश्न—लोग ऐसा भी करते हैं कि कभी गांधी को बुरा इसलिए कहते हैं कि वे लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करें? यह एक खतरनाक प्रवृत्ति है।

हो सकता है। उनको ऐसा लगता हो। यह बिल्कुल लग सकता है और इसको जितना ही वे समझेंगे···तो अभी तो मैं दूसरों को खण्डन कर रहा हूं, जैसे ही मुझे लगेगा कि मेर पीछे लोग इकट्ठे हो गये तो मैं अपना भी खण्डन करूंगा। और वह भी चल रहा है। अगर मैंने दो साल पहले कोई बात कही थी और वह मुझे आज अच्छी नहीं लगती है, उसका मैं खण्डन करता हूं। तब उनको पता चलेगा कि मैं अपने को भी खण्डन कर सकता हूं। तभी मेरे बावत साफ होंगे वे कि इस आदमी के बाबत निश्चय कभी भी नहीं हो सकेगा। और निश्चय होना भी नहीं चाहिए।

आज तो जो मुझे ठीक लगता है, वह मैं आज कहूंगा न—आज जिऊंगा न! कल का तो पता नहीं है। आज जो मुझे ठीक लगता है, वह कहूंगा। कल जो मुझे ठीक लगेगा, कल कहूंगा। और अगर आपकी बात मानूं तो आज भी नहीं कह सकता, कल भी नहीं कह सकता, क्योंकि परसों भी है। तब तो कभी नहीं कह सकता। एक बहुत मजेदार घटना कहूं, फिर हम उठें।

टाल्स्टाय के जीवन में एक संस्मरण है। टाल्स्टाय, चेखव और गोर्की तीनों एक बगीचे में बैठे हुए हैं। वहां कुछ बात चलती है और गोर्की ने यह सवाल उठाया। टाल्स्टाय से कहा कि स्त्री के सम्बन्ध में आपका क्या ख्याल है? तो टाल्स्टाय ने कहा कि मैं तब तक न बोल सकूंगा, जब तक मेरा एक पैर कब्र में न हो। एक मेरा जब कब्र में चला जाये और एक बाहर रह जाये, तब तुम एकदम से पूछकर मुझे ढक्कन में बन्द कर देना। तुम ढक्कन बन्द कर देना। तो चेखव ने कहा, आप यह कैसी बात कहते हैं! तो टाल्स्टाय ने कहा कि अभी तक, मैंने निरन्तर, रोज-रोज जो तय किया, वह दूसरे दिन पाया कि बदलना पड़ा। क्योंकि

एक स्त्री में भी एक स्त्री नहीं है। उसमें भी हजार स्त्रियां हैं। और हजार तो हजार होती ही हैं। और आज एक पहलू दिखता है, कल सुबह दूसरा पहलू दिखता है, सांझ दूसरा पहलू दिखता है। लेकिन टाल्स्टाय कुछ भी नहीं कह पाया, क्योंकि पैर, दोनों पैर एक साथ जाते हैं कब्र में, एक नहीं जाता है। मैं यह कहना चाहता हूं, मुझे तो मिला नहीं टाल्स्टाय, नहीं तो उससे मैं कहता कि कब्र में जब जाते हो, तब दोनों पैर एक साथ जाते हैं। कब्र में एक पैर नहीं जाता है कि तुम एक पैर बाहर रखकर कुछ कह सको। कहना है तो तुम्हें दोनों पैर बाहर रहेंगे, तभी कहना पड़ेगा। और इसलिए सब कहना रिलेटिव है, इसलिए कोई कहना एब्सलूट नहीं है। इसलिए कोई भी दावेदार सर्वज्ञता का करे तो गलत है।

कोई कहे कि मैं सर्वज्ञ हूं और जो कहता हूं वह अंतिम और आखिरी सत्य है, ऐसा आदमी एकदम ही गलत बात कह रहा है। और ऐसा ही आदमी गुरु बन सकता है। और ऐसे आदमी को अनुयायी मिल सकते हैं। क्योंकि मुझे कैसे अनुयायी मिलेंगे, क्योंकि अनुयायी ही निश्चित नहीं हो सकता कि यह आदमी कल क्या कहेगा, परसों क्या कहेगा? तो मैं तो एक प्रोसेस हूं और मेरा मानना है कि सभी जीवन्त व्यक्तियों को एक प्रक्रिया होना चाहिए, एक ठहराव नहीं। तो जो हमें ठीक लगे, उसे हमें ईमानदारी से कहने का साहस होना चाहिए। जो मुझे आज ठीक लगता है, आज कहूंगा। कल जो मुझे ठीक लगता है, कल कहूंगा। जरूरी नहीं है कि जो मैं कल कहूं, वह आज के विपरीत हो, क्योंकि कहने वाला मैं ही रहूंगा।

बहुत सम्भावना यही है कि वह आज का ही अगला कदम हो। और आज भी मैं ईमानदार और कल भी मैं ईमानदार तो रहूंगा। जो कह रहा हूं, तो मेरी ईमानदारी ने जो आज जाना था और जो कल मेरी ईमानदारी जानेगी, उसका ही पर्सपेक्टिव आगे का होगा। उसमें कोई बहुत गहरे कन्ट्राडिक्शन नहीं हो सकते, अगर ईमानदार हूं। अगर मैं आज ही बेईमान हूं तो फिर खतरा है। तो आज तो मुझे वही कहने दो, जो मुझे ठीक लगता है। ताकि मैं कल भी वही कह सकूं, जो मुझे ठीक लगे। और तब अगर पूरी जिन्दगी के बाद जब मैं मर जाऊं और पैर कब्र में हों तब तो मेरे बाबत कोई निर्णय ले सके कि यह आदमी क्या कह रहा था, क्योंकि प्रोसेस पूरी हो गयी।

असल में हम किसी भी जीवन्त व्यक्ति के बाबत उसके मरने के पहले कभी निर्णय नहीं ले सकते और हमें लेबल तब तक नहीं लगाना चाहिए। लेबल सब कब्र पर लगाना चाहिए, उसके पहले नहीं लगाना चाहिए। क्योंकि उसके पहले जिस पर लगा दिया, या तो वह आदमी अपनी तरफ से मर गया, या आपने उसको मरा हुआ मान लिया। और आपने मान लिया, अब लेबल लगा सकते हैं और आगे कोई उपाय नहीं है, अब तुम ठहर गये हो जहां के तहां। तो मैं नहीं

मानता, किसी के लिए नहीं मानता।

प्रश्न—पृथक्करण तो हम करते हैं?

करना चाहिए, पृथक्करण लोग करें, विचार लोग करें, लेबलिंग न करें। लेबलिंग की जल्दी हो जाती है। उससे खतरे होते हैं। वह चिन्तन की कमी है। हम चाहते हैं, जल्दी से लेबल लगा दें। एक संन्यासी मेरे पास आये। वह मुझसे कहने लगे, आप मुझे यह बता दें, आप किस शास्त्र को मानते हैं? मैंने कहा, क्यों? वह कहता कि मुझे बात ही करने की कोई जरूरत न रही, आप अगर गीता को मानते हैं, तो मैं समझ जाऊं, क्योंकि गीता को मैं जानता हूं। असल में मुझे समझना न पड़े, इसलिए बहुत आसान यह है कि मैं कह दूं कि मैं सांख्य को मानता हूं, कि वेदान्त को मानता हूं, कि जैन को। जैन के बाबत वह जो समझा-बूझा है, वह मेरे बाबत लागू कर लेगा, बात खत्म हो जाये।

हम यही कर रहे हैं, ज्यादा से ज्यादा यह हिन्दू है। हम पूछ लेते हैं, हिन्दू है, तो ठीक है। हिन्दू के सम्बन्ध में मेरी एक धारणा है। खत्म हो गया। सैयद, शहजादा के बाबत अलग से सोचने की, अब जरूरत न रही। यह मैंने इनको निबटा दिया। इंडिविजुअल हमेशा डिस्टर्बिंग है। तो मैं नहीं करने देता कोई भी। मैं आपको अपने बाबत तय नहीं होने देता। क्योंकि मैं ही तय नहीं हूं, कल मैं बदलूंगा, परसों बदलूंगा। जब तक जिन्दा हूं, बदलता रहूंगा।

बम्बई, दिनांक १८ जुलाई १९७०

१८. प्रेम-विवाह : जातिवाद का अंत

प्रश्न—हमारे यहां चूंकि जातिवाद का राजकरण है—जो हिन्दू है, वह हिन्दू को वोट देता है, जो मुस्लिम है वह मुस्लिम को वोट देता है । हमारे यहां बहुत कौमें हैं । आपके ख्याल में इसको मिटाने के लिए क्या करना चाहिए ?

दो तीन बातें करना चाहूंगा । एक तो जातीय दंगे को साधारण दंगा मानना शुरू करना चाहिए । उसे जातीय दंगा मानना नहीं चाहिए, साधारण दंगा मानना चाहिए । और जो हम साधारण दंगे के साथ व्यवहार करते हैं वही व्यवहार उस दंगे के साथ भी करना चाहिए, क्योंकि जातीय दंगा मानने से ही कठिनाइयां शुरू हो जाती हैं, इसलिए जातीय दंगा मानने की जरूरत नहीं है । जब एक लड़का एक लड़की को भगा कर ले जाता है, वह मुसलमान हो कि हिन्दू, कि लड़की हिन्दू है कि मुसलमान है—इस लड़के और लड़की के साथ वही व्यवहार किया जाना चाहिए, जो कोई लड़का किसी लड़की को भगा कर ले जाये, और हो । इसको जातीय मानने का कोई कारण नहीं है ।

और हम, जो इस मुल्क में जातीय दंगों को खत्म करना चाहते हैं, इतनी ज्यादा जातीयता की बात करते हैं कि हम उसे रिकग्नीशन देना शुरू कर देते हैं । इसलिए पहली तो बात यह है कि जातीयता को राजनीति के द्वारा किसी तरह का रिकग्नीशन नहीं होना चाहिए । राज्य की नजरों में हिन्दू या मुसलमान का कोई फर्क नहीं होना चाहिए ।

लेकिन हमारा राज्य खुद गलत बातें करता है । हिन्दू कोड बिल बनाया हुआ है, जो कि सिर्फ हिन्दुओं पर लागू होगा, मुसलमान पर लागू नहीं होगा ! यह क्या बदतमीजी की बातें हैं ? कोई भी कोड हो तो पूरे नागरिकों पर लागू होना चाहिए । अगर ठीक है तो सब पर लागू होना चाहिए, ठीक नहीं है तो किसी पर लागू नहीं होना चाहिए । लेकिन जब आपका पूरा का पूरा राज्य भी हिन्दुओं को अलग मानकर चलता है, मुसलमान को अलग मानकर चलता है, तो किस तल पर यह बात खत्म होगी ?

तो पहले तो हिन्दुस्तान की सरकार को साफतौर से तय कर लेना चाहिए कि हमारे लिए नागरिक के अतिरिक्त किसी का अस्तित्व नहीं है । और अगर एक मुसलमान गुण्डागिरी करता है तो एक नागरिक गुण्डागिरी कर रहा है । जो उसके साथ व्यवहार होना चाहिए, वह होगा । यह मुसलमान का सवाल नहीं है । राज्य की नजरों से हिन्दू और मुसलमान का फासला खत्म होना चाहिए, पहली बात ।

दूसरी बात—कि हिन्दू मुस्लिम के बीच शांति हो, हिन्दू मुस्लिम का भाई-चारा तय हो, इस तरह की सब कोशिश बन्द करनी चाहिए । यह कोशिश खतरनाक है । इसी कोशिश ने हिन्दुस्तान पाकिस्तान को बंटवाया । क्योंकि जितना हम जोर देते हैं कि हिन्दू मुस्लिम एक हों, उतना ही हर बार दिया गया जोर बताता है कि वे एक नहीं है । यह हालत वैसी है जैसे कि कोई आदमी किसी को भूलना चाहता हो, और क्योंकि भूलना चाहता है इसलिए भूलने के लिए हर बार याद करता है । और हर बार याद करता है तो उसकी याद मजबूत होती चली जाती है ।

प्रश्न—लेकिन एकता होगी कैसे ?

मेरा मानना यह है, एकता की कोई जरूरत ही नहीं है । कठिनाई क्या है—एकता होनी ही चाहिए, इस भ्रांति से भी हम बड़े परेशान हैं । एकता की कोई जरूरत नहीं है । इसलिए वह कभी नहीं होगी, जब तक आप एकता करते रहेंगे। असल में एकता करने की बात नहीं है । एकता का होना न होना एक फैक्ट की बात है, और फैक्ट किन्हीं और चीजों पर जीता है ।

अब जैसे—यदि हम लड़के और लड़कियों को प्रेम की सुविधा दे दें, और बिना प्रेम के विवाह बन्द कर दें तो आपको एकता-एकता चिल्लानी नहीं पड़ेगी, एकता हो जायेगी । कोई आपको समझाना नहीं पड़ेगा, क्योंकि प्रेम करते वक्त कोई नहीं देखता कि कौन मुसलमान है, कौन हिन्दू है; विवाह करते वक्त देखता है। कौन मुसलमान है, कौन हिन्दू है, कौन गुजराती कोई नहीं देखता है प्रेम करते वक्त । तो एक तो हमें बिना प्रेम के मुल्क में विवाह को समाप्त कर देना चाहिए, अगर भविष्य में हमें कोई भी ऐसी स्थिति चाहिए जहां कि अनेकता न हो । और

मेरा जोर भिन्न है, मैं एकता पर जोर देना ही नहीं चाहता। मैं यह जानता हूं अनेकता के कारण क्या हैं, वे नहीं होने चाहिए।

पहला अनेकता का कारण जो मुझे दिखता है, कि इस मुल्क में विवाह की जो व्यवस्था है, वह अनेकता का आधारभूत कारण है। यह मिटा दिया जाना चाहिए। अगर हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुसलमान के बीच शादी चलती होती तो पाकिस्तान बंट नहीं सकता था और अहमदाबाद में दंगा भी नहीं हो सकता था। अगर हिन्दू लड़कियां मुसलमान घरों में हों, मुसलमान लड़कियां हिन्दू घरों में हों तो कौन, किसको काटने जायेगा; तब न मुसलमान को अलग करना आसान है, न हिन्दू को अलग करना आसान है। इसके बिना पॉलिटिकल लेबल पर एकता नहीं हो सकती।

प्रश्न—तो हिन्दू-मुस्लिम के बीच रोटी-बेटी का व्यवहार होना चाहिए ?

बिल्कुल ही, हिन्दू-मुस्लिम के बीच नहीं, सबके बीच होना ही चाहिए। असल में जिनके बीच रोटी-बेटी का व्यवहार नहीं, उनके बीच एकता हो ही नहीं सकती। रोटी-बेटी का व्यवहार रोकने की जो तरकीब है, वह अनेकता पैदा करने की मूल व्यवस्था है।

प्रश्न—योरोप में बहुत से ऐसे नेशंस हैं, जहां रोटी-बेटी का व्यवहार है, लेकिन योरोप में जितने युद्ध मानवता पर लादे हैं, उतने शायद किसी ने नहीं लादे हैं।

उनके युद्धों के कारण बहुत भिन्न हैं। दंगे और युद्ध में बहुत फर्क है। और जिन मुल्कों में दो जातियों के बीच रोटी-बेटी का व्यवहार चलता है, उन मुल्कों में जातीय दंगा नहीं हो सकता है। जैसे चीन है—चीन में आप जातीय दंगा नहीं करवा सकते। कोई उपाय नहीं है। और कोई दंगे नहीं कर रहा! जातीय दंगे नहीं करवा सकते चीन में। उसका कारण है कि कभी-कभी एक-एक घर में पांच-पांच रिलिजन के लोग हैं। दंगा करवाइएगा किससे, भड़काइएगा किसको ? बाप कंफ्यूशियस को मानता है, पत्नी, उसकी मां जो है, लाओत्से को मानती है, बेटा मुहम्मद को मानता है, कोई बुद्धिस्ट है घर में, एक लड़की है—बहू जो है वह। तो चीन में एक-एक घर में कभी-कभी पांच-पांच धर्म के आदमी भी हैं। इसकी वजह से कन्वर्शन नहीं होता। अगर लड़का हिन्दू है और पत्नी मुसलमान है, तो पत्नी मुसलमान होना जारी नहीं रख सकती। मेरा मतलब समझे न आप ? जब एक घर में पांच धर्मों के लोग हों, तो आप अलग करवाइएगा कैसे ? किसके साथ दंगा करवाइएगा ? डिमार्केशन मुश्किल हो जाता है। हिन्दुस्तान में डिमार्केशन आसान है—यह हिन्दू है, यह मुसलमान है, यह साफ मामला है। मुसलमान अगर मरता है तो मेरी न तो पत्नी मरती है, न मेरी बहन मरती है, कोई नहीं मरता है, मुसलमान मरता है।

प्रश्न—आपने बताया था कि राज्य में धर्म होना चाहिए। तो हमारे मुल्क में

अभी की परिस्थिति का ध्यान रखकर कौन-सा धर्म होना चाहिए ?

जब भी मैं धर्म की बात करता हूं तो मैं अनिवार्य रूप से यह कह रहा हूं कि कौन-सा धर्म, तो धर्म होता ही नहीं। धार्मिकता मेरे लिए एक भीतरी गुण है। उसका किसी संगठन, कोई संस्था, किसी सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं है। धार्मिकता को मैं एक इनर क्वालिटी मानता हूं। और धार्मिक आदमी मुसलमान हो नहीं सकता। और धार्मिक आदमी हिन्दू भी नहीं हो सकता है। असल में धार्मिक होने की वजह से अड़चन हो जायेगी हिन्दू मुसलमान होने में। क्योंकि हिन्दू और मुसलमान मनुष्यता को तुड़वाते हैं और धार्मिक आदमी किसी से भी टूटा हुआ अनुभव नहीं करता। तो इसलिए धार्मिकता को मैं एक अलग ही क्वालिटी मानता हूं, जिसका हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई से कोई सम्बन्ध नहीं है। तो जब मैं धर्म की बात करता हूं तो मेरा मतलब हमेशा रिलिजस क्वालिटी से है। धर्म से मेरा मतलब प्रचलित धर्मों से नहीं है।

प्रश्न—आपने बताया था कि अपने देश में अभी ज्यादातर पूंजी पैदा नहीं होती है और जब तक पूंजी पैदा न हो तब तक अच्छा नहीं हो सकता देश। तो क्या आपको लगता है कि ज्यादा पूंजी और जल्दी पूंजी पैदा करने के लिए अपने देश में कोई भी ऐसी पॉलिटिकल व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमें हम सबकी पूंजी हो सके। पॉसिबल। हमारे देश में अभी जो पॉलिटिकल स्थिति है, डेमोक्रेसी की, वह ज्यादा पूंजी पैदा करने में और जल्दी पूंजी पैदा करने में अनुकूल है ?

बिल्कुल अनुकूल बनायी जा सकती है। हम उसका उपयोग नहीं कर रहे हैं। असल में सिस्टम का भी तो उपयोग करना पड़ता है! डेमोक्रेसी तो बहुत कीमती सिस्टम है, लेकिन उसका उपयोग करना पड़ता है। आपके पास लाख रुपये की कार है, लेकिन उसको भी चलाने के लिए चलाना पड़ता है।

दो कठिनाइयां हैं—एक कठिनाई यह है कि हिन्दुस्तान के पास डेमोक्रेटिक माइंड नहीं है। असल में डेमोक्रेसी उधार चीज है हमारे मुल्क में। हमारे लिए लोकतन्त्र बिल्कुल उधार है। हिन्दुस्तान का पूरा अतीत का चित्र गैर-लोकतांत्रिक है, नॉनडेमोक्रेटिक है। यहां राजा भगवान रहा है सदा। यहां प्रजा सदा राजा की भक्त रही है। यहां प्रजा ने कभी राजा को हटाने की और राजा की जगह स्वयं राजा बन जाने की कोई कामना प्रगट नहीं की। डेमोक्रेसी मूलतः वेस्टर्न कांट्रेक्ट है। तो चूंकि लोकतंत्र की धारणा हमारी जड़ों में नहीं है, तो ऊपर तो वह आ गयी है। हमने उसको लीप-पोतकर इकट्ठा कर दिया है, लेकिन सिस्टम वर्क नहीं कर रही है। हमने फैक्ट्री खड़ी कर ली है, लेकिन वह चलती नहीं है।

तो लोकतंत्र हिन्दुस्तान में सक्रिय हो, यह सवाल है। लोकतंत्र जैसी पॉलिटिकल सिस्टम बदले, यह सवाल नहीं है, क्योंकि लोकतंत्र से बेहतर तो अब कोई सिस्टम

अब तक विकसित नहीं हो सकी है। और अगर हम कोई भी सिस्टम दूसरा लाते हैं तो इससे अविकसित होगी। अब लोकतंत्र की वर्किंग में कठिनाई पड़ रही है, और कुछ और भी धारणाएं नुकसान पहुंचा रही हैं। यह मेरा मानना है। गांधी जी की स्वदेशी की एक धारणा भी उसको नुकसान पहुंचा रही है।

सच्चाई तो यह है कि आज अगर हम इस मुल्क को त्वरित ट्रेडली मेकनाइज करना चाहते हैं, इंडस्ट्रियलाइज करना चाहते हैं, तो हमें सारी दुनिया की पूंजी को आमंत्रित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। सारी दुनिया से पूंजी आमंत्रित होनी चाहिए। लेकिन हम मरे जा रहे हैं। हम कहते हैं, कहीं हमारा शोषण न हो जाये।

और मजा यह है कि आज शोषण की इस हमारी धारणा ने हमको बहुत नुकसान दिया है। अगर अमरीकी पूंजी आयी तो अमरीका हमारा शोषण कर लेगा! मेरी समझ यह है कि अमरीकी पूंजी अगर हिन्दुस्तान में है या अंग्रेजों की पूंजी आती है, कहीं से भी पूंजी आकर हिन्दुस्तान में लगती है, तो स्वभावतः वह पूंजी तुम्हारे लिए कोई खैर-खैरात के लिए नहीं लगने वाली है। वे उस पूंजी से फायदा उठाना चाहेंगे। फायदा उठाने की आशा में ही वे पूंजी लगाएंगे। तो हम उनको फायदा पहुंचा सकें, तभी वे पूंजी लगाने वाले हैं। लेकिन उनके फायदे में हमारा नुकसान नहीं है, हमारा फायदा है। अगर अमरीकन पूंजी हिन्दुस्तान में लगती है और एक लाख आदमी जो बेकार थे, अगर वे काम में लग जाते हैं तो समझ लें, उनसे वे दस रुपये का काम लेते हैं, और पांच ही रुपया उनको मिलता है और पांच अमरीका चला जाता है तो भी हमारा कुछ नहीं खो रहा है क्योंकि हमारे दस ही खो रहे थे, जब वे एक लाख आदमी बेकार थे।

तो पहली तो मेरी धारणा यह है कि सारी दुनिया से पूंजी आमंत्रित होनी चाहिए। लेकिन यह तभी आमंत्रित हो सकती है, जब पूंजी सुरक्षित हाथों में हो। आप जब तक सोशलिज्म की बकवास करेंगे, तब तक दुनिया की पूंजी हिन्दुस्तान में नहीं लगायी जा सकती, क्योंकि खतरा यह है कि हिन्दुस्तान में लगी पूंजी दुनिया में चली जायेगी, बाहर, और जा रही है। हिन्दुस्तान का पूंजीपति सारी दुनिया के बैंकों में पैसा जमा कर रहा है। क्योंकि आज नहीं कल उसे यहां खतरा हुआ जा रहा है कि पूंजी छिन जायेगी। बिल्कुल ही हमें सारी दुनिया की पूंजी को निमंत्रण देकर मुल्क का तीव्रता से औद्योगीकरण कर लेना चाहिए।

दूसरी बात है—कि हमने इतनी रोक-टोक लगायी है बाहर की चीजों पर, उन बाहर की चीजों पर रोक-टोक के कारण जो ठीक, स्वस्थ कंपटीशन पैदा होना चाहिए, वह नहीं पैदा हो रहा है। इसलिए अम्बेसेडर जैसी सड़ी गाड़ियां, जिसको बैलगाड़ी कहना चाहिए, वह बीस और बाईस हजार में बिक रही है। अगर आज सारी दुनिया के लिए बाजार खुला हो तो अम्बेसेडर को पांच हजार से ज्यादा में

कोई भी खरीदने को राजी नहीं होगा। अब चूंकि वह बाईस हजार में बिक रही है, बीस हजार में बिक रही है तो कोई वजह नहीं है कि उसमें किसी तरह का सुधार हो। कोई सुधार की जरूरत नहीं है, वह पैसा दे रही है। तीनों गाड़ियां हिन्दुस्तान की, चाहे अम्बेसेडर हो, चाहे फिएट हो, स्टैंडर्ड हो कोई भी पांच हजार से ज्यादा में नहीं बिक सकती हैं। अब मेरा मानना यह है कि जब वह पांच हजार में बिकने की हालत में आ जायेंगी, तब कंपटीशन शुरू होगा, तब हमें उनमें विकास करना ही होगा।

दूसरी बात यह है कि कुछ सम्बन्धों में, अगर हम बाहर की पूंजी हिन्दुस्तान में बुला लें तो ऐसा नहीं कि हमको लाभ होगा, बाहर वालों को भी बहुत लाभ होगा। अब जैसे कि मुझे दिखायी पड़ रहा है कि हमारी सारी की सारी स्मगलिंग हम ही पैदा करवा रहे हैं। पाकिस्तान में सोने के दाम अगर सौ रुपये कम हैं और हमारे यहां सौ रुपये ज्यादा हैं तो स्मगलिंग नहीं होगी तो और क्या होगा? यह स्वाभाविक है। ब्लैक मार्केटिंग हम करवा रहे हैं। सब चीजों के दाम ज्यादा हो जायेंगे, क्योंकि चीजें कम पड़ती हैं। और मुल्क को न तो सस्ते में चीजें मिलती हैं, न मुल्क को श्रम करने का मौका मिलता है, न सम्पत्ति पैदा करने का मौका मिलता है।

आज दुनिया में कोई भी मुल्क अगर त्वरित रूप से विकसित होना चाहे तो उसके बाजार दुनिया भर के लिए खुले होने चाहिए और उन्हें सीधे स्वस्थ कंपटीशन में पड़ना चाहिए। मुसीबत पड़ेगी उसमें, लेकिन मुसीबत से विकास है, सारा प्रसार है।

प्रश्न—लेकिन उसकी तकलीफ यह रहेगी कि अगर हम कैंपेटलाइज्ड हो जायेंगे तो हमारे देश की सब इकोनॉमिकल पावर चंद पूंजीपतियों के हाथ में रहेगी, तो वे लोग गवर्नमेंट पर दबाव ऐसा डालेंगे कि हमारे यहां पर जैसा आप कहते थे कि राज्य के हाथ में सत्ता रहेगी, तो इसके बदले में पूंजीपतियों के हाथ में सत्ता रहेगी?

तो कठिनाई क्या है? सत्ता तो सदा ही चन्द आदमियों के हाथों में रहेगी ही। इसका कोई उपाय नहीं है। इसलिए चुनाव यह नहीं है कि चन्द आदमियों के हाथ में रहे कि सबके हाथ में रहे, सवाल यह है कि किन चन्द आदमियों के हाथ में रहे। सत्ता तो सदा ही चन्द आदमियों के हाथ में रहेगी। इसका कोई उपाय ही नहीं है। यह तथ्य है, इसमें कोई उपाय नहीं है। इसलिए चुनाव यह नहीं है। जो आल्टरनेटिव है, वह यह नहीं है कि सत्ता किन चन्द आदमियों के हाथ में रहे? सत्ता चन्द आदमियों के हाथ में रहेगी, यह हमें समझ लेना चाहिए।

अब सवाल यह है कि इस सत्ता को किन चन्द आदमियों के हाथ में देना है? क्या उन्हीं चन्द आदमियों के हाथ में देना है, जिन चन्द आदमियों के हाथ में

राज्य की भी सत्ता है ? क्या ये दोनों सत्ताएं एक ही चन्द आदमियों के ग्रुप के हाथ में दे देनी है या विभिन्न । एक ।

दूसरा—कि यह जो चन्द आदमियों के हाथ में सत्ता है, ये परमानेंट रहेंगी या एक लिक्विडिटी की हालत में होंगी, बदलती हुई हालत में होंगी ये दो सवाल हैं।

मेरा मानना है कि पूंजीवाद या पूंजीपति बदलती हुई व्यवस्था है । अगर आज हम गौर से देखें तो आज से तीस साल पहले अमरीका में जो बड़े पूंजीपति थे, आज वे ही परिवार बड़े पूंजीपति नहीं हैं । दूसरे परिवार भी उसी जगह आ गये हैं ।

प्रश्न—हमारे यहां तो टाटा और बिड़ला बने हुए हैं ।

उसका कारण है । उसका कारण है कि पूंजीवाद को हम विकसित नहीं होने दे रहे हैं । विकसित होने दें, तो यह रोज बदलता रहेगा । इसमें बदलाहट रोज हो जायेगी ।

प्रश्न—अमरीका का एक्जेम्पल आप क्यों ले रहे हैं ?

अमरीकन पूंजीवाद अकेला पूंजीवाद का सबूत है । हम कोई पूंजीवादी मुल्क नहीं हैं । इसलिए उदाहरण अमरीका का इसलिए ले रहा हूं कि उसने पूंजीवाद को एक तरह से विकसित किया है । बीस साल पहले जो आदमी था, बीस साल बाद आपको पता नहीं चलेगा कि कहां गया । नये लोग आ गये हैं । असल में पूंजीवाद एक लिक्विड सिस्टम है वहां ?

प्रश्न—लेकिन रॉकफेलर अभी तक है ।

ठीक है, इसके कारण हैं । आज रॉकफेलर रहेगा, लेकिन रॉकफेलर उसी हालत में नहीं है, जैसा अन्चैलेंज्ड आज से बीस साल पहले था । आज रॉकफेलर अन्चैलेंज्ड नहीं है । रॉकफेलर अकेला रॉकफेलर है, ऐसा नहीं है । आज पच्चीस रॉकफेलर खड़े हो गये हैं । अब हमको जो नाम याद रहते हैं, वे पच्चीस साल पहले के हैं । स्वभावतः, क्योंकि यह ख्याल जो बनता है वह पच्चीस साल, तीस साल पुराना होता है । आज कौन आदमी अमरीका में सबसे बड़ा ताकतवर है, पच्चीस साल लग जायेंगे दुनिया भर में उसके नाम को पहुंचने में, तब तक वह ताकतवर नहीं रह जायेगा ।

पूंजीवाद जो है, वह लिक्विड सिस्टम है । उसमें पूरे वक्त उतार-चढ़ाव हो रहे हैं, क्योंकि उसमें एक नैचुरली कम्पटीशन है, जो चल रहा है । फिर जब हम आज रॉकफेलर कहते हैं या मार्टिन कहते हैं, या फोर्ड कहते हैं, तो ये सिर्फ नाम रह गये हैं । इनकी सारी सम्पत्ति शेयर होल्डर्स की है । अगर हम बहुत गौर से देखें तो ये सिर्फ नाम हैं, जिनकी क्रैडिट है । यह भी हो सकता है कि फोर्ड की कम्पनी में फोर्ड के शेयर ज्यादा हैं, लेकिन सारे मुल्क के शेयर हैं । तो धीरे-धीरे

अमरीका में जो है, अपने आप एक ग्रेटर शेयरिंग होता जा रहा है, जिसमें नाम भर प्रतीक रह गये हैं, और उनका कोई मतलब नहीं रह गया । फोर्ड के नाम का मूल्य है । आज नयी कार चलाइए तो उसका उतना मूल्य नहीं होगा, उसको कम्पटीशन में खड़ा होना पड़ेगा । फोर्ड के नाम की इज्जत है, कार फोर्ड के नाम से चलेगी । फोर्ड की कम्पनी को भी मैनेज करने वाले लोग रोज बदलते जा रहे हैं और फोर्ड की कम्पनी के डायरेक्टर्स भी रोज बदलते जा रहे हैं । मालकियत रोज घूम रही है हाथों में, लेकिन वहां मालकियत थिर नहीं है । हिन्दुस्तान में थिर है, क्योंकि कोई कम्पटीशन नहीं है । और हिन्दुस्तान के टाटा, बिड़ला और डालमिया, साहू या कोई और थिर हैं ।

प्रश्न—अमरीका के आयुध के कंट्रेक्टरों ने और आयुध कम्पनी के मालिकों ने सेकेंड वर्ल्ड वॉर करवायी है ?

यह जो हमारा ख्याल है, यह बहुत जटिल मामला है । यह इतना आसान नहीं है कि हम एक कॉज को पकड़ कर उसको बता दें । यह बहुत जटिल मामला है और एक नहीं हजार कारण हैं । और मजा तो यह है कि जैसा आदमी है अभी, अगर कोई भी कारण न हो—तो इसलिए लड़ना शुरू होता गया कि अब कोई भी कारण नहीं है । आदमी की जो स्थिति है, वह स्थिति लड़ने के लिए बहुत ही पुनुरुक्त है । और हजार कारण हैं, कोई एक कारण नहीं है उसमें । उसमें पूंजीपति का हाथ है, उसमें मजदूर का हाथ है, उसमें राजनीतिज्ञ का हाथ है, उसमें महात्मा का हाथ है, उसमें फोर्ड का हाथ है, उसमें हम सबके हाथ हैं । असल में मेरे हिसाब से वॉर जो है, वह मनुष्य के टोटल-माइंड से पैदा होती है । वह कोई एक कारण से नहीं है ।

प्रश्न—आप जो कम्पेरिजन दे रहे हैं, खास करके आप सोशलिज्म वर्ड भी इस्तेमाल कर रहे हैं, लेकिन मेरे ख्याल से जो आप उदाहरण दे रहे हैं, वह जो भारतीय करते हैं, वह कम्युनिस्ट सोसाइटी के लिए ठीक होता ?

बड़े मजे की बात यह है । असल में सोशलिज्म, कम्युनिस्ट शब्द धीरे-धीरे बदनाम हो गया । और कम्युनिस्ट शब्द ने धीरे-धीरे एक तरह का कनोटेशन ले लिया है, इसलिए कम्युनिज्म भी सोशलिज्म की भाषा बोल रहा है । वह सिर्फ डाइल्यूट कम्युनिज्म है, और कुछ भी नहीं है । अगर इसको बहुत गौर से देखें तो मजा यह है—अब जैसे कि यू० एस० एस० आर है, वे भी सोशलिस्ट शब्द का उपयोग कर रहे हैं अपने मुल्क के लिए और मैं समझता हूं कि कम्युनिस्ट शब्द उपयोग नहीं कर रहे हैं—यूनियन ऑफ सोशलिस्टिक रिपब्लिकन्स । वह भी कम्युनिज्म का उपयोग नहीं कर रहे हैं, वह भी सोशलिस्ट हैं ! हिटलर था, वह भी नेशनलिस्ट, सोशलिस्ट-पार्टी थी । वह भी सोशलिस्ट है । इंगलैण्ड की लेबर पार्टी भी सोशलिस्ट है, स्कैंडेबियन भी सोशलिस्ट है । लेकिन सच्चाई यह है कि

जब एक शब्द बहुत कीमत का मालूम पड़ने लगता है तो हजार लोग उसका उपयोग करने लगते हैं और हजार फेड हो जाते हैं।

लेकिन इंगलैण्ड सोशलिस्ट नहीं था लेबर पार्टी के नीचे। वह मिक्सड इकॉनामी है। न स्कैंडेबियन सोशलिस्ट है, वह भी मिक्सड इकॉनामी है। आज अमरीका सोशलिस्ट शब्द का उपयोग करने लगे तो बस एकदम शब्द ठीक हो जायेगा। लेकिन अमरीका भी मिक्सड इकॉनामी है। असल में कैपिटलिज्म शब्द का उपयोग करना भी ठीक नहीं है बहुत। क्योंकि जितनी कैपिटलिस्ट कण्ट्रीज हैं, वे सब मिक्सड इकॉनामी हैं। मिक्सड इकॉनामी जहां भी है, उसको मैं कैपिटलिस्ट कहता हूं। और जहां अन मिक्सड इकॉनामी है, और बेसिकली उन्होंने जहां पर पूंजीपति को खत्म किया है, उनको मैं सोशलिस्ट कह रहा हूं। और जब कोई बात करनी हो तो पच्चीस शेप की अगर हम बात करें तो बात करनी बेमानी हो जाती है।

तो मेरे लिए डिमार्केशन साफ है। कैपिटलिस्ट कण्ट्री मैं उसको कह रहा हूं कि जिस समाज या शासन व्यवस्था में शासन ने सारी ओनरशिप नहीं ले ली है, न लेने की इच्छा रखता है और जहां व्यक्तिगत पूंजी के लिए स्वतन्त्रता है, उसके फैलाव का उपाय है। जहां राज्य मालिक नहीं बन गया है, इंडिविज्युअल ओनर्स है। राज्य ओनर नहीं है। और सोशलिस्ट शब्द मैं उसके लिए कह रहा हूं जहां स्टेट ने ओनरशिप ले ली है, लेने की कोशिश में है, या लेने की योजना बना रखी है, वह सारी ओनरशिप ले लेगी। शेप तो पच्चीस हैं, लेकिन पच्चीस शेप सिर्फ कन्फ्यूज करते हैं और कुछ भी नहीं करते। और जब हमें कोई बात साफ करनी हो तो हमें दो सेट साफ बांट लेने चाहिए। ब्लैक व्हाइट को सीधा हम बांट लें तो ही चर्चा हो सकती है। अगर हम एक ही बात करें तो चर्चा मुश्किल हो जाती है। कैपिटलिज्म के भी सेट्स हैं।

प्रश्न—क्या आप ऐसा नहीं समझते कि, 'स्टेट मस्ट बी डिजॉल्व अवे'?

स्टेट जो है, वह मैं आशा रखता हूं कि एक वक्त आना चाहिए जो धीरे-धीरे क्षीण होती जाये। लेकिन ऐसा मैं नहीं सोच पाता कि कभी ऐसा वक्त आयेगा कि स्टेट विदर अवे हो जायेगी। स्टेट के फंक्शंस बदलते जायेंगे, लेकिन स्टेट रहेगी। क्योंकि स्टेट जो है, उसके कुछ बुनियादी फंक्शंस हैं, जो कभी भी समाप्त नहीं किये जा सकते। स्टेट विदर अवे हो सकती है एक ही अर्थ में—वह यह, इस अर्थ में कि अगर तीसरा महायुद्ध हो जाये और हमारे जीवन की सारी कॉम्प्लैक्सिटी खत्म हो जायें और हम आदिवासी की हालत में आ जायें तो स्टेट विदर अवे हो सकती है, क्योंकि तब स्टेट का कोई मतलब नहीं रह जायेगा। स्टेट को एक कॉम्प्लैक्स सोसाइटी की जरूरत है। अब जब पचास करोड़ आदमी एक मुल्क में रह रहे हैं तो बिना स्टेट के काम नहीं चल सकता। लेकिन मेरी अपनी समझ

यह है कि ऐज ए पॉलिटिकल बॉडी, वह धीरे-धीरे कमजोर होती जानी चाहिए। ऐज ए फंक्शनल बॉडी, वह धीरे-धीरे मजबूत होती जानी चाहिए।

अब जैसे रेलवे है या पोस्ट ऑफिस है, अब ये स्टेट के फंक्शंस रहेंगे। या पुलिस है, स्टेट का फंक्शन रहेगा। किसी दिन मिल्ट्री भी खत्म हो सकती है, अगर नेशंस खत्म हो जायें। लेकिन पुलिस खत्म नहीं हो सकती है। पुलिस को तो स्टेट को रखना ही पड़ेगा और वह भी इंटर-इंडिविज्युअल रिलेशनशिप का मामला है। कोई आदमी किसी की औरत को लेकर भागता ही रहेगा। मैं नहीं सोचता कि ऐसा कोई वक्त आ जायेगा कि पड़ोसी की औरत पसन्द नहीं पड़ेगी। आशा हम कर सकते हैं। आशा हम कर सकते हैं कि स्टेट का फंक्शन धीरे-धीरे क्षीण होता जाये, बट इन ए एब्सलूट सेंस, स्टेट कैननॉट बी आउट ऑफ एग्जिसटेंस। एज ए लेसर इवल, लेस एण्ड लेस फंक्शनल इतना ही होगा और यह होना चाहिए।

प्रश्न—आपने ध्यान के लिए साधकों को जो कुछ सूचनाएं दी थीं बदन को थका देने की। कुछ लोग ध्यान की ऐसी शिक्षा देते हैं कि वहां बदन को थकान नहीं आती है। और विचार के मूल में जायेंगे तो अपने ध्यान में आ जायेंगे। क्या यह काम जरूरी है?

बिल्कुल ही जरूरी हैं। उसके कारण हैं। यानी जैसे आप हैं, तो आपकी जो मौजूदा मन की स्थिति है, इस स्थिति में आपको सीधा ध्यान में ले जाना बहुत मुश्किल मामला है, क्योंकि इस मौजूदा मन की स्थिति में ध्यान के विपरीत बहुत से एलिमेंट्स मौजूद हैं। जैसें एंग्जायटी मौजूद है, टेन्शनस् मौजूद हैं, सप्रेशन्स मौजूद हैं, इन्हीबीशनस् मौजूद रहती है। इनकी मौजूदगी आपको विचार के मूल-बिन्दु तक नहीं जाने देगी। इनकी मौजूदगी पूरे वक्त इनर डिस्टर्बेंस पैदा करती रहेगी। आप सब कोशिश करेंगे, लेकिन बीच-बीच में कि हम नहीं करेंगे, और इसलिए यह वर्षों और जीवन की लम्बी यात्रा होगी, जिसमें कि आप आशा नहीं रख सकते कि इसी जन्म में ध्यान हो जायेगा। मैं जो कर रहा हूं उसमें दोहरी प्रोसेस है। पहली प्रोसेस कैथार्सिस की है। पहली प्रोसेस जो तीस मिनट की है, उसमें आपमें जो भी इनर हिड्रेन्सेज सम्भव हैं, उसको अलग करने की कोशिश करें। ध्यान की अभी हम फिक्र ही नहीं कर रहे हैं। यानी मामला ऐसा है कि घास उगी है, मैंने जाकर बीज फेंक दिया। एक तो यह स्थिति है और बहुत सम्भावना है कि घास-बीज को पचा जायें। और दूसरी स्थिति है कि पहले हम घास साफ करते हैं, जमीन साफ करते हैं, फिर जड़ें उखाड़ कर फेंक देते हैं, जमीन तैयार कर देते हैं, बीज डाल देते हैं।

तो मेरा मानना है कि जैसी मौजूदा आपकी हालत है। बिल्कुल ऐसी ही जमीन की है, जिसमें घास हजारों साल से चल रहा है। इसमें बीज फेंकना बेमानी है और सिर्फ नासमझ माली होने की खबर देता है। इसकी सफाई बहुत जरूरी है।

इसीलिए मैं सीधा शुरू करना पसन्द नहीं करता। पहली प्रोसेस रेचन की है, कैथार्सिस की है। उसमें तीन चरणों में आपको सब तरह से हल्के, शान्त होकर हिन्ड्रेनसेस को तोड़ डालना है। और जब एक दफा आप हल्के और शान्त हो गये तो आप तत्काल पाते हैं कि आपका प्रवेश हो गया। उसे करना नहीं पड़ता। और दूसरी जितनी प्रक्रियाएं हैं, उनमें आपको प्रवेश करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में प्रवेश होगा। चौथी जो स्टेज है, दिस इज नॉट ए स्टेप, दिस इज ए हैपनिंग। तीन काम आपको करना होगा, चौथा होगा।

और मैं मानता हूं, जो ध्यान आप करेंगे, वह आपसे ज्यादा कीमती नहीं हो सकता है। जो ध्यान आप लायेंगे, वह आप ही लायेंगे न, आपका माइंड, आपकी कंडीशनिंग, आप, आपकी सब बीमारियां, रोग, चिन्ताएं, वेग। जिस मैडीटेशन को आप लायेंगे, वह बहुत कीमती नहीं हो सकता, वह आपकी ही बाइ-प्रोडेक्ट होगा। तो मैं उस मैडीटेशन की कीमत मानता हूं जो आता है आपके ऊपर। आप तो सिर्फ ओपनिंग में होते हैं। आपका कोई एफर्ट नहीं है।

जो तीन एफर्ट हैं, वे सिर्फ सफाई के हैं, निगेटिव हैं। पॉजिटिव एफर्ट आपको करना नहीं है। वह होगा। और इसलिए बेसिकली फर्क है उसमें। और उस प्रोसेस में तो कई जन्म लग जायें, फिर भी पक्का नहीं है। बड़ी कठिनाई यही है। अब जैसे महेश जी का जो मामला है, जिसे वे ध्यान कह रहे हैं, वह ध्यान नहीं है। वह सिर्फ जप है। तो उसका परिणाम जो है, वह ज्यादा से ज्यादा तन्द्रा का है, वह ऑटो हिप्नोसिस है, उससे ज्यादा नहीं है। अगर आप एक शब्द को बोलना शुरू करते हैं रिपीटेटिवली, तो वह आपके भीतर एक तरह की हिप्नोसिस पैदा करता है। वह ट्रांजिटरी नीड है। मेरा जो प्रयोग है इसमें, और उनके प्रयोग में अगर हम फर्क करें तो उनका प्रयोग जस्ट लाइक ए ट्रैंकोलाइजर, और मैं जिसे कह रहा हूं, जस्ट लाइक एन एक्टिवाइजर है, क्योंकि मेरे प्रयोग में तो आप हिप्नोसिस में तो जा नहीं सकते, क्योंकि इतनी एक्टिव प्रोसेस है कि आप बेहोश तो हो नहीं सकते, नींद आ नहीं सकती। इतनी गहरी श्वास ली है, इतना शरीर नाचा और कूदा है और इतने जोर से आपने 'मैं कौन हूं' पूछा है, यह इतनी ऐक्टिव प्रोसेस है कि इसमें तन्द्रा नहीं आ सकती।

बड़े मजे की बात है यह जो थकान है न, टेंशन की थकान है। और जब आप पूरे टेंस हो जाते हैं—पूरे टेंस हो जाते हैं और पूरे टेंशन से वापस रिलक्जेशन में लौटते हैं, वह तो लौटेंगे ही। तो यह जो वापस लौटती है, इतनी फ्रेशनेस से भरी होती है, जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। क्योंकि इसके पहले पूरी ऐक्टिविटी है। जैसे आप बहुत खेलकर थक तो जरूर जाते हैं, लेकिन फ्रेश हो जाते हैं।

प्रश्न—यह ध्यान की स्थिति हिप्नोसिस से आगे की है कि पीछे की ?

बहुत आगे की है।

प्रश्न—आपने कहा था कि जो लोग सोशलिज्म की बात कर रहे हैं, वे लोग अपने देशवासियों को एक आधार दे रहे हैं कि कुछ होगा, कुछ होगा। अपना मतलब निकाल लेते हैं, मगर व्यावहारिक भूमिका पर देखें तो नेशनलाइजेशन और जो भी हमारा ट्रेड और कामर्स गवर्नमेंट ले लेती हैं, उसके बारे में रिजल्ट से फायदा होता है।

मेरी समझ में ऐसा नहीं होता है। मेरी समझ में ऐसा है कि राज्य के हाथ में व्यापार-वाणिज्य आ जाये तो राज्य के हाथ में दोहरी शक्तियां हो जाती हैं और राज्य के डेमोक्रेसी से हट कर डिक्टेटोरियल हो जाने की सम्भावना बन जाती है। क्योंकि राज्य के हाथ में सब है—राज्य की ताकत तो है ही, धन की भी है और दो ही ताकतें हैं। अगर राज्य के हाथ में सेन्ट्रलाइजेशन हो जाये, देश की सभी ताकतें हों तो अपने आप तानाशाही बैठने लगती है। और जितने बड़ी यात्रा में तानाशाही बैठती है, उतनी बड़ी मात्रा में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता चिन्तन की, विचार की, अभिव्यक्ति की वह सब कम होने लगती है। तानाशाही पहले तो भली मालूम पड़ेगी। जिसको बैंक से लोन नहीं मिलता—लेकिन यह तो बिना राज्य के लिए भी हो सकता है। यह तो राज्य नियमन कर सकता है, कि बैंक जनता को इस भांति लोन दे। इसके लिए नेशनलाइजेशन जरूरी नहीं है। यह जनता के लिए अधिक सुविधाएं मिले, इण्डस्ट्रीज को ज्यादा सुविधाएं मिले, मजदूर को ज्यादा वेलफेयर मिले, यह तो राज्य नियमन कर सकता है और इस नियम को लागू किया जा रहा है या नहीं किया जा रहा है, इसकी भी चिन्ता कर सकता है। लेकिन इसके लिए स्वयं राज्य को सारी सत्ता हाथ में दे देने की कोई जरूरत नहीं है।

ट्रैफिक पर एक आदमी खड़ा किया हुआ है रास्ते पर। वह इसलिए खड़ा किया हुआ है, वह देखे कि कारें बांयें से गुजरती हैं कि नहीं गुजरती हैं। इसलिए ट्रैफिक के आदमी को सब कारों की मालकियत देने की जरूरत नहीं है। और उसे देखना चाहिए कि कौन आदमी गुजर रहा है ठीक से, कौन नहीं गुजर रहा है, लेकिन फिर भी वह इन सारे लोगों की सुविधा के लिए वहां है। वह इनका मालिक होने के लिए वहां नहीं है कि कल वह धीरे-धीरे कहने लगे कि चूंकि गड़बड़ होती है बहुत, इसलिए सब कारों की मालकियत मैं लिए लेता हूं, सब आदमियों की मालकियत मैं ले लेता हूं। अब कोई गड़बड़ न होगी, क्योंकि मालिक भी मैं हूं, ट्रैफिक का आदमी भी मैं हूं।

राज्य का फंक्शन ही यह है कि राज्य का प्रत्येक व्यक्ति जो कर रहा है, वह उसे स्वतन्त्रता से कर सके, लेकिन वह किसी को नुकसान न पहुंचा सके, इसके लिए राज्य का निर्माण है। लेकिन धीरे-धीरे राज्य सब एब्जॉर्ब करना चाहता है और वह कहता है कि नहीं तुम जो करते हो, वह भी हम करेंगे, तुम जो कमाते

हो, वह हम कमायेंगे। बीच का जो मध्यस्थ है, उसको अलग करके हम ही सीधी ओनरशिप ले लेते हैं।

इसलिए सोशलिज्म का गहरा मतलब तो स्टेट कैपिटलिज्म ही होता है कोई और मतलब होता नहीं। सोशलिज्म का मतलब यह नहीं होता कि सोसाइटी की सम्पत्ति होगी। सोशलिज्म का मतलब होगा, स्टेट की सम्पत्ति होगी। सोसाइटी है कहां? सोसाइटी के नाम पर स्टेट मालकियत ले लेती है। तो एक दफा अर्थ का तन्त्र राज्य के हाथ में चला जाये तो देश की सारी सम्भावनाएं स्वतन्त्रता की, लोकतन्त्र की सब समाप्त होती है। फिर राज्य जिनके हाथ में है, उनको हटाने का उपाय कठिन हो जाता है।

दूसरी मजे की बात यह है कि, जैसे ही व्यक्तिगत सम्पत्ति छिन जाये, वैसे ही, उसी दिन आपके भीतर से कोई निन्यानबे प्रतिशत शक्ति छिन जाती है। और आपके भीतर से व्यक्तित्व भी छिनता है। धीरे-धीरे मुल्क एक ऑटोमेटा, एक यन्त्रों का समूह रह जाता है। उसको खाना भी मिलता है, कपड़े भी मिलते हैं, काम भी मिलता है, लेकिन उसकी आत्मा, उसका व्यक्तित्व, वह सब का सब छिन जाता है। तो मैं मानता हूं कि अन्ततः तो नुकसान है। तो नुकसान जब पहुंचाना होगा तो थोड़े बहुत फायदे भी पहुंचाने पड़ते हैं। एकदम से आप नुकसान नहीं पहुंचा सकते। क्योंकि मछली को अगर कांटे में फंसाना हो तो आटा थोड़ा लगाना ही पड़ता है। कांटे का यही फायदा है।

प्रश्न—मैं सवाल यह कर रहा था नेशनलाइजेशन के बारे में, कि अभी अपने देश में बड़ी संख्या में गरीब लोग हैं। क्या उनको तात्कालिक कोई भी राहत नहीं दे सकते हैं हम? यदि दे सकते हैं तो किस तरह दे सकते हैं?

तात्कालिक राहत दी जा सकती है। दो-चार बातों का ख्याल लेना पड़े—एक तो, जनसंख्या कुछ सख्ती से रोक देना पड़े, बढ़ती जनसंख्या को। नहीं तो हम कोई भी सहायता पहुंचायें, वह सहायता पहुंचेगी नहीं। और हम कितना ही इन्तजाम करें, हम जितना इन्तजाम करेंगे, लोग उससे सदा ज्यादा हो जायेंगे और तकलीफ वही रहेगी, बढ़ती जायेगी। तो एक तो जनसंख्या इस समय सबसे बड़ा सवाल है। और इस जनसंख्या को जितनी ताकत से हम रोक सकें, उसको रोकने चाहिए। सब तरफ से हमले करने चाहिए।

जैसे मेरा मानना है कि इसको स्वेच्छा पर नहीं छोड़ना उपाय है। स्वेच्छा से नहीं छोड़ा जा सकता है। यह कम्पल्सरी होना चाहिए। यह वैसे ही कम्पल्सरी होना चाहिए, जैसे चोरी न करने को हम कम्पल्सरी रोकते हैं। डाका न डालने को कम्पल्सरी रोकते हैं। सारा उपयोग करना पड़ेगा हमें, हमें सारा उपयोग करना पड़े। यह तो अनिवार्य हो जाना चाहिए। दूसरा, जो लोग भी दण्डित होते हैं, जिनको हम किसी तरह का दण्ड देते हैं, उनके दन्ड के साथ यह अनिवार्य

रूप से होना चाहिए। एक आदमी को हम छः महीने की सजा देते हैं, तो अनिवार्य रूप से उसका पालन होना ही चाहिए। हमारे जेल से तो एक आदमी बाहर नहीं आना चाहिए।

यह एक तो पहला प्रिवेन्शन हो कि हम जनसंख्या को रोकने की कोशिश करें। दूसरी बात है कि मुल्क के पास बहुत से साधन हैं जो अभी अनएक्सप्लाइटिड हैं। मिसाल के तौर पर समुद्र है। समुद्र से बहुत-सा भोजन निकाला जा सकता है। तो अब जमीन की ही फिक्र करते हैं तो हम भूल में पड़ेंगे और हम जमीन को ही खाद डालते हैं तो कुछ होने वाला नहीं है। असल में जमीन की ताकत चुक गयी है। हिन्दुस्तान ने जमीन को वापस कुछ नहीं दिया है हजारों साल तक, इसलिए जमीन की ताकत चुक गयी है। जमीन पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। हमें समुद्र से फिक्र करनी पड़े, हमें हवा से फिक्र करनी पड़े, हमें सूरज की किरणों से फिक्र करनी पड़े और हमें सिंथेटिक फुड की फिक्र करनी पड़े, जो सबसे बड़ी जरूरत है। जब तक हम सिंथेटिक फुड की फिक्र न करें, तब तक हम शायद कोई मामला हल न कर पायें। बजाय इसके कि हम रोटी देने की फिक्र करें, हमें गोली देने की फिक्र करनी पड़े। और गोली ही अब इस मुल्क को बचा सकती है। भोजन नहीं बचा सकता है। तो हमें भोजन की आदतें छोड़नी पड़े, तो हमें गोली की आदत पर निर्भर होना पड़े।

प्रश्न—आप समुद्र से जो भोजन की व्यवस्था की बात कर रहे हैं, तो जैन धर्म है, वैष्णव धर्म है और बुद्ध धर्म है, वे लोग तो मांस के विरुद्ध हैं?

नहीं नहीं, मैं मांस की बात नहीं कर रहा हूं। असल में समुद्र के पानी में बहुत तत्त्व हैं, जो भोजन बनाये जा सकते हैं, जिन पर काफी काम चल रहा है।

प्रश्न—बड़ा मंहगा होगा?

इतना मंहगा नहीं है कि जितना मंहगा इतने लोगों का भूखों मरना है। और इतना मंहगा भी नहीं, जितना हम जमीन पर ही कोशिश करके कर रहे हैं। असल में मेरा कहना यह है कि हमारा माइन्ड डायवर्ट होना चाहिए, हम सिर्फ भोजन की ही फिक्र में लगे रहें कि उत्पादन बढ़ायें, ट्रेक्टर लायें, फर्टिलाइजर डालें, इससे अब कोई बहुत हल होने वाला नहीं है। जमीन बड़ी चुकी हुई और चूसी हुई है हमारी।

प्रश्न—हमारी सरकार ने समुद्र से भोजन निकालने के लिए, नॉन-वेजिटेरियन फुड तो सबके लिए निकाले हैं।

मैं तो उसके भी पक्ष में हूं, वह तो निकालें ही। मैं उसके विपक्ष में नहीं हूं, क्योंकि मेरे सामने सवाल ये नहीं हैं। मेरे सामने सवाल यह है कि मछली बचे कि आदमी बचे। बड़ा सवाल यह है नहीं कि हिंसा और अहिंसा—बड़ा सवाल यह है कि कम हिंसा या ज्यादा हिंसा। जिन्दगी में जो सवाल हैं, वह रिलेटिव हैं। एब्सलूट सवाल होते ही नहीं। इसलिए जो जैन मुनि यह कह रहा है कि मछली

को मत मारो, वह कह रहा है कि आदमी को मारो । और मेरे सामने सवाल अगर मछली और आदमी बचाने का है, अगर गेहूं मिलते हों तो मैं मछली बचाने को राजी हूं। लेकिन अगर ऑल्टरनेटिव मछली और आदमी में बचाने का है तो मैं मछली को मारूंगा। तो मैं तो कहता हूं, मछली खायें, मांस खायें। मैं यह कह रहा हूं, आदमी मरेगा अगर नहीं खाते हैं। और जो कह रहा है कि मत खाओ, वह आदमी को मारने के लिए जिम्मेवार होगा वह बड़ी हिंसा कर रहा है। इसलिए इस वक्त जैन साधु या बौद्ध भिक्षु जो समझाते हों, या गांधीजी के अनुयायी अगर समझाते हों कि मांसाहार मत करो तो वह आदमी को मारने की तैयारी करवा रहे हैं, जो हमें दिखायी नहीं पड़ रहा है। मछली बच जायेगी, आदमी मर जायेगा। और तब हिंसा बड़ी होगी या छोटी होगी, यह हमें सोच लेना चाहिए।

तो मेरे लिए जिन्दगी में सवाल हमेशा रिलेटिव है। सवाल यह नहीं है कि हिंसा और अहिंसा, सवाल यह है कि कम हिंसा या ज्यादा हिंसा। हमेशा ऐसा ही सवाल है। तो मैं सदा कम हिंसा के लिए राजी हूं और आदमी को बचाना ही कम हिंसा है। मछली को बचाना ज्यादा हिंसा है। इसलिए यह जो चुनाव है मेरे लिए रिलेटिव है और मैं इसके लिए तैयार हूं कि मछलियां पैदा करें बड़े पैमाने पर, खायें भी बड़े पैमाने पर। हां, जरूर इस बात की प्रतीक्षा करें कि हम एक नेसेसरी ईविल कर रहे हैं—मछली को तो भी मार रहे हैं—तो कल हम एक ऐसा इन्तजाम कर लें, जिसमें मछली को मारना जरूरी न रह जाये। लेकिन जब तक वह इन्तजाम न होगा, तब तक आदमी को तो बचा लें अन्त में इन्तजाम तो यही हो कि मछलियां न मारी जा सकें।

बहुत से अनएक्सप्लाइटिड सोर्सेस की हमें फिक्र लेनी चाहिए। और दूसरी सिंथेटिक फुड की हमें सबसे ज्यादा चिन्ता लेनी चाहिए।

प्रश्न—और इकॉनामी इकॉनामिक सिस्टम के बारे में क्या करें ?

इकॉनामिक सिस्टम मेरे लिए कैपिटलिज्म ही उचित मालूम पड़ता है अभी। तो सौ वर्ष इस मुल्क का ठीक ढंग से कैपिटलिज्म की तरफ ले जाने की फिक्र करनी चाहिए, और वह फिक्र हो सकती है। असल में लोग अभी भी सामन्तवादी हैं। अभी भी सामन्तवादी राजा नहीं है, लेकिन सामन्तवादी स्ट्रक्चर है मुल्क का आज। आज भी गांव का आदमी उसी ढंग से जी रहा है, जो हजार साल पहले जीता था। वह सिर्फ स्ट्रक्चर सामन्तवाद का था। सामन्तवादी स्ट्रक्चर जीता है कृषि पर, पूंजीवादी जीता है उद्योग पर। और हमें कृषि से शिफ्ट करनी पड़े उद्योग की तरफ। और हमें कृषि का भी औद्योगीकरण करना पड़े। इसलिए मैं सिंथेटिक फुड की बात कर रहा हूं। मैं कह रहा हूं, हम उसे खेत में न पैदा करें, फैक्ट्री में पैदा करें। उसको हम जितने जल्दी ला सकें, ले आयें।

चौथी बात जो समझने जैसी है, वह यह है कि हम जो लम्बी योजनाएं बना

रहे हैं, वे लम्बी योजनाएं जो पांच या दस-बीस साल में सक्रिय हों, शायद दस-बीस साल में मुल्क इतने प्रॉब्लम बना लेगा कि वह कभी सक्रिय नहीं हो पायेंगी या सक्रिय भी होंगी तो मुल्क इतनी बड़ी जनसंख्या पैदा कर लेगा कि मामला वहीं का वहीं रह जायेगा, उससे कुछ हल नहीं होगा। तो इस वक्त मुल्क को बड़ी योजनाओं में, आगे की, भविष्य की योजनाओं में सक्रिय करने की बजाय इमिज्येट योजनाओं में सक्रियता लाने की फिक्र करनी चाहिए। पांच साल की नहीं, पन्द्रह दिन वाली योजना में सक्रियता लाने की फिक्र करनी चाहिए। चार-पांच साल में हमें पचास योजनाएं बनानी पड़ेगी। और पन्द्रह दिन की योजना ही इस मुल्क को इनसेंटिव दे सकती है। क्योंकि इस मुल्क की लिथार्जी इतनी गहरी है कि पांच साल तक की हम सोच ही नहीं पाते।

अब जैसे—गांव में अगर हम कोई काम पांच साल या पच्चीस साल आगे की योजना के ख्याल से कर रहे हैं। पच्चीस साल बाद फायदा होगा, निश्चित फायदा होगा। लेकिन गांव को जरूरत आज है। तो बजाय इसके कि आप पच्चीस साल बाद जो फैक्ट्री काम करेगी, उसको बनायें, पन्द्रह दिन बाद जो फैक्ट्री काम कर सकेगी, उसको बनाने की फिक्र करें और लांग टर्म योजनाएं जो हैं, उनको सेकेंड्री इम्पोर्टेन्स दें। शॉर्ट टर्म योजनाओं को प्राइमरी इम्पोर्टेन्स दें।

प्रश्न—इसीलिए गांधीजी ने कहा था कि तुम तकली चलाओ और कल की रोटी कल पैदा कर लो।

गांधीजी की तकली चलाने का जो मामला है न, तकली चलाने के साथ मजा यह है कि जितनी देर में तकली चलायी जाती है, उतनी देर में शॉर्ट टर्म योजना बहुत रुपया पैदा कर सकती है। गांधीजी तो यंत्र विरोधी व्यक्ति हैं। मैं नहीं कहता कि तकली मत चलाओ, मैं नहीं कहता। कुछ भी नहीं कर सकते हो तो तकली चलाओ। यह मैं कभी नहीं कहता कि तकली मत चलाओ। लेकिन तकली चलाने को जिन्दगी का सेन्ट्रल फोर्स अगर बनाने की कोशिश की जाये, और गांधीजी वही कोशिश कर रहे हैं। उनका सारा अर्थशास्त्र तकली के आस-पास केन्दित है। उसके मैं खिलाफ हूं। मैं कहता हूं आदमी फुर्सत में बैठा है, ताश खेलने की बजाय तकली चलाये तो बेहतर है। लेकिन आप एक आदमी को तकली चलाने को उसकी इकॉनामी का केन्द्र बना रहे हों तो आप खतरनाक बातें कर रहे हैं। आप उस आदमी को मार डालेंगे, गरीबी में डाल देंगे।

हमें छोटे यन्त्र विकसित करने चाहिए। हम छोटे यंत्र विकसित कर सकते हैं। अब कोई जरूरत नहीं कि आदमी तकली हाथ से चलाये। छोटा करघा हो सकता है जो बिजली से चले। आदमी देख-रेख करे और जितने दिन में तकली चलाकर अपने लिए पैदा करता है, उतने दिन में पांच हजार के लिए पैदा करे। इस मुल्क के लिए जापान और इजरायल की तरह ध्यान देना चाहिए। जो यन्त्र विरोधी

नहीं हैं, लेकिन छोटे यन्त्रों में बड़ी गति कर रहे हैं। इस मुल्क को अमरीका की तरफ ध्यान देने से थोड़ा सावधान रहना चाहिए, यंत्रों का जहां तक सम्बन्ध है। पचास साल बाद हम अमरीका के यन्त्रों का ठीक से उपयोग कर सकेंगे। आज हमें फिक्र करनी चाहिए उन मुल्कों की जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं है, लेकिन फिर भी जो यन्त्र पक्षपाती हैं और वे यंत्रों के प्रयोग से, छोटे यन्त्रों के प्रयोग से आगे बढ़ रहे हैं। जैसे कि इजरायल है। इजरायल ने इधर जो बीस साल में काम किया, वह आंखें खोल देने जैसा है। उस काम को हम भी कर सकते हैं। हमारे पास ज्यादा सुविधा है, इतनी सुविधा उनके पास नहीं है। लेकिन हमारे पास समझ कम है।

प्रश्न—तो क्या आपका ख्याल है कि जो बड़ी इण्डस्ट्री डाली गयी हैं, वह अपने हित में नहीं हुई हैं ?

नहीं नहीं, मैं यह नहीं कहता कि हित में नहीं रहीं। मेरा कहना यह है कि बड़ी इण्डस्ट्री जरूर डालें, लेकिन वह सेकेन्ड्री इम्पोर्टेन्स हों, क्योंकि मुल्क के प्रॉब्लम इमिज्येट हैं। इंडस्ट्री डालनी तो पड़ेगी, नहीं तो बीस-पच्चीस साल बाद हम और दिक्कत में पड़ जायेंगे। बड़ी इंडस्ट्री हमें डालनी ही पड़ेगी। लेकिन सबसे ज्यादा इम्पोर्टेन्स—क्योंकि जो इंडस्ट्री बड़ी है, वह पांच साल बाद काम करेगी और आदमी आज भूखा मर रहा है। यह तो आज मरते भूखे आदमी के लिए हमें कुछ फिक्र करनी ही पड़ेगी, जो आज ही तात्कालिक काम करती हो। फर्स्ट इम्पोर्टेन्स इसको हो, इसकी ताकत से जो हमको ताकत मिले, वह सेकेन्ड्री इम्पोर्टेन्स में हमें वह सारी की सारी व्यवस्था करनी पड़े। और नहीं तो क्या होगा ? हम बड़ी इण्डस्ट्री जिस दिन खड़ी कर पायेंगे, उस दिन तक हम पायेंगे कि प्रॉब्लम्स तो बहुत आगे जा चुके हैं, हम वहीं हैं। ●

अहमदाबाद, दिनांक ९ अगस्त १९७०

१६. परस्पर-निर्भरता और विश्व नागरिकता

नॉनप्रॉडक्टिव वेल्थ के लिए हम टैक्सेस ज्यादा लगायें और प्रॉडक्टिव वेल्थ के लिए हम जितना प्रमोशंस दे सकें, दें। दो ही तो उपाय हैं। अगर एक आदमी लाख रुपया पाया है मुफ्त में तो उस पर टैक्स भारी होने चाहिए और एक आदमी लाख रुपये से कुछ प्रॉड्यूस कर रहा हो, डेढ़ लाख पैदा कर रहा है तो उस पर टैक्सेस कम होने चाहिए। अभी हालतें उल्टी हैं। अगर आप लाख रुपया अपने घर में रखकर कुछ भी नहीं कमाते तो आपको कोई टैक्सेशन नहीं है और अगर आप डेढ़ लाख कमाते हैं तो आप पर टैक्सेशन हैं। अभी अगर वेल्थ का क्रिएट करते हैं तो आपको दण्ड देना पड़ता है टैक्सेशन्स के रूप में। अगर आप वेल्थ को रोक कर बैठ जायें तो उसका कोई दण्ड नहीं है!

इसे हमें उलटना चाहिए। अन्प्रॉडक्टिव वेल्थ पर बहुत भारी टैक्सेशन होना चाहिए और प्रॉडक्टिव वेल्थ पर टैक्सेशन कम होना चाहिए और जितना हायर प्रॉडक्शन हो, उतना, टैक्सेशन कम होना चाहिए। अगर एक आदमी लाख रुपया कमाये तो उसको जितना टैक्सेशन हो, दो लाख कमाने वाले पर उससे और कम हो, तीन लाख कमाने वाले पर और कम, पांच लाख कमाने वाले पर और कम, और दस लाख अगर कमाता हो तो उसको तो हम सरकार से और सहायता दें सकें तो देना चाहिए—टैक्सेशन खत्म! एक सीमा के बाद टैक्सेशन खत्म कर देना चाहिए। तो हम आदमी की जो वेल्थ पड़ी हुई है उसको प्रॉडक्शन की तरफ

मोड़ पायेंगे, नहीं तो नहीं मोड़ पायेंगे। अभी हालतें उल्टी हैं।

अभी हालत यह है कि अगर आप पैदा करते हैं तो आप पर टैक्स लगता है। और जितना ज्यादा पैदा करते हैं, उतना ज्यादा टैक्स लगता है। तो एक तो आप प्रॉडक्शन के इनसेंटिव को मार रहे हैं और एक भाव पैदा कर रहे हैं कि अगर एक सीमा पर जाये और लाख रुपये कमाकर नब्बे हजार टैक्स देना हो। और देना ही है इतना, तो कोई मतलब नहीं है। इसका कोई सेंस नहीं है। तो मेरी समझ यह है कि हमारा जो टैक्सेशन की पूरी सिस्टम है, वह अन्प्रॉडक्टिव की तरफ हमें खींचने की कोशिश करवाती है। तो एक तो हमें टैक्सेशन्स को प्रॉडक्शन की तरफ मोड़ने की कोशिश करनी चाहिए।

और दूसरी मेरी अपनी समझ यह है कि सीलिंग की बकवास बन्द करके फ्लोरिंग की बात करनी चाहिए। हमें यह बात बन्द करनी चाहिए कि कितनी सीमा के बाद आपकी सम्पत्ति पर रोक लगायेंगे, हमें यह बात बन्द करनी चाहिए। सीलिंग तो अनलिमिटेड होनी चाहिए, इसका कोई सवाल नहीं है। फ्लोरिंग की फिक्र करनी चाहिए। फ्लोरिंग का मेरा मतलब यह है कि नीचे हम सौ रुपये से कम किसी आदमी को नहीं मिलने देंगे, इसकी हम फिक्र करें। अगर आपकी फैक्ट्री में आप दस लाख रुपया कमाते हैं तो आप मजे से कमायें, लेकिन हम मजदूर को सौ रुपये से कम आपकी फैक्ट्री में नहीं मिलने देंगे।

प्रश्न—हमारे इंडस्ट्रियलिस्ट एक प्रतिशत बोनस अधिक न देने के लिए सुप्रीम कोर्ट तक जाते हैं, तो यह कैसे सम्भव है?

उसके कारण हैं कि आप एक क्लास स्ट्रगल का बोध पैदा किये हुए हैं। क्लास हार्मनी का बोध नहीं है। तो जब भी आप क्लास स्ट्रगल की बात करेंगे तो ठीक है कि कैपिटलिस्ट क्लास भी लड़ाई शुरू करे अपनी, क्योंकि आप दूसरी तरफ से सब छीनने के लिए तैयार हैं उससे। आप सोसाइटी को ऐज ए होल, नहीं अभी तक पकड़ पा रहे हैं। आप सोसाइटी को क्लासेस में बांट कर देख रहे हैं। और जब आप सोसाइटी को क्लासेस में बांटकर देखते हैं तो ठीक है, फिर वह अपने इंट्रेस्ट के लिए लड़ना शुरू कर देती है। तो मेरी अपनी समझ यह है कि सोशलिज्म सबसे पहले हमारे दिमाग में क्लास कॉन्फिलक्ट का बोध देता है और वह अवेयरनेस इतनी गहरी कर देता है कि फिर हम क्लास के इंट्रेस्ट के सिवाय सोचते ही नहीं। एक पैसा छोड़ना है तो भी लड़ाई हम करेंगे और मजदूर को एक पैसा लेना है तो भी वह लड़ाई करेगा।

मेरी अपनी दृष्टि दूसरी है। मेरा अपना मानना यह है कि हमें मौके ऐसे बनाना चाहिए कि लड़ाई की कम से कम सम्भावना रह जाये। और हम कैपिटलिस्ट क्लास को आगे के लिए स्वतन्त्र छोड़ें और आगे टैक्सेशन कम करते चले जायें तो कैपिटलिस्ट क्लास को हम राजी कर सकते हैं कि वह नीचे फ्लोरिंग के

लिए राजी हो जाये। क्योंकि सवाल यह है आज, अगर एक बार कैपिटलिस्ट क्लास को यह पता चल जाये कि समाज उसको मिटा देने को तैयार नहीं है, उसे भी सहयोग देने को तैयार है, तो कैपिटलिस्ट क्लास को मजदूर के लिए सहयोग देने के लिए, मैं मानता हूं कि कठिन नहीं है। क्योंकि आखिर कैपिटलिस्ट क्लास के हित में ही है कि मजदूर सुखी हो। यह सारे दुनिया का अनुभव यह कहता है कि मजदूर जितना सुखी और सम्पन्न होता है, उतना ही वह ज्यादा सम्पत्ति पैदा करने को सहयोगी हो जाता है। और उसका सुख और सम्पन्नता कैपिटलिस्ट क्लास के विपरीत नहीं है।

लेकिन अगर हम क्लास कॉन्शसनेस में लड़ाई शुरू करते हैं, तब तो विपरीत हो जाता है। अभी हालतें हमने क्या पैदा कर ली हैं? और सारी दुनिया में हालतें पैदा हो गयी हैं कि जैसे ही हमने मजदूर को और अमीर को क्लासेस बना दिया, यानी वह कोई कोऑप्रेशन में नहीं है अब, अब कॉन्फिलक्ट में है, तो लड़ाई पूरे वक्त चल रही है। और कैपिटलिस्ट एक पैसा भी छोड़ने में इसलिए जिद् करता है कि वह एक पैसा छोड़ता है तो कल दो पैसा छोड़ने की स्थिति बनती है।

प्रश्न—मान लीजिए कि लेबर फाइट करता है, लेकिन उन्हें ग्रेस उनके प्रति दिखाना चाहिए।

नहीं समझ रहे हैं—हालतें क्या हैं, जितनी ग्रेस दिखायी जाती है; जितनी ग्रेस दिखायी जाती है, उतनी ही सम्भावना कम्युनिज्म की बढ़ती है, कम नहीं होती। जितनी ग्रेस दिखायी जाती है, उतनी सम्भावना कम्युनिज्म की बढ़ती है। अब आज हम कहते हैं अमरीका से कि वह वियतनाम में न लड़े। अगर वह वियतनाम में लड़ना बन्द करता है तो कल उसको काश्मीर में लड़ना पड़ेगा और काश्मीर में लड़ना बन्द करता है तो कल उसको इजराइल में लड़ना पड़ेगा। वह जहां से लड़ना छोड़ता है, वह कम्युनिज्म के हाथ जाता है और कहीं दूसरी जगह लड़ाई करनी पड़ती है। कैपिटलिस्ट के साथ भी वही तकलीफ हो गयी है, क्योंकि मामला लड़ाई का हो गया है।

तो एक तो मेरी अपनी समझ यह है कि समाज ऐज ए यूनिट हमें स्वीकार करना चाहिए, नॉट ऐज ए कॉन्फिलक्ट। फाइट नहीं देखना चाहिए। तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो गयी है। मजा यह है कि कैपिटलिस्ट हारती हुई क्लास है, कोई जीतती हुई क्लास नहीं है, इसलिए हारती हुई क्लास आखिरी दम तक लड़ने की कोशिश करती है। और मजा यह है कि कैपिटलिस्ट को भी पता नहीं है कि उसकी लड़ाई से वह जीतने वाला नहीं है। उसकी लड़ाई से वह रोज हारते जाने वाला है। ग्रेस के लिए तैयार किया जा सकता है, लेकिन हम कैपिटलिस्ट के लिए क्या करने को तैयार हैं सोसाइटी में। यानी मैं यह पूछता हूं कि कैपिटलिस्ट से हम

यह कहते हैं कि तुम मजदूर के लिए यह करो, लेकिन हम पूरे मुल्क से क्या कहते हैं कि तुम कैपिटलिस्ट के लिए यह करो।

प्रश्न—अस्पष्ट

पहली बात तो यह है कि हम बात ही एक दृष्टि से सोचते हैं, तब दिखायी पड़ती है। ऐसा दिखायी पड़ता है कि कुछ दस-पच्चीस लोगों ने पूरे मुल्क का शोषण किया हुआ है, एक्सप्लायटेशन किया हुआ है, पूरी सोसाइटी को एक्स-प्लाइटरी मशीनरी में बदल दिया है। यह बड़े सोचने की और मजे की बात है।

मजे की बात यह है कि जिन पच्चीस आदमियों को हम कहते हैं कि इन्होंने सम्पत्ति का शोषण किया हुआ है, हम यह बात मानकर ही चलते हैं कि अगर पच्चीस आदमी न हों तो समाज के पास सम्पत्ति थी। तो पहले तो मैं इसको ही गलत मानता हूं कि समाज के पास सम्पत्ति थी। जब हम कहते हैं शोषण किया है तो इसमें यह भ्रांति पैदा होती है कि आपके पास था और मैंने छीन लिया है। मजा यह है कि इन पच्चीस ने आपसे कुछ भी नहीं छीना। आपके पास था ही नहीं। यह जो वेल्थ दिखायी पड़ती है कुछ लोगों के हाथ में, यह वेल्थ क्रिएट की गयी है, यह किसी के पास से एक्सप्लायट नहीं की गयी है। यह कहीं रखी हुई नहीं थी। यहां ऐसा नहीं था कि पच्चीस आदमी इस कमरे में थे और मैंने सबसे एक-एक रुपया छीनकर मेरे पास पच्चीस हो गये हैं। इनके पास एक भी नहीं था। और जब मेरे पास पच्चीस हुए हैं, तब इनके पास एक हो सका है। लेकिन अब फर्क दिखायी पड़ रहा है। इनके पास एक है और मेरे पास पच्चीस हैं। तो लगता है ऐसा कि मैंने चौबीस का शोषण किया हुआ है। आप क्या समझते हैं कि कैपिटलिज्म जिस दिन नहीं था, उस दिन लोगों के पास सम्पत्ति थी?

मजे की बात यह है कि आज जिसको आप करोड़ों लोग कह रहे हैं और कह रहे हैं कि वह आज रायट कर रहे हैं, ये करोड़ों लोग भी नहीं थे। ये करोड़ों लोग भी कैपिटलिज्म की वजह से जिन्दा हैं, अन्यथा ये पैदा भी नहीं हो सकते थे और बच भी नहीं सकते थे। आज से हजार साल पहले दस बच्चे पैदा होते थे तो नौ बच्चे मर जाते थे और एक बच्चा बचता था। यह एक बच्चा बचता था और नौ बच्चे मर जाते थे। आज हालत उलटी हो गयी है। नौ बच्चे बचते हैं, एक बच्चा मरता है। ये जो नौ बच्चे इकट्ठे होते जा रहे हैं, ये होते ही नहीं। कैपिटलिज्म ने वेल्थ पैदा किये हैं, इसकी वजह से ये नौ बच्चों को भी काम है, नौकर है, धन्धा है। इनके पास जो कुछ भी है, यह कैपिटलिज्म ने पैदा किया हुआ है, अन्यथा यह बचता नहीं। और आज जब इनकी भीड़ इकट्ठी हो गयी, और वह जो भीड़ इकट्ठी हो गयी है, वह उनको दिखायी पड़ती है कि उसके पास कुछ भी नहीं है और इनके पास सब कुछ है तो स्वभावतः ऐसा मालूम पड़ता है कि शोषण किया गया है।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि पहली तो बात यह है कि शोषण फ्यूडलइज्म का तो हिस्सा था, फ्यूडलइज्म ने कोई कैपिटल पैंदा नहीं की थी। राजाओं और महाराजाओं ने कोई कैपिटल पैंदा नहीं की थी। कैपिटल उन्होंने छीनी थी। वह लुटेरे थे, लेकिन हमारा ध्यान वही का वही है अब भी! कैपिटलिस्ट कैपिटल छीन नहीं रहा है, कैपिटल पैंदा कर रहा है। और अगर आपसे काम लेकर दो रुपये आपको दे रहा है तो आप इस भ्रांति में न रहिये कि आपको दो रुपये न मिलते तो आज आपके पास दो रुपये होते। और आपके पास जो लेबर की फोर्स है, लेबर की फोर्स तो एक दिन में खत्म हो जाती। अगर कल उससे काम नहीं लिया होता तो आज आप नंगे होते। और आपके पास जो कल श्रम की शक्ति थी, वह हवा में खो जाती। उसको उसने कन्वर्ट किया है कि उसने दो रुपये दे कर आपके कल के लेबर को कैपिटल में कन्वर्ट किया।

अच्छा, आप क्या कह रहे हैं? आप यह कह रहे हैं कि उसने हमें दो रुपये दिये, इसको दस रुपये देने चाहिए। और मजे की बात यह है कि अगर वह दो रुपये न देता तो आपको दस रुपये कहीं मिलने वाले नहीं थे। दो रुपये भी आपको न मिलते। तो जो पहली बात तो मैं यह मानता हूं कि कैपिटलिज्म जो है, वह बेसिकली एक्सप्लायटेशन नहीं है। वह बेसिकली लेबर को कैपिटल में कन्वर्ट करने की कोशिश है। और स्वभावतः आज इतना बड़ा लेबर उपलब्ध है कि पूरे लेबर को कन्वर्ट वह नहीं कर सकता है। और चूंकि ज्यादा लेबर उपलब्ध है, इसलिए कम पैंसे मिलते हैं आपको। इसका भी जिम्मा उस पर नहीं है। इसका भी जिम्मा अधिक लेबर पर है। लेबर बच्चे पैंदा किये जा रहा है। और वह इतने बच्चे पैंदा कर रहा है कि लेबर के दाम रोज कम होते जाते हैं। लेकिन आप जिम्मा इस पर ठहराते—कैपिटलिज्म पर, कि यह दाम कम दे रहा है। यह दाम कम देगा ही, क्योंकि लेबर को जब कैपिटल में कन्वर्ट करना है तो सस्ते से सस्ते लेबर को ही कन्वर्ट किया जा सकता है। अन्यथा, कनवर्शन मुश्किल है।

तो मेरे हिसाब से पहले तो मैं कैपिटलिज्म को एक्सप्लायटेशन की नहीं, कनवर्शन की सिस्टम मानता हूं। और जिस बात को आप कह रहे हैं, बजाय पच्चीस आदमियों के हाथ में पच्चीस सौ लोगों के हाथ में हो, इसको मैं मानता हूं। लेकिन यह कैपिटलिज्म का विरोध नहीं है, वह कैपिटलिज्म को फैलाना है। और जब पच्चीस लोगों के हाथों में मुल्क की सम्पत्ति है—जिस मुल्क में पच्चीस लोगों के हाथ में है, इनको बांटकर आप पच्चीस सौ लोगों में नहीं फैला सकते। आपको कैपिटलिज्म को इन्सेंटिव देना पड़े तो आज पच्चीस के हाथ में है, कल पच्चीस सौ के हाथ में हो सकता है। इसको आप कैपिटलिज्म को बांट के नहीं, कैपिटलिज्म के बुनियादी आधारों को सहारा देकर आप बढ़ा सकते हैं। यह कैपिटलिज्म का विरोध नहीं है। अगर हम पच्चीस की जगह पच्चीस सौ उद्योगपति मुल्क में

चाहिए या पच्चीस हजार उद्योगपति चाहिए तो जो पच्चीस के बनने का नियम है, उस नियम को हमें पच्चीस सौ लोगों तक फैलाने की सुविधा देनी चाहिए। और अगर हमको उसे पच्चीस सौ को मिटाना है तो आप हैरान होंगे, पच्चीस सौ तक वह नहीं फैलेगा, पच्चीस मिट जायेंगे। क्योंकि जो आधार हैं कैपिटलिज्म के वे वहीं के वहीं रहने वाले हैं, चाहे पच्चीस हों, चाहे पच्चीस सौ हों।

प्रश्न—अस्पष्ट

इसको थोड़ा समझना पड़े। इसको थोड़ा समझना पड़े, मैं इसे अनजस्ट नहीं कहूंगा। मैं अनजस्ट नहीं कहूंगा, और न ही मैं इस बात के लिए राजी हो सकता हूं कि कैपिटलिज्म उस जगह पहुंच गया है, जहां वह अब सोसाइटी को रुकावट डाल रहा है। इन दोनों बातों को थोड़ा मेरी तरफ से समझना पड़े। पहली बात तो यह है कि कैपिटलिज्म जिस जगह पहुंच गया है, जिन मुल्कों में कैपिटलिज्म विकसित हुआ है, उन मुल्कों में कम्युनिज्म और सोशलिज्म की कोई ताकत नहीं है। जिन मुल्कों में विकसित नहीं हुआ है, वहां ताकत है। तो आपकी बात को थोड़ा सोचना पड़े। क्योंकि सिर्फ गरीब मुल्कों में सोशलिज्म की ताकत है, अमीर मुल्कों में कोई ताकत नहीं है। अमरीका की अभी भी कोई सम्भावना नहीं है कि वह कम्युनिस्ट हो जाये।

कैपिटलिज्म कोई स्टेटिक बात नहीं है, वह तो बदलता रहेगा। लेकिन जो मैं कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि कैपिटलिज्म की अपील और सोशलिज्म की अपील में अगर ऐसा सम्बन्ध है कि जहां कैपिटलिज्म ने अपना काम पूरा कर दिया है, वहां सोशलिज्म आता हो तो बात गलत मालूम पड़ती है। क्योंकि रूस में कैपिटलिज्म नहीं था और सोशलिज्म आया। चीन में कैपिटलिज्म का कोई नक्शा नहीं था और सोशलिज्म आया। और हिन्दुस्तान धेला भर भी कैपिटलिज्म नहीं है, वह सोशलिज्म की बातें कर रहा है! तो पहली तो बात यह दिखायी पड़ती है कि सोशलिज्म की अपील वहां होती है, जहां कैपिटलिज्म अपना काम नहीं कर पाया। जहां कैपिटलिज्म ने अपना काम किया हुआ है, वहां सोशलिज्म की कोई अति नहीं पकड़ती, उसका कारण है। उसका कारण है। क्योंकि कैपिटलिज्म अपना काम पूरा कर ले और वेल्थ क्रिएट कर सके तो वेल्थ जब अपने आप बड़े पैमाने पर क्रिएट होती है तो वह कुछ लोगों के हाथ में नहीं टिकती। कुछ लोगों के हाथ में नहीं टिकेगी, बड़ी संख्या में, बड़े पैमाने पर फैलनी शुरू हो जाती है।

आज अमरीका का जो गरीब है, वह भी उस अर्थ में गरीब नहीं है, जिस अर्थ में हमारा गरीब है। असल में आज अमरीका में जिसको हम प्रोलिटेरियट कहें, वह तो खत्म हो गया है, मिडिल क्लास ही है। मार्क्स का ख्याल उल्टा था। उसका ख्याल था, कैपिटलिज्म विकसित होगा तो मिडिल क्लास खत्म हो जायेगा।

गरीब रहेगा और अमीर रहेगा। हालत उल्टी है अमरीका में। गरीब का क्लास खत्म हो गया है—मध्यम वर्ग है, और बड़ा वर्ग है। असल में अमरीका में छोटे पूंजीपति हैं, और बड़े पूंजीपति हैं, और बड़े पूंजीपति हैं। लेकिन ठेठ जिसको प्रोलिटेरियट कहें, सर्वहारा कहें, वह अमरीका से विदा होने के करीब आ गया है। इसलिए अमरीका में कोई सम्भावना नहीं है, क्योंकि मिडिल क्लास बढ़ती हुई फोर्स है और जहां मिडिल क्लास बड़ी ताकत बन जाये, वहां सोशलिज्म का कोई उपाय नहीं है। और कैपिटलिज्म जब भी विकसित होगा तो अंततः पूरी सोसाइटी मिडिल क्लास हो जायेगी, मेरे हिसाब से। और नीचे मिडिल क्लास, लोअर मिडिल क्लास रह जायेगी, ऊपर जिसको हम अमीर कहते हैं, वह हायर मिडिल क्लास हो जायेगी। जिस दिन कैपिटलिज्म पूरी तरह फुलफ्लेज्ड रूप में होगा उस दिन न तो मजदूर होगा, न अमीर होगा; मिडिल क्लास होगी। इस मिडिल क्लास के छोर होंगे। यह लोअर मिडिल क्लास होगा, वह हायर मिडिल क्लास होगा। सम्पत्ति जब बड़े पैमाने पर पैदा होगी तो हाथों में रोकना असम्भव है। सम्पत्ति फैलती है। असल में सम्पत्ति है उपयोग के लिए। उसका फैलाव अनिवार्य है। जब आप और सम्पत्ति पैदा करना चाहते हैं, तब आपकी सम्पत्ति को फैलाना पड़ता है, तभी आप और सम्पत्ति पैदा कर सकते हैं।

तो मेरी दृष्टि में कैपिटलिज्म ने जहां भी काम थोड़ा-बहुत कर लिया है, वहां तो सोशलिज्म की कोई सम्भावना नहीं है। सोशलिज्म की पकड़ उन मुल्कों पर बैठ जाती है, जहां कैपिटलिज्म बिल्कुल शुरूआत में है। क्योंकि गरीबी है बहुत बड़ी और कैपिटलिज्म है बहुत छोटा। और इन गरीबों को समझाया जा सकता है कि तुम्हारा शोषण करके यह कैपिटलिस्ट, कैपिटलिस्ट बन गया है। यह झूठी बात है। क्योंकि जहां उसने शोषण अच्छी तरह से किया है, वहां गरीब भी अमीर हो गया है। वहां शोषण के ये परिणाम ही दिखायी पड़ते हैं।

असल में मजा यह है कि हिन्दुस्तान में जो गरीब है, वह गरीब अपनी ही वजह से गरीब है। उसको किसी ने शोषण नहीं कर लिया है। और मजा यह है कि अगर हिन्दुस्तान के सब करोड़पतियों का पैसा बांट दिया जाये तो हिन्दुस्तान का गरीब कोई अमीर नहीं हो जाता। तो एक बात तो पक्की है कि अगर इसका शोषण भी किया गया है तो उससे यह गरीब नहीं है। क्योंकि सारा पैसा भी इसको बांट दें तो गरीबी नहीं मिटती है। इसकी गरीबी के कारण दूसरे हैं। इसकी गरीबी का कारण पूंजीपति नहीं है, लेकिन पूंजीपति को इसके विपरीत बनाया जा सकता है। बताया जा सकता है कि देखो, इसके पास पैसा है, तुम्हारे पास पैसा नहीं है। जिनके पास पैसा नहीं है—हम सदा इस भाषा में सोचते हैं कि जिनके पास पैसा नहीं है और जिनके पास है तो कुछ इन्जस्टिस हो गयी। लेकिन मेरी अपनी समझ उल्टी है। मेरी अपनी समझ यह है कि जिनके पास पैसा

नहीं है—अगर हिन्दुस्तान में ये पच्चीस लोग, जिनके पास पैसा है, ये भी अगर इसी तरह काहिल और सुस्त और अलाल होकर बैठे रहें, जैसा पूरा मुल्क बैठा है, तो इनके पास भी पैसा नहीं होगा। तब सब जस्टिस हो जायेगी पूरी तरह। पूरा हिन्दुस्तान तमस से भरा हुआ है, लिथार्जी से भरा हुआ है। कोई कैपिटल पैदा करने को उत्सुक नहीं है।

अच्छा, ये गधे जो कैपिटल पैदा नहीं करते, ये आखिर में अनजस्ट मालूम पड़ते हैं कि इनके साथ अनजस्टिस हो गयी और जिसने पैदा कर ली है वह आदमी फंस जाता है कि इसने अन्याय कर दिया है! यानी हालतें कुछ ऐसी हैं कि जो पैदा कर रहा है, वह आखिर में फंसेगा कि इसने अन्याय किया है। और जो पैदा नहीं कर रहा है, आखिर में मालूम पड़ेगा कि इसके साथ अन्याय हो गया है! अब यह हमें बड़ी मजेदार बात मालूम होती है। यह मामला ऐसा है कि आज नहीं कल आप हो सकता है कि कुछ लोगों को कह दें कि यह आदमी बुद्धिमान हो गया है और इन्होंने कुछ लोगों की बुद्धि का शोषण कर लिया है। और कुछ लोग बुद्धू रह गये हैं। और जो लोग बुद्धू हैं, कल कहने लगें हमारे साथ इनजस्टिस हो गयी है, क्योंकि हमारी बुद्धि कहां है!

अब यह बड़े मजे की बात है कि कैपिटल भी पैदा करनी पड़ती है, उसके लिए भी श्रम उठाना पड़ता है, बुद्धि लगानी पड़ती है। उसके लिए दौड़ करनी पड़ती है। जो लोग दौड़ते हैं, मेहनत करते हैं, महत्त्वाकांक्षी हैं, श्रम करते हैं, दांव लगाते हैं, जिन्दगी लगाते हैं। ये सारे लोग, जब कभी थोड़े से लोग पैसा इकट्ठा कर पाते हैं तो जो बैठे हुए घर देख रहे थे और आराम से हुक्का पी रहे थे अपने घर में बैठ कर, उनके पास जब पैसा नहीं दिखायी पड़ता, तब उनको अचानक पता चलता है कि इनजस्टिस हो गयी! कुछ लोग जिनके पास है उन्होंने इनजस्टिस की है और जिनके पास नहीं है वे बड़े जस्ट लोग हैं? यह बड़ा उल्टा न्याय है, यह मैं नहीं मान पाता कि इसमें आप ठीक से जस्टिस कर रहे हैं।

मेरी अपनी समझ यह है कि पैसा कोई भी पैदा कर सकता है। पैसा पैदा करने की अपनी कला है। जैसे बुद्धि विकसित करने की कला है, आर्ट है, वैसा पैसा पैदा करने का अपना आर्ट है। अमरीका को आज से तीन सौ साल पहले, अमरीका में जो लोग रह रहे थे, हजारों साल से रह रहे थे, मुल्क वही था, उसके सोर्सेस वही थे, और आज भी रेड इंडियन रह रहा है पहाड़ पर, उसने कभी सम्पत्ति पैदा नहीं की! अमरीका में तीन सौ वर्ष से यूरोप की सम्पत्ति पहुंची और उसने सम्पत्ति पैदा कर ली। और सबसे नया मुल्क सबसे ज्यादा सम्पत्ति का मुल्क हो गया! और जो लोग गये, ये उस मुल्क में गये जो सरासर गरीब था। अब जरा सोचने जैसा है कि जिन्होंने सम्पत्ति पैदा कर ली, अब जो

रैंड इंडियन है, अमरीका का आदिवासी, वह कह सकता है, हमारा शोषण हो गया। और मजा यह है कि उसके पास कभी सम्पत्ति नहीं थी, वह इसी मुल्क में सदा से था। और यही सोर्सेस उसको उपलब्ध थे, उसने कभी पैदा किया नहीं!

दो सोसाइटी का मैं अध्ययन कर रहा था। अमरीका में दो रैंड इंडियन सोसाइटी हैं एक ही पहाड़ पर रहती हैं, एक इस तरफ, एक उस तरफ—छोटे-छोटे कबीले। एक कबीले का नियम है कि वह कबीला एक के ही खेत पर पूरा काम करता है, अनादि काल से। सामाजिक व्यवस्था उनकी ऐसी है कि एक के ही खेत पर काम करना है, तो पूरा गांव जाकर उस पर काम करेगा। तो एक खेत में ही काम हो सकता है एक दिन में। दूसरा जो कबीला है, वह अपने-अपने खेत पर काम करता है। वे एक पहाड़ के दो हिस्सों पर कबीले हैं। जो कबीला, सारा का सारा गांव एक खेत पर काम करता है, वह बहुत गरीब है। वह होने ही वाला है। क्योंकि जब एक छोटे से खेत पर, जब सारा गांव काम करता है तो काम भी ज्यादा नहीं होता, फिजूल की बातें होती हैं, गाना-नाच होता है और काम भी ज्यादा नहीं होता है, इनसेंटिव भी नहीं है। क्योंकि एक आदमी का सवाल नहीं है। दूसरा अपने-अपने खेत पर काम कर रहा है कबीला। वह कबीला अमीर है।

एक ही जमीन है, एक ही हवा है, एक ही पानी है, एक ही कौम है, लेकिन एक कबीले का सोशल ढंग एक है और दूसरे का सोशल ढंग दूसरा है। इसमें आप कैसे तय करियेगा कि किसके साथ इनजस्टिस हो गयी है। मेरी अपनी समझ यह है कि हिन्दुस्तान में जो आज आपको गरीब दिखायी पड़ रहा है, उसके साथ इनजस्टिस इसलिए नहीं दिखायी पड़ रही है कि वह गरीब है, इसलिए दिखायी पड़ रही है कि कुछ लोग अमीर हो गये हैं। अगर ये भी गरीब होते तो बड़ी जस्टिस थी! क्योंकि हम सब गरीब थे और बराबर गरीब थे, कोई दिक्कत न थी।

यह कठिनाई हमको इसलिए पैदा हो रही है कि हमारे बीच में कुछ लोगों ने सम्पत्ति पैदा कर ली है और जिन्होंने सम्पत्ति पैदा कर ली है, वे हमारी ईर्ष्या के बिन्दु हो गये हैं। बड़े मजे की बात यह है कि हमने पैदा नहीं की है। जिन्होंने पैदा नहीं की है, वे बड़े गौरवान्वित हैं कि उन्होंने बड़ा काम किया कि उन्होंने पैदा नहीं किया! मैं नहीं मानता हूं ऐसा। मेरी अपनी समझ यह है कि मुल्क में बड़ी लिथार्जी है और उस लिथार्जी से बचने के लिए सोशलिज्म बड़ी अच्छी, अद्‌भुत अपील है। वे यह कह देते हैं कि इन्होंने शोषण कर लिया है तुम्हारा। और मजा यह है कि इसके पास कुछ था ही नहीं, जिसका शोषण किया जा सके। इसके पास कुछ होता—सिर्फ लेबर था उसके पास और अपने लेबर को वह कन्वर्ट नहीं कर सका कभी भी कैपिटल में।

प्रश्न—इट कैन नाट?

गलत बात है आपकी। क्यों, कैन नाट क्यों कहते हैं आप? अगर लेबर मेरे पास है तो मैं उसे बदल सकता ही हूं। कोई न कोई उपाय मैं खोज ही सकता हूं, उसको मैं कैपिटल में बदलूं। हिन्दुस्तान के पास लेबर है, लेकिन कैपिटल में बदलने की न तो आकांक्षा है, न समझ है। न समझ है, न श्रम है, न साहस है। आपसे यह कहूंगा, कि क्यों नहीं बदल सकते आप जब आपके पास लेबर है? और फिर अगर आप नहीं बदल सकते, और किसी ने बदला है तो अनजस्टिस हो गयी? कि आपको दो रुपये मिल गये, जो आपको नहीं मिले होते? जब आपको दो रुपये मिलते हैं, तब आप कहते हैं, मेरे पास दस रुपये का लेबर था, मुझे दो रुपये मिले। और जब आपको नहीं मिल रहे थे, तब आपके पास धेले का लेबर नहीं था, लेबर खाली जा रहा था! मैं नहीं मानता, अनजस्टिस हो गयी। इतना जरूर मानता हूं कि जितनी जस्टिस होनी चाहिए, उतनी नहीं हो पा रही है। इसको मैं फर्क करता हूं—जितनी जस्टिस हो सकती है, वह नहीं हो पा रही है। उसके लिए उपाय खोजने चाहिए।

प्रश्न—अस्पष्ट

असल में, जैसा मैंने कहा कि मैं यह नहीं मानता हूं कि अनजस्टिस हुई है, मैं यह जरूर मानता हूं कि जितनी जस्टिस होनी चाहिए, उतनी नहीं हो पायी है। और इसका कारण है? इसका कारण मैं मानता हूं कि कैपिटलिज्म को विकास का मौका नहीं मिल पा रहा है और सोशलिज्म की बातें उसके विकास में सब जगह बाधा डाल रही हैं। दूसरा कारण, कि जो कैपिटल का कनवर्शन है, लेबर का जो कनवर्शन है कैपिटल में, जब तक हमें ह्यूमन लेबर पर निर्भर करना पड़ेगा, तब तक दुनिया में ज्यादा से ज्यादा विकसित अवस्था लोअर और हायर मिडिल क्लास की होगी। लेकिन जिस दिन हमें ह्यूमन लेबर से मुक्ति मिल जायेगी, और हम सीधे टेक्नालॉजिकल लेबर पर निर्भर करेंगे, उस दिन दुनिया में क्लासेस की कोई जरूरत नहीं रहेगी। उसके पहले क्लासेस नहीं मिट सकते हैं—उसके पहले क्लासेस नहीं मिट सकते हैं।

तो मेरी नजर में कैपिटलिज्म उस जगह आता जा रहा है, आ जायेगा। अगर सोशलिज्म ने बाधाएं नहीं डालीं तो कैपिटलिज्म उस जगह आ जायेगा, जहां आदमी के श्रम की जरूरत न रह जायेगी। आदमी का श्रम बेमानी हो जायेगा। अगर सारी की सारी यन्त्रों की व्यवस्था ऑटोमेटिक हो जाती है तो ही हम क्लासलेस सोसाइटी को पैदा कर पायेंगे, अन्यथा नहीं पैदा कर पायेंगे। इसकी जिम्मेदारी कैपिटलिज्म पर नहीं है, इसकी जिम्मेदारी मनुष्य के श्रम की विभिन्न क्षमताओं पर और विभिन्न इच्छाओं पर है। और इसके लिए कोई सिस्टम जिम्मेवार नहीं है। इसकी जिम्मेवारी हर आदमी की है। श्रम की क्षमता भिन्न है,

और श्रम करने की इच्छा भिन्न है एक।

और दूसरी बात, कि आदमी जब तक श्रम करेगा और तब तक श्रम का मूल्य बाजार में होता ही रहेगा। तो अगर श्रम ज्यादा मौजूद है तो श्रम में प्रतियोगिता भी होती रहेगी। श्रम की प्रतियोगिता और श्रम का कमोडिटी की तरह व्यवहार समाज से समाप्ति एक दिन होगी। और वह, वह दिन होगा, जिस दिन श्रम गैर-जरूरी हो जायेगा। मनुष्य का श्रम गैर-जरूरी हो जायेगा। और टेक्नीक, और टेक्नालॉजी, और यंत्र उसके श्रम को कर पायेंगे। उस दिन लोअर और हायर मिडिल क्लास का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। उस दिन बात समाप्त हो जायेगी।

और मेरी अपनी समझ यह है कि हम उसके करीब पहुंच रहे हैं, और यह किसी सोशलिस्ट रेवोल्यूशन से न होगा, यह एक साइंटिफिक रेवोल्यूशन से होगा। इसका सोशलिस्ट रेवोल्यूशन से कोई लेना-देना नहीं है। और सोशलिज्म के असफल होने का कारण वही है कि उसमें जो आकांक्षाएं बतायी हैं, वे आकांक्षाएं सिर्फ टेक्नालॉजिकल रेवोल्यूशन से पूरी हो सकती हैं। क्योंकि जब तक आदमी से काम लेना है, तब तक सोशलिज्म असफल होता रहेगा। क्योंकि आदमी से काम लेने का जो इनसेंटिव है, वह दिक्कत में पड़ जाता है। आज रूस में वह तकलीफ खड़ी हो गयी है। आदमी काम करने को आज उस मौज से राजी नहीं है, जिस मौज से कैपिटिलिज्म में काम करने को राजी है। या तो जबरदस्ती काम लो, और जबरदस्ती कितने दिन काम ले सकते हो?

आदमी की प्रकृति के खिलाफ ज्यादा दिन काम नहीं लिया जा सकता है। और जैसे ही कम्युनिटी काम लेने लगती है, वैसे ही आप पिछड़ने लगते हैं, आप व्यक्तिगत रूप से बचाव करने लगते हैं कि मैं सब श्रम बन्द करूं। और जब सब सुविधा मिल ही गयी है, और श्रम कम करने से भी मिल जायेगी, तो फिर श्रम करने का कोई अर्थ नहीं रह गया। मनुष्य की जो स्वाभाविक स्थिति है, उसका जो इन्सटिंगटिव बिल्ट इन व्यवस्था है, वह बिल्ट इन व्यवस्था सोशलिज्म के खिलाफ है। वह बिल्ट इन व्यवस्था कैपिटलिज्म के पक्ष में है। तो उस बिल्ट इन व्यवस्था से उसी दिन मुकाबला हो सकता है, जिस दिन लेबर एज सच अननेसेसरी है। तब फिर ठीक है, आप काम कर रहे हैं कि नहीं कर रहे हैं, बराबर आपर्चूनिटी मिल सकती है। लेकिन जब तक काम नेसेसरी है, तब तक बराबर आपर्चूनिटी नहीं मिल सकती, क्योंकि काम करने की न तो क्षमता बराबर है, और न इच्छा बराबर है। अब इसके लिए कौन जिम्मेवार है?

इसके लिए कैपिटलिज्म जिम्मेवार नहीं है। अगर कोई जिम्मेवार है तो मनुष्य का स्वभाव जिम्मेवार है। और अगर मनुष्य का स्वभाव जिम्मेवार है तो यह कोई जिम्मेवारी नहीं रह गयी किसी के ऊपर। अब मैं काम बिल्कुल नहीं

करना चाहता, और दुनिया की कोई ताकत मुझे अगर काम में नहीं लगा सकती सिवाय इसके कि बन्दूक मेरे पीछे लगा दी जाये। तब इसके लिए कौन जिम्मेवार हैं कि आप मेहनत करेंगे?

जब हम दोनों कालेज में पढ़ रहे हैं—मैं और आप दोनों पढ़ रहे हैं। और आप रात भर मेहनत कर रहे हैं। और मैं रात भर सिनेमा देख रहा हूं। और कल आप फर्स्ट क्लास ले आते हैं और मैं सेकेण्ड क्लास ले आता हूं। निश्चित ही मेरी और आपकी आपर्चूनिटी भिन्न हो गयी है। और कोई उपाय नहीं है कि हम सब लड़कों को फर्स्ट क्लास ला सकें। और कल जब कम्पटीशन के मार्केट में मैं पहुंचूंगा तो मैं पिछड़ जाऊंगा और आपको पहले नौकरी मिल जायेगी। अब आपर्चूनिटी समान कैसे पैदा की जायें?

यानि मामला यह है कि मैं और आप अलग हैं और चूंकि दो इंडिविज्युअल अलग हैं, इसलिए दोनों के लिए सेम ऑपर्चूनिटी पैदा हो कैसे सकती है? क्योंकि ऑपर्चूनिटी तो हम पैदा करते हैं, ऑपर्चूनिटी तो आकाश से नहीं गिरती। और जो हमने ऑपर्चूनिटी पैदा की है, उसमें ज्यादा प्रतियोगिता है, ज्यादा डेयरिंग है। जो ज्यादा श्रम उठा रहा है, जो दौड़ रहा है, वह आगे निकला जा रहा है और मैं खड़ा रह गया। और आखिर में बात यह होती है कि हम दोनों को बराबर की ऑपर्चूनिटी होनी चाहिए! लेकिन ऑपर्चूनिटी कौन पैदा करे? या तो सरकार ठोंक-पीट करके हमको एक ऑपर्चूनिटीज में बिठा दे कि वह तय कर दे कि सभी को फर्स्ट क्लास मिल जायेगा। और मजा यह है कि जिस दिन सबको फर्स्ट क्लास मिल जायेगा उस दिन मैं जो विश्राम कर रहा था, मैं तो विश्राम करूंगा ही; आप जो श्रम कर रहे थे, आप भी विश्राम करेंगे। इसलिए टोटली नुकसान होने वाला है, फायदा होने वाला नहीं है।

अगर कहीं कोई उलझाव है, कोई भी, तो वह मनुष्य के स्वभाव में ही है, और मनुष्य के स्वभाव को बदलने के दो उपाय हैं।

प्रश्न—अस्पष्ट

सरलतम तो केमिकल उपाय हैं, लेकिन सबसे खतरनाक हैं। हम एक-सी ऑपर्चूनिटीज पैदा कर सकते हैं, एक से आदमी पैदा कर सकते हैं। जो निकटतम है, वह केमिकल है, कि हम सारे लोगों की केमिकल स्थिति को समान कर दें, जो कि बिल्कुल आसान है। अब सम्भव हो सकता है। हम आपकी इंटेलिजेंस बराबर कर दें, आपकी कम्पटीशन की क्षमता बराबर कर दें, आपकी दौड़ने की क्षमता बराबर कर दें, केमिकली। लेकिन तब हम आपकी आदमीयत छीन लेंगे। क्योंकि तब आप मशीन हो गये। तो एक तो सम्भावना यह है कि जस्टिस की, कि जिसकी हमें बहुत पुकार है, वह पूरी हो जाये, आदमी को मशीन बना दें। ऑपर्चूनिटी बराबर होगी; इक्वेलिटी, बराबरी होगी। कोई उपद्रव नहीं होगा,

कोई झंझट नहीं होगी। लेकिन आदमी खत्म हो जायेगा। आदमी के नेचर को अगर हम बिल्कुल बराबर करने की कोशिश करें तो आदमी खत्म हो जायेगा। आदमी की विभिन्नता आदमी के होने का अनिवार्य तत्व है। और जब तक विभिन्नता है, तब तक थोड़ी-सी इनजस्टिस अनिवार्य है।

दूसरा उपाय यह है। दूसरा उपाय यह है कि आदमी को बिना छुए हम कुछ कर सकें, और बिना छुए करने में थोड़ी-सी इनजस्टिस बाकी रहती चली जायेगी। और मैं मानता हूं, परफेक्ट सोसाइटी कभी पैदा न हो सकी, और न होनी चाहिए। क्योंकि परफेक्ट सोसाइटी बेसिकली ऑटोमेटन्स की ही हो सकेगी।

इसलिए परफेक्ट आइडियल के मैं हमेशा खिलाफ हूं। तो एब्सलूट जस्टिस का मेरे लिए कोई मतलब नहीं है, क्योंकि एब्सलूट जस्टिस, एब्सलूट इनजस्टिस होगी और जस्टिस का मीनिंग भी इसीलिए है कि इनजस्टिस का बैक ग्राउण्ड चलता है। तो मेरी नजर में मोर जस्टिस है। मोर जस्टिस का कोई अर्थ है। एब्सलूट जस्टिस का कोई अर्थ नहीं है। और मोर जस्टिस का मतलब यह है कि इनजस्टिस कायम रहती है। उसकी भी मात्रा बनी रहती है। तो एब्सलूट आइडियल के तो मैं किसी भी पक्ष में नहीं हूं।

मेरा ख्याल है कि जो भी यूटोपियन्स एब्सलूट आइडियल्स दे रहे हैं, वे आदमी के हत्यारे सिद्ध होंगे। क्योंकि एब्सलूट आइडियल्स अब पूरे किये जा सकते हैं। अब तक कोई खतरा नहीं था। अब तक कोई खतरा नहीं था, अब तो हम आदमी के क्रोमोसोम में और सेल में भी आज नहीं, कल प्रवेश कर जायेंगे। और हम बिल्ट इन प्रोसेस दे सकते हैं वहीं से। इसलिए कोई बहुत दिक्कत नहीं रह गयी है बड़ी कि हम आदमी के बेसिक सेल्स में बिल्ट इन इक्वालिटी पैदा न कर दें। तब तो बड़ा आसान हो जायेगा मामला और बिल्ट इन जस्टिस का भाव डाल दें, सोशल जस्टिस का। या हो सकता है बिल्ट इन हम उसकी इंडिविज्युअलिटी को छीन लें और उससे कह दें कि तुम समाज के लिए जियो। अब यह सम्भव है।

बुद्ध महावीर समझते रहे, यह सम्भव नहीं था। क्राइस्ट समझाते रहे, सम्भव नहीं था। मार्क्स समझाता रहा, यह सम्भव नहीं था। लेकिन अब यह टेक्नॉलॉजिकली सम्भव हो जायेगा, इन आने वाले बीस-पच्चीस वर्षों में कि हम आदमी को जितने हमने आइडियल्स तय किये थे, सब पूरे करवा दें। और इसलिए अब आइडियल्स से सावधान होने की जरूरत है। और हमको बहुत सचेष्ट हो जाना चाहिए कि अब हम ये एब्सलूट बातें न करें, क्योंकि वैज्ञानिक इनको पूरा कर देगा। कभी-कभी ऐसा होता है कि जो हम प्रार्थना करते हैं, वह अगर पूरी हो जाये, तब हमें पता चलता है कि मुश्किल में पड़ गये, यह नहीं होता तो अच्छा था।

मेरी अपनी समझ यह है कि इनजस्टिस की एक मात्रा कायम रहेगी। रहनी चाहिए, तो ही जस्टिस का कोई अर्थ है। अगर हेट्रेड की सम्भावना नहीं है, तो

प्रेम का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। अगर मैं आप पर क्रोध नहीं कर सकता तो मेरी क्षमा बिल्कुल बेमानी हो जायेगी। और अगर मैं आपको तलवार नहीं मार सकता तो आपके घाव पर पट्टी बांधना मेरा अर्थहीन हो जायेगा।

जिन्दगी कण्ट्राडिक्ट्री है और आदमी का स्वभाव कण्ट्राडिक्शंस का है। अब सवाल जो महत्वपूर्ण है, वह यह नहीं है कि हम कण्ट्राडिक्शंस को बिल्कुल काट दें। सवाल जो महत्वपूर्ण है, वह यह है कि जो कण्ट्राडिक्शंस अग्ली हैं साइड से, वे दब जायें और जो ब्युटिफुल साइड हैं, वे ऊपर आ जायें। जो सबसे बड़ा सवाल है, वह यह है कि आदमी की बुराई खत्म न हो जाये, क्योंकि बुराई के खत्म होते ही भलाई भी खत्म हो जायेगी। हां इतना ही बड़ा सवाल है कि बुराई नीचे हो और भलाई ऊपर हो। भलाई जीतती हुई हो और बुराई हारती हुई हो। और यह हार अंततः चलती ही रहेगी, यह किसी सीमा पर समाप्त होने वाली नहीं है। तो मैं मानता नहीं कि एकदम से जस्टिस हो जाये; या होना चाहिए, यह भी नहीं मानता। क्योंकि मेरे लिए वह टोटल इनजस्टिस है। अब रह गया यह कि अधिकतम, मैक्सिमम जस्टिस की क्या सम्भावना है। उसमें मुझे तीन-चार बातें दिखायी पड़ती हैं।

एक तो मुझे यह दिखायी पड़ता है, जैसा मैंने कहा कि अगर मनुष्य के श्रम की जरूरत क्षीण हो जाये, एकदम समाप्त तो नहीं हो जायेगी, क्योंकि हमें बटन दबाने के लिए भी कुछ लेबर की जरूरत पड़ेगी, और मशीनें बिगड़ेंगी तो भी ठीक करने की जरूरत पड़ेगी, और कंप्यूटर गलत चला जायेगा, तो भी हमें साइंटिस्ट की जरूरत पड़ेगी, लेकिन कम हो जायेगी। जितना श्रम हमें करना पड़ रहा है कम्पलसरी, वह विदा हो जायेगा। और वह इतना कम हो जायेगा कि हम उसे खेल की तरह कर पायेंगे। वह कोई अनिवार्यता नहीं रह जायेगी हमारे ऊपर।

और यह जो आप कहते हैं कि अमरीका या रूस में जहां भी ऑटोमेटिक मशीनें चलायीं जा रही हैं, वहां मजदूरी बढ़ेगी।

शुरू में बढ़ना स्वाभाविक है। क्यों? क्योंकि कोई भी नयी चीज आयेगी तो हमारी पूरी व्यवस्था गड़बड़ाती है, पूरी व्यवस्था में डिस्ट्रबेंस होता है। और ऑटोमेटिक मशीन आयेगी तब भी हम उस मशीन के साथ वही व्यवहार करेंगे, जो हमने नॉन-ऑटोमेटिक के साथ किया था, क्योंकि हम उसे मशीन समझेंगे। वह मशीन नहीं है। रेवोल्यूशन हो गया। उसको साधारण मशीन मानना ठीक नहीं है। तो जब हम ऑटोमेटिक मशीन ले आयेंगे तो हम कहेंगे कि अब हम जो आदमी काम नहीं कर रहा है, उसको पैसे दें? ऑटोमेटिक मशीन के साथ जो आदमी काम नहीं कर रहा है, उसको ज्यादा पैसे मिलने चाहिए। क्योंकि आपसे काम नहीं मांग रहा है। और जो आदमी कहता है, हम काम करेंगे ही, उसे थोड़े कम पैसे मिलने चाहिए, क्योंकि वह दो चीजें मांग रहा है, काम भी मांग रहा है और पैसे भी मांग रहा है। जो आदमी कहता है, हम काम न करने को राजी हैं,

इसको थोड़ा ज्यादा पैसा मिलना चाहिए क्योंकि वह एक ही चीज मांग रहा है कि हम काम नहीं करते। काम करने की मांग नहीं कर रहा है।

आने वाले पचास साल में जब कोई सोसाइटी ठीक से ऑटोमेटिक ढंग से रन करने लगेगी, तो आप जो लोग काम नहीं मांगते हैं, उनको ज्यादा दे पायेंगे, क्योंकि वे आपको परेशान नहीं करते हैं। और जो लोग कुछ कहेंगे कि हम बिना काम के रह ही नहीं सकते, थोड़ा काम चाहिए ही, तो उनको आप थोड़ा कम दे सकेंगे, क्योंकि वे दो चीजें मांगते है—पैसा भी मांगते हैं, काम भी मांगते हैं। लेकिन यह घड़ी घटने में पचास साल का, सौ साल का वक्त लगेगा।

और ऑटोमेटिक मशीन इतनी बड़ी क्रान्ति है कि हम उसे जब पुरानी व्यवस्था में रखेंगे, तब हम पुरानी व्यवस्था से सलूक करेंगे। हम कहेंगे जो मजदूर कल काम कर रहा था, अब उससे हमें काम नहीं चाहिए, उसे अलग करो। इसके लिए हमें पूरे के पूरे सोशल मूड, सोशल थिंकिंग, वह सारी की सारी बात ऑटोमेटिक मशीन के साथ बदलनी पड़ेगी हमेशा बदलनी पड़ती है। बैलगाड़ी बदलती है, रेलगाड़ी आती है तो बदलनी पड़ती है। बदलनी ही पड़ती है। फिर पुरानी वर्ण-व्यवस्था नहीं चलती है। रेलगाड़ी के साथ पुरानी वर्ण-व्यवस्था को तोड़ना पड़ता है। क्योंकि भंगी और ब्राह्मण बगल में बैठ जाते हैं। और रेलगाड़ी में बैलगाड़ी वाला डिस्टिंक्शन करना मुश्किल हो जाता है।

ठीक ऑटोमेटिक मशीन आ जाये तो धीरे-धीरे फर्क होने शुरू होंगे। और फर्क होने शुरू हो गये हैं। उसके बाबत चिन्तन करना शुरू हुआ है, क्योंकि चालीस हजार एक जगह काम करते हैं और चार हजार काम करेंगे और छत्तीस हजार मुक्त हो जायेंगे, तो इनका क्या होगा? ये कहां जायें? ये विरोध भी डालेंगे, क्योंकि पुरानी व्यवस्था पूरा विरोध डालेगी। ये विरोध करेंगे कि हम पसन्द नहीं करेंगे—हड़ताल करेंगे, स्ट्राइक करेंगे, झगड़े करेंगे स्वभावतः। तो मेरा अपना मानना है कि ऑटोमेटिक मशीन के आते ही हमें बहुत-सी चीजों के बारे में नया चिन्तन खड़ा करना पड़ेगा। हमें कानून नये बनाने पड़ेंगे, नियम नये बनाने पड़ेंगे। कोर्ट को अधिकार देना पड़ेगा कि जिस आदमी का तुम काम छीनते हो, उसे जिन्दगी भर का भोजन तुम्हें देना पड़ेगा, उसे कुछ आराम देना पड़ेगा। तो एक तो ऑटोमेटिक मशीन बड़े पैमाने पर आ जाये, टेक्नालॉजिकल फर्क पड़े तो हम आदमी को करीब ले आयेंगे।

बड़े मजे की बात यह है कि दुनिया में कोई आदमी श्रम करना नहीं चाहता। श्रम मजबूरी है। कोई करना नहीं चाहता। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि आदमी खाली बैठना पसन्द करेगा। नहीं, आदमी को काम तो करना चाहेगा, इसलिए जो लोग खाली बैठे हैं वे खेल में लग जाते हैं। खेल भी काम है, यह मौज से चुना गया है।

प्रश्न—अस्पष्ट

इसमें दो बातें हैं—एक तो जैसे ही काम छिन जायेगा आदमी के हाथ से तो मैं नहीं कहता कि, 'ही वुड बी हैप्पियर।' मैं सिर्फ इतना कहता हूं, 'ही वुड नॉट लिव मिजरेबिलि।' मैं नहीं कहता कि वह हैपियर होगा।

पर नयी तकलीफें शुरू होंगी। हायर लैवल पर तकलीफें शुरू होंगी क्योंकि तकलीफें तो खत्म नहीं हो सकतीं, क्योंकि तकलीफों के साथ जिन्दगी खत्म हो जाती है। फिर कुछ करने को नहीं बचता है। लेकिन जब नीचे के तल की तकलीफें खत्म हो जाती हैं तो ऊपर के तल की तकलीफें शुरू होती हैं। हो सकता है आप परेशानी में पड़ जायें कि मैं उतना अच्छा सितार नहीं बजा पाता जितना कि पड़ोसी बजाता है। जैसे ही जरूरतों से आदमी मुक्त होगा, गैर-जरूरी चीजें महत्वपूर्ण हो जायेंगी। गैर-जरूरी चीजों का नाम ही कल्चर है, मेरे हिसाब से। गैर-जरूरी चीजों का नाम ही संस्कृति है।

तो जैसे ही आदमी जरूरी चीजों से मुक्त होता है, संस्कृति शुरू होगी। मेरे हिसाब से दुनिया में अभी तक कोई संस्कृति शुरू नहीं हुई है। हां कभी-कभी कोई संस्कृत घर हुए हैं, वह दूसरी बात है। बुद्ध का परिवार या महावीर का घर कि एक लड़के को नग्न घूमना है तो वह घूम सकता है। ये लास्ट लक्जरीज हैं, जो बहुत कम लोग अफोर्ड कर सकते हैं। लेकिन पहली दफा ऑटोमेटिक रेवोल्यूशन के साथ सारी मनुष्य जाति कल्चर के लैवल पर पहुंचेगी। किसी अकबर को ही सुविधा नहीं रहेगी कि तानसेन को बैठ कर सुने। और किसी तानसेन को भी सुविधा नहीं रहेगी कि वह सितार बजाता रहे जिन्दगी भर। यह सुविधा सबको उपलब्ध हो जायेगी।

तो जैसे ही श्रम से हमारी मुक्ति होती है, वैसे ही खेल की दुनिया शुरू होती है। और अभी भी जो लोग श्रम से बच जाते हैं, वे खेल की दुनिया में प्रवेश कर जाते हैं। खेल आनन्दपूर्ण है, क्योंकि वह स्वेच्छा से किया गया श्रम है। और श्रम दुखद है, क्योंकि उसमें गहरी परतन्त्रता है, वह मजबूरी है। तो एक निश्चित ही बहुत बड़ी क्रान्ति के करीब आ रहे हैं। न सोशलिज्म में उतनी बड़ी क्रान्ति है और न किसी इज्म में उतनी बड़ी क्रान्ति है, जो टेक्नालॉजिकल रेवोल्यूशन से सम्भव होगी, कि आदमी ऐज ए होल, ऐज ए सोसाइटी कल्चर्ड हो जायेगा।

और यह कल्चर नये प्रॉब्लम खड़े कर देगी, क्योंकि बहुत से लोग हैं जो बिल्कुल एनिमल के तल पर जी रहे हैं, जिनको कल्चर्ड होने में बड़ी मुश्किल पड़ जायेगी, जितनी मुश्किल भूखे रहने से नहीं पड़ेगी। और आप पायेंगे कि नयी तरह की मिजरीज पैदा हो गयीं, क्योंकि जो आदमी छः घण्टे चरखा चलाये बिना शांति अनुभव नहीं करता था, उसकी बड़ी मुसीबत हो जायेगी। क्योंकि यह कहेगा, मैं तो चरखा चलाऊंगा। और चरखा चलाना बिल्कुल बेमानी हो जायेगा। इसका

कोई माने नहीं रहेगा। अगर यह चरखा नहीं चलायेगा तो यह कुछ और उपद्रव करेगा।

तो हमें कुछ ऐसे इनोसेंट काम खोजने पड़ेंगे, जिनको पीछे छूट गयी मनुष्यता के हिस्सा को जो बिना काम किये नहीं जी सकता है—जो श्रम को कहता है, 'बड़ी जरूरी बात है', जो श्रम को कहता है, 'श्रम है भगवान', जो कहता है, 'श्रम जो है, धर्म है'—ऐसा जो वर्ग है हमारा, उस वर्ग के लिए हमें कुछ इनोसेंट श्रम खोजने पड़ेंगे कि वह अकारण बैठकर मछलियां मारता रहे। मेरा मतलब यह है कि वह मक्खियां मारता रहे। या हमें और तरह के श्रम खोजने पड़ेंगे जोकि हमारे उस हिस्से को जो श्रम को खेल में नहीं बदल सकता है, जिसको श्रम चाहिए ही, उसको लगाना पड़ेगा।

दूसरी बात, मिजरी कम हो जायेगी, लेकिन हैपिनेस नहीं बढ़ जायेगी। जो रुकावटें थी हैपिनेस की—हैपिनेस खोजने की सुविधा हो जायेगी। फिर भी नये तरह के कम्पटीशंस शुरू हो जायेंगे, हैपिनेस की खोज के अन्दर। फिर भी हो सकता है, जब मैं मछली मारूंगा तो ज्यादा मैडीटेटिवली मारूंगा और आप बड़े परेशान होकर मारेंगे। आप उतना आनन्द नहीं पायेंगे, जितना मैं पा लूंगा। तब नये वर्ग शुरू हो जायेंगे।

दुनिया वर्ग-विहीन पूरी तरह कभी भी नहीं हो सकती, क्योंकि आदमी भिन्न है और भिन्न वर्ग शुरू हो जायेंगे। यह वर्ग हो सकता है, संगीतज्ञों का एक वर्ग बन जाये जो संगीत में रस लेते हों। जिसको कहना चाहिए इन-ग्रुप। और जो नहीं लेते, आउट-ग्रुप हो जाये। आउट-ग्रुप मालूम पड़ने लगे। जो लोग काव्यों में रस लेते हों वे इन-ग्रुप के हो जायें। जो लोग कुछ भी रस नहीं ले सकते हैं, वे शराब पियें, एल० एस० डी० का उपयोग करें, मैस्कलीन लें, वह उनका इन-ग्रुप हो जाये, बाकी आउट साइडर्स हो जायें। ये सारी सम्भावनाएं होंगी।

और नये तल पर मनुष्य की नयी तकलीफें शुरू होंगी जोकि मेंटल होंगी, बॉडिली कम हो जायेंगी। निश्चित ही मेंटल तकलीफें बड़ी बॉडिली हैं। वह तो जब तक बॉडिली तकलीफें हैं, हमें उनका कोई पता नहीं चलता। इसलिए एक दफा जब आदमी अपनी सारी शरीर की जरूरतें पूरी कर लेता है, तब पहली दफे चिन्तित होता है, जिसको एंग्जाइटी कहें। वह भूख से एंग्जाइटी पैदा नहीं होती। एंग्जाइटी बहुत ही हायर लैवल की बात है। टैंशन बहुत हायर लैवल की बात है। इसलिए मेरा मानना है कि जिस दिन ऑटोमेटिक व्यवस्था हो जाती है, तो उस दिन रिलिजन का एक्सप्लोजन होगा—बड़े जोर से होगा। क्योंकि आप इतनी एंग्विश से भर जायेंगे जो कि बिल्कुल इनर होगा, जिसके लिए अब साइंस सहयोगी नहीं हो सकेगी। या ज्यादा से ज्यादा साइंस ट्रैंकोलाइजर्स दे सकेगी। तो आप मैडीटेशंस की तरफ उत्सुक होंगे, धर्म की तरफ उत्सुक होंगे, ध्यान की तरफ

उत्सुक होंगे। और मेरा मानना यह है कि पहली दफा दुनिया जब संस्कृति में प्रवेश करेगी तो धर्म की दिशा खुलेगी। अभी तक कोई सोसाइटी धार्मिक नहीं हो सकी, व्यक्ति हो सके हैं।

तो ये सारे के सारे इनके नये प्रॉब्लम्स होंगे, जिनको शायद हम आप सोच भी नहीं सकते कि क्या प्रॉब्लम्स होंगे ?

प्रश्न—अस्पष्ट

गॉड हमेशा पूछा जाता रहेगा और उत्तर कभी नहीं हो सकता। जिस दिन उत्तर मिल जायेगा, उस दिन हमको सुइसाइड करनी पड़ेगी कि अब कोई बात ही नहीं, खत्म हो गयी बात। वह तो हमेशा बना रहेगा, नये लेबलों में।

प्रश्न—अस्पष्ट

जिस दिन टेबलेट पर आप जियेंगे और बटन दबाना सिर्फ श्रम रह जायेगा, उस दिन पहली दफा आपके लिए स्प्रीचुअल रिविलेशंस खुलने शुरू होंगे; जिसको स्प्रीचुअल डायमेंशंस कहें, वह खुलने शुरू होंगे। आप पहली दफे उन चीजों में उत्सुक हो पायेंगे, जिनमें आप कभी उत्सुक नहीं हुए थे। और मनुष्य के जीवन में इतनी मिस्ट्रीज हैं और मनुष्य के जीवन में इतनी पोटेंशियलिटीज हैं, कि जिनके बाबत हमें उत्सुक होने का कभी मौका नहीं मिला, उनके बाबत हम बहुत उत्सुक हो जायेंगे। और हम कुछ ऐसी चीज जान पायेंगे जो हमने कभी नहीं जानी और हो सकता है हममें कुछ ऐसी इन्द्रियां सक्रिय हो जायें जो कभी सक्रिय नहीं थीं। जैसे, आदमी का ब्रेन है, वह आधा अभी भी खाली पड़ा हुआ है। आधा ब्रेन अभी भी सक्रिय नहीं है।

प्रश्न—अस्पष्ट

असल में वेद के समय में जिस आदमी ने कहा कि सिर्फ अंगुली के स्पर्श से उसने सब बनाया, यह कविता थी। और हम पांच सौ साल बाद जो करेंगे, वह विज्ञान होगा। और कविता और विज्ञान में बड़ा फर्क है। असल में कविता हमेशा विज्ञान के तीन हजार साल पहले शुरू हो जाती है। वे पोएट्स थे, वे कोई साइंटिस्ट नहीं थे। वे साइकिल का पंचर भी नहीं जोड़ सकते थे। और वे पोएट्स थे और पोएट हमेशा साइंटिस्टों से थाउजेन्टस इयर बिफोर होता है। तो पोएट्स जो कहते हैं आज, वह तीन हजार साल में पूरा होता है। विज्ञान उसको तीन हजार साल में एक्चुअलाइज करता है।

न्यू पोएट्स पैदा हो रहे हैं, क्योंकि अभी तो पुरानी पोएट्री भी एक्चुअलाइज नहीं हो पायी। वह एक्चुअलाइज होते ही न्यू पोएट्स पैदा होंगे। जैसे कि आज एल० एस० डी० लेकर जो कह रहा है, आज जो मैस्कलीन लेकर पोएट्री कर रहा है। आज अगर पिकासो चित्र बना रहा है, ये चित्र तीन हजार साल पहले किसी चित्रकार ने नहीं बनाये। यह पिकासो बना रहा है और आज हमारे लिए बिल्कुल

एब्सर्ड हैं। क्योंकि तीन हजार साल बाद वह आदमी आयेगा, जो इनको एक्चुअल कर पायेगा।

वेद के ऋषि ने जो कहा है वह वेद के जमाने में उन्मादी था, पागल था, ईश्वर का दीवाना था। वह जो कह रहा था, कोई मतलब की बात न थी कि क्या कह रहा है, इसलिए हमने उसकी पूजा कर ली थी। और हमने कहा था कि वह, जिसको कहना चाहिए, ईश्वरी शराब में डूबा हुआ आदमी, लेकिन हम उसे तब समझ नहीं पाये। आज भी समझ नहीं पाये, आज भी बात पूरी साफ नहीं हो पायी है।

आज पिकासो को समझना मुश्किल है। आज जो नया म्यूजिक पैदा हो रहा है, उसको समझना भी मुश्किल है। वह हमारे कानों को शोर मालूम होता है। तानसेन हमें ठीक समझ में आता है। वह पकड़ में आता है। अब हमने उसको रिकग्नाइज कर लिया है। यानी आज के पोएट को भी तो रिकग्नाइज करने में वक्त लगेगा, क्योंकि वह नयी उसने बात कही है। नये को भी हम तब समझ पाते हैं, जब वह काफी पुराना हो गया होता है। उसको भी नहीं पकड़ पाते हैं। उसको भी पकड़ने के लिए वक्त चाहिए न!

तो आज भी गिन्सबर्ग कुछ कह रहा है, लेकिन वह हमारी पकड़ में नहीं आ रहा है। वह आदमी पागल मालूम पड़ रहा है। अभी टिमोथी लियरी को पैंतीस साल की सजा दी है अमरीका में टिमोथी लियरी भविष्य का प्रोफेट है। लेकिन वह जो कह रहा है, हम उसको सिर्फ सजा दे सकते हैं। टिमोथी लियरी कह रहा है—वह जो कह रहा है, वह हमारी समझ के बिल्कुल बाहर है, यह क्या पागलपन की बातें कर रहे हो! टिमोथी लियरी ने एक किताब लिखी है। और एल० एस० डी० एन्ड इन्वेस्टीगेशन इन मिस्टीसिज्म पर लिखा है! अब वह यह कह रहा है कि तिब्बत में जो मिस्टिक्स ने कहा है वह एल० एस० डी० लेने से पता चलता है। और एल० एस० डी० लिए बिना उसकी कमेंट्री नहीं की जा सकती। एल० एस० डी० लेकर उसकी कमेंट्री की है उसने, बड़ी अद्‌भुत है। लेकिन वह कह रहा है, एल० एस० डी० भविष्य है हमारे लिए। अब जो भी भविष्य में खुलने वाला है द्वार, चाहे विज्ञान का, चाहे कविता का, वह एल० एस० डी० से खुलने वाला है।

अब टिमोथी लियरी को हम सजा दे रहे हैं। हो सकता है, सौ साल बाद हम उसकी मूर्ति बनायेंगे। वह हमने सदा किया है। अभी हम पैंतीस साल की सजा दे रहे हैं, इसको बन्द करो, यह आदमी खतरनाक है, यह गड़बड़ कर देगा। यह क्या बातें कर रहा है? लेकिन एल० एस० डी० ने एक केमिकल रेवोल्यूशन कर दी है। उसके बाद हम और तरह की सोचेंगे, कविता और तरह से होगी। वह कविता वैसी नहीं हो सकती है, जैसी कल तक होती थी। और कुछ आश्चर्य नहीं

है कि जिसको हम कल तक कवि कहते थे, उसमें एल० एस० डी० का कुछ तत्त्व था, कि वह बिल्ट इन था, यह दूसरी बात है। आज हम उसे ऊपर से ले सकते हैं, यह दूसरी बात है।

आश्चर्य न होगा हमें, कि ब्लैक जो कुछ देखता था, या कालिदास ने जो फूलों में देखा है, इनके माइन्ड में कुछ केमिकल फर्क हो। यह बहुत आश्चर्य की बात नहीं हो सकती है। यह सम्भव है। अब यह जो सारा का सारा···इधर बीस-पच्चीस वर्षों में जो यह सदी सिकुड़ेगी, इस बीस-पच्चीस वर्षों में जो भी होगा, उसे समझने में सौ साल लग जायेंगे। और इस पोयट्री को तभी समझा जाता है, जब साइंटिस्ट उसको धीरे-धीरे समझ लेता है।

अब आकाश में उड़ने की कल्पना कितनी पुरानी है, लेकिन इधर हम सौ साल में पूरा कर पाये उस कल्पना को। चांद तक पहुंचने की और मंगल तक पहुंचने की कल्पना कितनी पुरानी है और पुराण तो बात ही करते हैं कि पहुंच ही गया ऋषि-मुनि! लेकिन अब हमारे पहुंचने के पहले कदम होंगे।

जिस तरह हम भौतिक जगत् में नये-नये आयामों में प्रवेश कर रहे हैं, उसी तरह हम आध्यात्मिक स्थितियों में भी नये-नये आयामों में प्रवेश कर सकेंगे। बहुत-सी इंद्रियां हैं मनुष्य की, जो सक्रिय हो सकेंगी। मस्तिष्क के बहुत से प्वाइंटस हैं, जो निष्क्रिय हैं, वे सक्रिय हो सकेंगे। और हमारी जिन्दगी में बहुत-सी गतियां हो सकेंगी, जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते, क्योंकि जब तक वह हो न जायें, तब तक उनकी कोई कल्पना भी सम्भव नहीं है। यह सबका सब सम्भव हो रहा है, सम्भव हो जायेगा।

और यह मेरी अपनी मान्यता है कि इसे अगर सम्भव बनाना है तो सोलिशज्म इसमें बाधा है। सोशलिज्म इसमें सहयोगी नहीं है। क्योंकि एक बारगी स्टेट के हाथ में सारी ताकत पहुंच जाये तो ये सारी बातें खतरनाक सिद्ध हो सकती हैं। अगर रूस के डिक्टेटरशिप को यह पता चल जाये कि एक केमिकल है, जिसको पूरे वाटर वर्क्स में डालने से रिबेलियन की ताकत खत्म हो जाती है तो वह जरूर इसका उपयोग करेगा। और उसका उपयोग करने से रोकने के लिए हमें कोई ताकत नहीं रोक सकती है।

कैपिटलिज्म के पास भीतरी ताकतें हैं, जो रोक सकती हैं। सोशलिज्म के पास कोई भीतरी ताकत नहीं है, जो रोक सके। अगर एक बार मुल्क डिक्टेटोरियल रिजीम में चला जाता है और टेक्नोलाजी और विज्ञान उसको सब ताकतें दे देता है, तो वह उसका उपयोग किये बिना चूकने वाला नहीं है, क्योंकि कोई वजह नहीं कि वह उसका उपयोग क्यों न करे? अगर क्रांति रोकी जा सकती है केमिकल ड्रग्स से, तो बराबर रोकी जायेगी। और अगर बच्चों के दिमाग में कम्युनिज्म के विरोध में कोई बात न आने देने की है, कोई मेकेनिकल डिवाइस

हो सकती है, तो बराबर उसका उपयोग किया जायेगा। और अगर माइन्ड वॉश किया जायेगा। इसलिए भी मैं कहता हूं कि सोशलिज्म अब जितना खतरनाक है, जो डिक्टेटोरियल फोर्सेस के हाथ में फेटल सिद्ध हो जायेंगे, इसलिए अब तो किसी भी हालत में इण्डिविज्युअल फ्रीडम को ही बचाना होगा। और डेमोक्रेसी अब एकदम ही मस्ट है, अब उससे इंच भर इधर-उधर होना खतरनाक है। और मेरी ऐसी समझ है कि सोशलिज्म के साथ डेमोक्रेसी का कोई सम्बन्ध नहीं है, न हो सकता है।

असल में सोशलिज्म का कॉन्सेप्ट चेन्ज जो हो रहा है, वह मनुष्य के स्वभाव की वजह से चेन्ज हो रहा है। लेकिन अगर सोशलिस्ट डिक्टेटरों के हाथ में मनुष्य के स्वभाव को केमिकली बदलने की ताकत आ जाये तो कॉन्सेप्ट चेन्ज नहीं हो सकता। और वह आती जा रही है और स्टैलिन अगर बीस साल और जिन्दा रह जाता तो जल्दी हो जाती सम्भावना। और माओ अगर बीस साल जिन्दा रहता है, तो वह कर लेता। आज माइन्ड वॉश का बड़े जोर से उपयोग किया जा रहा है चायना में और खतरनाक से खतरनाक वॉशिंग की जा सकती है।

अभी एक अमरीकन वैज्ञानिक ने एक घोड़े के दिमाग को ऑप्रेट करके उसमें इलेक्ट्रोड रख दिया था। और उस इलेक्ट्रोड को रेडियो से प्रभावित किया जा सकता है। वह कितनी ही हजारों मील दूर से, अपने ट्रांसमीटर से अगर उस घोड़े को कहे कि तुम नाचो, तो वह घोड़ा नाचेगा। एक मित्र ने मुझे कटिंग भेजी है कि यह घटना घटी है। मैंने कहा कि यह सारी दुनिया में शोक मनाने जैसी घटना है, क्योंकि घोड़े के दिमाग में रखा गया इलेक्ट्रोड—कितनी देर लगेगी कि आदमी के दिमाग में न रख दिया जाये। और एक दफा राज्य के हाथ में ताकत पूरी हो तो पूरे मुल्क के दिमाग में रख दिया जाये, तो इसमें दिक्कत क्या है

तो अब तो मैं मानता हूं कि सोशलिज्म किसी भी हालत में मंहगा है। किसी भी हालत में मंहगा है, क्योंकि टेक्नालॉजी इतनी ताकत दे रही है कि अब राज्य के हाथ में ताकत रोज कम होनी चाहिए। धीरे-धीरे राज्य के हाथ में इतनी कम ताकत रह जानी चाहिए कि सोसाइटी के पास राज्य से भी लड़ने का उपाय रहे। और राज्य सोसाइटी के साथ जो भी करना चाहे, वह कर न सके, सोसाइटी बगावत कर सके।

स्टेट सिर्फ क्लास एजेंसी ही नहीं है, स्टेट के और भी बहुत से फंक्शंस हैं। तो स्टेट अगर क्लास एजेंसी की तरह जो काम करती थी, वह तो विदर अवे हो जायेगा, दैट फंक्शन अलोन। और मैं नहीं मानता कि उसने इकॉनामी से फंक्शन किया है। मैं मानता हूं, फंक्शंस आर देअर, जो कि और बढ़ जायेंगे।

और फिर मेरा मानना यह है कि मार्क्स जिस भांति सोचता था कि क्लास

विदर अवे हो जायेगी, उस भांति तो कभी न होगी। मार्क्स के रास्ते से तो जाकर स्टेट और भी क्रिस्टलाइज हो जायेगी। मार्क्स के रास्ते से जाकर स्टेट क्रिस्टलाइज होगी, विदर अवे कभी न होगी। क्योंकि मार्क्स पहले स्टेट के हाथ में पूरी ताकत देगा, इस आशा में कि वह क्लासेस को मिटा दे। इस आशा में स्टेट को पूरी की पूरी ताकत दे दी जानी चाहिए, ताकि वह स्टेट क्लासेस को मिटा दे! लेकिन मार्क्स को यह ख्याल नहीं है कि जैसे ही स्टेट क्लास को मिटाती है, दो क्लास बन जाती है—स्टेटस के मैनेजर्स की, और मैनेज्ड की। और फिर दो क्लास में विभाजन हो जाता है। और एक डिक्टेटोरियल क्लास खड़ी हो जाती है तत्काल। और इसको मिटाना बहुत मुश्किल है। और इसके खिलाफ कोई उपाय नहीं है मिटाने का। इसके हाथ में सारी ताकत इकट्ठी हो जाती है। तो मार्क्स ने जिस रास्ते से सोचा है कि एक दिन राज्य-विहीनता आ जायेगी, उस रास्ते से तो कभी नहीं आ सकती।

और दूसरा, मार्क्स सोचता है कि स्टेट का कुल काम एजेंसी का है क्लास की, वह भी गलत है। स्टेट का अपना भी काम है। स्टेट सिर्फ क्लास एजेंसी नहीं है। इतने अधिक लोगों के बीच जो रिलेशनशिप है—दस करोड़ लोग रहे हैं, पचास करोड़ लोग रह रहे हैं। आज जमीन पर तीन अरब लोग रह रहे हैं, इन तीन अरब लोगों के बीच जो रिलेशनशिप का पैटर्न है, इस पैटर्न को सम्भालना भी स्टेट का काम है। तो स्टेट विदर अवे मेरे हिसाब से कभी भी न होगी। हां, स्टेट का फंक्शन बदलता जायेगा। जो भी फंक्शन बेकार होते जायेंगे, वे बदलते जायेंगे।

और दूसरा, स्टेट के साथ जो नेशन है, वह जरूर विदर अवे हो जायेगा। नेशन की तो कोई जरूरत नहीं रह जाने वाली है। जैसे ही हम इस सदी को पार करते हैं कि नेशन तो विदर अवे हो जायेगा। स्टेट शासन इंटरनेशनल हैसियत ले लेगी और उसकी फंक्शन जो है, वह फंक्शन पॉलिटिकली कम हो जायेगी। उसका पॉलिटिकल जो सारा का सारा स्ट्रक्चर है, वह दूसरे का हो जायेगा। उसको कहना चाहिए कि वह इकोनॉमिकल हो जायेगा। उसको कहना चाहिए, वह रिलिजस हो जायेगा। उसको कहना चाहिए कि वह कण्ट्रोल रूम की भांति जीवन के जिन-जिन चीजों को व्यक्तिगत रूप से नहीं सम्भाला जा सकता, उनको वह सम्भालने लगेगी। और जिन चीजों को व्यक्तिगत सम्भाला जा सकता है, वह सारे के सारे स्टेट के बाहर हो जाने चाहिए। मेरा मानना ही यह है कि जिनको व्यक्तिगत रूप से सम्भालना असम्भव है, स्टेट उसी काम के लिए है सिर्फ। लेकिन स्टेट धीरे-धीरे सारे काम को अपने हाथ में ले लेना चाहती है! उन सबको जो व्यक्ति बड़ी भली-भांति सम्भाल रहे हैं। और स्टेट हाथ में लेते ही उनको खराब कर देती है—वह करने वाली है।

इस मुल्क में तो, हमारे मुल्क में तो अगर सम्पत्ति पैदा करनी है, शक्ति पैदा करनी है तो स्टेट के हाथ हमें रोज-रोज कमजोर करने चाहिए और व्यक्ति के हाथों में शक्ति पहुंचानी चाहिए। और बहुत काम पहुंचा सकते हैं। बड़ा मजा है कि ऐसे बहुत कम काम हैं जो स्टेट के हाथ में रह जाने चाहिए—पुलिस का काम है, वह स्टेट के हाथ में रहे। वह भी बहुत जरूरी नहीं है। कुछ कार्पोरेशंस को तो हम नगर के लिए पुलिस दे ही सकते हैं, म्युनिस्पिलिटी को दे सकते हैं। वह ज्यादा उचित होगा। क्योंकि गांव में मैं मानता हूं कि म्युनिस्पिल का पुलिसमैन इतनी आसानी से गोली न चला सकेगा, जितनी आसानी से दिल्ली का पुलिसमैन गोली चलाता है।

प्रश्न—अस्पष्ट

हमेशा टू अर्ली मालूम होता है, जब तक हो न जाये। उसके कारण हैं। क्योंकि जो कारण मुझे दिखायी पड़ते हैं, क्यों मैं ऐसा कह रहा हूं? तीन-चार कारण हैं। एक कारण तो यह है कि पहली दफा आदमी पृथ्वी के ऑरबिट के बाहर हो गया है, जो कि बहुत बड़ी घटना है। पृथ्वी के ऑरबिट से बाहर होते ही पृथ्वी पहली दफे एक हुई है। उसके पहले एक हो नहीं सकती थी। यूरी गागरिन से··· जो पहली बात लौट कर पूछी कि तुम्हें क्या ख्याल उठा? तो उसने कहा, माई अर्थ। माई रशिया उसने नहीं कहा। क्योंकि पृथ्वी के ऑरबिट को छोड़ते ही रशिया का क्या मतलब रह जाता है? मेरी पृथ्वी हो जाती है।

पहली दफा आदमी ने पृथ्वी को छोड़ा है। और पहली दफा पृथ्वी जो है, पृथ्वी के बाहर के जगत् से सम्बन्धित होना शुरू हुई है। अगर हम चांद पर या मंगल पर कल बस्तियां बसाना चाहते हैं तो न तो अमरीका की अकेली ताकत है, न रूस की अकेली ताकत है, न चीन की अकेली ताकत है, हमें पहली दफा कोऑप्रेट करना पड़ेगा। इसके बिना कोई उपाय नहीं है।

अभी अमरीका के वैज्ञानिकों ने कहना शुरू किया कि अब अकेले कोई उपाय नहीं रह गया। अब हम चांद पर अगर ताकत बढ़ाना चाहते हैं तो हमें इकट्ठी बढ़ानी पड़ेगी। पहली दफा हमारे पास कुछ प्रॉजेक्ट आये हैं, जो कि पूरी पृथ्वी करेगी। और जिन्दगी इकट्ठी होती है प्रॉजेक्ट से। अगर चीन से आपको लड़ना पड़ता है तो मराठी और गुजराती का फासला एकदम गिर जाता है, क्योंकि प्रॉजेक्ट ऐसा है, जिसमें मराठी-गुजराती का कोई मतलब नहीं है। लेकिन चीन से आप नहीं लड़ते हैं तो मराठी-गुजराती लड़ना शुरू कर देता है। हिन्दू-मुसलमान लड़ना शुरू कर दे तो प्रॉजेक्ट खत्म हो गया। लेकिन जब मुसलमान-हिन्दू से लड़ता है तो शिया-सुन्नी का झगड़ा खत्म हो जाता है। क्योंकि प्रॉजेक्ट बड़ा है और उसमें शिया-सुन्नी दोनों के लिए कॉमन इनिमीज हैं तो पहली दफे पृथ्वी के लिए कॉमन इनिमीज मिलना शुरू हुए हैं।

और मेरा मानना है कि इस सदी के पूरे होते-होते हम किसी न किसी ग्रह-उपग्रह पर जीवन को भी समझ पाने में समर्थ हो जायेंगे। क्योंकि कम से कम पचास हजार प्लेनेट सम्भव हैं, जिन पर किसी तरह का जीवन होगा। और एक बार अगर किसी प्लेनेट पर हमें जीवन का पता चल गया तो हमारी कांफ्लिक्ट पहली दफा प्लेनेटरी हो जायेगी और नेशन का कोई मतलब नहीं रह जायेगा। यह तो टेक्नालॉजिकली मैं मानता हूं कि टेक्नालॉजी हमें इसके करीब पहुंचा देगी। यह मैं नहीं कहता कि ठीक यही सदी—बस बीस-पचास वर्ष का फासला है, इससे कोई मतलब नहीं है। हां, लेकिन यह सदी कुछ चोटें करेगी और इन चोटों में बड़ी चोट यह है कि टेक्नालॉजिकली सम्भव हो गया है कि पृथ्वी के बाहर के जगत् से सम्बन्धित कर सकें।

दूसरी बात—जितने जोर से हमारे यानों की मूवमेंट और स्पीड बढ़ रही है, क्योंकि अब हमारे पास ऐसे जेट हैं, जो आधा घण्टे में पूरी पृथ्वी घुमा दें। तो पृथ्वी एक ग्लोबल विलेज से ज्यादा नहीं रह गयी, टेक्नालॉजिकली। और जिस दिन बैल-गाड़ी चलती थी, उस दिन एक गांव का अलग अस्तित्व था, दूसरे गांव का अलग अस्तित्व था। क्योंकि दोनों के बीच जो सम्बन्धित होने का माध्यम था, वह इतना ढीला था कि सम्बन्ध हो नहीं सकता था। नेशंस बने, क्योंकि रास्ते बने। अगर रास्ते न हों तो बड़े नेशंस नहीं बन सकते थे। ये इतने बड़े नेशंस खड़े हो सके, क्योंकि रास्तों ने जोड़ दिया। फिर नेशंस बड़े होते चले गये, क्योंकि टेक्नालॉजी-कम्युनिकेशन के साधन बढ़ाते चले गये। हिन्दुस्तान जैसा बड़ा मुल्क—पुराने दिनों में आप ज्यादा देर तक बड़ा नहीं रख सकते थे। अगर एक दफा कोई राजा जीत कर उसको इतना बड़ा कर लेता था तो उसके मरने के पहले ही यह टूटना शुरू हो जाता था। क्योंकि कम्युनिकेशन मुश्किल था। अब कम्युनिकेशन के साधन बियॉन्ड नेशन हो गये हैं। आज अहमदाबाद से न्यूयार्क पहुंचना उतना दूर नहीं है, जितना कल अहमदाबाद से दिल्ली पहुंचना दूर था। तो अब दूरी इतनी कम हो गयी है तो पॉलिटिकल दूरियां अब ज्यादा देर तक टिक नहीं सकतीं। पॉलिटिकल दूरियों को धीरे-धीरे हट जाना पड़ेगा। उनका कोई अर्थ नहीं है। और जब अकाल पड़े बिहार में और अमरीका का किसान खाना दे, तो कितनी देर तक बिहार के आदमी को अमरीका के आदमी से दूर रखियेगा? ज्यादा देर तक दूर नहीं रख सकते आप।

और अब हालतें ऐसी होती जा रही हैं कि हमारी इंटर-डिपेंडेंसी की एक हालत बनेगी। असल में पुरानी दुनिया में दो शब्द मौजूद थे, डिपेंडेंस और इनडिपेंडेंस। आनी वाली दुनिया में इंटर-डिपेंडेंस सबसे मशहूर शब्द हो जाने वाला है। न इनडिपेंडेंस का कोई मतलब रहेगा, न डिपेंडेंस शब्द का कोई मतलब रहेगा। क्योंकि अब किसी को किसी के ऊपर पूरी तरह डिपेंडेंड या गुलाम होने

का कोई अर्थ नहीं रह गया।

असल में अब गुलामी मंहगी पड़ने लगी, जो गुलाम बनाये उसको। अगर ब्रिटिश एम्पायर विदर अवे हो गया है तो आप यह मत समझ लेना कि आपके आंदोलन के वजह से सब विदर अवे हो गया है। ब्रिटिश एम्पायर बेमानी हो गया है। अब इतने बड़े ढांचे को सम्भालना ब्रिटेन के लिए मंहगा पड़ रहा है। और अब उस ढांचे को बचाये रखना बिल्कुल बेमानी था। वह ऐसा ही था, जैसे कि पुराने बड़े बंगले बेमानी होते जा रहे हैं और छोटे फ्लेट उनकी जगह लेते जा रहे हैं। मेरे एक मित्र ने बंगला तीस लाख में खरीदा और अब उसको गिरा रहा है। मैंने उनसे पूछा कि यह किस लिए गिरा रहे हो इतना बढ़िया बंगला। उन्होंने कहा, यह बिल्कुल बेमानी है। यह इतने बड़े स्ट्रक्चर को तीस लाख का बनाकर रखना खतरनाक है। अब हम इसकी जगह चालीस मंजिल का मकान बनाना चाहते हैं।

तो होता क्या है, पुराना स्ट्रक्चर नयी टेक्नालॉजी के साथ बेमानी हो जाता है; यह हमको धीरे-धीरे पता चल रहा है। तो एक इंटर-डिपेंडेंट वर्ल्ड विकसित हो रहा है। परस्पर अवलम्बी, जिसमें कि बहुत ज्यादा देर नहीं रह गयी कि हमें किसी मुल्क से लड़ना मुश्किल हो जायेगा। आज आप अमरीका से लड़ नहीं सकते, क्योंकि कल गेहूं कौन देगा? आज आप रूस से लड़ नहीं सकते, क्योंकि आपके स्टील का कारखाना कौन खड़ा करेगा? अभी आप पाकिस्तान से लड़ सकते हैं, क्योंकि आपकी कोई इंटर-डिपेंडेंस नहीं है और दोनों मुल्क चूंकि टेक्नालॉजिकली पिछड़े हैं, इसलिए पुराने ढांचे में जी सकते हैं।

सच तो यह है कि रूस और अमरीका आगे लड़ नहीं सकते। अगर लड़ाई हो भी सकती है कभी तो वह रूस और चीन में हो सकती है, अमरीका और चीन में हो सकती है, क्योंकि चीन अभी भी टेक्नालॉजिकली पुरानी दुनिया का हिस्सा है, रूस और अमरीका एक नयी टेक्नालॉजी में प्रवेश कर गये हैं। उनके फासले रोज कम होते जा रहे हैं और अगर फासले रह गये हैं तो वह डॉग्मेटिक हैं। अब वे फासले नहीं रह गये।

और आज रूस के साइंटिस्ट के दिमाग में और अमरीकी साइंटिस्ट के दिमाग में कोई फासला नहीं है, क्योंकि वे निकट होना चाहते हैं। क्योंकि जो उन्होंने खोजा है, वह खोज अब अकेले रूस के बल की नहीं है कि वह उसको पूरा कर ले। अब भविष्य के जो भी रिसर्च प्रॉजेक्ट हैं, वह उनके लिए वर्ल्ड गवर्नमेंट ही पूरी कर सकती है। इसको कहने की मेरी वजह है। प्रीम्योच्योर नहीं है, जो मैं कह रहा हूं। मैं जो कह रहा हूं, उसको वक्त लगेगा। लेकिन यह सदी पूरे होते-होते रूप-रेखाएं बहुत साफ होनी शुरू हो जायेंगी। मिनी स्टेट विल विदर अवे, एण्ड स्टेट विल कम इनटू ए न्यू फंक्शन। और वह जो न्यू फंक्शन होगी, जिसको हमें कहना

चाहिए, इंटरनेशनल हो जायेगी। और दुनिया को अब बहुत ज्यादा देर तक एक बाजार बनने से रोकना गलत है। और दुनिया को अब बहुत ज्यादा देर तक अलग-अलग इकाइयों में जिलाये रखना गलत है, क्योंकि आप जी भी नहीं सकेंगे। अब आप यह पक्का समझ लें कि अब जीने का कोई उपाय नहीं है, सिवाय विश्व नागरिक हुए बिना जीने का कोई उपाय नहीं है।

अब अभी से चिन्ता खड़ी हो गयी है। अब जैसे कि आप बच्चे पैदा कर रहे हैं। इससे अमरीका चिन्तित है। यह चिन्ता उनकी होनी भी नहीं चाहिए, क्योंकि आपके बच्चे से उन्हें क्या मतलब है? लेकिन पूरा मतलब है। क्योंकि आज से पचास साल पहले योरोप और अमरीका और एशिया की आबादी बराबर थी। फिर अनुपात बिगड़ने लगा। आज सत्तर परसेंट हम हैं और बीस परसेंट वे हैं। अब उनका डर बढ़ता जाता है कि अगर इस सदी के पीछे तक ऐसी गति चली तो वे दस परसेंट रह जायेंगे, नब्बे परसेंट हम हो जायेंगे। हम उनको किसी भी दिन डुबा सकते हैं, हमारी भीड़ उन्हें डुबा देगी। इसलिए अब आपके घर में अब आप जो बच्चा पैदा कर रहे हैं, उसमें वाशिंगटन उत्सुक है कि आपका बच्चा आप एक दम पैदा नहीं कर सकते हैं। क्योंकि यह मामला पूरी दुनिया का है। आप बच्चा पैदा कर रहे हैं तो आपका ही यह मामला नहीं है।

आपका मुल्क अकाल से ग्रस्त होता है, तो भी सारी दुनिया का मामला है। अगर आपके मुल्क में महामारी फैलती है तो वह आपका ही मामला नहीं है, वह सारी दुनिया का मामला है। क्योंकि आज से अगर दो साल पहले आपके मुल्क में कोई महामारी फैलती तो दूसरे मुल्क में प्रवेश नहीं कर पाती। आज अगर आपके मुल्क में महामारी फैल गयी है तो पूरी पृथ्वी में प्रवेश कर जायेगी। वह फ्लू चाहे जापान में पैदा हो तो स्वीडन में पहुंच जायेगी। अब उसके रोकने का उपाय बहुत मुश्किल हो गया है। हम बहुत अर्थों में एक दुनिया बन चुके हैं, सिर्फ मेंटली हमारी पुरानी बेवकूफियां हमें रोके हुए हैं। उनको तोड़ने में जितना वक्त लग जाये, यह दूसरी बात है। लेकिन वस्तुतः हम दुनिया एक बन चुके हैं। पुरानी दीवारें विचार की, आइडियालॉजी की, डाग्मा की, रिलिजन की, पॉलिटिक्स की कितनी देर टिकेंगी, यह समय की बात है, लेकिन वस्तुतः अब ज्यादा देर टिक नहीं सकतीं।

प्रश्न—अस्पष्ट

यह जो बात आप कहते हैं, इसको दो तरह से सोचें—एक तो, कि जिसको हम मानव स्वभाव कहते हैं, असल में मानव स्वभाव कोई बहुत फिक्स्ड चीज नहीं है। और मानव स्वभाव बहुत ही फ्लूड, तरल चीज है और मानव स्वभाव भी एक प्रोसेस है। उसमें भी हमें रोज-रोज नयी बातें पता चलती हैं कि यह भी मानव स्वभाव में है, जो हमें कल पता ही नहीं था कि यह भी मानव स्वभाव में है।

अब जैसे, यह भी मानव स्वभाव का हिस्सा है कि आज अमरीका का आदमी अपनी प्रॉस्पेरिटी को क्यों शेयर करना चाहता है आपके साथ । लेकिन आज अमरीका का जो समझदार आदमी है, वह जानता है कि अगर उसको प्रॉस्पेरिटी बचाये रखनी है तो शेयर करनी पड़ेगी, नहीं तो प्रॉस्पेरिटी बचने वाली नहीं है । आज अमरीका के समझदार हिस्से को बहुत साफ पता चलता है कि एशिया और अफ्रीका के मुल्कों से अपनी प्रॉस्पेरिटी बांटे बिना वह दस-बीस साल से ज्यादा प्रॉस्पेरिटी में रह नहीं सकता । उसका कोई उपाय नहीं रह जायेगा । एक, आपके कहने का कोई बड़ा अर्थ नहीं है, यह तो उन्हें दिखायी पड़ रहा है, इसलिए आप और गरीब न हो जायें, इसकी पूरी चिन्ता उन्हें है, क्योंकि अन्ततः वह गरीबी वर्ल्ड वाइड हो जायेगी और फैल जायेगी । और यह खतरा भी इसीलिए बढ़ रहा है कि नेशंस के गिरने का डर है । और जिस दिन नेशंस गिर जायेंगे, उस दिन गरीबी के फैलाव का उपाय नहीं रह जायेगा और वह प्रवेश कर जायेगी । और नेशंस गिरने के करीब हैं, उनके बचने का कोई अर्थ नहीं रह गया है ।

दूसरी बात । यह जो हमें ख्याल है कि बैकवर्ड कंट्रीज और डेव्लप्ड कंट्रीज के बीच इकोनॉमिक इनबैलेंस है । उसको पूरा करने में बहुत देर लगेगी, मैं नहीं मानता । उसे पूरा करने में बहुत कम देर लगे, अगर हमारे पॉलिटिकल डिफरेंस और स्टेट की बाउण्ड्री कम हो जायें—उसे पूरा करने में देर न लगे ।

प्रश्न—अस्पष्ट

असल में मैं ऐसा नहीं मानता और इस सम्बन्ध में थोड़ी बात करने जैसी है । एक पुरानी दृष्टि थी, जिसको कहना चाहिए वन डायमेंशनल; कि एक बेसिक कॉज से सब चीजें निकलती हैं । ऐसा हमारा ख्याल था । और वह ख्याल इतना गहरा हो गया कि अगर मार्क्स पकड़ेगा उसको तो जिसको देश-काल कहना चाहिए या मूल कारण कहना चाहिए, वह उसको इकोनॉमिक बतायेगा । फिर पॉलिटिक्स उससे निकलेगी, रिलिजन उससे निकलेगा, फिलॉसफी भी उससे निकलेगी । अगर फ्रायड को बेसिक कॉज खोजना हो तो वह सेक्स को पकड़ लेगा । फिर माइंड भी उससे निकलेगा, पॉलिटिक्स भी उससे निकलेगी, रिलिजन भी उस-से निकलेगी, इकोनॉमिक्स भी उससे निकलेगा । इसलिए मैं मानता हूं, यह दृष्टि गलत है ।

मल्टी काजल है मनुष्य का एक्जिस्टेंस । उसमें एक काज, हमेशा ही गलत बात है, मल्टी काजल है । नहीं, इकोनॉमिक्स से पॉलिटिक्स को निकलने की जरूरत नहीं है । पॉलिटिक्स के अपने कॉजेज हैं । और इकोनॉमिक्स के अपने कॉजेज हैं । यानी मैं वन डायमेंशनल मानता ही नहीं जीवन को । मैं मानता हूं, मल्टी डाय-मेंशनल है । इसलिए अगर पॉलिटिक्स को हमें समझना है तो पॉलिटिकल कॉजेज को समझना पड़ेगा और इकोनॉमिक्स को समझना है तो इकोनॉमिक कॉजेज को

समझना पड़ेगा । यह बात सच है कि दोनों मिलकर जिन्दगी में जो ढांचे रचते हैं, वे सम्मिलित हैं । जिन्दगी का पैटर्न जो है, वह सभी कॉजेज से मिलकर बनता है । लेकिन सभी कॉजेज की अपनी इनडिपेंडेंट सोर्स मूल-धारा है । उसकी अपनी मूल-धाराएं हैं और इसलिए जिन्दगी इतनी सरल नहीं है, जितना मार्क्स समझता है, या फ्रायड समझता है, या गांधी समझते हैं । जिन्दगी इतनी सरल नहीं है, जिन्दगी बहुत जटिल है । और हम क्यों एक कारण की बात मानते हैं, क्योंकि उस जटिल जिन्दगी को समझाने में हमें आसानी पड़ती है कि एक कारण हम पकड़ कर बैठ जायें । एक कारण नहीं है । पॉलिटिक्स की अपनी अन्तर्धाराएं हैं, जो अलग काम कर रही हैं । अर्थशास्त्र की अलग धाराएं हैं ।

अहमदाबाद, दिनांक १० अगस्त १९७०

२०. वैज्ञानिक विकास और बदलते जीवन-मूल्य

प्रश्न—इस औद्योगिक युग में आत्म-अभिव्यक्ति के द्वारा मनुष्य आत्म-साक्षात्कार कैसे करे !

दो तीन बातें—एक तो मनुष्य सदा से ही औद्योगिक रहा है, इण्डस्ट्रियल रहा है। चाहे वह छोटे औजार से काम कर रहा हो या बड़े औजार से काम कर रहा हो—छोटे पैमाने पर काम कर रहा हो, बड़े पैमाने पर काम कर रहा हो, आदमी जब से पृथ्वी पर है तब से इण्डस्ट्रियल एक साथ है, वह आदमी के साथ ही था। और जैसे आज हमें लगता है कि दो हजार साल पहले आदमी इण्डस्ट्रियल नहीं था, दो हजार साल बाद हम भी इण्डस्ट्रियल नहीं मालूम होंगे।

पहले तो बात यह समझ लेने जैसी है कि मेरी समझ ही यह है कि आदमी, आदमी होने की वजह से ही इण्डस्ट्रियल है। आदमी को पशु से जो बात भिन्न करती है वह उसका यंत्रों का उपयोग है। वह कितने ही छोटे पैमाने पर हो, यह दूसरी बात है। लेकिन हमेशा से आदमी उद्योग में लगा है। असल में आदमी जी ही नहीं सकता है बिना उद्योग में लगा हुआ। उसका औद्योगिक, यह कहना कोई विशेष मूल्य नहीं देता। मनुष्य का पूरा इतिहास ही औद्योगिक है। इसलिए जो सवाल आपने उठाया है कि औद्योगिक युग में कैसे आदमी आत्म साक्षात्कार करे, आत्म अभिव्यक्ति के द्वारा ?

तो, पहली तो बात यह है कि मेरे लिए सभी युग औद्योगिक हैं। आदमी का

इतिहास ही उद्योग है। दूसरी बात, आत्म-साक्षात्कार, आत्म-अभिव्यक्ति के द्वारा नहीं होता। हां, आत्म-साक्षात्कार से आत्म-अभिव्यक्ति हो सकती है। सेल्फ-रिअलाइजेशन जो है वह सेल्फ-एक्सप्रेशन है। सेल्फ-रिअलाइजेशन से सेल्फ-एक्स-प्रेशन हो सकता है। क्योंकि जिसे आप एक्सप्रेस करने जा रहे हैं वह पहले से रिअलाइज होना चाहिए अन्यथा एक्सप्रेस क्या करियेगा ? अगर मुझे मेरी आत्मा को प्रगट करके ही जाना है, तो मैं प्रगट क्या करूंगा ? मेरे पास आत्मा होनी चाहिए प्रगट करने के पूर्व तो ही मैं प्रगट कर सकूंगा।

इसलिए जो आम धारणा है कि आदमी अपने व्यक्तित्व को, अपनी आत्मा को पाता है अभिव्यक्ति से, मैं नहीं मानता। मैं मानता हूं, अभिव्यक्ति आ सकती है उपलब्धि से। जरूरी नहीं है कि आ जाये, आ सकती है। और प्रत्येक को एक जैसी आये, यह भी जरूरी नहीं है। कोई गीत गा सकता है, कोई चित्र बना सकता है, कोई नाच सकता है, कोई खेत में काम कर सकता है। कोई हो सकता है चुप ही बैठ जाये, मौन ही उसकी अभिव्यक्ति हो। कहना कठिन है कि अभि-व्यक्ति कैसी होगी। लेकिन अभिव्यक्ति अगर आत्म-साक्षात्कार के पहले की जायेगी तो सिर्फ आपकी मानसिक रुग्णता की अभिव्यक्ति होगी, आत्मा की अभि-व्यक्ति नहीं हो सकती है।

इसलिए जो लोग भी अभिव्यक्ति पर जोर दे रहे हैं वह मानसिक रोगों की ही अभिव्यक्ति है—चाहे पिकासो के चित्र हों और चाहे हमारी आधुनिक कविता हो, चाहे हमारा आधुनिक संगीत हो उसमें आत्म-अभिव्यक्ति नहीं है। जो अभिव्यक्ति हो रही है वह मानसिक पैथालॉजी की है—रुग्ण जो चित्त है हमारा हजार-हजार बीमारियों से भरा हुआ। हां, उन बीमारियों को निकालने से यह राहत मिलती है। मैं मना नहीं करूंगा कि कोई न निकाले, लेकिन मैं कहूंगा कि कम से कम वह आत्म-अभिव्यक्ति नहीं है। ज्यादा से ज्यादा उसे हम मनस्-अभिव्यक्ति कह सकते हैं। और चूंकि मनस् जो है रुग्ण है और तब तक रुग्ण रहेगा जब तक हम-ने स्वयं को नहीं पाया है। और चूंकि मनस् हमारा खण्ड-खण्ड है, कण्ट्राडिक्ट्री है और रहेगा, जब तक हमने स्वयं को नहीं पाया है। तो जो इंटिग्रेशन है वह तो स्वयं को पाने से ही उपलब्ध होता है।

अभी तक हमारे पास जिसको हम कहें एक व्यक्ति, ऐसा व्यक्ति भी नहीं है। अभी तो मल्टी-साइकिक है हमारा होना। सुबह आप कुछ हैं, दोपहर कुछ हैं, सांझ कुछ हैं, कल कुछ थे, आज कुछ हैं किसको अभिव्यक्त करियेगा ? अभिव्यक्त होने के लिए पहले आपका होना जरूरी है। यू मस्ट इग्जिस्ट टु बी एक्सप्रेस्ड। और एक गहरे अर्थ में तो हम हैं ही नहीं। हम सब एक जोड़-तोड़ हैं। यानी करीब-करीब बहुत से खण्ड हैं हमारे। उनमें से जो खण्ड हमारा ऊपर होता है उसी को···जब क्रोध ऊपर होता है तब आप क्रोध होते हैं, जब प्रेम ऊपर होता

है तब आप प्रेम होते हैं; जब घृणा ऊपर होती है तब घृणा होते हैं। और जब अशांति और चिन्ता पकड़ती है तो आप चिन्ता होते हैं और जब कभी क्षण-भर को आप शांत होते हैं तो आप शांति हैं।

आप कौन हैं ? अभी आप हैं ही नहीं। वह जिसको क्रिस्टलाइजेशन कहें हम। इन सबके बीच उसका मिल जाना जो मैं हूं, इन सबसे पृथक्, इन सबसे भिन्न, इन सबके गहरे और जब कोई भी नहीं होता है तब भी मैं होता हूं, उस व्यक्तित्व का, उस इंडिविजुअलिटी का। अंग्रेजी का जो शब्द है इंडिविजुअल, वह बहुत अच्छा है, इसका मतलब है इंडिविजबल—वह जो बांटा नहीं जा सकता इंडिविजुअल है, जिसे हम खण्ड-खण्ड नहीं बांट सकते हैं। तो हमारे भीतर वैसी कोई इंडिविजुअलिटी नहीं है। तो जो भी हम प्रगट करेंगे वह हमारी बीमारी होगी। अगर किसी आदमी ने सेक्स को सप्रेस किया तो उसकी कविता में सेक्स आना शुरू हो जायेगा। इसलिए आमतौर से जिन कवियों को स्त्रियां कभी नहीं मिलीं वे जिन्दगी-भर स्त्रियों के गीत गायेंगे। अगर किसी के मन में घृणा और हिंसा है तो उसकी ही अभिव्यक्ति होगी, उसकी कृतियों में।

योरोप में एक चित्रकार हुआ है। मरने के पहले एक वर्ष तक उसके कमरे में घुसना मुश्किल हो गया। सिर्फ दो ही रंग का उपयोग करता था, काला और लाल, और सारे चित्र खून के धब्बे में भरे गये थे और एक अन्धेरे की खबर देते थे और इन सारे चित्रों को देखकर कोई भी कह सकता था कि यह आदमी आत्म-हत्या कर सकता है। और उसने आत्महत्या की। साल भर में यही रंग रहा था। बस उसने कोई न कोई खून डाला हुआ था सारे कमरे में। सारे मकान में दीवारें पोत डाली गयी थीं, काले और लाल से। सब चीजें पोत दी थीं, दो ही रंगों से, काले और लाल से। और उसके भीतर जो हो रहा था, वह उसे बाहर फेंक रहा था।

यह अभिव्यक्ति आत्म-अभिव्यक्ति नहीं है। इसे ठीक से हम समझें तो यह पैथॉलॉजिकल एक्सप्रेशन है। हमारा रुग्ण चित्त है, वह प्रगट होना चाहता है। निश्चित ही प्रगट होने से रिलेक्स मिलती है। आपके भीतर जो भी दबा है अगर किसी भी तरह से निकल जाये तो आपको थोड़ी-सी राहत तो मिलती है। लेकिन बड़े खतरे हैं। आपको तो राहत मिलती है, लेकिन आपने किसी और पर निकाला है।

अगर पिकासो के चित्र को कोई आंख गड़ाकर देखता रहे तो उसका भी सिर घूमने लगेगा। क्योंकि वह सिर घूमे हुए आदमी से निकला हुआ है। उसे भी शायद राहत मिली होगी। लेकिन जो उसे देखेगा उसका सिर भी घूमेगा। और अपनी साठवीं वर्षगांठ पर पिकासो ने बहुत मजेदार बात कही है। साठवीं वर्षगांठ पर उसका बहुत बड़ा जलसा मनाया जा रहा था, तो उसने कहा कि अब मैं सच्ची

बात कह दूं। मैं आज तक सिर्फ लोगों को बेवकूफ बना रहा था। जो मैंने बनाया है, उससे, उसके धक्के से इतना सदमा पहुंचा है कि जिसका कोई हिसाब नहीं कि अब क्या कहें! वह तो कह रहे थे कि बहुत बड़ी कला है, महान कला, बड़ी क्रान्तिकारी कला का जन्म हो गया है।

लेकिन मैं मानता हूं कि पिकासो ने अपनी जिन्दगी में बड़ी ईमानदारी की बात कही है। काश, और भी लोग इसे समझ सकें। हो सकता है दूसरे को बेवकूफ न बना रहे हों, वे खुद को बेवकूफ बना रहे हों। वह और भी आसान है, क्योंकि दूसरा तो इन्कार भी करता है बेवकूफ बनने से लेकिन खुद को तो कठिनाई भी नहीं है। अगर हम अपने को ही बनाने निकल पड़ें तो कोई कठिनाई भी नहीं है।

तो मेरी मान्यता है कि आत्म-अभिव्यक्ति साधन नहीं है आत्म-साक्षात्कार का, आत्म-साक्षात्कार का परिणाम है। जैसे आदमी के पीछे छाया चलती है, ऐसे जब आत्मा उपलब्ध होती है तो उसके परिणाम भी होने शुरू होते हैं। क्योंकि जो हमारे पास है वह हमसे प्रगट होना शुरू होता है। जो हमारे पास नहीं है उसे हम कभी प्रगट कर ही नहीं सकते हैं। इसलिए मेरा सारा देखना ऐसा है कि कला जो है वह धर्म की अभिव्यक्ति है। इसलिए जब भी कोई युग बहुत गहरे धर्म में उतरता है, तो कला बड़ी ऊंचे शिखर छूती है। चाहे अजन्ता हो, चाहे एलोरा हो, चाहे खजुराहो हो, चाहे कोणार्क हो—यह किसी बहुत ही गहरी धर्म की अनुभूति के बाद पैदा हुई कृतियां हैं। इसलिए बुद्ध की मूर्ति को देखकर, अगर सिर्फ देखते ही रहें तो भी मन पर एक तरह की साइलेंस उतरनी शुरू हो जाती है। क्योंकि जिन चित्रकारों ने उसे बनाया है, जिन मूर्तिकारों ने उसे गढ़ा है···वह रुग्ण चित्त से नहीं निर्मित हुई है। उपनिषद कोई सिर्फ गुनगुनाता रहे तो चित्त हल्का होता है। गीता को कोई ऐसे ही पढ़ता रहे तो भी चित्त पर एक तरह की निर्दोष अवस्था का जन्म होना शुरू हो जाता है। आज की कविता को कोई गुनगुनायेगा तो चित्त भारी हो जायेगा। अगर दरवेश नृत्यों को कोई सिर्फ देखे, फकीरों को नाचते हुए तो मन शान्त होगा। लेकिन आज के नृत्य को कोई देखेगा तो शान्त मन के भी अशान्त हो जाने की सम्भावना है।

हम जो प्रगट कर रहे हैं, हो सकता है उससे मुझे तो थोड़ा हल्कापन लगता हो कि मेरे मन का जो बोझ था वह निकल गया है, लेकिन मैं किसी मन पर बोझ थोप रहा हूं। मैं इसके पक्ष में नहीं हूं। मैं मानता हूं, आत्म-उपलब्धि पहला आधार होना चाहिए, फिर उससे आत्म-अभिव्यक्ति को मार्ग मिलता है। अनिवार्यता वह नहीं है, क्योंकि सभी लोग कलाकार होने को पैदा नहीं हुए हैं। और क्या रास्ता बनेगा उसके बाद, कहना मुश्किल है।

जिस दिन आप अपने को पा लेंगे तो आपकी जो पोटेंशियालिटी है, वही आप

करने में लग जायेंगे। अगर आपको एक वैज्ञानिक बनना है तो वह आपकी अभिव्यक्ति होगी। अगर एक किसान बनना है तो वह आपकी अभिव्यक्ति होगी। लेकिन तब किसानी सिर्फ रोजी-रोटी कमाना नहीं रह जायेगी, वह आजीविका नहीं होगी। वह लिविंग ही नहीं होगी, वह जीवन भी बन जायेगी। जैसे कबीर बुन रहा है, कपड़े बुन रहा है और उपलब्धि के बाद भी कपड़े बुनता चला जा रहा है, लेकिन अब कपड़े बुनने में एक गुणात्मक अन्तर पड़ गया है। अब वह कपड़े बुन रहा है, वह आजीविका नहीं है, अब वह उसका आनन्द है। और जब वह कपड़े बुनकर सांझ को गांव बेचने जा रहा है तो नाचते जा रहा है। और कोई रास्ते में पूछता है कि तुम इतने खुश क्यों हो रहे हो, वह कह रहा है कि राम बाजार में खरीदने आये होंगे यह कपड़ा। जल्दी लेकर पहुंच जाऊं और इतना अच्छा बुना ···। और जिस ग्राहक को भी कबीर कपड़ा बेचते उस ग्राहक से वे कहते थे कि राम, बहुत अच्छा बुना है। बड़ी मेहनत की है, पूरे प्राण डाल दिये हैं। अब यह एक आजीविका न थी। अब यह दो पैसे, चार पैसे, लेने-देने का सवाल न रहा। अब यह जिन्दगी का आनन्द हो गया।

फिर जिन्दगी है, तब जिन्दगी का आनन्द भी हो सकता है। और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि युग कौन-सा है—वह जेट का युग है कि कृषि का युग है इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सिर्फ ये उद्योग के युग हैं—उद्योग किस दिशा में काम कर रहा था यह बात दूसरी है। कभी कृषि हमारा उद्योग थी, अब उद्योग हमारा कृषि बन सकती है। इसमें कोई बहुत अड़चन नहीं है। लेकिन आदमी निरन्तर अपनी इंद्रियों को फैलाने का उपाय कर रहा है, वही उसका उद्योग है। आदमी के पास नाखून बहुत छोटे हैं तो उसने तलवार बनायी है। शेर को बनाने की जरूरत नहीं पड़ी, नाखून से काम ले सकते हैं। आदमी के पास आंखें उतनी दूर तक नहीं देखती हैं जितनी दूर तक जंगली जानवर की आंखें देखती हैं, तो उसको दूरबीन लगानी पड़ी। आदमी उतनी तेजी से नहीं दौड़ सकता जितना घोड़ा दौड़ सकता है तो उसको हार्स-पॉवर को ईजाद करना पड़ा। आदमी अपनी इंद्रियों का विस्तार कर रहा है, निरन्तर। अगर आज वह चांद पर भी पहुंच गया है, तो भी उसके चलने का ही विस्तार है। वह नया उपकरण खोज रहा है। हम अपनी इंद्रियों को बड़ा करते चले जा रहे हैं। अगर आज हमने रेडियो ईजाद कर लिए हैं तो वह हमारे कान का विस्तार है। आज हम ज्यादा दूर तक सुनने में समर्थ हैं और ज्यादा दूर तक बोलने में समर्थ हैं।

समस्त उद्योग आदमी की इंद्रियों का विस्तार है। और आदमी ने यह कार्य उसी दिन से शुरू कर दिया है जिस दिन से वह पैदा हुआ है। उद्योग पीछे आया, ऐसा नहीं, आदमी के साथ ही जन्म गया है। आदमी औद्योगिक है। इसलिए मैं उन लोगों के पक्ष में नहीं हूं जो कि आदमी को गैर-औद्योगिक करना चाहते हैं,

या पीछे लौटाना चाहते हैं, या चरखा-तकली पर ले जाना चाहते हैं। क्योंकि मैं मानता हूं कि वह उस जगह से गुजर चुका है, वह जगह लौटने लायक नहीं है। आदमी ज्यादा मैच्योर, हो गया है। अब वह और बड़े यन्त्र खोजेगा, और बड़ा विस्तार करेगा। पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं है। और समस्त पीछे लौटाने की धारणाएं खतरनाक हैं। क्योंकि जिस मात्रा में हम उद्योग को पीछे ले गये हैं उसी मात्रा में मनुष्य के मस्तिष्क को भी पीछे ले जा सकते हैं।

इसलिए मेरे लिए इससे कोई सम्बन्ध नहीं है कि आप किस युग में रह रहे हैं। हर युग में आत्म-उपलब्धि करनी पड़ेगी अन्यथा आदमी एक वैक्यूम में, एक खालीपन में जियेगा। और एक रिक्तता और अर्थहीनता मालूम पड़ेगी, वह अर्थहीनता और वह खालीपन मिटेगा उसी दिन जिस दिन मैं जान सकूं कि मैं कौन हूं और ठीक से मैं पहचान सकूं अस्तित्व को, उसके अर्थ को, उसके प्रयोजन को, मेरे पूरे होने को। इसके बाद अभिव्यक्त होनी शुरू होगी; पर वह परिणाम है।

प्रश्न—जिन मान्यताओं के ऊपर एक युग का, एक परिवेश का, देश या काल का असर है, उनके निकट होकर आप यह निर्णय ले रहे हैं? ऐसा नहीं लगता है आपको कि देश काल या परिस्थिति से गुजर चुके हैं? ऐसा समझें आपके ऊपर उसका भी कुछ असर है जो जा चुका युग है—जानकारी का, मान्यताओं का, आत्माओं का। तो उस बीते हुए युग की कल्पनाओं को अगर आधार बनाकर हम सिखा सकते हैं······।

नहीं, यह मैं नहीं कहता हूं। न तो मुझ पर पीछे का कोई बन्धन है।······ नहीं; स्थूल आलोचना नहीं है। उससे ज्यादा सूक्ष्म आलोचना नहीं हो सकती है, क्योंकि मैं कह ही यह रहा हूं कि आत्म-उपलब्धि के पहले जो भी अभिव्यक्ति है वह हमारे मनस् की ही होगी। और हमारा मनस् अगर रुग्ण है तो हमारी अभिव्यक्ति भी रुग्ण होने वाली है। हम वही प्रगट कर सकते हैं, जो हम हैं। और मैं कह सकता हूं कि पिकासो रुग्ण है। इस रुग्णता को पिकासो के लिए नहीं कह रहा हूं। इस रुग्णता को···आज का समस्त कलाकार रुग्ण है। शायद वह हमें अपील भी इसलिए करता है कि हम भी रुग्ण हैं। और हमारे रोग को उससे राहत मिलती है। आज की पूरी की पूरी कला, किसी गहरे अर्थों में पैथॉलॉजिकल है, साइकिक है, कहीं रोग से भरा हुआ है।

तुम जानकर हैरान होंगे कि इधर पिछले तीस-चालीस वर्षों का बड़ा चित्रकार, बड़ा कवि, बड़ा दार्शनिक पागल न हुआ हो, ऐसा कहना कठिन है। जितना भी इस पिछले तीस-चालीस वर्षों का जिसको हम बड़ा आदमी कहें, महत्वपूर्ण आदमी कहें, वह एकाध बार पागलखाने न हो आया हो और साइकोएनालिसिस से न गुजरा हो, यह भी बहुत मुश्किल है। वह चित्त के लिए परेशान है। उसको नींद आ रही है यह भी आसान नहीं मालूम पड़ता। उसके लिए तो ट्रैंकोलाइजर्स की

जरूरत है। उसकी जिन्दगी सब तरह से अस्त-व्यस्त हो गयी है और वह बीमार और परेशान है और उसके ऊपर चिन्ता का भारी बोझ है। इस बोझ की वह एक्सरसाइज भी कर रहा है। जैसे सार्त्र है या कोई और है। वह उस सारे की सारी चिन्ता को जस्टिफाई करने की कोशिश में भी लगा हुआ है कि यह चिन्ता बीमारी नहीं है, यह भी मनुष्य का अस्तित्व है···यह चिन्ता कोई बीमारी नहीं है, यह मनुष्य का अस्तित्व है। यह जो डिस्पेयर है, यह जो विषाद है, और यह जो रुग्णता है यह कोई बीमारी नहीं है, यह कोई हमारी परेशानी नहीं है, ऐसा मनुष्य का तत्व ही यही है। यह जस्टिफिकेशंस भी खोज रहा है। और जब कोई रुग्ण भी अपनी बीमारी के लिए भी संगतियां खोजने लगे, तब समझना चाहिए कि बीमारी सीमा के बाहर चली गयी है; क्योंकि बीमारी को बीमारी ही ले लेगा तो उसके इलाज का उपाय है। और अगर बीमारी हमारा दर्शन बन जाये तब तो फिर कोई उपाय ही नहीं है।

तो मैं जो कह रहा हूं, किसी पुरानी मान्यता के आधार पर नहीं कह रहा हूं, जैसा मुझे दिखायी पड़ता है, वह मैं कह रहा हूं। मुझे किसी मान्यता से कुछ लेना देना नहीं है। मैं ऐसा देखता हूं कि यह हमारा युग और खास कर इसमें जो लोग समझदार हैं, जो इस युग को अभिव्यक्ति दे रहे हैं, वे किसी गहरे तल पर रुग्ण हैं, जो इनके विवेक और इनके प्रतीकों से निकलनी शुरू होती है।

जैसे यह समझ में पड़ता है कि गुलाब का फूल है, वह आदमी को सदा सुन्दर मालूम पड़ा है, सब युग में। इस युग को गुलाब के फूल का सौन्दर्य गौण हो गया है, उसे तो कैक्टस ज्यादा सुन्दर मालूम पड़ता है। कांटे ही कांटे हों किसी पौधे पर तो वह प्रीतिकर ज्यादा होता है। कैक्टस सदा गांव के बाहर था, शूद्र था। पहली दफे अभिजात, बुर्जुआ हुआ है। अच्छे घरों में होना जरूरी हो गया है। और घर में ही, बैठकखाने में ही होना चाहिए, बाहर भी नहीं।

अब यह जो कैक्टस घर के भीतर आया है, यह सवाल नहीं है कि कांटा सुन्दर हो सकता है या नहीं। सुन्दर होना न होना मनुष्य की मान्यताएं हैं। अगर आदमी रुग्ण न हो तो न गुलाब का फूल सुन्दर है और न कांटा सुन्दर है और न असुन्दर है। लेकिन महत्वपूर्ण सवाल यह है कि जिस आदमी को गुलाब का फूल सुन्दर मालूम पड़ता है उसका चित्त, और जिस आदमी को कांटा सुन्दर मालूम पड़ता है उसके चित्त में बुनियादी फर्क होगा। क्योंकि कांटे का सुन्दर मालूम पड़ना किसी बहुत गहरी पीड़ा और दर्द से ही सम्भव हो सकता है। और फिर भी यह जो आदमी, जिसको कांटा सुन्दर मालूम पड़ रहा है, यह भी जब अपनी प्रेयसी को प्रेम करता है तो कांटे की माला नहीं पहनाता है, यह भी गुलाब का फूल ही पहनाने ले जाता है। और अगर यह कविता करता है तो उसको भी प्रेयसी के बिस्तर पर कांटे नहीं बिछाता है, उसमें अभी भी वह लाकर फूल बिछाता

है। लेकिन कांटे के प्रति उसका जो राग जन्मा है वह पीड़ा और दुख के प्रति राग का सूचक है। और कांटा इसे ऐसा सुन्दर लग रहा है जैसे बैठकखाने में रखने जैसा हो गया है। यह इस आदमी के बाबत खबर दे रहा है। कैक्टस से कुछ लेना-देना नहीं है।

अब जैसे कि पिकासो के चित्र हैं, या किसी और के चित्र हैं—ये सारे के सारे चित्र बहुत विचारणीय हैं। विचारणीय इस अर्थों में हैं कि इन चित्रों को जैसे जानकर सब तरफ से कुरूप करने की चेष्टा की जा रही है। जैसे पुराना चित्रकार चित्रों को जानकर सुन्दर बनाने की चेष्टा में रत था—अनुपात, रिदिम, रंग, वह सब तरफ से उन्हें सुन्दर बनाने की कोशिश कर रहा था। मैं नहीं कहता कि ये सुन्दर थे। यह हमारी मान्यताओं की बात है, लेकिन पुराने चित्रकार सुन्दर बनाने की चेष्टा में संलग्न थे। नया चित्रकार जैसे सौन्दर्य को खण्डित करने की चेष्टा में संलग्न है। जैसे जब तक उसे तोड़कर, मिटाकर, बिगाड़कर नहीं रख देगा तब तक उसके भीतर कोई चीज तृप्त नहीं होगी।

तो मुझे लगता है कि वह नया चित्रकार जो चित्र बना रहा है उसमें कहीं बहुत गहरे में डिस्ट्रक्शन है। अब जैसे कि पिकासो का कोई चित्र है, तो उसमें हाथ अलग है, सिर अलग है, आंखें अलग हैं, पैर अलग हैं और सब टूटा-फूटा है। इसमें अगर पिकासो को सौन्दर्य मालूम पड़ता है, या इसे रचना करनी है ऐसा लगता है तो इससे पिकासो के चित्त की खबर मिलती है। इस कमरे को मैंने कैसा रखा है, अगर मैं इस कमरे में रहने वाला हूं तो मेरे बाबत यह कमरा खबर देता है। मैंने इसमें कैसे रंग लगाये हैं, यह भी मेरे बाबत खबर देता है। अगर मैंने यहां आदमी की लाशें लटका रखी हैं तो भी मेरे बाबत खबर मिलती है। अगर मेरे यहां बन्दूकें लटकी हैं, तो भी मेरे बाबत खबर मिलती है। यहां मैंने एक फूल लगा रखा है तो भी मेरे बाबत खबर मिलती है। फूल या बन्दूक के बाबत इससे कोई खबर नहीं मिलती है। मेरे सम्बन्ध में खबर मिलती है।

फिर अगर हम पिकासो जैसे व्यक्ति की अन्तर्जीवनी में उतरें तो हमें समझ में आना शुरू हो जायेगा कि कठिनाइयां कैसी भारी हैं। अब मजा यह है कि पिकासो रात को इतना भयभीत और डरा हुआ आदमी था कि अकेला नहीं सो सकता था कमरे में। बिना पिस्तौल रखे नहीं सो सकता था। यह जो आदमी है, यह रात में दस दफे उठकर पिस्तौल अपनी देख लेगा कि अपनी जगह है या नहीं। तो थोड़ा सोचना पड़ेगा कि इस आदमी को हो क्या गया है? सिर्फ इसके चित्र ही देखने लायक नहीं हैं, इस आदमी पर भी विचार करना पड़ेगा कि मामला कहीं रुग्ण है। कहीं कोई चीज इस आदमी के भीतर नाइट मेयर की तरह, दुःस्वप्नों की तरह घूम रही है। और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि नाइट मेयर एयरकण्डीशन हो। तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता कि कितनी सुविधा के बीच नाइट मेयर देखा जायेगा।

लेकिन जो चित्र पिकासो जन्म दे रहा है, यह पिकासो ही जन्म दे रहा है । यह चित्र इसके मन में कहीं न कहीं होने चाहिए । यह इसके मन से ही आयेंगे । ये टूटे-फूटे लोग और ये मुर्दे जैसी हालतें, ये सूखे हुए आदमी— ये सब इसके भीतर से आयेंगे । यह इसके भीतर कहीं होना चाहिए; ये सिम्बालिक हैं । इसके चित्त में कहीं इस तरह की घटनाएं घट गयी हैं, जिनको यह बाहर निकालने की कोशिश कर रहा है । इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि संगीत से निकालेगा कि चित्र बनायेगा, या हो सकता है कि आदमी के साथ व्यवहार करे ।

वह बड़े मजे की बात है, जानने जैसी है कि हिटलर अपने बचपन में आर्टिस्ट होना चाहता था, चित्रकार होना चाहता था । मां-बाप नहीं होने दिये । मैं मानता हूं कि अगर हिटलर चित्रकार होता तो उसने जरूर आदमियों को मारने के, गर्दनें काटने के, बम गिराने के चित्र बनाये होते और यह अच्छा होता कि चित्रकार हो जाता । मैं मानता हूं कि यह अच्छा होता कि चित्रकार हो जाता तो एक करोड़ आदमी को नहीं मारता । यह आदमी अगर चित्रकार हो जाता तो इसके चित्र में हिटलर निकल सकता था । लेकिन तब शायद हम इसको बहुत आदर दे पाते । फिर तब हमें एक सीधी बात पकड़ में न आती । लेकिन यह आदमी चित्रकार नहीं हो पाया और यह आदमी एक ताकत का आदमी हो गया और डिक्टेटर हो गया । और तब जो उस चित्रों में इसने बनाया होता वह इस आदमी ने जिन्दगी में बना दिया, क्योंकि इसके हाथ में ताकत थी । मैं मानता हूं कि अगर पिकासो जैसे आदमी को अगर हिटलर जैसी कोई ताकत हो तो पिकासो यही करेगा जो हिटलर कर रहा है । करेगा इसलिए कि रंग के साथ भी वही कर रहा है, चित्र के साथ भी वही कर रहा है । चीजों को तोड़ने-फोड़ने का एक रस है, वह बहुत गहरी वायलेंस से निकल रहा है, हिंसा से निकल रहा है ।

तो जब मैं यह कह रहा हूं कि मेरा तो मापदण्ड न तो साहित्य का है न कला का है । मेरा इनसे कोई प्रयोजन नहीं है । मेरे जो सारे मानदण्ड हैं मनुष्य के मनस् के···आप जो भी कर रहे हैं । अब एक आदमी बहुत चुस्त कपड़े पहनकर सड़क पर चल रहा है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कोई चुस्त पहने कि ढीले पहने हैं, लेकिन उस आदमी के बाबत खबर मिलती है । उससे कपड़ों के बाबत हमें पता नहीं चलता है । अगर बहुत चुस्त तरह के कपड़े आदमी पहने हो तो उसके चित्त में किसी न किसी तरह की गहरी कामुकता होगी । अगर बहुत चुस्त तरह के कोई आदमी कपड़े पहने हुए है, तो वह लड़ने को तत्काल तैयार रहेगा । अगर उसने ढीले कपड़े पहन रखे हैं तो लड़ने की सम्भावना उसकी थोड़ी कम हो जायेगी । ढीले कपड़े के साथ लड़ना जरा मुश्किल मामला है । और ढीले कपड़े उसने चुने हैं तो इसीलिए चुने हैं । अगर आप ढीले कपड़े पहनकर सीढ़ियां चढ़ रहे हैं तो एक-एक सीढ़ी चढ़ेंगे और चुस्त कपड़े पहनकर चढ़ रहे हैं, दो सीढ़ी इकट्ठे चढ़

जायेंगे । आपके व्यक्तित्व की बड़ी छोटी-सी चीजों से अन्तर पड़ने शुरू होंगे ।

तो पिकासो जैसा व्यक्ति जो जिन्दगी-भर एक सिलसिले में चित्र बना रहा है, यह सारा का सारा सिलसिला हिंसा से भरा हुआ है । हमने कभी सोचा नहीं है इस भाषा में कि अहिंसक चित्रकार भी होता है और हिंसक चित्रकार भी होता है, क्योंकि हम सोचते हैं कि चित्र में हिंसा का क्या सवाल है ? हमने यह कभी सोचा नहीं कि सुइसाइडल चित्रकार भी होता है, क्योंकि हम सोचते हैं कि हत्या करने से चित्र का क्या मतलब है ? हमने कभी यह सोचा भी नहीं है कि कामुक चित्रकार भी होता है, गैर कामुक चित्रकार भी होता है । लेकिन इस भाषा में सोचा जाना जरूरी है । जब मैं यह कह रहा हूं तो स्थूल बात नहीं कह रहा हूं, क्योंकि मेरे मापदण्ड का साहित्य से कुछ लेना-देना नहीं है । कला से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है । मेरा सम्बन्ध है तो आदमी से है । आदमी क्या कर रहा है ? इस कमरे में बैठकर वह सितार बज रहा है या इस कमरे में बैठकर छुरे पर धार रख रहा है—इससे फर्क पड़ता है, इससे उस आदमी का पता चलता है ।

पिकासो जैसे चित्र बना रहा है वे छुरे पर धार रखने जैसे हैं । तो वह सितार बजाने जैसे चित्र नहीं हैं । और मजा यह है कि अगर हम इन चित्रों को अलग कर दें और पिकासो के व्यक्तित्व को सीधा देखना शुरू करें तो बहुत हैरानी हो जायेगी । तब तो बहुत चीजें साफ हो जायेंगी कि मामला क्या है । अब जो औरत पिकासो के साथ दस वर्ष रही उसने पिकासो के साथ के दस वर्षों की पूरी कथा लिखी है । वह समझने जैसी है कि पिकासो आदमी कैसा है । उसके भीतर क्या हो रहा है ? उसके व्यक्तित्व में क्या-क्या पड़ा है ? वही सब निकल रहा है ।

यह अभिव्यक्ति अगर आत्म-साक्षात्कार के पहले हो, तो स्वभावतः होने वाला है यह । जुंग ने बहुत से रुग्ण मनुष्यों से, बहुत से रुग्णचित्त लोगों से चित्र बनवाये । जैसे कि हम उसके सपनों को देखकर समझ पाते हैं, उसकी बीमारियां क्या हैं, वैसे हम उससे चित्र भी बनवाके भी समझ पायेंगे कि उसकी बीमारियां क्या हैं ? तो जुंग ने अपने बहुत से पागल, रुग्णचित्त लोगों से चित्र बनवाये ! वे चित्र बड़े हैरानी के हैं । अब यह बड़े मजे की बात है कि अगर वे चित्र आपके सामने रखे जायें और उनका नाम न बताया जाये तो शायद आप कहें, पिकासो का होना चाहिए । यह बड़ी हैरानी की बात है कि वे ऐसे लोगों ने बनाये हैं कि जो चित्रकार नहीं हैं, पर उनको रंग दे दिये हैं और उनको चीजें दे दी हैं और उनसे कहा है कि तुम कुछ भी बनाओ । तो सीरीज में बना रहे हैं । अशिक्षित हैं, कोई कला में उनकी ट्रेनिंग नहीं है । तो वे कुछ तो बनायेंगे, जो भी बनायेंगे उनके भीतर से ही आने वाला है ।

एक छोटा बच्चा चित्र बनाता है तो आप उस छोटे बच्चे के चित्र में एक हैरानी की बात देखेंगे कि सिर बनायेगा, पैर बनायेगा, हाथ बनायेगा, आंख

बनायेगा, बीच का हिस्सा छोड़ देगा। सिर बड़ा बनायेगा। हाथ बनायेगा दोनों, दोनों पैर लगा देगा सीधा। दूसरा हिस्सा छोड़ देगा। क्यों ? सभी दुनिया के बच्चे ऐसा बनायेंगे। ऐसा नहीं है कि किसी एक घर के या एक गांव के। बच्चों को जो दिखायी पड़ता है, जो उनका चित्त देख रहा है, वही बना सकते हैं। उनको बीच का हिस्सा नहीं दिखायी पड़ता है। असल में बच्चों को दो ही चीजें दिखायी पड़ती हैं उनमें वह मूवमेंट है। हाथ दिखायी पड़ते हैं, पैर दिखायी पड़ते हैं, सिर दिखायी पड़ते हैं। बीच का हिस्सा अनमूविंग है, इसलिए बच्चे को दिखायी नहीं पड़ता है। सिर बहुत बड़ा बनायेगा बच्चा, क्योंकि सिर उसे सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है। खुद का सिर भी उसे सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है। इसलिए हर चीज की जांच भी करनी है तो वह मुंह में डालकर करेगा। और कोई उपाय भी उसको नहीं दिखायी पड़ता है।

अगर एक बड़ा आदमी साठ साल का इस तरह का चित्र बनाये तो हमें सोचना पड़ेगा कि यह आदमी कहीं रिग्रेस तो नहीं कर गया। अगर एक साठ साल का आदमी इस तरह का चित्र बनाये कि सिर बड़ा बना दे, हाथ पैर लगा दे सीधे, तो हमें सोचना पड़ेगा कि इस आदमी की या तो ग्रोथ नहीं हुई है, या तो यह उस जगह रह गया है जहां चार-पांच साल का बच्चा होता है मेंटली, या यह रिग्रेस कर गया है। अन्यथा और क्या कारण हो सकता है ? लेकिन नहीं, यह आदमी साठ साल का है, सात साल का, पांच साल का बच्चा जस्टिफाई नहीं कर सकता है। यह कह सकता है यह आर्ट का नया फॉर्म है। यह जो है यह आर्ट का नया फॉर्म है। यह साठ साल का आदमी है, इसके पास सात साल के शब्द, भाषा प्रतीक हैं। यह कह सकता है कि यह आर्ट का नया फॉर्म है। बल्कि यह कह सकता है कि बच्चा ही असली आर्टिस्ट है।

अभी कुछ लोगों ने कहना शुरू किया है कि बच्चा ही असली आर्टिस्ट है। बाद में हम आर्ट भूल जाते हैं और कुछ लोगों को याद रह जाता है और कुछ लोग भूल जाते हैं। जिनको याद रह जाता है वे चित्रकार हो जाते हैं।...

प्रश्न—अस्पष्ट

विज्ञान का विकास हो तो मनुष्य के जीवन-मूल्य विकसित होते हैं। लेकिन थोड़ी दूर तक ही कह रहा हूं, क्योंकि जिन्दगी सदा ही बड़ी परस्पर निर्भर है। अगर मनुष्य के जीवन-मूल्य विकसित हों तो विज्ञान का विकास होता है। विज्ञान विकसित हो तो जीवन विकसित होता है। असल में मनुष्य का जीवन खण्डों में बंटी हुई चीज नहीं है, बल्कि अखण्ड है। वहां कुछ भी हो तो दूसरी चीजों पर उसके परिणाम होते हैं। अब जैसे, हिन्दुस्तान में कभी भी हमारे मन में सम्पत्ति का कोई मूल्य नहीं रहा। एक-एक व्यक्ति के मन में रहा लेकिन हमने सम्पत्ति को कभी जीवन-मूल्य न बनाया, बल्कि अनादर, निन्दा, त्याग वे हमारे मूल्य

रहे। क्योंकि सम्पत्ति कभी हमारे लिए ऐसी चीज नहीं बनी जो जीवन के लिए जरूरी चीज हो इसलिए सम्पत्ति को पैदा करने के जो-जो वैज्ञानिक विकास होने चाहिए वे हमने नहीं किए, क्योंकि करने का कोई सवाल ही न था। दरिद्रता को हमने वैल्यू बनाया है। और जो आदमी जितनी दरिद्रता में उतर जाये स्वेच्छा से, वह उतना बड़ा महात्मा हो गया। तो जब दरिद्रता को हमने मूल्य बनाया तो दरिद्रता को लड़ने के लिए कोई वैज्ञानिक विकास की जरूरत नहीं है। सम्पत्ति को लाना हो तो वैज्ञानिक विकास करना पड़ता है। तो यह बड़े मजे की बात है कि हिन्दुस्तान दुनिया में पृथ्वी पर सबसे पहले सभ्य हो गयी समाजों में से है, लेकिन आज सबसे ज्यादा असभ्य समाज है।

सबसे पहले सभ्यता के शिखर जिन्होंने छुए हैं वे अचानक एक दिन दीन-हीन और दुनिया के पिछड़े हिस्से में गिने जाने लगे। यह सोचने जैसा है कि विज्ञान की सब प्राथमिक कड़ियां हमने पूरी कीं। और आज से दो हजार साल पहले जब कि हम गणित के सम्बन्ध में कुछ दावा कर सकते थे, ज्योतिष के सम्बन्ध में कुछ दावा कर सकते थे, चांद-तारों के ज्ञान के सम्बन्ध में थोड़ा दावा कर सकते थे, तब योरोप करीब-करीब असभ्य अवस्था में था। क्या हुआ ? सबसे पहले विज्ञान की कुछ क्षमताएं हमारे पास आयीं, क्योंकि आज भी गणित के जो अंक हैं वे हमारे ही हैं, सारी दुनिया में। एक से लेकर नौ तक जो गणित के डिजिट हैं वे भारतीय हैं, संख्या के लिखने के जो ढंग हैं, वे भारतीय हैं। बोलने के ढंग भी भारतीय हैं। दो और टू, एक ही चीज के रूपांतरण हैं। थ्री और तीन एक ही चीज के रूपांतरण हैं। नाइन और नौ एक ही चीज के रूपांतरण हैं। लिखने के ढंग में वे भारतीय हैं, बोलने के ढंग में वे भारतीय हैं। सबसे पहले गणित का हमने हिज्जा खोजा था, लेकिन फिर गणित की ऊंचाइयां हम न खोज पाये, क्योंकि जो मूल में चाहिए थे विकास के लिए गणित के, वे हमारे पास नहीं थे।

जीवन-मूल्य हमारे पास न थे। विकास के जीवन-मूल्य में बुनियादी बातें हैं, डिस्कंटेंट होना चाहिए। डिस्कंटेंट हमारे लिए कभी मूल्य नहीं रहा, कंटेंट मूल्य रहा। संतुष्ट आदमी हमारा आदर्श आदमी था। संतुष्ट आदमी विकासमान नहीं होता, डाइनैमिक नहीं होता। संतुष्ट का मतलब ही है कि वह जहां है वहां होने को राजी है। उसके पास जो है वह उससे पूरी तरह तृप्त है। अगर उससे हम थोड़ा और छीन लें तो उससे भी तृप्त होगा। अतृप्ति, डिस्कंटेंट जो है मूल्य हो, वहां फिर विज्ञान का विकास शुरू हो जाता है।

तो जीवन-मूल्य हमारे पास नहीं थे ऐसे जिनसे विज्ञान विकसित होता। पश्चिम में जहां विज्ञान विकसित हुआ है, वहां जीवन-मूल्य में फर्क होना शुरू हो गया है। अब यह बड़े मजे की बात है। जैसे मेरी अपनी समझ यह है कि न तो बुद्ध, न महावीर, दोनों ने हिन्दुस्तान से शूद्र को नहीं मिटाया। लेकिन रेलगाड़ी ने शूद्र

को मिटा दिया। गांधीजी का कुछ मामला नहीं है उसमें। जो शूद्र के हटने की घटना घटी वह रेलगाड़ी से शुरू हुई। अगर बैलगाड़ी जारी रहे तो हिन्दुस्तान से आप शूद्र को कभी नहीं हटा सकते हैं, चाहे आप कॉन्स्टिट्यूशन में लिख दें, चाहे कुछ भी कर लें। और जहां बैलगाड़ी है वहां आप अभी भी नहीं मिटा पा रहे हैं। आप गांव में नहीं मिटा सकते। क्योंकि जो टेक्नालॉजी है वह इस पुराने जीवन-मूल्य के साथ मौजूद है, उसमें कोई कल्पना नहीं आती। मेरी बैलगाड़ी में तो इतना कह सकते हैं कि आप नहीं बैठ सकते हैं। ब्राह्मण की बैलगाड़ी में शूद्र को न बैठने दें तो इसमें किसी का कोई हक नहीं है, क्योंकि कोई कॉन्स्टिट्यूशन हक नहीं देता कि आपको बैलगाड़ी में बैठने दिया जाये। लेकिन रेलगाड़ी के साथ मुसीबत शुरू होगी। रेलगाड़ी में ब्राह्मण की सूरत में बैठना सम्भव नहीं है। ब्राह्मण की बगल में भंगी बैठेगा और भंगी मजे से खाना खायेगा और ब्राह्मण खाना खायेगा तो उससे वह यह नहीं कह सकता कि तू जा। क्योंकि किसी के बाप की नहीं है रेलगाड़ी।

अगर बैलगाड़ी है तो शूद्र चलेगा। कॉनस्टिट्यूशन में बदलने से, कुछ करने से कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि बुद्ध-महावीर समझा-समझाकर मर गये और यह बड़े मजे की बात है कि बुद्ध और महावीर का बुनियादी झगड़ा शूद्र भी एक, अवर्ण व्यवस्था भी एक है। लेकिन बुद्ध और महावीर को मानने वालों ने भी धीरे-धीरे वर्ण व्यवस्था को अंगीकार कर लिया। आज हिन्दुओं के मंदिर में कोई प्रवेश नहीं कर जाये, जैन के मंदिर में कर ही नहीं सकता, क्योंकि वह कहता है कि हम हिन्दू नहीं हैं। महावीर का सारा झगड़ा यह था कि कोई शूद्र नहीं है, वर्ण व्यवस्था तोड़ देनी है। लेकिन आज जैन, शूद्रों को एक तरह से लड़ता है। वह कहता है कि हिन्दू मंदिर में जा, वह शूद्र वर्ण में है, उसका दावा है और हम तो जैन हैं, इसलिए हमसे तो कोई सम्बन्ध नहीं है उसका। और उसे पता नहीं है कि तुम जैन हो सिर्फ इसलिए कि झगड़ा यह था कि हम वर्ण व्यवस्था को नहीं मानते। मगर यह नहीं हो सका। टेक्नालॉजी ने यह सम्भव किया। अब जैसे पश्चिम में नये मूल्य पैदा होने शुरू हुए हैं, वे टेक्नालॉजी की वजह से हुए हैं। उदाहरण के लिए—

जिस दिन से पश्चिम में यन्त्र ऑटोमेटिक होने लगा उसी दिन से श्रम का मूल्य गिर गया, जीवन मूल्य-नहीं रहा। जैसा हमारे साधु या हमारे विनोबा जी कहते हैं कि श्रम जीवन है और श्रम अध्यात्म है और श्रम यह है और श्रम भगवान की देन है—ऐसा अमरीका का आज कोई विचारक नहीं कह सकता है, क्योंकि यह गधा-पच्चीसी होगा। अमरीकी विचारक तो अब यह कह रहा है कि बच्चे को स्कूल में यह समझाओ, क्योंकि जब यह बच्चा बड़ा होगा तब श्रम बिलकुल गैर-जरूरी हो चुका होगा। अगर तुमने श्रम की शिक्षा इसे दी तो यह बड़ी मुश्किल

में पड़ जायेगा, क्योंकि श्रम तो मिलेगा नहीं, क्योंकि मशीन सारा काम करने लगेगी। इसलिए बच्चों को स्कूल में कोई लेजर सिखाओ, उनको विश्राम सिखाओ, उनको विलास सिखाओ कि वे श्रम करना बन्द कर दें, नहीं तो वे बीस साल में दिक्कत कर देंगे। अब यह बड़े मजे की बात है कि बीस साल में चूंकि अमरीका में सारी की सारी यान्त्रिक व्यवस्था स्वचालित हो जायेगी तो करोड़ों लोग बेकार हो जायेंगे। अब यह जो बेकार आदमी है यह बेकार आदमी अगर श्रम की मांग करे कि हमें श्रम चाहिए, तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो जायेगी। अगर इनको श्रम देते हैं तो नयी टेक्नालॉजी का उपयोग नहीं हो सकता है और नयी टेक्नालॉजी का उपयोग न हो तो आगे गति नहीं है। तो इन्हें तो बिना श्रम की नौकरी देनी पड़ेगी। तो इनको नौकरी तो देनी पड़ेगी, क्योंकि अगर आप मशीन से चीजें भी पैदा कर लें तो खरीदार न मिलेगा। खरीदार तो चाहिए बाजार में, और खरीदार तब होगा जिसके पास पैसा होगा। अगर आपने सारे लोगों को काम के बाहर कर दिया तो मशीन पैदा करेगी चीजों को और खरीदेगा कौन, और खरीदेगा कैसे ? इसलिए बेकार का हमें पैसा देने का ख्याल पैदा करना पड़ा।

बल्कि बहुत मजे की बात है, अमरीकी इकॉनामिस्ट के सामने यह बड़े से बड़ा सवाल है कि जो आदमी दोनों मांगेगा उसको हम कम तनख्वाह देंगे क्योंकि वह काम भी मांगता है और तनख्वाह भी मांगता है। जो आदमी सिर्फ तनख्वाह मांगता है वह ज्यादा तनख्वाह पा सकता है, क्योंकि समाज को दोहरी दिक्कत नहीं दे रहा है। वह कह रहा है, हम सिर्फ तनख्वाह पर राजी हैं, हमें काम नहीं चाहिए। तो जब काम करने वाला बीस साल बाद काम मांगेगा तो वह अच्छा आदमी न समझा जायेगा जैसे अभी काम न करने वाला अच्छा आदमी नहीं समझा जाता है। अगर घर में एक आदमी काम नहीं करता है तो हम कहते हैं यह आदमी बुरा आदमी है। क्योंकि काम नहीं करेगा तो कौन तेरे को खिलायेगा। बीस साल बाद अमरीका में जो आदमी काम मांगेगा वह एन्टी-सोशल हो जायेगा, समाज का दुश्मन हो जायेगा, क्योंकि यह आदमी काम मांगे चला जाता है।

तो सारे मूल्य बदलने पड़ेंगे, और अब तक हम सोचते थे कि जो आदमी काम करता है, उसे काम का मूल्य मिलना चाहिए। कम्युनिज्म की आधार शिलाएं हैं कि जितना काम उतना दाम। अब इसे बदलना पड़ेगा। बीस साल बाद अमरीका में उनको कहना पड़ेगा—जितना कम काम उतना ज्यादा दाम। जो नहीं करेगा बिल्कुल, पायेगा सबसे ज्यादा। स्वभावतः श्रमिक दुनिया में जो अब तक की पॉवर्टी, स्ट्रिकन, स्टावर्ड दुनिया थी, श्रम को मूल्य बनायेगा। एफ्लुएन्स सोसाइटी में श्रम मूल्य नहीं रह सकता। और इस श्रम के आधार पर हमने जीवन-मूल्य जो निर्धारित किये थे—उद्योग, श्रमिक, सुबह जल्दी उठने वाला, ब्रह्ममुहूर्त में उठने वाला, ज्यादा काम करने वाला, आलस्य से हीन, यह सब हमको बदलने पड़ेंगे,

क्योंकि वे सबके सब जो हैं ये पुराने टेक्नालॉजी से जुड़े हुए हैं । नये टेक्नालॉजी में हम कहेंगे, यह आदमी बहुत बढ़िया है जो बारह बजे तक सोता है, क्योंकि बारह बजे तक वह सोसाइटी को बाधा नहीं करता । बारह बजे तक वह झंझट खड़ा नहीं करता, बारह बजे ही उठकर कहता है, काम चाहिए । हमें कुछ नयी चीजों के मूल्य बढ़ाने पड़ेंगे, नाच के, गाने के, संगीत के, पेंटिंग के, इनके हमें मूल्य बहुत बढ़ाने पड़ेंगे । हम उस आदमी को बुरा आदमी कहेंगे, जो न पेन्ट कर सकता है, न नाच सकता है, न मछली मार सकता है, कुछ बेकार काम नहीं कर सकता है, एकदम एन्टी-सोशल आदमी है, क्योंकि यह आदमी मांग करेगा फौरन, आदमी को कुछ तो चाहिए आकुपेशन, नहीं तो आदमी मर जायेगा, जी नहीं सकता । तो जो लोग शतरंज खेल सकेंगे, ताश खेल सकेंगे, मछली मारने जा सकेंगे, चौबीस घंटे किनारे बैठे रहेंगे नदी में धागा डालकर, कविता कर सकेंगे, गीत गा सकेंगे, वे बहुत अच्छे आदमी हैं । आने वाली सोसाइटी में, टेक्नालॉजी इतनी तीव्रता से बदलाहट ले आ रही है, कि हमें मूल्य बदल देना पड़ेगा ।

अब यह जो मूल्य बदलते हैं, जीवन-मूल्य, विज्ञान के विकास से भी बदलते हैं, जीवन-मूल्यों को बदलने से भी विज्ञान बदलता है । पश्चिम में पिछले तीन सौ वर्षों में जो भी विज्ञान का विकास हुआ है वह एक अर्थ में निरीश्वरवादियों के द्वारा हुआ है । पश्चिम में तीन सौ साल की जो भी वैज्ञानिक क्रांति है वह एथीस्ट के द्वारा शुरू हुई है । असल में उन लोगों ने, जिन्होंने सेक्स से लड़ना शुरू किया है, उन लोगों ने विज्ञान को विकसित किया है । विज्ञान का विकास कोई करोड़ों लोगों ने नहीं किया है, बहुत थोड़े-से लोगों ने किया है। यह कहा जाता है कि अगर हम दुनिया के इतिहास से तीन सौ आदमियों को खत्म कर दें तो हम बन्दरों की हालत में पहुंच जायेंगे । इससे ज्यादा आदमियों की देन नहीं है। और ये थोड़े से जो लोग हैं इधर तीन सौ वर्ष में, ये सब के सब एक अर्थ में एस्टैब्लिश चर्च के खिलाफ थे और इन्होंने एक नया मूल्य देना शुरू किया । अब जैसे कि जो यह मानता है कि बीमारी, मौत सब भाग्य से होती है, स्वभावत: मेडिकल साइंस इसकी खोज नहीं बन सकती, क्योंकि 'होती ही है'—यह बात ही खत्म हो गयी । जो आदमी मानता है कि न तो हम इस बात को मानने को राजी हैं कि मौत निश्चित है, न हम इस बात को मानने को राजी हैं कि बीमारी कोई भगवान भेजता है वह आदमी फर्क लाना शुरू करेगा ।

अभी और फर्क लाने शुरू हो रहे हैं जो हमारी कल्पना में भी नहीं आते हैं, क्योंकि हमारे मुल्क में अभी भी जीवन-मूल्य बहुत पुराने हैं । जीवन-मूल्य के बारे में हम बहुत ही दकियानूसी हैं । हमारे पास कोई नया मूल्य नहीं है, क्योंकि अभी भी हम जीवन को दुख मानते हैं । तो जो कौम जीवन को दुख मानेगी, जिसने अभी जीवन में सुख को मूल्य नहीं बनाया, हमारे लायक जरूरी नहीं है सुख ।

दुख—इसीलिए आवागमन से छुटकारा कैसे हो, वह हमारी खोज है । जीवन में दुख, तो मोक्ष कैसे मिले, स्वर्ग कैसे मिले—हम उसके बाबत बहुत खोज बीन करेंगे । जीवन तो दुख है ही । इसकी तो स्वीकृति है, हमारे मन में । लेकिन विज्ञान तब विकसित होता है जब हम मानते हैं कि जीवन सुख है और अगर नहीं है सुख तो मेरे अज्ञान की वजह से नहीं है । हम इसे और सुखी बना सकते हैं ।

अब अभी भी आदमी आ जाता है पूछने, अभी पन्द्रह-बीस दिन पहले कोई मेरे पास आया और उसने कहा कि लड़का हमारा अन्धा हो गया है । अब इसके लिए कौन जिम्मेवार है ? अब इस आदमी को समझाना मुश्किल पड़ता है कि अन्धा होने के लिए भी हम ही जिम्मेवार हैं । अगर मैं आपकी आंखें फोड़ दूं तो मैं जिम्मेवार हूं, क्योंकि आप सबने देख लिए हैं, आंखें फोड़ते हुए । लेकिन मैंने एक स्त्री से संभोग किया और जो जीव उस स्त्री में डाला वह आंखों वाला नहीं था, यह किसी ने नहीं देखा तो जिम्मेवार भगवान है । जिम्मेवार मैं हूं । जिम्मेवार अज्ञान था और मुझे पता ही नहीं कि क्या हो रहा है । लेकिन अब विज्ञान कहता है कि अब भविष्य में अन्धे बच्चे पैदा होने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि अब तो हम बीज की परख कर सकेंगे, सिर्फ पन्द्रह साल के भीतर । जैसे आप बाजार में फूलों और फलों की दुकान पर पैकिट में आपको बीज मिल जाता है, आदमी का बीज भी मिल जायेगा, सिर्फ पन्द्रह साल के भीतर । एक्स-पेरिमेंटल बीज तो तैयार हो गया है, बाजार में आने में वक्त लगेगा । तो आपको बिल्कुल फ्रोजेन बीज मिल जायेगा । उसके ऊपर जैसे एक फूल की तस्वीर बनी रहती है वैसे बच्चे की तस्वीर बनी रहेगी कि इस तरह का बच्चा चाहिए । तो बीज काम में लाओ और इसको इंजेक्ट करवाओ अपनी पत्नी में और कृपा करके आप अन्धेरे में मत बीज फेंकते रहो, नहीं तो बच्चे अन्धे हो सकते हैं, लंगड़े हो सकते हैं, पागल हो सकते हैं, कुछ भी हो सकते हैं । उस पैकिट के ऊपर पन्द्रह साल के भीतर हमारी जरूरत की वह घटना घट जायेगी, क्योंकि एक्सपैरीमेंट लेबोरेट्री में पूरी हो गयी है । अब हम पूरी जांच करके उस पैकेट में बीज रख दें जिसमें हम कह सकते हैं कि इस बच्चे की आंखें नीली होंगी कि हरी होंगी कि काली होंगी, इसकी ऊंचाई छ: फुट होगी··· । इतनी इंद्रिय इसको साधारणत: होंगी, इसको यह-यह बीमारियां सम्भव हो सकती हैं, यह-यह बीमारियां नहीं होंगी । इसका मुंह ऐसा होगा, नाक ऐसी होगी, यह इसकी एप्रॉक्सिमेट तस्वीर है । इसकी आयु कुल कितनी होगी, इसकी बौद्धिक क्षमता कितनी होगी, यह कितना दौड़ सकेगा, यह सब दिया जा सकेगा । क्योंकि अब हम वह जो क्रोमो-सोम है आदमी का, उसके भीतर प्रवेश कर गये । जैसे अब हमने एटम तोड़ लिया है, ऐसा हममें क्रोमोसोम दिखायी देगा । अब हम जानते हैं कि अन्धा क्यों

होता है बच्चा। भगवान को उसके लिए दोषी ठहराने की जरूरत नहीं है। लेकिन यह उन लोगों से आ रहा है, जिन्होंने भाग्य को पहले इन्कार कर दिया है। पहले उन्होंने जीवन-मूल्य इन्कार कर दिया भाग्य वगैरह का। उन्होंने कहा हमें कुछ पता नहीं है, इसलिए हम नहीं मानेंगे। हम जानते हैं कि बच्चा अन्धा पैदा होता है। क्यों होता है इसका हम पता लगायेंगे।

हम कहते हैं कि बच्चा अन्धा पैदा होता है, इसका फौरन एक्सप्लेनेशन खोज लिया कि भाग्य से पैदा होता है। अब पता लगाने की जरूरत न रह गयी। तो अगर हमारे जीवन-मूल्य इग्नोरेंस को जस्टीफाई करते हैं तो विज्ञान विकसित नहीं होता। अगर हम अपने अज्ञान के प्रेम में भी निरन्तर रत रहते हैं और किसी एक्सप्लेनेशन से, किसी व्याख्या से अज्ञान को न्यायोचित्त नहीं ठहराते तो विज्ञान विकसित होता है। और जब विज्ञान विकसित होता है तो प्रत्येक विज्ञान की घटना फौरन जीवन-मूल्यों को बदल देती है।

अब जैसे, अगर हम इधर पिछले बीस वर्षों में विज्ञान में जो-जो घटनायें घटी हैं, उनको हम ठीक से देखें तो हमें पता चलेगा कि जीवन-मूल्य किस भांति बदलते हैं। यूरी गॉगरिन जब पहली दफा अंतरिक्ष में गया, उससे जो पहली बात लौट कर पूछी कि तुम्हें पहली दफा अंतरिक्ष में पहला ख्याल क्या आया? तो उसने कहा, मुझे ख्याल आया, 'माई अर्थ।' मुझे ख्याल आया, मेरी पृथ्वी। तो जो उससे पूछ रहा था उसने कहा कि तुम्हें यह पहले ख्याल नहीं आया, मेरा रूस? तो उसने कहा, रूस का मुझे कोई ख्याल नहीं आया। रूस का ख्याल आ ही नहीं सकता। रूस का ख्याल जमीन पर चलने वालों का ख्याल है। जब आप आकाश में उठेंगे तो कहां रूस है, कहां हिन्दुस्तान है, पृथ्वी रह जाती है। स्वभावतः अगर हम चांद की यात्रा करते हैं तो नेशंस नहीं बचेंगे, क्योंकि चांद पर गये हुए मनुष्य के लिए भी पृथ्वी ही रह जायेगी, उसका फोकस तो पृथ्वी रह जायेगी।

तो अगर सारी दुनिया के लोग समझा-समझा के मर जायें कि राष्ट्र हटाओ, हटाओ, वह न हटेंगे। एक दफा आदमी चांद और मंगल पर सहज यात्रा करने लगे, वे हट जायेंगे। टेक्नालॉजी हटा देगी, एक दम हटा देगी। आज आप अमरीका जाते हैं तो वहां आप यह नहीं कहते हैं कि मैं नागपुर से आ रहा हूं। नागपुर एक दम हट जाता है, हिन्दुस्तान रह जाता है। यह बड़े मजे की बात है कि हिन्दुस्तान से जैन अमरीका जाये तो हिन्दू हो जाता है, मुसलमान अमरीका जाये तो हिन्दू हो जाता है। बौद्ध अमरीका जाये तो हिन्दू हो जाता है, क्योंकि बेमानी हो जाती है यह। क्योंकि किसको कहियेगा कि आप जैन हैं। वह पचास बातें पूछेगा कि कौन श्वेताम्बर है, क्या है। हिन्दू हो या मुसलमान खत्म हो गयी बात। इतने दूर पहुंच जाइये······नागपुर के पास कोई गांव का आदमी बम्बई

आता है तो वह नागपुर बताता है। पृथ्वी से जैसे ही हम हट गये, टेक्नालॉजी जैसे ही हमें चांद और मंगल पर उतार देगी, यह बिल्कुल बेमानी हो जाने वाला है।

मार्शल मैकमोहान ने एक बहुत अच्छी बात लिखी है—उसने एक किताब लिखी है कि मीडियम इज दी मैसेज। आमतौर से हम कहते हैं कि मीडियम बात और है, मैसेज बात और है। वे जो कह रहे हैं बात और है और जो लोग कहने से कह रहे हैं वह बात और है। शब्द और हैं, अर्थ और हैं। तो मैकमोहान कहता है मीडियम इज द मैसेज। मीडियम ही मैसेज है। और वह बड़ी कीमती बात कह रहा है। वह यह कह रहा है कि जैसे ही मीडियम बदलता है···।

अब जैसे, जो बच्चे अमरीका में बड़े हो गये हैं, वे टेलीवीजन देख रहे हैं। सुबह, रात वे टेलीवीजन देख रहे हैं। तो उनका जो कान है, वह कमजोर होता है, आंख ज्यादा मजबूत होती है। इसलिए स्कूल की शिक्षा बदलनी पड़ेगी। तो जो स्कूल में शिक्षक अभी कान से ही पढ़ाये चला जा रहा है, वह आउट ऑफ डेट हो गये हैं। बच्चा जो है, वह आंख उसका आधार हो गयी है और शिक्षक अभी कान से पढ़ा रहा है। कान से कल पढ़ा रहा था वह ठीक था क्योंकि आंख कोई आधार न थी। मैसेज सीधी कान से दी जाती थी। वह कान से पढ़ा रहा था। तो अब अमरीका को उनकी फिक्र करनी पड़ रही है कि बहुत जल्दी हम बदलें इस व्यवस्था को, नहीं तो हम बच्चे को···बच्चे को मजा नहीं आ रहा है उसके पढ़ने में। उसको अब आंख वाला चाहिए, इसलिए माइक्रोबुक्स ईजाद करनी पड़ रही है, जो किताबें पर्दे पर दिखायी पड़ेंगी। पढ़ेंगे तो भी पर्दे पर, देखेंगे तो भी पर्दे पर।

अब हमारा पुराना शिक्षक था···तो हमने जो स्कूल बनाया हुआ था, शिक्षक सामने खड़ा हुआ है, सामने बच्चे बैठे हुए हैं—वह गलत है। पुराने दिनों में ठीक था, क्योंकि गुरु दबा रहा था। दबाना जिसको हो उसको सामने होना चाहिए, छाती पर होना चाहिए। इसलिए अभी भी शिक्षक ब्लैक बोर्ड पर जब लौटता है, लड़के उतनी देर में गड़बड़ कर देते हैं। इसलिए शिक्षक सदा डरा रहता है। लेकिन वह पुराना रुख था, जब तुम बच्चे को दबा रहे थे। अब नयी टेक्नालॉजी ने सारा रुख बदल दिया है। वह कहती है बच्चे को दबाना नहीं है, विकसित करना है। तो जब विकसित करना है तो, कन्फेंट्री ठीक नहीं है। इसलिए अब गोल, सर्कुलर कमरा होना चाहिए, जिसमें शिक्षक बीच में हो और चारों तरफ बच्चे हों तो उसके बीच फ्रेंडलीनेस पैदा होगी और दुश्मनी कभी न होगी। और उसके प्रयोग किये गये हैं तो हैरानी का फर्क पड़ा है। शिक्षक को खुद भी अकड़ कम हो गयी, उसका पिडिस्टल, उसका वह खड़ा हुआ या अकड़ा हुआ होना, वह जो रोग ही दूसरा था। अब तो वह कहते हैं शिक्षक को धीरे-धीरे हट जाना

चाहिए, पीछे शैडो में । उसको तभी आने चाहिए सामने जिस दिन बहुत जरूरत पड़ जाये । अन्यथा टेलीवीजन काम करेगा टेपरिकार्डर काम करेगा, माइक्रोबुक्स होंगी, वे काम करेंगी । कोई बहुत जरूरत पड़ जाये तो उसे शैडो में से बाहर आ जाना चाहिए और चुपचाप पीछे हट जाना चाहिए । उसको बहुत ज्यादा सामने नहीं होना चाहिए ।

यानी अभी हम कल कहते थे बच्चे को डराना नहीं चाहिए, उसके सामने होने से ही तो बच्चा डरता है, अभी उसको थोड़ा पीछे हट जाना चाहिए । धीरे-धीरे हम शिक्षक को पीछे हटा देंगे क्योंकि जैसे टेक्नालॉजी विकसित होती है, एक बात साफ हो गयी है—क्योंकि सारे लोग तो पैदाइशी शिक्षक नहीं होते हैं । मुल्क में दो-चार लोग पैदाइशी शिक्षक होते हैं । सब बच्चों को इनका लाभ नहीं मिल सकता था । राजाओं के लड़के पढ़ लेते, रईसों के लड़के पढ़ लेते थे, उनके पास । अब वे कहते हैं, अब इसकी कोई जरूरत नहीं है । अब तो टेलीवीजन से वह शिक्षक पूरे मुल्क के बच्चों को एक साथ पढ़ा सकता है । दस साल में टेलीवीजन डबल वेव हो जायेगा । अभी चूंकि एक ही तरफ से मैसेज जा सकती है, इसलिए दिक्कत होती है । दस साल में डबल वेव हो जायेगा, बच्चे क्वेश्चन भी पूछ सकते हैं । यहां बच्चे क्वेश्चन भी पूछ सकते हैं वहां से शिक्षक उत्तर भी दे सकता है । तो एक शिक्षक जो अथेंटिक शिक्षक है मुल्क का, वह अकेला पूरे मुल्क के बच्चों को पढ़ा देगा । अलग-अलग शिक्षकों की कोई जरूरत नहीं होगी । फिर स्कूल खत्म हो जायेगा । अगर टेलीवीजन से पढ़ाना है तो स्कूल की बिल्डिंग बनाने की क्या जरूरत है ? टेलीवीजन तो घर में है, बच्चे अपने घर में पढ़ें । स्कूल बन रहे हैं न, वह कारागृह काहे के लिए खड़ा कर रहे हो, जहां सारे बच्चों को खदेड़ कर भरो । वह तो इसलिए हम भरते थे कि कोई उपाय नहीं था । अब तो शिक्षक भी नहीं हो जायेगा, बच्चे अपने घर में टेलीवीजन पर पढ़ सकेंगे ।

जिस दिन बच्चे घर में पढ़ सकेंगे उस दिन शिक्षक और बच्चों के बीच जो हमने जीवन-मूल्य तय किये थे, उनका क्या होगा ? गया ! गुरु का आदर करो और उनके पैर छुओ··· । अब यह बेटे मान ही नहीं रहे हैं कि टेलीवीजन के पैर पड़ो, यह करो, वह करो । यह क्या है, पागलपन हो गया ! गांव में औरत नाचती थी तो पैसा फेंक देते थे । उन्हें ख्याल नहीं है कि बात बदल गयी है, पैसा गांव में जब कोई औरत नाचती थी तो वे बेचारे फेंकते रहे । अब इसमें फेंक रहे हैं ।

या तो जीवन-मूल्य बदले तो बदलता है विज्ञान या विज्ञान बदले तो जीवन-मूल्य बदले । प्रगतिशील समाज वह है जो दोनों काम जारी रखे । अगर विज्ञान बदले तब आपके जीवन-मूल्य बदलें तो आप बैकवर्ड सोसाइटी में हैं । और जीवन-मूल्य पहले बदले तब विज्ञान पीछे बदले तो आप फॉर्वर्ड सोसाइटी में हैं, क्योंकि जीवन मूल्य तो विचार से बदलते हैं । जब एक दफे हम जीवन-मूल्य का पर्स-

पेक्टिव बड़ा कर लेते हैं तो उसका मतलब है कि हम बुद्धि से जी रहे हैं । वह भविष्य में होगा तो हम उसकी कल्पना, उसकी योजना कर रहे हैं । फिर विज्ञान धीरे-धीरे आता है तो बदल देता है । लेकिन विज्ञान जब बदलता है, फिर हमें जीवन-मूल्य बदलने पड़ते हैं, तो हम बहुत पिछड़ी हुई कौम हैं । उसका मतलब यह है कि जब स्थिति घट जाती है तभी हमारा मन पीछे सरक-सरक कर उसके पास जाता है । फिर वह बहुत वक्त लगा देता है, क्योंकि हमारा मन पीछे से चिपकना चाहता है ।

अभी भी बहुत-सी चीजें बदल गयी हैं । अब हमें पुराने ख्याल छोड़ देने पड़ेंगे । लेकिन नहीं ख्याल छूटते हैं । अभी भी, एक घर में दीया जलता था तो लोग नमस्कार कर लेते थे, अब बिजली जलती है, उसको भी कर लेते हैं । किसी ने बटन दबायी तो वह धीरे से नमस्कार कर लेगा । शायद किसी जमाने में जब पहली दफा आग जली थी तो नमस्कार करने योग्य बात थी, इससे बड़ा कोई चमत्कार नहीं था । आग ने इतना आदमी को दिया कि अगर नमस्कार हमने की तो कोई बुरा नहीं किया । आग ने हमको बचाया है, जिन्दगी दी है, सब उसने दिया है । बड़ा आश्चर्य है, अब बिजली को भी कर रहे हैं । अब उन्हें पता नहीं है कि सब टेक्नालॉजी बदल गयी है । अब बिजली को नमस्कार करने की कोई जरूरत नहीं है । अब यह निपट पागलपन है ।

तो जिन कौमों का दिमाग पीछे सरकता है और जब सब बदल जाता है तब वे मजबूरी में बदलती हैं तो वह बहुत पिछड़ी हुई कौमें हैं । इधर भारत में ऐसा ही हो रहा है टेक्नालॉजी से हम सब बदलते जा रहे हैं लेकिन हमारे जीवन-मूल्य बहुत पुराने हैं । अभी भी हम जो भी हमारे जीवन-मूल्य हैं वे कम से कम दो हजार साल पुरानी वैज्ञानिक व्यवस्था से सम्बन्धित हैं । अभी भी उनको पीटे चले जा रहे हैं । जैसे बम्बई में एक आदमी आकर रहने लगता है तो वह भी अपेक्षा करता है कि पड़ोसी उसकी उतनी ही फिक्र करे जितना उसके गांव में करता रहा है । नहीं करता है तो दुखी होता है ।

गांव में अगर कोई बीमार होता था, सर्दी हो जाती थी तो पूरा गांव उससे पूछता था कि क्या हो गया है ? शाम को लोग उसके घर आकर पूछते थे । उसे लगता था कि बड़ी मैत्री भावना है । मैत्री भावना का कोई सवाल नहीं है । गांव की टेक्नालॉजी है । असल में गांव इतना छोटा यूनिट है कि उसमें हर आदमी की आंख हर दूसरे आदमी पर है । इसके फायदे हैं, इसके नुकसान हैं । इसका फायदा यह है कि आप बीमार पड़ गये हैं तो पूरा गांव पूछने आया है । अगर पड़ोसी की किसी औरत से बोलिए तो पूरा गांव मारने भी आयेगा । दोनों हैं । अगर आपने सिगरेट पी ली है तो पूरे गांव को पता चल जायेगा । अगर आपको जुकाम होगा तो पूरे गांव को पता चलेगा । अगर आप मन्दिर नहीं गये तो पूरे गांव में निन्दा हो

जायेगी । तो गांव जो है चूंकि इतना छोटा है कि एक-एक आदमी पर सबकी आंख है । उसकी गुलामी भी है, उसके थोड़े सुख भी हैं वह आदमी बम्बई आ गया । अब यह बम्बई के पूरे फायदे उठा रहा है । मजे से सड़क पर सिगरेट पीता है, मन्दिर नहीं जाता है, इसकी उसे फिक्र नहीं है । लेकिन जब वह बीमार पड़ता है और पड़ोसी, उसे पूछने नहीं आता तो कहता है, बम्बई में कोई हृदय नहीं है । पागल हो गये हो तुम ? अगर हृदय चाहिए तो गांव चले जाओ, फिर वह भी झेलना पड़ेगा जो उसके साथ जुड़ा है । टेक्नालॉजी की बात है । अब बम्बई में अगर एक-एक पड़ोसी एक पड़ोसी की फिक्र करे तो बम्बई में इतने लाख पड़ोसी हैं कि एक आदमी पड़ोसियों की फिक्र करने में मर जाये । वह अपने लिए कब जिये ?

बड़ा यूनिट जो है इंडिविज्युअल ···अगर आप पच्चीस आदमी पिकनिक पर जायें तो आप फौरन पायेंगे कि तीन-चार टुकड़े हो जायेंगे । पच्चीस आदमी अगर पिकनिक पर गये तो चार हिस्से हो जायेंगे । क्योंकि पांच-छः से ज्यादा का टुकड़ा नहीं झेला जा सकता । छः ग्रुप हो जायेंगे । स्वाभाविक है कि पच्चीस का कोई ग्रुप नहीं हो सकता । पच्चीस में तो कोई बातचीत नहीं की जा सकती । छः टुकड़े हो जायेंगे । छः का ग्रुप हो जायेगा तो एक ही टुकड़ा रहेगा । तो छोटे गांव की भी अपनी जिन्दगियां हैं । उसके अपने टेक्नीक, अपने जीने के ढंग हैं, अपनी रफ्तार है । पर हमारा मन वही रहता है । टेक्नालॉजी बदल जाती है । आकर बम्बई में रहने लगेंगे लेकिन चित्त गांव का रहेगा । तो यहां जुकाम हो तो पूरा गांव पूछने आयेगा । पूरा गांव आयेगा तब आपको पता चलेगा कि इससे तो बेहतर था कि आप न आते तो ही अच्छा था । तो जुकाम के लिए इतना बड़ा बम्बई पूछने आये तो जो मेरी मुसीबत है वह उनकी भी मुसीबत है । नहीं, बम्बई में अपना जुकाम आप भोगिये, लेकिन बम्बई में डॉक्टर हैं जो गांव में नहीं हैं । वह जुकाम दूर कर देगा, पूछने की कोई जरूरत नहीं है । इतना परेशान होने की भी जरूरत नहीं है ।

अभी मैं एक किताब पढ़ रहा हूं । तो तीस साल बाद, इस सदी के पूरे होते, एक मां को उसका बेटा पेकिंग से न्यूयार्क फोन करता है । तब तक फोन के साथ टेलीवीजन जुड़ गया होगा, तो वह साथ में दिखायी पड़ता है और थ्री डायमेंशनल हो गया वह । इसलिए सिर्फ चित्र नहीं दिखायी पड़ता है । पूरा दिखायी पड़ता है, जैसा कि ऐसे दिखायी पड़ेगा । तो पूरा दिखायी पड़ता है । तो वह मां उस बेटे से कह रही है कि तुझे बहुत दिन पहले देखा है, तू आ जा । तो वह कहता है, तू देख तो रही है । आप देख तो रहीं हैं, मुझे और क्या देखियेगा । मैं पेकिंग से आया हूं न्यूयार्क तो और क्या देखना है ? मैं पूरा दिखायी पड़ रहा हूं । लेकिन मां का मन नहीं मानता है, वह पुरानी टेक्नालॉजी में पली है । वह कहती है यह

देखना नहीं, तू बिल्कुल सामने आ जा । वह कहता है मैं बिल्कुल सामने हूं । लेकिन उसके मन पर कुछ फर्क पड़ेगा ही नहीं । उसके मन पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा ।

दुनिया में जितना बड़ा भाईचारा होगा उतना ही कम मुसीबत तुम्हारे लिए है, क्योंकि कहीं भी कुछ भी होता रहे तो सारा नुकसान हमें होता है । अगर आज वियतनाम में युद्ध हो रहा है, तो उसका नुकसान हमें हो रहा है । आज जितनी ताकत वियतनाम में लग रही है, उतनी कल अगर हिन्दुस्तान में अकाल पड़ जाये, तो उतनी ताकत हिन्दुस्तान को मिल सकती थी, वह अब मिल नहीं रही है । लेकिन हम बैठकर देखते रहेंगे कि वियतनाम से हमें क्या लेना-देना है ? लेकिन वियतनाम में अमरीका की ताकत लग रही है, वियतनाम में अमरीका की शक्ति लग रही है, वह शक्ति कल आपके अकाल में भी काम आ सकती थी, वह अभी न आ सकेगी । क्योंकि शक्ति की सीमाएं हैं । और दुनिया में आदमी निरन्तर लड़ता रहा है इसलिए इतनी शक्ति नहीं बच पाती है कि जिससे हम स्वर्ग बना सकें । अगर हम आदमी को निपट स्वार्थी होने की शिक्षा दे सकें तो उससे अच्छी कोई शिक्षा नहीं है । स्वार्थ शब्द बहुत अच्छा है । अब बिगड़ गया, बहुत कुरूप हो गया, लेकिन उसका मतलब इतना ही होता है, आत्मा के लिए, स्वयं के लिए, दैट विच इज मीनिंगफुल टु योरसेल्फ, वह जो तुम्हारे लिए सार्थक है ।

जिसको हम परमार्थ कहते हैं, अगर बहुत ठीक से, गौर से समझें तो परमार्थ का मतलब हुआ, दी अल्टीमेट मूवमेंट । स्वार्थ ही विकसित होते-होते परम अर्थ बनेगा ।

बम्बई, दिनांक ८ सितम्बर १९७०

२१. गांधीवादी कहां हैं ?

मेरे प्रिय आत्मन,

मैं निरन्तर सोचता रहा, 'व्हेअर आर द गांधीयन्स' ? गांधीवादी कहां हैं ? लेकिन मेरे भीतर सिवाय एक उत्तर के और कुछ शब्द नहीं उठे । मेरे भीतर एक ही उत्तर उठता रहा—वहीं हैं, जहां हो सकते थे । यही सोचते हुए रात मैं सो गया और सोने में मैंने एक सपना देखा । उसी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं । शायद यही सोचते हुए सोया था कि गांधीवादी कहां हैं, इसलिए वह सपना निर्मित हुआ होगा ।

मैंने देखा कि राजधानी के एक बहुत बड़े बगीचे में जहां गांधीजी की प्रतिमा खड़ी है, मैं उस पत्थर की प्रतिमा के नीचे पड़ी बेंच पर बैठा हूं । दोपहर है और बगीचे में सन्नाटा है, कोई भी नहीं है । मैं सोचने लगा कि गांधीजी से ही क्यों न पूछ लिया जाये कि गांधीवादी कहां हैं ? लेकिन इसके पहले कि मैं पूछता, मैंने देखा कि गांधीजी की प्रतिमा कुछ बड़बड़ा रही है । तो मैं गौर से सुनने लगा । गांधीजी की प्रतिमा कह रही थी कि दुष्टों ने मुझे कहां खड़ा कर दिया है—धूप में, बरसात में, सर्दी में ! और राणा प्रताप को घोड़ा दिया हुआ है, शिवाजी को घोड़ा दिया हुआ है, रानी लक्ष्मीबाई को घोड़ा दिया हुआ है मुझे पैर पर ही खड़ा कर दिया है ? मैं तो बहुत हैरान हुआ । मैंने नहीं सोचा था कि गांधी भी गुस्सा होते हैं । मैं भागा हुआ राजधानी के बड़े नेता के पास गया कि गांधीजी

बहुत गुस्से में हैं, बहुत गालियां दे रहे हैं कि मुझे दुष्टों ने कहां खड़ा कर दिया है । मुझे भी घोड़ा चाहिए । उन नेता ने कहा कि ऐसा कभी नहीं हो सकता । गांधीजी कभी गाली नहीं दे सकते । मैं तुम्हारे साथ चलता हूं मैं उन नेता को ले जाकर प्रतिमा के सामने खड़ा हो गया । उस प्रतिमा ने कहा कि मैंने घोड़ा लाने को कहा था, तू गधे को कहां से ले आया ? वह तो हैरान हुआ । यह तो मैंने कभी सोचा भी नहीं था ।

उनके इस कहने से नेता का क्या हुआ, मुझे कुछ पता नहीं, मेरी नींद टूट गयी । और रात मैं बार-बार सोचता रहा, तो मुझे कुछ बातें ख्याल आयीं । मुझे पहली बात तो यह ख्याल आयी कि इसमें गधों का कोई कसूर नहीं है । महात्माओं के पास गधे इकट्ठे हो ही जाते हैं । असल में, महात्मा तो प्रथम कोटि के व्यक्ति होते हैं । प्रथम कोटि के व्यक्तियों के पास प्रथम कोटि का कोई व्यक्ति इकट्ठा नहीं होता । द्वितीय और तृतीय कोटि के लोग इकट्ठे होते हैं । असल में प्रथम कोटि का मनुष्य कभी किसी का अनुयायी नहीं बनता है । अनुयायी हमेशा द्वितीय और तृतीय कोटि के लोग बनते हैं असल में बुद्धिहीनों के सिवाय अनुयायी कभी कोई नहीं बनता । जिनके पास अपनी बुद्धि है वे अपने पैरों पर खड़े होते हैं और किसी के अनुयायी नहीं होते । इसलिए अनुयायी तो अनिवार्य रूप से खतरनाक है, क्योंकि बुद्धिहीनता ही किसी को अनुयायी बनाती है ।

गांधी के पास जो लोग इकट्ठे हुए इस देश के, वे दूसरी और तीसरी श्रेणी की बुद्धि के लोग थे । प्रथम श्रेणी का कोई व्यक्ति उनके पास इकट्ठा नहीं हुआ । इकट्ठा हो भी नहीं सकता है । प्रथम कोटि का आदमी कभी किसी के पीछे नहीं चलता, अपनी ही दिशा खोज कर चलता है । न कोई महावीर, न कोई बुद्ध, न कोई जीसस कभी किसी के पीछे चलता है । न कोई गांधी कभी किसी के पीछे चलता है । जो लोग किन्हीं के पीछे नहीं चलते उनके आस-पास इस तरह के लोग इकट्ठे हो जाते हैं जो सदा किसी के पीछे चलते हैं । इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है कि अनुयायी कभी बुद्धिमान आदमी नहीं होता । और महात्मा के मरने के बाद इन्हीं बुद्धिहीनों के हाथ में महात्मा की सारी व्यवस्था पड़ जाती है ।

प्रथम कोटि का आदमी मरा कि द्वितीय कोटि के हाथ में सत्ता चली जाती है । गांधी के मरते हिन्दुस्तान की सत्ता द्वितीय श्रेणी की बुद्धि के पास चली गयी । लेकिन द्वितीय श्रेणी की बुद्धि भी कुछ मूल्य रखती है । अब तो वे भी खत्म हो चुके । अब तो तृतीय श्रेणी के लोग उनकी जगह बैठे हुए हैं । ये तीसरी श्रेणी के वे लोग हैं जो गांधी के जमाने में स्वयं सेवक का और वालंटियर का काम करते थे । पट्टा बिछाने का और गांव में डुंडी पीटने का काम करते थे कि महात्मा आ रहे हैं । प्रथम श्रेणी के व्यक्ति के आस-पास द्वितीय श्रेणी का, सेकेंड ग्रेड माइंड का एक घेरा खड़ा हो जाता है, यह अनिवार्यता है । द्वितीय श्रेणी के बाहर तीसरी

श्रेणी का घेरा होता है। प्रथम श्रेणी के व्यक्ति के मरते ही द्वितीय श्रेणी के व्यक्तियों के हाथ में शक्ति चली जाती है।

और कुछ बातें समझने जैसी हैं। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया का अंग है। अब तक ऐसा होता रहा है। आगे न हो, इसकी आशा करनी चाहिए, लेकिन अब तक ऐसा हुआ है।

प्रथम कोटि का व्यक्ति जब तक ज़िन्दा होता है, द्वितीय कोटि के बहुत तरह के लोगों को वह अपने प्रभाव में बांध कर रखता है। लेकिन प्रथम कोटि के व्यक्ति के मरने के बाद द्वितीय कोटि के सारे लोगों में से एक कोई आदमी प्रथम कोटि का बनना चाहता है, बाकी सारे उसके साथी नाराज हो जाते हैं। वे सब अलग हटना शुरू हो जाते हैं। सत्ता की दौड़, और असली वसीयत किसकी है, 'हेयर' कौन है महात्मा का? प्रथम कोटि के व्यक्ति का कौन वंशाधिकारी है। तो द्वितीय श्रेणी के लोग प्रथम श्रेणी के व्यक्ति के तो प्रभाव में बंधे रहते हैं, लेकिन प्रथम श्रेणी के व्यक्ति के हटते ही द्वितीय श्रेणी के व्यक्तियों में आपसी संघर्ष और कलह और उपद्रव शुरू हो जाता है। क्योंकि वे सब एक ही कोटि के होते हैं, उनमें से कोई किसी को नेता नहीं मान सकता।

ऐसा हिन्दुस्तान में हुआ। गांधी के मरते ही गांधीजी ने जिन बहुत से लोगों को अपने आसपास इकट्ठा किया हुआ था, गांधी के मरते ही वे सब एक दूसरे के दुश्मन हो गये। क्योंकि उनमें से—वे सब साथी थे—उनमें से प्रथम कोई किसी को स्वीकार नहीं कर सकता था। फिर जो उनमें से प्रथम बन गया, उसके बनते ही द्वितीय श्रेणी के सारे लोग बाहर आ गये। और वह जो प्रथम श्रेणी का बन गया, दूसरी श्रेणी का व्यक्ति, उसने तीसरी श्रेणी के व्यक्तियों को अपने आस-पास इकट्ठा कर लिया। अब वे दूसरे श्रेणी के व्यक्ति भी जा चुके। अब देश तीसरी श्रेणी के व्यक्तियों के हाथ में पड़ा हुआ है।

यह अनिवार्य है होना। यह महात्मा गांधी के साथ हुआ हो, ऐसा नहीं है। यह महावीर के साथ भी हुआ, बुद्ध के साथ भी हुआ, यह जीसस के साथ भी हुआ, यह हमेशा होता रहा है। यह होना तो तब बन्द होगा जब प्रथम कोटि के व्यक्ति अनुयायी इकट्ठा करना बन्द करें। और अगर प्रथम कोटि के व्यक्ति अनुयायी इकट्ठा करने से इन्कार कर दें तो दुनिया का बहुत हित हो सकता है। लेकिन अब तक ऐसा नहीं हो सका। गांधी के साथ भी ऐसा नहीं हो सका। और गांधी के माध्यम से देश थर्ड रेट, तृतीय कोटि के लोगों के हाथ में पहुंच गया।

यह भी मैं आपसे कहना चाहता हूं कि यह जो स्थिति बनी है, यह बिल्कुल निश्चित थी। यह बनती ही। इसलिए मैं गांधीवादियों को कोई दोष नहीं देना चाहता हूं। उनकी कोई आलोचना करने में भी मेरे मन में बहुत पीड़ा मालूम होती है। वे आलोचना के योग्य भी नहीं हैं। आलोचना उनकी करनी चाहिए जिनसे हम

ज्यादा आशा रखते हों और वे आशा से नीचे सिद्ध हुए हों। अगर कोई आदमी कंकड़-पत्थर को हीरे-मोती समझ ले और फिर बाद में वे कंकड़-पत्थर साबित हों, तो आलोचना किसकी होनी चाहिए? कंकड़-पत्थरों की, या उस आदमी की जिसने उन्हें हीरे-मोती समझा था? अगर वह आदमी कहता है कि हीरे-मोती धोखेबाज निकल गये—हीरे-मोती कभी धोखेबाज नहीं निकलते—सच बात यह है कि उसकी समझ की कमी थी और उसने कंकड़-पत्थरों को हीरे-मोती समझा था। जब असलियत खुली तो वे कंकड़-पत्थर निकले। उसको अपनी बुद्धि की आलोचना करनी चाहिए।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि गांधीवादियों की आलोचना में मत पड़ना, इस देश को अपने मस्तिष्क की आलोचना करनी चाहिए कि तुम कंकड़-पत्थरों को हीरे-मोती समझ लेने की तुम्हारी आदत कब छोड़ोगे? लेकिन हम अपनी आलोचना करने से बचना चाहते हैं और दोष उन पर थोप देते हैं जिनका कोई भी दोष नहीं है। यह होने वाला था। इसलिए मैं कहता हूं, गांधीवादी वहीं हैं जहां हो सकते थे। इससे अन्यथा वे कुछ भी नहीं हो सकते थे। और उनकी आलोचना में समय गंवाना व्यर्थ है। मुल्क को अपने चित्त की आलोचना करनी चाहिए कि हम इस तरह के गलत लोगों को कैसे चुन लेते हैं, हम इनको आदर कैसे दे देते हैं! हम इनको प्रतिष्ठा, सत्ता और शक्ति कैसे दे देते हैं? अगर गांधीवादियों की आलोचना की गयी तो मैं आपसे कहता हूं कि फिर हम इसी तरह के नासमझों के हाथ में मुल्क को दुबारा दे देंगे। उनकी शक्लें दूसरी होंगी, उनके झंडे दूसरे होंगे, वे किसी और महात्मा के आस-पास इकट्ठे होंगे। और फिर वही गलती शुरू होगी जो हमने इधर बीस वर्षों में भोगी है। हम चुनाव करते हैं।

मैंने सुना है, एक आदमी ने अपनी जिन्दगी में आठ शादियां कीं। और हर बार, उसने जब पत्नी बदली तो उसने बिल्कुल पक्का तय कर लिया कि अब इस तरह की पत्नी दुबारा नहीं चुननी है। लेकिन वह आदमी तो वही था, चुनने वाला वही था। उसने फिर चार-छः महीने में उसी तरह की औरत फिर चुन ली। चार-छः महीने साथ रहने के बाद वह हैरान हुआ कि यह औरत भी फिर वैसी ही सिद्ध हुई, जैसी पहली औरत थी। आठ औरतें बदलने के बाद उसको यह लगा कि मालूम होता है, दुनिया की सब औरतें एक-सी हैं क्योंकि जिस औरत को भी लाओ, वही वैसी सिद्ध होती है।

असली बात यह नहीं थी। असली बात यह थी कि वह चुनने वाला तो बदलता ही नहीं। हर बार वही था, उसकी पकड़ वही थी, उसकी समझ वही थी, उसका ढांचा वही था, हर बार उसकी पसन्द वही थी जो पुरानी थी। फिर उसने वही चुन लिया जो पहले उसने चुना था। ये आठ औरतें बड़ी खोजकर वह लाया था।

इस देश में इस तरह की भूल निरन्तर होती रही है। महात्माओं के आसपास

इकट्ठे लोगों को हमने हमेशा चुना है। आज ही नहीं—महावीर के साथ भी यही, बुद्ध के साथ भी यही, गांधी के साथ भी यही। और उसका परिणाम हम भोग रहे हैं। पांच हजार सालों में हमारा समाज, हमारा व्यक्तित्व, हमारी आत्मा रोज नीचे गिरती चली गयी। हम अनुयायियों को चुन लेते हैं। महात्मा के जीवित होने में महात्मा की ज्योति उनमें झलकती है, और लगता है कि वे जीवित हीरे-मोती हैं। महात्मा के मरते ही ज्योति विलीन हो जाती है। कंकड़-पत्थरों में जो चमक थी ज्योति की, वह भी विलीन हो जाती है। वे कंकड़-पत्थर साबित हो जाते हैं।

यह हमें ध्यान रखना पड़ेगा भविष्य में कि हम व्यक्तियों को देखकर चुनाव न करें, और व्यक्तियों को देखकर हम आदर न दें। जीवन-व्यवस्था और जीवन-दृष्टि और जीवन-दर्शन को देखकर चुनाव होना चाहिए। लेकिन हम व्यक्तियों से प्रभावित होने वाली कौम हैं, हम जीवन-दर्शनों के सम्बन्ध में जरा भी विचार नहीं करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि हर बार भूल होती है, हर बार हम वही भूल दोहरा लेते हैं, आलोचना करते हैं। और आलोचना हम क्या करते हैं? आलोचना हम अनुयायियों की करते हैं। उससे कुछ भी नहीं होता है। मैं आपसे कहना चाहता हूं, गांधीवादियों का तो कोई भी दोष नहीं है, सब वादी इसी तरह के सिद्ध होंगे, क्योंकि वादी कभी भी तृतीय, द्वितीय श्रेणी के ऊपर के लोग नहीं होते हैं।

वाद से मुक्ति चाहिए—चाहे वह गांधीवाद हो, चाहे मार्क्सवाद हो, चाहे कोई और वाद हो। अगर देश को अच्छा बनाना है तो वाद से मुक्ति चाहिए। एक वाद से छूटकर दूसरे वाद को पकड़ा जा सकता है। बहुत आसान वही है, लेकिन फिर गलती वही हो जायेगी। दुनिया हर बार वाद को बदल लेती है और हर बार वही मुसीबत खड़ी हो जाती है जो पहले खड़ी थी। असल में वाद को चुनने की जरूरत नहीं है। गांधीवाद को चुनकर हमने भूल की है, मार्क्सवाद को चुन-कर भी हम भूल कर सकते हैं। वाद हमेशा खतरनाक सिद्ध होगा क्योंकि वाद में सिर्फ वे ही लोग प्रभावित होते हैं जिनके पास अपने सोचने-समझने की कोई बुद्धि नहीं होती। बुद्धुओं के सिवाय वादी कभी कोई आदमी नहीं होता। विचारशील आदमी सोचता है, समझता है, जीता है। किसी इज्म में, वाद में बांधकर अपने को खड़ा नहीं करता है। बांधने की उसे कोई जरूरत नहीं है। उसके पास अपने सोचने का ढंग है। वह सोचेगा, रोज-रोज जिन्दगी की समस्याओं का सामना करेगा।

लेकिन वादी क्या कहता है? वादी कहता है, समस्या महात्मा हल कर गया है। हमारा गुरु हल कर गया है। अब हमें कोई समस्या हल नहीं करनी है। हमारे पास बंधे हुए समाधान हैं। कोई भी समस्या आ जाये, हम अपनी किताब

खोलकर समाधान निकाल लेंगे। वे समाधान खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं, क्योंकि सब समाधान किसी विशेष परिस्थिति में पैदा होते हैं और उस परिस्थिति के बाहर उनकी कोई सार्थकता नहीं होती।

गांधीजी ने जो समाधान इस देश को दिये वे गांधीजी की परिस्थिति में सार्थक हो सकते थे। लेकिन अब न वह परिस्थिति है, न वह प्रसंग है, न वह संदर्भ है। लेकिन वादी कहता है कि हम उन्हीं को सार्थक कह कर बतायेंगे। और वादी इसलिए हमेशा पीछे से बंधा रहता है। जिन्दगी जाती है आगे की तरफ और वादी बंधा रहता है पीछे से। इसलिए वादी हमेशा जिन्दगी पर बन्धन सिद्ध होता है। इस देश की चेतना को वाद से, आइडिऑलाजी से, इज्म से, शास्त्र से मुक्त करने की जरूरत है। लेकिन गांधी के आसपास एक नया शास्त्र खड़ा हो गया है।

गांधी के शिष्यों में दो तरह के लोग थे—एक तो वे लोग थे जिनकी राजनीतिक बुद्धि थी, और एक वे लोग थे जो सिद्धान्त और शास्त्र की बुद्धि के थे। तो गांधी के बाद उनका खेमा दो वर्गों में बंट गया। गांधीवादी दो वर्गों में बंट गये—एक सत्ताधीश गांधीवादी हैं, और एक मठाधीश गांधीवादी हैं। सत्ताधीश गांधीवादी सत्ता के ऊपर हावी हैं, मठाधीश गांधीवादी गांधीवाद के शास्त्र के निर्माण करने में संलग्न हैं। सत्ताधीश गांधीवादियों ने सत्य, अहिंसा, उन सबकी हत्या कर डाली है, और मठाधीश गांधीवादियों ने सत्याग्रह, 'मास-रेसिसटेंस', असहयोग, उस सबकी हत्या कर डाली है।

गांधी के विचार में अहिंसा और सत्य का मूल्य था। जो लोग सत्ता में गये, उन्हें जाते से यह पता चला कि सत्ता असत्य से चलती है और हिंसा से। सत्ता हिंसा और असत्य से चलती है। तब उन्होंने दोहरे व्यक्तित्व ग्रहण कर लिए। हिंसा में उतरते चले गये रोज, असत्य में जीने लगे, और बातें सत्य और अहिंसा की और जोर से करने लगे। बातें इतने जोर से करना जरूरी थीं ताकि वे जो कर रहे थे वह छिप जाये। बीस साल की आजादी में हिन्दुस्तान की अहिंसक सरकार ने जितनी हत्या और खून किया है और जितनी गोलियां चलायी हैं उतनी दुनिया की कोई हिंसावादी सरकार भी इतना हिंसा करने का दावा नहीं कर सकती। अहिंसा की बात चलती रही और नीचे हिंसा चलती रही। सत्य की बात चलती रही और सत्ता की दौड़ में सब तरह का असत्य स्वीकार कर लिया गया। अपरिग्रह और दरिद्रता के वरण करने की बात चलती रही और सब तरह की सम्पत्ति और सब तरह का लोभ और सब तरह का परिग्रह काम करता चला गया।

मठाधीश गांधीवादी सत्याग्रह कर नहीं सकते क्योंकि उनके ही भाई-बंधु दिल्ली में हुकूमत में बैठे हुए हैं। असहयोग नहीं कर सकते तो उन्होंने भूदान के पाखण्ड का ईजाद किया हुआ है, जिससे न समाज बदलता, न समाज की जिन्दगी बदलती।

लेकिन मठाधीश गांधीवादी को भी कुछ हाथ में चाहिए, नहीं तो वह जिन्दा नहीं रह सकता है। उसने असहयोग की बात बन्द कर दी, उसने सत्याग्रह की बात बन्द कर दी कि सत्याग्रह किसके खिलाफ करोगे, असहयोग किसके खिलाफ करोगे? उसका ही कोई भाई दिल्ली में हुकूमत कर रहा है। उसके खिलाफ सत्याग्रह भी नहीं हो सकता, असहयोग भी नहीं हो सकता। जबकि सच्चाई यह है कि इन बीस वर्षों में सत्ताधिकारियों ने असहयोग और सत्याग्रह की जितनी सम्भावनाएं और परिस्थितियां दी थीं, इतनी अंग्रेजों ने भी मुश्किल से दी थीं। लेकिन मठाधीश गांधीवादी तो सत्याग्रह किसके खिलाफ करें। तो उसे कोई ऐसा उपाय खोजना चाहिए जो सरकार के साथ-साथ चल सके।

अभी मैं बिहार में था तो बिहार के गांव में गया। बिहार के गांवों के लोग विनोबा को सरकारी सन्त कहते हैं। अब सरकारी भी सन्त हो सकता है कोई? सन्त तो सदा विद्रोही होता है, वह सरकारी नहीं हो सकता है। और अगर सन्त सरकारी हो सकता है तो यह वैसा ही है जैसे कोई कहे कि पतिव्रता वेश्या। यह वैसे ही है, इसका कोई मतलब नहीं है। इसका कोई मतलब ही नहीं होता। सन्त तो अनिवार्यरूपेण विद्रोही है, रिबेलियन तो उसके खून में होगा। और जहां असत्य देखेगा, जहां बुराई देखेगा, लड़ेगा। लेकिन लड़े किससे? मठाधीश गांधीवादी मुश्किल में पड़ा हुआ है। सरकार अपनी है, अपने लोगों की है, तो लड़ना किससे है? तो लड़ सकता नहीं। तो अब सरकार के सहयोग से···गांधी जिन्दगी भर असहयोग की बात किये, और विनोबा और उनके साथी सरकार के सहयोग से क्रान्ति लाने की कोशिश में लगे हुए हैं। वह क्रांति नहीं आ रही है। सिर्फ सरकार के बचाव का उपाय बन रहा है। क्रान्ति नहीं आ रही है, केवल समाज की सड़ी-गली व्यवस्था को शाकएब्जार्बर का काम कर रहे हैं। कोई धक्का नहीं लगने देते हैं समाज की पुरानी व्यवस्था को। और लोगों को आशा बंधती है कि शायद इस तरह क्रान्ति हो जायेगी। तो लोग चुपचाप बैठे हुए प्रतीक्षा कर रहे हैं।

ये दो मठ हैं गांधीवादियों के। और मेरा मानना है, इनसे यही होने को था। इसलिए इनकी आलोचना का कोई अर्थ नहीं है। इनसे यही होने के और भी कारण हैं, वह भी समझने जरूरी हैं।

मेरी अपनी मान्यता यह है कि हिन्दुस्तान के सारे महात्माओं ने आदर्श इतने ऊंचे रखे हैं कि सामान्य मनुष्य उन तक उठ ही नहीं सकता। आदर्श इतने ऊंचे रखे हैं कि सामान्य मनुष्य उनकी तरफ आंखें उठाकर भी नहीं देख सकता। और इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तान में कुछ थोड़े से लोग, बड़े-बड़े लोग उस तरह पैदा हुए, और बाकी समाज हीन से हीन होता चला गया। अगर आदर्श असम्भव होंगे तो समाज हीन हो ही जायेगा। गांधी के आदर्श भी असम्भव की सीमा छूते

हैं। और असम्भव आदर्श प्रभावित कर सकते हैं, आकर्षित कर सकते हैं लेकिन आचरण में नहीं लाये जा सकते। हां, कभी कोई एकाध आदमी आचरण में ला सकता है। तो हम उसे आदर दे सकते हैं। सर्कस में आप जाते हैं और एक आदमी रस्सी पर चढ़कर दिखाता है तो हम बड़ी तालियां पीटते हैं। वह सर्कस में देखने लायक काम है। इससे ज्यादा उसका उपयोग नहीं है। ताली पीटी जा सकती है। लेकिन अगर सारे लोग रस्सी पर चलने की कोशिश करें तो सिवास अस्पतालों के बिस्तर भरने के और कुछ भी नहीं होगा।

महात्मा के नाम से चलने वाले जो प्राणी हैं, वे कुछ जीवन की रस्सी पर चलने की कोशिश करते हैं। कुछ लोग अभ्यास से चल भी जाते हैं। और लोग अगर आदर दे रहे हों तो कैसे भी अभ्यास से गुजरा जा सकता है। आप एक आदमी को सिर के बल खड़े होने में आदर देने लगें और सारा बम्बई ताली पीटने लगे और महात्मा कहने लगे तो वह आदमी फिर दो पैर पर खड़े होने की फिक्र छोड़ देगा। फिर वह सिर पर ही खड़े होने का अभ्यास जारी रखेगा। लेकिन उसके सिर के बल खड़े होने का मतलब यह नहीं होता कि सारे लोग सिर के बल चलने लगें।

हिन्दुस्तान असम्भव आदर्शों के पीछे पड़कर अपने जीवन को, अपने चरित्र को सबको नष्ट कर रहा है। गांधीजी ने फिर असम्भव आदर्शों को हमारे सामने रख दिया। अहिंसा, 'एब्सोलूट नॉनवॉयलेंस' उनकी कल्पना में है। पूर्ण अहिंसा उनकी कल्पना में है। सच बात तो यह है कि गांधी खुद भी पूर्ण अहिंसक न हैं, न हो सकते हैं। कोई भी आदमी जिन्दा रहते पूर्ण अहिंसक नहीं हो सकता। खुद गांधी भी नहीं हो सकते। गांधीवादियों की बात तो दूर है, खुद गांधीजी भी पूरे गांधीवादी नहीं हैं, न हो सकते हैं। जिन्दा रहना है तो हिंसा अनिवार्य है। जी नहीं सकते एक क्षण बिना हिंसा के। हिंसा होगी ही। और जिन बातों को हम अहिंसा का नाम देते हैं वे भी हिंसा के ही रूप हैं।

अगर मैं आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाऊं और आपसे कहूं कि जो मैं कहता हूं वह मान लें, तो आप कहेंगे, आप हिंसा का उपयोग कर रहे हैं। और मैं आपके सामने अनशन करके बैठ जाऊं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा अगर मेरी बात नहीं मानते, तो मैं हिंसा का उपयोग नहीं कर रहा हूं? मैं अब भी हिंसा का ही उपयोग कर रहा हूं। फर्क इतना है कि वह हिंसा आपकी तरफ जा रही थी, यह हिंसा मेरी तरफ जा रही है। वह हिंसा पर-हिंसा थी, यह हिंसा आत्महिंसा है। वह हिंसा 'सेडिस्ट' थी, यह 'मेसोचिस्ट' है। यह खुद को ही मारने की धमकी है।

और ध्यान रहे, गांधीजी ने जितनी बार खुद को मारने की धमकी दी, एक का भी हृदय परिवर्तन नहीं हुआ। लेकिन गांधीजी मर न जायें, इस ख्याल से लोग झुक गये। डॉ० अम्बेडकर ने साफ कहा है कि मेरा हृदय जरा भी परिवर्तन नहीं हुआ,

लेकिन सिर्फ यह सोचकर कि गांधी जैसे कीमत का आदमी न मर जाये, मैं झुका हूं। लेकिन मैं जो मानता था, अब भी मानता हूं। मेरा मानना वही है।

गांधीजी अनशन करके किसको झुका पाये ? किसको समझा पाये ? किसका हृदय-परिवर्तन हुआ है ? लेकिन खुद मरने की धमकी देने से लोकमानस भयभीत हुआ कि इतना अच्छा आदमी मर न जाये ! इसे बचाने की हमने कोशिश की। मैं मानता हूं, यह भी हिंसा है, यह भी 'कोएर्शन' है, यह भी जबरदस्ती दबाव हैं। गांधीजी खुद भी पूरे अर्थों में अहिंसक नहीं हैं, न हो सकते हैं।

और यह भी ध्यान रहे, जब पूर्ण अहिंसा पर जोर दिया जायेगा तो उसके परिणाम घातक होंगे। हिन्दुस्तान में गांधीजी ने पूर्ण अहिंसा पर जोर दिया, और हिन्दुस्तान गांधीजी की आंखों के सामने इतनी बड़ी हिंसा से गुजरा जिसका कोई हिसाब नहीं। दस लाख आदमी हिन्दुस्तान के विभाजन में मरे। दस लाख आदमी उस आन्दोलन की पूर्णाहुति पर मरे, जो अहिंसक था। और खुद गांधी की हत्या भी हिंसा से हुई, यह भी थोड़ा विचारणीय है। इसके पीछे कुछ कारण है।

मुझे ऐसा दिखायी पड़ता है कि जीवन का एक बहुत महत्वपूर्ण नियम है जो हमारे ख्याल में नहीं है। उस नियम को मैं कहता हूं—'लॉ ऑफ रिवर्स इफेक्ट', उल्टे परिणाम का नियम। अगर मुझे तीर चलाना है तो मुझे प्रत्यंचा को, धनुष बाण को पीछे की तरफ खींचना पड़ेगा। अगर तीर को आगे पहुंचाना है तो तीर को पहले पीछे खींचना पड़ेगा। जितना तीर पीछे चला जायेगा, उतना ही आगे जा सकता है। अब यह उल्टी बात है। तीर को आगे भेजना है तो पीछे क्यों खींचते हैं आप ? अगर दीवार पर गेंद आप मारते हैं जोर से, तो जितने जोर से आप मारते हैं गेंद उतनी ही जोर से आपकी तरफ वापस लौट आयेगी।

हिन्दुस्तान हमेशा असम्भव आदर्शों को थोपता रहा है मुल्क की चेतना पर। गांधीजी ने अहिंसा का असम्भव आदर्श आदमी के ऊपर थोपना चाहा। इसका एक ही परिणाम हो सकता था, गेंद उल्टी दिशा में चली गयी। हिन्दुस्तान अहिंसा की बातचीत सुनते-सुनते भीतर हिंसा से भरता चला गया। जितनी हमने अहिंसा की बात सुनी उतनी भीतर हिंसा इकट्ठी होती चली गयी। अहिंसा की बात सुनी, ऊपर से अहिंसा थोपी, अपने को दबाया, अहिंसक बनने की कोशिश की। लेकिन कोई कभी अहिंसक बनने की कोशिश से अहिंसक हो सकता है ? हिंसा भीतर दबती चली गयी, इकट्ठी होती चली गयी; उसकी आग, उसका तूफान, उसका ज्वालामुखी भीतर इकट्ठा हो गया। उसे निकलने की जरूरत पड़ गयी। वह गांधीजी की जिन्दगी में हिन्दू-मुसलमान के नाम से निकल आया।

मैं मानता हूं कि हिन्दुस्तान की इस हिंसा का जिम्मा अन्ततः गांधीजी के ऊपर है। इतनी अहिंसा की बातचीत करनी, असम्भव आदर्श की तरफ लोगों को खींचने के परिणाम बुरे होते हैं। अगर समाज को बहुत ज्यादा ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी

जाये तो उसका परिणाम कामुकता का बढ़ना होता है, सेक्सुऑलिटी का बढ़ना होता है। और जो समाज जितने ब्रह्मचर्य की शिक्षा में दीक्षित होता है, उतना कामुक और सेक्सुअल हो जाता है। हमारा समाज हुआ है। और जो आदमी जितना सेक्स से लड़ेगा उतना कामुक हो जायेगा। और जो आदमी जितनी हिंसा से लड़ेगा उतना हिंसक हो जायेगा।

महावीर नंगे खड़े थे। उन्होंने सब छोड़ दिया, और महावीर के पीछे जैनियों का जो अनुयायियों का वर्ग खड़ा हुआ...आप देखते हैं, हिन्दुस्तान में सबसे ज्यादा धन जैनियों के पास है। महावीर ने धन छोड़ दिया, उनके अनुयायी ने सब धन इकट्ठा कर लिया। महावीर नग्न खड़े थे। जबलपुर में, जहां मैं रहता हूं, मेरे एक मित्र की दुकान है। वे महावीर को मानने वाले हैं, नग्न महावीर को मानने वाले हैं, दिगम्बर महावीर को। उनकी कपड़े की दुकान है। कपड़े की दुकान का नाम है, दिगम्बर क्लॉस स्टोर्स। नंगों की कपड़ों की दुकान। अब नंगों की कपड़ों की दुकान का क्या मतलब होता है ? महावीर नंगे थे और जैनी अधिकतर कपड़ा बेचने का काम करते हैं, या कपड़ा बनाने का काम करते हैं।

यह आकस्मिक नहीं है। इसके पीछे कारण हैं। हम चित्त को जिस दिशा में दबायेंगे, चित्त उससे उल्टी दिशा में जाना शुरू हो जायेगा। और यह नियम समझ लेना जरूरी है, अन्यथा महात्माओं से छुटकारा बहुत मुश्किल है उनसे छुटकारा न हो तो उनके अनुयायियों से छुटकारा नहीं हो सकता। यह ध्यान रखना जरूरी है कि महात्मा अतिवादी तो नहीं है, एक्स्ट्रीमिस्ट तो नहीं है। और सब महात्मा अतिवादी होते हैं। क्योंकि अतिवादी हुए बिना आप उनको महात्मा स्वीकार नहीं कर सकते। जब तक वे अति पर, एक्स्ट्रीम पर न चले जायें तब तक आप उन्हें महात्मा नहीं मानेंगे। जब वे अति पर चले जायेंगे तब उससे ठीक विपरीत अति वह पैदा करना शुरू कर देंगे। इसलिए दुनिया में हर महापुरुष के बाद पतन का एक काल आता है। जिस समाज में महापुरुष पैदा होगा, उस समाज में बीस, पच्चीस, तीस साल तक ह्रास और पतन का काल होगा। हमेशा यह हुआ है। जीसस ने सिखाया कि जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, तुम दूसरा गाल उसके सामने कर देना। और ईसाइयों ने जितनी तलवार चलायी उतना किसी और के अनुयायियों ने नहीं चलायी।

मैंने सुना है, एक आदमी था, खूंखार जंगली। उसने ईसा की बाइबिल पढ़ ली। और उसने बाइबिल में पढ़ लिया कि जो आदमी तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, उसके सामने दूसरा कर देना। वह खूंखार जंगली आदमी था। उसने यह सिद्धान्त मान लिया। रास्ते से निकल रहा था, एक आदमी ने उसके एक गाल पर चांटा मार दिया। उसने दूसरा उसके सामने कर दिया। उस दूसरे आदमी ने मौका देखकर दूसरे को और जोर से चांटा मारा। उस जंगली ने उसकी गर्दन

पकड़ कर मरोड़ दी। आस पास के लोगों ने कहा, तुम तो यह सिद्धांत मानते थे कि जो एक गाल पर चांटा मारे, दूसरा उसके सामने कर देना । उसने कहा, दूसरा मैंने कर दिया, तीसरा मेरे पास नहीं है। और तीसरे के बाबत जीसस ने कुछ कहा भी नहीं है। अब जो मुझे करना है वह मैं करूंगा। आखिर मैं अपनी बुद्धि से भी चलूंगा न एक सीमा के बाद !

गांधीवादी अब अपनी बुद्धि से चल रहे हैं। गांधीजी की बुद्धि से चले, अब वे अपनी बुद्धि से चल रहे हैं। आखिर कब तक गांधीजी की बुद्धि से चलेंगे ? और वह बुद्धि अतिवादी है इसलिए खतरा होना सुनिश्चित है। हिन्दुस्तान, महात्माओं, साधुओं, संतों अवतारों, तीर्थंकरों का देश है। जितने तीर्थंकर, अवतार हमने पैदा किये, दुनिया में किसी देश ने पैदा नहीं किये। होना यह चाहिए था कि हमारे देश का चरित्र सबसे ऊंचा होता। ऐसा नहीं हुआ। इसका कुछ कारण होना चाहिए।

हमारे तीर्थंकर, हमारे अवतार, हमारे महात्मा सब अतिवादी हैं। वे एक्सट्रीम पर जीते हैं। वे वहां जीते हैं जहां आखिरी छोर है। और उस आखिरी छोर पर कोई आदमी कोशिश करके चाहे तो जी सकता है लेकिन उसकी खुद की जिन्दगी भी बहुत तनाव और चिन्ता और परेशानी की जिन्दगी होगी। और उसके पीछे चलने वाले तो बहुत मुश्किल में पड़ जायेंगे। उसके पीछे चलने वालों को हिपोक्रेट होना ही पड़ेगा। उसके पीछे चलने वालों को पाखण्डी बनना ही पड़ेगा। क्योंकि वे उतने अतिवादी हो नहीं सकते। अतिवादी के पीछे चल पड़े हैं तो बातें वे करेंगे एक, जियेंगे ठीक दूसरे तरह से। जीना उनका उनकी बातों से उल्टा होगा। इसलिए मेरा कहना यह है कि हमें अतिवाद से विचार करके बचने की जरूरत है। भारत की चेतना बहुत अति में जा चुकी है।

कन्फ्यूशियस एक गांव में गया हुआ था। उस गांव के लोगों ने उससे कहा कि हमारे गांव में भी बहुत बड़ा महात्मा है, आप उससे मिलें। कन्फ्यूशियस ने कहा कि उस बड़े महात्मा का क्या कारण है कि तुम उसे बड़ा कहते हो ? तो उन लोगों ने कहा, वह इतना विचारवान है कि एक छोटा-सा काम करने के पहले तीन बार सोचता है। कन्फ्यूशियस ने कहा, तीन बार जरा ज्यादा हो गया। एक बार कम होता है, तीन बार जरा ज्यादा हो गया। दो बार काफी है। मैं उससे मिलने नहीं जाऊंगा। वह अतिवादी है, एक्सट्रीमिस्ट है। मैं तो गोल्डन रूल को मानता हूं, मैं तो स्वर्ण-नियम को मानता हूं। बीच में चलने के अतिरिक्त और कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। हीन आत्मा, अपराधी एक एक्सट्रीम पर चलता है। वह कहता है, हिंसा ही नियम है और महात्मा दूसरे अति पर चलता है, वह कहता है, अहिंसा ही नियम है। लेकिन जीवन बीच में चलता है, जहां अहिंसा और हिंसा के मध्य एक रास्ता खोजना होता है। न तो पापी को नियम बनाया जा सकता और न महात्मा को नियम बनाया जा सकता।

गांधी ने भारत की जो पुरानी भूल थी उसको फिर दोहरा दिया है। लेकिन गांधी इसीलिए सफल भी हो सके। इसीलिए भारत के मन को वे प्रभावित भी कर सके। भारत की जो पुरानी बीमारी थी वह उसमें बिल्कुल ही मौजूं बैठ गये। भारत की पुरानी बीमारी अतिवाद की है। आखिरी, पूर्णता की हमारी बीमारी है। और उस पूर्णता की बीमारी को हमने सब दिशाओं में बढ़ाने की कोशिश की। अपरिग्रह, तो पूर्ण; फिर हम वस्त्र भी नहीं पहनेंगे। वस्त्र भी परिग्रह है। धन, तो पूर्णतया उससे छुटकारा चाहिए; तो हम निर्धन हो जायेंगे। शरीर का विरोध, तो अन्तिम सीमा तक होगा। यहां जो शरीर के विरोधी हैं, असली हैं, उन्होंने मृत्यु की भी आज्ञा दी है। कोई आदमी आत्महत्या करना चाहे तो कर सकता है। आत्महत्या का उन्होंने विरोध नहीं किया है, क्योंकि वे कहते हैं, हत्या शरीर की होती है। तो अगर कोई आदमी शरीर को खत्म करना चाहे तो करे, क्योंकि शरीर हमारा दुश्मन है। उस सीमा तक हम अति पर गये। और वही अति गांधी ने फिर दोहरा दी। हमें बहुत ठीक मालूम पड़ी। हमारे चित्त को बहुत प्रभाव हुआ। हमने कहा, ठीक वह आदमी आ गया जो हमारी भारतीय संस्कृति का प्रतीक है, प्रतिनिधि है। प्रतीक वह थे, लेकिन भारतीय संस्कृति बीमार है। वे बीमारी के ही प्रतीक हैं।

भारतीय संस्कृति पाखण्डी है। भारतीय संस्कृति 'सीजोफ्रेनिक' है, जिसको हम कहें, आदमी को दो हिस्सों में तोड़ देने वाली है। पूरे आदमी को स्वीकार नहीं करती। अगर आप खाना खाते हैं तो भारतीय संस्कृति कहती है, अस्वाद से, खाना, स्वाद मत लेना। गांधीजी भी वही समझाते थे। वह कहते थे, भोजन तो करो, लेकिन स्वाद मत लेना। अब आदमी को आप पागल करना चाहते हैं ? स्वाद आदमी क्यों न ले ? स्वाद बराबर ले, और मैं कहता हूं, पूर्णतया स्वाद ले। और जितना गहरा स्वाद ले सके उतना विकसित आदमी है। उतना रिफाइंड, उतना कल्चर्ड, उतना सुसंस्कृत आदमी है, जितना गहरा स्वाद ले सके। और मैं यह भी मानता हूं कि जो आदमी भोजन से जितना ज्यादा स्वाद लेगा वह भोजन से उतना ही मुक्त हो जायेगा। उसको भोजन की चिन्ता उतनी ही छूट जायेगी। और अस्वाद वाला आदमी भोजन करते वक्त अकड़ के बैठेगा कि स्वाद लेना नहीं है। और जब भोजन कर चुकेगा तो चौबीस घण्टा स्वाद का ख्याल आता रहेगा कि नहीं लिया, वह पीछा करेगा। मैं मानता हूं, स्वाद लेना, पूर्णतया से लेना। यह अस्वाद की बात बेमानी है और खतरनाक है।

जीवन में सारे सुख का विरोध है। गांधीजी का भी विरोध है। किसी भी तरह के सुख के वे विरोधी हैं। दुख का वरण है। जो आदमी जितना दुख का वरण करे, गद्दी को छोड़कर नीचे बैठ जाये, हम कहेंगे, उतना बड़ा आदमी है। कपड़े उघाड़कर धूप में बैठ जाये, सर्दी में खड़ा हो जाये, हम कहेंगे, उतना त्यागी

और तपस्वी है। हम दुखवादियों को आदर देते हैं। दुख को हम तपश्चर्या कहते हैं और दुख मनुष्य के स्वभाव के प्रतिकूल है। कोई आदमी दुख नहीं चाहता। कोई आदमी दुख चाहता ही नहीं। जब तक कि आदमी मानसिक रूप से बीमार न हो तब तक कोई आदमी दुख नहीं चाहता। आदमी सुख चाहता है। और मैं समझता हूं कि अगर हमने दुख चाहने की व्यवस्था सिखायी तो पाखण्डी हो जायेगा। ऊपर से वह कहेगा, ठीक है, तपश्चर्या, त्याग। भीतर से? भीतर से वह सुख के रास्ते खोजेगा। इसलिए जैसे ही महात्मा विदा होगा, उसके दबाये हुए, स्टार्व्ड, भूखे जो अनुयायी होंगे, वे ठीक उल्टे सिद्ध होंगे।

अगर महात्मा ने समझाया था कि झोंपड़े में रहना, तो वे महल में रहना शुरू करेंगे। क्योंकि महात्मा के डर में, प्रभाव में, महात्मा के असर में उन्होंने किसी तरह झोंपड़े में रहने को अपने को राजी कर लिया। मन उनका महल मांगता था। और मैं मानता हूं कि हर आदमी का मन महल मांगता है। और हमें एक ऐसी दुनिया बनानी चाहिए जहां हर आदमी को महल मिल सके। झोंपड़ी में रहना सिखाने की जरूरत भी क्या है? झोंपड़े में सिखाने की शिक्षा ही गलत है। उसका एक ही मतलब हो सकता है कि हम आदमी को उसके स्वभाव के विपरीत ले जायें, फिर वह आदमी मौका पाकर अपने स्वभाव की पूर्ति करे।

तो आज दिल्ली में वाइसराय तो चला गया, लेकिन उसके महल बच गये। उनके महलों में, गांधीवादी जो झोंपड़े में रहने की इच्छा रखता था, वह उन महलों में रह रहा है। हालांकि वह उसमें भी तरकीबें निकालता है। पहले राष्ट्रपति जब राजेन्द्र बाबू हुए तो मैं दिल्ली गया तो उनका महल देखने गया। जिस कमरे में वे बैठते थे, मैं देखकर हैरान हुआ। उस कमरे को दिखाने वाले आदमी ने मुझे कहा कि राजेन्द्र बाबू कितने तपस्वी, कितने सादे आदमी हैं, देखते हैं आप? मैंने कहा, क्या, मुझे समझ में नहीं पड़ता है, यह क्या किया गया है? महल में, वाइसराय की बैठक के महल में चटाइयां लगा दी गयी हैं चारों तरफ। झोंपड़ा हो गया यह। महल वही है, दीवार पर चटाई और जड़ दी गयी है, सादगी हो गयी है।

मैंने कहा, यह पागलपन के लक्षण हैं। महल में रहना है महल में रहो, झोंपड़े में रहना है झोंपड़े में रहो, यह महल के भीतर झोंपड़ा कैसे बन गया? ईमानदारी और सफाई सीधी होनी चाहिए। झोंपड़े में रहो तो झोंपड़े बहुत हैं। झोंपड़ों की हमारे मुल्क में कमी नहीं है। आप झोंपड़े में रहो। लेकिन यह वाइसराय का महल, जहां एक हजार नौकर दिन-रात काम कर रहे हैं, वहां आप झोंपड़े में रहने का मजा भी ले रहे हो और महल में भी रह रहे हो? ये दोनों बातें कुछ मेल नहीं खातीं।

लेकिन मेल खाती हैं। वह जो भीतर द्वन्द्व हमने पैदा करवाया है आदमी को,

वह मेल खाता है। तो गांधी ने सिखाया है कि मोटे कपड़े पहनो, खादी के कपड़े पहनो। खादी बारीक से बारीक होती चली गयी। आज खादी हिन्दुस्तान में सबसे महंगा कपड़ा है। उससे मंहगा कोई कपड़ा नहीं है। आज खादी सिर्फ वे ही पहन सकते हैं जो कपड़े के सम्बन्ध में मंहगी से मंहगी चीज का मजा लेना चाहते हैं, बाकी कोई नहीं पहन सकता है। खादी पहननी हो तो मंहगी से मंहगी चीज हो गयी।

और गांधी ने मोटी खादी बनायी थी, और यह पतली खादी कैसे होती चली गयी? मनुष्य का स्वभाव मोटा कपड़ा पहनने की इच्छा नहीं रखता। और मैं मानता हूं, क्यों पहने मोटा कपड़ा? अगर स्वभाव कहता है कि पतला और रेशमी कपड़ा सुखद है तो आदमी इस दुनिया में इसलिए पैदा हुआ है कि वह सुख ले। उसे दुख झेलने की जरूरत क्या है? और हम इस तरह की दुनिया बनाने की कोशिश करें जहां अधिकतम लोगों को रेशम मिल सके, यह तो समझ में, वैज्ञानिक समझ में आने वाली बात है। लेकिन आदमी का मन चाहता है रेशमी कपड़े, और चाहेगा। अगर आपकी चमड़ी खादी की तरह खुरदरी हो, कोई आपकी चमड़ी को हाथ फेरने को राजी नहीं होगा। रेशम जैसी हो तो सुखद होगी। और हमें एक ऐसी दुनिया बनानी चाहिए जहां हर बच्चे की चमड़ी रेशम जैसी सुखद हो। हर बच्चे को रेशम मिल सके, अच्छा मकान मिल सके, हर आदमी के मन की जो आकांक्षाएं हैं, उनकी अधिकतम तृप्ति को उपलब्ध हो सके।

गांधी ने जो फिलॉसफी सिखायी इस मुल्क को, वह थी, अतृप्ति के भीतर सुख लेने की। अब यह हम आदमी को शीर्षासन करना सिखा रहे हैं, व्यर्थ। इसका कोई प्रयोजन नहीं है। इसका खतरा होगा, और इसका खतरा भोगना पड़ेगा अनुयायियों को। महात्मा तो विदा हो जायेगा, अनुयायी फंस जायेंगे पीछे। और उनकी दिक्कत होगी। और सारे लोग कहेंगे कि देखो, महात्मा के सिद्धान्तों को गलत कर रहे हो। मैं आपको कहता हूं, महात्मा का कोई सिद्धान्त कोई गलत नहीं कर रहा है। महात्मा के सिद्धान्त ऐसे हैं कि ये बेचारे आदमी उस चक्कर में पड़कर अपने-आप गलत हुए चले जा रहे हैं। ये गलत होंगे ही।

इस देश ने कभी नैसर्गिक मनुष्य को स्वीकृति नहीं दी है। वह जो हमारा निसर्ग है, हमारा जो प्राकृतिक व्यक्तित्व है, वह जो हमारी आत्मा है, उसका जो सहज सुख है, यह हमने कभी स्वीकृति नहीं दी। हम उससे उल्टी बातों को आदर देते हैं। उल्टी बातें कुछ लोग पूरी कर लेते हैं, उनको हम आदर, और महात्मा और तपस्वी कहने लगते हैं। फिर प्रभावित होकर हम भी इकट्ठे हो जाते हैं और हम कठिनाई में पड़ जाते हैं। हमारा व्यक्तित्व स्प्लिट पर्सनलिटी है, टूट गया है। चाहते कुछ और हैं भीतर से, ऊपर से कुछ और चाहा जाता है। सिद्धान्त कुछ और है, जिन्दगी की मांग कुछ और है। तब दोनों के बीच उपद्रव शुरू हो जाता

है। और तब ऐसा होता है, एक कदम इस दिशा में जाते हैं, दो कदम पिछली दिशा में जाना पड़ता है।

मैंने सुना है, एक दिन एक बच्चा स्कूल में आया है और अपने शिक्षक को उसने कहा कि चूंकि उसे बड़ी देर हो गयी है, और शिक्षक ने उससे पूछा, इतनी देर कैसे लगा दी? उसने कहा, देखते नहीं, बाहर पानी पड़ रहा है! मैं एक कदम आगे चलता था और दो कदम पीछे खिसक जाता था, ऐसी कीचड़ मची हुई है। शिक्षक ने कहा, इतनी कीचड़ कि तू एक कदम आगे चलता था, दो कदम पीछे खिसक जाता था? तो फिर तू यह बता कि तू स्कूल तक पहुंचा कैसे? क्योंकि एक कदम आगे चलेगा, दो कदम पीछे चलेगा, तो तू स्कूल पहुंचा कैसे? उसने कहा जब मेरी समझ में आया तो मैंने घर की तरफ चलना शुरू कर दिया, तब मैं स्कूल पहुंच गया।

इस देश को घर की तरफ चलना शुरू करना पड़ेगा। नहीं तो एक कदम चलते हैं तपश्चर्या की तरफ और दो कदम पीछे खिसक जाते हैं। खींचतान कर आगे बढ़ते हैं, दुगुने पीछे खिसक जाते हैं, और दोष हमेशा यह देते हैं कि हमारी कोई गलती है। हमारी गलती नहीं है। हिन्दुस्तान के जो गांधीवादी हैं उनकी कोई गलती नहीं हैं। गलती है तो सिर्फ एक, वह समझ नहीं पा रहे हैं कि आदमी का स्वभाव क्या है और हमारी मांग क्या है? हमारी मांग गलत है। सारी दुनिया धीरे-धीरे नैसर्गिक मनुष्य को स्वीकार करने के करीब आ रही है। वे स्वस्थ होते चले जा रहे हैं। हम अस्वस्थ हुए चले जा रहे हैं। हम पांच हजार साल से अस्वस्थ हैं और हमारा 'अस्वास्थ्य' बढ़ता ही चला गया है और हमारे सब महात्मा हमारे अस्वास्थ्य को बढ़ाने वाले हैं, क्योंकि वे अति का आग्रह करते हैं और निसर्ग के प्रतिकूल जाने की आकांक्षा रखते हैं—उल्टे जाओ, सीधे मत जाओ। सीधा कोई काम उन्हें पसन्द नहीं है। ठीक कपड़े पहनो तो वे नाराज हैं, ठीक खाना खाओ तो वे नाराज हैं, ठीक मकान में रहो तो वे नाराज हैं।

मैंने सुना है, गांधी जेल में थे और वल्लभ भाई पटेल भी उनके साथ में थे। गांधीजी रोज सुबह दस छुहारे फुलाकर खाते थे। वल्लभ भाई ने सोचा कि बूढ़ा आदमी, हड्डियां निकलती जा रही हैं, कुछ थोड़ा ज्यादा नाश्ता हो तो ठीक रहेगा। फिर उन्होंने सोचा कि छुहारे दस की जगह बारह फूला दिये जायें, क्या हर्जा है? कौन पता लगायेगा, कौन हिसाब रखता है? तो उनको पता नहीं था। गांधीजी ने छुहारे पहले गिने दूसरे दिन, जब उन्होंने बारह फुला दिये तो गिने, बारह निकले। गांधीजी ने कहा, ये बारह क्यों फुलाये गये? मैं तो दस ही खाता हूं। वल्लभ भाई ने कहा, दस और बारह में क्या फर्क है? जैसे दस, वैसे बारह। गांधीजी आंख बन्द करके थोड़ी देर बैठे रहे। उन्होंने चार छुहारे उठाकर अलग रख दिये। और उन्होंने कहा कि जब दस और बारह में कोई फर्क नहीं तो आठ और दस में भी कोई फर्क नहीं। अब मैं आठ ही खा लूंगा। उस दिन से वे आठ ही छुहारे खाने लगे।

यहां समझने की जो बात है—वल्लभ भाई दस की जगह बारह रखना चाहते हैं, गांधीजी दस की जगह आठ कर लेते हैं। वल्लभ भाई फिर दलील कुछ भी नहीं दे पाते। क्योंकि जब दस और बारह में कोई फर्क नहीं है तो आठ और दस में भी कोई फर्क नहीं है। फिर छः और आठ में भी कोई फर्क नहीं हुआ। गांधीजी को थोड़ा और आगे जाना चाहिए। फिर चार और छः में भी कोई फर्क नहीं होगा, फिर दो और चार में कोई फर्क नहीं होगा। फिर शून्य में और दो में भी क्या फर्क है? अगर यह गणित ऐसा हो जाये तो शून्य पर ले जाने वाला है। अगर वल्लभ भाई पर गणित जाये तो वह अनन्त पर ले जाने वाला है।

और मैं मानता हूं, यह सिकोड़ने वाला गणित गलत है। सिकोड़ने वाला गणित खतरनाक है। फैलाव चाहिए, विस्तार चाहिए। और जितना फैलाव और विस्तार की दृष्टि होगी उतना आदमी स्वस्थ होगा, क्योंकि उसके अनुकूल होगा। जीवन का सारा लक्षण फैलाव का है। एक बीज आप बोते हैं, एक बड़ा वृक्ष बीज से निकलता है। बीज से बहुत बड़ा वृक्ष निकलता है। एक वृक्ष में करोड़ों बीज लगते हैं, इतना फैलाव हो गया है एक बीज का। फिर एक बीज बोइए, फिर एक वृक्ष, फिर करोड़ों बीज। जीवन फैलता चला जाता है। जीवन विस्तार है। और यहां हिन्दुस्तान का महात्मा सिखाता है, संकोच, सिकुड़ जाना, बन्द हो जाना; क्लोजिंग, ओपनिंग नहीं। जीवन के विरोध में है सिकुड़ना। जितना आप सिकुड़ेंगे, जीवन इन्कार करेगा। जीवन जगह-जगह तोड़कर बाहर निकलेगा और अगर सिकोड़ने का बहुत आग्रह किया, फिर जीवन गलत जगह से मौका पाकर तोड़कर निकल जायेगा। तब तकलीफ शुरू होगी। दरवाजे हैं और हमने इन्कार कर दिया है कि दरवाजों से निकलना पाप है, तो फिर आप क्या करोगे? निकलना तो पड़ेगा। तो फिर दीवारें तोड़कर निकलेंगे आप।

हिन्दुस्तान ने जहां-जहां नैसर्गिक दरवाजा हो सकता है मनुष्य के विकास का, सब जगह पुलिस वाले बिठाये हुए हैं। वहां से नहीं जा सकते। वहां से गये कि नर्क में पड़े। तो फिर आदमी जायेगा कहीं, फैलेगा! तब वह गलत जगह से चोरी के रास्ते दरवाजे खोलकर दीवारों से निकल जायेगा। जब दीवारों से निकले तो कहना, करप्शन बढ़ रहा है। जब दीवारों से निकले तो कहना कि भौतिकवाद बढ़ रहा है। दीवारों से निकले तो कहना कि आदमी का पतन हो रहा है। संस्कृत का जो शब्द है, ब्रह्म—परमात्मा के लिए—ब्रह्म का अर्थ है—विस्तार। वह जो सदा एक्सपैंडिंग है, वह जो सदा फैलता रहता है।

अगर आप आइन्स्टीन से परिचित हैं तो शायद आपको पता होगा कि आइन्स्टीन ने कहा कि सारी दुनिया भी फैल रही है। तारे एक दूसरे से प्रतिपल, करोड़ों

मील के विस्तार से भागे चले जा रहे हैं। एक्सपैंडिंग यूनिवर्स है, सब चीजें फैल रही हैं। इस फैलते हुए जगत् में जहां सब फैलने को आतुर है, आप भी फैलने को आतुर हैं। हर आदमी फैलने को आतुर है। जहां फैलने की आतुरता निसर्ग का नियम है वहां सिकुड़ना हमारा सिद्धान्त है कि सिकोड़ो। आठ और दस में क्या फर्क है, छः और आठ में क्या फर्क है, शून्य और दो में क्या फर्क है—सिकोड़ते चले जाओ। और जब शून्य पर आदमी को खड़ा कर दोगे तो उस आदमी को भी भूख लगती है। तब फिर वह क्या करेगा ? तब वह चोरी से खाना खायेगा। हम जीवन की सहज चीजों को भी आदमी को मजबूर करते हैं कि वह चोर हो जाये, बेईमान हो गये।

जीवन की सरलतम उपलब्धियों के लिए हम इतनी बाधाएं खड़ी कर देते हैं कि सिवाय व्यभिचारी और भ्रष्टाचारी हो जाने के लिए कोई उपाय न रहे। लेकिन हमें यह दिखायी नहीं पड़ता है। और जब हमें यह सब दिखायी पड़ता है, भ्रष्टाचार, तो हम और जोर से रोकने की कोशिश करते हैं।

मैं दिल्ली गया, एक बड़े साधु एक बड़ा सम्मेलन करते थे। और सम्मेलन हो रहा था, अश्लील पोस्टर जो लगाये जाते हैं दीवारों पर उनके खिलाफ, कि अश्लील पोस्टर नहीं लगाये जाने चाहिए। भूल से मुझे भी बुला लिया। कुछ लोग भूल से मुझे भी बुला लेते हैं। उन्होंने भूल से मुझे बुला लिया और कहा कि आप भी समझाइए लोगों को कि अश्लील पोस्टर न लगाये जायें। मैंने उनसे कहा, तुम साधु हो सब, तुम्हें अश्लील पोस्टर देखने की जरूरत क्या है ? पहली बात। आप काहे के लिए अश्लील पोस्टर देखने जाते हो ? और जिनको देखना है, उन पर रोक लगाने को किसी को क्या हक है ? सवाल यह नहीं है कि अश्लील पोस्टर लगे हैं, सवाल यह है कि आदमी अश्लील पोस्टर क्यों देखना चाहता है ?

और मैंने उनसे कहा, महात्माओं, तुम्हीं कारण हो। अश्लील पोस्टर के दिखाने वाले तुम्हीं हो। उन्होंने कहा, क्या मतलब ? हम तो सदा विरोध में हैं। हम कैसे कारण हो सकते हैं ? लेकिन वह 'लॉ ऑफ रिवर्स इफेक्ट' उनको पता नहीं है। वह कहते हैं, हम तो विरोध में हैं। हम तो कहते हैं, आंख बन्द रखो, स्त्री को देखो ही मत हम कहां अश्लील पोस्टर का पक्ष कर रहे हैं। लेकिन जो कौम सिखायेगी, आंख बन्द रखो, स्त्री को देखो मत, फिर आंख तिरछी करके स्त्री को देखना पड़ेगा। फिर अश्लील पोस्टर देखना पड़ेगा। फिर गन्दी किताब गीता के बीच रखकर पढ़नी पड़ेगी। कवर गीता का रखना पड़ेगा, गन्दी किताब पढ़नी पड़ेगी। वह अनिवार्य हो जायेगा। क्योंकि हम जो व्यवस्था दे रहे हैं, वह खतरनाक है।

अभी आपने अखबारों में पढ़ा होगा, सिडनी में एक अमरीकन नग्न अभिनेत्री को प्रदर्शन के लिए बुलाया गया। उस बड़े हॉल में जिसमें दो हजार लोग बैठ सकते थे, और उस बड़े नगर में जहां बीस लाख की आबादी हो, केवल दो आदमी

उस नंगी औरत का नाच देखने आये। उस नंगी औरत को दो आदमी देखकर सर्दी लग गयी। एक तो ठण्डी रात थी और नंगा उसको नृत्य करना पड़ा। और दो आदमियों को देखकर नृत्य करने का मजा भी तो चला गया, और लोग होते तो गर्मी होती, प्रशंसा होती, थोड़ा गर्म होता, सब गड़बड़ हो गया। उसे सर्दी पकड़ गयी और आयोजक मुश्किल में पड़ गये—कोई देखने नहीं आया।

हिन्दुस्तान में नंगी औरत का प्रदर्शन करवाइए—बम्बई में करवाइए—तो दो आदमी आयेंगे देखने ? दो आदमी पीछे रह जायें तो मुश्किल है। और यह मत सोचना आप कि बुरे आदमी देखने आ जायेंगे। हो सकता है बुरे आदमी न भी आयें, लेकिन अच्छे आदमी सब आ जायेंगे। हां, एक फर्क होगा, अच्छे आदमी सीधे रास्ते नहीं आयेंगे, सामने के दरवाजे से नहीं आयेंगे। पीछे मैनेजर से व्यवस्था करेंगे कि अलग रास्ता हमारे लिए दो। हम चुपचाप आकर देख लें, कोई हमें न देख पाये। लेकिन सब आ जायेंगे। क्यों ? इतना प्रताड़ित किया हुआ है, इतना सप्रेसिव, इतना दमनकारी हमारा विचार है कि वह चित्त को उल्टी तरफ ले जाता है। जितना दमन होगा, उतना आदमी कामुक होगा। दमन कौन करवा रहा है ? सारे महात्मा मिलकर दमन करवा रहे हैं।

गांधीजी ने फिर दमन की फिलॉसफी हमें दे दी, एक 'सप्रेसिव मारॉलिटी' का फिर ख्याल दे दिया, हर चीज का दमन करने का भाव दे दिया। इतना दमन उन्होंने करवाया अनुयायियों से पिछले तीस-चालीस सालों में, उसका बदला ले रहे हैं उनके सब अनुयायी। उसका बदला ले रहे हैं कि ठीक है, बहुत दमन कर लिया, अब आखिरी जिन्दगी में थोड़ा तो आराम करने दो। तो जो-जो दमन करवाया गया था वही-वही उससे फूटकर निकल रहा है। वही फूटकर निकल रहा है जो दबाया गया है।

मेरा मानना है कि गांधीवादी कहां हैं, इसको इस तरह मत पूछें। गांधीवादी जहां हैं वह इस बात का सबूत है कि गांधीजी की जो विचार दृष्टि थी, वह यहीं ले जा सकती थी। वह और कहीं नहीं ले जा सकती थी। वह यहीं पहुंचा सकती थी। जीवन के सत्य को समझने को हमारा साहस ही हमने खो दिया है। जीवन का सत्य बहुत और है। अति नहीं है जीवन का सत्य। जीवन का सत्य अत्यन्त मध्य का सूत्र है। और जीवन के सत्य सिकोड़ने वाले नहीं हैं, जीवन के सत्य विस्तार करने वाले हैं।

रवीन्द्रनाथ की फोटो आपने देखी है ? गांधीजी की फोटो आपने देखी है ? गांधीजी एक कपड़े को लपेटकर ऐसा पहने हुए हैं कि अगर उससे कम में काम चल जाये तो वह उसमें से और चिन्दी फाड़कर अलग कर दें। उससे कम में और नहीं चल सकता काम, इसलिए लपेटे हुए हैं। रवीन्द्रनाथ की फोटो आपने देखी है ? वह इतना बड़ा कोट पहने हुए हैं कि उसमें दो-चार गांधी जैसे आदमी और

अन्दर समा जायें। और वह कोट जमीन छू रहा है। रवीन्द्रनाथ ने कहा है, एफ्लुएन्स चाहिए, समृद्धि चाहिए। हर चीज ज्यादा चाहिए ताकि भीतर कहीं भी मन को सिकोड़ने का कोई कारण न रह जाये। हर चीज ज्यादा चाहिए। मन को कहीं भी सिकुड़ना न पड़े, इतना फैलाव चाहिए। इतना फैलाव चाहिए कि कहीं कोई··· मनोवैज्ञानिक भी यही कहते हैं कि अगर आप बाजार साबुन खरीदने जाते हैं तो बजाय इसके कि हर महीने एक साबुन खरीदें, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, बाजार जायें एक दिन और बारह साबुन इकट्ठे खरीद लायें। आप ज्यादा फैले हुए अनुभव करेंगे। बारह साबुन आपने खरीदे हैं। कोई संकोच नहीं है, कोई सिकोड़ नहीं है। आप घर जाते हैं, आप ज्यादा फुलाफिल्ड हैं। लगेगा कि ज्यादा पूरे आ गये हैं। जिन्दगी फैलाव मांगती है।

गरीबी का दुख क्या है? गरीबी का दुख भूख नहीं है। गरीबी का दुख असल में यह है कि हर जगह सीमा आ जाती है, कहीं भी फैल नहीं सकते। अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं और दो पैसे की चीज भेंट करना चाहता हूं तो नहीं कर सकता। भूख तो सही जा सकती है, लेकिन किसी को दो पैसे की चीज भी देने की हिम्मत मैं नहीं जुटा पाता हूं, तो बस सिकुड़ गयी आत्मा। मैं मुश्किल में पड़ गया। गरीबी का सबसे बड़ा दुख यह है कि सब तरफ सीमाएं हैं। कहीं से भी बढ़ो, सीमा आ जाती है। धन का सबसे बड़ा सुख क्या है? धन का सबसे बड़ा सुख यह नहीं है कि आपकी तिजोरी में धन भर गया तो आप बहुत आनन्दित हैं। धन का सबसे बड़ा सुख यह है कि आप पर-सीमाएं जरा दूर हो गयीं, आप कुछ कर सकते हो, हाथ पैर फैला सकते हो। एक छोटे मकान में एक आदमी रहता है। वह आदमी छोटे मकान में रहेगा तो उसका मस्तिष्क धीरे-धीरे छोटा होता चला जायेगा। एक फैलाव चाहिए, एक बड़ा भवन चाहिए, एक बड़ा कमरा चाहिए जहां आदमी फैल सके, घूम सके, चल सके, हिल-डुल सके।

लेकिन हिन्दुस्तान ने जो अब तक का दर्शन, फिलॉसफी विकसित किया है वह ऐसा सिकोड़ने वाला है, ऐसा सिकोड़ने वाला है कि सब तरफ जंजीरें हैं और सब तरफ जंजीरों को हमने कस कर पकड़ लिया है। और जितना जो आदमी इन जंजीरों को पकड़ता है, हम कहते हैं, उतना महान है। क्यों कहते हैं महान? महान सिर्फ इसलिए कहते हैं कि वह प्रकृति के प्रतिकूल चलता है, उल्टा चलता है। और क्या महानता है? कोई प्रकृति के प्रतिकूल चलना महानता है? प्रकृति के प्रतिकूल चलना पागलपन है, और उस पागलपन में आदमी सिर्फ टूट सकता है, मिट सकता है, नष्ट हो सकता है। फिर यह हो सकता है, एकाध आदमी सर्कस का खेल साध ले, लेकिन जब पूरा समाज इस तरह का कार्य करने लगे तो बहुत मुश्किल खड़ी हो जाती है।

मेरी दृष्टि में गांधी पर पुनर्विचार की जरूरत है—गांधीवादियों की हालत

देखकर जैनियों की हालत देखकर महावीर पर पुनर्विचार की जरूरत है। ईसाइयों की हालत देखकर जीसस पर पुनर्विचार की जरूरत है। और अगर हम पूरी दुनिया की आज तक की हालत देखें तो हमें पूरे ओल्ड माइंड, वह जो पुराना मस्तिष्क था, उस पर पुनर्विचार की जरूरत है। उसमें कहीं भूल थी, उसमें बुनियादी भूल थी। वह अहिंसा की बात करता था और हिंसा पैदा होती थी। वह प्रेम की बात करता था और घृणा खड़ी होती थी। वह अपरिग्रह की बात करता था, परिग्रह बढ़ता था। वह निर्धनता की बात करता था और धन इकट्ठा होता था। वह पुराना पूरा मस्तिष्क उल्टे परिणाम ला रहा था। जो वह कहता था उससे उल्टा होता था। वह कहता, स्त्रियों से दूर, स्त्री-पुरुष अलग-अलग—और स्त्री-पुरुष का दिमाग सेक्स से भरता चला जाता है।

मेरे एक मित्र डॉक्टर हैं दिल्ली के। वह कुछ दिन पहले लन्दन में एक कान्फ्रेंस में भाग लेने गये। एक मेडिकल कॉन्फ्रेंस थी, योरोप के डॉक्टरों की। एशिया से भी कुछ डॉक्टर गये। वह भी गये। मैं उनसे कुछ बात कर रहा था, उन्होंने एक घटना बतायी। मुझे वह कहने लगे कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। हाइड पार्क में पांच सौ डॉक्टरों के लिए मिलने-जुलने, खाने-पीने, गपशप करने की बैठक थी। वे सारे लोग इकट्ठे हुए। वह गपशप कर रहे हैं। यह मित्र डॉक्टर सरदार हैं, यह भी वहां गये हुए हैं। लेकिन इनका मन उस बातचीत में नहीं लगता है। पास की एक बेंच पर एक झाड़ के नीचे एक युवक और एक युवती दोनों एक दूसरे के गले में हाथ डालकर आंख बन्द किये कहीं खो गये हैं। इनके प्राण तो घूम-फिर कर वहीं चले जाते हैं। भारतीय दिमाग और कहीं जा नहीं सकता। उनको परेशानी यह होती है कि कोई पुलिस वाला आकर इनको उठाता क्यों नहीं है कि पब्लिक पार्क है, ऐसी खुली जगह में यह क्या हो रहा है! यह कोई प्रेम करने की जगह है? प्रेम तो दरवाजा बन्द करके करना चाहिए। यह कोई प्रेम करने की जगह है? यह तो, इतने लोग जहां इकट्ठे हैं, कोई रोकता क्यों नहीं?

उनका ध्यान बार-बार वहीं जा रहा है। सारा रस उनका खो गया है। पास में एक डॉक्टर है उनके, जर्मनी का, उसने उनके कन्धे पर हाथ रखा और कहा कि आप बार-बार उधर मत देखिये। हो सकता है पुलिस वाला आकर उठाकर आपको ले जाये। क्योंकि यह बहुत अशिष्ट और संस्कारहीन बात है। उन्होंने कहा, मुझे? वह तो उनको ले जाना चाहिए। उनका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। और इस मेरे मित्र डाक्टर ने कहा कि इतनी खुली जगह में ये लोग क्या कर रहे हैं? तो उन्होंने कहा, वे जानते हैं कि आसपास शिक्षित लोग इकट्ठे होने वाले हैं, उनसे क्या प्रयोजन है किसी का? वे अपने काम में होंगे, हम अपने काम में हो सकते हैं। आप क्यों परेशान हैं?

लेकिन हमारा जो चित्त है वह दमन से भरा हुआ है। और जो-जो हमने

दबाया, वही-वही हमें चारों तरफ दिखायी पड़ना शुरू हो जाता है। तो गांधीजी ने फिर दमन हमें सिखाया—सब बातों में दमन। हिंसा को दबाओ, हिंसा बुरी है। घृणा को दबाओ घृणा बुरी है। परिग्रह को दबाओ, परिग्रह बुरा है। धन को दबाओ, धन बुरा है। सुख को दबाओ सुख बुरा है। सब बुरा है, इसे दबाओ। और दबाने का एक ही मतलब हो सकता है—जो हुआ है—कि जो-जो दबाया था, वह सब फूटकर बाहर आ गया है। जैसे मवाद फोड़े में भरी हो ऊपर, पट्टी लगाकर दबा दो। वह फूटकर निकलेगी, पूरे शरीर से निकलेगी। जो दबाया था गांधीवादियों ने, उसका परिणाम पूरा मुल्क भोग रहा है। दबाया था उन्होंने, लेकिन वे सत्ता में पहुंच गये और उनकी मवाद पूरे मुल्क में फैल रही है।

क्या इसका यह मतलब है कि मैं यह कहता हूं कि हिंसा को दबाओ मत, हिंसा करो? क्या मैं यह कहता हूं कि वासना में डूब जाओ? क्या मैं इंडल्जेंस को कहता हूं? क्या मैं यह कहता हूं, क्रोध करो, हिंसा करो, घृणा करो? नहीं, मैं यह नहीं कहता हूं। मैं यह कहता हूं, दबाओ मत, जान लो, पहचान लो, समझो। और मैं यह कहता हूं कि अगर समझी गयी हिंसा, तो एक और तरह की अहिंसा व्यक्तित्व में आनी शुरू होती है—एक और ही तरह की। अगर मैं अपनी हिंसा को समझूं, पहचानूं, खोजूं और देखूं कि मेरी हिंसा मुझे ही दुख लाती है और मेरे ज्ञान और मेरी समझ के बढ़ने से मेरी हिंसा धीरे-धीरे कम हो, तो मैं दबाता नहीं। और तब धीरे-धीरे अहिंसा बढ़नी शुरू होती है। मैं अहिंसा को बढ़ाता नहीं, मैं हिंसा को दबाता नहीं, समझ को बढ़ाता हूं। समझ बढ़ती है, हिंसा कम होती है, अहिंसा बढ़ती है। लेकिन ऐसा आदमी खतरनाक नहीं होगा फिर। क्योंकि उसने दबायी नहीं है हिंसा, जो मौका पड़ने पर फूट निकले।

मैं कहता हूं सेक्स को समझो, दबाओ मत; समझो, पहचानो, खोजो, जिओ। और उस समझ से जितना सेक्स विलीन हो जाये, शुभ है। फिर वह सेक्स वापस नहीं लौटगा। और अगर दबाया तो वह प्रतीक्षा करेगा। आज नहीं कल, मौका पाते वापस लौट आयेगा। धन को जिओ, समझो। और जो आदमी धन को जियेगा, समझेगा, वह धन को न तो पकड़ेगा, न छोड़ेगा। धन सिर्फ एक माध्यम हो जायेगा। और वह आदमी धन के एक अर्थों में बाहर हो जायेगा। वह धन को जियेगा। न पकड़ेगा, न छोड़ेगा; न धन के पीछे पागल होगा, न धन छोड़ने के पीछे पागल होगा। न तो वह महल न मिले तो सोने से इन्कार करेगा, और न ही वह यह कहेगा कि महल मिल जाये तो मैं इसमें तो सो ही नहीं सकता। उस जीवन में एक समझ, जीने की एक कला विकसित होगी।

दमन जीवन की कला को विकसित नहीं होने देता है।

और गांधीवादियों के साथ जो कठिनाई हो गयी है वह यह कि उनके पास जीवन की कोई कला नहीं है। और तब वे खुद भी मुसीबत में पड़े हैं और चूंकि

उनके हाथ में सत्ता है इसलिए वे दूसरों को भी मुसीबत में डालते हैं। वे जो भी कह रहे हैं, उनके जीवन में खुद भी गलत हो गया है, वही वह पूरे मुल्क को समझा रहे हैं। छोटे-छोटे बच्चों को भी वे वही समझा रहे हैं, जो उनकी जिन्दगी में गलत हो गया है। वही समझाये चले जा रहे हैं। अब गांधी-शताब्दी चलती है तो वर्ष भर वही प्रचार कर रहे हैं जो उनकी जिन्दगी में ही असफल हो गया है। उसी का वे प्रचार किये चले जा रहे हैं। वह पूरे मुल्क को असफल करना चाहते हैं।

इस पर चिन्तन होना चाहिए। मैं समझता हूं, महात्मा गांधी से ही नहीं, भारत को महात्मा मात्र से मुक्त होने की जरूरत है। महात्मा गांधी का सवाल नहीं है, भारत को दमन की दृष्टि से मुक्त होने की जरूरत है। यह सवाल ज्यादा गहरा, ज्यादा मनोवैज्ञानिक है। यह सवाल ज्यादा आध्यात्मिक है। किसी एक वाद से नहीं, वाद मात्र से भारत को मुक्त हो जाने की जरूरत है। और अगर हम यह नहीं कर सके, तो हमने एक जो दुर्भाग्य पैदा कर लिया है, एक अंधकार, और एक ऐसी मुसीबत, जो कहीं हल होती दिखायी नहीं पड़ती और जितना हम हल करने का उपाय करते हैं, मुसीबत और बढ़ती चली जाती है। क्योंकि हमारा उपाय वही होता है जिससे मुसीबत पैदा हुई है। वही हम उपाय करते हैं। जिससे मुसीबत का जो मूल कारण है, उसी उपाय को हम और करते चले जाते हैं। जिस दवा से मरीज बीमार पड़ गया है, हम वही दवा और पिलाये चले जाते हैं कि इसे ठीक करना है। वह मरीज और बीमार पड़ता चला जाता है। हमने पूरे देश की हत्या कर दी है। और आगे अगर हम नहीं सचेत होते हैं तो खतरे भारी हो सकते हैं। भारत की पूरी प्रतिभा को जंग लगा दी है और जंग लगने के कारण सूत्र-रूप में अन्ततः मैं कह दूं—

भारत की प्रतिभा को जंग लगने का सबसे बड़ा कारण—हम प्रकृति-विरोधी हैं। हमें प्रकृति-प्रेमी होना पड़ेगा। जो निसर्ग है, जो नेचुरल है, जो स्वाभाविक है, उसे पूर्ण मन से स्वीकार करना पड़ेगा। उसी के सहारे, उसी के माध्यम से, उसी को विकसित करके हम ऊपर उठेंगे। जैसे, शरीर को स्वीकार करना पड़ेगा, विरोध नहीं। और शरीर को ही हम सीढ़ी बनाकर आत्मा तक पहुंच सकते हैं। लेकिन अब तक हम शरीर के विरोध में ही पहुंचने की कोशिश करते रहे हैं। और उल्टा हुआ है। जो हमने चाहा है वह बिल्कुल नहीं हुआ है। आज भारत से ज्यादा मैटीरियलिस्ट मुल्क खोजना मुश्किल है। और हम अध्यात्म की बातें करते हैं। और भौतिकवादी हम हद दर्जे के हैं।

एक साध्वी मुझसे मिलने आयी। इधर बम्बई के ही एक मकान पर बैठकर हम बात करते थे। हवा आयी समुद्र की, अब हवा को क्या पता? उसने मेरी चादर उड़ायी और साध्वी को मेरी चादर छू गयी। वह साध्वी आत्मा परमात्मा की

बातें कर रही थी, एकदम घबरा गयी। मैंने पूछा, क्या हुआ ? बात जारी रखो। उसने कहा, नहीं, आपकी, पुरुष की चादर छू गयी। पुरुष की चादर ? मैंने उससे कहा, चादर भी पुरुष और स्त्री हो सकती है ? यह मैंने सोचा भी नहीं अब तक कि चादरों में भी सेक्स होता है। स्त्री और पुरुष की चादरों में भेद होता है। यह तेरे को किसने बताया है ? उस साध्वी ने कहा, नहीं, जो पुरुष ओढ़ता है वह पुरुष की हो गयी, जो स्त्री ओढ़ती है वह स्त्री की हो गयी। और पुरुष का हमें कुछ भी नहीं छूना है। अब मुझे प्रायश्चित करना पड़ेगा।

मैंने उससे कहा, अभी तू आत्मा की बातें कर रही थी और कह रही थी कि हम शरीर नहीं हैं। और मुझे पता चलता है कि तू शरीर तो दूर, चादर भी है। वह आत्मा की बातें कहां गयीं ? पुरुष की चादर ने आत्मा को भ्रष्ट कर दिया !

बातें आत्मा की कर रहे हैं, एकदम शारीरिक हैं, हद्द शारीरिक हैं। और बातें ब्रह्म की कर रहे हैं और ब्रह्मवादी शूद्रों को पैदा किये चले जा रहे हैं। और शूद्र छू ले अगर किसी महात्मा को तो महात्मा अपवित्र हो जाते हैं। यह जो हमारी अजीब दृष्टि है, हैरानी की है। एक तरफ कहते हैं धन बिल्कुल बेकार है, लेकिन हमसे ज्यादा धन को पकड़ने वाला कोई भी नहीं है। इतने जोर से पकड़ते हैं कि वह धन मुट्ठी में रह जाता है। हम उस मुट्ठी को बांधे-बांधे मर जाते हैं। न उस धन को भोगते, न उस धन को जीते, न उस धन का उपयोग करते, बस जोर से पकड़ लेते हैं। और चिल्लाये चले जाते हैं कि धन बेकार है, धन बेकार है। जो चिल्लाते हैं, धन बेकार है, उनकी भी अगर वेल्यूएशन को, उनके भी अगर मूल्यांकन को खोजने जाएं तो हैरान हो जायेंगे।

मैं जयपुर गया था। एक मित्र आये और कहा कि एक बहुत बड़े महात्मा ठहरे हुए हैं। आप चलेंगे ? मैंने कहा, वह बड़े महात्मा हैं, यह तुम्हें कैसे पता चला ? उन्होंने कहा, खुद जयपुर-महाराज उनके पैर छूते हैं। तो मैंने कहा, जयपुर-महाराज बड़े होते हैं इससे, महात्मा तो बड़े नहीं होते। अगर जयपुर-महाराज न छुएं पैर तो ? तो महात्मा छोटे हो जायेंगे ? जयपुर-महाराज बड़े हैं क्योंकि धन उनके पास है, तो जिस महात्मा के पैर छूते हैं वह महात्मा भी बड़ा है। इसके भीतर गहरे में क्राइटेरियन क्या है ? धन। इसमें महात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है। धन यहां क्राइटेरियन है। मापदण्ड धन है।

महावीर के भक्त अपनी किताबों में लिखते हैं कि इतने हाथी, इतने घोड़े, इतने माणिक छोड़े, इतने रथ, इतने महल, इतनी जमीन-जायदाद छोड़ी। सबका पूरा ब्यौरा देते हैं। उसको पूछिये कि यह ब्यौरा किसलिए दे रहे हो ? क्योंकि इसी ब्यौरे से पता चलेगा कि महावीर कितने बड़े तपस्वी हैं। यही ब्यौरा बतायेगा कि महावीर कितने बड़े आदमी हैं। अगर महावीर किसी गरीब के घर में पैदा होते तो तीर्थंकर कभी नहीं होते। क्योंकि घोड़ा-हाथी कहां से छोड़ते ? जब था

ही नहीं छोड़ने को तो छोड़ कैसे आते !

यही तो वजह है—यही तो वजह है कि हिन्दुस्तान में एक गरीब का बेटा न तीर्थंकर बना, न अवतार बना। अब तक नहीं बना। बन भी नहीं सकता। क्योंकि हम धन को नापने और पकड़ने वाले लोग हैं। जैनियों के चौबीस तीर्थंकर ही राजाओं के लड़के हैं। बुद्ध राजा के लड़के हैं, राम, कृष्ण, सब—सब राजा के लड़के हैं। हिन्दुस्तान में गरीब आदमी को भगवान होने को अभी तक कोई हैसियत नहीं मिल सकी। कुछ कारण होना चाहिए पीछे। सारी पकड़ धन पर है—चाहे हम छोड़ें, चाहे हम पकड़ें, तौलेंगे हम धन से। माध्यम धन होगा। उससे ही नाप चलेगी और बातें हम धन के विरोध की करते रहेंगे। हमारा सारा का सारा दृष्टिकोण···जो हम कहते हैं, उससे उल्टा जीते हैं।

और क्यों ऐसा होता है ? आपको मैं दोष दूं ? नहीं, आपको मैं दोष नहीं देता। किसी को दोष नहीं देता। दोष देता हूं चिन्तना को, विचार की शक्ति को। हम यह नहीं समझ पाते, हम जीवन के विपरीत जाकर नहीं जी सकते। अगर कोई आदमी अपने जूते के फीते पकड़कर उठाने की कोशिश करे खुद को, और गिर पड़े तो उस आदमी को दोष देंगे आप कि यह आदमी नालायक है, गिर जाता है, उठते नहीं बनता है इससे ? नहीं, दोष देना पड़ेगी सिर्फ उसकी बुद्धि को कि वह पागल है, यह नहीं समझ पा रहा है कि अपने ही पैर के जूते के फीते उठाकर कोई अपने को ऊपर नहीं उठा सकता। जैसे कोई आदमी अपने ही ओंठ से अपने ही ओंठ को चुम्बन करने की कोशिश करे, और चुम्बन तो ले नहीं सकता अपने ही ओंठ का—चुम्बन तो दूसरे के ही ओंठ का लिया जा सकता है, अपने ओंठ का कैसे लेंगे—तो पागल हो जाये। जैसे कभी किसी कुत्ते को देखा हो कि अपनी पूंछ को पकड़ने की कोशिश में छलांग लगाता है। जितना उचकता है, पूंछ उतनी सरक जाती है। उस कुत्ते को पता नहीं है कि पूंछ अपनी ही है। पकड़ोगे कैसे ? जब तुम उचकोगे, पूंछ भी उचक जायेगी।

करीब-करीब भारत ऐसे ही असम्भव, एब्सर्ड, नासमझी से भरे हुए काम करने में लगा हुआ है। जिन्दगी से उल्टा जाने की कोशिश कर रहा है। और जिन्दगी हम खुद हैं, हम अपने से उल्टे जा कैसे सकते हैं ! कोई आदमी अपने से उल्टा कैसे जा सकता है ? जाने की कोशिश में टूट जायेगा, नष्ट हो जायेगा, परेशान हो जायेगा, चिन्ता से भर जायेगा। अशान्त हो जायेगा, मुश्किल में पड़ जायेगा। नहीं, जिन्दगी को स्वीकार करना पड़ेगा एक लाइफ-अफर्मेशन चाहिए, जिन्दगी का स्वीकार चाहिए। हमारा दृष्टिकोण लाइफ निगेटिव है।

हम जीवन के विरोध में रहने वाले लोग हैं। निषेध करने वाले लोग हैं। जीवन निन्दित है, कन्डेम्ड है, जीवन बुरा है, जीवन असार है। मैं आपसे कहना चाहता हूं, जीवन धन्यता है, ब्लिसफुल है। जीवन स्वयं परमात्मा है। कहीं और

कोई परमात्मा नहीं है जीवन के अतिरिक्त। और कहीं कोई मोक्ष नहीं है जीवन के अतिरिक्त—जीवन ही। जीवन को ही हम कैसे जियें और जीवन की धारा में कैसे बहें ? अगर एक नदी पूर पर आयी हो तो नासमझ आदमी तैरने की कोशिश करेगा और तैरने में बह जायेगा। और समझदार आदमी धारा के साथ बहेगा और धीरे-धीरे किनारे पर पहुंच जायेगा।

जरा फर्क समझ लेना।

समझदार आदमी भी पार हो जायेगा, लेकिन पहले वह धारा के साथ बहेगा, क्योंकि धारा इतनी तेज है कि उसके विपरीत अपने को तोड़ा जा सकता है। उसके साथ बहो, और साथ बहते हुए किनारे होते चले जाओ। धारा की ताकत का उपयोग करो, लड़ो मत। धारा की ताकत का उपयोग करो कि धारा ही तुम्हें किनारे पहुंचा दे। लेकिन हम धारा से लड़ने खड़े हो गये हैं।

जापान में जूडो, एक कुश्ती लड़ने की कला होती है। जूडो की कला का नियम अद्भुत है और सारी दुनिया के समझदार लोगों को समझ लेना चाहिए। जूडो का नियम यह है कि अगर कोई तुम्हें घूंसा मारे तो तुम कड़े मत हो जाओ, तुम बिल्कुल ढीले हो जाओ, घूंसे को पी जाओ, तुम घूंसे को झेल लो, 'रिसीव इट'; उसे पूरी तरह से ले लो, विरोध मत करो; तो घूंसे मारने वाले का हाथ टूट जायेगा। और अगर तुम कड़े हो गये तो तुम्हारी हड्डी टूट जायेगी।

आपने देखा है, अगर आप एक बैलगाड़ी में बैठे हों और पास में एक शराबी बैठा हो नशे में और बैलगाड़ी उलट जाये तो आपको चोट लगेगी। शराबी को कम लगेगी, या न भी लगेगी, क्योंकि वह होश में ही नहीं है, वह कड़ा नहीं होगा, वह ढीला रहा आया है। वह गाड़ी उलट गयी तो गाड़ी के उलटने के साथ वह एक हो जायेगा। और आप, पता चला कि गाड़ी उलट गयी, कि कड़े हो जायेंगे। आपकी हड्डी टूट जायेगी।

छोटा बच्चा भी गिरता है। हजार दफे गिरता है दिन में, लेकिन हड्डी नहीं टूटती। आप एक दफा गिर जाओ तो टूट जायेगी। बात क्या है ? बच्चा गिरने के विरोध में खड़ा नहीं होता, गिरने के साथ ही हो जाता है। वह गिरने में एक ही हो जाता है। रेजिस्ट नहीं करता, विरोध नहीं करता, गिरने के साथ एक हो जाता है।

जिन्दगी की बड़ी धारा के साथ होने की जरूरत है।

हमारे महात्मा सिखाते हैं, उल्टे चलो, बहो, तैरो, लड़ो धारा से। जीतने की कोशिश करो—संयम, नियम, दमन, ये सब विपरीत जाने की चेष्टाएं हैं। मैं आपसे कहता हूं जिन्दगी को जियो। अगर जिन्दगी कहती है, स्वाद लो, तो स्वाद लो। इतने अर्थ से, इतनी बुद्धिमत्ता से स्वाद लो कि स्वाद लेते-लेते स्वाद से मुक्त हो सको। अगर मन कहता है कि बहुत महीन और रेशमी कपड़ा पहनूं। तो

पहनो। लेकिन पहनो इतने समझ से कि उसे पहनकर तुम जल्दी से जान लो कि इसमें बहुत कुछ नहीं है—और मुक्त हो सको। लेकिन वह मुक्ति बहुत दूसरी होगी। उस मुक्ति में तुम्हारे भीतर कुछ दमन नहीं होगा। दमन नहीं होगा तो कल उसके फूटने की कोई सम्भावना नहीं होगी। और जो दबाया जायेगा, वह फूटता है।

एक छोटे-से रेस्ट हाउस में ठहरा हुआ था। और उस राज्य के एक मंत्री भी उस रेस्ट हाउस में ठहरे हुए थे। रात मैं भी लौटा, वे भी लौटे। मैं तो अपने बिस्तर पर सो गया। वे दूसरे कमरे में करवट बदलते रहे, फिर वे उठकर आये, उन्होंने कहा, मुझे नींद नहीं आती है। क्योंकि बाहर कुत्ते इकट्ठे हैं और बहुत शोर-गुल करते हैं। मैंने कहा, कुत्ते अखबार भी नहीं पढ़ते, रेडियो भी नहीं सुनते, उनको पता भी नहीं होगा कि आप आये हुए हैं। उन्हें आपसे क्या मतलब ? आप सो जाइये। उन्होंने कहा, मैं कैसे सो जाऊं ? जब शोर-गुल करते हैं तो मुझे नींद नहीं आती। मैंने कहा, उनके शोर-गुल से आपके नींद के न आने का मेरी समझ से कोई सम्बन्ध नहीं मालूम होता है। वे दो-चार दफा उनको भगाये। अब जितना भगाकर आये, वे कुत्ते और वापस लौट आये। दो-चार और साथ ले आये। तो सारा रेस्ट हाउस कुत्तों के भोंकने से भर गया।

आखिर वे मिनिस्टर परेशान हो गये। उन्होंने कहा, क्या करूं ? आप बताइए। मैंने कहा, आप एक काम करिये, आप कुत्तों के भोंकने को स्वीकार कर लीजिए, विरोध मत कीजिए। आप लेट जाइये और कहिए कि कुत्ते भोंकते हैं, मैं सोता हूं, तो दोनों बातों में विरोध कहां है ? झगड़ा कहां है, आप चाहते हैं कि कुत्ते न भोंके, झंझट शुरू हो जाती है। झगड़ा कुत्ते भोंकने से नहीं है, आपके इस विचार से कि कुत्ते न भोंकें, बस वह विचार आपको दिक्कत दे रहा है। कुत्ते क्या दिक्कत देंगे ? आप इस विचार को छोड़ दें। कुत्ते भोंकते हैं, उनकी आवाज गूंजने दें। आवाज गूंजेगी, चली जायेगी। आप चुपचाप पड़े सुनते रहें। स्वीकार कर लें कुत्ते के भोंकने को। उनके भोंकने में बह जायें, लड़ें मत। कोई रास्ता नहीं था तो उन्होंने माना। जाकर सो गये। समझा, मेरी बात से शायद उन्हें नींद लग गयी होगी। सुबह उठकर उन्होंने मुझसे कहा, कि मैं इतना गहरा जिन्दगी में कभी नहीं सोया, और यह तो आश्चर्यजनक था। जब मैंने स्वीकार कर लिया तो मैं हैरान हुआ कि कुत्तों के भोंकने से तो कोई बाधा पड़ती ही नहीं। बाधा मेरे ख्याल में थी, मेरे एटीट्यूड में थी।

जिन्दगी परमात्मा तक पहुंचाने में जरा भी बाधा नहीं देती—न स्वाद, न शरीर न सेक्स, कुछ भी बाधा नहीं देता। हमारा एटीट्यूड, हमारा दृष्टिकोण कि लड़ना है सबसे—कि बस हम मुश्किल में पड़ जायेंगे।

गांधीजी की दृष्टि स्वयं से लड़ने की दृष्टि है और इसलिए अत्यन्त खतरनाक

है। उस खतरनाक दृष्टि के आसपास जो लोग इकट्ठे हुए थे, वे असफल हो गये हैं। असफल होना सुनिश्चित था। उनकी आलोचना का कोई प्रयोजन नहीं है। अब तो समझने की बात यह है कि भविष्य में हम, इस देश के लोग फिर इसी तरह की नासमझियों में पड़ते चले जायेंगे, या सोचेंगे ? और खोजेंगे, इस बात को कि जीवन की धारा में बहकर परमात्मा तक पहुंचने का कोई रास्ता है ? मैं मानता हूं, रास्ता वही है। और ये सारे के सारे जो दृष्टिकोण हैं विरोध के, निषेध के, दमन के, हिंसा के, आत्महिंसा के, अपने को मारने के, ये अपने ही दोनों हाथों को लड़ाने की तरह हैं। अगर आप अपने दोनों हाथ लड़ायेंगे तो कोई नहीं जीतेगा। आप हार जायेंगे। दोनों हाथ लड़ेंगे, आपकी शक्ति नष्ट होगी और कहीं आप नहीं पहुंचेंगे।

इसलिए मैं कहता हूं कि गांधीवादी नहीं, गांधीवादियों की हार से गांधीजी की पूरी दृष्टि पुनर्विचार के योग्य हो गयी है। और गांधीजी की दृष्टि ही नहीं, हिन्दुस्तान की पूरी दृष्टि; क्योंकि गांधीजी हिन्दुस्तान की दृष्टि के प्रतिनिधि पुरुष हैं। रिप्रेजेंटेटिव हैं वे हमारे दिमाग के। हमारा जो पांच हजार वर्षों में मस्तिष्क विकसित हुआ है, जो ट्रेडिशनल माइन्ड, परम्परा से भरा हुआ मन, शास्त्रों से भरा हुआ मन, धर्म और दमन से भरा हुआ मन—गांधीजी उसके प्रतिनिधि-पुरुष हैं। इसीलिए वे सफल हुए। और मैं मानता हूं कि गांधी के बाद अब एक नया युग शुरू हो सकता है। अगर हमने गांधी के साथ हिन्दुस्तान की पूरी परम्परा पर पुनर्विचार किया तो हम एक नये युग में प्रवेश कर सकते हैं।

गांधीवादियों से तो जल्दी मुक्ति हो जायेगी, इसमें बहुत देर नहीं है। वे अपने हाथ से ही मुक्ति का उपाय करते चले जायेंगे। पन्द्रह साल के भीतर गांधीवादी से हमारी मुक्ति सुनिश्चित है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। वह तो हो जायेगी, वह तो ऐतिहासिक प्रतिक्रिया के द्वारा अपने-आप हो जायेगी, उसमें कठिनाई नहीं है। गांधीजी से मुक्ति में कठिनाई है। और गांधीवादी से मुक्ति के बाद गांधीजी से मुक्ति होने में बड़ी कठिनाई पड़ जायेगी जब तक ये हैं तब तक इनको देखने से गांधी का भी ख्याल आता रहेगा। जब ये विदा हो जायेंगे तो गांधी एकदम भगवान हो जायेंगे। फिर उससे छुटकारा बहुत मुश्किल हो जायेगा।

गांधी से मुक्ति चाहिए। और गांधी से मुक्ति का मतलब यह है—गांधी से मेरा व्यक्तिगत कोई प्रयोजन नहीं है—गांधी से मुक्ति का मतलब है, हिन्दुस्तान के पुराने मन, पुरानी आत्मा से मुक्ति चाहिए।

एक नयी आत्मा इस देश को मिले तो यह देश विकसित हो सकता है, स्वस्थ हो सकता है, चरित्रवान हो सकता है, धार्मिक हो सकता है, सुखी हो सकता है। और अगर हम पुरानी ही धाराओं में फिर से चलते रहे तो हम कोल्हू के बैलों की तरह घूम रहे हैं। न हम सोचते, न हम विचार करते, न हम खोजते। और हमने

अपने जीवन को बिल्कुल नर्क बना दिया है। अब हमें नर्क में जाने की कोई जरूरत नहीं है। भारत में पैदा होना नर्क में होने के बराबर है, अब कोई हमें कहीं जाने की जरूरत नहीं है।

ये थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं। मेरी बातें मान लेना आवश्यक नहीं हैं, क्योंकि न तो मैं कोई महात्मा हूं, न महात्मा होना चाहता हूं। न मेरा कोई अनुयायी है, और न मैं कोई अनुयायी इकट्ठे करना चाहता हूं। तो मेरी बात से राजी होने की कोई भी जरूरत नहीं है। मेरी बात सिर्फ सोचना। उतना काफी है। विचारना, देखना कि कोई बात ठीक मालूम पड़े। गलत मालूम पड़े तब छोड़ देना। कोई एक टुकड़ा भी ठीक मालूम पड़े तो उस पर सोचना, खोजना। और अगर वह आपके विवेक को ठीक लग जाये तो वह बात आपकी हो जायेगी, मेरी नहीं रह जायेगी। और जो सत्य आपका हो जाता है, वही सत्य आपको बुद्धिमान बनाता है। जो सत्य दूसरे का है, वह आपसे बुद्धि छीनता है और आपकी प्रतिभा को नुकसान पहुंचाता है।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे मैं बहुत अनुगृहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●

बम्बई, दिनांक १९ जुलाई १९६९

२२. विचार-क्रान्ति की भूमिका

प्रश्न—पिछली बार जब आप अहमदाबाद आये थे तो आपको सुनने के लिए बड़ी संख्या में लोग उपस्थित हुए थे। तथा आपकी विचारधारा समाचारपत्रों में भी प्रकाशित हुई थी। उनमें से कुछ लोगों का कहना है कि आपके विचार कम्युनिस्ट विचारधारा से बहुत मेल खाता है और उसके बहुत समीप है। कृपया इस सम्बन्ध में आप और अधिक प्रकाश डालें।

पहली बात तो यह कि मेरी दृष्टि में कोई भी विचारशील आदमी किसी न किसी रूप में कम्यूनिज्म के निकट होगा ही। यह असम्भव है, इससे उल्टा होना। और अगर हो तो या तो वह आदमी विचारशील न होगा, या बेईमान होगा।

उसके कुछ कारण हैं।

जैसे, यह बात अब स्वीकार करनी असम्भव है कि दुनिया में किसी तरह की आर्थिक असमानता चलनी चाहिए। यह बात भी स्वीकार करनी असम्भव है कि दुनिया किसी तरह के वर्गों में विभक्त रहे। प्रत्येक मनुष्य को किसी न किसी रूप में जीवन में विकास का समान अवसर मिले, इसके लिए भी अब कोई विरोध नहीं होता। और मेरी समझ में, आज ही नहीं, मैं तो बुद्ध को, महावीर को, क्राइस्ट को, सबको कम्यूनिस्ट कहता हूं। उन्हें कोई पता नहीं था।

लेकिन मनुष्य की समानता के लिए जिन लोगों ने भी जिस दिशा में कोशिश की है, उन सभी दिशाओं से एक धारणा विकसित होनी शुरू हुई है कि मनुष्य

समान है।

इसलिए वह गलत नहीं कहता है—अगर कोई कहता हो मेरे बाबत तो वह गलत नहीं कहता है, वह ठीक ही कहता है। उसके कहने में बात तो ठीक ही है लेकिन उसके कहने का कारण और नीयत बहुत दूसरी है। उसकी नीयत गलत है। कम्यूनिज्म या कम्यूनिस्ट एक तरह की गाली बन गयी है; और बनना स्वाभाविक था। क्योंकि जितने न्यस्त स्वार्थ हैं, उनको चोट पहुंचाने वाली कोई भी बात लोकमानस में ऐसी बिठायी जानी चाहिए कि भय पैदा हो जाये। साम्यवादी दृष्टि के खिलाफ लड़ने के लिए एक भी दलील पूंजीवाद के पास नहीं है। तो आखिरी दलील एक ही रह जाती है कि गाली दो, भयभीत करो, हौवा खड़ा कर दो; वही उपाय किये जा रहे हैं। यह पूंजीवाद के हार जाने के सबूत हैं।

इतना जरूर मेरा मानना है कि जिन देशों में भी हिंसा के द्वारा कम्यूनिज्म आया है, वहां पूरा कम्यूनिज्म नहीं आ सका है। और हिंसा के द्वारा कभी पूरा कम्यूनिज्म आ भी नहीं सकता। क्योंकि हिंसा जिन लोगों के हाथ में ताकत दे देती है, फिर एक नया वर्ग बनना शुरू हो जाता है। सत्ताधिकारियों का और सत्ताहीनों का एक नया वर्ग बनना शुरू हो जाता है जो और भी खतरनाक सिद्ध हो सकता है—लम्बे अर्सों में। क्योंकि धनपति का वर्ग तो था, लेकिन धनपति के पास कोई सत्ता नहीं थी, धन ही था। और धनपति का वर्ग फैला हुआ वर्ग था, सत्ताधिकारी का वर्ग इकट्ठा और संगठित वर्ग है। तो धनपति की दुनिया में तो क्रान्ति की सम्भावना है।

रूस या चीन में मार्क्स के पैदा होने की अब कोई सम्भावना नहीं है। पैदा होते ही गला घोंट दिया जायेगा। तो सिर्फ आर्थिक वर्ग मिट जायें इतनी ही दूर तक मेरा कम्यूनिज्म नहीं जाता। मेरे कम्यूनिज्म की धारणा वहां तक जाती है जहां किसी तरह का वर्ग न रह जाये। और इसलिए हिंसा के द्वारा ऐसी वर्गहीन व्यवस्था नहीं आ सकती। इसलिए मैं कम्यूनिज्म से सहमत हूं, जहां तक मनुष्य की समानता और वर्गविहीन समाज का सम्बन्ध है। और जहां तक हिंसक रुख का सम्बन्ध है, मैं बिल्कुल विरोध में हूं। इसलिए मेरी बड़ी मुसीबत है। कम्यूनिस्ट मुझे समझते हैं कि मैं दुश्मन हूं उनका और दूसरे मुझे समझते हैं कि मैं कम्यूनिस्ट हूं।

मेरी दृष्टि में साम्यवाद लाने का एक ही उपाय हो सकता है, और वह है वैचारिक क्रान्ति। लोगों के मन को समझायें, बुझायें, बदलें। किसी भी तरह के दबाव के मैं पक्ष में नहीं हूं। मैं तो गांधीजी के दबाव तक को हिंसा मानता हूं, तो स्टैलिन का दबाव तो हिंसा रहेगा ही। मैं तो इस बात को कि आपकी छाती के सामने छुरा रखकर आपको बदलने की कोशिश करूं, गलत मानता हूं, इस बात को भी गलत मानता हूं कि आपके घर के सामने अनशन करके बठ जाऊं और आपको धमकी दूं कि मैं मर जाऊंगा। मेरा मानना है कि जब भी मैं फोर्स करता

हूं, किसी भी तरह से किसी आदमी को दबाता हूं, तभी मैं उस आदमी की आत्मा का हनन करता हूं और उसको समानता का हक नहीं देता। मेरा हक इतना है कि मैं अपनी बात आपको समझाऊं। पूरी कोशिश करूं समझाने की और आपको खुला छोड़ूं कि आपकी समझ में आये तो ठीक है, नहीं आये तो भी ठीक है। लम्बा लगेगा वक्त, लेकिन कोई उपाय नहीं है। अगर हमने समझाने के अतिरिक्त कोई भी उपाय किया तो वर्ग मिटने असम्भव हैं।

गांधीजी भी कोएर्सन में विश्वास करते हैं, दबाने में विश्वास करते हैं। दबाने को वह अहिंसक रास्ता अख्तियार करते हैं, दबाने का। गांधीजी में और लेनिन में बुनियादी फर्क नहीं है, एक बात पर—और वह यह कि दूसरे को दबाकर बदलना है। दबाने की प्रक्रिया में फर्क है, प्रोसेस में फर्क है। मैं आपके सामने छुरा लेकर डराऊं कि आप नहीं मानेंगे तो मार डालूंगा, यह भी दबाना है। और मैं अपनी छाती पर छुरा रख लूं कि आपने नहीं माना तो मैं मर जाऊंगा, यह भी दबाना है। उपवास उसी तरह का दबाने का एक उपाय है। यानी मेरा कहना यह है कि वॉयलेंट नानवॉयलेंस हो सकती है।

प्रश्न—अभी क्रांति से आप जो समानता लाने की बात करते हैं तो ऐसा क्या हो सकता है कि विनोबाजी ने भी अभी शान्ति से भूदान मूवमेंट चलायी। आपके इर्दगिर्द में जो लोग हैं, वे भी आपके विचार को कहां तक मानते हैं, यह हमको पता नहीं है, लेकिन आपका स्वागत करते हैं, आपका सम्मान करते हैं। फिर आप विचार-क्रान्ति से जो आर्थिक समानता लाना चाहते हैं, उसमें वे शामिल नहीं हो सकते। फिर आपकी बातें-बातें ही रह जायेंगी और एक्शन कुछ भी नहीं होगा, ऐसा क्या आपको नहीं लगता है ?

इस बात का डर हमेशा ही है कि बातें-बातें रह जायें। यह डर मानकर ही चलना पड़ेगा। लेकिन फिर भी मैं मानता हूं कि विचार आपके सामने रखना, आपको समझाना—आपके सामने पूरा मन मैं अपना खोलूं और आपको पूरा मौका दूं सोचने-समझने का। इसके अतिरिक्त यह कितना ही लम्बा हो, और कितनी ही बार बातें खो जायें, इसके अतिरिक्त जब भी हम जल्दी का कोई उपाय करेंगे और आपको दबाने का मैं उपाय करूं आपको जबरदस्ती बदलने का उपाय करूं तब ज्यादा से ज्यादा इतना होगा कि पुराना वर्ग टूट जायेगा और नये वर्ग निर्मित हो जायेंगे। अब तक की जो क्रान्ति असफल होती रही है—क्रान्ति तो रोज-रोज हो जाती है, लेकिन असफल हो जाती है आखिर में—उसका कारण यह है कि हमारी विचार की प्रक्रिया पर बहुत धैर्यपूर्ण आस्था नहीं है।

डर तो है ही। डर तो इस बात का पूरा है कि मैं बात करूं और वह खो जाये। लेकिन हिम्मत से धैर्य रखना पड़ेगा कि बात खो जाये तो खो जाये, लेकिन कुछ लोगों को विचार के माध्यम से बदलने की प्रक्रिया की बात जारी पड़ेगी।

और मैं मानता हूं, चूंकि क्रांतियां असफल हो रही हैं—जैसे कि रूस में हुआ है। रूस में एक वर्ग तो मिट गया तेजी से लेकिन कोई एक करोड़ लोगों की हत्या करनी पड़ी। इससे कम हत्या नहीं हुई क्रान्ति के बाद। क्रान्ति में तो रूस में कोई बड़ी हत्या हुई ही नहीं, लेकिन क्रान्ति के बाद अन्दाजन अस्सी लाख से लेकर एक करोड़ लोगों की हत्या हुई। इतनी हत्या के बाद, इतनी जोर-जबरदस्ती के बाद जो व्यवस्था बनी उस व्यवस्था में पूंजीपति-मजदूर तो चला गया, लेकिन सत्ताधिकारी ब्यूरोक्रेट और सत्ताहीन आदमी खड़ा हो गया। और इस वर्ग के बीच फासले पुराने वर्ग के फासले से ज्यादा बढ़े हैं।

और एक खतरा जो अब दुनिया में आ रहा है, जो पहले कभी भी नहीं था—न मार्क्स को पता था, न लेनिन को ख्याल था, न गांधी को अन्दाज था—एक नया खतरा जो आया है वह यह आया है कि अब सत्ता के पास विज्ञान ने इतनी शक्ति दे दी है कि अगर कोई सत्ता चाहे तो उस देश में कभी कोई क्रान्ति न हो, इसका उपाय है। उस देश में विद्रोह का कभी कोई स्वर पैदा न हो सके, इसका अब उपाय है। अब जरूरत नहीं है कि हम किसी को फांसी दें। हम माइंड-वॉश कर सकते हैं। जो बड़ा सरल है। भगत सिंह को मारने की कोई जरूरत नहीं है, माइंड-वॉश कर दो। भगतसिंह बिल्कुल जैसे क ख ग बच्चा नहीं जानता, वैसा बच्चा हो जायेगा। और अ ब स से सीखना शुरू करेगा। एकदम निरीह हो जायेगा।

हत्या करनी इतनी बुरी नहीं थी। हत्या करने में वह आदमी अपनी डिग्निटी और अपनी इज्जत और अपना गौरव पूरा बचा लेता है। तो मारते हों, तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन अब उसका माइंड-वॉश कर सकते हो। आज साइकोडेलिक ड्रग विकसित हो गये हैं, जो आप ड्रग दे दो एक आदमी को तो उसके भीतर जितनी बगावत है वह सब खत्म हो जायेगी। वह कभी विद्रोह की बात ही नहीं कर सकता। एक कुत्ता है, कितना ही भोंकता हो, साइकोडेलिक ड्रग देने पर आप उसको कोड़े मारो तो नहीं भोंकेगा, फिर पूंछ हिलायेगा।

तो आज केमिस्ट्री ने इतनी ताकत दे दी है सत्ताओं के हाथ में कोई विद्रोह की सम्भावना नहीं है। तो मेरा कहना यह है कि अब सत्ता के हाथ में डिक्टेटोरियल फोर्स देना बहुत खतरनाक हो जायेगा। आज चीन में वे यह कर रहे हैं। माइंड-वॉश कर रहे हैं, केमिकल ड्रग का उपयोग कर रहे हैं। रूस में भी उसकी सम्भावनाएं हैं पूरी कि वह चल रहा है। और यह डर है कि अगर कोई हुकूमत अब तय कर ले तो अब कोई उपाय नहीं है आपके पास बगावत का। तो आदमी की सारी सम्भावना क्रान्ति की खत्म हो जाये, इतनी बड़ी ताकत अब सत्ता के हाथ में नहीं होनी चाहिए। मजदूर के, गरीब के और अमीर के फासले को मिटाने के लिए हम एक दूसरा खतरा मोल ले लें, तो मैं इसको मानता हूं कि वह ज्यादा

मंहगा पड़ेगा लम्बे अर्से में।

मनुष्य के व्यक्तित्व को बचाया जाना जरूरी है । उसके व्यक्तित्व को चोट नहीं पहुंचनी चाहिए । मेरी मान्यता यह है कि चाहे गरीबी थोड़े दिन ज्यादा चले तो हर्जा नहीं है, क्योंकि गरीबी सिर्फ आदमी के पेट को, शरीर को तकलीफ दे सकती है लेकिन आत्मा फिर भी सुरक्षित है। लेकिन अब हो गयी है सम्भावना इस बात की कि आपको पेट पूरा भर दिया जाये, आपको कपड़े अच्छे दे दिये जायें, लेकिन आपके व्यक्तित्व को पूरा मार डाला जाये। पैदा ही न हो सके। तो सौ या हजार साल बाद बच्चे हमारे सोचेंगे कि हमारे मां-बाप ने हमें बहुत उपद्रव में डाल दिया है। गरीबी इतना बड़ा खतरा नहीं है जितना बड़ा खतरा उसके विकल्प में हम ले रहे हैं।

तो मेरे सामने जो सवाल है वह यह है, यह मैं मानता हूं···आप जो कहते हैं, बिल्कुल ही ठीक कहते हैं, इस बात का पूरा डर है कि मेरा विचार खो जाये। उसकी मेरी तैयारी है। लेकिन फिर भी मैं मानता हूं कि मनुष्य को वैचारिक रूप से समझाने, और जब तक कि बहुमत राजी न हो जाये किसी विचार के लिए पूर्णरूप से, तब तक हिंसा जरूरी है। बिना हिंसा के तो नहीं हो सकता, जब तक बहुमत राजी न हो जाये। और हिंसा एक दफा आपने की, वह कहां रुकेगी, यह बिल्कुल नहीं कहा जा सकता। और जिसके हाथ में आपने हिंसा की ताकत दे दी, वह आदमी क्या करेगा, यह भी नहीं कहा जा सकता। बिल्कुल असम्भव है इसका कहा जाना।

तो इसलिए अब यह विकल्प मेरे सामने नहीं दिखायी पड़ता है। एक ही विकल्प है—रूस की और चीन की क्रान्तियों से जो नतीजे मिले हैं वे ये हैं कि गरीबी तो मिट सकती है लेकिन आदमी खो जायेगा। अब सोचना यह है कि आदमी को बचाना है और गरीबी को मिटाना है। तो मुझे यह लगता है कि चाहे पच्चीस वर्ष की जगह पांच सौ वर्ष लग जायें लेकिन मनुष्य के विचार को आहिस्ता-आहिस्ता समझाने की······और मुझे ऐसा नहीं लगता है कि अब कोई भी आदमी ऐसा है जो समानता के विचार से बुनियादी रूप से विरोध में हो।

प्रश्न—आप जो विचार-क्रान्ति की बात करते हैं और जो बड़ा आर्गुमेंट है, वह कहता है कि विचार-क्रान्ति वाले लोग और अहिंसा वाले लोग कुछ भी नहीं हैं, ये पूंजीवादियों के एजेंट हैं।

मैं भी यही कहता हूं। मैं भी यही कहता हूं कि पूंजीवाद का एजेंट हुआ जा सकता है बड़ी सरलता से, और पूंजीवाद सब तरह से एजेंट्स खोजेगा। मजा तो यह है कि वह आखिर में इस तरह के एजेंट खोजेगा जो समाजवाद की बातें करेंगे। जैसे मैं मानता हूं कि इंदिरा इस समय सबसे बड़ी एजेंट है पूंजीवाद की।

अगर मोरारजी के हाथ में ताकत जाये तो कांग्रेस मर जाये। दस साल से भी ज्यादा नहीं जिन्दा रह सकती। मोरारजी सुइसाइडल साबित होंगे। और मैं मानता हूं, मोरारजी को देनी चाहिए, ताकि कांग्रेस की हत्या हो जाये। इंदिरा दस साल की उम्र और बढ़ा देगी। नेहरूजी पूरी जिन्दगी समाजवाद का नाम लेकर जो काम करते रहे, वह इंदिरा ने फिर शुरू कर दिया है। वह ट्रिक पुरानी है, वह उनके पिता की है। और अब ऐसा लग रहा है, जैसे समाजवाद आ जायेगा। कोई बैंक का राष्ट्रीयकरण होने से समाजवाद आ जायेगा, कि सब पूंजीवाद मिट जायेगा, ऐसा मालूम होता है। यह सब बिल्कुल बेमानी बातें हैं, इससे कुछ मिलने वाला नहीं है। पूंजीवाद का एजेंट तो—समाजवाद की बात भी हो सकती है, और अहिंसा की बात भी हो सकती है, और सर्वोदय भी हो सकता है।

ये खतरे हैं।

लेकिन मेरा कहना यह है कि इन सारे खतरों को समझाया जाना चाहिए। वही मैं करना चाहता हूं। मैं यह कहता हूं, मैं भी खतरा हो सकता हूं। इसलिए मेरा आग्रह नहीं है कि मेरी बात को ही मानें। मेरा आग्रह कुल इतना है कि मैं कहता हूं, उसे सोचें, समझें। मुल्क में एक विचार की हवा पैदा हो। मुल्क के पास विचार करने की क्षमता आये। मुल्क सोचे, चर्चा करे। मुल्क सोच ही नहीं रहा है।

प्रश्न—अस्पष्ट

आयेगा, लेकिन जब मुल्क विचार से राजी हो जाये, तब पीछे से आये। तब फिर वह वॉयलेंट नहीं रह जायेगा और तब वह डेमॉक्रेटिक होगा। तब वह लोकतांत्रिक होगा।

प्रश्न—जिनके पास पैसा नहीं है वे ही लोग विचार करते हैं और जिनके पास पैसा है, वे सोचते ही नहीं हैं। तो फिर बिना पैसा वाले विचार करके क्या करेंगे?

यह भी गलत ख्याल है। आप जानकर हैरान होंगे कि जिसके पास पैसा नहीं है, वह तो बेचारा विचार ही नहीं सकता। यह तो बात ही गलत है। दुनिया में समाजवाद की भी जो बात है वह भी पूंजीवाद के ही परिवार से निकली हुई बात है। दुनिया में जिनके पास सुविधा है वे ही विचार कर सकते हैं। अगर शूद्रों को उठाने की बात है, वह भी ब्राह्मणों की ही बात है अन्ततः। शूद्र की बात नहीं है वह। शूद्र को तो इतना हीन कर दिया गया है, उसमें यह ख्याल भी उठने का उपाय नहीं है कि मैं समान हो जाऊं। मजदूर नहीं है मार्क्स, और न एंजेल्स मजदूर है, न लेनिन मजदूर है। पूंजीवाद ने कुछ लोगों को सुविधा दी है सोचने की और उस सोचने में उनको कण्ट्राडिक्शन दिखायी पड़ने शुरू हुए हैं।

आप यह जानकर हैरान होंगे कि हिन्दुस्तान में आजादी का ख्याल भी अंग्रेजों से आया हुआ ख्याल है। हिन्दुस्तान का ख्याल नहीं है। आजादी की जो मौलिक धारणा है वह हिन्दुस्तान में अंग्रेजों से आनी शुरू हुई है। और पहला, जिन लोगों ने इस मुल्क में आजादी की बात चलानी शुरू की, वह अंग्रेज है। और जिन लोगों ने हिन्दुस्तान में आजादी की बात की वे सब योरोप से शिक्षित होकर लौटे हैं। यह जानकर हैरानी होगी कि हमेशा क्रान्ति उसी गढ़ से आती है जो क्रान्ति को रोकता है। क्रान्ति भी उसी घर से आती है। पूंजीवाद ही अपनी पूरी अन्तर्व्यथा और अपने पूरे इनर कण्ट्राडिक्शंस को देखकर सजग होता है। उसके भीतर से ही कुछ लोग पैदा होते हैं जो कहना शुरू करते हैं, यह व्यवस्था गलत है। यह व्यवस्था गलत है। यह वहीं से आना शुरू होता है, यह नीचे से आना शुरू नहीं होता।

हिन्दुस्तान में अगर विचार की एक हवा पैदा हो तो मैं मानता हूं, हिन्दुस्तान का जिसको हम···मेरी दृष्टि यह नहीं है कि पूंजीपति कोई बुरा आदमी होता है। यह मैं नहीं कहता हूं कि पूंजीपति कुछ बुरा आदमी है। या मजदूर कोई बहुत अच्छा आदमी है। कि शोषित हो जाना कोई गुण है। और शोषक हो जाना कोई दुर्गुण है, यह मैं नहीं कहता हूं। मेरा कुल मानना इतना है कि समाज की एक व्यवस्था है, उस व्यवस्था में एक आदमी धन को इकट्ठा कर लिया है। निश्चित ही वह ज्यादा कुशल है, ज्यादा होशियार है। वह समाज की सारी की सारी बेईमानी और सारी व्यवस्था का पूरा उपयोग कर रहा है। जो शोषित है उसमें, वह कोई बहुत गुणवान है, ऐसी बात नहीं है। उसको भी अगर इतनी ही बुद्धि और इतनी शोषण की कला सब समझ में आ जाये तो वह भी कल इसकी जगह बैठ जायेगा। इसमें कोई आदमी-आदमी में फर्क नहीं है। लेकिन फिर भी मैं मानता हूं कि पूंजीपति के घर से ही, पूंजीवाद के गढ़ से ही वह विचार पैदा होना शुरू होता है जो पूंजी की असंगति देखना शुरू करता है।

और इसलिए घबराने की जरूरत नहीं है, विचार को फैलाने की जरूरत है। और उसे जाने दें सबके भीतर। यानी यह भी मेरा मानना नहीं है कि पूंजीवाद का मिट जाना मजदूर के हित में है, यह भी मेरा मानना है कि पूंजीवाद के ही हित में है। पूंजीवाद एक अन्तर-कलह से परेशान होती है। लेकिन इतनी मेरी समझ है कि मैं जब विचार न फैल जाये और जब तक उनके प्राण मांग न करने लगें लोकतांत्रिक जीवन को बदल जाने के लिए, तब तक किसी बदलाहट के मैं पक्ष में नहीं हूं। यानी बदलाहट ऊपर से थोपी हुई नहीं होनी चाहिए। वह लोक-मानस से आनी चाहिए।

प्रश्न—क्या संगठन आवश्यक है?

संगठन आवश्यक होगा? मैं संगठन आवश्यक नहीं मानता। मेरे लिए···

क्योंकि मेरा मानना है कि अगर मैं संगठन आवश्यक मानूं तो मैं विचार की जो क्रांति लाना चाहता हूं, नहीं ला सकता। विचार की क्रांति लाने वाले लोगों को संगठन से बचना चाहिए। क्योंकि संगठन के अपने स्वार्थ होने शुरू हो जाते हैं। और संगठन के जैसे ही स्वार्थ होने शुरू हुए, वह एक विचार के पक्ष में इस दृष्टि से होता है कि हमारे हित में है या नहीं। तो मैं किसी संगठन को अपने तरफ से खड़ा करने के पक्ष में नहीं हूं। लेकिन मेरी बात किसी को ठीक लगे और वह संगठन करना चाहे तो मैं विरोध में नहीं हूं।

प्रश्न—बिना संगठन के आपके विचार में बल कैसे हो सकता है?

अब तक दुनिया में विचार में बल होना चाहिए, तो एक व्यक्ति ही सारी पृथ्वी तक विचार पहुंचाने में समर्थ हो जाता है—विचार पहुंचाने में, विचार से बदलाहट लाने में नहीं। जीसस नाम का आदमी ढाई हजार, दो हजार साल पहले अकेला आदमी है और उसके पास जो आदमी इकट्ठे हुए, आठ-दस आदमी हैं; इससे ज्यादा आदमी नहीं हैं। और जो आदमी इकट्ठे हुए हैं, कोई मछुवा है, कोई गांव का किसान है। और उस आदमी को सूली पर लटका दिया। और जेरूसलम के आसपास से ज्यादा उसकी खबर नहीं है। लेकिन बात में कोई बल था। वह धीरे-धीरे गयी।

बुद्ध या महावीर बिहार में पैदा हुए, बिहार के बाहर कभी नहीं गये, कोई कम्यूनिकेशन का साधन नहीं था। लेकिन बात में कोई बल था, वह चली गयी। मार्क्स के पास कोई साधन नहीं था। लेकिन बात में कोई बल था, वह गयी। मेरा मानना है, विचार अपने बल से जाता है—आंतरिक बल से, संगठन के बल से नहीं। बल्कि विचार अगर कमजोर हो तो संगठन के बल से पहुंचाया जा सकता है। मेरा मानना ही यह है कि मनुष्य की चेतना का विकास ही लांग प्रोसेस हो, और जल्दबाजी न करें।

प्रश्न—विचार कम्फर्ट और फैसिलिटी नहीं देता है। विचार तो बहुत हैं लेकिन किसी विचार ने भी कम्फर्ट, संतोष नहीं दिया है। इसीलिए कम्यूनिस्ट और आर्थिक सब बातें हो रही हैं। विचार तो बहुत हैं, लेकिन विचार में किसी को फल नहीं मिलता है उसका।

आप हैरान होंगे कि अगर बुद्ध और क्राइस्ट न पैदा हुए हों तो मार्क्स कभी पैदा नहीं हो सकता था। यह हमारी जो धारणाएं हैं न, यह तो बड़ा इन्टरलिंक है मामला। हम समझते हैं कि मार्क्स कम्यूनिज्म दे रहा है। मार्क्स क्या कम्यूनिज्म···अगर बुद्ध न हों इतिहास में, क्राइस्ट न हों इतिहास में तो मार्क्स के पैदा होने की सम्भावना नहीं। और अगर मार्क्स न हो पैदा तो लेनिन के पैदा होने की, माओ के पैदा होने की कोई सम्भावना नहीं है। इतिहास एक लम्बी शृंखला है जिसमें वे भी जुड़े हुए हैं जो हमारे विरोधी भी हों। यानी मेरा मानना है कि

जीसस को जिन लोगों ने सूली दी उसने भी उतना ही काम किया है—ज्यादा शायद--जितना जीसस के मानने वालों ने काम किया है। इतिहास एक लम्बा छोर है। मैं जल्दी में विश्वास नहीं करता, क्योंकि मैं मानता हूं कि जल्दी वाला आदमी हमेशा हिंसा में विश्वास करने लगेगा। क्योंकि हिंसा जितनी जल्दी काम कर सकती है, उसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है।

प्रश्न—आपने बताया कि दिल्ली में जो संघर्ष चल रहा है, राज्य संघर्ष कांग्रेस में—इंदिराजी को भी आपने पूंजीवाद का एजेंट बताया और मोरारजी को भी बताया। तो क्या आपका कहने का इरादा यह है कि वह पोलिटिकल संघर्ष चल रहा है ?

बिल्कुल पोलिटिकल है। और कांग्रेस को बचाने की जो भीतरी चेष्टा चल रही है—क्योंकि कांग्रेस अब बच नहीं सकती है बिना समाजवाद का वस्त्र ओढ़े। इंदिरा कांग्रेस को बचा सकेंगी। मोरारजी के साथ कांग्रेस डूब जायेगी, खत्म हो जायेगी। और इसलिए इंदिरा मजबूत होती चली जा रही है क्योंकि कांग्रेस का बचाव भीतर से भी यही लग रहा है कि वह उनके साथ हो सकता है। लेकिन मुल्क धोखे में आ सकता है, और मुल्क के समाजवादी भी धोखे में आ सकते हैं। और वह धोखा फिर दस साल के लिए मुल्क को नुकसान में डालेगा। नेहरू के साथ वही हुआ। मुल्क के समाजवादी चिन्तन को ऐसा लगा कि ठीक है, नेहरू काम करेंगे। वह काम नहीं हो सका।

उसका कारण यह है—उसका कारण मैं यह नहीं मानता कि नेहरू की भूल है या इदिरा की भूल है। उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि मुल्क का मानस ही समाजवाद के लिए तैयार नहीं है। मानस ही तैयार नहीं है। तो फिर दूसरी छोटी बातें हो सकती हैं। तो मैं जो कहना चाहता हूं वह यह है कि मुल्क का मानस तैयार हो। अभी सत्ता बदलने का उतना सवाल नहीं है, न वह रोज बदलने का उसमें सवाल है। जिस दिन मानस तैयार होगा मुल्क का उस दिन कोई भी काम कर देगा ऊपर। लेकिन मुल्क का मानस ही अगर तैयार न हो तो सिर्फ हम बातचीत कर सकते हैं, और बातचीत चलती रहेगी।

कोई बैंक के राष्ट्रीयकरण से समाजवाद नहीं आ जाता, न रेलवे के राष्ट्रीयकरण से समाजवाद आ जाता है। समाजवाद की दृष्टि ही नहीं है। उसकी स्वीकृति नहीं है बहुत गहरे में कि वह कैसे आये ? मनुष्य की समानता का भाव ही स्वीकार नहीं है। हिन्दुस्तान में और कठिनाई है। हिन्दुस्तान की कठिनाइयां बहुत गहरी हैं। हिन्दुस्तान में मनुष्य की असमानता का भाव बहुत पुराना है, परम्परागत है। हमने कभी अपने इतिहास में बहुत गहरे में यह स्वीकार नहीं किया कि दो मनुष्य समान हैं, कभी स्वीकार नहीं किया। तो हिन्दुस्तान के मानस में समाजवाद बिल्कुल एक तरह से फॉरेन है, एकदम विदेशी भाव है

हिन्दुस्तान के मन में। प्रजातंत्र भी एकदम विदेशी चीज है हिन्दुस्तान के लिए और समाजवाद भी बिल्कुल विदेशी चीज है। न तो हम कभी प्रजातांत्रिक रहे हैं, और न कभी समाजवादी की हमारी धारणा कभी रही है।

तो इस मुल्क के मानस को तैयार करने की जरूरत है, तो इस मुल्क के मानस के गहरे में समाजवाद जाये कहीं। वह जायेगा तो ऊपर से बदलाहट बहुत आसान होगी। नहीं तो ऊपर बातचीत चलेगी। और बातचीत धोखे की होगी। और जिन लोगों को थोड़ा सोच-विचार उठता है, वह फौरन उस बातचीत के धोखे में आ जाते हैं। दस-पन्द्रह साल के लिए फिर बातचीत लम्बी होती है।

कांग्रेस मरने के करीब है क्योंकि उसकी योजना खो गयी है। उसका काम भी खो गया है। वह जिस उद्देश्य के केन्द्र पर बनी थी वह भी खो गया, वह सब खत्म हो गया। उसके पास दूसरा कोई उद्देश्य नहीं है। आजादी की बात थी, वह पूरी हो गयी। अब उसके पास कुछ भी नहीं है। अब वह सिर्फ एक घोस्ट एक्जिस्टेंस है, प्रेत-अस्तित्व है। उसका कोई अर्थ नहीं रह गया है कहीं। तो अब उसको नये-नये अर्थ देकर जिलाने की बात है। उसको फिर ऑक्सीजन देने की जरूरत पड़ती है।

प्रश्न—क्या कोई पार्टी आपकी नजर में है, जो काम कर सकती है ?

पार्टी में मेरा मानना बहुत नहीं है। नहीं, कोई पार्टी नहीं है। कोई पार्टी मुल्क के पास नहीं है। कांग्रेस एक पार्टी है जो बिल्कुल बेमानी हो गयी है। और कोई पार्टी मुल्क के पास नहीं है। क्योंकि मुल्क के पास वह चित्त नहीं है जो सोचे, आइडियॉलाजी को सोचे, मुल्क को बदलने की योजना सोचे, वह चित्त ही नहीं है। बाकी जितनी पार्टियां हैं उनके पास कोई योजना नहीं है—जिसको योजना हम कहें। बस, कामचलाऊ, इमिजिएट प्रॉब्लम है उनके सामने। आज कैसे ताकत में कोई पहुंच जाये, यह बड़ा सवाल है। पचास साल बाद मुल्क की क्या स्थिति बनेगी, यह किसी के सामने सवाल नहीं है।

मैं दिल्ली में एक बड़े नेता से बात कर रहा था। एक किताब किसी युवक ने लिखी है—'नाइनटीन सेवन्टी फाइव'। किताब का नाम है, 'उन्नीस सौ पचहत्तर'। और उसमें उसने घोषणा की है बहुत बड़े वैज्ञानिक दलीलों पर कि उन्नीस सौ पचहत्तर में भारत में इतना बड़ा अकाल पड़ेगा कि दस करोड़ लोग मर सकते हैं। तो मैंने किसी को कहा, तो उन्होंने कहा, उन्नीस सौ पचहत्तर बहुत दूर है। हिन्दुस्तान के किसी नेता के मन में उन्नीस सौ पचहत्तर बहुत दूर है। सभी के मन में, उन्नीस सौ पचहत्तर से कोई मतलब नहीं है, उन्नीस सौ बहत्तर ही काफी है। एलेक्शन पर्याप्त है।

तो हिन्दुस्तान में न पोलिटिकल कांशसनेस है, न कोई पोलिटिकल पार्टी है। कांग्रेस कोई पोलिटिकल पार्टी ही नहीं है। एक स्ट्रगल से पैदा हो गया एक जम-

घट था। जो एक स्ट्रगल थी वह पूरी हो गयी, वह खत्म हो गयी। एक मोर्चा था कांग्रेस, एक पार्टी नहीं थी। और कांग्रेस पार्टी बन गयी। मोर्चा पार्टी बन जाये, उसमें हजार तरह के लोग थे, वे छाती पर सवार हो गये। अब वह हजार तरह की बातें करते हैं। वह मुल्क को कन्फ्यूज करते हैं, वे मुल्क को कुछ होने भी नहीं देते। अगर कांग्रेस स्पष्ट रूप से कुछ एक योजना हो तो दूसरी पार्टी भी खड़ी हो जाये। कोई योजना नहीं है। समाजवाद भी उसमें समाविष्ट हो जाता है और उसमें सब समाविष्ट हो जाता है।

उसका परिणाम यह है कि मुल्क में पार्टी भी पैदा नहीं हो रही है। होगी भी नहीं, क्योंकि पार्टी तभी पैदा होती है जब मुल्क विचार करना शुरू करता है। और पच्चीस विचार मुल्क के चित्त में घूमना शुरू होते हैं। और पच्चीस विचार लोगों को पकड़ना शुरू करते हैं तब पार्टियां बनती हैं। मुल्क के पास विचार नहीं है। जिसको राजनीतिक चेतना कहें, वह नहीं है।

तो मेरी नजर में, जो बड़ा काम है, सब समझदार लोगों को—चाहे वह पत्रकार हों, राजनीतिज्ञ हों, विद्यार्थी हों, शिक्षक हों, कोई भी हों—वह यही है कि मुल्क एक जोर से चिन्तन की प्रक्रिया में कैसे लग जाये! तो पच्चीस पार्टी पैदा हो जायेंगी। एक पोलिटिकल कॉन्शसनेस पैदा होगी। आज जो समाजवादी है, उसको भी इतना मतलब है कि उसकी तनखवाह थोड़ी बढ़ जाये। उसको समाजवाद से कोई मतलब नहीं है। आज आदमी कम्यूनिस्ट है, उसको कम्यूनिस्ट यूनियन में इसलिए खड़ा किया हुआ है कि उसके थोड़े वेजेज बढ़ जायें, उसका कुछ बढ़ जाये, लेकिन कोई कम्यूनिज्म की पूरी धारणा उसके सामने नहीं है।

प्रश्न—आप आज प्रगति में क्या-क्या दे रहे हैं और विचार क्रान्ति में। लेकिन प्रगति भी होनी चाहिए, वरन् ऐसा विचार, और विचार की बातों से ज्यादा पार्टियां होती हैं जिससे कि डेवलपमेंट कुछ नहीं होती।

नहीं-नहीं, यह आप गलत ख्याल में हैं। जितनी ज्यादा पार्टी होंगी, जितना ज्यादा डिस्कशन होगा, उतनी पोलैरिटी पैदा होगी, नहीं तो पोलैरिटी पैदा नहीं होगी। डिस्कशन से पैदा होगी। अगर हम पच्चीस लोग विचार करते हैं—विचार करना एक अलग बात है, लड़ना बिल्कुल अलग बात है। अगर हम विचार करते हैं तो विचार की अपनी ताकत होती है विचार धीरे-धीरे-धीरे निष्कर्षों पर पहुंचता है। विचार रुक नहीं सकता। जैसा कि अगर दस वैज्ञानिक लड़ते हों गणित के किसी सवाल पर, दस घण्टे बाद उस कमरे में एक नतीजा हो जायेगा। कठिनाई नहीं है बहुत। जिन्दगी के दूसरों मसलों के सम्बन्ध में गणित के सवाल के समान नहीं हो सकता है, क्योंकि गणित बहुत सरल चीज है। जिन्दगी के मसले उलझी हुई चीज है। लेकिन फिर भी मैं मानता हूं कि अगर मुल्क में विचार चले, विवाद चले तो तीन या चार पार्टी मुल्क में पैदा हो जायेंगी। और बहुत गहरे में तो दो

ही पार्टी पैदा होंगी, क्योंकि अन्ततः पार्टी वर्ग से निर्मित होती है। अन्ततः वर्ग से निर्मित होती है।

प्रश्न—ममत्व रोकता है विचार की प्रगति को ?

हां, विचार को रोकता है ममत्व। और इसीलिए मैं कहता हूं, मेरा अभी कोई आग्रह संगठन, किसी पार्टी पर नहीं है, क्योंकि वह जैसे हुआ कि ममत्व शुरू होता है। फिर वह कहना चाहिए, जो मेरी पार्टी को फायदा करता हो; फिर वह कहना चाहिए, जो संगठन को फायदा करता हो।

प्रश्न—अगर बुद्ध और क्राइस्ट से लेनिन और मार्क्स हुए, तो उसी तरह गांधी भी हुए। फिर भी इन दोनों के विचार अलग-अलग हैं अभी यहां पर विचार की बात आयी। कुछ अमल तो नहीं हो सकता है, बातें-बातें ही रहती हैं और आदमी जिन्दा मर जाता है; जेनरेशन-जेनरेशन चली जाती है।

यह भी ख्याल गलत है कि अमल नहीं होता है। होता क्या है, जो अमल हो जाता है वह हमारे ख्याल में मिट जाता है। जो अमल में नहीं आता है वही ख्याल में रहता। बुद्ध और क्राइस्ट की बातों का कितना परिणाम हुआ है मनुष्य पर, इसको सोचना ही मुश्किल है। आप जानकर हैरान होंगे कि इधर इन बीस वर्षों में युद्ध के विरोध में जो चेतना जगी है सारी दुनिया में, यह कभी थी ही नहीं। कृष्ण जैसा अच्छा आदमी युद्ध के पक्ष में था। हां, विज्ञान तो कुछ भी नहीं बताता। विज्ञान तो केवल साधन दे देता है। जो चाहो, करो।

मनुष्य की चेतना निरन्तर विचार करने से इस जगह पहुंची है कि युद्ध बेमानी हो गया है। विचार इस जगह ले आया। नेशन बेमानी हो गया, राष्ट्र बेमानी हो गये। जो लोग जितना सोच रहे हैं, वहां राष्ट्र उतना व्यर्थ हुआ जा रहा है। नहीं सोचेंगे तो राष्ट्र बड़ा सार्थक लगेगा। और हम जो कम सोचने वाले लोग हैं, हमें तो यह भी बहुत सार्थक लगता है कि एक जिला महाराष्ट्र में रहे कि मैसूर में रहे; कि नर्मदा का जल गुजरात का है कि मध्य प्रदेश का। हम कम विचार करने की वजह से इन बेवकूफियों में बंधते हैं।

विचार जितना विकसित होगा उतनी मुल्क की इन्टेलिजेंस, चेतना विकसित होगी। उतने हम नतीजों पर करीब आ सकेंगे, निकट आ सकेंगे। और इतना तय है कि अगर तेजी से विचार चले तो पोलैरिटी हो ही जायेगी, क्योंकि आखिर दो ही विचार हैं बहुत गहरे में। एक तो विचार है जो पुरानी व्यवस्था को बनाये रखना चाहेगा। उसका हित उसमें रहेगा। लेकिन वह विचार रोज कमजोर पड़ता चला जायेगा, क्योंकि पुरानी व्यवस्था सड़ गयी है। उसे बचाया जा नहीं सकता, सिर्फ लम्बाया जा सकता है। यह हो सकता है, दस की जगह बीस साल, पच्चीस साल, चालीस साल उसको बचा लिया जाये, बचाया नहीं जा सकता। इसलिए भीतर से उसका गढ़ कमजोर होता चला जायेगा, उसके भीतर से बगावती पैदा

होते चले जायेंगे। दूसरा विचार होगा जो नयी व्यवस्था लाना चाहता है। अन्ततः तो दो पोलैरिटी पैदा हो जायेंगी। और किसी भी मुल्क में अगर विचार चले तो दो पार्टी खड़ी हो जायेंगी।

प्रश्न—अस्पष्ट

मैं जो कह रहा हूं, मैं जो कह रहा हूं—साइंस ने वह अपर्चुनिटी पैदा कर दी है, जो नहीं पैदा हुई थी। जो मैं कहा हूं, इसमें उसमें कोई फर्क नहीं है। मैं सिर्फ कह इतना रहा हूं कि बुद्ध और क्राइस्ट ने जो विचार दिया है शांति का, वह कभी हमें इतना सार्थक नहीं लगा था क्योंकि अशान्ति कभी इतनी खतरनाक नहीं थी। अशान्ति पहली दफा इतनी खतरनाक हो गयी कि सुइसाइडल हो गयी है। और आशन्ति को खतरनाक विज्ञान ने कर दिया है। इसलिए पहली दफा बुद्ध की और क्राइस्ट की बात सार्थक मालूम पड़ती है कि शान्ति से जीना पड़ेगा। बुद्ध की और क्राइस्ट की बात समय की प्रतीक्षा कर रही थी। जैसे हम एक बीज को डाल दें, और वह प्रतीक्षा करे वर्षा आने की, तो वर्षा बीच में अंकुर नहीं लायेगी, अंकुर बीज से ही आयेगा, लेकिन वर्षा सिर्फ प्रतीक्षा और अवसर बना देगी। विज्ञान ने एक अवसर बना दिया है कि अब अगर हम हिंसा को मानें तो हम दुनिया को खत्म कर सकते हैं। हिंसा इतनी खतरनाक कभी भी नहीं थी इसलिए हमने अहिंसा की बात कभी सुनी नहीं थी। आज पहली दफा हिंसा इतनी खतरनाक है कि हमें अहिंसा की बात सुननी पड़ेगी। यानी मेरा मानना है कि बुद्ध और महावीर ने या क्राइस्ट ने जो बात कही, वह आज सार्थक होने के करीब पहुंच रही है। वर्षा आयी है और उस बीज पर अब पानी पड़ा है।

प्रश्न—हिंसा बहुत है, इसलिए हम अहिंसा को मानते हैं। हमें सहन करना पड़ा है, इसलिए हम सोचते हैं कि शान्ति से जिया जाये।

असल में कभी भी अवसर उपस्थित हो—जैसे समझ लें, एक आदमी ने एक दवाई बनायी जो टी० बी० पर काम पड़ेगी। लेकिन आप अभी तो नहीं खा लेंगे। आप जब बीमार पड़ेंगे, तभी न! आप कहेंगे, दवा बनाने वाले का क्या मतलब है? वह तो हम टी० बी० से बीमार पड़ते हैं, इसलिए दवा खाते हैं। आप ठीक कह रहे हैं। आप दवा तब खाते हैं जब टी० बी० से बीमार पड़ते हैं। यह बिल्कुल ठीक है। बिना टी० बी० के बीमार पड़े दवा खानी भी नहीं चाहिए। लेकिन जिसने बनायी है, इससे उसका महत्व कम नहीं हो जाता। अहिंसा का जो विचार है वह मनुष्य के लिए अद्भुत जीवन दे सकता है। यह ख्याल जिन लोगों ने दिया है, वह ख्याल पड़ा हुआ है मनुष्य की चेतना में लेकिन अशान्ति जब इतनी खतरनाक हो जायेगी कि हमें पहली दफा अशान्ति से छूटने का सवाल उठेगा। बीमारी बन जायेगी तभी हम उस दवा का उपयोग करेंगे। दुनिया का सारा विकास जो है वह बहुत अन्तर्गुंफित है, इन्टरडिपेंडेंट है। उसमें हजारों लोग दान

कर रहे हैं। उसमें विज्ञान ने अभी एक स्थिति पैदा कर दी है, जो स्थिति हमको पहली दफा कहती है कि अब शान्ति सोचनी पड़ेगी। शान्ति पहली दफा विचारणीय है। इसके पहले इतनी विचारणीय नहीं थी। आप छुरा मार सकते थे, दस पचास आदमी मार सकते थे। उससे कोई मनुष्यता नहीं मरती। अब मनुष्यता मर सकती है।

प्रश्न—आदमी ने सोचना तो छोड़ दिया है अभी। आदमी सोच भी नहीं सकता है, ऐसा आपने कहा। सोचता भी नहीं है। क्या आप सोचते हैं कि आपकी विचारधारा सफल होगी, जबकि क्राइस्ट और जीसस की बातें आदमी समझने में असफल रहा है।

यह सवाल नहीं है। एक आदमी और दूसरे आदमी के सफल और असफल होने का सवाल ही नहीं है। यह बहुत बड़ा सवाल ही नहीं है। मैं सफल होता हूं, आप सफल होते हैं, वह सफल होता है, यह सवाल नहीं है। यह भी हमारे सोचने का ढंग एकदम ही गलत है कि फलां आदमी सफल हुआ कि नहीं हुआ। बड़ा सवाल यह है कि मनुष्यता के हित में कोई चीज सफल होती है या अहित में कोई चीज सफल होती है। बड़ा सवाल यह है। आदमियों का सवाल नहीं है। हित में जो लड़ने वाले लोग हैं, वे सफल होते हैं कि अहित में ले जाने वाले लोग सफल होते हैं, यह सवाल है।

अब जैसे, मेरा कहना यह है कि जो लोग भी मनुष्य को विचार करने से रोकते हैं, वे सफल होते रहे हैं। विचार करने से रोकने वाले लोग सफल होते रहे हैं। विचार करने की प्रक्रिया में ले जाने वाले लोग असफल होते रहे हैं। इससे हमने बहुत नुकसान झेला, बहुत तकलीफ झेली, बहुत कष्ट झेला। आज भी वही सवाल है। मैं विचार की प्रक्रिया को फैलाना चाहता हूं।

प्रश्न—आप इन्दिरा गांधी की बात कर रहे थे। सवाल यह है कि आज देश में करोड़ों लोग ऐसे हैं जिनके पास खाने का भी नहीं है तो वे लोग आपके विचार कैसे अपनायेंगे? जिनके पास रोजी-रोटी का प्रश्न जहां तक है, वे क्या करेंगे?

वे नहीं अपनायेंगे। उनके अपनाने का बड़ा सवाल भी नहीं है। उनके अपनाने का बड़ा सवाल भी मैं नहीं मानता हूं। वे अगर हम ठीक से समझें तो समाज के उस तल पर जीते हैं, जहां कि समाज प्रभावित नहीं होता। यानी मेरा मानना ही यह है कि समाज में जो भी चलता है वह समाज का बुद्धिशाली वर्ग, सम्पत्तिशाली वर्ग, सम्पन्न वर्ग, सुविधापूर्ण वर्ग···क्रान्ति भी उसी से चलती है और क्रान्ति की रुकावट भी उसी से चलती है। अगर क्रान्ति रुकेगी तो वह जो भूखा आदमी है, भूखा रह जायेगा। अगर क्रान्ति सफल होगी तो भूखा आदमी का पेट भर जायेगा। लेकिन भूखा आदमी कुछ नहीं कर सकता।

भूखा आदमी हमेशा समाज के किनारे की परिधि पर जीता है। वह समाज

का केन्द्र नहीं है। उसके हित में समाज सोच सकता है, अहित में सोच सकता है। लेकिन वह खुद सोचने की हालत में नहीं है। यह मामला ऐसा ही है जैसे कि एक आदमी बीमार पड़ा हुआ है और बीमार मर रहा है। हम जो करेंगे उससे वह बच भी सकता है, मर भी सकता है। उसके खुद के सोचने का बड़ा सवाल यह नहीं है। मैं नहीं मानता कि गरीबों से कोई क्रान्ति होती है दुनिया में। गरीबों के लिए क्रान्ति होती है, गरीबों के विरोध में क्रान्ति होती है। उसको मैं मानता नहीं कि उससे कुछ हो सकता है। वह जो खाने की हालत ही नहीं जुटा पा रहा है, वह कुछ और करेगा, यह सवाल नहीं है।

प्रश्न—इन्दिरा गांधी का कार्यक्रम क्या है, सिवाय भाषण के अलावा ! क्या इससे विचार-क्रान्ति हो सकती है ?

यही तो हमारी जो जल्दी है, वह हमारी जल्दी ऐसी है कि हममें से कोई भी विचार को मानता ही नहीं है असल में। एक्शन को ही मानने वाले लोग हैं। विचार को हम मानते ही नहीं। हम यह जानते नहीं कि सारा एक्शन विचार से आता है। कोई एक्शन विचार के बिना पैदा नहीं होता है। मेरा कहना यह है कि विचार ही नहीं है मुल्क में, विचार ही आ जाये तो काफी काम हो गया, एक्शन पीछे फॉलो करेगा। मेरी आप बात ही नहीं समझ रहे हैं। मैं यह कह रहा हूं, अगर एक्शन ही पैदा करना हो—एक्शन भी विचार से पैदा होते हैं।

हम यहां बैठे हुए हैं और मैं आपसे चिल्ला कर कहूं कि कमरे में आग लगी हुई है और आप कहें कि आप सिर्फ चिल्लाकर बोले चले जा रहे हैं कि कमरे में आग लगी है। आप कुछ करके बताइए। आपको किसी को आग नहीं दिखायी पड़ रही है और मुझे लगता है, इस वक्त कुछ और करने का सवाल नहीं है। अभी तो बड़ा सवाल यह है कि आपको दिखायी पड़ जाये कि आग लगी है, यह दिखायी पड़ जाये तो एक्शन पैदा होने वाला है। आप कमरे के बाहर निकलना शुरू करेंगे। मुझे कुछ करने का सवाल नहीं है। बड़ा सवाल यह है कि आग दिखायी पड़ जाये। मेरे लिए एक्शन कोई मूल्य ही नहीं रखता बहुत।

मैं मानता हूं कि एक्शन जो है वह बिल्कुल ही शैडो है थॉट की। विचार आता है, उसकी छाया की तरह एक्शन आता है। इस मुल्क में हजारों साल से सारी दुनिया में हमको एक्शन बड़ा कीमती बताया जाता था। समझा जाता है कि एक्शन ही बड़ी चीज है। मैं मानता नहीं हूं। मैं मानता हूं कि एक्शन तो होता है, विचार आ जाना चाहिए। विचार नहीं है। इसलिए मेरी सारी चेष्टा जोर से चिल्लाकर आपसे बात करने की है कि विचार वह कैसे पैदा हो। वह हो जाये, एक्शन आपमें पैदा होगा। वह मैं नहीं करना चाहता, उससे मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। यानी मैं उसे इर्रेलेवेंट मानता हूं, वह हो ही जायेगा। उससे कोई मतलब नहीं है।

आप जब कहते हैं न, 'पुट इन एक्शन,' तो आप यह समझते हैं कि थॉट को एक्शन में रखना भी पड़ता है। नहीं, मैं यह कहता हूं, थॉट कम्स इन एक्शन। थॉट होना चाहिए। एक्शन को मैं मानता ही नहीं कुछ क्योंकि आप जब आयेंगे इस कमरे में तो मैं यह नहीं कहता कि आप अपनी छाया भी ले लाना। मैं यह कहता ही नहीं। मैं कहता हूं, आप आ जाना। और आप कहेंगे कि मैं अपनी छाया को लाऊं या नहीं ? तो मैं कहूंगा कि उसकी बात ही करनी फिजूल है। मेरा मानना यह है कि एक दफा विचार का बीज आपके मन में बैठ जाये कि इट इज बाउंड टू कम इन एक्शन'। आपको लाना पड़े तो फिर विचार बैठा नहीं। फिर आप दूसरे का विचार पकड़कर लाने की कोशिश कर रहे हैं। दुनिया में हमेशा यह होता है कि अगर मेरा विचार है तो मैं आपसे कहूंगा कि इसको कोशिश करिये, प्रयत्न करिये कर्म में लाने की, आचरण में उतारिये। दूसरे के विचार को आचरण में उतारने की कोशिश करनी पड़ती है। आपमें विचार पैदा हो जाये तो वह आचरण में आता है। उसे करना नहीं पड़ता।

प्रश्न—आपके विचार से यह हुआ कि जब आग लगेगी तो उसमें कोई पानी लायेगा बुझाने के लिए और कोई ऐसा आदमी होगा तो पेट्रोल लायेगा। क्योंकि एक्शन जब आपका नियत नहीं होगा तो पेट्रोल ही लायेगा।

यह बिल्कुल ठीक है, यह सम्भावना है। और मैं चाहता हूं, यह सम्भावना पैदा हो। इसका मतलब यह है सिर्फ कि यहां इस कमरे में हम बैठे हुए हैं, और आग लगे और जल जायें और मर जायें बिना कुछ किये, उससे बेहतर है कि यहां कुछ हो। और मेरी अपनी समझ यह है कि अगर आप कमरे में जल रहे हैं तो आप पेट्रोल लाने वाले नहीं हैं। अगर कोई और जल रहा है, और ऐसा कोई जल रहा है कि जिसके जलने से आप बच सकें तो आप पेट्रोल लायेंगे—तो ही लायेंगे, नहीं तो आप नहीं लाने वाले हैं पेट्रोल। तो अगर समाज को यह पूरा बोध हो जाये कि किस आग से हम जल रहे हैं तो दस-पच्चीस लोगों के हित में है कि पेट्रोल लाया जाये। चालीस करोड़ के हित में नहीं है पेट्रोल लाना, पानी लाना है हित में। मेरा कहना यह है कि दस-पच्चीस लोगों के हित में है कि पेट्रोल लाया जाये। लेकिन दस-पच्चीस लोगों की चलेगी कि चालीस करोड़ लोगों की चलेगी ? यह विचार करने की हमें कोशिश करनी चाहिए कि चालीस करोड़ लोग कहीं दस-पच्चीस लोगों के पीछे खड़े होकर कहीं पेट्रोल लाने का काम न करें, जिसमें वे खुद ही जलेंगे। वे अभी कर रहे हैं।

जिन लोगों के हाथ में भी पुरानी सत्ता है, जिनके हाथ में भी धन है, जिनके हाथ में भी हुकूमत है, जो पुरानी व्यवस्था के साथ ही बच सकते हैं। पुरानी व्यवस्था गयी कि वे भी गये, वह बराबर कोशिश करेंगे पेट्रोल लाने की। और वह आपको भी यह समझाने की कोशिश करेंगे कि पेट्रोल नहीं है, पानी है। वह

यह भी समझाने की कोशिश करेंगे कि इससे आग जलेगी नहीं, बुझेगी। यह सब चलेगा। इसका मतलब यह है कि हमें दूसरा विचार खड़ा करने की कोशिश करनी चाहिए। इसके सिवाय उपाय नहीं है कोई।

प्रश्न—क्या उनके लिए पेट्रोल आवश्यक रहेगा ?

बिल्कुल आवश्यक रहेगा, हमेशा आवश्यक रहेगा। लेकिन हिंसा तभी तक होगी जब तक दस-पच्चीस को ऐसा लगता है कि वे दस-पच्चीस करोड़ को अपने साथ खड़ा कर सकते हैं। जिस दिन दस-पच्चीस को ऐसा लगे कि चालीस करोड़ उस तरफ हो गये, वे एकदम इम्पोटेंट हो जाते हैं। कुछ करने का सवाल नहीं है। मामला खत्म हो जाता है। यह कॉन्शसनेस साफ हो जानी चाहिए। वे मर गये, अपने आप मर गये। वे कुछ नहीं करेंगे। वे विदा हो गये। बल्कि वे बहुत जल्दी आग के साथ पानी लाने की कोशिश करेंगे। जैसा कि अंग्रेजों ने किया है इस मुल्क में। अंग्रेजों को यह साफ हो गयी बात कि यहां से उखड़ जाना पड़ेगा और उखड़ना फिर बहुत महंगा पड़ेगा। तो समझौते से चले जाना बहुत अच्छा है। इसमें पैर जमे रहेंगे, कुछ पैर जमे रहेंगे, मित्रता बनी रहेगी। यह दुश्मनी शांति से हल हो सकती है। यह साफ हो गयी है बात, तो हट जाना पड़ता है।

यह कोई हिन्दुस्तान में, जिन लोगों के भी हाथ में शोषण की सारी व्यवस्था है, वे एकदम हट जायें अगर चेतना पूरी तरह जाग जाये। चेतना न जगे तो उन-को हटाने में हिंसा करनी पड़ेगी। और मजा यह है कि हिंसा में आप बिड़ला को थोड़े ही मारेंगे ! बिड़ला के पीछे जो गरीब खड़ा है, वही मरेगा। यह आप भूल के भी मत करना। रूस में भी जो लोग मरे वे गरीब मरे। वह जो एक करोड़ लोगों की हत्या हुई वह कोई एक करोड़ लोग अमीर लोग नहीं थे, एक करोड़ लोग अमीर होते तो फिर कहना ही क्या ! वे सब गरीब लोग थे जिनको अमीरों ने यह समझाया था कि पुरानी व्यवस्था तुम्हारे हित में है। वे मरे, और अमीर तो बच गया, फिर भी बच गया। अमीर तो होशियार है, उसके पास बुद्धि भी है, सुविधा भी है, सम्पन्नता भी है, वह तो बच गया, वह तो नहीं मरा। वह तो कल बिड़ला मरने लगे तो उसका बैंक इंगलैंड में भी होगा, अमरीका में होगा, वे तो बच जायेंगे। लेकिन बिड़ला के पीछे जो नासमझ गरीब खड़ा होकर लड़ता रहेगा वह मर जायेगा। उसकी मौत हो जायेगी। मजा यह है। हिंसा भी होगी, अगर कम्यूनिज्म आये तो भी जो हिंसा होगी वह भी गरीब की होगी। अमीर की हिंसा होने का कोई मतलब नहीं, वह हो नहीं सकती।

प्रश्न—आप जो वैचारिक क्रांति के लिए कह रहे हैं और जो सलाह दे रहे हैं तो उससे एक्शन कैसे आयेगा ?

मेरा तो कहना यह है कि हमारी जो सारी चेष्टा होती है न, वह मेरी चेष्टा नहीं है। हमारी चेष्टा यह होती है आमतौर से कि मैं आपको एक विचार दूं

और एक निर्णय करूं कि यह कर्म उससे पैदा होना चाहिए। एक कमरे में हम बैठे हैं, जैसा मैंने आपसे कहा, आग लगी है, आपको दिखायी नहीं पड़ रहा है। मैं सिर्फ इतना ही कहता हूं कि आपको दिखायी पड़ जाये कि आग लगी है। इतना दिखायी पड़ जाना पर्याप्त है। और हमारी चेतना पकड़ लेगी उस एक्शन को जो होना चाहिए। इस आग को बुझाने का क्या उपाय है, वह रास्ता हम पकड़ लेंगे। मैं उसमें उत्सुक नहीं हूं, क्योंकि मेरा मानना यह है कि मेरी जैसे ही उसमें उत्सुकता हो जाती है, फिर मैं आपको विचार नहीं देना चाहता, फिर एक्शन ही देना चाहता हूं। फिर यह फिक्र होती है कि विचार की झंझट में कौन पड़े !

मैं आपको कहता हूं कि यह करिये। और मेरा मानना है, जो लोग भी आप-को यह बताते हैं कि यह करिये, वे आपके विचार को नुकसान पहुंचाते हैं। मैं यह कहता हूं कि आप देखिये कि आग लगी है कि नहीं। इसलिए मैं यह भी नहीं कहना चाहता कि आग लगी ही है। मैं इतना ही कहना चाहता हूं, आप उठिये, देखिये, सोचिये, हो सकता है आग लगी हो। और इसलिए मैं यह भी नहीं कहना चाहता कि आग लगी ही है। वह भी कहूं तो मैंने आपको नुकसान पहुंचाया। बस इतना कि आप देख सकें। आप सोच सकें। हो सकता है, आग न लगी हो, मैं गलती में होऊं तो आप मुझे दिखा सकें कि आप गलती में हैं, फिजूल परेशान हो रहे हैं, आग नहीं लगी है। तो मैं शांत हो जाऊं। यह सवाल बहुत गहरे में मुल्क चिन्तन कर सके—यह सवाल ही नहीं कि क्या चिन्तन करे, मुल्क चिन्तन कर ही नहीं रहा है किसी मसले पर। और एक बार मुल्क चिन्तन करने लगे तो ऐसा कोई मसला नहीं कि जिस पर चिन्तन नहीं होगा।

अभी फ्रांस में जो बच्चों का विद्रोह चला तो फ्रांस का एजुकेशन मिनिस्टर सोर-बान यूनिवर्सिटी में बोलने गया। तो उसने उसी के पहले शिक्षा पर छः सौ पृष्ठों की किताब लिखी थी। तो बेंगेट नाम के लड़के ने खड़े होकर उससे कहा कि हमने आपका घण्टे भर भाषण सुना और हम आपकी छः सौ पृष्ठों की किताब भी पढ़ गये, लेकिन हमारे एक भी मसले पर उसमें विचार नहीं है। तो दूसरे लड़के ने खड़े होकर कहा कि तुम्हारा सवाल ही गलत है। यह आदमी विचार करना ही नहीं जानता। यह सवाल ही नहीं है कि किसी मसले पर विचार करे।

ये विचार से बचने की कोशिश में लगे हुए लोग हैं। ये विचार करना ही नहीं चाहते। क्योंकि विचार करना खतरनाक है कुछ लोगों के लिए। विचार करने से सारी जगह के लूप-होल खुल जाने वाले हैं। जहां हमने थेगड़े लगा रखे हैं और जहां-जहां जिन्दगी को हमने कन्वीनिएंट बना रखा है, सब जगह से खुल जाने वाले हैं। क्योंकि विचार करने की आग में न-मालूम हमारी कितनी धारणाएं, कितनी आस्थाएं, कितने मंदिर, कितनी मूर्तियां, कितने गुरु, कितने शास्त्र विदा हो जायेंगे। कोई पक्ष में नहीं है विचार के। वह कहता है, विचार मत करना।

गीता में सब कहा हुआ है, वह मान लो। गांधीजी जो कहते हैं, वह मान लो।

नहीं, मेरी आप बात नहीं समझे । मैं इसीलिए तो आपको कोई पॉजिटिव प्रोग्रेम भी नहीं देना चाहता हूं। हमारा मन तो फौरन चाहता है कि पॉजिटिव कुछ नहीं ? मेरी तो पूरी प्रोसेस निगेटिव है। मैं तो आपको सिर्फ चिन्तन में डाल देना चाहता हूं। मैं तो मानता हूं, हिन्दुस्तान में कोई पचास की, पच्चीस की जरूरत है जो गांव-गांव में एक-एक आदमी की पुरानी धारणाओं को हिला दें। सब तरफ—राजनीति हो, धर्म हो, साहित्य हो, शिक्षा हो, सब तरफ हिला दें। और पूरा मुल्क खड़ा हो जाये, क्वेश्चनिंग हो जाये ! और पूरा मुल्क के सामने प्रश्न खड़ा हो जाये, हर चीज के पीछे प्रश्न लग जाये !

प्रश्न—अस्पष्ट

आप सोचें इस पर। मैं यह तो नहीं कहता कि आप मेरी बात मान लें और कर जायें, लेकिन आपने सोचा कि क्रांति हो गयी। मेरा मतलब आप नहीं समझे। इस पर ही आप सोचें। यानी दिस टू।

प्रश्न—कहां-कहां आग है ?

सब जगह आग है। लेकिन कहीं आग को देखने की क्षमता थोड़ी कम है, कहीं थोड़ी ज्यादा है। बंगाल में ज्यादा दिखती है और गुजरात में कम दिखती है। वह जरा गुजराती की देखने की क्षमता कम है। उसका कारण है।

प्रश्न—कोई प्रोग्राम आपके पास नहीं है। उसी समय में सिर्फ मानव के मन को खोखला बना देना है।

खोखला नहीं; पॉजिटिव प्रोग्राम से खोखला बनता है मानवीय मन।

प्रश्न—तो क्या जो पुराने मूल्य हैं, उनको तोड़-फोड़ दिया जाये ?

मैं यह भी नहीं कह रहा हूं। मैं कह रहा हूं—क्वेश्चन मार्क ! अगर वह आपको ठीक लगें तो उनको बचाइए, गलत लगें तो जाने दीजिए। मेरा प्रयत्न है कि सब संदिग्ध हो जाये। कोई भी चीज असंदिग्ध न रह जाये। क्योंकि जिस देश के पास जितनी ज्यादा असंदिग्ध चीजें होंगी, उस देश की प्रतिभा उतनी जंग खा जायेगी। जिस मुल्क के पास जितना डाउट होगा, उतना उसकी चेतना विकसित होगी, तर्क विकसित होगा, विज्ञान विकसित होगा, चिन्तन विकसित होगा, फिलॉसफी विकसित होगी, आइडिओलॉजी विकसित होगी।

निगेटिव प्रोग्राम ही आपको खोखला होने से बचा सकता है। पॉज़िटिव प्रोग्राम खोखला करता है। क्योंकि वह आपको मौका ही नहीं देता है सोचने का। वह कहता है, यह रहा भगवान, इसकी तुम पूजा करो, सब हो जायेगा, मामला खत्म ! तुम्हें कुछ होने की जरूरत नहीं है। तुम्हें सोचना नहीं है। और ब्रेन वॉश से मेरी बात बिल्कुल उल्टी है। ब्रेन वॉश आपको पॉजिटिव देता है, निगेटिव बिल्कुल नहीं देता। ब्रेन वॉश कहता है, केपिटल ही सत्य है। बस इसको ही रिपीट

किये चला जाता है। गीता ही सत्य है, ये सब ब्रेन वॉश के तरीके हैं। वह कभी नहीं कहता है कि सोचो।

प्रश्न—वे कहते हैं, ये ही सच है, ये ही सच हैं। आप कहते हैं, ये ही झूठ है, ये ही झूठ हैं।

नहीं, मैं यह नहीं कह रहा। मैं यह कह रहा हूं, क्या झूठ है, क्या सच है, यह तय नहीं है, यह सोचो। यह मैं नहीं कह रहा। अगर मैं यह कहूं, यह झूठ है, यह झूठ है, तब तो वह ब्रेन वॉश ही है। मैं यह कह रहा हूं कि कोई चीज, जो हम अब तक मानते चले आये हैं कि सच ही है, या मानते चले आये हैं कि झूठ ही है, इतना निश्चित कुछ भी नहीं है। और इस निश्चय के कारण समाज जंग खा गया। जिन्दगी अनिश्चित है, अनसर्टेन है। और डाउटिंग है, पूछने जैसी है, और पूछना चाहिए। जो ठीक लगे मानना चाहिए; लेकिन जो हम मान लें वह भी कभी ऐसा नहीं हो जाना चाहिए कि पूछना बन्द कर दें। उस पर भी पूछना सदा जारी रहना चाहिए, तो विकास होगा। नहीं तो डाउटिंग सोसाइटी और स्टैटिक सोसाइटी का इतना ही फर्क है कि जो जितनी सोसायटी स्टैटिक होगी, वह उतना ही मानती है कि सब निश्चित हो गया है, सब ज्ञात हो गया है, अब कुछ जानना नहीं है। अब कुछ पूछना नहीं है, कुछ खोजना नहीं है। विकसित समाज पूछता है, खोजता है, पूछता ही चला जाता है।

आइन्स्टीन से किसी ने पूछा मरने के कोई पांच-सात दिन पहले कि आप एक साइंटिफिक माइंड में और एक नॉन-साइंटिफिक माइंड में फर्क क्या करते हैं ? तो आइंस्टीन ने कहा कि अगर नॉन-साइंटिफिक माइंड से आप सौ सवाल पूछो तो वह सौ के ही उत्तर देने को राजी है। वह एक सवाल पर ही यह नहीं कहेगा कि मैं नहीं जानता हूं। अवैज्ञानिक चित्त कभी कहने की हिम्मत ही नहीं जुटाता कि मैं नहीं जानता हूं। वह सब जानता है, वह सर्वज्ञ है। साइंटिफिक से पूछो तो वह सौ में से निन्यानबे प्रश्नों को तो कहेगा कि हम कुछ भी नहीं जानते। एक के बाबत कहेगा, कुछ जानते हैं। वह भी पक्का निश्चित नहीं है। वह भी कल बदल सकता है। इतनी ह्युमिलिटी, इतना डाउट, इतनी इग्नोरेंस की स्वीकृति पैदा हो तो मुल्क विकास करता है।

तो मैं कोई ज्ञान देने को उत्सुक ही नहीं हूं जरा भी कि मैं आपको कोई ज्ञान दूं; तो ब्रेन-वॉश हो जायेगा। सब ज्ञानी ब्रेन-वॉश करते हैं। क्योंकि वह आपको ज्ञान दे देते हैं पॉजिटिव। वे कहते हैं, आपको सोचने की जरूरत नहीं है। यह रेडीमेड नॉलेज हम आपको देते हैं। आप इस पर एक्शन करो, बस, मामला खत्म होता है। मेरा वह बिल्कुल ही उल्टा है।

प्रश्न—आपने कहा कि इन्दिराजी कांग्रेस को चलाती रहेंगी और मोरारजी कांग्रेस को खत्म कर देंगे। तो मोरारजी कैसे खत्म कर देंगे, इस विषय में

कुछ कहें।

मोरारजी साफ हैं। उनका सब कुछ स्पष्ट है। समाजवाद की कोई बात उनके मन में नहीं है। न बात मन में है, न समाजवाद का धोखा खड़ा करने की बात है। इसलिए मोरारजी के साथ तो कांग्रेस जल्दी मर जायेगी। क्योंकि मोरारजी के साथ कांग्रेस सीधी पूंजीवादी हो जायेगी। इन्दिरा के साथ धोखा फिर जारी रहता है। कांग्रेस तय नहीं हो पाती कि क्या है? वह नेहरूजी के साथ भी धोखा जारी रहा। कांग्रेस तय नहीं हो पायी कि कांग्रेस क्या है? वल्लभ भाई के साथ तय हो जाती और जल्दी मर जाती। तो मुल्क का छुटकारा हो जाता। मोरारजी अच्छे हैं, क्योंकि सुइसाइडल हैं कांग्रेस के। वह जहर साबित होंगे, बिल्कुल जहर साबित होंगे।

प्रश्न—अस्पष्ट

मैं यह मानता हूं, मुल्क में भीतर बहुत अशान्ति है, बहुत पीड़ा है। वह प्रगट होनी चाहिए। प्रॉब्लम सॉल्व उनसे नहीं होगा, लेकिन वह इतने उपद्रव में खुद टूट जायें और मर जायें, तो प्रॉब्लम साल्व करने वाले लोग मुल्क में पैदा हो सकते हैं। वह कठिनाई नहीं है। यानी मेरा मानना है कि कांग्रेस की मृत्यु मुल्क के हित में होगी। कांग्रेस जब तक नहीं मरती तब तक मुल्क में नयी पार्टी के खड़े होने का बड़ा मुश्किल मामला है। इसको बिल्कुल मर जाना चाहिए। मोरारजी आयें तो जल्दी मरती है। इन्दिरा रहें तो थोड़ी देर लगती है। बहत्तर में तो नहीं मरती है, अगर इन्दिरा संभल जाती हैं तो बहत्तर में नहीं मरती है। इन्दिरा बहत्तर में जिता ले जायेगी।

प्रश्न—क्या कम्यूनिज्म के आने की सम्भावना भारत में है?

है तो सम्भावना, लेकिन ऐसे गलत लोगों के हाथ में है कम्यूनिज्म भारत का कि उससे बहुत आशा नहीं बनती।

प्रश्न—आपके विचार और हिप्पी के विचार में क्या फर्क है?

बड़ा मेल है, बड़ा मेल है। थोड़ा-सा फर्क है। मैं धार्मिक हिप्पी हूं, बस इतना ही फर्क है।

प्रश्न—जब कांग्रेस मर जायेगी—चाहे मोरारजी आयें तो दो साल में मरे और इन्दिरा आयें तो दस साल बाद मरे—तो जिस दिन कांग्रेस मर जायेगी तो क्या आपका ख्याल है कि यहां डेमॉक्रेसी चालू रहेगी या विकृत हो जायेगी?

कुछ भी हो, वह बेहतर होगा—पहली बात। क्योंकि इतने मरे हुए होने से कुछ भी होना बेहतर है। कुछ भी होना बेहतर है। मुल्क में कुछ भी तो हो। कुछ भी नहीं हो रहा है। बीस साल से ऐसा जड़ हो गया है कि हम एक कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगा रहे हैं। कुछ भी नहीं हो रहा है और होने का धोखा पैदा हुआ जा रहा है। लेकिन मेरा मानना है कि कांग्रेस का विघटन इस मुल्क में

डेमॉक्रेसी ला सकता है। कांग्रेस बचने की आखिरी कोशिश में डिक्टेटोरियल हो सकती है—आखिरी कोशिश में। जो आखिरी कोशिश होगी कांग्रेस की, वह डेमोक्रेसी का भ्रम छोड़ देना होगा। आखिरी बचने की जो कोशिश होगी। अभी तो वह समाजवाद का नाम लेकर बचने की कोशिश करेगी, लेकिन कितनी देर! इसके बाद आखिरी जो उपाय होगा वह यह होगा कि कांग्रेस अपने बचने की अंतिम चेष्टा में तानाशाही पैदा कर दे मुल्क में। हिन्दुस्तान की कोई दूसरी पार्टी अभी तानाशाही की हैसियत में नहीं है। सिर्फ कांग्रेस हो सकती है। यह डर पैदा हो सकता है कांग्रेस से।

कांग्रेस के विघटन से हिन्दुस्तान में डेमोक्रेसी की सम्भावना बहुत बढ़ जायेगी, क्योंकि बहुत बड़ी, मेजर पार्टी नहीं होगी। सब पार्टियां बंटी हुई ताकत में होंगी। हिन्दुस्तान में कभी कोई डिक्टेटरशिप की सम्भावना फिर नहीं है। कांग्रेस के साथ, एक तो नेहरू के साथ थी वह नेहरू के मरने के साथ खत्म हो गयी। अब कांग्रेस के साथ है, वह कांग्रेस के मरने के साथ खत्म हो जायेगी। डिक्टेटरशिप की सम्भावना नहीं है क्योंकि जितनी पार्टी होंगी, छोटी होंगी। ये थोड़े-बहुत दिन चला सकें। और इनको मोल-तोल से ही चलाना पड़ेगा। ये ज्यादा दिन, इनको कोई ताकत इकट्ठी नहीं हासिल कर सकता। कुछ भी हो, मैं यह मानता हूं कि ना-कुछ होने की हालत से कुछ भी होना बेहतर होगा।

प्रश्न—हमारी जो आज की स्थिति है मुल्क की, उसे देखते हुए आपको लगता है कि भारत के लोग डेमोक्रेसी के योग्य हो सकेंगे?

सवाल तो यह है—यह तो प्रत्येक आदमी को हक है डेमोक्रेसी का। वह कितना ही बुरा आदमी हो, कैसा ही अज्ञानी हो, कितना ही नासमझ हो, उसको व्यक्ति होने का हक है। डेमॉक्रेसी इतना ही कहती है कि हम तुम्हें स्वीकार करते हैं। उतना ही मूल्य देते हैं जितना किसी को देते हैं। और अगर हम हक पूछने जायें तो शायद कभी दुनिया ऐसी नहीं होगी कि हम मान सकें कि अब सब लोग लोकतन्त्र के योग्य हो गये हैं। ऐसे तो प्रत्येक हकदार है। लेकिन योग्यता तो कभी नहीं होगी पूरी। पूरी योग्यता तो तब हो जब कि जीसस क्राइस्ट जैसे सारे लोग हों। वह तो कभी नहीं होगा। इसलिए हमें बीच में ही चलना पड़ेगा। लोग अयोग्य होंगे और लोकतन्त्र की चेष्टा जारी रखनी पड़ेगी। ●

बड़ौदा, दिनांक १४ अगस्त १९६९

२३. गांधी की रुग्ण-दृष्टि

मेरे प्रिय आत्मन,

जॉर्ज बर्नार्ड शा ने एक छोटी-सी किताब लिखी है। वह किताब सूक्तियों की मैक्सिम्स की किताब है। उसमें पहली सूक्ति उसने बहुत अद्‌भुत लिखी है। पहला सूत्र उसने लिखा है, 'द फर्स्ट गोल्डन रूल इज दैट देअर आर नो गोल्डन रूल्स।' पहला स्वर्ण-सूत्र यह है कि जगत् में स्वर्ण-सूत्र हैं ही नहीं।

यह मुझे इसलिए स्मरण आता है कि जब मैं सोचने बैठता हूं, गांधी विचार पर बोलने के लिए, तो पहली बात तो मैं यह कहना चाहता हूं कि गांधी-विचार जैसी कोई विचार-दृष्टि है ही नहीं। गांधी-विचार जैसी कोई चीज नहीं है। 'गांधी-विश्वास' जैसी चीज है, 'गांधी-विचार' जैसी चीज नहीं है। गांधी के विश्वास हैं कुछ, लेकिन गांधी के पास कोई वैज्ञानिक दृष्टि और कोई वैज्ञानिक विचार नहीं है। गांधी के विश्वासों को ही हम अगर गांधी-विचार कहें, तो बात दूसरी है। क्योंकि विचार का पहला लक्षण है—संदेह। विचार शुरू होता है संदेह से। विचार की यात्रा ही चलती है डाउट, संदेह से। और गांधी संदेह करने को जरा भी राजी नहीं हैं। उनके जीवन की सारी चिन्तना चलती है, श्रद्धा से, विश्वास से। यह पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि जो व्यक्ति संदेह करने को राजी नहीं है, वह विचार के जगत् में कोई गति नहीं कर सकता है। जो व्यक्ति विश्वास करने को पकड़े बैठा हुआ है, वह विचार नहीं कर सकता है। उसे विचार करने की जरूरत ही

नहीं है।

ऐसी भूल गांधीजी के साथ हो गयी हो, ऐसा नहीं है। अगर उनके अकेले साथ हुई होती तो हम पहचान जाते कि गांधीजी के पास विचार नहीं है, विश्वास है, श्रद्धा है। यह हम नहीं पहचान पाये कि भारत के पास हजारों साल से विचार नहीं है। और विश्वासों की सम्पत्ति को ही हम विचार समझते हुए जी रहे हैं। भारत ने हजारों साल से विचार करना बन्द कर रखा है। विचार हम करते ही नहीं। क्योंकि विचार का जो पहला सूत्र है, उसे हमने इन्कार कर दिया है। हमने भारतीय दृष्टि को खड़ा किया है श्रद्धा की ईंट पर। और ध्यान रहे, जो कौम भी श्रद्धा की ईंट पर मनुष्य के व्यक्तित्व को खड़ा करना चाहती है, वह विचार की दुश्मन हो जाती है।

विचार और श्रद्धा में बुनियादी विरोध है। श्रद्धा कहती है, मानो, सोचो मत। श्रद्धा कहती है, स्वीकार करो, इन्कार मत करो। श्रद्धा कहती है, आस्था रखो अनास्था प्रगट मत करो। श्रद्धा कहती है, तुम्हें विचार की जरूरत नहीं है। विचार किया जा चुका है। महापुरुषों ने, अवतारों ने, शास्त्रकारों ने विचार कर लिया है, तुम्हारा काम है सिर्फ मानो। विचार मत करो। जब कि विचार की यात्रा बिल्कुल विपरीत है। विचार की यात्रा शुरू होती है संदेह से, प्रश्न से, पूछने से। विचार चलता ही है, बीज है उसका संदेह—शक करो, संदेह करो। मान मत लो, खोजो, अन्वेषण करो, और जब कि मानो बिना रहने का कोई उपाय ही न रह जाये, जब तुम सारी परीक्षा कर डालो, सारी खोज-बीन कर डालो और संदेह के लिए आगे कोई मौका ही न रह जाये, तभी स्वीकार करो। और वह स्वीकृति भी हाईपोथैटिकल हो, वह स्वीकृति भी इस तरह की हो—कल और विचार करेंगे, अगर बदलाहट होगी, तो बदल लेंगे।

भारत सैकड़ों वर्षों से श्रद्धा के आधार पर अपने व्यक्तित्व को खड़ा किया है, इसलिए भारत की प्रतिभा मर गयी है, और जंग खा गयी है। हमने सैकड़ों वर्ष से सोचा ही नहीं है सिर्फ माना है। कोई महावीर को मानता है, कोई कृष्ण को मानता है, कोई राम को मानता है। यह दूसरी बात है कि कौन किसको मानता है। लेकिन हम मानते हैं। सोचते हम नहीं हैं। इसलिए गांधीजी के सम्बन्ध में भी यह भ्रांति स्वाभाविक थी, क्योंकि हमारी परम्परा के अनुकूल पड़ती है। गांधीजी संदेह के लिए राजी नहीं हैं। वे भी आस्थावान हैं। आस्थावान विचार करता नहीं है, केवल विचारों को गृहण करता है। आस्थावान के पास सब विचार उधार होते हैं, मौलिक नहीं हो सकते हैं। आस्थावान यह कहता है कि मैं स्वीकार करने को तैयार हूं, कहीं से मिलते हों तो मैं ले लेता हूं। वह सुन लेता है और ले लेता है। गांधीजी के पास एक भी मौलिक विचार नहीं है। गांधीजी के पास सब उधार विचार हैं जो इस देश की परम्पराओं से या बाहर की

परम्पराओं से लिए गये हैं। गांधीजी की चिन्तना में उनका अपना कुछ भी नहीं है सिवाय इसके कि जोड़ भी नया हो सकता है। अगर मैं गांव में जाऊं और थोड़ा-थोड़ा सामान एक-एक घर से इकट्ठा करूं, सब उधार हो और उस सामान को जोड़कर एक ढेर लगा दूं, तो वह ढेर एक अर्थ में सिर्फ नया होगा—ढेर के अर्थ में, बाकी सब चीजें बासी, उधार होंगी।

गांधीजी के विचार में एक भी विचार उनका अपना नहीं है, निजी नहीं है। उनके सब विचार परम्परा, रूढ़ियों, शास्त्रों से गृहीत हैं। इसका भी कारण है। इसका भी बुनियादी कारण है। और गांधीजी का ही, ऐसा नहीं है हम सबका भी अधिक में ऐसा ही है। भारत के साथ ऐसा घट गया है। यह दुर्भाग्य पूरी भारतीय प्रतिमा का है, और गांधीजी की सफलता का राज भी यही है। भारत में विचारशील व्यक्ति के सफल होने की कम उम्मीद है। भारत में परम्परागत रूढ़िगत, भारत की हजारों साल से खून में मिल गयी बात है, उस पर ही खड़े होकर सफल हुआ जा सकता है। भारत में सफल होना हो तो विचारवान होना उचित नहीं है। उसमें कोई ताल-मेल नहीं बैठ सकेगा।

आप कह सकते हैं कि गांधी का अगर कोई विचार नहीं तो इतनी बड़ी सफलता कैसे? इतनी बड़ी सफलता सिर्फ इसलिए कि कोई विचार नहीं है। इस सफलता के पीछे कारण यही है कि हम, न विचार करने वालों के बीच में विचार करने वाला तो निरन्तर कठिनाई में पड़ जायेगा। हमारे बीच तो न विचार करने की धारा का व्यक्ति ही अंगीकार हो सकता है। या विचार जब कोई व्यक्ति दूसरे से गृहण करता है, जब उसके स्वयं के भीतर से वे पैदा नहीं होते तो।

ऐसा क्या कारण है, जिससे कोई व्यक्ति आस्थावान, श्रद्धावान हो जाता है? सच तो यह है कि बच्चे के जन्म के साथ श्रद्धा नहीं होती, बच्चे में संदेह होता है—स्वाभाविक संदेह। श्रद्धा सिखायी जाती है। छोटे-छोटे बच्चों में संदेह होता है, बड़ा जीवन्त संदेह होता है। वे हर चीज पर संदेह करते हैं। लेकिन हम उनके संदेह को मिटाते चले जाते हैं। हम उनके संदेह की जड़ काट देते हैं। हम इस-लिए जड़ काट देते हैं कि संदेह में छिपे हुए विद्रोह के बीज हैं, संदेह रिबेलिअस हैं, संदेह में खतरा है। अगर बच्चे सब चीजों पर संदेह करें, तो हमने जो व्यवस्था बना रखी है, वह सब टूट जाये।

इसलिए हम सबसे पहला काम यह करते हैं कि बच्चे का संदेह तोड़ देते हैं। बाप उससे कहता है कि मैं तुम्हारा पिता हूं, इसलिए मेरी बात मानो। वह कहता है, मेरी उम्र ज्यादा है, इसलिए मेरी बात मानो। वह कहता है। यही किताब कृष्ण ने भी कहीं-लिखी है, यही बुद्ध ने भी कहा है, इसलिए मेरी बात मान लो। वह बेटे पर, बच्चे पर विश्वास को थोपने की चेष्टा करता है। समाज की पूरी इच्छा संदेह को मिटाने की और विश्वास को थोपने की है। क्योंकि पुराने समाज

का ढांचा तभी जिन्दा रह सकता है, जब हम आने वाले बच्चों में संदेह को मिटा दें। लेकिन यह प्रक्रिया बड़ी आत्मघाती है, क्योंकि अगर संदेह मिट जाये, तो आने वाले समाज के निर्माण का उपाय नहीं रह जाता।

भारत में पुराना समाज ही चलता जा रहा है। नया समाज पैदा नहीं होता। क्योंकि नये समाज को पैदा होने का जो मूल सूत्र है 'संदेह', वह हम बच्चों में जड़ से काट देते हैं। हम उसकी पहले ही जड़ों में गैप रख देते हैं, उसको समाप्त कर देते हैं। संदेह, बच्चा पैदा नहीं कर पाता है, इसलिए बैलगाड़ी से हम कभी भी रॉकेट पर नहीं पहुंच सकते हैं। क्योंकि बैलगाड़ी से रॉकेट तक जाने की पहली बात तो यह है कि बैलगाड़ी पर संदेह हो। बैलगाड़ी चलाने वाले पर संदेह हो, बैलगाड़ी बनाने वाले पर संदेह हो और यह हो कि इससे बेहतर हो सकता है, इससे अच्छा हो सकता है। यहीं तक रुक जाने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन यह संदेह भारत की प्रतिभा से हमने हटा दिया है। इसलिए भारत ने एक जड़, स्टैग-नेंट सोसाइटी, एक ठहरा हुआ समाज पैदा किया है जिसमें कोई गति नहीं। इस-लिए भारत विज्ञान को पैदा नहीं कर पाया है।

संदेह पहला सूत्र है विचार का, और अगर विचार चले तो विज्ञान उसका परिणाम है। संदेह प्रारम्भ है, विचार यात्रा है, विज्ञान परिणाम है।

भारत में कोई विज्ञान पैदा न हो सका। न होने का कारण सिर्फ इतना है कि उसका पहला चरण ही संदेह को हमने काट दिया है। हम प्रत्येक को सिखाते हैं कि मानो। लेकिन मानो, यह सिखाने का रास्ता क्या है, इसका सीक्रेट क्या है? और गांधीजी क्यों मानने वाले व्यक्ति हैं, विचारने वाले व्यक्ति नहीं हैं। क्या कारण है?

मेरी दृष्टि में, जो बच्चा जितना भयभीत होगा, उतना श्रद्धावान होगा। जितना अभय होगा, उतना संदेहशील होगा। जितना फियरलेस होगा, जितना निर्भय होगा, उतना संदेह करेगा। जितना भयभीत होगा, उतना श्रद्धावान होगा। गांधीजी के व्यक्तित्व को समझने में यह सूत्र बहुत उपयोगी होगा कि गांधी का प्रारम्भिक व्यक्तित्व अत्यन्त भय से आक्रांत है। अत्यन्त भयभीत व्यक्ति हैं। उनकी प्रारम्भिक जीवन की सारी व्यवस्था भय पर खड़ी है। यद्यपि बाद में बहुत निर्भयता उनमें प्रगट हुई। इस सूत्र को समझना जरूरी होगा, क्योंकि इससे उनके व्यक्तित्व में और उनकी जो स्थिति है उसमें प्रवेश करने में बड़ा सहयोग मिलेगा। गांधीजी अत्यन्त भयातुर हैं। उतना भयभीत आदमी खोजना जरा मुश्किल है।

गांधीजी हिन्दुस्तान से योरोप की यात्रा पर जा रहे हैं। रास्ते में जहाज पर कुछ मित्र हैं। कैरो में जहाज रुकता है, तो वे मित्र कहते हैं कि चलो सांझ है, रात हम यहीं रुकेंगे, वेश्या के घर हो आयें। गांधी इतना साहस नहीं जुटा पाते

कि उनसे कह दें कि मैं वेश्या के घर नहीं जाना चाहता हूं। उन्हें डर लगता है कि पता नहीं वे क्या समझेंगे। शायद वे सोचेंगे कि यह कमजोर है। शायद वे सोचेंगे यह भयभीत है। वे यह कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाते कि मैं वेश्या के घर नहीं जाऊंगा। वे उनके साथ हो लेते हैं। अब दोहरा भय उनको पकड़ता है। एक तो यह भय है कि यह मित्र हंसेंगे अगर न जाऊं, इन्कार करूं। दूसरा भय यह है कि घर से चलते वक्त उनकी मां ने आज्ञा दी है और संकल्प दिलवा दिया है कि दूसरी स्त्री से सावधान रहना, बचकर रहना। अब ये दोनों भय उनके प्राणों को पकड़ लेते हैं। वे उस वेश्या के द्वार पर पहुंच गये हैं। मित्र उनको वेश्या के दरवाजे के भीतर पहुंचा देते हैं। दरवाजा बन्द हो जाता है। हाथ-पैर उनके कंप रहे हैं, पसीना छूट रहा है। वे घबराकर बिस्तर पर बैठ गये हैं। अब वह उस वेश्या को भी यह नहीं बता पाते हैं कि मैं किस मुसीबत में फंसा हुआ हूं। अब एक तीसरा भय सामने खड़ा हो गया है कि वेश्या बैठी हुई है, वह क्या सोचेगी! कोई सोच भी नहीं सकता कि यह व्यक्ति बाद के दिनों में इतना निर्भय कैसे हो गया!

गांधीजी वकालत पास करके हिन्दुस्तान वापस लौट आये हैं। रात भर वे तैयारी करते हैं अदालत में प्रगट होने की। रात भर सोते नहीं हैं। कण्ठस्थ कर लेते हैं, जो बोलना है। और दूसरे दिन अदालत में 'माई लार्ड' से ज्यादा नहीं बोल पाते हैं। इतना ही बोल पाते हैं। और इसके बाद चक्कर खाकर गिर पड़ते हैं। जो व्यक्ति अदालत में अपना पूरा वक्तव्य न दे सका—वकालत सीखकर आया है; रात भर तैयारी की है; चक्कर आ गया। हाथ पैर ढीले पड़ गये। आंखें बन्द हो गयीं। कुर्सी पर बैठ गया। यह व्यक्ति बाद में इतनी बड़ी हुकूमत से लड़ता है और उसकी जड़ें हिला देता है। जरूर इसके व्यक्तित्व में कोई गहरी आंतरिक ग्रन्थि है, जिसको समझना जरूरी है। नहीं समझेंगे तो बहुत कठिनाई होगी।

मेरी दृष्टि में गांधी के व्यक्तित्व को भय के बिना समझा ही नहीं जा सकता है। इतने वे भयभीत··· । वे पश्चिम जाकर मांसाहार नहीं करते हैं, दूसरी स्त्री के साथ दोस्ती नहीं करते हैं, नाचने नहीं जाते हैं, डरते हैं, भयभीत हैं। आम-तौर से आप सोचते होंगे कि शायद वे बड़े धार्मिक हैं। नहीं, मां से जो उन्होंने संकल्प लिए हैं, उसे तोड़ने की हिम्मत भी वे नहीं जुटा सकते। एक घर में अतिथि होकर ठहरते हैं। उस घर की महिला यह सोचकर कि यह युवक बड़ा अकेला-अकेला है, एक लड़की से दोस्ती करवा देती है। वे यह भी नहीं कह पाते हैं कि मैं विवाहित हूं। अब यह कौन-सा डर है कहने में कि मैं विवाहित हूं? लेकिन वे यह भी हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं कि उस घर की गृहणी को यह कह दें कि मैं विवाहित हूं, कृपा करके मुझे मित्रता मत कराइए। और वह महिला यह कोशिश

करती है कि इनका प्रेम बन जाये और इनका विवाह भी हो जाये। वह उस लड़की को भी नहीं कह पाते हैं कि मैं विवाहित हूं और इस प्रेम के जाल में मुझे मत फंसाओ। वह प्रेम में फंसते चले जाते हैं और यह नहीं बता पाते हैं कि मैं विवाहित हूं। एक दिन बात वहां आ जाती है कि अंतिम निर्णय लेना है। तब वह घर छोड़कर, चिट्ठी लिखकर भाग खड़े होते हैं कि मैं तो विवाहित हूं।

यह थोड़ा सोचने जैसा है कि इतना भय इनके भीतर—इस भय के कारण ही वे आस्थावान बन जाते हैं। इस भय के कारण ही वे संदेह नहीं कर सकते हैं। जो भयभीत है, वह संदेह नहीं कर सकता है। और इसलिए अगर किसी को आस्थावान बनाना हो, तो पहले उसे भयभीत करना जरूरी है। बच्चों को भी हम भयभीत करके आस्थावान बनाते हैं। शिक्षक डण्डा लिए हुए खड़ा है, बाप डण्डा लिए हुए खड़ा है। हम उसे भयभीत करते हैं छोटे से बच्चे को। जितना वह भयभीत हो जाता है उतना वह श्रद्धायुक्त हो जाता है। अगर हम उसे निर्भय करें तो वह संदेह करेगा। निर्भय के साथ संदेह आना जरूरी है। संदेह के साथ विचार आयेगा।

गांधी में विचार नहीं आता है। वे पश्चिम में जाते हैं तो भी वे इस तरह की संस्थाओं और इस तरह के लोगों से सम्बन्धित होते हैं जो निपट अवैज्ञानिक हैं। जब वे इंगलेंड में थे तो वहां डार्विन की चर्चा थी, लेकिन गांधीजी का डार्विन की चर्चा से कोई सम्बन्ध नहीं हुआ। क्योंकि डार्विन की चर्चा बड़ी संदेहपूर्ण थी। डार्विन ने सारी दुनिया के विचार को एक धक्का दे दिया था। सारी दुनिया में यह ख्याल था कि आदमी परमात्मा से पैदा हुआ है, परमात्मा का बेटा है। आदमी के अहंकार को इससे बड़ी तृप्ति मिलती है कि हम परमात्मा के बेटे हैं। इसलिए आदमी ने इस तरह की बातें ईजाद कर रखी थीं कि भगवान ने अपनी ही शक्ल में आदमी को बनाया है।

डार्विन ने एक बहुत बड़ा संदेह प्रगट किया, उसने कहा कि आदमी को देखकर यह पता नहीं चलता कि तुम भगवान से पैदा हुए हो। तुम्हें गौर से देखकर यह पता चलता है कि तुम्हारा पिता किसी न किसी अर्थ में बन्दर रहा होगा। आदमी की सारी स्थिति को देखकर उसने कहा कि यह बात बिल्कुल संदिग्ध मालूम होती है कि तुम भगवान से पैदा हुए हो। यह ज्यादा सही, वैज्ञानिक और तर्कयुक्त मालूम पड़ता है कि आदमी बन्दर से पैदा हुआ है। इतनी बड़ी क्रांति इसने खड़ी कर दी, क्योंकि हजारों वर्ष का ख्याल था कि भगवान का बेटा है आदमी। उस-ने कहा, बन्दर का बेटा है। एकदम भगवान की जगह पिता को हटाकर और बन्दर को रखना बड़ा कठिन मामला था। बड़ी हिम्मत की जरूरत थी। लेकिन डार्विन ने जो तर्क दिये थे, एकदम वैज्ञानिक थे।

आपको ख्याल भी नहीं है, आज भी आप जब रास्ते पर चलते हैं, तो आपने

ख्याल किया है, बायें पैर के साथ दायां हिलता है और दायें पैर के साथ बायां पैर हिलता था । कोई पूछे कि इनको हिलाने की क्या जरूरत है । डार्विन ने पहली दफा बताया है कि बन्दर चार हाथ-पैर से चलता था । वह आदत हाथ की अब भी नहीं मिटी। वह हाथ अब भी हिलता है । अब भी बायें के साथ दायां हिलता है, दायें के साथ बायां हिलता है । वह क्यों हिल रहा है ? वह दस लाख साल पहले की पुरानी आदत पड़ी अभी भी नहीं भूल पाया है, वह उसी तरह हिल रहा है । अब कोई जरूरत नहीं है । चलने में उससे कोई सम्बन्ध नहीं है । लेकिन वह हिलने की गति तो थिर हो गयी शरीर के भीतर । वह शरीर के क्रोमोसोम्स में, शरीर के सेल्स में घुस गयी है । वह वहां बैठी हुई है । डार्विन ने हजार तरह से यह प्रमाणित किया है कि आदमी जो है वह बन्दर का ही विकसित रूप है । लेकिन गांधीजी का डार्विन के विचार से इंगलैंड में रहकर कोई सम्पर्क नहीं हुआ, जब कि सारी हवा डार्विन की थी ।

मार्क्स के ख्याल ने सारी दुनिया के मस्तिष्क को बेचैन कर दिया था, लेकिन गांधी का सम्बन्ध उससे भी नहीं हुआ । मार्क्स ने एक अद्‌भुत, इससे भी बड़ी क्रांति की बात कही है । उसने पहली दफा यह कहा था कि सम्पत्ति व्यक्ति की नहीं है, और व्यक्ति ने धोखा पैदा किया है सम्पत्ति व्यक्ति की है । सम्पत्ति समाज की है । और उसने यह भी कहा कि यह सब जालसाजी की बातें हैं कि अपने-अपने कर्मों के फल के अनुसार कोई गरीब है और अमीर है । गरीब और अमीर समाज की व्यवस्था का परिणाम है, किसी कर्मों के फल का परिणाम नहीं है ।

मार्क्स की यह बात सारी दुनिया के विचारशील लोग विचार कर रहे थे । उसने भी बहुत धक्का दे दिया था । क्योंकि अब तक का नियम यह था कि हर आदमी अपने कर्मों का फल भोग रहा है । अब तक का यह विचार था कि अगर कोई गरीब है तो उसने पाप किये हैं इसलिए गरीब है । अमीर है तो उसने पुण्य किये हैं इसलिए अमीर है । कोई राजा है तो पुण्य का फल है, कोई भिखारी है तो पाप का फल है। इस सारी चिन्तना से—सारी दुनिया में मार्क्स ने एक क्रांति खड़ी कर दी है । उसकी क्रांति की बात ठीक मालूम पड़ती है । ऐसा मालूम पड़ता है कि यह अमीरों के द्वारा ईजाद किया गया सिद्धान्त है—गरीब को गरीब रखने के लिए और अमीर को अमीर बने रहने के लिए । लेकिन गांधी से उसका भी कोई सम्बन्ध नहीं हुआ । गांधी का सम्बन्ध किनसे हुआ ? गांधीजी इंगलैंड में थे जहां इतनी जोर का ऊहापोह चल रहा था—इस सदी का जन्म हो रहा था । इस सदी की क्रांतिकारी चिन्तना के सारे बीज इंगलैंड की हवा में थे, लेकिन गांधी का कोई सम्बन्ध ही नहीं हुआ । ऐसा लगता है कि गांधी को पता ही नहीं चला कि डार्विन भी हुआ है । गांधी ने उन्नीस सौ बयालीस में जेल में

मार्क्स की किताब पढ़ी—पचास साल बाद ! और पचास साल पहले जब वे इंगलैंड में थे, तो यह सारी हवा थी ।

गांधी का सम्बन्ध किनसे हुआ ? गांधी का सम्बन्ध बड़े अजीब लोगों से हुआ ! वेजिटेरियन, शाकाहारियों के सम्मेलन में वे उपस्थित रहे । शाकाहार की बातें उन्होंने चुनी । चाय पीनी चाहिए कि नहीं पीनी चाहिए, और यह सब्जी खानी चाहिए कि नहीं खानी चाहिए, और दूध लेना चाहिए तो बकरी का कि गाय का लेना चाहिए ! गांधीजी इन सारे लोगों से इंगलैंड में सम्बन्धित हुए । यह थोड़ा सोचने जैसा है । जहां इतनी क्रांति की चर्चा थी, जहां सब तरह की क्रांतियों के सूत्र निकल रहे थे, गांधी का सम्बन्ध बहुत अजीब लोगों से हुआ ! और वे उन्हीं के सम्पर्क में गये और वे उन्हीं की सब बातें सीखकर लौटे हैं ।

पश्चिम से वे तीन आदमियों के ख्याल लेकर भारत की तरफ आये । इसलिए एक और ख्याल आप समझ लेना, कि आमतौर से लोग समझते हैं कि गांधीजी भारत के बड़े प्रतिनिधि हैं, इस भूल में मत पड़ जाना । गांधीजी के तीनों गुरु पश्चिमी हैं । टाल्स्टाय, रस्किन, थोरो—ये तीनों गुरु उनके पश्चिम के थे । और जो इन तीन ने कहा है और किया है, गांधीजी उसे लेकर चुपचाप चले आये हैं श्रद्धा से स्वीकार किये हुए । उन तीनों की विचारधारा से वे प्रभावित हैं । उन तीनों के विचारों को उन्होंने आत्मसात कर लिया है । वे उन्हीं का फिर जिन्दगी भर प्रयोग करते रहे हैं । ये तीनों व्यक्ति बिल्कुल ही अवैज्ञानिक विचार के हैं । इनकी चिन्तना में कोई वैज्ञानिकता नहीं है । इनका विचार ऐसा है कि अगर आदमी मान ले, अगर थोड़ी-सी बात आदमी मान ले जिसको गांधीजी अपना गुरु स्वीकार करते हैं, तो जंगली दुनिया फिर वापस आ जायेगी । थोरो रेलगाड़ी के खिलाफ है, और उसी के प्रभाव में गांधीजी ने उन्नीस सौ सात में एक किताब लिखी 'हिन्द स्वराज्य' । और उसमें लिखा है कि रेलगाड़ी के मैं सख्त खिलाफ हूं । टेलीग्राफ के खिलाफ हूं । पोस्ट ऑफिस के खिलाफ हूं । इन सबके खिलाफ हूं । इनसे मनुष्य का पतन होने वाला है ।

प्रश्न—अस्पष्ट

लेकिन आपको पता होना चाहिए कि मनुष्य का जितना विकास हुआ है, वह सारा विकास इसीलिए हो सका है कि मनुष्य ने हाथ की जगह मशीन की ईजाद की है । सारा विकास इसलिए हो सका है । मशीन का मतलब केवल इतना है कि हम अपने उपकरणों को अपनी इन्द्रियों को हजार करोड़ गुना बड़ा कर लेते हैं । मनुष्य की सारी विकसित जीवन व्यवस्था यन्त्र पर विकसित हुई है । लेकिन वे तीन यन्त्र विरोधियों की बात सुनकर आ गये और उन्होंने भी यहां यन्त्र-विरोध की बात शुरू कर दी ।

उनकी बात न तो वैज्ञानिक है, न विचारपूर्ण । क्योंकि पहली तो बात यह है

कि मनुष्य को पीछे लौटाया नहीं जा सकता । यह असम्भव है । यह इसलिए असम्भव है कि पीछे लौटाना प्रकृति का नियम ही नहीं है । कोई चीज पीछे नहीं लौटती । जवान बूढ़ा होगा, बच्चा जवान होगा । बूढ़े को जवान बनाना, जवान को बच्चे बनाना, बच्चे को गर्भ में ले जाना सम्भव नहीं है । जिन्दगी सदा आगे की तरफ जाती है । व्यक्ति भी आगे की तरफ जाता है, समाज भी आगे की तरफ जाता है । समाज रोज आगे की तरफ गति करता है । पीछे लौटाना सम्भव ही नहीं है । पीछे लौटा ही नहीं जा सकता । और अगर पीछे बड़ा सुख था तो आदमी आज की दुनिया में आया ही कैसे ! वह आया ही इसलिए है कि पीछे बड़ा दुख है । लेकिन पीछे का दुख भूल गया है ।

मैं अभी काश्मीर के एक छोटे से गांव में था । एक मुसलमान मेरा खाना बनाता था, मीर मुहम्मद उसका नाम था । वह दो-तीन दिन मेरे साथ था । उसने कहा, 'किसी तरफ मुझे यहां से ले चलिये ।' मैंने कहा कि 'तू बिल्कुल पागल हो गया है । गांधीजी और उनके अनुयायी तो कहते हैं, सब बड़े शहर मिटा दो, छोटे गांव बना दो । और फिर तू इतनी सुन्दर जगह में है—पहाड़ पर बर्फ छायी हुई है । हिमालय की निकटता है । बर्फ है । हरियाली है । झरने हैं !' उस आदमी ने कहा, न मुझे दरख्तों से मतलब है, न पहाड़ से, न हरियाली से । क्योंकि पेट भूखा है, यह सब नहीं दिखायी पड़ते । यह भरे पेट को दिखायी पड़ने वाली चीजें हैं । यह बम्बई से जो लोग आते हैं, उसने कहा, उनको दिखायी पड़ता है कि पहाड़ पर बड़ी सुन्दर बर्फ जमी है । इधर पेट इतना भूखा है कि बर्फ के जमा होने में कोई सौन्दर्य नहीं दिखायी पड़ता है । उसने कहा, मुझे तो किसी तरह आप शहर में ले चलिये ।

सारे गांव के लोग शहर की तरफ भाग रहे हैं, अकारण नहीं भाग रहे हैं । भागना ही पड़ेगा । जो नहीं भाग पा रहे हैं वे भी दुखी हैं वहां रुक कर । वहां कोई आनन्दित नहीं है । लेकिन गांधी मानते हैं कि शहरों को विसर्जित करके वापस गांव की तरफ लौट जाना चाहिए । यह सभ्यता, यह संस्कृति मनुष्य की अब गांवों की तरफ वापस नहीं लौटेगी । गांवों से आयी है, गांवों की तरफ वापिस नहीं लौटेगी, क्योंकि गांवों में उसने बहुत तरह के दुख जाने हैं लेकिन हमें पता नहीं चलता । क्योंकि एक पीढ़ी जो शहर में पैदा हुई है, उसे पता ही नहीं है कि गांव की तकलीफ क्या है ? उसकी कल्पना के बाहर है । जब कार से वह गांव के पास से गुजरता है तो कहता है, अहा, कितना खुला आकाश है ! कितने अच्छे बादल घूम रहे हैं । कितना अच्छा सूरज निकला है ! उसे यही दिखायी पड़ रहा है । उसे पता नहीं है कि गांव के आदमी ने हजारों-लाखों साल में कितनी तक-लीफ और कितना कष्ट उठाया है, कितनी मुसीबत उठायी है । किस तरह चौबीस घण्टे मेहनत करके बामुश्किल पेट भरता आया है, फिर भी पेट नहीं भर पा रहा है !

गांव का वातावरण हमें कुछ देर के लिए हमारे अनुकूल तो लगता है, लेकिन वैज्ञानिक नहीं है, हमारे हित में नहीं है । ध्यान रहे, अनुकूल होना एक बात है, हित में होना बिल्कुल दूसरी बात है । अनुकूल होना एक बात है । अगर हम सब एक आंख के हों और मैं भी या तो एक आंख फोड़ लूं तो आपके अनुकूल पड़ेगा । क्योंकि यह लगेगा कि यह आदमी बड़ा अपने जैसा है, कितना अद्भुत आदमी है कि उसने हमारे साथ खड़े होकर एक आंख फोड़ ली । लेकिन मेरा एक आंख का हो जाना आपके हित में नहीं है । हित में तो यह है कि मैं आपको भी दो आंख का बनाने की कोशिश करूं । इस फर्क को आप समझ लेना ।

गांधीजी का दरिद्र हो जाना हित में नहीं । हित में तो यह है कि दरिद्र को गांधीजी सम्पन्न बनाने की कोशिश में संलग्न हों । गांधीजी को दरिद्र बना लेने से क्या होगा ? चालीस करोड़ की जगह चालीस करोड़ एक दरिद्र हो जायेंगे । और क्या होने वाला है ? इससे क्या फर्क पड़ने वाला है ? दरिद्रता और बढ़ जायेगी, एक आदमी और दरिद्र हो जायेगा । हां, दरिद्रों की तृप्ति मिल जायेगी, लेकिन उनका मंगल सिद्ध होने वाला नहीं है । मंगल तो उसमें सिद्ध होगा कि विचार-शील व्यक्ति, जो दरिद्र हैं, उनको सम्पन्न बनाने कीमिया और केमिस्ट्री के बाबत सोचे कि वे दरिद्र क्यों हैं ? लेकिन गांधीजी ने जो भी हमसे कहा है वह वही है, जिसकी वजह से हम दरिद्र हैं । अगर मान लें तो और दरिद्र हो जायेंगे ।

हिन्दुस्तान पांच हजार साल से दरिद्र है, और दरिद्र होने का सबसे बड़ा कारण यह है कि हमने धन का सम्मान नहीं किया है । कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति धन का सम्मान करेगा । धन का मोह नहीं कर रहा हूं, सम्मान कर रहा हूं । अगर आपको स्वस्थ रहना है, तो खून का सम्मान करना पड़ेगा । खून चलेगा शरीर में, तभी आप स्वस्थ रहेंगे और अगर आपने कहा कि हम तो खून को इन्कार करते हैं, हम खून को मानते ही नहीं, तो फिर पीलिया पकड़ लेगा और बीमार हो जायेंगे और सब समाप्त हो जायेगा ।

धन समाज की नसों में दौड़ता हुआ खून है । जितना खून समाज की नसों में दौड़ता है, उतना समाज स्वस्थ होता है । धन खून है । और इसीलिए अगर कोई खून हाथ में रोक ले बांधकर, तो बीमार पड़ जायेगा, क्योंकि खून अगर रुकता है तो गति बन्द हो जाती है । इसलिए जो लोग धन को तिजोरियों में रोकते हैं, वे समाज की खून की गति में बाधा डालते हैं । खून की गति रुक जाती है, समाज बीमार पड़ जाता है । लेकिन जितना अतिरिक्त खून हो, उतना जरूरी है । जितना अतिरिक्त धन हो, उतना जरूरी है । लेकिन गांधीजी का विचार यह कहता है, धन ? नहीं, धन की कोई जरूरत नहीं है । वे तो असल में उन लोगों से प्रभावित हैं—टाल्स्टाय जैसे लोगों से—जो कहते हैं, मुद्रा समाप्त कर देनी चाहिए । जो कहते हैं, रुपया होना नहीं चाहिए । वे चाहते तो अन्त में यह हैं कि एक बार्टर

सिस्टम, जैसा पुराना था दुनिया में लेन-देन का, मैं आपको गेहूं दे दूं, आप मुझे एक बकरी दे दें। मैं एक मुर्गा दे दूं, आप मुझे एक जूते की जोड़ी दे दें। वे तो चाहते हैं कि अन्ततः समाज ऐसा हो जहां चीजों का लेन-देन हो।

लेकिन ध्यान रहे, चीजों का लेन-देन करने वाला समाज कभी भी सुखी और सम्पन्न नहीं हो सका है। यह तो लेन-देन इतना उपद्रवपूर्ण है कि मुझे जूता चाहिए, आपको बकरी बेचनी है; और आपको जूता नहीं चाहिए, आपको गेहूं चाहिए। अब यह गेहूं वाले आदमी को हम खोजने जाते हैं, जो उसे गेहूं दे सकेगा। लेकिन उसे न जूता चाहिए, न बकरी चाहिए, उसे मुर्गी चाहिए। अब हम एक आदमी को खोजने जाते हैं जो मुर्गी बेचे। रुपये ने यह व्यवस्था कर दी है कि किसी को कुछ भी चाहिए हो, रुपया माध्यम बन जाता है। कोई फिक्र नहीं, आपको जूता चाहिए, मुझे मुर्गी चाहिए, रुपये से काम हो जायेगा।

रुपया बहुत अद्भुत चीज है। अगर मेरे खीसे में एक रुपया पड़ा है तो सिर्फ एक रुपया नहीं पड़ा है, मेरे खीसे में एक ही साथ करोड़ों चीजें पड़ी हैं। वैकल्पिक सम्भावनाएं पड़ी हैं। अगर मैं चाहूं तो एक रुपये में खाना ले लूं, मेरे खीसे में खाना पड़ा है। अगर मैं चाहूं तो जूता खरीद लूं; मेरे खीसे में जूता पड़ा है। अगर मैं चाहूं तो एक मोची खरीद लूं; मेरे खीसे में मोची पड़ा है। अगर मैं चाहूं तो दवा ले लूं; मेरे खीसे में दवा पड़ी हुई है। रुपये ने इतना अद्भुत काम किया है। लेकिन गांधी जैसे विचारक रुपया और मुद्रा के विरोध में हैं। अगर रुपया दुनिया से हट जाये, तो आदमी वहां पहुंच जायेगा, जहां जंगली आदमी हैं, आज भी आदिवासी हैं। उसको तेल चाहिए तब बेचारा गेहूं लाकर देगा, तब तेल देगा। गेहूं लाकर देगा, तो नमक ले पायेगा! लेकिन वैसी दुनिया में···!

रुपया जो है वह गति है, वह स्पीड है जिन्दगी में चलने की। अगर थिर बनाना हो समाज को, जड़ बनाना हो तो रुपया हटा दो। लेकिन इस मुल्क में रुपये का बहुत पुराना······। हम धन के दुश्मन हैं इसीलिए हम दरिद्र हैं। हम धन के ऐसे दुश्मन हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। हम कहते हैं, धन की कोई जरूरत ही नहीं है। हम कहते हैं, जो धन छोड़ देता है, वह बड़ा संन्यासी है। हम कहते हैं, जो धन को मानता ही नहीं है, वह बड़ा त्यागी है। वह होगा बड़ा त्यागी, होगा बड़ा संन्यासी, लेकिन वह समाज के लिए खतरनाक है। क्योंकि समाज के भीतर चाहिए धन को पैदा करने की तीव्र व्यवस्था। समाज के भीतर चाहिए कि हम धन का सृजन कर सकें, तो हमारी साख चारों दिशाओं में फैल सकेगी।

गांधीजी का विचार हमारे अनुकूल है। इसलिए गांधी हमें बड़े प्यारे लगते हैं। लेकिन अनुकूल और प्यारे लगने से कोई चीज ठीक नहीं हो जाती। अगर एक आदमी बीमार पड़ा हो और कहता हो कि मुझे मिठाई खाने को दो, तो जो

चिकित्सक उससे कहे, हां, मिठाई खाओ, वह अनुकूल मालूम पड़ेगा। लेकिन नुकसान पहुंचायेगा और जान भी ले लेगा।

अनुकूल और प्रीतिकर होने से कोई चीज श्रेष्ठ नहीं हो जाती। तर्क की और विज्ञान की कसौटी पर कसा जाना चाहिए कि इससे हित क्या होगा? इससे अहित बहुत हो चुका। हम जमीन पर सबसे पुरानी सभ्यता हैं। सच तो यह है कि अगर हमने समझदारी बरती होती तो आज दुनिया में हमसे ज्यादा समृद्ध कोई भी नहीं होता। जितने लम्बे दिनों से हमने खेती की है, किसी ने भी नहीं की है। जितने लम्बे दिनों से हम जिन्दगी को पार कर रहे हैं, उतने लम्बे दिनों से किसी कौम ने नहीं किया है। सब कौमें जीतती आयी हैं, और जीतकर आने वाली कौमों ने खेती में बड़ी प्रगति की है।

आज की हालत में रूस उन्नीस सौ चालीस से लेकर उन्नीस सौ पचास तक अपने रेल के इंजनों में कोयले की जगह में गेहूं जलाता था, क्योंकि कोयला ज्यादा मंहगा था, गेहूं ज्यादा सस्ता था। क्योंकि कोयले को बनने में लाख वर्ष लग जाते हैं और गेहूं हर साल पैदा होता है। वह एक मुल्क है कि जो अपने रेल के इंजन में गेहूं जलाया है, और यह एक मुल्क है कि जो अपने शरीर की जरूरतों के लिए गेहूं नहीं जुटा पा रहा है। थोड़ा सोचने वाली बात है। रूस भी इतना ही गरीब था। आज से पचास साल पहले हमसे भी ज्यादा गरीब था। रूस की गरीबी का कोई हिसाब न था। लेकिन पचास साल में वह न केवल अमीर हो गया, बल्कि सारी दुनिया में सिक्का बिठा दिया अपनी अमीरी का, अपने स्वास्थ्य का, अपनी उम्र का। आज रूस में सौ वर्ष के ऊपर के हजारों वृद्ध हैं, डेढ़ सौ वर्ष के लोग भी हैं। अभी एक बूढ़ी औरत मरी है, जिसकी उम्र एक सौ बहत्तर वर्ष है। वह परिपूर्ण स्वस्थ मरी।

समृद्धि, स्वास्थ्य और जीवन का आनन्द और जीवन की सारी व्यवस्था उन्होंने जुटा ली है। और हम? हम सबसे पुरानी कौम क्यों हार गये? हम एक हजार साल तक गुलाम रहे। कभी सोचा किसकी वजह से गुलाम रहे? कोई कहेगा कि मीर कासिम ने धोखा दे दिया। कोई कहेगा, फलां ने धोखा दे दिया। ये सब झूठी बातें हैं। धोखे-ओखे की वजह से यह नहीं हुआ है। धोखेबाज दुनिया में होते हैं। इसके होने का कुल कारण इतना है कि जब भी जो कौम हमारे ऊपर आयी, वह टेक्नालॉजिकली, यांत्रिक रूप से हमसे ज्यादा विकसित थी। बस, यांत्रिक रूप से जो विकसित था, वह जीत गया। अगर आप एक बन्दूक लिए खड़े हैं, मैं तोप लेकर आ जाऊं तो आप कितने ही बुद्धिमान हों, कितने ही देशभक्त हों, करेंगे क्या? और आप तोप लिए खड़े हैं, मैं एटम बम लेकर आ जाऊं, तो आप करेंगे क्या?

हिन्दुस्तान हमेशा तकनीकी दृष्टि से पीछे रहा इसलिए गुलाम होता रहा। और

अभी भी तकनीकी दृष्टि से हम दुनिया में सबसे पिछड़ी हुई कौम हैं । आप इस भ्रान्ति में मत रहना कि अगर चीन से टक्कर हो तो आप जीत जायेंगे । कविताएं वगैरह करना एक बात है कि 'हम शेर हैं, हम ऐसे हैं और हम चीरकर दो कर देंगे, हमसे जूझो मत !' वह सब कविताएं करना ठीक है, लेकिन कविताओं से कोई युद्ध नहीं जीते जाते । चीन का हमला हुआ, सारा हिन्दुस्तान कविता करने लगा । कोई पूछे कि पागल हो गये हो ? कविताओं से क्या होगा ? क्यों अपनी मजाक करवाते हो ? लेकिन कवियों ने कविताएं कर लीं, शोरगुल हो गये, तालियां बज गयी, उन कवियों को पद्म-भूषण और सब उपाधियां मिल गयीं और हिन्दुस्तान हार गया और जमीन पर चीन का कब्जा है ।

मैं एक नेता से बात कर रहा था कि वह लाखों मील जमीन के बाबत क्या ख्याल है ? वे शेर कहां गये जिन्होंने कविताएं लिखीं थीं ? उनसे पद्म-विभूषण की उपाधि वापस लो । राष्ट्रकवि बन गये, तो उनसे वापस लो । क्योंकि क्यों मजाक उड़वाते हो सारी दुनिया में ? जमीन का क्या हुआ ? अब क्यों चुप बैठे हो ? तो उन्होंने कहा कि वह जमीन तो बिल्कुल बेकार है । उसमें घास भी पैदा नहीं होता । उसका करना भी क्या है ? अगर घास भी पैदा नहीं होता है और जमीन बेकार है तो पूछता हूं, लड़े क्यों थे ? अपने सैनिकों को क्यों व्यर्थ कटवाया ? अगर जमीन बेकार थी और घास पैदा नहीं होता था तो जमीन वैसे ही दे देनी थी, वह बड़ा अच्छा होता, बड़ा गांधीवादी कृत्य होता । चीन भी प्रसन्न होता, सारी दुनिया भी खुश होती कि बड़ा अच्छा काम किया । फिर दे क्यों न दी, लड़े क्यों थे ? वहां नाहक गरीब हिन्दुस्तानियों को क्यों कटवाया ? तब जमीन बड़ी कीमती थी !

मैं आपसे कह रहा हूं कि हमारा चिन्तन का ढंग हमेशा वह लोमड़ी वाला ही है; अंगूर खट्टे हो जाते हैं, अगर हम न छू पायें । अब वह जमीन बेकार हो गयी; अब उसका कोई मतलब नहीं है । सब चुप हैं । सब शेर नदारद हो गये । सब शांत हो गये ।

चीन से आप जीत नहीं सकते । बहादुरी से जीत नहीं होती । यह पुराना ख्याल छोड़ दें कि बहादुर जीत जाता है । बहादुरी का मामला गया । अब तकनीक से जीत होती है, बुद्धिमान जीतता है । अब तकनीक हमारे पास क्या है ? हमारे पास तकनीक कुछ भी नहीं है ।

जब हिन्दुस्तान में सिकन्दर ने हमला किया तो सिकन्दर से पोरस कोई कम ताकत का आदमी नहीं था । हो सकता, दोनों मैदान में लड़ते तो शायद पोरस जीत जाता । पोरस बहुत हिम्मत का आदमी था, लेकिन तकनीक में पिछड़ा था । पोरस हाथियों को लेकर लड़ रहा था और सिकन्दर घोड़ों पर सवार होकर आया था । मुश्किल हो गयी । क्योंकि हाथी बरात वगैरह के लिए ठीक हैं, युद्ध के लिए

ठीक नहीं हैं । युद्ध की दृष्टि से टेकनोलॉजिकल नहीं हैं । हाथियों को लेकर युद्ध पर जाना नासमझी है । क्योंकि घोड़ा तेज जानवर है, थोड़ी जगह घेरता है, जल्दी गति करता है । जल्दी मुड़ता है । कहीं से भी बचता है, भागता है । हाथी इतना बड़ा जानवर कि आप बारात निकालते हैं और बाराती चले जा रहे हैं जनवासे की तरफ, तो बिल्कुल ठीक है, उसके पीछे चले जाइये । लेकिन हाथी जल्दी मुड़ नहीं सकता । इतना बड़ा जानवर है, जगह ज्यादा घेरता है । और अगर गड़बड़ हो जाये, घबरा जाये तो अपने ही सैनिकों को कुचल देता है । पोरस और सिकन्दर की लड़ाई में पोरस की हार अपने ही हाथियों की वजह से हुई ।

फिर हिन्दुस्तान में बाबर आया और हम उससे हारे, क्योंकि हम तलवारों से लड़ रहे थे । बाबर बारूद ले आया था । बारूद के सामने तलवार बेकार है । लेकिन यह कोई नहीं कहेगा । हम यही समझेंगे कि हिन्दुस्तान फूट की वजह से हार गया, दगाबाजों की वजह से हार गया । ये सब झूठी बातें हैं । असली बात यह है कि बारूद के सामने तलवार जीतेगी कैसे ? फिर हम अंग्रेजों से हारे । अंग्रेजों से भी हारने का कारण कुल इतना था कि हमारे पास बन्दूकें थीं, बारूद थीं, लेकिन अंग्रेजों के पास तोपें थीं । और तोपों के सामने हमारी बन्दूकें एकदम ठण्डी पड़ गयीं । वे कुछ भी न कर पायीं । आज भी हम उसी हालत में हैं । आज भी कोई फर्क नहीं पड़ गया है । आज भी जमीन पर अगर हम किसी से लड़ें तो हमारी हार सुनिश्चित है, क्योंकि उनके पास एटम बम हैं, हाइड्रोजन बम हैं । और हमारे पास कुछ भी नहीं है ।

नहीं, देश को वैज्ञानिक होने की जरूरत है, टेक्नोलॉजिकल विकास की जरूरत है । अगर पचास साल में हम दुनिया की दौड़ के साथ खड़े नहीं हो गये, तो शायद फिर हम कभी साथ खड़े नहीं हो सकेंगे, क्योंकि दौड़ का फासला बढ़ता ही चला जा रहा है । एकदम बढ़ता चला जा रहा है । हमारे उनके प्रश्न अलग हुए चले जा रहे हैं । हमारे उनके सवाल अलग हुए चले जा रहे हैं । अमरीका में आज वे उस आदमी को भी तनखवाह दे रहे हैं जो बेकार बैठा हुआ है । वह उसको बेकारी की तनखवाह दे रहे हैं । वे कहते हैं कि जो आदमी बेकार है, वह भी समाज पर बड़ी कृपा कर रहा है, क्योंकि वह मांग नहीं करता कि हमको नौकरी चाहिए । तो उसको भी तनखवाह मिलनी चाहिए । एक कौम उस जगह पहुंच गयी, जहां बेकार को तनखवाह बेकारी की दी जा रही है कि आप बेकार होने को राजी हैं । आप यह तनखवाह ले लें । नहीं तो वह झंझट खड़ा करें कि हमको नौकरी चाहिए !

अब अमरीका में चिन्तन चल रहा है कि धीरे-धीरे आने वाले पच्चीस वर्षों में सभी व्यवस्था ऑटोमेटिक, स्वचालित हो जायेगी । और लाखों करोड़ों लोग मुक्त हो जायेंगे काम से । जहां दस हजार आदमी काम करते हैं, वहां एक आदमी बटन

दबायेगा और काम कर लेगा। दस हजार आदमी मुक्त हो जायेंगे। तो अमरीका के सामने सवाल यह है कि जब दस हजार आदमी मुक्त हो जायेंगे तो साहित्य की, संगीत की कला की किन दिशाओं में लगाओ, नहीं तो बड़ी मुश्किल होगी। इनको किन्हीं दिशाओं में लगाना जरूरी होगा। और तनख्वाह तो इनको देनी पड़ेगी। क्योंकि कमाओगे किस लिए? वह दस हज़ार की जगह जो कारखाना चल रहा है, वह कमायेगा किसके लिए? आखिर इन्हीं के लिए कमायेगा। तो पश्चिमी में तो वे वहां पहुंचे जा रहे हैं जहां आदमी श्रम से मुक्त हो जायेगा। और जैसे ही आदमी श्रम से मुक्त होगा उसकी प्रतिभा छलांग लगाकर उन सीमाओं को छू लेगी, जिसको कभी-कभी कोई छू पाया है। कोई बुद्ध, किसी राजा का लड़का, कोई महावीर, किसी राजा का लड़का जिस प्रतिमा को कभी छू पाता है, उस प्रतिमा को रूस और अमरीका का मजदूर का बेटा भी छूने की हालत में आ गया है।

लेकिन हम? हम नहीं छू पायेंगे और हम बैठकर रामधुन करते रहेंगे। 'अल्ला ईश्वर तेरे नाम' कहते रहेंगे। हम जो कर रहे हैं, वह इतना अवैज्ञानिक है कि जीवन को बदलने से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

गांधीजी की पूरी दृष्टि अवैज्ञानिक है। विचार वहां नहीं है। अन्धे विश्वास की तरह वे वहां चल रहे हैं। और जो भी पुराना है, उसको वे नयी बोतलों में ढालकर हमको दिये चले जा रहे हैं। वह हमको अच्छा लग रहा है, क्योंकि हम इसके आदी हो गये हैं।

दो-चार बातें और कहना चाहूंगा, जिससे मैं आपको यह ख्याल दिला सकूं कि गांधीजी ने जो भी किया उससे अन्ततः हमें बहुत नुकसान पहुंचे हैं—अन्ततः। ऊपर से दिखायी पड़ता है कि बहुत फायदा हो गया, अन्ततः नुकसान पहुंचा है। हम कहते हैं, आजादी मिली। आजादी मिलती, आजादी गांधी की वजह से नहीं मिल जाती। गांधी जिन मुल्कों में नहीं हैं, वे भी आजाद हो गये हैं। सारी दुनिया आजाद हो गयी है। असल में दुनिया में किसी को गुलाम रखना आर्थिक रूप से मंहगा काम हो गया, और कोई कारण नहीं है। आज दुनिया में किसी को गुलाम रखना आर्थिक रूप से मंहगा काम हो गया है।

जैसे, उदाहरण के लिए—एक ज़माना था, गुलाम हम रखते थे। आदमी को खरीद लेते थे। जिस रामराज्य की गांधीजी बातें कहते हैं, शायद उन्हें पता नहीं है, उस रामराज्य में आदमी बिकता था। गुलाम खरीदे और बेचे जाते थे, औरतें खरीदी और बेची जाती थीं। बाजार भरे थे जहां आदमी बिकता था! आदमी बिकता था एक दिन। आदमी गुलाम बना लेता था दूसरे को, खरीद लेता था जिन्दगी भर के लिए। लेकिन बाद में पता चला धीरे-धीरे कि गुलाम मंहगा पड़ता है। उससे मजदूर सस्ता पड़ता है। गुलाम इसलिए मंहगा पड़ता है कि वह

बीमार हो जाये तो इलाज करो। कम से कम उसे इतना खाना तो दो कि वह काम कर सके। बूढ़ा हो जाये, तो उसका इन्तजाम रखो। हाथ-पैर टूट जायें तो सिर पर पड़ जाता है। तो गुलाम मंहगा पड़ने लगा। फिर गुलाम की व्यवस्था अपने आप उखड़ गयी। समझ में आया कि इसकी जगह तो मजदूर बेहतर है। मजदूर का मतलब है—छः घण्टे की गुलामी, चौबीस घण्टे की नहीं। हम छः घण्टे के लिए खरीदते हैं, बाकी तुम जानो। छः घण्टे के लिए हम तुम्हें खरीदते हैं, उससे हमारा सम्बन्ध है। बाकी अठारह घण्टे में तुम जानो, तुम्हें क्या होता है। दुनिया से दासता उठ गयी, क्योंकि मजदूर सस्ता पड़ा।

आपको मैं कहना चाहता हूं, राजनीतिक गुलामी दुनिया से उठ गयी इस सदी में आकर, क्योंकि राजनीतिक गुलामी मंहगी पड़ने लगी। राजनीतिक की जगह आर्थिक गुलामी, इकोनॉमिक स्लेवरी—नयी ईजाद आ गयी। राजनीतिक गुलामी का मतलब है, एक मुल्क पर पूरा कब्जा रखो। आखिर कब्जे का फायदा यह है कि उसका शोषण करो। यह पुराना ढंग था। अब नया ढंग यह है कि कब्जा रखने में बड़ी मुश्किल होती है, तो मुल्क इन्कार करता है शोषण से। झगड़ा करता है, विरोध करता है। दिन रात गोली चलाओ, पुलिस बिठाओ, मिलिट्री बिठाओ, फिर भी झंझट जारी रहती है। तब एक दूसरी नयी तरकीब ईजाद हो गयी है, वह है इकोनॉमिक स्लेवरी, वह है आर्थिक गुलामी; राजनीतिक नहीं। राजनीतिक रूप से मुक्त कर दो और आर्थिक रूप से भीतर बाजार में हाथ डालकर शोषण जारी रखो।

इसलिए दुनिया में सब मुल्क आजाद हो गये और सब मुल्कों को, जो उनके मालिक थे उन्होंने आजाद कर दिया है, सिर्फ उनके बाजारों पर कब्जा कर लिया है। उनके बाजारों से शोषण जारी है। हम समझते हैं स्वतन्त्र हो गये, लेकिन बाजार में जाकर देखें तो आलपिन से लेकर हवाई जहाज तक सब किसी कहीं और से बनकर चला आ रहा है। वहां का शोषण जारी है; आर्थिक शोषण जारी है। सारी दुनिया में यह समझ आ गयी कि अब राजनीतिक गुलामी बड़ी मंहगी पड़ती है, अब अर्थिक गुलामी ही उचित है। बाजार पर कब्जा रखो। इसलिए सारी दुनिया स्वतन्त्र हो गयी।

लेकिन गांधीजी की वजह से हिन्दुस्तान का विभाजन जरूर हुआ। आजादी तो फिर भी आ सकती थी, बिना विभाजन के आ सकती थी, लेकिन वह गांधीजी की वजह से नहीं आ सकी। क्यों? आप कहेंगे कि गांधीजी तो विभाजन के बिल्कुल खिलाफ थे। वे बिल्कुल खिलाफ थे, लेकिन उनका चिन्तन बिल्कुल पक्ष में था। वे बिल्कुल खिलाफ में थे, लेकिन वे जिस ढंग की बातें कर रहे थे, उससे यह होना सुनिश्चित था।

पहली तो बात यह है कि गांधीजी ने इस तरह की वेश-भूषा, इस तरह की

व्यवस्था, इस तरह का आचरण, इस तरह की महात्मागिरी का इन्तजाम किया कि गांधीजी पक्के हिन्दू मालूम पड़ने लगे। उनका भजन-कीर्तन, प्रार्थना, उनका आश्रम, उनके आश्रम के अतवासी उन्होंने सारे मुसलमानों को सचेत कर दिया कि अगर हिन्दुस्तान गांधीजी के हाथ में जाता है तो बहुत गहरे हिन्दू संस्कृति के हाथ में चला जायेगा। गांधीजी हिन्दू संस्कृति के बिल्कुल प्रतीक बन गये। और हमने उनको इसीलिए पूजा, महात्मा कहा। नहीं तो हम नहीं पूजते, महात्मा नहीं कहते। हिन्दू संस्कृति उनको पूजा देने लगी। उसने उनको अवतार मानना शुरू कर दिया क्योंकि वह हिन्दू संस्कृति के बिल्कुल प्रतीक बन गये, मालिक बन गये। लेकिन मुसलमान सचेत हो गया।

मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि गांधीजी ज्यादा हिन्दू थे, बजाय जिन्ना के ज्यादा मुसलमान होने के। जिन्ना इतना मुसलमान नहीं था, जितना गांधीजी पक्के हिन्दू थे। लेकिन यह हमें दिखायी नहीं पड़ा कि गांधीजी का महात्मापन मुसलमान को हिन्दू से अलग करता चला गया। और गांधीजी ने जितनी कोशिश की हिन्दू मुसलमान को एक करने की, एक बनाने की, वह कोशिश भी गलत साबित हुई क्योंकि यह भी अवैज्ञानिक थी, विचारपूर्ण नहीं थी। हिन्दू मुसलमान कभी एक नहीं हो सकते। अगर हिन्दू हिन्दू रहेगा और मुसलमान मुसलमान रहेगा तो एकता कभी नहीं हो सकती। असल में हिन्दू के हिन्दू होने में मुसलमान से झगड़ा छिपा हुआ है। मुसलमान के मुसलमान होने में हिन्दू से झगड़ा छिपा हुआ है। ज्यादा से ज्यादा दो बातें हो सकती हैं— या तो वे लड़ें या थोड़े देर वे रुककर लड़ने की तैयारी करें, और कोई फर्क नहीं हो सकता है। या वे दंगे फसाद करें, या थोड़े दिन के लिए अमन कमेटियां बनाकर भाषणबाजी करें, थोड़े दिन शान्त रहें, फिर तैयारी करें और लड़ें।

ठीक वैज्ञानिक बात तो यह थी कि अगर गांधी ने यह कहा होता कि मैं न हिन्दू हूं, और सिर्फ अकेला आदमी हूं, मनुष्य हूं। हिन्दू होने की मुझे कोई चिन्ता नहीं है, हिन्दू होना सब फिजूल है, अगर गांधी ने यह कहा होता; हिन्दू को हिन्दू होने से मिटाया होता और मुसलमान को मुसलमान होने से मिटाने की कोशिश की होती; हिन्दू मुसलमान को एक करने की कोशिश नहीं, हिन्दू को हिन्दू होने से मिटाने की, मुसलमान को मुसलमान होने से मिटाने की कोशिश की होती तो हिन्दुस्तान में आदमी बचता।

पाकिस्तान हिन्दुस्तान पैदा नहीं हुआ होता। फिर गांधीजी ने इतना जोर दिया, हिन्दू मुसलमान की एकता पर जोर से भी ख्याल पैदा होने लगा। इतना जोर देना, कि हिन्दू मुसलमान भाई-भाई हैं, शक पैदा कर देता है।

आपको पता है कि हिन्दुस्तान और चीन के झगड़े के पहले हम यह भी चिल्ला रहे थे कि हिन्दी-चीनी भाई-भाई। अब ध्यान रखना कि जब भी कोई नारा

पैदा हो फलाने-फलाने भाई-भाई, तब समझ लेना कि लड़ाई होने वाली है। असल में भाई-भाई का शोरगुल यह हम तब मचाते हैं जब लड़ाई पैदा होने के करीब आ जाती है। और दिखता है कि अब झंझट होगी। तो भाई-भाई कहकर उस झंझट को मिटाना चाहते हैं, झंझट के मूल कारण नहीं मिटाना चाहते। झंझट का मूल कारण कोई नहीं मिटाना चाहता। भाई-भाई कहकर झंझट मिटने वाली है ? मूल कारण देखना पड़ेगा कि मूल कारण कहां है ? बुनियाद में कारण कहां है, वह तो देखा नहीं ऊपर से लीपा पोती शुरू होती है कि अल्ला-ईश्वर तेरे नाम, हिन्दू मुस्लिम भाई-भाई, क़ुरान को भी पढ़ लो, गीता को भी पढ़ लो, सब साथ कर लो। इससे कुछ हुआ नहीं। जितने जोर से उन्होंने कहा, हिन्दू मुस्लिम भाई-भाई, उतना मुसलमान को यह पक्का दिखायी पड़ गया कि मेरे बिना साथ यह आजादी नहीं मिल सकती। इतना साफ होता चला गया कि गांधी और उनके अनुयायी मुझे मिलाने को अति आतुर हैं। उतना वह सख्त होता चला गया।

दूसरी मजे की बात यह है, ख्याल में हमें नहीं आती कि जब हम किसी को भाई-भाई होने पर जोर देते हैं, और अन्त में यह सिद्ध हो जाये कि वे भाई-भाई हैं, फिर भी झगड़ा न मिटता हो तो बंटवारे का सवाल अपने आप पैदा होता। बंटवारा भाइयों के बीच होता है, और किसी के बीच नहीं होता है। हिन्दुस्तान में हमने हिन्दू मुसलमान के भाई-भाई होने की इतनी बकवास की, इतना शोरगुल मचाया कि उन दोनों के दिमाग में पार्टिशन का ख्याल पैदा हो गया। अगर यह भाई-भाई की बात-चीत न की गयी होती तो बंटवारे का ख्याल ही पैदा न होता। दुनिया में यह पहला मौका है जब देश का बंटवारा हुआ। दुनिया में कभी देशों के बंटवारे नहीं हुए आज तक। यह पहला मौका है, उसके बाद तो सिलसिला शुरू हुआ, अब और भी हो सकते हैं। दुनिया में कभी देश का बंटवारा नहीं हुआ है क्योंकि दुनिया में यह हिन्दू मुसलमान के भाई-भाई का इतना शोरगुल नहीं मचाया गया था।

दो भाइयों में बंटवारा होता है। अगर मेरे आप भाई हैं और झगड़ा हो जाये तो एक ही रास्ता है कि मकान को बांट दो, बीच में दीवार खींच दो। भाई-भाई के शोरगुल मचाने का परिणाम है पाकिस्तान। आखिरी नतीजा यह था कि अब साथ नहीं बनता तो बंटवारा कर लो क्योंकि भाई-भाई तो हैं। जब भाई-भाई हैं तो बंटवारा तो मानना ही पड़ेगा। क्योंकि भाई-भाई बंटवारा कर लेते हैं। फिर बंटवारे से इन्कार करना मुश्किल हो गया। जब भाई-भाई की फिलॉसफी स्वीकार की तो बंटवारा उसका लॉजिकल कॉन्सिक्वन्स था, उसका तार्किक परिणाम था। वह बंटवारा हुआ। मुल्क दो हिस्सों में टूट गया, और दो हिस्सों में एक दिन के लिए नहीं टूट गया, सदा के लिए उपद्रव हो गया। और वह उपद्रव जारी रहेगा। उपद्रव को मिटाना मुश्किल है। लेकिन गांधी यह न कह सके

कि मैं हिन्दू नहीं, सिर्फ आदमी हूं। अगर गांधी यह हिम्मत जुटा लेते, तो यह हो सकता था कि हिन्दू की मान्यता गांधी में कम हो जाती, लेकिन हिन्दुस्तान का हित होता। हिन्दुस्तान का बड़ा हित हो सकता था। लेकिन उनके विचार में कोई वैज्ञानिक बात नहीं है।

वैज्ञानिक बात यह है कि जब तक दुनिया में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध हैं, तब तक दुनिया में झगड़े किसी न किसी भांति जारी रहेंगे। ये झगड़े की सीमाएं बनी हुई हैं। इनसे झगड़ा पैदा होता ही रहेगा। अगर झगड़ा मिटाना हो तो यह मत कहो कि हिन्दू, मुसलमान, जैन भाई-भाई हैं। यह कहो कि हिन्दू एक तरह का पागलपन है, मुसलमान दूसरे तरह का पागलपन है। हम सब तरह के पागलपन मिटाना चाहते हैं। हम स्वस्थ आदमी चाहते हैं; सीधा आदमी चाहते हैं, जिसके साथ कोई लेबल न लगा हो। हम बिना लेबल का आदमी चाहते हैं। बहुत झगड़ा हो चुका, बहुत लेबल के साथ पागलपन हो चुका, वह हम मिटाना चाहते हैं। लेकिन वे यह नहीं कह सके। उन्होंने तो कोशिश यह की कि कुरान भी ठीक, गीता भी ठीक सब ठीक। किसी भी भांति जुड़े रहो, सब ठीक। लेकिन भीतर बुनियादी कारण है जिनसे वह सब ठीक नहीं हो सकता। वह सब एक भी नहीं हो सकता।

और गांधी के मन में भी एक नहीं हो गया था। गांधीजी ने जिन्दगी भर दोहराया, 'अल्ला ईश्वर तेरे नाम' लेकिन जब गोली लगी, तो अल्लाह का नाम नहीं निकला। निकला राम का ही नाम। जब गोली लगी तो निकला, 'हे राम!' अल्लाह नहीं निकल सका। जिन्दगी भर दोहराने के बाद भी वह भीतर जो हिन्दू है, वह मौजूद है। वह कह रहा है, 'हे राम!' उस वक्त अगर 'हे अल्लाह' भी निकला होता तो थोड़ा सोच में आता कि इस आदमी के भीतर भी कहीं जाकर कोई बात मिल गयी होगी। वह भी भीतर नहीं मिल पायी। वह भी एक राजनीतिक व्यवस्था थी समझौतावादी, कि किसी भांति इकट्ठे, किसी तरह सब इकट्ठे होकर एक हो जायें, तो अच्छा हो।

गांधी के व्यक्तित्व में बुनियादी रूप से भय है और भय के कारण वह समझौतावादी हैं, कॉम्प्रोमाइजिंग हैं। असल में भयभीत आदमी हमेशा समझौते के लिए उत्सुक होता है—कोई भी समझौता। वे निरन्तर समझौते करते रहे। हिन्दुस्तान पाकिस्तान का बंटवारा आखिरी समझौता है। वह भी समझौता हो गया कि उससे भी टूट जाओ। वह हिन्दुस्तान के मन को समझौते की एक प्रवृत्ति में डाल गया। हर चीज—समझौता करते चले जाओ। आन्ध्र वाले अलग बनाना चाहें प्रान्त, तो अलग बनाओ; पंजाबी बनाना चाहें, पंजाबी का बनाओ। सारे मुल्क को समझौतेवादी प्रवृत्ति पर छोड़ गये। वह यह फिक्र नहीं दे गये कि मुल्क का कल्याण किसमें है, इसमें हम विचार करें।

और उन्होंने एक बहुत बड़ी नासमझी की, अत्यन्त अविचारपूर्ण बात की। उन्होंने कभी भी जो वे कहते थे, उसके लिए तर्क नहीं दिये। हमेशा उन्होंने कहा, मेरी अंतरात्मा की आवाज है। यह बहुत खतरनाक बात है। क्योंकि आपकी अंतरात्मा की आवाज गलत हो सकती है। किसी की अन्तरात्मा ने ठेका नहीं लिया हुआ है कि उसकी अन्तरात्मा की आवाज ठीक ही होगी। और आपकी अन्तरात्मा की आवाज एक हो सकती है, मेरी दूसरी हो सकती है, फिर क्या करियेगा?

और उन्होंने दूसरी एक बहुत खतरनाक ईजाद की इस मुल्क में—धमकी की। वह यह कि अगर आप मेरी बात नहीं मानते हैं तो मैं भूखा, अनशन करके मर जाऊंगा। इसका परिणाम हम हजारों साल तक भुगतेंगे। यह इतनी खतरनाक बात उन्होंने इस मुल्क को सिखा दी कि अब कोई भी नासमझ खड़े होकर कह सकता है कि मेरी अन्तरात्मा की आवाज है, चंडीगढ़ जो है वह पंजाब में होना चाहिए, नहीं तो मैं मर जाऊंगा! अब परेशानी है। अब डरो उससे, अब घबराओ उससे।

सत्याग्रह के नाम पर आत्महत्या की धमकी उन्होंने सिखा दी, सबको सिखा दी कि आत्महत्या की धमकी दे दो। अगर कोई आदमी कहता है कि मैं आग लगाकर मर जाऊंगा तो आप यह मत समझना कि वह आदमी कुछ गलत कह रहा है। वह गांधीवादी चिन्तन का ही फल है। वह यह कह रहा है कि धीरे-धीरे क्या मरना सत्तर दिन में! हम अभी आग लगाकर पेट्रोल डाल कर मरते हैं। वह फिर भी वैज्ञानिक है। सत्तर दिन में धीरे-धीरे क्या मरना! पेट्रोल डालकर मर जाते हैं। जल्दी खत्म किये लेते हैं। जल्दी तय करो, नहीं तो हम मर जायेंगे!

हिन्दुस्तान की बहुत-सी बीमारियां गांधीजी के अविचारपूर्ण चिन्तन से पैदा हुई हैं। हिन्दुस्तान में आज विद्यार्थियों की जो स्थिति है, उसके लिए गांधीजी के सिवाय और कोई जिम्मेवार नहीं है। हिन्दुस्तान की यूनिवर्सिटी, विश्वविद्यालय, महाविद्यालयों और स्कूलों से गांधीजी ने विद्यार्थियों को आजादी के लिए बाहर निकाला। रवीन्द्रनाथ ने इसका विरोध किया, तो रवीन्द्रनाथ देशद्रोही मालूम पड़े। एनी बेसेन्ट ने इसका विरोध किया तो एनी बेसेन्ट की इज्जत खत्म हो गयी। क्योंकि गांधीजी ने कहा, जब देश में आजादी का सवाल है तो पढ़ने का कोई सवाल नहीं है। पहले आजादी, फिर पढ़ना हम देखेंगे। रवीन्द्रनाथ ने कहा, यह खतरनाक बात आप कर रहे हैं, क्योंकि एक बार विद्यार्थियों के सामने अगर राजनीतिक पकड़ शुरू हो गयी, तो इसे मिटाना मुश्किल हो जायेगा।

आज रवीन्द्रनाथ सही साबित हो रहे हैं, गांधी पूरे के पूरे गलत साबित हो गये हैं, सोलह आने गलत साबित हो गये हैं। लेकिन उस दिन रवीन्द्रनाथ देशद्रोही

मालूम पड़े कि वे देशद्रोह की बातें कर रहे हैं। गांधीजी ने हिन्दुस्तान के विद्यार्थी को उठा लिया राजनीति में, अब वह वापस नहीं लौटता। अब वह कहता है, हड़ताल करेंगे। अब वह कहता है, कांच फोड़ेंगे, बस में आग लगायेंगे। अब वह कहता है, यह चाहिए, वह चाहिए। और हम कहते हैं कि तुम कैसे गांधी के देश के बेटे हो! तुम यह क्या कर रहे हो? वह ठीक पिता गांधी का अनुकरण ही कर रहा है। कोई फर्क नहीं कर रहा है। वह यह कह रहा है, हमें पढ़ना-लिखना पीछे, पहले राजनीति।

विद्यार्थी को राजनीति में खींचना बहुत महंगा पड़ा है। और अब कब इससे छुटकारा होगा, कहना मुश्किल है। यूनिवर्सिटीज व्यर्थ पड़ी हुई हैं। आज वहां शिक्षा का कोई काम नहीं हो पा रहा है, क्योंकि राजनीति पहले। आज हिन्दुस्तान का कोई विद्यार्थी पढ़ ही नहीं रहा है। सारी दुनिया के विद्यार्थी सारी शक्ति लगाकर पढ़ रहे हैं, सोच रहे हैं, विचार कर रहे हैं, खोज कर रहे हैं। हिन्दुस्तान का विद्यार्थी कुछ भी नहीं कर रहा है। उसका जिम्मा किस पर है? कौन जिम्मेवार है? अवैज्ञानिक थी बात।

विद्यार्थी को ज्ञान से बड़ी आजादी भी नहीं है। ध्यान रहे, ज्ञान से बड़ी आजादी भी नहीं है। युवकों को उपद्रवों में डालना ठीक नहीं है। उनको सारी शक्ति ज्ञान में लगा देनी उचित है। यूनिवर्सिटी के बाहर आकर लड़ाई लड़ लेंगे। फिर हिन्दुस्तान में आजादी की लड़ाई लड़ने वालों की कोई कमी थी? चालीस पचास करोड़ का मुल्क है. क्यों विद्यार्थियों को घसीटते हो? और लोग नहीं हैं? लेकिन सच बात यह है कि उपद्रव फिर विद्यार्थियों से ही करवाया जा सकता है। वे नासमझ हैं, भोले-भाले हैं, उकसाये जा सकते हैं। उनको उकसाकर उपद्रव करवाया है। अब वे वापस नहीं लौटे हैं। अब वे कहते हैं, उपद्रव जारी रहेगा। हिन्दुस्तान की सारी शिक्षा अस्त-व्यस्त हो गयी है। कैसे व्यवस्थित होगी, कहना मुश्किल है। बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है कि वह व्यवस्थित हो जाये।

अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान में दो सौ साल में शिक्षा का एक व्यवस्थित ढंग दिया था। गांधीजी ने वह सब अव्यवस्थित कर दिया। और उन्होंने इस तरह की बातें कहीं कि हम तो बुनियादी तालीम चाहते हैं। बुनियादी तालीम का मतलब है, चरखा चलाना सीखो, तकली चलाना सीखो, चटाई बुनना सीखो। बुनो चटाइयां, चर्खे चलाओ, लेकिन दुनिया से इस बुरी तरह से पिछड़ जाओगे कि उनके पैरों में खड़े होने की स्थिति भी न रह जायेगी। पश्चिम का लड़का चांद पर जाने का उपाय कर रहा है और हमारा लड़का बुनियादी तालीम लेगा, बेसिक एजुकेशन ले रहा है। वह यह कह रहा है कि हम तकली में से कैसे सूत निकालें। तो तुम निकालते रहो सूत, अमरीका के लड़के के सामने हारोगे; बच नहीं सकते। खो जाओगे, मिट जाओगे। लेकिन यह अवैज्ञानिक चिन्तना हमें समझ में नहीं आ

सकी।

और अब जब मैं ये बातें कहता हूं तो लोग मुझे गाली देने आ जाते हैं। वे कहते हैं कि आप गांधीजी के लिए ऐसा कहते हैं! मैं गांधीजी के लिए कुछ भी नहीं कह रहा हूं। गांधीजी से मुझे क्या लेना-देना है! कह इसलिए रहा हूं कि अगर यह अवैज्ञानिक चिन्तन हमको दिखायी नहीं पड़ा, तो हम आत्मघात कर लेंगे।

यह हिन्दुस्तान बुरी तरह से नुकसान में पड़ता जा रहा है और पड़ जायेगा। रोज हम गड्ढे में उतरते जा रहे हैं और अन्धकार में उतरते जा रहे हैं। और मैं आपसे कहना चाहता हूं कि उसका सबसे बड़ा जिम्मा गांधीजी पर है। उससे बड़ा जिम्मा किसी के ऊपर नहीं है। और अगर हम समय रहते चेत जायें और चीजों को सोच लें, समझ लें और भविष्य का निर्णय ले लें और गांधीजी से सावधान हो जायें, उनके अविचारपूर्ण बातों से सावधान हो जायें···।

लेकिन वह हम हो न पायेंगे, क्योंकि हमारी पुरानी आदत यह है कि अगर एक आदमी गलत बात कहता हो, लेकिन चरित्रवान हो तो हम उसकी बात मान लेंगे। जैसे कि चरित्र किसी सही बात के होने का सबूत है! एक आदमी कहता है, दो और दो पांच होते हैं और रात को पानी नहीं पीता है, तो हम कहेंगे बिल्कुल ठीक है। क्योंकि वह आदमी रात को पानी नहीं पीता है; क्योंकि वह आदमी दूध छानकर पीता है; क्योंकि वह आदमी चोरी नहीं करता; बेईमानी नहीं करता। वह दो और दो पांच जो कहता है, ठीक कहता होगा!

और मैं आपसे यह कहना चाहता हूं—यह आखिरी बात कि हिन्दुस्तान चरित्र को तर्क मान रहा है हजारों साल से, इससे बहुत नुकसान उठा रहा है। चरित्र तर्क नहीं है। तर्क की अपनी जगह है जो चरित्र से बिल्कुल अलग है। हिन्दुस्तान में अगर कोई आदमी अच्छा चरित्र निर्मित कर ले तो फिर हम पूछना ही छोड़ देते हैं कि वह जो कह रहा है वह साइंटिफिक है, वैज्ञानिक है? फिर हम पूछना छोड़ देते हैं। हम कहते हैं, चरित्रवान है, बस फिर ठीक है। फिर वह जो कह रहा है ठीक कह रहा है। लेकिन ऐसा कोई ठेका है कि चरित्र से कोई ठीक होने का सम्बन्ध है?

गांधीजी के पास एक चरित्र है, एक नैतिक चरित्र है। मैं उन्हें धार्मिक आदमी नहीं मानता हूं। एक अति नैतिक व्यक्ति मानता हूं। जिन्होंने बहुत श्रम करके एक तरह का चरित्र निर्माण किया है। बहुत श्रम उठाया है। लेकिन वह सारा श्रम सप्रेसिव है, दमन का है। वह दबा-दबाकर उन्होंने अपने को बदला है। उनका सारा ब्रह्मचर्य, सेक्स का दमन है। अति कामुक व्यक्ति थे बचपन से। जिस दिन पिता मरे हैं, पिता के पैर दाब रहे हैं, लेकिन मन उनका लगा है पत्नी पर। पिता मरने को हैं। पिता बचेंगे नहीं आज रात। लेकिन फिर भी मन लगा

है; आज की रात पत्नी को छोड़ नहीं सकते। और पत्नी भी अच्छी हालत में नहीं है। चार ही दिन बाद उसको बच्चा हुआ। वह गर्भवती है। लेकिन किसी ने कहा, लाओ मैं दबा देता हूं। वे मौका पाकर भाग गये हैं। अभी चार दिन बाद उसको बच्चा पैदा होने वाला है। वह बच्चा भी मर गया। और उस बच्चे के मरने का कारण भी वह संभोग हो सकता है। क्योंकि चार दिन शेष रहे गर्भ में अगर संभोग किया जाये, तो बच्चा मर सकता है। वह बच्चा मर गया चार दिन बाद पैदा होकर।

गांधी अपनी पत्नी के साथ बिस्तर पर सोये हैं, तब घर में हाहाकार मच गया कि पिता मर गये हैं। उनको बड़ा सदमा पहुंचा। और वह सदमा यह पहुंचा कि मैं कैसा कामुक हूं, कैसा सेक्सुअल हूं! फिर इसके खिलाफ वे जिन्दगी भर ब्रह्मचर्य साधते रहे और दमन करते रहे अपने सेक्स का, और ब्रह्मचर्य साधते रहे। यह सारा ब्रह्मचर्य उनके चित्त में काम की प्रवृत्ति से जो पहुंची पीड़ा और दुर्घटना है, उसका फल था।

और मैं कहता हूं, उनकी सारी अहिंसा उनके भीतर जो छिपा हुआ भय था उस भय से बचने का उपाय थी।

लेकिन अभी तो लम्बी चर्चा होगी। दुबारा आता हूं तो आपसे मैं बात करूंगा कि गांधीजी की अहिंसा भय पर खड़ी है। और गांधीजी का ब्रह्मचर्य सेक्स के दमन पर खड़ा है। इसलिए गांधीजी का व्यक्तित्व बहुत अर्थों में पैथोलॉजिकल है, मानसिक रूप से रुग्ण है। और अगर उसको हमने आदर्श मानकर हिन्दुस्तान के व्यक्तित्व को ढालने की कोशिश की तो हम सारे हिन्दुस्तान को पैथोलॉजिकल, बीमार बना दे सकते हैं।

जरूरी नहीं है कि मेरी सारी बातें मानी जायें। यह धोखा हम बहुत दफा खा चुके हैं इस मुल्क में। अब किसी की सब बातें मत मानना। जरूरी नहीं है कि मैं जो कहता हूं, वह सब सही ही हो—ऐसा मुझे दिखायी पड़ता है, इसलिए मैं कहता हूं। और अगर कल मुझे दिखायी पड़ जाये कि गलत है तो कह दूंगा, वह गलत है। मुझे दिखायी पड़ता है कि ऐसा है। आपको जरूरी नहीं है मेरी बात मान लेने की। आप सोचना। हो सकता है मेरी सारी बातें गलत हों। अगर गलत हों तो उनको कचरे में फेंक देना, अगर लेकिन ठीक मालूम पड़े तो सिर्फ इस वजह से इन्कार मत कर देना कि गांधीजी के विरोध में हम कैसे स्वीकार कर लें! सिर्फ इस वजह से इन्कार मत कर देना, सोचना। और मेरा किसी से विरोध नहीं है। गांधीजी से तो कोई भी विरोध नहीं है। विरोध है तो इस बात से है कि गांधीजी हिन्दुस्तान के भविष्य पर छाये नहीं होने चाहिए। गांधीजी की की छाया अब हिन्दुस्तान के भविष्य पर नहीं चाहिए। उनकी मूर्तियां गांव-गांव में खड़ी हैं, खड़ी रहें, लेकिन हिन्दुस्तान के भविष्य पर उनकी मूर्ति की छाप नहीं

होनी चाहिए अन्यथा हिन्दुस्तान भटक सकता है।

मेरी कड़वी बातों को भी इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे मैं बहुत अनुगृहीत हूं और अन्त में आप सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम को स्वीकार करें।

●

सुरेन्द्रनगर, दिनांक ११ नवम्बर १९६९

२४. राष्ट्रभाषा : अ-लोकतांत्रिक

प्रश्न—परमात्मा तक जाने के लिए क्या विश्वास के द्वारा ही जाया जा सकता है ?

मेरी समझ ऐसी है कि परमात्मा और विश्वास का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। और जो भी विश्वास करता है, उसको मैं आस्तिक नहीं कहता। विश्वास का मतलब है कि जिसे हम नहीं जानते हैं, उसे मानते हैं। और मेरा कहना है कि जिसे हम नहीं जानते, उसे मानने से बड़ा पाप नहीं हो सकता। अगर कोई ईश्वर को इन्कार करता है और कहता है कि मुझे अविश्वास है, तो भी मैं कह रहा हूं कि वह गलत बात कह रहा है। क्योंकि जब तक उसने खोज न लिया हो, समस्त को खोज न लिया हो और ऐसा पा न लिया हो कि ईश्वर नहीं है, तब तक ऐसा कहना ठीक नहीं कि अविश्वास है। और एक आदमी कहता है, मुझे विश्वास है, हालांकि मैंने जाना नहीं, देखा नहीं, लेकिन विश्वास करता हूं।

मैं दोनों बातें कहता हूं। मैं कहता हूं, ईश्वर जानने की चीज है; बिलीफ की नहीं, नोइंग की। जब मैं कहता हूं कि ईश्वर है तो यह मेरा विश्वास नहीं है, ऐसी मेरी प्रतीति है। ऐसा मुझे लगता है कि वही है और कुछ भी नहीं है। और ईश्वर को मैं कोई व्यक्तिवाची, पर्सनल तरीके से नहीं सोच पाता। ईश्वर से मेरा मतलब है, दी एग्जिस्टेंशियल। जो है, उसका ही नाम ईश्वर है। जो है, वॉट इज—बस उसको ही मैं ईश्वर कह रहा हूं। इसलिए अगर कोई कहे, ईश्वर नहीं भी है तो

मुझे दिक्कत नहीं पड़ती। इतना मैं कहता हूं कि जो है, वह है, और उसको नाम देने से कोई फर्क नहीं पड़ता।

प्रश्न—आपसे पूछना चाहूंगा कि यह जो आधुनिक भाषा है, उसमें ईश्वर शब्द का प्रयोग जिस कॉनोटेशन से किया जाता है, उसको ध्यान में रखते हुए जब परमात्मा, ईश्वर शब्द का इस्तेमाल अपने पब्लिक फंक्शंस में करते हैं, तो क्या आपको नहीं लगता कि इससे कुछ गैप हो जायेगी ?

न; गैप की स्थिति भी पैदा हो सकती है। समझदारी से समझदारी की बात कही जाये तो समझ पैदा हो सकती है। वह खतरा तो सदा है। वह तो बोले, कि खतरा है। गैर-समझ हो जायेगी। लेकिन मेरी चेष्टा यह है, परमात्मा शब्द मुझे बहुत प्रीतिकर मालूम होता है। उसके कॉनोटेशन सही नहीं हैं और जिस अर्थ में हमने उसे ग्रहण किया है, वह अर्थ भी गलत है। तो मैं दोनों काम करता हूं—जिस अर्थ में हमने उसे ग्रहण किया है, उसको गलत भी कहता हूं; और जिस अर्थ में ग्रहण करना चाहिए, उसकी बात भी करता हूं। लेकिन परमात्मा शब्द मुझे बहुत प्रीतिकर लगता है। वह मुझे इसलिए प्रीतिकर लगता है कि समस्त को प्रगट करने के लिए इससे ज्यादा इंटिमेट कोई टर्म नहीं है। सत्य हम कहें, तो सत्य कुछ बड़े फासले का मालूम पड़ता है—दूर, जिससे शायद हमारा सम्बन्ध जोड़ना मुश्किल है। अस्तित्व हम कहें तो एक डैड टर्म है, जिसमें जिन्दगी नहीं मालूम पड़ती, जीवन्तता नहीं मालूम पड़ती।

जब हम कहते हैं, 'परमात्मा', तो अस्तित्व में जो बात नहीं थी, वह परमात्मा में है। अस्तित्व से कुछ ज्यादा; एक जीवन्तता है; और दूसरी इंटिमेसी है, एक निकटता है। परमात्मा का मतलब—अस्तित्व कुछ ऐसा है जिससे हम किन्हीं अर्थों में सम्बन्धित हो सकते हैं। शब्द तो मुझे प्रीतिकर है। लेकिन उस शब्द से जुड़े हुए जो संयोग हैं, वे बहुत अप्रीतिकर हैं। और उन अप्रीतिकर संयोगों को मैं तोड़ने की कोशिश करता हूं।

प्रश्न—इसका अर्थ यह हुआ कि जहां तक आपको लगता है, वहां तक आदमी की जो लिंग्विस्टिक पॉसिबिलिटी है, वह 'ईश्वर' शब्द के आगे खत्म हो जाती है। क्या इससे अच्छा कोई शब्द नहीं हो सकता ?

कोई कठिनाई नहीं है। दूसरा शब्द भी खोजा जा सकता है। लेकिन शब्द की खोज भी एक माहौल में होती है। नयी दुनिया में जो शब्द खोजे जा रहे हैं, वे वैज्ञानिक हैं। जो नया मीडियम है, उसमें जो शब्दों की खोज है वह वैज्ञानिक है। और यह साइंटिफिक है। जिस दिन इस पृथ्वी पर मिल्यू रिलिजस थी, उस दिन जो श्रेष्ठतम शब्द खोजा था। वह परमात्मा था मिल्यू खो गया है। तो नया शब्द खोजना बहुत मुश्किल है। और अगर हम खोजेंगे तो वह कंस्ट्रक्टेड मालूम होगा, बना-बनाया मालूम होगा। और ऐसा नहीं कि शब्द न खोजे गये हों, शब्द

खोजे गये।

अब जैसे बुद्ध ने 'ईश्वर' शब्द का उपयोग नहीं किया; 'निर्वाण' शब्द का उपयोग किया, लेकिन फिर भी लगा कि निर्वाण बहुत दूर का शब्द है, और बुद्ध को प्रेम करने वाले बुद्ध को ही भगवान कहने लगे। 'निर्वाण' शब्द को खोजने वाले को भी अन्ततः उनके प्रेम करने वालों ने 'भगवान' शब्द दे दिया। 'भगवान' कुछ इतना निकट का शब्द है, भगवान में कुछ ऐसा प्रीतिपूर्ण भाव है कि वह छोड़ा नहीं जा सका। जैनों ने भी इन्कार कर दिया था। उन्होंने भी आत्मा के ऊपर मानने की स्वीकृति नहीं दी। आत्मा काफी है, और मोक्ष है, और भगवान को हटा दिया। लेकिन तब भी पीछे से फौरन परमात्मा वापस लौट आया, नये अर्थ लेकर वापस लौटा—कि आत्मा जब पूरी तरह से शुद्ध हो जाती है, सरल हो जाती है तो परमात्मा हो जाती है। लेकिन परमात्मा शब्द ने फिर अपनी जगह बना ली।

असल में आदमी के माइंड में कुछ आर्च टाइप हैं। अब तक पूरे इतिहास में परमात्मा से ज्यादा उचित शब्द नहीं खोजा जा सका। नहीं कहता कि नहीं खोजा जा सकेगा, खोजा जा सकता है; अगर पृथ्वी का मिल्यू फिर से रिलिजस हुआ तो शायद हम नया शब्द खोज लें, लेकिन नये शब्द से कोई प्रयोजन नहीं है। मेरा मानना है कि परमात्मा शब्द इतना जीवन्त है कि उसे नये अर्थ दिये जा सकते हैं।

असल में शब्द नया तब खोजना पड़ता है, जब पुराना शब्द इतना सीमित हो कि उसमें नये अर्थ जोड़ना मुश्किल हो; तब नया शब्द खोजना पड़ता है। अगर पुराना शब्द रोज नये अर्थ दे सकता है, तो नये शब्द खोजने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। परमात्मा मुझे अब भी एक लिविंग एनटिटी वाला शब्द मालूम पड़ता है। अभी उसमें नये अर्थ दिये जा सकते हैं। मैं भी उसमें नये अर्थ ही दे रहा हूं।

प्रश्न—जब आप इतने सारे लोगों के सामने भाषण देते हैं, तो जाहिर है कि आप उनसे कुछ कम्युनिकेट करना चाहते हैं।

निश्चित ही।

प्रश्न—और आप जानते हैं कि इस शब्द के पीछे इतने-इतने क्लस्टर...!

मैं उनको तोड़ता हूं। फिर भी मैं उनको तोड़ता हूं। असल में अगर मुझे आपसे कम्युनिकेट करना है, तो दो काम करने पड़ेंगे। एक तो वह भाषा उपयोग करनी पड़ेगी, जो आप समझते हैं। अगर मैं नया शब्द 'एक्स वाई जेड' उपयोग करता हूं तो कम्युनिकेशन नहीं होगा। और अगर मैं शब्दों का उपयोग करता हूं, जो आप समझते हैं, और आपके कनव्हिन्स नहीं करता हूं तो भी कम्युनिकेशन नहीं होगा। कम्युनिकेशन दोहरा काम से पूरा होगा। शब्द तो मैं वह उपयोग करूं जो आप समझते हैं लेकिन उन अर्थों में उपयोग करूं, जो आप नहीं समझते हैं।

तो आप शब्द को समझते हैं, यह आधार बनेगा; और उस अर्थ की तरफ मैं इशारा कर सकूं, जो आप नहीं समझते है तो कम्युनिकेशन हो सकता है। अगर मैं ऐसे शब्द का उपयोग करूं जो आप समझते नहीं, कभी नहीं समझते......एक तो अर्थ की कठिनाई है कि अर्थ नहीं समझते हैं, दूसरी शब्द की कठिनाई है, तो बहुत कठिन हो जायेगा। इसलिए शब्द तो मैं पुराने उपयोग करता हूं, और अर्थ उनको नये देने की चेष्टा करता हूं इसमें नासमझी और गलत समझी होने की सदा सम्भावना है। असल में मिसअंडरस्टैंडिंग की सदा सम्भावना है। अगर कुछ भी महत्वपूर्ण कहना हो तो मिस्-अंडरस्टुड होने के लिए तैयार होना ही पड़ेगा। इतनी चेष्टा तो करनी चाहिए कि कम से कम यह हो पाये।

प्रश्न—एक जनसाधारण के प्रतिनिधि के रूप में मैं इतना ही कह सकूंगा आपको कि आप अपना काम जानबूझकर मुश्किल बना रहे हैं।

ऐसा लग सकता है, ऐसा लग सकता है। असल में, जानबूझकर तो मैं उसको सरल बनाने की कोशिश करता हूं, लेकिन आदमी इतना जटिल है कि सब सरलताएं कठिन मालूम पड़ती हैं। मेरी तरफ से तो मैं कोशिश करता हूं कि सरल हो जाये बात। लेकिन आदमी इतना जटिल है कि जो कहना चाहिए, जो मैं कह रहा हूं, वह उस तक नहीं पहुंच पाता है, और पहुंच जाता है कुछ। जटिलता हो जाती है। कम्युनिकेशन हमेशा से जटिल है, आज की ही बात नहीं है। और हमेशा जटिल रहेगा। स्वाभाविक भी है, क्योंकि जो हम कहना चाहते हैं, वह मेरा अनुभव है और उस अनुभव को मुझे शब्दों से आप तक पहुंचाना है। शब्द पहुंच जाते हैं, अनुभव मेरे पास रह जाता है। इसलिए शब्द ज्यादा से ज्यादा इशारा बन सकते हैं। कठिनाई तब होती है, जब कोई शब्दों को जोर से पकड़ लेता है; तब बहुत मुश्किल हो जाती है।

प्रश्न—आपके ख्याल में ह्यूमन लैंग्वेज जो है—आदमी की भाषा के क्या-क्या लिमिटेशंस हैं ?

हां, मनुष्य की भाषा की बड़ी सीमाएं हैं; और मनुष्य की भाषा की बड़ी सम्भावनाएं हैं। पहली सीमा तो यह है कि जब भी हम बोलते हैं तो दूसरे तक शब्द ही पहुंचता है। शब्द के साथ जो मेरा अर्थ था, वह मेरे पास रह जाता है। और आपके पास शब्द पहुंचता है। और शब्द के साथ जो मीनिंग पहुंचता है, वह शब्दकोश का मीनिंग पहुंचता है, मेरा नहीं। और जब मैं एक शब्द का उपयोग कर रहा हूं तो मैं इनवॉल्वड हूं, उस शब्द में। उसमें कुछ अर्थ दे रहा हूं, कोई रंग, कोई शेड दे रहा हूं। तो पहली तो सीमा यह है कि शब्द शब्दकोश से निर्धारित होते हैं। और हम सब जब बात करते हैं तो हमारे अपने अर्थ होते हैं, जो इंडिविज्युअल होते हैं। उनको डालने की कठिनाई हो जाती है।

दूसरी कठिनाई यह है कि जब भी हम सुन रहे हैं—यह बोलने वाले के तरफ

से कठिनाई है—जब हम सुन रहे हैं, तो अक्सर जो हम सुनना चाहते हैं, वह सुन लेते हैं। जो हम नहीं सुनना चाहते हैं, उसे हम छोड़ ही जाते हैं। या, अगर हम पक्ष में हैं तो पक्ष में सुन लेते हैं; विपक्ष में हैं तो विपक्ष में सुन लेते हैं। हम चॉइस करते हैं पूरे समय। हम पूरा नहीं सुनते—जो पूरा कहा गया है, क्योंकि निष्पक्ष होना बड़ा कठिन है। और ओपन होना भी बड़ा कठिन है। एक आदमी पूरी तरह सुने, कोई भाव न ले, कोई पक्ष न ले, प्रिजुडिस्ड न हो, बहुत कठिन है। माइंड पूरे समय पीछे कुछ कर रहा है। जब मैं बोल रहा हूं, तब आपका माइंड कुछ कर रहा है। आप खाली नहीं बैठे हैं, आपका माइंड काम कर रहा है। उसका काम पूरे समय बाधा डाल रहा है। इसलिए सुनने जैसी घटना मुश्किल से ही हो पाती है।

तो भाषा की दो सीमाएं हैं—एक तो बोलने में अर्थ भी छूट जाता है, और सुनने वाला अपना अर्थ भी डालता है। ये सीमाएं हैं, लेकिन अगर ये सीमाएं हमारी समझ में आ जायें, और हमारे ख्याल में हों, और हम इन पर ध्यान रख सकें तो भाषा की सम्भावनाएं अनन्त हो जाती हैं। फिर हम भाषा से वह भी कह सकते हैं जो नहीं कहा जा सकता है। और भाषा से वे अर्थ भी पहुंचा सकते हैं जो बहुत बारीक और महीन है। हम वे बातें भी सुन सकते हैं जिनको कि कहना बहुत कठिन था। लेकिन अगर सुनने और बोलने वाले के बीच एक सिम्पैथी हो, एक सहानुभूति हो तो भाषा की सम्भावना अनन्त हो जाती है। एंटिपैथी हो तो भाषा की सीमाएं बहुत छोटी हो जाती हैं। अगर हम दोनों एक दूसरे के आमने-सामने खड़े होकर बात कर रहे हैं, जैसा कि हमारा पुराना हिसाब है—जब भी दो आदमी बात कर रहे हैं तो आमने-सामने बात कर रहे हैं।

अभी नये मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि स्कूलों में क्लास की व्यवस्था बदलनी चाहिए। उसमें शिक्षक सामने खड़ा है और लड़के सामने बैठे हुए हैं। यह एन-काउन्टरिंग है, यह खतरनाक है। यह एक दूसरे के अगेंस्ट है। तो नया मनोवैज्ञानिक कहता है, सर्कुलर होना चाहिए लड़कों को, सब तरफ होना चाहिए शिक्षक के, ताकि सीधी लड़ाई न हो जाये खड़ी। तो एक ग्रुप होना चाहिए जिसमें शिक्षक अलग खड़ा नहीं है और आप अलग नहीं हैं। शिक्षक घूम रहा है। कभी वह आपके पीछे भी पड़ता है, कभी बगल में भी पड़ता है।

मेरा मतलब यह है कि माइंड भी एनकाउन्टर जब करता है एक दूसरे को, तब भाषा बहुत सीधी हो जाती है।

प्रश्न—इस संदर्भ में आपसे मैं पूछना चाहूंगा कि आजकल पिछले थोड़े सालों में ब्रिटेन में जो लिंग्विस्टिक एनालिसिस की जो फिलॉसफी है, वे लोग अपना सारा ध्यान इसी प्रश्न पर—लिंग्विस्टिक एनालिसिस पर ही केन्द्रित करते हैं। तो क्या आपको लगता है, यह जो प्रवृत्ति है ब्रिटिश फिलॉसफर की यह एडमिरेबल है? इसके बारे में क्या ख्याल है आपका?

यह काम तो बहुत बढ़िया है और बड़ा कीमती है क्योंकि जब तक लैंग्वेज की ठीक से एनालिसिस न हो, तब तक लैंग्वेज की एनालिसिस न होने के कारण बहुत-सी भूलें होती रहती हैं, जिनमें व्यर्थ विवाद होता रहता है। लेकिन फिलॉसफी का कुल काम लैंग्वेज की एनालिसिस है, इससे मैं राजी नहीं हूं। फिलॉसफी का एक काम यह भी है। लेकिन फिलॉसफी और लैंग्वेज एनालिसिस पर्यायवाची हैं, बराबर हैं, ऐसा मैं नहीं कहता। फिलॉसफी का काम और बड़ा है। लेकिन उसमें एक काम वह भी जरूरी है कि हम भाषा को ठीक से समझने की कोशिश करें, क्योंकि बहुत-सी गड़बड़ी सिर्फ भाषा की वजह से है।

अब जैसे कि उदाहरण के लिए बुद्ध और महावीर एक साथ हुए हैं, और उनके बीच जो विवाद है, वह ऐसा लगता है कि भाषा का विवाद है। काश, भाषा की ठीक-ठीक व्याख्या हो सकती, तो शायद महावीर और बुद्ध के बीच विवाद नहीं होना चाहिए। महावीर कहते हैं, आत्मा को जानना ही ज्ञान है। और बुद्ध कहते हैं, जो आत्मा को मानता है उससे बड़ा अज्ञानी नहीं है। बड़ी मुश्किल की बात है, यह तो सीधा-उल्टा हो गया। लेकिन जितना समझने की कोशिश मैं करता हूं, मुझे लगता है, बुद्ध आत्मा को हमेशा अहंकार के अर्थों में प्रयोग करते हैं—इगो के अर्थों में। 'मैं'—इस अर्थ में वे आत्मा का प्रयोग करते हैं। और महावीर जब भी आत्मा का प्रयोग करते हैं, तो वे कहते हैं, 'मैं' के छूट जाने से जो शेष रह जायेगा, वह आत्मा है। अब यह बिल्कुल लिंग्विस्टिक मामला है। दोनों तरह प्रयोग हो सकता है। इगो जब मिट जायेगा, तो जो शेष रह जायेगा मेरे भीतर, अगर वह आत्मा है तो बुद्ध और महावीर के बीच कोई झगड़ा नहीं है। लेकिन बुद्ध यह कहते हैं कि जब 'मैं' नहीं रहेगा, तो कुछ बचेगा ही नहीं। तो वह मैं ही सब कुछ है। वही आत्मा है।

अगर हम भाषा को ठीक से समझ पायें, तो कई बातें ख्याल आयेंगी। दुनिया में दर्शन का जितना विवाद है, उसमें से नब्बे प्रतिशत लिंग्विस्टिक है। अगर भाषा की, लैंग्वेज की ठीक-ठीक एनालिसिस हो जाये, तो दुनिया में नब्बे प्रतिशत विवाद तो इसी क्षण विदा हो जायें। इसलिए ब्रिटिश फिलॉसफी ने इधर बीस-तीस वर्षों में जो काम किया है, वह बहुत कीमती है। लेकिन दार्शनिक की सदा की एक भूल रही है कि वह जो छोटा-सा काम करता है, उसे टोटल बना लेता है। तब झंझट खड़ी हो जाती है।

ब्रिटिश फिलॉसफी ने जो तीस साल में काम किया है वह प्रशंसनीय है। लेकिन खतरा क्या है? खतरा वही है कि वह जो आदमी के मन की निरन्तर भूल है कि धीरे-धीरे उन्होंने कहा कि सारी फिलॉसफी ही लैंग्वेज है; और इससे ज्यादा कुछ है ही नहीं—फिलॉसफी में। यह सब लिंग्विस्टिक मामला है, इससे ज्यादा कुछ है ही

नहीं। अगर हम लैंग्वेज को पूरा समझ लेते हैं तो फिलॉसफी विदा हो जायेगी। यह बात गलत है। क्योंकि बहुत कुछ है—बहुत कुछ है…।

सर विटगिन्स्टीन का एक वाक्य मुझे पसन्द है। उसने एक वाक्य कहा है, 'जो न कहा जा सके, उसे नहीं कहना चाहिए।' जो न कहा जा सके उसे नहीं कहना चाहिए। जैसा कि पुराने सारे दर्शन कहते हैं ब्रह्म है, लेकिन उसके सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता। तो वह विटगिन्स्टीन कहता है कि कृपा करके इतना भी मत कहो कि 'ब्रह्म है'। कम से कम इतना तो तुम कहते ही हो, और इतना भी कहते हो कि उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। मगर तुमने काफी कह दिया। इतना भी मत कहो, इससे उपद्रव पैदा होता है। लेकिन विटगिन्स्टीन यह जरूर मानता है कि कुछ है, जो नहीं कहा जा सकता। उससे इन्कार नहीं। उसे कहो मत, लेकिन उससे इन्कार नहीं; वह है।

हम बहुत कुछ अनुभव करते हैं, जो नहीं कहा जा सकता। और बहुत कुछ अनुभव कर सकते हैं, जो नहीं बताया जा सकता। मेरे सिर में दर्द है और जब मैं कहता हूं, 'मेरे सिर में दर्द है,' तो हालांकि मैं कह रहा हूं। लेकिन जिस आदमी के सिर में दर्द न हुआ हो, उससे मैं कुछ भी नहीं कह सकता कि मैं क्या कह रहा हूं? वह तो हम सबके सिर में दर्द हुआ है इसलिए कम्युनिकेट हो जाती है बात और फिर भी ध्यान रहे, वही कम्युनिकेट नहीं होती जो मेरे सिर में दर्द है। आपके सिर का दर्द पता नहीं किस तरह का है। जब मैं कहता हूं, 'मेरे सिर में दर्द है' तो आप यही समझते हैं कि जैसा सिर में दर्द आपको होता है, वही मुझे होगा। इसलिए कम्युनिकेशन फिर भी नहीं हुआ है। आपका सिरदर्द आपका है, मेरा सिरदर्द मेरा सिरदर्द है। इन दोनों का कभी ताल-मेल होगा नहीं, क्योंकि दोनों के सिरदर्द लेबोरेटरी में कभी सामने रखकर तौले नहीं जा सकते कि इसके सिर दर्द में क्या है, इसके सिरदर्द में क्या है। और सिर को खोलो तो दर्द विदा हो जाता है। दर्द का पता नहीं चलता है कि वह कहां है? लेकिन है। अगर दस आदमियों को सिरदर्द न हुआ हो और मैं उनके बीच में पड़ जाऊं और मैं कहूं कि मेरे सिर में दर्द है, तो वे कहेंगे, मैं पागल हूं। सिरदर्द होता ही नहीं। तो मैं लाख उपाय कर-के भी सिद्ध नहीं कर सकता कि सिरदर्द है।

भाषा के कारण जो भूलें हुई हैं, वह भाषा के विश्लेषण से सुधर जायेगी। और हम ज्यादा वैज्ञानिक ढंग से कम्युनिकेट कर सकेंगे।

प्रश्न—बहुत से लोग आते हैं पढ़े-लिखे लोग, जो अपने आपको इंटलेक्चुअल कहना पसन्द करते हैं। मॉडर्न स्थिति में रहते हैं लेकिन मानते हैं कि हम दूसरों से अलग हैं हमारी कैपेसिटी ज्यादा है। जो लोग करते हैं, वह फिफ्टीन पार्ट है उसका जो किया जा सकता है। तो आप जब लोगों के सामने बोलते हैं, तो आप को यह फर्क करना पसन्द आता है कि पांच हजार की मीटिंग है, तो मैं एक तरह

से बोलूं। कोई पढ़ा-लिखा आदमी इंटरव्यू लेने आये, और वह तरह-तरह के इंटलेक्चु-अल फैशन के वर्ड्स हों; यह आदमी सामान्य लोगों से ज्यादा पढ़ा लिखा है, तो इससे थोड़ा और ढंग से बात करूं। क्या आप ऐसा फर्क करना उचित समझते हैं?

साथ ही एक दूसरा सवाल—आप जिस उत्साह से सब जगह घूमते-फिरते हैं और लोगों को जिस ढंग से बातें करते हैं, उससे एक बात तो जाहिर है कि आप में कंसर्न तो बहुत है लोगों के लिए। हमारी जो दशा है, हमारे देश का इसके लिए कन्सर्न आप में बहुत है। तो उसके साथ यह भी आप मानते हैं कि जो समाज आपके सामने है, जिसके साथ आपको बात करनी है, कम्युनिकेट करना है, वह बहुत ही स्टेटिक सोसाइटी है। और नीड्स हैं वे बहुत ही एलिमेंट्री हैं—खाना, पीना, घर, मकान, कपड़ा, मेडिकल, ये बहुत एलिमेंट्री हैं। क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि एक तरह इसमें चेंज हो सकता है? सब लोगों को रोटी वगैरह का इन्तजाम किया जाये, उसके बाद उसको परमात्मा आदि बातों के बारे में कहा जाये, ताकि वह उनके सर पर से चला न जाये और वह मुझे एंटरटेनर के रूप में न लें कि यह कहानी आदमी कहता है, ठीक है, मजा है, आवाज मधुर है; लेकिन वह बात कभी-कभी कहता है कि यह झण्डा जो है हमारा, यह तो सिर्फ कपड़े का टुकड़ा है। तो हम यदि इण्टरनेशनल होना डिसाइड कर लें और जब तक सारा जगत् इण्टरनेशनल न हो तो उससे क्या फायदा? तो आप जब गरीबी पर बात करते हैं, तो लोगों को बहुत जंचती है कि यह हमारे काम की चीज है—कपड़े-खाने-पीने की बात है। हमें यह चाहिए। और दूसरी बात फिर ऐसा भी लगता है कि यह राष्ट्रध्वज जो है यह तो सिर्फ कपड़े का टुकड़ा है। अब इन दोनों बातों को एक ही गल्प में फॉलो करना लोगों के लिए मुश्किल होता है!

पहली बात तो यह कि मैं कभी फर्क नहीं करता अपनी तरफ से कि कौन आदमी इन्टलेक्चुअल है और कौन नहीं है। मैं नही फर्क करता। लेकिन फर्क अपने आप हो जाता है। क्योंकि मैं अपनी तरफ से, आप मुझसे कुछ बात करते हैं, तो आप जिस तल पर बात करते हैं उस तल पर मुझसे कुछ निकलवा लेते हैं। न तो मैं पहले से सोचकर बैठा हूं कि आपसे क्या बात करूं। न पहले से मेरा कोई हिसाब है, न सोचता हूं। आप सामने होते हैं तो बात निकल आती है। उस बात निकलने में मैं जितना जिम्मेदार हूं, उससे ज्यादा जिम्मेदार आप होते हैं। तो अगर एक सोफिस्टिकेटेड माइन्ड आये, तो वह जिस तरह की बातें करेगा, वह उस तरह की बातें मुझसे निकलवा लेगा। एक सीधा सादा किसान है, तो वह जिस तरह की बातें करेगा, वह मुझसे निकलवा लेगा। मेरे लिए कोई फर्क नहीं है। मेरे लिए कोई फर्क नहीं है, क्योंकि मुझे कुछ अपनी तरफ से कहना ही है, ऐसा नहीं है—डायलॉग है। आप मुझसे कुछ बात करते हैं, उससे कुछ निकल आता है, वह निकल आता है, लेकिन मुझे कोई फर्क करने का सवाल ख्याल में नहीं आता।

फिर मेरी अपनी समझ यह है कि जिनको हम बहुत सोफिस्टिकेटेड कहते हैं, अक्सर जरूरी नहीं है कि वे इन्टेलिजेन्ट ही हों, क्योंकि बहुत गहरे में जैसे-जैसे इन्टेलिजेन्स बढ़ती है वैसे-वैसे सोनफिस्टिकेशन विदा होने लगता है । और चीजें सरल और सीधी और साफ हो जाती हैं असल में अनसोफिस्टिकेटेड माइन्ड सरल होता है, ऐसा नहीं है । इन्टेलिजेंट माइन्ड सरल होता है । जितना विचारशील व्यक्ति हो, उतना सरल हो जाता है । और इन्टलेक्चुअल होने का जो ढंग है, वह अक्सर इन्टलेक्चुअल को नहीं होता, वह अक्सर उसको होता है जो इन्टेलेक्चुअल नहीं है । इन्टलेक्चुअल माइन्ड को कभी ये सवाल नहीं उठते हैं जो इन्टलेक्चुअल हैं ।

असल में स्वस्थ आदमी को पता ही नहीं चलता कि स्वस्थ है । सिर्फ बीमार को यह ख्याल में रहता है स्वस्थ है या नहीं है, या दावा करे या न करे । ये सब बीमार के ही लक्षण हैं । स्वस्थ आदमी को पता ही नहीं चलता । वह होना इतना सरल होता है कि उसका कुछ पता ही नहीं चलता । हमारे मुल्क में जो इन्टलेक्चु-अल को इतना ख्याल रहता है—इन्टलेक्चुअल होने का, उसका कुल कारण इतना है कि इन्टलेक्चुअल बहुत कम हैं; जिसको इन्टेलिजेंस कहें, वह न के बराबर है । इसलिए बड़ा रुग्ण बोध, एक बीमार ख्याल है इन्टलेक्ट का । और उसकी वजह इन्टलेक्चुअल अकड़ा हुआ है । और व्यर्थ सोफिस्टिकेट कर रहा है । और व्यर्थ सीधी-सीधी चीजों को उलझा रहा है, क्योंकि उलझा कर वह दिखायी पड़ सकता है कि वह इन्टलेक्चुअल है । यह हमारे मुल्क की भ्रांति में एक हिस्सा है । लेकिन मैं कोई फर्क नहीं करता ।

और जरूरी नहीं है कि आइ० क्यू० ज्यादा हो किसी का तो वह इन्टलेक्चुअल हो, यह भी जरूरी नहीं है । क्योंकि जितनी समझ बढ़ती जाती है, उतना पता चलता है, आइ० क्यू० में कोई ठीक मेजरमेंट नहीं है । कुछ भी नहीं कहा जा सकता है । कुछ भी नहीं कहा जा सकता । बहुत मुश्किल है मामला ।

रवीन्द्रनाथ परीक्षा में फेल हो सकते हैं, कुछ पक्का नहीं चल सकता है । गांधी थर्ड क्लास आ सकते हैं । आठ सौ लड़कों में मैट्रिक में चार सौ चार वां नम्बर था गांधी का । वे चार सौ चार लड़के जो गांधी के ऊपर थे, वे हो सकता है हाई स्कूल में गांधी से आगे निकल गये हों, वे कहां हैं ? उनका कुछ पता नहीं है । जिन्दगी बहुत जटिल है और आइ० क्यू० कोई अभी भी सीधा-सादा मेजरमेंट है, बहुत गहरा नहीं है, पकड़ नहीं पाता । इसलिए उस सबकी मैं कोई फिक्र नहीं करता । पांच हजार लोग मुझे सुन रहे हैं, तो उसमें मैं यह फिक्र नहीं करता कि कौन बुद्धिमान हैं, कौन गैर-बुद्धिमान हैं । तो पांच हजार लोगों की चेतना से जिस भांति मैं सम्बन्धित हो सकता हूं, हो जाता हूं । वह भी कॉन्शस एफर्ट नहीं है ।

दूसरी बात आप जो कहते हैं—दूसरी बात जो कहते हैं कि एलिमेंट्री रीति से—खाना है, कपड़ा है, रोटी है, मकान का छप्पर है, वह पूरा न हुआ हो तो और दूसरी बातों में कोई रस कैसे ले ? लेकिन मेरी अपनी समझ यह है कि जिन्दगी इतना इकट्ठा जोड़ है कि अगर वह खाना, कपड़ा, मकान का छप्पर पूरा नहीं हुआ है तो उसका कारण भी जिन्दगी की पूरी टोटलिटी को न देखना ही है । और उसके पूरे न होने में भी हमने जो फिलॉसफी और रिलिजस ख्याल बना रखे हैं । वे कारण हैं । और अगर हम उनको नहीं बदलते तो यह भी पूरा होने वाला नहीं है ।

हालांकि ऊपर से ऐसे ही दिखायी पड़ता है कि आखिर भारत में रोटी नहीं है, छप्पर नहीं है, तो यह पहले आना चाहिए । लेकिन मेरा मानना यह है कि भारत के पास जो फिलॉसफी है, वह ऐसी है कि उसमें रोटी छप्पर हो ही नहीं सकता । तो अगर हम उस फिलॉसफी से नहीं लड़ते हैं, और उस फिलॉसफी से रोटी-छप्पर बनाकर नहीं लड़ा जा सकता । उस फिलॉसफी से फिलॉसफिकली ही लड़ना पड़ेगा । उस फिलॉसफी से अगर हम नहीं लड़ते हैं तो हम रोटी, छप्पर की स्थिति भी पैदा नहीं कर पायेंगे ।

तो यह हो सकता है कि जिसका पेट खाली हो उसे लगे कि क्या बेकार बातें कर रहे हैं । अब जैसे समझ लें, एक आदमी भूखा है और हम उससे कहते हैं कि गेहूं पैदा करने की यह विधि है; और वह कहता है कि यह क्या बेकार की बातें कर रहे हैं ? मुझे रोटी चाहिए । आप कहां गेहूं पैदा करने की बातें कर रहे हैं ! तो उसकी बात भी हमारे समझ में पड़ती है, क्योंकि भूखे के लिए कन्सर्न इतना इमीजिएट है कि आपकी दूर की बात का कोई मतलब नहीं है । लेकिन वह भूखा भी इसीलिए है कि कुछ लोगों ने पहले दूर के कन्सर्न की फिक्र नहीं की, नहीं तो वह भूखा भी नहीं होता । और अगर हम भी नहीं फिक्र करते हैं भूख की, तो बीस साल बाद भी वह भूखा होगा ।

मेरी अपनी समझ यह है कि जिन्दगी के प्रॉब्लम्स दो तरह के हैं । एक तो इमी-जिएट प्रॉब्लम्स हैं; और इमीजिएट प्रॉब्लम्स को ही अगर हम हल करने में लगे रहें, तो प्रॉब्लम्स कभी खत्म न होंगे । और दूसरे दूर के प्रॉब्लम्स हैं, जिनको अगर हम हल कर लें तो बीस साल बाद हमारे बच्चों के लिए इमीजिएट जैसी चीज न रह जायेगी ।

तो वह दोहरे तल पर हमें लड़ाई लड़नी पड़ेगी । तो मैं दोहरे तल पर ही बात कर रहा हूं । मैं उस रोजी-रोटी की भी बात कर रहा हूं और यह भी फिक्र कर रहा हूं कि रोजी-रोटी पैदा क्यों न हो सकी ? आखिर बात क्या है ? ऐसी कौन-सी कठिनाई हमारे साथ है कि रोजी-रोटी पैदा नहीं कर पाये ? तो हमारी मानसिक जो कण्डीशनिंग है, वह रोजी-रोटी पैदा नहीं होने दे रही है । उसको

बदलना पड़ेगा ।

मैं एक घटना पढ़ रहा था कि कुछ सोशलाजिस्ट दो कम्युनिटीस का अध्ययन कर रहे थे अमेजान में। तो वे दोनों कम्युनिटी एक ही पहाड़ पर रहती है; आदिवासी हैं। दोनों के पास एक-सी जमीन है, लेकिन एक गरीब है और एक अमीर है ! और दोनों का मौसम एक है, और दोनों का सब एक है। लेकिन एक सदा से गरीब है, और एक सदा से अमीर है। वे बड़े हैरान हुए कि मामला क्या है ? क्योंकि जमीन वही है औजार वही हैं, सब कुछ वही है, इसलिए इसमें तो कुछ फर्क करने का कारण ही नहीं है। एक गांव उनका है, बगल में दूसरा गांव है। तो वह अमीर गांव है, यह गरीब गांव है। मामला क्या है ? तो वे दोनों बड़े हैरान हुए। दोनों की फिलॉसफी अलग है। जो कम्युनिटी गरीब है उसकी फिलॉसफी यह है कि किसी व्यक्ति का व्यक्तिगत कुछ भी नहीं है, सब सामूहिक है। एक खेत पर काम करता है, तो पूरा गांव काम करेगा । खेत छोटा-सा है । पहाड़ी इलाका है, खेत छोटा-सा है, पूरा गांव उसमें काम करने आता है। बजाय काम बढ़ने के काम घटता है, क्योंकि उतने लोगों को उस खेत में खड़े होने का प्रॉब्लम है। तब तक सब खेतों का काम बन्द रहेगा, क्योंकि वे सारे लोग तो एक खेत पर काम करेंगे, फिर दूसरे खेत पर काम करने जायेंगे, फिर तीसरे खेत पर। वे दो-चार खेत पर काम कर पायेंगे कि मौसम निकल जायेगा। दूसरी कम्युनिटी इण्डिविज्युअल है। छोटे-छोटे खेत के टुकड़े हैं, वे अपना-अपना काम कर रहे हैं। पूरा गांव इकट्ठा काम कर लेता है। वह पहली कम्युनिटी—एक अर्थ में सोशलिस्टिक फिलॉसफी है उसकी। लेकिन जो ढांचा है पहाड़ का, पहाड़ पर छोटे-छोटे टुकड़ों में, पैसेज में जमीन है, उस पर इतने लोग काम नहीं कर सकते कलेक्टिव में, दो ही आदमी काफी हैं। एक पत्नी और पति काम करने को काफी हैं । उनके बेटे काम कर लें तो बहुत है।

तो वह जो सोशलिस्टिक सोसाइटी है वह गरीब है, और वह जो इण्डिविज्युअल सोसाइटी है, वह अमीर है। और एक-सा सब है, और कोई मामला नहीं है। अब सवाल यह है कि अगर उनको जाकर समझाया जाये कि तुम्हारा यह जो ढांचा है सोचने का, यह गलत है। इतना मजा है। वह कम्युनिटी, जो इकट्ठी काम करती है, उसमें इण्डिविज्युअल कॉन्शसनेस विकसित नहीं हुई। जब अमरीका में उनको नौकरी पर रखा जाता है तो एक आदमी से आप काम नहीं ले सकते हैं। दो को इकट्ठा रखना पड़ेगा नौकरी पर। अगर एक आदमी को आपने रखा तो वह काम ही नहीं कर सकता। उसने कभी अकेले काम किया ही नहीं है। यानी अकेला काम किया जा सकता है, यह उसकी चेतना में ही नहीं घुसा है। अगर दो को साथ रखो तो वह काम कर लेगा। अकेले को रखो तो वह बैठा रह जायेगा।

मैं जो कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि हमारी जो फिलॉसफी है इस मुल्क की, हमारा जो रिलिजन है, हमारे चिन्तन के जो ढंग हैं, वे एण्टिमेटीरियलिस्टिक हैं। तो न तो वह छप्पर बनने देगी, न वह रोटी जुटने देगी, न वह कपड़े आने देगी। तो अगर उनको लाना है तो भी यह दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। इस मुल्क की फिलॉसफी को आमूल बदलना पड़ेगा। तो स्वाभाविक है कि भूखे आदमी को लगेगा कि क्या मतलब है कि आप कर्म की और पुनर्जन्म की बात कर रहे हैं ? लेकिन मेरा मानना यह है कि वह कर्म और पुनर्जन्म की बात ने ही तुम्हें छप्पर नहीं मिलने दिया, तो अब अगर छप्पर जुटाना है, तो कर्म और पुनर्जन्म की बात को उखाड़ कर फेंक देना पड़ेगा।

और दूसरी जो आप बात कहते हैं कि गरीबी की बात करता हूं तो समझ में आ जाती है, लेकिन अगर मैं कह देता हूं कि यह झण्डा है, यह चीथड़े का टुकड़ा है, कागज का टुकड़ा है, तो समझ में नहीं आती है । वह नहीं आयेगी । लेकिन विरोध नहीं है दोनों बातों में। अब तो मेरा मानना है कि दुनिया को गरीब रखने में वे चीथड़े भी काम कर रहे हैं। जो आकाश में आप फहरा रहे हैं; वे भी काम कर रहे हैं दुनिया को गरीब रखने में । और अब अगर दुनिया को हमें समृद्ध बनाना है तो हमें चीथड़े के टुकड़े आकाश से हटा देने पड़ेंगे। अगर यह पृथ्वी एक हो तो आज समृद्ध हो सकती है। इसमें अब कठिनाई नहीं रह गयी है। क्योंकि जिन कौमों ने वैज्ञानिक विकास कर लिया है, उनका वैज्ञानिक विकास हमें तभी उपलब्ध हो सकता है, जब हमारे बीच की सीमाएं कम हो जायें, टूट जायें, गिर जायें। जब तक हम हम हैं, और वे वे हैं, तब तक हर कौम यह फिक्र करेगी।

प्रश्न—आपके साथ भी जो लोग हमेशा रहते हैं, आपके प्रोग्राम वगैरह अरेंज करते हैं, वे भी आपको एक दिन आकर कहें कि हम आपको बुलाते हैं, भाषण करवाते हैं, लेकिन लगता है कि कुछ और काम करना पड़ेगा—'एक्शन' जिसे बोलते हैं क्रूड मीनिंग में, वैसा कुछ करना पड़ेगा, तो आपको भी यही जवाब होगा कि भई देखो, मैं तो भाषण करता हूं, लोग सुनते हैं, चर्चा भी अखबारों में होती है और बहुत से लोग इससे डिस्टर्ब हो गये हैं, काफी है । अगर उनको सन्तोष न हुआ ?

मैं नहीं कहता काफी है। मैं नहीं कहता कि काफी है। काफी इसी अर्थ में है कि वह एक्शन में ले जाये। प्राइमेसी ऑफ आइडिया का सिर्फ मतलब इतना होता है, वह अल्टिमेसी ऑफ आइडिया नहीं है। प्राइमेसी ऑफ आइडिया का मतलब ही यही है कि वह बिल्कुल प्राइमेसी है। उसके बाद एक्शन ही अल्टिमेट होगा। और आइडिया पर इतना जोर है, विचार पर, तो इसीलिए है कि वह कर्म में रूपान्तरित हो जाये।

मैं नहीं कहता ऐसा। मैं तो यह कहता हूं कि यह कितना दुर्भाग्य है हमारा कि आइडिया ही नहीं है, तो एक्शन कैसे होगा ? होगा तो गलत होगा, क्योंकि अन्धेरे में होगा, और अनजाना होगा, और क्रोध से भरा होगा। इसमें कुछ समझ नहीं होगी। तो मैं तो नहीं मानता कि दिन-रात निरन्तर अन्त तक कोई विचार ही करते रहना है। विचार है सार्थक इसी अर्थ में कि वह एक्शन में ले जाये।

तो लोग मेरे पास आ रहे हैं, मेरी बात समझ रहे हैं, अगर उन्हें जिस दिन भी लगता है यह ठीक है, विचार समझ में आ गये, तो मैं तो उन्हें कहता हूं, एक्शन में जाना है। एक्शन में जाना ही पड़ेगा। क्योंकि हम कब तक बैठकर बात करते रहेंगे कि रोटी चाहिए, रोटी चाहिए ? रोटी बनानी पड़ेगी। लेकिन रोटी बन ही तब सकती है, जब रोटी चाहिए का ख्याल बहुत साफ और स्पष्ट हो जाये। और कैसे रोटी बनेगी उसके सारे एलिमेन्ट्स का बोध हो जाये और उन सबको लाने का ख्याल आ जाये कि किस दिशा से क्या मिलेगा ?

तो मैं एक्शन विरोधी नहीं हूं, लेकिन इतना मैं मानता हूं कि आइडिया प्राइमरी है और एक्शन उसका दूसरा स्टैप है। वह आयेगा ही; आना ही चाहिए। अगर कोई आइडिया एक्शन में नहीं ले जाता, तो वह इम्पोटेंट आइडिया है। उस आइडिया का कोई मतलब ही नहीं है। यानी उसने समय खराब करवाया हमारा। उससे तो बेहतर था कि हम एक्शन ही कर लेते। गलत होता, फिर भी कुछ तो होता ! और वह आइडिया अगर कहीं भी नहीं ले गया तो हम कहेंगे इम्पोटेंट है।

पोटेंट आइडिया हमेशा एक्शन में ले ही जायेगा, ले ही जाना चाहिए। तो मैं तो नहीं ऐसा कहता। मैं नहीं ऐसा कहता। लेकिन अब जरूरत जरूर है कि एक बीस साल मुल्क के दिमाग में एक वैचारिक क्रांति की हवा खड़ी हो जाये, ताकि क्रांतिकारी कृत्य करने की सम्भावना बढ़ जाये। मेरे मन में दोनों में विरोध नहीं है। मेरे मन में जब भी विचार परिपक्व होगा, तो एक्शन बनेगा। बनना ही चाहिए। अगर विचार ठीक था, पोटेंशियली उसमें कुछ फोर्स थी, तो वह एक्शन बनेगा, वह रुक नहीं सकता।

प्रश्न—कुछ लोगों का ऐसा मानना है कि यह जो सब गड़बड़ हुई हमारी कल्चर में यह कहीं आठवीं-नवीं सदी के आसपास, हर्ष के साम्राज्य के टूट जाने के बाद और उसके बाद हमारा कल्चर डाइनैमिक होना बन्द हो गया। उसके बाद जो कुछ हुआ वह सिर्फ पिष्टपेषण कामेंट्री के रूप में हुआ, और भक्ति सम्प्रदाय जो है उसमें हमारी जो थिंकिंग थी वह सर्टिफाई कर दी। इस वजह से भक्ति सम्प्रदाय में भक्त और भगवान का जो नाता है, वह प्रेम वगैरह कुछ फीलिंग्स के आधार पर है। इसके लिए थियोलॉजिकल विवेक करना कोई जरूरी नहीं है। अब यह भक्ति सम्प्रदाय क्यों आया, यह एक और अलग सवाल है, लेकिन फिर भी कुछ लोग मानते हैं, यह भक्ति सम्प्रदाय का जो कंट्रीब्यूशन है

वह काफी है और उसी के वजह से शायद हमारे यहां रेनेसां कभी आया नहीं। और उस रेनेसां की वजह से साइंस नहीं आया। तो क्या आपको ऐसा कुछ लगता है कि यह बात सही हो सकती है ?

इसमें थोड़ा सोचना चाहिए, लेकिन मूल कारण दूसरे हैं रेनेसां जैसी चीज भारत में नहीं आयी उसके कारण बहुत दूसरे हैं। पहला कारण तो यह है कि हमारा टाइम कन्सेप्ट बाधा बन गया। पश्चिम का टाइम कॉन्सेप्ट ही रेनेसां ला सका। पश्चिम की जो समय की धारणा है, वह एक रेखा में है, लीनियर है। हमारी जो समय की धारणा है, वह सर्कुलर है; वह चक्र में है। हमारी समय की धारणा ऐसी है कि फिर सब चीजें वापस लौट आती हैं। तो हमारी समय की जो धारणा है, उसमें ऐसा है कि जो आज है वह फिर लौट आयेगा। जो कल था, वह फिर लौट आयेगा। एक व्हील की तरह घूम रहा है।

जो अशोक चक्र है, वह असल में टाइम की ही हमारी धारणा है। समय घूम रहा है चाक की तरह। चूंकि चाक की तरह हमारी धारणा है इसलिए हममें हिस्टॉरिक सेंस नहीं है, क्योंकि जब चीजें बार-बार लौट ही आनी हैं तो कोई ईवेंट हिस्टॉरिक नहीं है। हिस्टॉरिक ईवेंट तभी होता है, जब वह अनरिपीटेबल हो। जैसे जीसस क्राइस्ट अब अनरिपीटेबल हों, तो हिस्टॉरिक पर्सनलिटी हैं। लेकिन महावीर पहले भी हुए हैं अनेक बार चौबीस तीर्थंकर जैनों के; आगे भी अनेक बार होंगे। हर कल्प में चौबीस तीर्थंकर होते रहेंगे। हर कल्प में राम और रावण होते रहेंगे।

तो हमारी जो धारणा है समय की, चक्रीय होने के कारण इतिहास का बोध पैदा नहीं हुआ—एक बात। इसलिए हमने इतिहास लिखा भी नहीं। हमने पुराण लिखा। पुराण का मतलब है जो सदा होता है, सनातन है। वह बार-बार होता रहा है, होता रहेगा। लेकिन हमने इतिहास नहीं लिखा। इतिहास का मतलब है कि एक-एक ईवेंट यूनीक है।

हिन्दुस्तान में कोई ईवेंट यूनीक नहीं है। इसलिए हमने कभी इतिहास नहीं लिखा। इतिहास का बोध पैदा नहीं हुआ। और क्रांति का कोई अर्थ ही नहीं है। क्रांति का अर्थ तभी है जब क्रांति ईवेंट बन सके। जब सब चीजें सब लौटकर आ जानी हैं, तो बदलने से फिर क्या मतलब है ? तो जो बदलने का ख्याल है कि चीजों को बदल डालो, अगर मुझे ऐसा पता लगे कि मैं कितना ही बदलूं, फिर चीजें वैसी हो जायेंगी, तो बदलने की क्षमता क्षीण हो जाती है। रेनेसां न आने का एक कारण तो हमारा टाइम कॉन्सेप्ट है, जो बहुत गहरा है। और अभी भी हमारा टाइम कॉन्सेप्ट वही है। उसके बहुत कारण हैं कि वह टाइम कॉन्सेप्ट क्यों बना।

पश्चिम का वैदर जो है, वह अनिश्चित है। पूरब का वेदर बिल्कुल सुनिश्चित

है। और भारत की जो मौसम की व्यवस्था है, वह बिल्कुल सुनिश्चित है . अभो धीरे-धीरे अनिश्चित हुई है, अन्यथा वह बिल्कुल सुनिश्चित थी। कब वर्षा आयेगी, कब गर्मी आयेगी, कब सर्दी आयेगी, एक सर्किल में सब घूमता रहेगा। बच्चा जवान होगा, बूढ़ा होगा; एक सर्किल में सब घूमता रहेगा। सारी ऋतुएं सर्किल में घूम रही हैं। जीवन की उम्र ऋतुओं में घूम रही है। इधर जन्म के बाद जवानी है, फिर मृत्यु है, फिर जन्म है और फिर जवानी है, फिर मृत्यु है, और ऐसा सब घूम रहा है। पश्चिम का वेदर अनसर्टेन वेदर ने उन्हें सर्किल का ख्याल नहीं दिया है और हमारा वेदर बिल्कुल सर्टेन था। उसमें सब सुनिश्चित था। तारीखें तय थीं और वह सब तारीखों पर घूम रहा था। उस सुनिश्चित मौसम की ऋतुओं की व्यवस्था ने हमें एक ख्याल दिया घूमने का। पश्चिम में सब अनिश्चित था और सब अनिश्चित होने की वजह से यह ख्याल में आया कि घटना जो आज घट गयी, जरूरी नहीं कि कल घटे। अनिश्चित हो तो ऐसा भाव पैदा होगा। इस भाव ने उन्हें टाइम की एक धारणा दी जो कि लाइन में, रेखा में सीधा जा रहा है। और हर घटना यूनीक हो गयी।

इसने बड़ा कीमती काम किया। एक—इसने इतना बड़ा काम किया कि परिवर्तन की आकांक्षा ही हममें न रही, क्योंकि परिवर्तन हमें दिखता ही न था। सब चीजें थिर थीं। स्टेग्नेन्ट सोसाइटी पैदा होने का बहुत गहरे में कारण है कि परिवर्तन दिखे तो हम परिवर्तन की आकांक्षा करें। जब परिवर्तन दिखता ही न हो कभी! सूरज पूरब उगता हो, सांझ ढल जाता हो, रोज सब ऐसा ही होता हो, और सदियों तक वैसा ही रहता हो तो फिर स्टेगनेंसी पैदा होगी। उससे रेनेसां असम्भव हो गया एक।

दूसरा एक कारण और हुआ। इसी सर्कुलर व्हील ने हमें एक और ख्याल दिया, और वह ख्याल था अनंत जन्मों का, कि एक आदमी में एक जन्म नहीं, पिछले भी जन्म थे, आगे भी जन्म हैं। वह सर्किल की वजह से हुआ, क्योंकि सर्किल का आरा अभी ऊपर है, वह लौट कर फिर ऊपर आ जायेगा। तो अभी अगर मैं पैदा हुआ हूं और मर गया हूं, अगर जन्म के बाद मौत है तो मौत के बाद जन्म होना ही चाहिए। वह सर्कुलर ख्याल से पैदा हुआ।

पश्चिम में ख्याल है कि एक ही जिन्दगी का। वह क्रिश्चियन जो कॉन्सेप्ट है, मुहम्मदन या क्रिश्चियन, वह एक जन्म का है। एक जन्म की वजह से एक इंटेंसिटी पश्चिम में जीने की आयी, जो हममें कभी भी नहीं आ सकी। एक शिथिलता रही है जिन्दगी की कि जब फिर जन्म लेना है तो कोई हर्जा नहीं है। अगर आज गरीब हैं तो अगले जन्म में अमीर हो सकते हैं। अगर आज तकलीफ है तो फिर अगले जन्म में तकलीफ मिट सकती है। लेकिन पश्चिम में एक इंटेंसिटी आ गयी लाइफ में और ऐसा लगा कि यह तो अल्टिमेट जिन्दगी है। अगर

इस बार अमीर नहीं हो पाये तो फिर कभी नहीं होना है, क्योंकि मौत यानी एण्ड। उसके बाद कुछ उपाय नहीं है। तो अमीर होना है तो अभी होना है। प्रेम करना है तो अभी करना है। मकान बनाना है तो अभी बनाना है। एक-एक मोमेंट कीमती हो गया और इसलिए जिन्दगी अगर कहीं भी अग्ली दिखायी पड़े तो उसे बदल डालना है, क्योंकि दुबारा तो जिन्दगी मिलेगी नहीं।

इधर एक रिलेक्स्ड माइंड है इस मुल्क का। वह यह कह रहा है कोई फिक्र नहीं। इतनी बार हम पैदा हुए हैं, इतनी बार प्रेम किया है कि अगर यह औरत इस बार न मिली तो अगली बार खोज लेंगे। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? मैं यह कह रहा हूं···यह नहीं कह रहा हूं कि कॉन्सेप्ट गलत है। मैं यह कह रहा हूं कि इसकी वजह से—यह मत समझ लेना आप कि मैं यह कह रहा हूं कि अनन्त जन्मों का कॉन्सेप्ट गलत है, यह मैं नहीं कह रहा हूं।

अनन्त जन्मों का कॉन्सेप्ट होने की वजह से रेनेसां असम्भव हो गया, परिवर्तन रेवोल्यूशन का ख्याल असम्भव हो गया। रेवोल्यूशन वे लोग करते हैं जिनकी जिन्दगी में त्वरा है, इंटेंसिटी है। हम एवोल्यूशन के विश्वासी बन गये, क्योंकि त्वरा का कोई सवाल नहीं है। एक ग्रेजुअल डेवेलपमेंट है, जो हो रहा है। और इतना लम्बा है कि उसमें कोई जल्दी का कारण नहीं है। इसलिए जिसको हम स्पीड कहें, वह हम पैदा न कर पाये। बैलगाड़ी चल रही है, तो कोई कठिनाई नहीं है इससे। उसका कारण है कि हमारे माइन्ड में स्पीड के लिए जगह नहीं है। ग्रेजुअल ग्रोथ के लिए हम तैयार हैं। हम बेफिक्र हैं। जैसे हम यहां बैठे हैं और मुझे पता है, कल भी है, कल भी बात कर लेंगे आपसे। लेकिन मुझे पता है कि यह रात आखिरी है, शाम आखिरी है, बात कर ही लेनी है, तो एक इन्टेंसिटी आयेगी। सोचेंगे कल भी है, कल भी बात कर लेंगे आपसे...। मुझे पता है कि यह रात आखिरी है, शाम आखिरी है तो बात कर ही लेनी है, एक इन्टेंसिटी आयेगी।

पश्चिम में क्रिश्चियन जो ख्याल पैदा हुआ एक ही जन्म का, उसने एक इन्टेंसिटी दी पश्चिम को और लिविंग को एक अर्थ दिया, जो हमारी लाइफ को कभी भी नहीं हो सकता। इसलिए स्पीड पैदा हुई और टेक्नोलॉजी आयी। और सब चीजें अगर गलत हैं तो अभी बदल डालो, इसकी जल्दी आयी। यानी ऐसा नहीं है कि कल बदल लेंगे। क्योंकि कल का कोई भरोसा नहीं है। कल मैं नहीं रहूं, यह हो सकता है। तो पश्चिम में इन बातों के जोर के प्रभाव में रेनेसां सम्भव हो गया। वह पूरब में सम्भव नहीं हो सका।

प्रश्न—विकास भले ही योरोप में हुआ हो, लेकिन उसका जन्म जो है, वह मिडिल ईस्ट है।

वह कहीं भी हो, मैं यह नहीं कह रहा हूं। वह कहीं भी हो, उसका जो

प्रभाव-क्षेत्र है, उस प्रभाव-क्षेत्र के माइन्ड को एक दूसरा मौका मिला। वह प्रभाव-क्षेत्र भारत नहीं है। भारत एक दूसरे प्रभाव-क्षेत्र में है, जहां अन्तहीन शृंखला का ख्याल है। वह गलत है, यह मैं नहीं कह रहा हूं। वह ख्याल सही हो सकता है। और क्रिश्चियन ख्याल गलत है। और मैं निकलकर बाहर चला जाऊं और बाहर मैं देखूं सूरज निकला है, फूल खिले हैं और मैं उसी कमरे में बैठा गुजार देता, हालांकि वह ख्याल का कोई मतलब न था, लेकिन बाहर तो फूल खिले थे, वे मुझे मिल गये। कई दफा जरूरी नहीं है कि सत्य सिद्धान्त ही जिन्दगी को गति में ले जायें। असत्य सिद्धान्त भी जिन्दगी को गति में ले जा सकते हैं।

प्रश्न—इसका मतलब यह हुआ कि आपका जो सारा आर्गुमेन्ट है वह सापेक्ष है। जैसे क्लाइमेटिक कण्डीशन।

बहुत-सी बातों पर है। उतने पर भी नहीं। उतने पर ही नहीं, बहुत-सी बातों पर···बहुत-सी बातों पर। अगर हमें यह बोध आ जाये और हम समझ लें कि हमारी धारणाओं को बनने में इन चीजों ने हाथ बंटाया, तो हम नयी धारणाए विकसित कर सकते हैं। अगर हमें यह ख्याल में आये तो रिटन ऑफ हो जाते हैं। और यह हमें ख्याल अब तक नहीं आया। और हर्ष इत्यादि से कुछ लेना-देना नहीं है। और वह अगर हमको ख्याल आते भी रहे तो कुछ फर्क न पड़ेगा।

इसलिए मैं यह कह रहा हूं कि अगर हमारा टाइम कॉन्सेप्ट हम बदलने को तैयार हों तो आज रेनेसां आ आये। तो टाइम कॉन्सेप्ट बदलने में कोई कठिनाई नहीं। इस वजह से हमें एक तरह से टाइम कॉन्सेप्ट मिला। यह बिल्कुल इन्सिडेंटल बात है। पश्चिम को वह टाइम कॉन्सेप्ट नहीं मिला। इसलिए पश्चिम ने एक तरह की जिन्दगी जीयी, हमने एक तरह की जिन्दगी जीयी। और कुछ न पूछो, क्योंकि इतने लम्बे मामले हैं···! जैसे आज है हालत—आज हालत यह है कि अगर दुनिया में एटॉमिक वॉर हो तो सम्भावना इस बात की है कि सिर्फ एशिया और अफ्रीका के लोग ही बच पायेंगे। यानी मैं यह कह रहा हूं कि यह मामला इतना जटिल है, अगर आज एटॉमिक वॉर हो तो सिर्फ विलेजेस बच पायेंगे, सिटीज तो नष्ट हो जायेंगे। लन्दन तो नहीं बच सकता, न्यूयार्क तो नहीं बच सकता; अमरीका की कोई सिटी नहीं बच सकती। अगर एटॉमिक वॉर हो जाये तो यह मजे की बात है कि हो सकता है, बस्तर के निवासी बच जायें।

अगर एटॉमिक वॉर हो जाये दस साल के भीतर, तो सिर्फ पूरब के एकदम अविकसित लोग ही बचेंगे। और हो सकता है: वे कहें, यह तो बहुत अच्छा हुआ; हम बचे और सब मर गये! उसका कारण यह होगा कि पश्चिम ने जो विकास किया साइंस का, उसने सब सिटीज बना ली; विलेजेस विदा हो गये। तब पीछे इतिहास लिखने वाला यह कह सकता है कि भारतीयों की धारणा बड़ी अच्छी थी···छोटे-छोटे गांव में रहना, बड़ी मशीन न लाना। ये देखो बच गये, और

पश्चिम पूरा मर गया। मैं आपसे यह कह रहा हूं कि जिन्दगी इतनी इन्टररिलेटेड है कि कुछ नहीं कहा जा सकता। हम सिर्फ तथ्य की बात कर सकते हैं। तथ्य यह है। मैं इसमें जजमेंट नहीं दे रहा। तथ्य यह है कि भारत में ऐसा हुआ, टाइम कॉन्सेप्ट सर्कुलर बना। पश्चिम में लीनियर बना।

प्रश्न—और यह क्लाइमेट होते हुए भी विचार की मदद से हम बहुत कुछ कर सकते हैं।

हां-हां, क्लाइमेट अब कुछ बाधा नहीं है। क्लाइमेट तभी तक बाधा थी, जब तक हम दूसरे विचारों से अपरिचित थे। तब कोई उपाय ही न था। करते भी क्या हम? भारत एक कुएं में बन्द था। भारत का विचारक वही कर सकता था, जो उसे दिखायी पड़ रहा था। लेकिन आज जब हम सारी दुनिया के कल्चर्स के करीब आये तो पहली दफे पता चला कि और ढंग के विचार भी हो सकते हैं। यह भी सारी दुनिया से सम्पर्क-बोध का परिणाम है। वह नहीं था पहले, आज सम्भव हो गया।

आज अगर हमें टेक्नोलॉजी विकसित करनी है तो हमें सिर्फ पश्चिम से टेक्नोलॉजी उधार नहीं लेनी पड़ेगी, उनका टाइम कॉन्सेप्ट भी लेना पड़ेगा। और अभी हम क्या कर रहे हैं? अभी हम एक बेईमानी में लगे हैं। अभी हम यह कहते हैं कल्चर तो हम हमारा रखेंगे, और टेक्नोलॉजी तुम्हारी ले लेंगे। और हमें पता नहीं है कि हमारा जो कल्चर है, उसमें वह टेक्नोलॉजी फिट होने वाली नहीं है। हम यह कहते हैं कि हम अपना अध्यात्म तो अपना रखेंगे, हम तुमसे साइंस ले लेंगे। केमिस्ट्री तुम्हारी पढ़ लेंगे, फिजिक्स तुम्हारी पढ़ लेंगे, लेकिन आत्मा-परमात्मा की हमारी जो धारणा है, वह हम अपनी रखेंगे। मेरा अपना मानना है, इन दोनों के बीच इनकांस्सिटेंसी है, क्योंकि हमारी जो धारणाएं हैं, या तो उन धारणाओं का टूटना हो जायेगा साइंस के आते ही, और या फिर हम साइंटिफिक न हो पायेंगे, उन धारणाओं को बचाना है तो।

प्रश्न—प्रोफेसर गैलब्रेथ जो हैं उन्होंने एक रिव्यू लिखते हुए 'एन्काउन्टर' पत्रिका में कुछ वर्ष पहले ऐसा लिखा था कि जापान में क्या हुआ कि वे लोग गुलाम नहीं थे पॉलिटिकली, और पश्चिम का जब आक्रमण आया, पश्चिम की हवा जब आयी तो उन लोगों के पास अवसर था चूज करने को—टु पिक एण्ड चूज। तो उन लोगों ने ऐसा पसन्द किया कि कल्चर और भाषा तो हम अपनी रखेंगे, इनकी टेक्नोलॉजी की कापी हम कर लें और वह मास्टर कर लें। जब कि हिन्दुस्तान के बारे में ऐसा हुआ कि जब मुगल साम्राज्य के पतन के बाद ब्रिटिश आये तो हिन्दुस्तान के लोगों को ऐसा लगा कि यह भी लॉजिकल कांसिक्वेंस हो सकता है कि मुगल साम्राज्य खत्म हुआ, दूसरा इससे भी बड़ा साम्राज्य जो पॉलिटिकली, कल्चरली ज्यादा सुखी रहे, वह आया। और उन्हें सबमिट कर दिया और उनके

पास वह सोच-विचार का कोई समय ही न रहा। इसी वजह से हमारी विहेवियर हाफ हाफ है, किसी भी बात में क्लेरिटी नहीं है।

इसका कारण गैलब्रेथ जो कहते हैं वह नहीं है। इसका कारण वह नहीं है। असल में अगर हिन्दुस्तान में बुद्ध सफल हो गये होते जो तो जापान में सम्भव हुआ वह हिन्दुस्तान में भी हो जाता। उसका कारण गैलब्रेथ जो कहते हैं वह नहीं है। उसका कारण यह है कि बुद्ध ने एक नया ख्याल दिया। हिन्दुस्तान का ख्याल है बीइंग का। बीइंग हमेशा स्टैटिक है, ब्रह्म का ख्याल है। जो हमेशा ठहरा हुआ है, उसमें कोई विकास नहीं होता, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। वह जैसा है, वैसा है। हमारा जो ख्याल है, हमारा जो सेन्ट्रल आइडिया है पूरे भारतीय दर्शनों का, वह एक थिर सत्य है। सत्य—सनातन सत्य है।

बुद्ध ने एक ख्याल दिया बिकमिंग का। बुद्ध ने कहा, सनातन और शाश्वत् कुछ भी नहीं है। परिवर्तन ही एकमात्र शाश्वत् सत्य है, कान्सटेन्ट चेंज ही सत्य है। और बुद्ध टिक न सके। उनको तो हमने उखाड़ फेंका इस मुल्क से, क्योंकि हमारी पूरी धारणा के खिलाफ पड़ा था यह। यह परिवर्तन का ख्याल था। चीन और जापान में बुद्ध को स्वीकार कर लिया। बुद्ध के स्वीकृति के साथ ही परिवर्तन स्वीकृत हो गया। और जब पश्चिम से आयी हवा तो जापान परिवर्तन के लिए तैयार था।

परिवर्तन की फिलॉसफी हो गयी, क्योंकि बुद्ध ने कहा—'एवरी थिंग इज इन कांसटेंट फ्लक्स।' सब चीजें परिर्वातत हो रही हैं। जो पकड़ने की कोशिश करेगा कि कुछ रुक जाये, वह मर जायेगा। रुक कुछ सकता ही नहीं। गंगा बह रही है, बही जा रही है। कल जो गंगा थी वह आज नहीं है। तो जापान के माइन्ड में बिकमिंग का ख्याल था और हिन्दुस्तान के माइन्ड में बीइंग का ख्याल था। तो जापान तो फौरन एब्जार्ब कर गया। उसने कहा, परिवर्तन तो जीवन है। वह बदलने के लिए तैयार था।

हमारा जीवन तो सनातन और शाश्वत् सत्य है। हम उसे बदल नहीं सकते। हम तो वही रहेंगे, जो हम थे। हमने पूरी कोशिश की कि हम वही रहें, जो हम हैं। मुगलों के आने पर भी हमने कोशिश की कि हम वही रहें जो हम हैं। हमने इस्लाम से कुछ भी नहीं सीखा। सीखा ही नहीं। इस्लाम से बहुत कुछ सीखा जा सकता था। लेकिन हमने कहा, हम जो हैं वही रहेंगे। परिवर्तन हम मानते नहीं। तो हमने इस्लाम को बाहर रखा। उसको म्लेच्छ कह करके दरवाजे के बाहर खड़ा कर दिया। उसे हमने भीतर प्रवेश नहीं करने दिया। उससे हम कुछ सीख सकते थे क्योंकि वह जूदो-क्रिश्चियन ट्रेडीशन ला रहा था इस मुल्क में, और इस मुल्क के जन को बहुत कुछ कीमती चीजें दे सकता था जो हमने बन्द कर दीं।

कठिनाई यह थी कि इस्लाम जब इस मुल्क में आया तो जिनके हाथ से आया, वे हमसे बहुत गरीब और पिछड़े हुए लोग थे। भगोड़े थे, खानाबदोश थे, हमसे पिछड़े हुए थे; तो कल्चरली हमारा अहंकार भारी था। हमने उनसे सीखने का सवाल ही नहीं उठाया। इस्लाम ने हमसे बहुत कुछ सीखा हिन्दुस्तान से, हमने उनसे कुछ नहीं सीखा। हमने दरवाजा बन्द कर दिया था। क्योंकि हमसे पिछड़े हुए लोग अगर जीत भी गये थे तो कोई बात नहीं। हमारा भाग्य है कि हम गुलाम हो गये, लेकिन कल्चरली तो हम ऊपर थे। हमने मुसलमान से कुछ न सीखा।

फिर अंग्रेज आये। अंग्रेज के साथ भी सीखने में हमने बहुत जद्दोजहद की। हमने सीखना नहीं चाहा, हमने सब तरफ से उपाय किये। वह तो अंग्रेज की जबरदस्ती थी कि उसने हमें सिखाने की कोशिश की। मुसलमान ने कभी हमें सिखाने की भी फिक्र नहीं की, इसलिए मुसलमान का एम्पायर भी ज्यादा दिन टिका। और अंग्रेज अपनी ही भूल से मरा, क्योंकि जो उसने सिखाया, वही उससे लड़ने का कारण बना। नहीं तो हम उनसे लड़ते भी नहीं कभी।

अंग्रेज यहां हजार साल तक हम पर हुकूमत कर सकता था, अगर उसने हमें कुछ सिखाने की कोशिश न की होती। तो हम उससे भी दूर खड़े रहते। हम अपने में जीते रहते, वह हुकूमत करता रहता। अंग्रेज ने हमें सिखाने की कोशिश की और उसका कारण यह था···। और मुसलमान ने हमें सिखाने की कोशिश नहीं की थी क्योंकि वह पिछड़ा हुआ कल्चर था।

अंग्रेज जब आया तो वह हमसे सुप्रीम कल्चर था। सब हालतों में वह हमसे आगे था—धन में, ताकत में, सौन्दर्य में, स्वास्थ्य में, सबमें आगे था, ऊंचाई में, सब में आगे था। वह जब आया तो वह गौरवान्वित था। उसने हमें, न केवल हुकूमत करना चाही, बल्कि हमें कुछ शिक्षित भी करना चाहा। शिक्षित होने का मतलब था कि वह टीचर होने की हैसियत रखता था। वह सोचता था, इनको सिखाना है, इनको कल्चर्ड करना है, सिविलाइज करना है। उसने हमें सिखाने की कोशिश की।

उसकी सिखाने की कोशिश को हमने रेजिस्ट किया। हमने सब तरह से विरोध किया कि हम सीखने से बच जायें। अगर हमने सीखा भी तो मजबूरी में सीखा, इसलिए हाफ-हार्टेड हो गये। क्योंकि हम सीखने को तैयार कभी भी न थे, हमें जबरदस्ती सिखाने की कोशिश की थी। हम सीखना न चाहते थे, लेकिन स्थितियों ने मजबूर किया कि नौकरी नहीं मिलेगी, यह न मिलेगा, यह न मिलेगा। हमको सीखना पड़ा। हाफ-हार्टेड हमने सीखा। तो हम भीतर से वही बने रहे।

हमने ऊपर से टाई लगा ली और भीतर जनेऊ डाले रहे! इधर हमने टाई भी दिखला दी कि हम बिल्कुल सीख गये हैं, हम साहब हैं। भीतर हमने जनेऊ भी रखा है। बाथरूम में हमने कान पर जनेऊ चढ़ा कर एकान्त में, अपनी पेशाब भी कर ली। हमने दोनों काम सम्भाल लिए। हम भीतर से पक्के वही रहे, जो हम

थे। तुम हमको क्या बदलोगे ? और बाहर से हमको बदलना भी पड़ा, क्योंकि बिना बदले जीना मुश्किल हो गया। इसलिए एक डिवाइडेड माइन्ड हिन्दुस्तान में पैदा हो गया। वह जापान में नहीं हुआ। जापान परिवर्तन के लिए तैयार हो गया।

प्रश्न—क्या आप कोई वैल्यू जजमेंट करने को तैयार होंगे, जो कि हिन्दू ट्रेडीशन है, वह जूडो-क्रिश्चियन ट्रेडीशन या इस्लामिक से इनहेरेंटली इन्फीरियर है ?

यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि जूडो-क्रिश्चियन कल्चर से टेक्नोलॉजी विकसित हो सकती है—अभी। लेकिन पच्चीस साल बाद क्या होगा, कहना बहुत मुश्किल है। क्योंकि जितनी टेक्नोलॉजी विकसित हुई है, उतना मैंटल टेंशन विकसित हो गया है साथ। और उनका आदमी आज यहां गुरु खोजने आ रहा है पूरब में। मैं आपसे यह कह रहा हूं, ये दोनों कल्चर अलग हैं। इन दोनों की इन्हेरेंट पोटेंशियलिटी अलग है। मैं वेल्यू जजमेंट नहीं देता। मैं यह कहता हूं कि पश्चिम के कल्चर से टेक्नोलॉजी विकसित हो सकती है, लेकिन मैंटल पीस नहीं। पूरब के कल्चर से मैंटल पीस विकसित हो सकती है, लेकिन टेक्नोलॉजी नहीं। और इसलिए हालत ऐसी है कि अभी हम पीड़ित हैं। लेकिन पचास वर्ष में सारा पश्चिम पूरब की तरफ देखने लगेगा कि योग क्या है? मेडीटेशन क्या है ? ध्यान क्या है ? क्योंकि हम मरे जा रहे हैं, क्योंकि अकेले टेक्नोलॉजी को क्या करियेगा ? मैं यह कह रहा हूं, ये दोनों कल्चर बेसिकली अधूरे हैं। उससे सिर्फ टेक्नोलॉजी विकसित होती है, इससे सिर्फ स्पिरिचुअलिटी विकसित होती है। और इसलिए भविष्य का कल्चर कुछ ऐसा होगा कि जो पश्चिम के कल्चर से टेक्नोलॉजी ले लेगा और पूरब के कल्चर से स्पिरिचुअलिटी ले लेगा। तो भविष्य एक अर्थ में यूनिवर्सल और टोटल हो सकेगा। मैं कोई तौल नहीं करता।

प्रश्न—आपने यह जो मिश्रण किया बातों का, वह तो बहुत अच्छा है, लेकिन इसमें मेंटलिटी ऐसी लगती है शायद कि हैविंग द बेस्ट ऑफ दी वर्ल्ड।

नहीं, यह सवाल नहीं है असल में उसके सिवाय कोई उपाय नहीं है; उसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। आज पश्चिम का जो श्रेष्ठतम मस्तिष्क है उसकी एक ही चिन्ता है कि टेक्नोलॉजी ने जो दुनिया पैदा कर दी है, उससे आदमी को कैसे बचायें ? सारे श्रेष्ठतम मस्तिष्क की इस वक्त एक ही चिन्ता है कि टेक्नोलॉजी ने एक दुनिया बना दी है, उससे आदमी को कैसे बचायें ? आदमी उसमें खो न जाये। और पूरब की एक ही चिन्ता है कि एन्टी-टेक्नोलॉजी ने जो दुनिया बनायी है उसमें कहीं आदमी मर न जाये ! न रोटी है, न खाना है—कहीं आदमी खत्म न हो जाये।

दोनों ट्रेडीशंस उस जगह पहुंच गयी हैं, जहां आदमी खत्म हो सकता है विभिन्न मार्गों से। डेड एण्ड आ गया है। और अब इसलिए इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है कि हम सोचें कि एक कॉम्प्लिमेंटरी कल्चर कैसे विकसित हो सकता है, जिसमें

हम दोनों बातों की फिक्र रख सकें कि टेक्नोलॉजी बाहर के जगत् को सम्भाल सके—इसके सिवाय कोई सम्भाल नहीं सकता—और भीतर के जगत को सम्भालने के लिए भी एक रिलिजस माइन्ड पैदा कर सकें। अब तक यह सम्भव नहीं था कि दोनों मिलें। अब ये मिल सकते हैं। क्योंकि दोनों का इनहेरेंट अधूरापन सिद्ध हो गया है। अब तक यह कभी सिद्ध ही नहीं हुआ था।

दोनों का ख्याल था कि हम पूरे हैं। पश्चिम तीन सौ साल में बड़े गर्व से भरा हुआ था कि साइंस जो है वह लास्ट वर्ड है, अब इसके आगे कोई सवाल ही नहीं है। लेकिन वह गर्व एकदम खण्डित हो गया। वह एकदम गर्व नीचे गिर गया। हिन्दुस्तान भी तीन हजार साल से इसी गर्व से भरा हुआ था कि स्प्रीचुअल इज द लास्ट वर्ड, लेकिन हमको भीख मांगनी पड़ गयी; वह गर्व एकदम खण्डित हो गया। दोनों कल्चर का अधूरा जो अहंकार था, वह खण्डित हो गया। इससे एक उपाय बनता है अब कि कम्युनिकेशन हो सकती है दोनों के बीच। पूरब को सीखना ही पड़ेगा पश्चिम से सारा विज्ञान और अपने भीतर उन धारणाओं को जगह देनी पड़ेगी जिससे विज्ञान विकसित हो सके। और पश्चिम को पूरब से सीखना ही पड़ेगा अध्यात्म।

प्रश्न—शान्ति जो है मन की, उसके लिए ईश्वर का ख्याल जरूरी है ?

नहीं; बिल्कुल नहीं। असल में मन शान्त हो तो ईश्वर का ख्याल आना शुरू होता है। ईश्वर के ख्याल के लिए शान्ति जरूरी है।

प्रश्न—लेकिन सहारा ढूंढने की जरूरत होती है।

वह अशान्त चित्त की व्यवस्था है—वह अशान्त चित्त की है। और अशान्त चित्त ईश्वर को कभी नहीं जान सकता।

प्रश्न—आप जिस धर्म की बात करते हैं, उस धर्म से रिचुअल, मिथ आदि बातें उसमें नहीं होती हैं ?

नहीं, बिल्कुल नहीं होती हैं।

प्रश्न—कुछ प्रॉब्लम आजकल ऐसा है कि क्या हम रिचुअल के बिना, सिम्बल के बिना, मिथ के बिना जी सकेंगे ? और कुछ लोग तो ऐसा मानते हैं कि यह सब पोएटिक नॉनसेंस है !

नहीं, यह पोएटिक नॉनसेंस जरा भी नहीं है, और हम सिम्बल और रिचुएल के बिना जी भी नहीं सकते, लेकिन अतीत के रिचुअल और सिम्बल हमारे भविष्य के काम नहीं पड़ने वाले हैं। भविष्य नये सिम्बल और नये रिचुअल खोजेगा। लेकिन मेरी दृष्टि है कि रिलिजस माइंड का रिचुअल से कोई सम्बन्ध नहीं है। रिलिजस माइंड रिचुअल से बिल्कुल मुक्त हो जाता है। रिलिजस माइंड का कोई सम्बन्ध नहीं है रिचुअल से। लेकिन साधारण मन का रिचुअल से बड़ा सम्बन्ध है; बड़ा सम्बन्ध है।

साधारण माइंड बिना रिचुअल के नहीं जी सकता। साधारण का मेरा मतलब यह है कि जो रिलिजस नहीं है। और किसी अर्थ में साधारण नहीं कह रहा हूं। साधारण इस अर्थ में कि जो अभी रिलिजस नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि कुछ मैं लोअर कर रहा हूं उसको। बहुत इंटेलेक्चुअल आदमी हो सकता है, रिलिजस नहीं है।

रिलिजस मैं उस आदमी को कह रहा हूं जो टोटल लिविंग जी रहा है—न शरीर को इन्कार करता है, न मन को इन्कार करता है न आत्मा को इन्कार करता है; इन्कार करता ही नहीं। जो सब तलों पर इकट्ठा जीने का संयोग खोज रहा है। रिचुअल जरूरी रहेगा, सिम्बल जरूरी रहेगा, लेकिन भविष्य के सिम्बल—स्कल्पचर, आर्ट, पेंटिंग और काव्य के सिम्बल होंगे, रिलिजन के नहीं। जैसे कि आदमी को मूर्ति बनाना है, मैं मानता हूं कि कुछ लोग बिना मूर्ति बनाये तृप्त नहीं होते और कुछ लोग बिना मूर्ति देखे तृप्त नहीं हो सकते हैं। लेकिन मूर्ति राम की हो या हनुमान की, यह जरूरी नहीं है। और भविष्य की मूर्ति राम और हनुमान की नहीं होगी, लेकिन मूर्ति तो बनती रहेगी। लेकिन तब रिलिजन से हट कर वह आर्ट्स का सिम्बल होगा।

और मेरा मानना है कि खजुराहो या अजन्ता या एलोरा में जिन्होंने मूर्तियां खोदी हैं, उन्होंने सिर्फ रिलिजन के नाम पर आर्ट का काम किया है, और कोई उपाय न था पिछले दिनों में, कोई मार्ग न था। एक मन्दिर पर ही मूर्ति खुद सकती थी, क्योंकि मन्दिर पर ही लोग खर्च कर सकते थे! एक आर्टिस्ट के लिए मुसीबत थी कि वह क्या करे? तो मजबूरी उसको यहां तक थी, उसको सेक्स की तो, मैथुन की तो प्रतिमा खोदनी है, लेकिन मन्दिर पर ही खोदी जा सकती है, क्योंकि और कोई उपाय न था। और कोई पैसा देने को राजी नहीं था, कोई खर्च करने को नहीं था। उसने मन्दिर पर मैथुन की प्रतिमा भी खोद दी।

लेकिन जैसे-जैसे हमारा मन आगे बढ़ेगा, विकसित होगा, वैसे-वैसे आर्ट्स, पोएट्री उसमें सिम्बल्स जगह लेना शुरू करेंगे। फिल्म है, वह भी सिम्बल है। नये ड्रामा होंगे नयी कविताएं होंगी, और शायद नये डायमेंशंस में हम और नयी चीजें खोज लेंगे जो कि काम करेंगे। जैसे कि समझ लीजिए, जंगली जाति है, वे भगवान को बीच में रखकर चारों तरफ नाच रहे हैं। अब उस भगवान को व्यर्थ रखना है, लेकिन उसके लिए बिना उसके नाचना मुश्किल है। अगर हम बिना उसके नाच सकते हैं, तो उसको विदा कर सकते हैं। नाच जारी रहेगा।

प्रश्न—क्या आपको लगता है कि पिछले सौ दो सौ साल में पश्चिम ने अपने नये सिम्बल ढूंढ लिए हैं?

ढूंढ रहे हैं, बिलकुल ढूंढ रहे हैं। पिकासो नये सिम्बल्स ही खोज रहा है। सारी पश्चिम की पेंटिंग नये सिम्बल्स खोज रही है, पोएट्री नये सिम्बल्स खोज रही है।

और इतने नये खोज रही है, जितने हमने कभी भी न खोजे थे। और इसलिए पुरानी सोसाइटी के आदमी की समझ के ही बाहर है कि यह क्या मामला है? यह कैसा चित्र खड़ा है? वह नयी इंडस्ट्रियल सोसाइटी नये सिम्बल खोज रही है। टेक्नालॉजिकल सोसाइटी नये सिम्बल खोज रही है। सिम्बल तो हम खोजते रहेंगे। वह तो जारी रहेगा।

लेकिन धर्म का सिम्बल से कुछ लेना-देना नहीं है, रिचुअल से कुछ लेना-देना नहीं है। रिचुअल तो हम खोजते रहेंगे। जब आप रास्ते पर मुझे मिलते हैं तो मैं खड़े होकर नमस्कार करता हूं, वह भी रिचुअल है। रात जब आप बिस्तर पर जाते हैं और एक सिगरेट पीते हैं और बिस्तर पर लेटते हैं, वह भी रिचुअल है। बिना सिगरेट पिये आप न सो सकेंगे। एक छोटा बच्चा है, वह अपना अंगूठा मुंह में देकर सो जाता है, तो नींद आ जाती है। अंगूठा बाहर खींच लो तो नींद टूट जाती है। वह भी एक रिचुअल है उसका। वह अपना रिचुअल रोज पूरा कर लेता है। अंगूठा मुंह में दिया कि रिचुअल से एसोसिएशन—नींद आ गयी। आपने सिगरेट पी ली, नींद आ गयी। एक आदमी ने एक भजन कर लिया, नींद आ गयी। किसी ने एक माला फेर ली और नींद आ गयी। ये सब रिचुअल हैं।

प्रश्न—क्या ऐसा मानना जरूरी होगा कि हम लोग अभी पच्चीस-पचास साल इंटेंसली पहले राष्ट्रीय होना सीखें, इसके बाद इंटरनेशनलिज्म की बात करेंगे? साथ में दूसरी बात भी—पश्चिम में रिअलिस्टिक जो आर्ट है, उसमें एक हद तक लोग पहुंचे हैं। वहां के आर्टिस्टों को और वाचक को ऐसा लगता है कि अब बहुत हो गया यह रिअलिस्टिक! रिप्रेजेंटेशनल आर्ट तो गयी अब, रिअलिज्म भी गया। अब कुछ ज्यादा एब्स्ट्रेक्ट होना चाहिए। हमारे यहां के भी लेखक, कलाकार और चित्रकार वैसा ही मानते हैं कि रिअलिज्म तो पुरानी बात हो गयी। लेकिन कुछ लोगों का ऐसा मानना है कि कुछ फोनी है, इम्पोर्टेड है, इमिटेशन है। तो क्या इस तरह विचार करना राष्ट्रीयता के बारे में या कला के बारे में या इकोनॉमिक डैवेलपमेंट के बारे में क्या सही होगा?

हां; सही होगा। दो बातें ख्याल लेनी चाहिए। एक तो यह, कि अगर सच में ही पिछली स्टेज पूरी नहीं की गयी है, तो अगली स्टेज फोनी मालूम पड़ेगी; फोनी होगी ही। उसमें प्राण नहीं हो सकते, क्योंकि उसमें जो प्राण आते हैं, वह पिछले स्टेज से ही आते हैं। अगर रिअलिज्म से लोग ऊब गये हैं तो ही एब्स्ट्रेक्ट आर्ट में रस ले पाते हैं। अगर रिअलिज्म से नहीं ऊबे हैं तो एब्स्ट्रेक्ट आर्ट उन्हें अर्थहीन होता है; उसमें कोई अर्थ ले ही नहीं पाते। यानी एब्स्ट्रेक्ट आर्ट में रस लेने के लिए रिअलिज्म से ऊब जाना जरूरी शर्त है और रिअलिज्म को आउट कर जाना जरूरी शर्त है।

यह भी सच है कि जो लोग अभी राष्ट्रीय ही नहीं हैं, उनका अन्तर्राष्ट्रीय होना

बहुत कठिन है। क्योंकि जो तेलंगाना में उलझे हैं, मध्य प्रदेश में उलझे हैं, गुजरात में, महाराष्ट्र में उलझे हैं, उनको अभी भारत का भी व्हिजन नहीं है। इतना भी व्हिजन नहीं है कि भारत को इकट्ठा देख पायें। वे सारी पृथ्वी को एक देख पायेंगे, असम्भव है। यह बात भी सच है, एक राष्ट्रीयता का युग पार करना ही पड़ेगा, अन्तर्राष्ट्रीय होने के पहले, यह भी सच है।

लेकिन मेरा मानना है, दूसरी बात जो कहता हूं वह यह कि जब हम पूरे राष्ट्र की बात सोचते हैं, तब हम व्यक्ति को बिल्कुल भूल जाते हैं। कुछ व्यक्ति हो सकते हैं जो रिअलिज्म से ऊब गये हैं। उनसे हम हक नहीं छीन सकते कि वे एब्स्ट्रेक्ट आर्ट में न जायें। और उनके लिए वह फोनी भी नहीं है, आपके लिए फोनी होगा—दर्शक के लिए। लेकिन अगर मैं भी रिअलिज्म से ऊब गया हूं—मैं ऊब सकता हूं,—भला मासेस न ऊबी हों—तो मेरे लिए तो फोनी नहीं है, सारे जगत् के लिए फोनी हो, हो; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ऐसे लोग हो सकते हैं मुल्क में, जिनको राष्ट्रीयता भी ऊबाने वाली मालूम पड़ रही है। तो उनको तो अन्तर्राष्ट्रीयता की बात करनी ही चाहिए।

असल में जब हम इकट्ठे मुल्क की बात करते हैं तो हम स्वभावतः छोड़ देते हैं व्यक्तियों को, लेकिन व्यक्तियों को भी नजर में लेना पड़ेगा। आज जो लोग भी थोड़े से सोच-विचार से भरे हुए हैं, वे तेलंगाना से बंधे हुए नहीं हैं। उनका भारत से बंधना भी मुश्किल है। और मेरा मानना है कि उनका भारत से बंधना मुश्किल है, इसलिए तेलंगाना से बंधने में मुश्किल अनुभव कर रहे हैं, नहीं तो उनको वह भी मुश्किल न रहेगा। क्योंकि एक बार भारत से बंधना आसान हो, तो तेलंगाना से बंधने में कौन-सी दिक्कत है? जरा वह और सिकुड़कर बंधने की बात होती है। उधर भी बंध सकते हैं।

बहुत तरह के व्यक्ति मुल्क में होंगे। बहुत तलों पर काम जारी रहेगा, लेकिन स्टेजेज मुल्क को तो पार करनी पड़ती है। एज ए मास तो स्टेजेज पार करनी पड़ती है। मास के लिए बेमानी है। आज एब्स्ट्रेक्ट आर्ट का कोई मतलब नहीं है। अगर हम पिकासो की पेंटिंग एक गांव में जाकर रख दें, तो एकदम बेमानी है। इसमें गांव वालों का कोई कसूर नहीं है। बीच की स्टेजेज नहीं हुई हैं पार। इसलिए गांव का आदमी कहां से पिकासो को समझ पायेगा? लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि कुछ लोग पिकासो को नहीं समझ पायेंगे। कुछ लोग समझ पा सकते हैं। इसलिए मुल्क में बहुत तलों पर एक साथ ग्रोथ चलती है।

अब मेरी समझ यह है कि जो लोग कैपिटलिज्म से आउट-ग्रो कर गये हैं, उनको छोटे-छोटे एक्सपेरिमेंट करने चाहिए; पूरे मुल्क में नहीं। अगर हम दस मित्र हैं और उनको लगता है कि कैपिटलिज्म बेवकूफी है, तो हम एक छोटा कम्यून बनाकर एक्सपेरिमेंट करें। मुल्क में दस-पचास कम्यून हों। जो लोग सोशलिज्म का प्रयोग

कर सकते हैं, वे करें। और वह प्रयोग भी महत्वपूर्ण होगा। चारों तरफ के लोगों के ख्याल में आ सके कि यह हो सकेगा, यह सम्भव है। लेकिन पूरे मुल्क को सोशलिस्ट पैटर्न में ढालने का मतलब खतरनाक होगा। खतरनाक इसलिए होगा कि हम कैपिटलिज्म को आउट ग्रो नहीं किये, बहुत मामलों में तो हम फ्यूडलिज्म को भी आउट-ग्रो नहीं किये। इधर हमारी बड़ी झंझटें हैं। बहुत-सी सदियां एक साथ चल रही हैं, इसलिए कठिनाई है।

प्रश्न—अगर योरोप में बलगेरिया जैसा या फिनलैण्ड जैसा छोटा-सा मुल्क हो सकता है और अपना अस्तित्व अपने आप टिका रख सकता है तो क्या यह अच्छा नहीं होगा कि अगर हमारे यहां सत्रह जो भाषाएं हैं, उसके मुताबिक सत्रह स्वतंत्र स्टेट बना दें तो ज्यादा एक्सपेरिमेंटेशन हो सके और सामान्य आदमी का कारोबार अपनी ही भाषा में चलने से ज्यादा अच्छा हो सके?

असल में बलगेरिया या यूरोप में फिनलैण्ड जैसे छोटे-छोटे मुल्क यूरोप के मुल्क हैं, एशिया के नहीं। और होता क्या है, जैसे-जैसे कोई समाज समृद्ध होता है, वैसे-वैसे इंडिविजुएलिटी विकसित होती है। और छोटे ग्रुप में इंटेंसली जीने की जो बात है वह बहुत विकसित समाज में सम्भव है, अविकसित समाज में सम्भव नहीं है। अविकसित समाज तो जितना बड़ा समाज हो, उतना सिक्योर अनुभव करता है। जितना विकसित माइंड हो उतना अकेला हो सकता है। जितना अविकसित माइंड हो, वह चार का हाथ पकड़ कर ही खड़ा हो तो उसको लगता है कि सुरक्षा है, नहीं तो खतरा हो जायेगा।

भारत अभी उस हालत में नहीं है कि अगर हम इसको टुकड़ों में तोड़ें तो कोई फायदा हो। टुकड़ों में तोड़ने से भारत को नुकसान ही होगा। भारत वैसे ही शक्तिहीनता अनुभव करता है और इनफीरियरिटी अनुभव करता है। छोटे टुकड़े और इनफीरिअर हो जायेंगे। चीन जैसे मुल्क के सामने उनकी जान और भी निकल जायेगी, कोई मतलब ही नहीं रह जायेगा। इतना बड़ा मुल्क भी शक्तिशाली अनुभव नहीं करता। छोटे टुकड़े और शक्तिहीन हो जायेंगे। और इतना बड़ा मुल्क भी इण्डस्ट्रलाइज नहीं हो पा रहा है, तो छोटे-छोटे टुकड़े तो बिल्कुल ही विलेजेज हो जायेंगे और एकदम प्रिमिटिव हो जायेंगे। उनकी तो ताकत ही नहीं रह जायेगी, दुनिया के साथ खड़े होने की।

भारत में यह सम्भव नहीं हो सकता है। लेकिन अगर भारत टेक्नालॉजिकली विकसित हो तो मेरा मानना है, इतने बड़े मुल्क की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन टेक्नालॉजिकल विकास हो तो ही! और इतनी चेतना, इतनी कल्चर और इतना एजुकेशन विकसित हो कि हम छोटे टुकड़ों में रहने का मजा ले सकें और भयभीत न हों। उसके लिए बहुत बड़ी, और इस तरह की स्थिति चाहिए।

इधर मेरी समझ यह है, जैसे-जैसे व्यक्ति ज्यादा समझदार होता है, कॉन्शस

होता है, उतना छोटे टुकड़े में रहना चाहता है, क्योंकि छोटे टुकड़े में इन्टिमेसि है, सम्बन्ध है, डायलॉग है । बड़े टुकड़ों में भीड़ है, और मास है; व्यक्ति खो जाते हैं । तो जैसा विकसित आदमी होगा उतना भीड़ से बचना चाहेगा, क्योंकि भीड़ में कोई मतलब नहीं है उसके लिए । वह जब भी भीड़ से लौटेगा, तब लगेगा कि कुछ खोकर लौटा है । और जब थोड़े से लोगों के पास होगा तब लगेगा कि रिच हुआ, समृद्ध हुआ । पर यह बहुत विकसित होने की बात है ।

और दुनिया विकसित होगी तो बड़े मुल्क विदा हो जायेंगे, अपने आप विदा हो जायेंगे । बड़े मुल्कों का कोई मतलब नहीं है, क्योंकि जहां हम छोटे-छोटे टुकड़ों में निकट हो सकेंगे, इंटिमेट हो सकेंगे, वे टुकड़े बन जायेंगे । बड़े टुकड़े भी इसी-लिए हैं दुनिया में कि दुनिया अभी भी प्रिमिटिव है । तो ताकत इतनी है कि कितनी बड़ी भीड़ हमारे साथ है, उतनी बड़ी ताकत है । नहीं तो कश्मीर पाकिस्तान में जाये, झगड़ा क्या है ? मगर कश्मीर इतना बड़ा टुकड़ा हमारा चला जाये तो हम कमजोर हो जाते हैं । कश्मीर अकेला रहे तो झगड़ा क्या है ? लेकिन हम कमजोर हो जाते हैं । वह भी हमारा प्रिमिटिव माइंड है, लेकिन इस मुल्क में सम्भव नहीं हो पाता ।

मेरा कहना यह है कि जिस मुल्क में छोटे-छोटे टुकड़े का आग्रह इतना ज्यादा है, उस मुल्क में छोटे टुकड़े सम्भव नहीं हो सकते । जिस दिन छोटे टुकड़े का आग्रह न रह जायेगा, उस दिन छोटे टुकड़े सम्भव हो सकते हैं । यह बात उल्टी लगती है, लेकिन मामला ऐसा ही है जैसा हम बैंक की बाबत कहते हैं कि बैंक उस आदमी को पैसा देती है जिसको जरूरत नहीं है । जिसको जरूरत है, बैंक उससे बचती है, क्योंकि उसको देना खतरनाक है ।

यह मुल्क अगर छोटे टुकड़ों का आग्रह छोड़ दे तो फिर छोटे टुकड़ों में भी जी सकता है । अन्यथा तब तक तो नहीं जी सकता । तब तक तो हमको बड़ी एन्टा-इटी का बोध चाहिए । मगर हमारी चेतना नहीं पकड़ पा रही है बड़ी एन्टाइटी के बोध को । नहीं पकड़ पायेगी अभी, क्योंकि उसको पकड़ने के जो भी आधार होने चाहिए, वे नहीं हैं ।

और जो राजनीतिक नेता बातें करते हैं, मुल्क के इंटिग्रेशन की, और एकता की, वे ही राजनीतिक नेता छोटे टुकड़ों के नेता हैं । और छोटे टुकड़ों के टुकड़े होने की कांशसनेस पर उनका नेतृत्व निर्भर है । तो वे छोटे टुकड़ों के लिए शोर-गुल मचाये रखते हैं--जब वे कहते हैं कि यह जिला मैसूर में हो कि महाराष्ट्र में हो । उधर दिल्ली में बैठकर वे विचार करते हैं कि इस पर इंटीग्रेशन कैसे हो ? असल में हिन्दुस्तान की पूरी पॉलिटिक्स खण्डों की पॉलिटिक्स है । मेरी दृष्टि में तो हिन्दुस्तान से सब प्रान्त विदा कर देने चाहिए । उसे जोनल कर देना चाहिए । तो ही नेशनल इंटिग्रेशन हो सकता है । क्योंकि पॉलिटिक्स जोनल हो जायेगी ।

जब तक हिन्दुस्तान की पॉलिटिक्स लोकल होगी, तब तक आप इंटिग्रेशन नहीं ला सकते । अब महाराष्ट्र की पॉलिटिक्स महाराष्ट्र होने पर निर्भर है और मराठी के अहंकार को बढ़ाने पर निर्भर है । और वह मराठी नेता, जिनको महाराष्ट्रियन की ताकत है, वह खड़ा है । वह कैसे मान ले कि सारा मुल्क एक है ? और जिला मैसूर में रहे कि महाराष्ट्र में, क्या फर्क पड़ता है ? अब मध्यप्रदेश का नेता मध्य-प्रदेश की ताकत पर निर्भर है । वह कहता है, नर्मदा का पानी हमारा है; गुजरात का कैसे हो सकता है ? उसकी ताकत इस पर है । उसका वोटर उसको इसलिए वोट दे रहा है कि नर्मदा का पानी हमारा है । वह इस पर तो बेचारा खड़ा हुआ है, फिर वह मंच पर बात कर रहा है कि नेशनल इंटिग्रेशन होना चाहिए !

मेरे हिसाब में, भारत इतना प्रिमिटिव है कि अभी स्टेट में बांटने योग्य नहीं है । अभी जोनल होना चाहिए । एडमिनिस्ट्रेटिव—जोनल; और सीधी एक सेन्ट्रल गवर्नमेंट होनी चाहिए, तो ही इंटिग्रेशन हो पायेगा । यहां पचास गवर्नमेंट की जरूरत ही नहीं है—स्टेट की । गवर्नमेंट एक ही होनी चाहिए; राजधानी एक ही होनी चाहिए । और उस एक राजधानी और उस एक गवर्नमेंट को ध्यान में रखकर जब नेता पॉलिटिक्स करेगा तो इंटिग्रेशन आ जायेगा, नहीं तो नहीं आ सकता है ।

प्रश्न—क्या राष्ट्रभाषा का सवाल है ?

भाषा का सवाल है । मेरा मानना है कि भारत को राष्ट्रभाषा के लिए जोर नहीं देना चाहिए । वह उपद्रव का कारण है । जहां इतनी भाषाएं हों, वहां राष्ट्र-भाषा नहीं हो सकती । यह बेहूदी है बात, क्योंकि वह किसी न किसी भाषा की मालकियत होगी, इम्पीरियलिज्म होगा, और किसी भाषा का दबाना होगा । इसलिए भारत में राष्ट्रभाषा की बात ही नहीं करनी चाहिए । भारत में तो जिस रीजन की जो भाषा है वह भाषा उपयोग में आये, और सभी भाषाओं को राष्ट्र-भाषा की हैसियत मिल जानी चाहिए । और संसद भर का प्रॉब्लम है, तो संसद में आज तो मैकेनिकल डिवाइस हो सकती है, उसकी कोई जरूरत नहीं है । नेशनल लैंग्वेज की बात ही बन्द कर देनी चाहिए । और हम बन्द कर दें तो शायद बीस साल में नेशनल लैंग्वेज विकसित हो जाये । अगर हम बन्द न करें, तो विकसित् हो ही नहीं सकती ।

इस मुल्क में नेशनल लैंग्वेज कभी नहीं बन सकेगी, अगर हमने बातचीत जारी रखी । और अगर हमने कहा, हिन्दी राष्ट्र-भाषा होनी चाहिए, फलानी भाषा होनी चाहिए, तो हिन्दी कभी राष्ट्रभाषा नहीं हो पायेगी । वह बात ही बन्द कर देनी चाहिए । सबकी भाषाएं हैं, वह ठीक है । सब नेशनल लैंग्वेजज हैं । और हमें रूस के पैटर्न पर सबको स्वीकार कर लेना चाहिए और केन्द्र में मैकेनिकल डिवा-इस कर लेनी चाहिए जिससे बात चल जाये । इसमें कोई ऐसी झंझट की बात

नहीं है । तो शायद सहज जीने से ही एक भाषा धीरे-धीरे विकसित हो जाये। फिर शायद वह हिन्दी नहीं होगी, हिन्दुस्तानी होगी, जिसमें तमिल के शब्द भी घुस जायेंगे, गुजराती के शब्द भी घुस जायेंगे, उर्दू के शब्द भी घुस जायेंगे, अंग्रेजी के शब्द भी रहेंगे । वह एक भाषा शायद धीरे-धीरे विकसित हो जाये ।

और मेरा मानना है भाषाएं थोपी नहीं जा सकतीं, विकसित होती हैं । और जब भाषाएं थोपी जायेंगी, तो उनके खिलाफ रिएक्शन होगा ।

तो गांधीजी कुछ रोग इस हिन्दुस्तान को दे गये, उसमें एक राष्ट्रभाषा का रोग भी है । वह हिन्दी को राष्ट्रभाषा कहकर उन्होंने झंझट खड़ी कर दी । हिन्दी राष्ट्रभाषा बन सकती थी । उसमें कोई झंझट न थी । वह धीरे-धीरे फैलती चली जाती थी, लेकिन जैसे वह कॉन्शस हो गयी, तो वह जो हिन्दी लीडरशिप है, वह जो कॉन्शस हो गयी हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की; अब नहीं बनेगी । हिन्दी के राष्ट्रभाषा की अब कोई उम्मीद नहीं है । अब हमें पचास साल राष्ट्र-भाषा की बात ही नहीं करनी चाहिए, उसको विदा कर देना है । अगर डेवलप हो जाये तो ठीक; न डेवलप हो, तो कोई हर्जा नहीं । कुछ बाधा नहीं बनती । ●

अहमदाबाद, दिनांक २५ दिसम्बर १९६९

२५. समाजवाद : परिपक्व पूंजीवाद का परिणाम

प्रश्न—आपने अभी-अभी ऐसा कहा था कि हमारे यहां अभी सोशलिज्म की जरूरत नहीं है। अभी जो कैपिटलिज्म है, वह यहां फ्लरिश होना चाहिए। उस-के बारे में क्या आप कुछ विस्तार से प्रकाश डालेंगे ?

हां, मेरी ऐसी दृष्टि है कि समाजवाद पूंजीवाद की परिपक्व अवस्था का फल है। और समाजवाद यदि अहिंसात्मक और लोकतांत्रिक ढंग से लाना हो तो पूंजीवाद परिपक्व हो, इसकी पूरी चेष्टा की जानी चाहिए। पूंजीवाद की परि-पक्वता का अर्थ है, एक औद्योगिक क्रांति—कि देश का जीवन भूमि से बंधा न रह जाये, और देश का जीवन आदिम उपकरणों से बंधा न रह जाये। आधुनिकतम यंत्रीकरण हो तो सम्पत्ति पैदा हो सकती है। और सम्पत्ति जब अतिरिक्त मात्रा में पैदा होती है, तभी उसका वितरण भी हो सकता है, और विभाजन भी हो सकता है।

अभी हम समाजवाद की कोशिश करेंगे तो सिर्फ गरीबी ही बांट सकते हैं, और गरीबी बांटने का कोई अर्थ नहीं है, बल्कि खतरनाक भी है। और एकबारगी हम आज समाजवादी ढांचे में समाज को ढालें, तो जिस समाज में उत्पादन की आज कोई प्रेरणा नहीं है, जिसका प्रमाद बहुत पुराना और गहरा है, और जिसे सम्पत्ति पैदा करने की कोई समझ भी नहीं है, उस समाज को अगर आज समाज-वादी ढांचा दिया जाये तो हम सदा के लिए गरीब होने की मुहर अपने ऊपर

लगा लेंगे।

इसलिए मैं यह नहीं कहता हूं कि समाजवाद जरूरी नहीं है। मैं मानता हूं कि समाजवाद ही जरूरी है। लेकिन समाजवाद सम्भव हो सके इसलिए औद्योगीकरण और राष्ट्र का ठीक अर्थों में पूंजीवादी हो जाना जरूरी है। या फिर दूसरा रास्ता यह है कि अगर कच्चे पूंजीवाद से हमें समाजवाद पर जाना हो तो हमें हिंसा के कम से कम पचास वर्षों की तैयारी करनी चाहिए। फिर वह लोकतांत्रिक नहीं होगा। फिर वह वैसा ही होगा जैसा रूस या चीन में हो रहा है। वैसी भी हमारी तैयारी नहीं है कि हम इतने बड़े पैमाने पर हिंसा कर सकें कि एक करोड़ आदमियों की हत्या कर सकें। और मैं मानता हूं कि एक करोड़ की हत्या करके हम अपने देश में सम्पत्ति पैदा कर पायेंगे, यह भी संदिग्ध दिखता है। फिर ऐसी भी मेरी समझ है कि उतनी बड़ी हिंसा करके रूस में जैसी सफलता की आशा थी, वह सफलता उपलब्ध नहीं हो पायी। और आज भी रूस एक गरीब मुल्क ही है, अमीर मुल्क नहीं है। और चीन की हालतें तो और भी बदतर हैं।

प्रश्न—इसके लिए हमारे यहां जो पंचवर्षीय योजनाएं आदि हैं डेवलपमेंट प्लान, ये कार्यक्रम हमने जो अपनाये हैं वे प्रोग्राम ठीक हैं या इनके तौर-तरीकों में परिवर्तन का सुझाव आप देना चाहेंगे। पूंजीवाद को परिपक्व बनाने का आपका जो सुझाव है ये कार्यक्रम ठीक हैं या इनमें कोई परिवर्तन होना चाहिए ?

जहां तक प्रोग्राम कागज पर होने की बात है, वहां तक तो ठीक ही है, लेकिन इम्पलीमेंटेशन में वह कुछ हो नहीं पाता है। और उसमें भी जो दृष्टि है हमारी, वह भी हमने रूस के फाइव इयर प्लान से ली है जो कि भूल भरी बात है। समाज-वादी ढांचे के बाद पंचवर्षीय योजनाएं एक अर्थ रखती हैं, क्योंकि वहां जबर्दस्ती इम्पलीमेंटेशन करवाया जा सकता है। लेकिन समाजवादी ढांचा न हो तो फाइव इयर प्लान बहुत और शक्ल के होने चाहिए। वह जापान या अमरीका की शक्ल में, या इजराइल की शक्ल में या रूस की शक्ल में नहीं।

हमारी तकलीफ क्या है, हम दुनिया में, कहीं भी अच्छा हो रहा है उसको अच्छा मानकर फौरन शुरू कर देते हैं, इस बात की बिना फिक्र किये कि उसकी पूरी पृष्ठभूमि हमारे पास तैयार है या नहीं। अगर पृष्ठभूमि तैयार नहीं है तो वह बिल्कुल अच्छा हो तो भी बेमानी है। वह ऐसे ही है जैसे कार के इन्जन को लाकर बैलगाड़ी में रख लिया है। अब बैठें। वह बहुत अच्छा था कार में, और ठीक चलता था। वह बैलगाड़ी में बिल्कुल बेमानी है। वह बैलगाड़ी पर बोझ बन रहा है और बैलगाड़ी को उससे कुछ हित नहीं है, बैल के लिए और परेशानी है। तो हमारी तकलीफ इधर रही है, इकलैक्टिक तकलीफ है हमारी। दुनिया में जो भी अच्छा हो रहा है, वह सब हमें करना है। ठीक है, करना भी है, लेकिन उस-की जो बेसिक फाउंडेशंस हैं, वह न होने से सब मुसीबत खड़ी हो जाती है।

हिन्दुस्तान को नजर रखनी चाहिए उन मुल्कों की तरफ जिनकी सामान्य पृष्ठ-भूमि हमारे जैसी है, जिनका बेसिक ह्यूमन मैटीरियल हमारे जैसा है, जिनका बौद्धिक विकास हमारे जैसा है, और वे क्या प्रयोग कर रहे हैं ? तो मेरी नजर में, हिन्दुस्तान को इजराइल पर नजर रखनी चाहिए, जापान पर नजर रखनी चाहिए, तो हमारे काम का हो सकता है।

दूसरी तकलीफ हमारी यह है कि बहुत-सी व्यवस्थाएं हैं दुनिया में, आज काम कर रही हैं। उन व्यवस्थाओं के प्रत्येक के काम करने का ढंग अलग है और अपने उनके यन्त्र की एक व्यवस्था है। अमरीका से कुछ अच्छा लगता है, वह हम कुछ उधार ले लेते हैं, रूस से कुछ अच्छा लगता है, वह हम उधार ले लेते हैं। हमारा पूरा कॉन्स्टिट्यूशन, हमारे सोचने का ढंग ऐसा है कि जहां से जो अच्छा है वह ले लो। वह सब अच्छा इकट्ठा हो जाता है, लेकिन वह ऐसे हो जाता है जैसे कि मीठे-मीठे का भोजन हो जाये। उसका कोई मतलब नहीं होता। क्योंकि वह मंहगा ही पड़ता है, पेट को भारी पड़ जाता है। हजम नहीं हो पाता है। तो हमारा विधान भी वैसा है, हमारे पिछले बीस वर्षों का चिन्तन भी वैसा है।

तो हमारा फाइव इयर प्लान भी एक समाजवादी ढांचे में तो अर्थ रखता था, रख सकता था; लेकिन चूंकि वह ढांचा नहीं है इसलिए हमें उसे और तरह से सोचना चाहिए। प्लान तो हमें करना ही पड़ेगा। प्लान इकॉनमी तो जरूरी है। लेकिन वह प्लान इकॉनमी पूंजीवाद के अन्तर्गत होगी। समाजवाद है नहीं, उसके अन्तर्गत वह होने की बात नहीं उठती। और जब वह प्लान इकॉनमी हमें करनी हो पूंजीवाद के अन्तर्गत, तो उसका अधिकतम खर्च औद्योगीकरण पर होना चाहिए। और वह भी प्राइवेट सेक्टर में, अधिकतम उसमें से हमें लगाने की फिक्र करनी चाहिए। क्योंकि पब्लिक सेक्टर जैसी चीज हमारे पास नहीं है। और अगर है तो सिर्फ नुकसान में ले जायेगी, फायदे में नहीं ले जा सकती।

यानी मेरा मतलब यह है कि व्यक्तिगत रूप से जो अपनी ओर से जो उद्योग-पति हैं, औद्योगिक हाउसेस हैं, वे जो काम में लगे हैं, उनके लिए देश कितनी सहायता पहुंचा सकता है, उनके काम में कितनी सुविधा जुटा सकता है, और उनके व्यक्तिगत इन्सेंटिव को कितना फायदा उठा सकता है, उसकी हमें फिक्र करनी चाहिए, बजाय इसके कि हम उस सारी सम्पदा को सरकारी नियन्त्रण में चलने वाली व्यवस्था में लगायें। क्योंकि सरकारी नियन्त्रण में चलने वाली व्यवस्था एकदम असफल है। वह बोध ही नहीं है हमारे पास। इसमें कोई कठिनाई की बात नहीं है वह असफल होगी ही। हम उसमें जितना लगाते जायेंगे, वह डूबने वाला है, वह कहीं आने वाला नहीं है।

और बड़े आश्चर्य की बात है कि सरकारी व्यवस्था में जितना हम लगाते हैं उसमें से कोई पचहत्तर प्रतिशत उन लोगों की नौकरी और तनख्वाह, इसमें खर्च

हो जाता है। वह इन्तजाम में ही खर्च हो जाता है। जो हमें लगाने का सवाल था वह कहीं लग ही नहीं पाता, उसका कोई परिणाम नहीं हो पाता। हिन्दुस्तान में तो अभी व्यक्तिगत प्रेरणा के आधार पर यह जो काम चलता है उस पर ही हमें, सारी प्लानिंग उस पर ही खर्च करनी चाहिए। मगर हालतें उल्टी हैं, क्योंकि हमारे दिमाग में सोशलिस्टिक पैटर्न है। तो हम हर हालत में व्यक्तिगत प्रेरणा से चलने वाले कार्य में बाधा डाल रहे हैं। और व्यक्तिगत रूप से जो हम काम कर रहे हैं; उनको हम कितना रोक सकते हैं काम करने से, उस कोशिश में लगे हैं। और सामूहिक तल पर राज्य के द्वारा चलने वाले काम में ताकत लगा रहे हैं, जो कि असफल होना है।

जो सफल हो सकता था उसकी सफलता में बाधा डाल रहे हैं। जो असफल होगा, उसमें सम्पत्ति लगा रहे हैं। इतना चाहता हूं, इतना चेंज हमारी प्लानिंग में होना चाहिए। अभी हमें प्लान केपिटलिज्म की जरूरत है, सुनियोजित पूंजीवाद की जरूरत है; क्योंकि समाजवाद का अभी कोई सवाल नहीं उठता।

प्रश्न—जो इण्डिविजुअल इन्टरप्राइज है, वह बिजनेस करेगा और सिर्फ अपना प्रॉफिट देखेगा। सोसाइटी इन लार्ज को जिस चीज की आवश्यकता है जैसे कि प्राइमरी नीड्स ऑफ लाइफ, वह उसका ख्याल नहीं करेगा। तो उसके लिए आप क्या सोचते हैं ?

ठीक है, यह बात ठीक है। लेकिन सच्चाई यह है कि हमारे जैसे मुल्क में, जहां अभी सोशल कांशेसनेस जैसी कोई चीज नहीं है। जहां व्यक्तिगत स्वार्थ पर ही हम पांच हजार सालों से जिन्दा हैं वहां हमें सामाजिक स्वार्थ को पैदा करने की पृष्ठभूमि जब तक न बन जाये, तब तक व्यक्तिगत स्वार्थ का ही हम कितना अव-शोषण कर सकते हैं समाज के हित में, उस पर ही ध्यान देना होगा। निश्चित ही व्यक्ति अपने लाभ के लिए ही चेष्टा करेगा।

सरकार इसको इस तरह से उपयोगी कर सकती है कि बेसिक नीड्स को पूरा करने वाले जो लोग उद्योग पैदा करें, उन्हें सरकार ज्यादा सुविधा देती हो और ज्यादा लाभ की व्यवस्था जुटाती हो। जो लोग सिर्फ अपने हित में धन पैदा करने की कोशिश में लगे हुए हैं, उनको उतना लाभ न होता हो तो हमारा व्यक्तिगत रूप से जो इन्टरमेनुवर है, वह सामाजिक जरूरत की चीजों को पैदा करने की ओर संलग्न होगा। क्योंकि उसकी नजर सिर्फ लाभ की है। उसे लाभ मिलना चाहिए। अगर बेसिक और एलिमेंट्री नीड्स को पूरा करने वाले उद्योग को ज्यादा लाभ पहुंचाने की व्यवस्था करते हैं, कम टैक्स लगाते हैं, ज्यादा धन पर लोन देते हैं, बेचने की ज्यादा सुविधा देते हैं, कानून का कम बन्धन खड़ा करते हैं, हिसाब किताब के उपद्रव से थोड़ा मुक्त करते हैं, तो हमारा जो उद्योगपति है वह उस दिशा में प्रवाहित होना शुरू हो जायेगा। यानी मेरा मानना यह है कि हमें व्यक्ति-

गत स्वार्थ का ही पोषण करना पड़ेगा अभी ।

अब सवाल यह है, व्यक्तिगत स्वार्थ को सामाजिक हित में नियोजित करने की बात है । तो वह तो किया जा सकता है । उसमें बहुत कठिनाई नहीं है । और अगर यह बहुत बड़े पैमाने पर किया जाये तो धीरे-धीरे···क्योंकि उद्योगपति को या सम्पत्ति की खोज में निकल गये व्यक्ति को उससे कोई प्रयोजन नहीं कि वह क्या पैदा करता है ? वह वही पैदा करता है जहां से लाभ आता है, प्रॉफिट मोटिव है । तो हम प्रॉफिट मोटिव क्यों न उसका पूरा करें ? और उन दिशाओं में पूरा करें जो देश के हित में हों । हम क्या कर रहे हैं, हम उसके प्रॉफिट मोटिव को नुकसान पहुंचा रहे हैं और मजा यह है कि हमारे मुल्क में सिवाय प्रॉफिट मोटिव के कोई मोटिव नहीं है । नया कोई मोटिव नहीं है । उसमें किया नहीं जा सकता कुछ । और उसके कुछ कारण हैं । हमारा पूरा का पूरा चिन्तन जो हजारों साल का है, वह व्यक्ति-केन्द्रित है । उसमें समाज का कोई बोध नहीं है । पाप हैं तो मेरे हैं, पुण्य हैं तो मेरे हैं, स्वर्ग मिलेगा तो मुझको मिलेगा, नर्क मिलेगा तो मुझको मिलेगा । कर्म हैं तो मेरे हैं, फल हैं तो मेरे हैं । दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है कहीं । हम दो कहीं जोड़ते नहीं हैं । सुख है तो मेरा है, दुख है तो मेरा है । दूसरे से कहीं जोड़ नहीं बनता है । हमारी जो फिलासफी है भारत की, उसमें इन्टर-रिलेशनशिप का कोई भाव नहीं है । निपट व्यक्ति केन्द्र है सारे चिन्तन का, सारे धर्म का, सारे जीवन का ।

तो जहां निपट व्यक्ति केन्द्र रहा हो दस हजार साल तक, वहां हम एकदम से सोशल मोटिव पैदा नहीं कर सकते । सोशल मोटिव पैदा करने के लिए हमें इन्टर-रिलेशनशिप का बोध बढ़ाना पड़ेगा । और वह जब तक नहीं बढ़ जाता है, तब तक हमें पुराने मोटिव का ही फायदा लेकर समाज को फायदा पहुंचाने की फिक्र करनी चाहिए । पर हमारी कठिनाई यह है कि पश्चिम में जो भी सवाल पैदा होता है वह हम पकड़ लेते हैं । वहां एक सोशल मोटिव पैदा हुआ । और उसका कुल कारण इतना है कि उनको कोई तीन सौ वर्ष से यह बात साफ समझ में आ गयी कि व्यक्ति का व्यक्ति की तरह न कोई जीवन है, न कोई अर्थ है । अगर कोई भी जीवन है, अर्थ है, सुख है, दुख है, स्वास्थ्य है, बीमारी है, तो वह इन्टररिलेशनशिप में है । वह हम सब जुड़कर हैं । यह भाव तीन सौ साल की निरन्तर व्यवस्था से पैदा हुआ । इसके बाद सोशलिज्म की बात सार्थक हो सकी वहां । वह हमारे पास नहीं है भाव । इसे अगर हम सीधा स्वीकार नहीं करेंगे तो हम दोहरे नुकसान में पड़ेंगे । जिसका हम फायदा उठा सकते हैं उसका फायदा नहीं उठायेंगे और जो है ही नहीं उस पर हम खर्च करेंगे और परेशान हो जायेंगे ।

इसलिए हिन्दुस्तान में जितने भी सामाजिक हित के लिहाज से सरकार व्यवस्थाएं करती है, वे सब नुकसान में पड़ती हैं और सब असफल होती हैं । भिलाई

का स्टील का कारखाना हो कि बोकारो हो, कि कोई भी हो । यानी रेलवे जैसी निरन्तर लाभ देने वाली व्यवस्था इधर नुकसान दे रही है । यानी जो कि बिल्कुल ही चमत्कारपूर्ण है कि जिससे कभी नुकसान न हुआ था, जो कि सदा ही लाभ की व्यवस्था थी, वह भी नुकसान दे रही है ।

अब इधर मैं देखता हूं, मैं प्राइवेट कॉलिज में भी था तो प्राइवेट कॉलिज में एक प्रोफेसर सप्ताह में कम से कम बीस लेक्चर देता है, मेहनत करके देता है । फिर मैं गवर्नमेंट कॉलेज में भी था; गवर्नमेंट कॉलेज में कोई आठ या दस लेक्चर दे दे तो बड़ी कृपा करता है । बिना तैयारी के देता है, बिना फिक्र के देता है क्योंकि नौकरी सिक्योर है, फिर उसे कोई प्रयोजन नहीं है । फिर बात खत्म हो गयी । उसको तनख्वाह मिलनी है और एक दफा कन्फर्मेशन उसका हो गया तो उसको कोई निकालने वाला नहीं है । वह अपनी आरामकुर्सी पर बैठा रहता है ।

इधर मैं जिस कॉलेज में था उसमें सौ प्रोफेसर थे । और मैं हैरान हुआ यह जानकर कि मैं एक आदमी न खोज सका कि जिसको पढ़ाने में कोई भी रस हो । तनख्वाह में रस था, वह पूरा हो गया, बात खत्म हो गयी । प्राइवेट कॉलेज में तनख्वाह में रस है, पढ़ाना पड़ेगा, नहीं तो नौकरी जाती है । और सब प्राइवेट कॉलेज हम धीरे-धीरे गवर्नमेंट के बनाये चले जा रहे हैं और हमारा ख्याल है कि गवर्नमेंट का कॉलेज हो जाने से कुछ फायदा हो जायेगा । और जबकि वे जो पूरे के पूरे टीचर्स हैं, उनका मोटिव पूरा हो जाता है, बात खत्म हो गयी, उनको पढ़ाने-लिखाने से कोई मतलब नहीं है । हिन्दुस्तान में ऐसा टीचर नहीं है जिसको पढ़ाने में रस है । उसको तनख्वाह में रस है । एक दफा तनख्वाह सुनिश्चित हो गयी तो बात खत्म हो गयी । उसे क्या प्रयोजन है ?

तो मैं कॉलेज में देखा भी, पूछा भी लोगों से, उन्होंने कहा, करना क्या है ? हमें कौन अलग कर सकता है ? और तनख्वाह जितनी मिलनी है उतनी मिलनी है । हम पढ़ायें तो ज्यादा नहीं मिल जायेगी, न पढ़ायें तो कोई कम नहीं हो जायेगी । इसलिए मेहनत किसलिए करनी है ? यह प्रोफेसर की बुद्धि हो, तो मजदूर की बुद्धि तो फिर ठीक ही है । यानी मैं यह पूछता हूं, यह हमारा जो टॉप-मोस्ट हो, उसकी जब यह बुद्धि हो तो फिर ठीक है, पीछे हम क्या सोचें इसमें । इसलिए आप कलेक्टिव फॉर्मिंग करें, कोई काम नहीं करेगा । कलेक्टिव कांशसनेस नहीं है ।

तो मेरा मानना है कि इण्डिविजुअल कांशसनेस का हमें पचास साल तक शोषण करना चाहिए । और इस शोषण को जारी रखकर कलेक्टिव कांशसनेस पैदा करने की कोशिश करनी चाहिए । और जब कलेक्टिव कांशसनेस पैदा हो जाये तो इण्डिविजुअल मोटिव को सोशल मोटिव में बदलने का उपाय हो सकता है, उसके पहले नहीं हो सकता है । इसलिए मैं समाजवाद की बात ही एक

असम्भावना मानता हूं और अगर हमने कोशिश की तो हम उसमें आत्मघात ही करेंगे। हम उससे कहीं भी पहुंच नहीं सकते, हम और दरिद्र और पीड़ित हो जायेंगे।

प्रश्न—पूंजीवाद आप परिपक्व करने की बात करते हैं, तो वह कौन-सी स्टेज होगी पूंजीवाद की, जब हम कह सकें कि हमारे यहां पूंजीवाद परिपक्व हो गया है और सोशलिज्म के लिए एक स्टेज तैयार हो गया है ?

सच तो यह है कि मेरा मानना है कि आपको कहने की जरूरत नहीं पड़ेगी। पूंजीवाद परिपक्व हो तो सोशलिज्म में रूपान्तरण बहुत सहज है, अपने आप हो जायेगा। और मैं मानता हूं, जिस दिन अपने आप होगा उसी दिन ठीक से होगा, उसके पहले नहीं होगा। इसलिए हमें इसकी बहुत चिन्ता लेने की जरूरत नहीं है कि जवान कब आदमी हो जायेगा और बूढ़ा कब होना शुरू करेगा। शायद तारीख तय भी नहीं की जा सकती। और शायद पता भी नहीं चलेगा। मेरा मानना है कि अमरीका सोशलिज्म की तरफ जाना शुरू हो चुका है।

प्रश्न—आज तो ऐसा है कि पूंजीवादी पूंजी वाला होता जाता है और गरीब और भी गरीब होता जाता है। तब जैसा आप कहते हैं, वैसा कैसे हो जायेगा ?

यह भी थोड़ा सोचने जैसा है। मजा यह है कि हमको ख्याल यह है कि गरीब जो है वह बड़ा दया का पात्र है, और हमें यह ख्याल है कि गरीब इसलिए गरीब है कि अमीर ने उसकी पूंजी खींच ली है। यह बड़ी ही भ्रांत बात है। अमीर ने पूंजी पैदा की है। उसने गरीब से खींच नहीं ली है। हां, गरीब से उसने पैदा करवाने में सहयोग लिया है। और अगर अमीर को हम बीच से हटा दें तो गरीब कोई अमीर नहीं हो जाता।

मजा तो यह है कि पहली बार गरीब को जितनी सुविधा है उतनी जगत् में कभी भी न थी। पूंजीवाद ने पहली दफा गरीब को भी जिन्दा रहने का हक दिया है। गरीब का बच्चा अब बच सकता है, मर नहीं जाता। और इतनी जो बड़ी गरीबों की जमात खड़ी दिखायी पड़ रही है, वह पूंजीवाद ने जो सम्पत्ति पैदा की है वह उसके फल से जिन्दा है, नहीं तो जिन्दा नहीं रह सकती थी। दुनिया की आबादी पिछले सौ वर्षों में बढ़नी शुरू हुई है। पहले वह थिर थी। क्योंकि गरीब कितने बच्चे पैदा करता ! आठ दस बच्चे पैदा करता था तो नौ मर जाते थे। जो एक बचता वह भी हमेशा मिनिमम लिविंग पर बचता। उससे ज्यादा बच नहीं सकता था।

एक हमें बड़ी भ्रान्ति का ख्याल दे दिया है समाजवादी विचारकों ने कि गरीब इसलिए गरीब है कि अमीर ने उसकी पूंजी शोषण कर ली। अमीर ने पूंजी पैदा की है पहली दफा, और पैदा करने की वजह से अमीर अमीर हुआ है और गरीब गरीब दिखायी पड़ने लगा है। पूंजी जो है वह क्रिएशन है, शोषण नहीं है एकदम।

मैं जो फर्क कर रहा हूं, पूंजी एक तरह का सृजन है। अब जैसे कि आप अगर अमरीका के बारह अमीरों को बाहर कर दें तो अमरीका गरीब ही रहता पूरा का पूरा, क्योंकि गरीबी का कोई बोध न होता, क्योंकि कोई अमीर भी नहीं था। अगर हम मार्विन को या रॉकफेलर को या फोर्ड को अलग कर दें अमरीका से, जिन्होंने कि सम्पत्ति पैदा करने के हजार-हजार रास्ते खोजे हैं, हजार-हजार उपायों से लोगों को सम्पत्ति पैदा करने में संलग्न करवाया, अगर उनको अलग कर दें तो अमरीका का वह जो आज मजदूर है, वह कोई अमीर हो जाता है। ऐसा नहीं है कि उसके पास सम्पत्ति होती। उसके पास सम्पत्ति होती नहीं। हां, एक फर्क पड़ा कि गरीब की जितनी बड़ी संख्या है, वह नहीं होती। और गरीब का जो बोध है, वह नहीं होता।

पहली दफा पूंजीवाद ने सम्पत्ति पैदा करने के उपाय खोजे हैं। लेकिन हमें पुरानी आदत रह गयी है। पुरानी जो सामंतवादी व्यवस्था थी, वह शोषक व्यवस्था थी, वह शोषक व्यवस्था थी। राजा सम्पत्ति पैदा नहीं करता था, सिर्फ चूसता था। यानी बड़े मजे की बात है कि राजा जो था वह सम्पत्ति कभी पैदा नहीं करता था, वह चूसता था। पूंजीपति ने पहली दफा सम्पत्ति पैदा करने का उपाय खोजा। वह चूस नहीं रहा है। हमें ऐसा लगता है कि हमने एक मजदूर से दिन-भर काम लिया, उसको दो रुपये दिया। मजदूर को ऐसा लगता है कि मेरा शोषण कर लिया गया। और मजा यह है कि अगर मैं उससे काम न लूं तो वह दो रुपये भी पैदा नहीं कर सकता। वे दो रुपये भी मेरे काम में संलग्न होने की वजह से उसको मिल रहे हैं। नहीं तो वे दो रुपये भी मिलने वाले नहीं थे। वह पैदा भी नहीं होता, वह मरता। वह जिन्दा भी नहीं रह सकता था।

पूंजीवाद को मैं वह व्यवस्था कहता हूं जिसने पूंजी पैदा करने के उपाय निकाले। लेकिन पूंजी पैदा होने से निश्चित एक विभाजन हुआ कि एक तरफ पूंजी इकट्ठी हो गयी और एक तरफ पूंजीहीन लोग इकट्ठे हो गये। ये पूंजीहीन लोग पूंजीपति के शोषण के कारण पूंजीहीन नहीं हैं। पूंजीपति ने पूंजी इकट्ठी करने का उपाय खोजा है इसलिए उसके पास पूंजी है, इनके पास नहीं है। आज अगर हम पूंजी का हिसाब लगायें, तो सौ साल पहले यह पूंजी कहां थी ? अगर शोषण किया तो यह सौ साल पहले भी होनी थी दूसरे लोगों के पास और फिर किसी ने शोषण कर लिया।

अब हम इस कमरे में बैठे हैं। हमारे पास तीस रुपये हैं सबके पास। दो साल बाद मेरे पास हजार रुपये हैं, और आप कहते हैं, आपने शोषण कर लिया। तो मैं यह पूछता हूं, दस साल पहले जब तीस ही रुपये थे तो इस कमरे में हजार रुपये शोषण कर कैसे लेता ? यह हजार रुपये का मैंने उपाय भी किया है। और मजा यह है कि आपके पास भी आज तीस की जगह तीन सौ रुपये हैं। लेकिन

फिर भी आपको लग रहा है कि आप गरीब हैं और आप शोषित हो गये हैं। क्योंकि मेरे पास हजार हैं और आपके पास तीन सौ हैं। क्योंकि सात सौ का फासला है। यह सात सौ का फासला दस साल पहले नहीं था। आपके पास भी एक रुपया था, मेरे पास भी एक रुपया था। हम दोनों एक जगह खड़े थे। आज मेरे पास हजार हैं, आपके पास तीन सौ हैं। आज तीस की जगह तेरह सौ हैं इस कमरे में, लेकिन यह बाकी तेरह सौ रुपये कहां से आये? यह क्रिएट किये हैं।

पूंजीवाद पूंजी पैदा करने की व्यवस्था है। लेकिन एक दफा जब पूंजी इतनी पैदा हो जाये, इतनी अतिरिक्त पैदा हो जाये कि उस पर व्यक्तिगत स्वामित्व का कोई अर्थ न रह जाये तो मैं मानता हूं कि समाजवाद में रूपान्तरण शुरू हो जाता है।

इसलिए अमरीका की—मेरी समझ यह है कि—पिछले तीस वर्षों में अमरीका रोज एक-एक कदम समाजवाद की तरफ रख रहा है। रखने ही पड़ेंगे। क्योंकि पूंजी जब इतनी ज्यादा हो जाती है तो उसको मालकियत रखने का कोई प्रयोजन ही नहीं। इसलिए मैं मानता हूं कि मालिक को नहीं मिटाना है, मालकियत का प्रयोजन मिटाना है। और मालकियत का प्रयोजन तभी मिटेगा जब अतिरेक हो, एफ्लुएन्ट सोसाइटी हो, तब प्रयोजन मिटेगा। आज आप इस साड़ी पर अपना कब्जा बताना चाहती हैं। यह साड़ी न्यून है। अगर आपने कब्जा नहीं बताया तो कोई और कब्जा कर लेगा। लेकिन साड़ियां अगर इतनी होंगी, कब्जे का कोई मतलब न रह जाये, कि कोई इस साड़ी पर कब्जा कर ले तो दूसरी साड़ी उपलब्ध हो सके तो आपका कब्जे का भाव मिट जायेगा। मकान न्यून हैं, इसलिए हमें कब्जा बताना पड़ रहा है। कार न्यून हैं, इसलिए हमें कब्जा बताना पड़ रहा है कि मेरी गाड़ी है। लेकिन कार अगर इतनी हो जायें, जितने आदमी हों, उनसे ज्यादा हो जायें तो कब्जा बेमानी हो जाता है। बिल्कुल ही अर्थहीन हो जाता है। असल में कब्जा तब तक बताना पड़ता है जब तक ऐसे लोग हैं जिनके पास चीजें नहीं हैं।

तो मैं मानता हूं कि एफ्लुएंट सोसाइटी का अंतिम परिणाम समाजवाद होगा। और यह ही सहज हो सकता है। अगर अहिंसात्मक रूपान्तरण का हमें ख्याल हो, लोकतांत्रिक रूपान्तरण का ख्याल हो—और अगर यह नहीं हमें ख्याल हो तो शोषण जबर्दस्ती हो सकता है। लेकिन जबर्दस्ती में पूंजीवाद जो पूंजी पैदा करता वह नहीं हो पायेगी; क्योंकि पूंजी पैदा करने का जो इनसेंटिव है, वह पूंजीवाद में है। वह सोशलिज्म में नहीं है। यानी मैं मानता हूं कि पूंजीवाद का एक हिस्टॉरिक रोल है, जो पूंजी पैदा कर जाये। अगर वह पैदा नहीं कर पाया तो सोशलिस्ट सोसाइटी पूंजी पैदा करने में मुश्किल में पड़ जायेगी। एक दफा पूंजी पैदा हो गयी तो रन करेगी लेकिन सोशलिस्ट सोसाइटी पूंजी पैदा नहीं कर सकी और अगर

करनी है तो फिर लोकतन्त्र नहीं रह सकेगा। यानी दो उपाय हैं, या तो प्रॉफिट मोटिव से आदमी पूंजी पैदा करेगा या फिर बन्दूक के कुन्दे से पूंजी पैदा करेगा। इन दो के बीच चुनाव करना है कि मेरी छाती के पीछे बन्दूक का कुन्दा लगा हो तो मैं आठ घण्टे मजदूरी कर सकता हूं या मेरे सामने लाभ का, प्रॉफिट का मोटिव अटका हो तो मैं मेहनत कर सकता हूं।

अब मेरा मानना यह है कि प्रॉफिट मोटिव जो है, वह ज्यादा लोकतान्त्रिक है बजाय बन्दूक के कुन्दे के। मैं नहीं देख पाता कि बन्दूक का कुन्दा किस अर्थ में समाजवादी है। और वह भी व्यक्ति को ही लगाना पड़ेगा हमको; कोई उपाय नहीं है उसका। यह है कि हमको आठ घण्टे एक मजदूर को काम करना है। जेल में भी हम काम ले रहे हैं। वह भी एक काम है। उसको हमने कह दिया है कि इतना उसको पीसना है, या इतने पत्थर तोड़ने हैं। नहीं तोड़ता है तो शाम को उसकी हड्डी-पसली टूट जानी है। वह भी एक रास्ता है। वह बिल्कुल सोशलिस्ट पैटर्न है। अगर पूरे मुल्क को इसी तरह एक कंसंट्रेशन-कैम्प बनाना हो तो हो सकता है। एफ्लुएंट सोसाइटी के बाद यह सरलता से हो जायेगा। क्योंकि एफ्लुएंट जैसे ही सोसाइटी हुई, प्रॉफिट मोटिव का कोई मतलब नहीं रह जाता—एक। और आदमी को धक्का देने का भी कोई कारण नहीं रह जाता।

दूसरी बात यह है कि जैसे ही अतिरिक्त रूप से सम्पन्न समाज होगा वैसे ही श्रम का अर्थ खो जायेगा। क्योंकि हम यन्त्र से काम लेने लगेंगे। असल में गरीब समाज श्रम से काम लेता है, अमीर समाज यन्त्र से काम लेता है। और एफ्लुएंट सोसाइटी ऑटोमेटिक यन्त्रों से काम लेगी। आने वाले सौ वर्षों में अमरीका में श्रम का कोई अर्थ ही न रह जायेगा। यानी उल्टी हालत भी हो सकती है कि मैं आपसे आकर कहूं कि मुझसे घण्टे-भर थोड़ा काम लेना और पांच रुपये भी ले लें। यह हालत पैदा हो सकती है। यह बिल्कुल पैदा हो जायेगी। क्योंकि मैं चौबीस घण्टे खाली, बेकार मुश्किल में पड़ जाऊंगा। मैं किसी से कह सकता हूं कि आपके बगीचे में मैं दो घण्टे काम करना चाहता हूं, आप कृपा करके पांच रुपये ले लें और मुझे दो घण्टे काम करने दें। यह आज हमें असम्भव लगता है, लेकिन यह सम्भव हो जायेगा।

एफ्लुएंट सोसाइटी का अंतिम परिणाम यह होगा कि काम जो है वह खेल ही हो जायेगा। उसका कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। और हम लोगों को काम से रोकने के पैसे देंगे। यानी जो आदमी काम करने के लिए जिद्द बतायेगा उसको कम पैसे मिलेंगे। जो आदमी कहेगा हम नहीं करने को राजी हैं उसको ज्यादा पैसे मिल जायेंगे। एफ्लुएन्ट सोसाइटी जैसे ही ऑटोमेटिक यन्त्रों पर उतर जायेगी—अगर मैं कहता हूं कि मैं तो दो घण्टे काम मांगूंगा ही मुल्क से तो मुल्क मुझे कहेगा, हम आपको सौ रुपये देते हैं, और आदमी चूंकि काम मांगता ही नहीं,

इसको हम दो सौ देते हैं। क्योंकि यह समाज पर बड़ी कृपा कर रहा है। यह काम की झंझट पैदा नहीं करता। क्योंकि काम कम होता चला जायेगा तो काम जो लोग मांगेंगे, उनकी स्थिति बिल्कुल उल्टी हो जायेगी।

जैसे ही एफ्लुएन्ट सोसाइटी आती है, श्रम व्यर्थ हो जायेगी, श्रमिक व्यर्थ हो जायेगा। और तब श्रम एक आनन्द हो जायेगा, जिसकी हम बहुत दिन से कल्पना करते रहे कि श्रम आनन्द हो जाये। आदमी ऐसे श्रम करे जैसे खेल खेलता है। यह हो नहीं सकता था पहले कभी—चाहे गांधी समझायें, चाहे विनोबा समझायें कि श्रम को आप आनन्द समझो। यह बेहूदी बात है, समझा ही नहीं जा सकता है।

श्रम तभी आनन्द हो सकता है जब मेरी जिन्दगी की सब जरूरतें बिना श्रम के पूरी होती हों; श्रम करने की कोई भीतरी मजबूरी न रह जाये। तो ऐसा नहीं है कि आदमी बिना श्रम के जिन्दा रह जाये, आदमी श्रम तो करेगा ही। और आज भी अगर एक आदमी को कोई श्रम नहीं है तो वह मछली मार रहा है जाकर नदी के किनारे बैठकर। अब उनको कोई मतलब नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है, वह मछली काहे के लिए मार रहा है? शतरंज खेल रहा है, उसमें मेहनत का कोई मतलब नहीं है। कि वह घण्टों ताश खेल रहा है, उसमें कोई सेंस नहीं है। लेकिन आदमी बिना काम के नहीं रह सकता।

तो मुझे ऐसा लगता है कि सौ वर्ष में अभी आंतरिक व्यवस्था इतनी विकसित हो गयी है कि हमें किसी गैर-लोकतान्त्रिक ढंग से समाजवाद लाने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। एफ्लुएंस लाने की चेष्टा करनी चाहिए। यानी ऐज ए बाई प्रॉडेक्ट, सोशलिज्म पीछे से आयेगा और तब वह बड़ा सहज होगा। और वह मैं जिस तरह से कह रहा हूं उसी तरह से नॉनवायलेंटली आ सकता है, डेमोक्रेटिकली आ सकता है। नहीं तो वह आ ही नहीं सकता है। फिर लाने के लिए हमें कुन्दा लगाना पड़ेगा जब तक प्रॉफिट मोटिव है तब तक हमें बन्दूक, या प्रॉफिट मोटिव, ऐसी च्वाइस करनी पड़ेगी।

और मैं मानता हूं कि प्राफिट मोटिव बहुत लोकतान्त्रिक, भद्र उपाय है। जिसमें अगर एक आदमी चाहे कि मुझे लाभ नहीं चाहिए, उसको कोई मजबूरी भी नहीं है। अगर मैं कहता हूं, मुझे नहीं करोड़ रुपये कमाने हैं तो मैं घर में बैठकर अपनी किताब पढ़ता रहूं, सौ रुपये कमाऊं, अपने खाने का इन्तजाम कर लूं, बाद की फिक्र छोड़ दूं। लेकिन बन्दूक वाले समाज में मैं यह नहीं कह सकता। यहां व्यक्तिगत चुनाव का उपाय है। बन्दूक वाले समाज में उपाय नहीं है।

आज सोवियत रूस में कोई संन्यासी नहीं हो सकता। सबसे बड़ा पाप है। एक-एक आदमी कहे, अगर हम चार आदमियों की रोटी मांग कर ले लेंगे तो यह सवाल नहीं उठता। वह फौरन उठाकर बन्द कर दिया जायेगा। क्योंकि वहां तो

बन्दूक के कुन्दे पर श्रम करना पड़ेगा। यह सवाल ही नहीं है कि एक आदमी कहे कि मैं किताब पढ़कर जिन्दगी गुजार लूंगा, मुझे दो वक्त मुझे दो रोटी दे देते। यह एक गैरकानूनी बात हो जायेगी।

व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अपहरण करके समाजवाद लाने के पक्ष में मैं नहीं हूं। क्योंकि स्वतन्त्रता का समानता से बड़ा मूल्य है। समानता को मैं स्वतन्त्रता के ऊपर कभी भी नहीं रख सकता हूं। क्योंकि स्वतन्त्रता है तो समानता भी लायी जा सकती है। लेकिन स्वतन्त्रता को खोकर लायी गयी समानता, फिर अगर हम बदलना भी चाहें तो बदल नहीं सकते। आज रूस में कोई बदलाहट नहीं हो सकती, कोई बगावत नहीं हो सकती। कोई विद्रोह नहीं हो सकता। यानी पहली दफे एक ऐसी सोसाइटी पैदा हुई है जो बगावत प्रूफ है, जिसमें आप भीतर से बगावत नहीं कर सकते। क्योंकि बगावत का विचार ही नहीं बो सकते। विचार बोया नहीं, आपने दूसरे से कहा नहीं कि आप गये। आपका पता ही नहीं चलेगा।

यह इतना बड़ा खतरा है कि इस खतरे के मुकाबले मैं कहता हूं कि गरीब-अमीर को सहा जा सकता है। यह इतना बड़ा खतरा है कि इसका अन्तिम परिणाम, अगर रूस जैसी सोसाइटी चलती है तो मेरी अपनी समझ है कि रूस में अब करीब-करीब वर्ण व्यवस्था की स्थिति आ गयी है। वर्ग व्यवस्था तो मिट गयी, वर्ण व्यवस्था आ गयी। अब जो आज हुकूमत हैं जो वर्ग, करीब-करीब लेनिन का जो प्रोलित ब्यूरो था, करीब-करीब उसी प्रोलित ब्यूरो के आदमी पिछले पचास साल से हुकूमत कर रहे हैं। एक छोटा-सा क्लास, एक छोटा-सा ग्रुप हुकूमत कर रहा है। उस 'क्लास' में बीस करोड़ लोगों में से एक नया आदमी प्रवेश नहीं कर पाया। स्टैलिन न रहे, खुश्चेव न रहे, फलां-ढिंका सब हो, लेकिन एक ग्रुप है पचास-सौ आदमियों का जो छाती पर बैठा है, जो काम कर रहा है। उसी में से कोई आदमी हावी होता है। सौ आदमी एकदम से सत्ताधिकारी हो गये हैं। बीस करोड़ लोग कट ऑफ हो गये हैं। और जो रूस में आज कम्युनिस्ट है, उसकी प्रतिष्ठा ब्राह्मण की है, बाकी सब शूद्र है पूरा मुल्क। बाकी लोगों का कोई अर्थ नहीं है। दो वर्ग हैं आज—वर्ण कहना चाहिए, वर्ग नहीं, क्योंकि वर्ग में एक लिक्विडिटी होती है। वर्ग का मतलब होता है, इसमें बदलाहट सम्भव है। और वर्ण का मतलब है जिसमें बदलाहट असम्भव है; जो जन्मतः तय हो गया। अब वहां एक तो सत्ताधिकारी का वर्ग है, एक गैरसत्ताधिकारी का वर्ग है। गैरसत्ताधिकारी को हक है कि वह खाये, पिये, सोये। बोले न, सोचे न।

इसका अंतिम परिणाम यह होगा कि धीरे-धीरे सोचने—जैसा हिन्दुस्तान में हो गया था, शूद्र सोचे न, बोले न, पढ़े न। तो पांच हजार वर्ष में एक शूद्र ने प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा नहीं किया। अम्बेडकर पहला शूद्र है जिसमें कोई

प्रतिभा है । पांच हजार साल में अम्बेडकर अंग्रेजों की कृपा है, हमारे कारण से नहीं । पांच हजार वर्ष में इतने बड़े शूद्रों की जमात में एक प्रतिभा पैदा हो, वह भी अंग्रेजों की सुविधा से पैदा हो पाये तो यह सोचने जैसा है कि इसका हुआ क्या कारण ?

रूस में नीचे का जो वर्ग है, समाज जो है, वह अब प्रतिभा पैदा नहीं कर सकेगा । क्योंकि प्रतिभा बिना सोचे-विचारे पैदा नहीं होती । और धीरे-धीरे रिफ्ट बड़ी होती जायेगी । आज प्रोलित ब्यूरो के लोग हुकूमत करते हैं, कल इनके बच्चे करेंगे, परसों इनके बच्चे करेंगे, रिश्तेदार करेंगे । यह एक ग्रुप बन जायेगा जो करता रहेगा निरन्तर । अब इसके हाथ में इतने साधन हैं जितने साधन किसी सत्ता के हाथ में कभी भी नहीं थे । धन इनके हाथ में है, राज्य इनके हाथ में है, पुलिस इनके हाथ में है, मिल्ट्री इनके हाथ में है, विज्ञान इनके हाथ में है, और वह जो नीचे जनता है उसके हाथ में कुछ भी नहीं है ।

अभी इस पर बहुत विचार चलता है कि इस तरह के ड्रग्स खोजे गये हैं, जिनका मास एप्लिकेशन हो सकता है, कि आपके गांव के रिजर्वायर में, पानी के झील में एक ड्रग डाल दिया जाये जो गांव भर पीता रहे तो छः महीने के बाद बगावत की वृत्ति न रह जाये । ट्रैंकोलाइजिंग हो, तो पूरा का पूरा गांव जो है बगावत कर ही न सके, सोच ही न सके कभी । उसके भीतर से सारी की सारी नर्वस सिस्टम जो है, वह ट्रैंकोलाइज हो जाये । यह बड़ा मुश्किल मामला है, क्योंकि हमें पता ही न चलेगा कभी कि हमारे गांव का जो हम पानी पी रहे हैं उसमें कोई ड्रग भी है । अब हम यह भी कर सकते हैं कि बच्चा पैदा हो, उसमें से कुछ हिस्से काट लें जो अस्पताल में घटित हो जाये, हमें पता न चले । पैदा होते से जैसे हम वैक्सिनेशन लगाते हैं, पैदा होते से हम एक इंजेक्शन उसे दें, जो उसको सदा के लिए चिन्तन के बगावत से मुक्त कर दे । वह कभी सोच न पाये विरोध में; क्योंकि विरोध में सोचने के लिए कुछ केमिकल जरूरी हैं बॉडी में । अगर वह केमिकल न रह जायें तो आप विरोध में नहीं सोच सकते । आप हमेशा 'हां' कहकर ही सोचेंगे ।

इतनी बड़ी सत्ता के हाथ में ताकत आ जाये और स्वतन्त्रता का कोई उपाय न रहे तो मैं मानता हूं कि गरीबी अमीरी को भी सह लेना बेहतर है, लेकिन इतने बड़े उपद्रव को लेने का अब कोई कारण समझ में नहीं आता है । रूस में अगर यह व्यवस्था चलती है तो सौ वर्ष में शूद्रों का एक वर्ग पैदा हो जायेगा जिसके पास कोई प्रतिभा, कोई बुद्धि, किसी चीज की कोई जरूरत न होगी । वह खायेगा, पियेगा, मोटा-तगड़ा होगा, स्वस्थ होगा, लम्बी उम्र का होगा; मगर उसके पास कोई प्रतिभा और बुद्धि, इंटेलिजेंस जैसी चीज नहीं रह जायेगी । या इंटेलिजेंस उसी मात्रा में रह जायेगी जो 'हां' कह सकती है, 'ना' नहीं कह

सकती है ।

इसलिए मैं मानता हूं कि एफ्लुएंट सोसाइटी के माध्यम से ही—जैसा मैंने परसों कहा कि हिन्दुस्तान में समाजवाद लाना हो, मास्को पहुंचना हो तो वाया वाशिंगटन ही पहुंचा जा सकता है । और कोई उपाय नहीं है । मैं समझता हूं कि अमरीका में जो घटित हो रहा है वह बिल्कुल नेचरल प्रोसेस है । रूस में जो घटित हुआ है वह बिल्कुल अननेचरल प्रोसेस से घटित हुआ है, चीन में जो हुआ है वह बिल्कुल ही अननेचरल प्रोसेस है, अस्वाभाविक प्रक्रिया है । और यह भी मेरी दृष्टि है कि अस्वाभाविक प्रक्रिया में ही हिंसा जरूरी होती है । स्वाभाविक प्रक्रिया ही अहिंसक हो सकती है । अस्वाभाविक प्रक्रिया का मतलब यह है कि जिसमें हमें वायलेंस करनी पड़ेगी । तो अगर अहिंसात्मक ढंग का—और मैं मानता हूं कि अहिंसात्मक ढंग से ही कुछ भी लड़ने योग्य है तो आने देना चाहिए ।

दूसरा भी मेरा कारण है । मेरा यह भी ख्याल है कि आर्थिक समानता तो ठीक है लेकिन बहुत गहरे में यह मनोवैज्ञानिक सत्य है दो व्यक्ति समान नहीं हैं । असमानता एक बहुत वैज्ञानिक सत्य है । इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को असमान होने की स्वतन्त्रता का भी हक है । यह तो इकोनॉमिक बात है और मैं मानता हूं कि समान सुविधा सबको मिल जानी चाहिए, लेकिन समान सुविधा भी इसीलिए मिलनी चाहिए कि मैं जो होना चाहूं वह हो सकूंगा, आप जो होना चाहें वह हो सकें । इसका गहरा मतलब यह हुआ कि समानता की सुविधा भी मैं इसीलिए मांगता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति असमान होने को स्वतन्त्र हो सके । और अगर हमने जबर्दस्ती समानता थोपी तो हमें वह मनोवैज्ञानिक भेद जो हैं, उनके भी झड़ा देने पड़ेंगे । और हमें एक-एक व्यक्ति को ऐसा बना देना पड़ेगा कि वह टाइट हो । क्योंकि वह जिस मात्रा में असमान होगा, उसी मात्रा में हमारी जो जबर्दस्ती थोपी गयी व्यवस्था है, उसमें वह बाधा डालेगा । इसलिए मैं नैसर्गिक विकास के पक्ष में हूं । पूंजीवाद जैसे नैसर्गिक ढंग से आया है, ऐसे नैसर्गिक ढंग से समाजवाद भी आना चाहिए । तो उसमें समानता भी आ जायेगी एफ्लुएंस के द्वारा, और व्यक्ति असमान होने के लिए भी स्वतन्त्र होगा । उसमें कोई बाधा न होगी ।

अब हमें ख्याल में नहीं है कि अगर सारे व्यक्तियों को हम किसी तरह से बिल्कुल समान कर दें तो वह समाज इतना उबाने वाला होगा जिसका हिसाब नहीं है । अब माओ ने चीन में करीब-करीब कपड़े समान कर दिये हैं । कोई कपड़े की वैराइटी नहीं है चीन में । दो-चार तरह के कपड़े मिल सकते हैं, वही आपको पहनने होंगे । दफ्तर का एक तरह का कपड़ा है, घर का एक तरह का है । तो करीब-करीब पूरा मुल्क ऐसा लगता है जैसे कि एक मिल्ट्री कैम्प हो गया है । चेहरे खत्म हो गये ।

यह आपने कभी ख्याल किया कि अगर सौ जवान मिल्ट्री के खाकी ड्रेस में खड़े

होते हैं तो आपको चेहरे दिखायी नहीं पड़ते। चेहरा मिट ही जाता है एकदम एक सी ड्रेस में। वह इंडिविजुअलिटी मिट ही जाती है। इसीलिए यूनिफॉर्मिटी, यूनिफार्म हम इसीलिए पहनाते हैं कि उसका व्यक्तित्व खत्म हो जाये। चण्डीगढ़ है, नये नगर बस रहे हैं जो बिल्कुल यूनिफार्म हैं। तो बड़ी बोरिंग है, मोनोटोनस है। हमें थोड़ी देर देखने के बाद घबराहट और ऊब शुरू हो जाती है। अगर हमने समानता की कोई अस्वाभाविक चेष्टा की तो हम एक मोनोटोनस समाज पैदा करेंगे जिसमें से रस और वैविध्य भी नष्ट हो जायेगा। इसलिए मेरे लिए सवाल सिर्फ आर्थिक ही नहीं है, मेरे लिए सवाल मनोवैज्ञानिक भी है। और मनोवैज्ञानिक अर्थों में समानता बिल्कुल ही असत्य है, हो ही नहीं सकती। होना भी नहीं चाहिए।

हां, आर्थिक समानता की सुविधा हमें एक दिन जुटानी चाहिए। वह भी तभी हम जुटा पायेंगे जब हम अतिरिक सम्पत्ति पैदा कर लें।

प्रश्न—भारतवर्ष में पूंजीवाद लाना हो तो बहुत वर्ष लगेंगे। इसका प्रचार कैसे किया जाये ? पूंजीवाद लाने का प्रचार कैसा होगा ?

पूंजीवाद के प्रचार के लिए कुछ भी नहीं करना है। हमारे ख्याल में भर एक बात आ जाये तो पूंजीवाद अपनी गति से ग्रोथ कर रहा है। हम सिर्फ बाधा न डालें। और हम इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लें कि इसका ग्रोथ हमारे हित में है। कुछ और प्रचार करने की जरूरत नहीं है। प्रचार हमें उसका करना पड़ता है जो अपने आप ग्रो न कर रहा हो। उसका प्रचार करने की कोई जरूरत ही नहीं है कि जवान आदमी बूढ़ा कैसे होगा। वह तो हो जायेगा। प्रचार की कोई जरूरत नहीं है। वह तो सोसाइटी अपने आप पूंजीवाद के दौर में आ रही है, आयेगी। अगर हम बाधा डालेंगे तो रुकेगी।

समाजवाद का प्रचार करना पड़ेगा, पूंजीवाद के प्रचार की कोई जरूरत नहीं। पूंजीवाद कोई सिद्धान्त थोड़े ही है ! पूंजीवाद समाज का सहज विकास है। समाजवाद एक सिद्धान्त है। उसको हमें थोपना पड़ता है। पूंजीवाद तो बिल्कुल ही सहज प्रक्रिया से आया है, किसी ने प्रचार नहीं किया। पूंजीवाद को समझाने के लिए कोई प्रॉफेट नहीं है। पूंजीवाद को समझाने के लिए कोई पार्टी नहीं है। पूंजीवाद को समझाने के लिए कोई फिलॉसफी नहीं है। पूंजीवाद तो सहज आया है। वह जिन्दगी के रास्तों से आया है। वह ऐतिहासिक प्रक्रिया का हिस्सा है। हमें कुछ नहीं करना है, सिर्फ हम बाधा न डालें और हम सहयोगी हो जायें और हम पूंजीवाद कैसे फैले शीघ्रता से, उसकी चिन्ता करें।

यह आप ठीक कहती हैं कि इतनी पुरानी गरीबी है, इतनी पुरानी गरीबी को अगर जल्दी मिटाने की कोशिश की तो मैं नहीं मानता हूं कि मिट जायेगी। इतनी पुरानी गरीबी को मिटाने के लिए बहुत धैर्य की जरूरत है। समाजवादी में वह

धैर्य बिल्कुल नहीं है। वह कहता है, हम आज ही मिटा देंगे। खतरा यह है कि आज मिटाने में वह कहीं और लम्बे वक्त न लगवा दे ! मैं मानता हूं, लम्बे लगवा देगा। क्योंकि उसे पूंजी पैदा करने का कोई ख्याल ही नहीं है। आज हिन्दुस्तान में जो समाजवादी है, उसका एक ही ख्याल है कि पूंजी का वितरण कर देना। अब मजे की बात है कि पूंजी के वितरण से गरीबी नहीं मिटेगी। कितनी पूंजी है हिन्दुस्तान के पास जिसका आप वितरण कर लेंगे ? एक दस करोड़पतियों को, उनके पास पूंजी है, उसको उठाकर बांट दीजिए। यह पचास करोड़ की गरीबी में वह ऐसे खो जायेगी जैसे एक तालाब में हमने एक मुट्ठी भर रंग डाल दिया हो।

प्रश्न—लेकिन यह पूंजीवादी उनको कैसे पैसा दे देगा ?

यह मैं कहता नहीं हूं कि दे देगा, यह मैं कह नहीं रहा हूं। मैं तो कहता नहीं कि पूंजीवादी पैसा दे। मैं कहता नहीं हूं। आज अगर हम ले भी लें जबरदस्ती बन्दूक के कुन्दे पर, तो कोई हित नहीं है। हिन्दुस्तान के समाजवादी मेरे ख्याल से बहुत बचकानी बुद्धि के हैं। एक तो उनको यह लगता है, उनके लिए बड़ा सवाल जो है वह क्रिएशन आफ वेल्थ का नहीं है, डिस्ट्रिब्यूशन ऑफ वेल्थ का है—बड़ा सवाल जो है। मैं जितने समाजवादियों से बात करता हूं, उनको एक ही दिमाग में है कि पूंजी का वितरण कैसे हो, विभाजन कैसे हो ? मजा यह है, पूंजी हो तो वितरण भी हो। पूंजी है कहां जिसका वितरण आप करने को लगे हैं ? दिख रही है आज दिल्ली में, अहमदाबाद में, बम्बई में. तो हमें मुल्क का कोई ख्याल नहीं है। मुल्क का हमें कोई ख्याल ही नहीं है कि मुल्क इतनी बड़ी गरीबी से भरा है कि इतना ही हो सकता है कि दस-पांच जिनके पास पूंजी दिखायी पड़ रही है, उनको भी हम गरीब बना लें, बस। इससे ज्यादा कोई परिणाम नहीं होगा बांटने का। और बांटने की प्रक्रिया में पैदा करने का जो यन्त्र है वह नष्ट हो जायेगा।

आपका यह कहना ठीक है कि हम पूंजीपति से कैसे ले लेंगे ? मैं कहता नहीं लेने की जरूरत है। असल में पूंजीपति पूंजी ले कहां जाता है ? यह जो हमको ख्याल है, यह हमको अभी बड़ा अजीब ख्याल है। अब बिड़ला कोई सोना थोड़े ही खाता है ! अगर बहुत गौर से देखा जाये तो बिड़ला के पास जो अतिरिक्त सम्पत्ति आती है वह और सम्पत्ति को पैदा करने में लगती है। कोई खा तो सकते नहीं हैं, करियेगा क्या ?

आज बिड़ला के पास कोई साढ़े तीन सौ करोड़ रुपया है। इतनी सम्पत्ति की मालकियत है आज। यह सम्पत्ति का करियेगा क्या ? बिड़ला जी क्या करेंगे ? कोई भी क्या करेगा ? यह सम्पत्ति अन्ततः समाज को ही उपलब्ध होती चली जाती है। यह कहीं जाती नहीं। उत्पादन में लगती है, मन्दिर बनता है, धर्मशाला

बनती है, कालेज खुलता है, स्कूल खुलता है, कि अस्पताल बनता है । हां, फर्क इतना पड़ता है कि उस अस्पताल का सरकार का नाम न होकर बिड़ला का नाम होता है। और कोई फर्क होता नहीं। और बिड़ला जितना खाता है, जितना पीता है, उससे तीन सौ करोड़ का कोई लेना-देना नहीं है । वह तो एक करोड़ वाला क्या, पचास लाख वाला भी, पांच लाख वाला भी उतना खा पी सकता है। उसका कोई सवाल नहीं है। पूंजीपति सम्पत्ति पैदा करता है । लगता हमें ऐसा है कि शोषण कर रहा है । अन्ततः वह समाज को देगा, करेगा क्या? मेरी अपनी समझ यह है कि वह करता क्या है ?

और एक व्यवस्था है जो हमें ख्याल में नहीं आता है । कोई परिवार तीन-चार पीढ़ियों से ज्यादा अमीर नहीं रहता । रह नहीं सकता । अगर मैं गरीब हूं तो सम्पत्ति इकट्ठा करने में लगता हूं । मेरा बेटा अमीर का बेटा होगा । वह सम्पत्ति को बांटने में लग जाता है । गरीब सम्पत्ति इकट्ठी करता है, अमीर बांटता है ।

फोर्ड एक दफा इंगलैंड आया तो वह उतरा लन्दन के स्टेशन पर और उसने जाकर इनक्वायरी में पूछा कि यहां सबसे सस्ता होटल कौन-सा है ? तो उस इनक्वायरी वाले ने कहा, मैं समझता हूं, आप एच० जी० फोर्ड हैं । आपका फोटो, अखबार में फोटो देखा हूं कल, और आप सस्ता होटल पूछते हैं ? और आपका लड़का आता है, वह तो पूछता है, सबसे अच्छा होटल कहां है ? तो उसने कहा, वह हेनरी फोर्ड का लड़का है । मैं गरीब आदमी का लड़का हूं । हमने इकट्ठी की है, वह बांटेगा । वह करेगा क्या ? यह बड़े मजे की बात है कि चार पीढ़ियों से ज्यादा कोई परिवार अमीर नहीं रहता । तीसरी-चौथी पीढ़ी बांट जाती है। वह जायेगी कहां सम्पत्ति ?

मेरी अपनी दृष्टि यह है कि पूंजीपति पैदा भर कर पाता है । आखिर में बंट तो वह समाज में जाती है । फिर पूंजीपति, जिसको हम कहते हैं विलास कर रहा है, वह भी समाज में वितरित होता है । एक पूंजीपति एक कार खरीदता है, दो कार खरीदता है, तो हमें लगता है कि पूंजीपति ने दो कार खरीद ली है । लेकिन दो कार बनती हैं, कारखाने चलते हैं, तो कारखाने में इतने मजदूर काम करते हैं । वह पूंजीपति कार न खरीदे ?

अगर हम गांधीजी की बात मान लें और सब सादगी से रहने लगें तो पचास करोड़ लोगों में से कम से कम तीस करोड़ लोगों को मरना पड़े···इसी वक्त । क्योंकि हमारा गैर सादगी से रहना ही हमारे सारे उत्पादन की व्यवस्था है । आज अगर गांधीजी की बात मान ली जाये तो मेरी अपनी समझ यह है कि चंगेज ने, तैमूर ने, हिटलर ने जितनी हत्या नहीं की, उतनी हत्या गांधीजी के सिर पड़ जायेगी । अगर हम उनकी ही मानकर राजी हो जायें, सब सादगी से

रहने लगें । इस समय तो कोई पचास प्रतिशत उत्पादन तो स्त्रियों के उपकरण बनाने में लगा रहता है । आधी मनुष्यता उससे पलती है । अगर गांधी की बात मान ली जाये और स्त्रियां चूड़ी और, स्नो-पाउडर, फलां-ढिकां सब छोड़ दें और बिल्कुल सादी खड़ी हो जायें तो यह जमीन आज मरने की हालत में पहुंच जाये । क्योंकि सारा उत्पादन का जो चक्र है, वह उत्पादन का चक्र एकदम ठहर जाये··· पचास प्रतिशत तो उन्हीं चीजों को पैदा करना पड़ रहा है । इसलिए समझ तो यह कहेगी कि आप अपनी आवश्यकताओं को बढ़ायें ताकि आवश्यकताओं का उत्पादन बढ़े, ताकि उत्पादन में ज्यादा लोग संलग्न हों । ताकि ज्यादा लोग जी सकें और ज्यादा लोग भोजन पा सकें ।

हमें ऊपर से दिखता है । उसका कारण यह है कि हम वैज्ञानिक ढंग से कम सोचते हैं, अमीर के प्रति ईर्ष्या और क्रोध का भाव ज्यादा है । वह बहुत सरलता से हो जाता है । एक आदमी सुख में और हम तकलीफ में हैं, लगता है कि मिटा दो इसको । इसकी फिक्र कम होती है कि इसके सुख मिटने से हमें सुख मिलेगा, कि सिर्फ इतना होगा कि इसका सुख विदा हो जायेगा ? और यह भी हमें ख्याल नहीं आता कि यह इतने सुख से रह रहा है तो इसके सुख के रहने में आसपास भी सुख के वर्तुल इसको पैदा करने पड़ते हैं, नहीं तो रह नहीं सकता इतने सुख में ।

एक आदमी बड़ा मकान बनाता है, तो हमारा ख्याल यह है आमतौर से कि बड़ा मकान तब बनता है जब कि कुछ मकान छोटे हो जाते हैं । ऐसा नहीं है। बड़ा मकान बनता है तो कुछ छोटे मकान भी बनते होंगे । अगर हम ठीक वैज्ञानिक ढंग से सोचें तो बड़ा मकान बनता है तो एक इन्जीनियर को भी पैसा मिलता है, एक आर्किटेक्ट को भी मिलता है और एक मजदूर को भी मिलता है, राज को भी मिलता है । एक बड़ा मकान न बनाओ तो ये दस आदमियों के छोटे-छोटे मकान जो चल रहे थे, इसी वक्त ठप्प हो जायेंगे ।

तो मेरी अपनी दृष्टि यह है कि पूंजीवाद का एक ऐतिहासिक रोल है, वह पूरा कर रहा है। उसको क्रोध से लेने की जरूरत नहीं है, उसको समझ से लेने की जरूरत है, साइन्टीफिकली सोचने की जरूरत है । अमरीका में इतनी पूंजी पैदा की है···इसका परिणाम ···इसका परिणाम यह हुआ है कि जिसको हम गरीब कहते हैं, ऐसा गरीब अमरीका में नहीं रह गया । गरीब तो अमरीका में है, पर वह गरीब बहुत और तरह का है । अमीर गरीब है हमारे लिहाज से तो ।

अभी मेरे एक मित्र एक घर में ठहरे थे तो जिस टैक्सी को उन्होंने किया था, जो ड्राइवर उन्हें घुमाता था, पन्द्रह दिन उनके साथ था वह ड्राइवर । उसने कहा जाने के पहले एक दफा मेरे घर आप चाय लेंगे तो मुझे बड़ी खुशी होगी। उन्होंने कहा, मैं जरूर चलूंगा । तो जब उनको लेने आया तो वह दूसरी गाड़ी

लेकर आया। उन्होंने पूछा कि आपने गाड़ी बदल ली? उसने कहा कि वह तो मालिक की गाड़ी थी, टैक्सी थी। यह मेरी गाड़ी है। वह हैरान हुए कि यह गाड़ी उसकी टैक्सी से बेहतर है। जब उसके घर गये तो वे दंग रह गये। उसकी पत्नी थी और वह था। दोनों ही हैं, नौ कमरे थे। उसका मार्बल फ्लोर था। उसका बाथरूम देखकर लगा···वे तो इन्दौर के एक करोड़पति हैं, एक बड़ी मिल के मालिक हैं। वे मुझसे कहने लगे कि उसका बाथरूम देखकर मुझे ईर्ष्या होती है। ऐसा बाथरूम मेरे पास भी नहीं है। पूरा मार्बल का था। वह ड्राइवर था, टैक्सी ड्राइवर। टैक्सी ड्राइवर अब भी गरीब है अमरीका में। वह तुलना में गरीब है लेकिन हमारे लिहाज से वह बहुत अमीर है। गरीबी विदा हो गयी है। उन्हें सड़क पर चलते देखकर आप नहीं कह सकते हैं कि यह भंगन है। आज कोई एलिजाबेथ भी उसके साथ खड़ी हो जाये तो कोई खास फर्क नहीं है। कोई फर्क नहीं है—बल्कि एलिजाबेथ उतनी शायद शानदार न मालूम पड़े।

पूंजीवाद सहज विकसित होता चला जाये, तो अपने-आप इतनी सम्पत्ति पैदा कर लेगा और भी कई कारण हैं जिनकी वजह से मेरे ख्याल में है कि अधिक सम्पत्ति पैदा हो जाती है एक तो सम्पत्ति, सम्पत्ति को पैदा करती है, और यह बिल्कुल चक्रवृद्धि की तरह चलता है। यह ऐसा नहीं है, एक दफा सम्पत्ति पैदा होनी शुरू होती है तो सम्पत्ति के नये वर्तुल सम्पत्ति शुरू कर देती है। फिर सम्पत्ति-सम्पत्ति को पैदा करती चली जाती है—एक।

दूसरी बात यह है कि जैसे ही सम्पत्ति पैदा होती है, लोग बच्चों में कम उत्सुक होते हैं और कम बच्चे पैदा करते हैं। सिर्फ गरीब ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं। तो सम्पत्तिशाली समाज की जनसंख्या कम होने लगती है और सम्पत्ति फैलने लगती है। और इसके दोहरे परिणाम होते है क्योंकि अन्ततः अतिरेक हो जाता है। जनसंख्या कम होने लगती है और सम्पत्ति फैलने लगती है, सम्पत्तिशाली आदमी कम बच्चे पैदा करता है, दो-तीन कारणों से। एक तो सेक्स उसका अकेला एन्ज्वॉयमेंट नहीं रह जाता। उसकी जिन्दगी में और भी सुख आ जाते हैं। गरीब की जिन्दगी में कोई सुख नहीं है। और एक ही सुख है जो मुफ्त मिलता है उसे। तो वह ज्यादा बच्चे इकट्ठे कर लेता है। उसको कोई उपाय ही नहीं दिखता।

गरीब को यह भी आशा रहती है कि जितने ज्यादा बच्चे होते हैं, गरीब के लिए सहयोगी हैं। अमीर के जितने ज्यादा बच्चे होते हैं, अमीर के लिए दुश्मन हैं, क्योंकि अमीरी कम होती है। बच्चों के पैदा होने से अमीरी कटती है। अगर मेरे पास करोड़ रुपये हैं, चार बच्चे हो गये तो पच्चीस लाख के आदमी हो गये। चार बच्चे पच्चीस-पच्चीस लाख बांट लेने वाले हैं। गरीब के चार बच्चे पैदा हो जाते हैं तो एक बच्चा बर्तन मांजता है, एक बच्चा गाय चरा आता है, एक बच्चा गांव में काम कर आता है। गरीब अमीर होता है। तो गरीब बच्चों में उत्सुक है, जनसंख्या में उत्सुक है। उसकी समझ में नहीं आ सकता कि जनसंख्या कम होनी चाहिए। अमीर जनसंख्या में बिल्कुल उत्सुक नहीं रह जाता, बच्चों में उत्सुक नहीं रह जाता। और उसके सुख के साधन बढ़ जाते हैं। इसका आखिरी जो टोटल इफेक्ट होता है, वह होता है कि सम्पत्ति ज्यादा हो जायेगी और जन-संख्या कम हो जायेगी। और इससे एक समाजवादी व्यवस्था अपने से निकलेगी जो सहज होगी।

तो मैं कहता हूं, दो सौ वर्ष—सौ वर्ष की हमें फिक्र नहीं करनी चाहिए। सौ वर्ष कोई बहुत बड़ा वक्त नहीं है। जब पांच हजार साल से हम गरीब हैं तो सौ वर्ष की हमें फिक्र नहीं करनी चाहिए, वह बहुत बड़ा वक्त नहीं है, बल्कि बहुत जल्दी ही हो जायेगा। और अगर हमने पांच वर्ष में समाजवाद लाने की कोशिश की तो मैं मानता हूं कि हम पांच हजार साल कहीं और गरीब न रह जायें। मंहगा सौदा हो जायेगा। इसमें बहुत धैर्य की जरूरत है। धैर्य कठिन है, यह भी मैं जानता हूं। मैं नहीं समझता कि मेरी बात सुनी जा सकेगी। धैर्य बहुत कठिन है।

प्रश्न—इंदिराजी अभी कांग्रेस से अलग होकर देश को सोशलिज्म की राह पर जो ले जा रही हैं वह गलत ले जा रही हैं?

एकदम ही गलत ले जा रही हैं। लगभग एकदम ही गलत ले जा रही हैं। लेकिन इंदिराजी तो बड़े फायदे में हैं और उनके साथी जो हैं वे भी बड़े फायदे में हैं। देश का कोई उससे हित नहीं है। सच बात यह है कि बीस साल में इंदिरा जी और उनके पिताजी दोनों के पास एक ही टेक्टिक्स थी। कांग्रेस को मर जाना चाहिए था। उसका कोई अर्थ नहीं था आजादी के बाद, क्योंकि उसका काम पूरा हो गया था। नेहरूजी को भी जब भी दिक्कत दिखती कांग्रेस को बचाने की तो वे समाजवाद की बात शुरू कर देते थे। जब परेशानी आती तब समाजवाद बचाता। उनकी बेटी उसी ट्रिक को और लम्बा रही है। और लम्बाना उसे पड़ेगा क्योंकि बीस साल का फासला हो गया। अब बहुत शोरगुल मचाना पड़ेगा तभी ट्रिक काम करेगी, इससे जल्दी काम नहीं करेगी। नेहरूजी कहते थे, समाज-वाद की ट्रिक काम कर जाती थी। उसको थोड़ा बहुत समाजवाद लाकर भी दिखलाना पड़ेगा—नेशनलाइजेशन कर दे, कुछ यह कर दे, वह कर दे। तो यह अगला इलैक्शन कांग्रेस और जीत लेती है। लेकिन इसके बाद वह ट्रिक भी काम नहीं करेगी। पर मेरा मानना यह है कि यह पॉलिटिकल स्टंट मुल्क के भविष्य के लिए मंहगा है। इसमें इंदिराजी को फायदा है, उनके कलीग को फायदा है और उनकी पूरी कम्पनी को फायदा है, लेकिन इससे मुल्क को कोई फायदा नहीं है। और जनता आकर्षित हो जायेगी, यह भी ठीक है। जनता दुख में है, परेशानी में

है और उसको तत्काल कोई लाभ मिले इसकी आशा है। पर मुझे नहीं लगता है कि मुल्क का कोई फायदा होने वाला है।

अहमदाबाद, दिनांक २६ दिसम्बर १६६६

२६. गांधीवाद : दरिद्रता का दर्शन

एक दृष्टिकोण हो—समाज की आर्थिक व्यवस्था जैसी चल रही है वह वैसी ही चलती रहे, जो लोग वैसा चाहते होंगे वे चुप रहेंगे। आज तक कोई साधु और सन्त अगर चुप रहे हैं तो उसका कारण यह नहीं है कि उनकी कोई दृष्टि नहीं है, सामाजिक और आर्थिक जीवन के सम्बन्ध में। बल्कि जो चल रहा है वह ठीक है, ऐसी दृष्टि होने के कारण कुछ भी कहना जरूरी नहीं समझा गया। मुझे दिखायी पड़ता है कि जो चल रहा है वह ठीक नहीं है। जो चलता रहा है वह ठीक नहीं था और जिसकी अत्यधिक सम्भावना पैदा हो गयी है भविष्य में चलने की, वह भी ठीक नहीं होने को कहता है।

पूंजीवाद या तो मर चुका है या मरने के करीब है। पूंजीवाद के मरने से शायद किसी को बहुत दुख नहीं होगा। लेकिन पूंजीवाद के साथ कुछ अद्‌भुत खूबियां थीं, वे भी उसके साथ मर जायेंगी इसलिए घबराहट होना जरूरी है।

प्रश्न—अस्पष्ट

न्यूयॉर्क में बहुत से लोगों ने किया था। वह भी उसके साथ छिन सकता है। सारे जगत् में विचारपूर्ण व्यक्ति चाहे वे किसी धर्म के हों एक बात से भर गये मालूम पड़ते हैं और वह यह कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की व्यवस्था समाप्त होनी चाहिए। और इन सारे विचारों के पीछे एक विकल्प है, एक आल्टरनेटिव है, जो आदमी को दिखायी पड़ता है। और वह विकल्प है, आने वाले भविष्य में उन्हें

एक ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था करनी है जो समानता पर आधारित हो या स्वतन्त्रता पर। शायद इससे ज्यादा महत्वपूर्ण चुनाव का मौका मनुष्य के इतिहास में कभी नहीं आया था।

प्रश्न—अस्पष्ट

अब तक हम ऐसा ही सोचते थे। शायद क्रान्ति को नारा देने वाले लोगों ने कभी भी नहीं सोचा था कि समानता और स्वतन्त्रता दो विरोधी बातें हैं। सेल्फ कण्टाडिक्ट्री हैं, आपस में वे दोनों विरोधी हैं। अगर मैं समानता की पूरी चेष्टा करूं तो स्वतन्त्रता का अन्त हो जाना सुनिश्चित है। अगर हम मनुष्य को पूरी तरह स्वतन्त्र छोड़ दें तो समानता किसी भी भांति स्थापित नहीं हो सकती है। क्योंकि स्वतन्त्रता के भीतर असमान होने की स्वतन्त्रता भी सम्मिलित है। मनुष्य का जो मौलिक स्वभाव है उसका दमन करने के लिए जरूरी होगी कि हम स्वतन्त्रता समाप्त कर दें।

मनुष्य स्वभावतः असमान है। कोई दो मनुष्य समान नहीं हैं—न योग्यता में, न व्यक्तित्व में, न पात्रता में, न गुणों में। कोई भी दो मनुष्य समान नहीं हैं और किसी भी भांति उनको समान करने का कोई उपाय नहीं है, सिवाय इसके कि हम प्रत्येक व्यक्ति की सारी स्वतन्त्रता छीन लें और जबर्दस्ती समानता उसके ऊपर थोप दें। निश्चित ही पहले यह सम्भव नहीं था; आज यह सम्भव हो गया है। यह जो ब्रेन वॉश है, नयी चुनौती है। और मनुष्य के मन को और मनुष्य के स्वभाव को इस भांति से दमन किया जा सकता है कि मनुष्य के भीतर से जो भिन्नता है, वह समाप्त हो जाये और मनुष्य जानवरों की भांति समान हो जाये या चींटियों की भांति समान हो जाये। समाज शास्त्र ने जो सारी दुनिया में ख्याल पैदा किया है, मनुष्य की समता का जो मोह पैदा किया है, वह बहुत खतरनाक सिद्ध होने वाला है।

अगर हमें यह ख्याल पकड़ गया कि मनुष्य को समान करना है सभी दृष्टियों से, तो मनुष्य का समाज धीरे-धीरे चींटियों के समाज में परिवर्तित हो जायेगा। क्योंकि समान करने की चेष्टा में हमें प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व को नष्ट कर देना जरूरी होगा। व्यक्तित्व ही भिन्न है। अगर हम मनुष्य को व्यक्तित्व से शून्य कर दें, उसकी सारी इंडिविज्युअलिटी छीन लें तो ही हम समान मनुष्यों का एक समाज खड़ा कर सकते हैं। लेकिन उस समाज का क्या मूल्य होगा जिसमें मनुष्य का व्यक्तित्व और आत्मा छिन गयी हो? और समानता से सारी दुनिया प्रभावित है। और हम में जो बहुत दरिद्र मुल्क हैं, वे बहुत ज्यादा प्रभावित हैं। दरिद्रता में इस भांति प्रतीत होता है कि समानता आ जायेगी, तो सब ठीक हो जायेगा। और कई बार ऐसा होता है कि जिन बीमारियों से लड़ने के लिए हम उपाय खोजते हैं, वे बाद में बीमारियों से भी बदतर सिद्ध हो सकते हैं।

मैंने सुना है, एक आदमी का इलाज होता था। उसे कोई नयी से नयी दवा और औषधि दी गयी थी, लेकिन उसका दुष्परिणाम हुआ। और दुष्परिणाम को रोकने के लिए उसे फिर सारी दवा की विरोधी दवा दी गयी और उसका दुष्परिणाम हुआ और उसको उसकी विरोधी दवा दी गयी और वह आदमी इतना घबरा गया कि उसने डॉक्टर से कहा, डॉक्टर, प्लीज गिव मी बैक माई डिजीज, मुझे मेरी बीमारी आप वापस लौटा दें तो अच्छा है।

मनुष्य-जाति समानता के आग्रह में उस हालत में पहुंच सकती है कि हमें लगने लगे कि वह हमारा पूंजीवाद वापस लौटा दे तो अच्छा है। लेकिन ध्यान रहे, जगत् में कुछ भी वापस नहीं लौटता। और यह भी ध्यान रहे, पूंजीवाद तो जगत् में अब नहीं टिक सकेगा, वह तो जायेगा। लेकिन पूंजीवाद जायेगा, इसका यह अनिवार्य मतलब नहीं है कि समाजवाद आयेगा। लेकिन मार्क्स और उसके साथियों और उसके अनुयायियों ने इतने जोर का प्रचार किया है कि पूंजीवाद का जाना और समाजवाद का पर्यायवाची हो गये हैं, जो बड़ी अजीब बात है।

पूंजीवाद जा सकता है और समाजवाद के आने की अनिवार्यता नहीं है। कुछ और भी लाया जा सकता है। लेकिन धीरे-धीरे यह दिखायी पड़ना छूट गया कि पूंजीवाद के हटने के बाद सिवाय समाजवाद के क्या विकल्प है, क्या आल्टरनेटिव है? और मैं आपसे कहता हूं, पूंजीवाद के पास अपनी एक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है। एक-एक मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल उसे विकसित होने का मौका है। निश्चित ही असमानता इतनी ज्यादा है, और दरिद्रता इतनी ज्यादा है कि इस असमानता के कारण और आर्थिक वैषम्य के कारण प्रत्येक व्यक्ति को मौका नहीं मिलता कि वह विकसित हो सके। स्वतन्त्रता बहुत है, लेकिन स्वतन्त्रता का उपयोग केवल वे ही लोग कर सकते हैं जो आत्मिक रूप से सम्पन्न हैं। विकल्प यह है कि उन सारे लोगों को आर्थिक रूप से राष्ट्र के विपन्न कर दें, राज्य के हाथ में सब कुछ सौंप दें। एक-एक व्यक्ति की व्यक्तिगत सम्पदा और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सब राज्य के हाथ में चली जाये। समाजवाद का मूलभूत अर्थ होगा राज्यवाद। समाजवाद का मौलिक अर्थ होगा 'स्टेट कैपिटलिज्म'। समाजवाद पूंजीवाद का ही दूसरा रूप है। इसलिए जो लोग सोचते हैं कि समाजवाद पूंजीवाद के लिए विकल्प है वे पहले तो गलत बात यह सोचते हैं कि वह विकल्प है। दूसरी बात वे यह गलत सोचते हैं कि वही अनिवार्य विकल्प है।

समाजवाद पूंजीवाद का ही रूपान्तरण है और रूपान्तरण खतरनाक है क्योंकि पूंजीवाद में सम्पदा व्यक्तिगत है और समाजवाद में सम्पदा राज्य के हाथों में होगी, स्टेट के हाथों में होगी। फर्क इतना पड़ेगा कि आज जो वर्ग-भेद है वह पूंजी के मालिक और मजदूर के बीच है। कल जो भेद होगा वह स्टेट के मैनेजर और जनता के बीच होगा। और अभी जो शक्ति बहुत से लोगों में विभाजित है, बहुत से पूंजी के

मालिकों में, वह सारी की सारी शक्ति राज्य के हाथ में केन्द्रित होगी। इतने विभाजित होने पर भी पूंजीवाद नुकसान पहुंचा रहा है तो जब वह एक ही जगह जाकर केन्द्रित हो जायेगा तो वह कितना नुकसान पहुंचायेगा, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। फिर पूंजीवाद को बदलना सम्भव है, आसान है। अगर वह गलत है तो हम बदल सकते हैं। लेकिन एक बार समाजवाद स्थापित हुआ तो उसको बदलने की सम्भावना निरन्तर क्षीण होती चली जायेगी। क्योंकि जब इतनी केन्द्रित सत्ता होगी राज्य के हाथों में और सारे व्यक्तियों का व्यक्तित्व पोंछ दिया गया होगा और एक-एक व्यक्ति के पास लड़ने के लिए कोई सामर्थ्य शेष नहीं रह जायेगी तो इस बात की बहुत सम्भावना है कि क्रान्ति कभी पैदा न हो सकेगी।

एक बार दुनिया में कम्युनिज्म स्थापित हो जाये, फिर क्रान्ति कभी भी पैदा नहीं हो सकती। और कम्युनिज्म के हाथ में अगर पूरी ताकत हो—राज्य के हाथों में—तो उसके पास अब नयी खोजें भी हैं। मनुष्य के मस्तिष्क को पूरी तरह रूपान्तरित करने के लिए, बायोकेमिकली आदमी के पूरे व्यक्तित्व को बदलने के लिए और उसे एक ऑटोमेटा, एक मशीन की तरह काम लेने के लिए आज पूरी सुविधाएं उपलब्ध हो गयी हैं। राज्य के हाथ में उस दिन पूरी ताकत होगी। इसलिए राज्य को सम्भालने वाले लोगों को रोकने के लिए कौन होगा कि वह आदमी की पूरी आत्मा को तोड़ न डाले? इतनी ताकत आज राज्य को देनी सबसे ज्यादा खतरनाक है। पहले कभी इतनी खतरनाक नहीं थी क्योंकि राज्य के पास आदमी की आत्मा को नष्ट करने का कोई उपाय न था।

अब तक दुनिया में आदमी के शरीर कैदी बनाये गये थे और आत्मा सदा से स्वतन्त्र रही थी। एक कैदी भी जेल के भीतर शरीर से बंधा हुआ था लेकिन आत्मा से मुक्त था। वह ख्याल छोड़ देना। अब कैदी की आत्मा को भी बांधा जा सकता है और नष्ट किया जा सकता है। क्रान्ति की सारी सम्भावना रोकी जा सकती है, परिवर्तन की सारी सम्भावना रोकी जा सकती है।

ऐसे खतरनाक समय में इस देश में भी समाजवाद के विचार के प्रति लोगों का आकर्षण रोज गहरा से गहरा होता चला जाता है। जितनी दीनता बढ़ेगी, जितनी दरिद्रता बढ़ेगी, जितनी सामाजिक विपन्नता और परेशानी बढ़ेगी, हमें एक ही ख्याल सूझने लगेगा—समाजवाद, समाजवाद, समाजवाद। और शायद यह भूल ही जायेंगे कि समाजवाद के पूरे के पूरे अर्थ समाज के जीवन के लिए क्या हो सकते हैं?

मनुष्य के व्यक्तित्व में व्यक्तिगत सम्पत्ति एक बल देती है। जिस आदमी से हमने व्यक्तिगत सम्पत्ति छीन ली, हमने उसके व्यक्तित्व का नब्बे प्रतिशत हिस्सा छीन लिया। उसके पास बल समाप्त हो गया। सच तो यह है कि विश्व में व्यक्तिगत सम्पत्ति पैदा होने की वजह से—प्राइवेट प्रॉपर्टी पैदा होने की वजह से—

पर्सनैलिटी पैदा हुई, व्यक्तित्व पैदा हुआ । जब तक व्यक्तिगत सम्पत्ति न थी, आदमी का कोई व्यक्तित्व न था, समूह का व्यक्तित्व था । और जब हम समूह के और राज्यों के हाथों में वापस सारी सम्पदा दे देते हैं तो फिर समूह का व्यक्तित्व होगा और व्यक्ति का कोई व्यक्तित्व न होगा । लेकिन कहेंगे हम कि विकल्प क्या है, और मार्ग क्या है ?

समानता अगर हम लाते हैं तो स्वतन्त्रता पूरी तरह नष्ट होती है और अगर हम पूरी तरह स्वतन्त्रता देते हैं तो जीवन इतना दुख दारिद्र्य और परेशानी से भर जाता है । क्या इन दोनों के बीच कोई मार्ग नहीं हो सकता ? क्या इतनी स्वतन्त्रता हम स्थापित नहीं कर सकते कि प्रत्येक व्यक्ति को असमान और स्वयं होने की मुक्ति हो ? और क्या इतनी समानता हम व्यवस्थित नहीं कर सकते कि समानता स्वतन्त्रता का अन्त न बने ? क्या कोई नयी जीवन-रचना और व्यवस्था नहीं हो सकती ? क्या समाजवाद और पूंजीवाद दो ही चिन्तन के मार्ग हैं ? नहीं, तीसरी एक जीवन-चेतना हो सकती है । उसे मैं मानववाद कहता हूं, एक ह्यूमनिक सोसाइटी हो सकती है ।

ह्यूमनिक सोसायटी या मानववादी समाज की रचना का मूलभूत आधार होगा कि व्यक्ति परम मूल्यवान है । समाज परम मूल्यवान नहीं है, न ही सम्पदा परम मूल्यवान है । सम्पदा और समाज दोनों की अल्टीमेट वैल्यू नहीं, चरम मूल्य नहीं है । चरम मूल्य व्यक्ति का है—एक-एक व्यक्ति का है । दूसरी बात होगी, एक-एक व्यक्ति मूलतः स्वभावतः असमान है और भिन्न है । और जो समाज-व्यवस्था व्यक्ति की भिन्नता को स्वीकार नहीं करती है वह व्यक्ति को नष्ट करने वाली बनेगी ।

प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है, और समाज इसलिए नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति को भिन्न होने का पूरा अवसर मिल सके ? ईक़ुवल ऑपरच्युनिटीज टू बी अनईक़ुवल । एक-एक व्यक्ति को स्वयं अपने भिन्न रूप से होने की समान सुविधा और व्यवस्था मिल सके । उस समाज व्यवस्था में पूंजी का मूल्य कम करना जरूरी है । न तो पूंजीवाद में पूंजी का मूल्य कम होता है और न समाजवाद में । समाजवाद में पूंजी का मूल्य पूंजीवाद से भी ज्यादा हो जाता है । क्योंकि पूंजी एक जगह जाकर सेंट्रलाइज होती है, केन्द्रित होती है । और एक बार सारी पूंजी केन्द्रित हो गयी तो जिन हाथों में पूंजी केन्द्रित हो जायेगी, उन हाथों को रोकने के लिए फिर कुछ भी उपाय नहीं है कि वे क्या करें और उन्हें कैसे रोका जा सके ?

निश्चित ही अगर आदमी की आत्मा को खोने को तैयार हों तो हम उसे ज्यादा रोटी दे सकते हैं, ज्यादा अच्छा मकान दे सकते हैं, ज्यादा अच्छे कपड़े दे सकते हैं । लेकिन यह सौदा बहुत मंहगा होगा । बहुत अच्छे कपड़े, बहुत अच्छी रोटी, बहुत अच्छे मकान और सारी सुविधाएं अगर हम इस मूल्य पर देते हैं कि हम

उसका व्यक्तित्व छीन लेंगे तो मैं समझता हूं, यह विकल्प वैसा ही होगा जैसा सुकरात ने कहा था कि मैं एक सन्तुष्ट सूअर होने की बजाय एक असंतुष्ट सुकरात होना पसन्द करूंगा । सब भांति सुविधा मिल गयी और आत्मा खोने के बजाय मैं नहीं सोचता कोई भी विचारशील लोग इससे ज्यादा बेहतर यह पसन्द करेंगे कि व्यक्ति की आत्मा जीवित रहे, व्यक्तित्व जीवित रहे, चाहे उसके लिए कितनी ही पीड़ा और परेशानी झेलनी पड़े । हालांकि परेशानी झेलने की कोई अनिवार्यता नहीं है । कोई जरूरी नहीं है कि हम परेशानी झेलें ।

समाज में जो इतनी विषमता, इतना शोषण है, यह शोषण कम किया जा सकता है । यह शोषण अत्यन्त कम किया जा सकता है । यह असमानता भी कम की जा सकती है । पहले यह सम्भव नहीं था । लेकिन टेक्नोलॉजी के अद्भुत विकास ने इसे सम्भव बना दिया । मार्क्स को कभी भी ख्याल नहीं था कि सौ वर्षों के भीतर टेक्नोलॉजी इतनी विकसित हो जायेगी कि मनुष्य के श्रम का कोई सवाल ही नहीं रह जायेगा । मनुष्य के श्रम का शोषण था पूंजीवाद; और मनुष्य के श्रम का शोषण न हो सके इसलिए समाजवाद की कल्पना विकसित हुई थी । लेकिन टेक्नोलॉजी ने मनुष्य को तो विदा कर दिया ।

तकनीक का विकास इस जगह ले आया है कि मनुष्य का श्रम उत्पादन में अनावश्यक हो गया । इसलिए मनुष्य के श्रम का शोषण या मनुष्य के श्रम पर शोषण न हो और समान वितरण हो, दोनों बातें फिजूल हो गयीं । आने वाले सौ वर्षों में तो हम एक ऐसी दुनिया बना सकते हैं, जहां मनुष्य के श्रम का कोई सवाल न रह जायेगा । बल्कि हमें जो टेक्नोलॉजी से उत्पन्न होगा, जो स्वचालित तकनीक से उत्पादन होगा, उसका हम कैसे वितरण करें, इसके हमें नये ख्याल सोचने पड़ेंगे । क्योंकि अब तक यह था कि जो मजदूरी करता है, उसे कुछ मिले, जो धन लगाता है उसे कुछ मिले, जो व्यवस्था करता है उसे कुछ मिले । लेकिन कल तो इन सबको विदा किया जा सकता है । और तकनीक इन सबकी जगह ले सकता है ।

वह जो समाज में उत्पादन हो, उसके वितरण की क्या व्यवस्था होगी, कैसे डिस्ट्रीब्यूट हो, किस आधार पर ? क्योंकि किसी ने श्रम नहीं किया है बहुत । किसी ने बहुत व्यवस्था नहीं की है । या लाखों लोगों का श्रम एक आदमी ने किया है । और धीरे-धीरे विकास ऐसा हो सकता है कि उस एक आदमी को तो हम विदा कर दें और उस एक आदमी की जगह यंत्रचालित मनुष्य काम को सम्भाल ले । सौ वर्षों के भीतर तकनीक का विकास इस जगह ले जायेगा जहां समाजवाद और पूंजीवाद दोनों ही आउट ऑफ डेट हो जाते हैं, उन दोनों का कोई सवाल नहीं रह जाता ।

मेरी दृष्टि में तकनीक के इस विकास ने एक मानववादी समाज रचना का

पहला सूत्र शुरू कर दिया है । वह यह कि समाज के उत्पादन पर न तो सम्पत्ति-शाली के हक की कोई जरूरत है, न श्रम के मालिक के हक की कोई जरूरत है । समाज का उत्पादन तो तकनीक से हो सकता है, मशीन से हो सकता है । और धीरे-धीरे मशीन मनुष्य को स्थानांतरित करती चली जायेगी । यह जो उत्पादन होगा, यह किन आधारों पर वितरित हो, इसके वितरण का आधार ह्यूमनिक, इसके वितरण का आधार मानववादी चिन्तन ही हो सकता है । किस मनुष्य को उसके भिन्न व्यक्तित्व के विकास के लिए कितना जरूरी है, किस मनुष्य को अपने भिन्न व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए कौन-सी सुविधाएं जरूरी हैं, वह सब चूजेन की जा सकती हैं, उन सबकी व्यवस्था की जा सकती है ।

न तो अब जरूरी है कि पूंजीवाद रुके, न अब जरूरी है कि हम पूंजीवाद को समाजवादी दिशा में ले जायें । अब जरूरी है कि हम इस दिशा में सोचें कि हम सारे लोग जो इकट्ठे हैं एक बड़े परिवार में, जिसे हम समाज कहते हैं, उसमें प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता कैसे सुरक्षित हो सके और प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता को कैसे विकसित कर सके ? उसके ये आधार खोज लेने जरूरी हैं ।

लेकिन उन आधारों पर चिंतन नहीं हो सकेगा जब तक हम यह मानकर बैठ गये हैं कि पूंजीवाद तो जायेगा—चाहे हम खुशी से इसको मानकर बैठे हों, चाहे दुख से, उदासी से और उपेक्षा से । लेकिन एक भाव पैदा हो गया है कि वह जायेगा और समाजवाद आयेगा । और मार्क्स ने जिस भांति कहा था कि वह इनैविटेबल है, अनिवार्य है उसका आना । निरन्तर किन्हीं बातों को अगर दोहराया जाये तो सिर्फ दोहराने की वजह से वे बातें सच मालूम होने लगती हैं मनुष्य के जगत् में कुछ भी इनैविटेबल नहीं है । भविष्य में कुछ भी अनिवार्य नहीं है । भविष्य तो हम निर्मित करते हैं । हिटलर ने लिखा है अपनी आत्मकथा में कि मैंने तो एक ही बात पायी है कि बड़े से बड़े असत्य को भी अगर बार-बार दोहराते चले जायें तो वह धीरे-धीरे सत्य मालूम होने लगता है ।

मार्क्स और उसके पीछे चलने वाले लोग सौ वर्षों से एक बात दोहरा रहे हैं कि समाजवाद एक ऐतिहासिक अनिवार्यता है । वह आयेगा ही । उसके रुकने या न रुकने का कोई सवाल नहीं है । पूंजीवाद के बाद वह अनिवार्य चरण है । वे इतने दिन से चिल्ला रहे हैं इस बात को कि सबके मन में बैठ गयी है कि वह अनिवार्य चरण है, कि वह आयेगा, चाहे न चाहे वह आने को है ।

मैं आपसे कहना चाहता हूं भविष्य में कोई भी चरण अनिवार्य नहीं है । भविष्य बिल्कुल ही निश्चित नहीं है । भविष्य कभी भी निश्चित नहीं है और भविष्य हम निश्चित करते हैं । हम कह सकते हैं भई इससे निश्चित होगा भविष्य । और भारत के लिए तो और भी विचारणीय है । क्योंकि भारत तो ठीक अर्थों में पूंजीवादी भी नहीं है । भारत तो ठीक अर्थों में अर्ध-सामंतवादी है । अभी भी

भारत में पूंजीवाद जन्म गया, ऐसा कहना कठिन है और इसलिए भारत की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में और भी दुर्भाग्य हो गया है । पूंजीवाद जन्मा नहीं है और पूंजीवाद की मृत्यु की बातें शुरू हो गयीं ।

भारत में पूंजीवाद विकसित भी नहीं हुआ है और उसके गर्भपात का विचार, समाजवादी व्यवस्था, सोशलिस्ट पैटर्न और सारी बातें शुरू हो गयी हैं । भारत के जीवन को इससे बहुत ज्यादा नुकसान और हानि उठानी पड़ेगी । अगर पूंजीवाद ठीक से विकसित हो जाये तो हम चिंतन और विचार भी कर सकते हैं कि वह विकसित नहीं हुआ है और उसके विकास में बाधा पड़नी शुरू हो गयी है क्योंकि समाजवादी ढांचे को खड़ा करने की चेष्टा भी साथ में चलनी शुरू हो गयी है । तो भारत एक अद्भुत परेशानी में पड़ गया है—न वह पूंजीवादी है, न वह समाजवादी है । पूंजीवाद के विकास के सारे चरण को रोकने की कोशिश की जा रही है और समाजवाद को जबरदस्ती लाने की भी कोशिश की जा रही है ।

समाजवाद अगर अनिवार्य चरण हो—जैसा मार्क्स कहता है तो वह पूर्णरूप से विकसित पूंजीवादी समाज में ही हो सकता है । लेकिन मार्क्स की सारी भविष्यवाणियां फिजूल चली गयीं । रूस में वह विकसित हुआ जो बिल्कुल ही सामंतवादी समाज था । चीन में वह विकसित हुआ जिसका भी पूंजीवाद से कोई सम्बन्ध नहीं । और बड़े से बड़े पूंजीवादी मुल्क अमेरिका में इसके कोई भी आसार नहीं हैं ।

सच तो यह है कि अगर पूंजीवाद ठीक से विकसित हो तो अनिवार्यरूपेण धीरे-धीरे जो उसके भीतर छिपे हुए तत्व हैं—स्वतन्त्रता के, लोकतंत्र के वे उसे मानववादी समाज में रूपांतरित कर सकते हैं । लेकिन अगर जबरदस्ती की जाये तो रूपान्तरण रोका जा सकता है और समाजवाद जैसी धारणा को थोपा जा सकता है । रूस में कोई साठ लाख से लेकर एक करोड़ लोगों की हत्या करनी पड़ी और चीन में भी कितनी हत्या कर रहे हैं, इसका शायद कभी कोई आंकड़ा स्पष्ट नहीं हो सकेगा ।

उतनी बड़ी हत्या करने के बाद जबरदस्ती, जैसे हम किसी बच्चे को मां के पेट से निकाल लें, समाजवाद पैदा कर लिया गया । फिर कितने वर्षों तक भी जबरदस्ती ही आदमी को दबा कर उसे विकसित करने की चेष्टा की गयी है । लेकिन इधर पांच-सात वर्षों से रूस का उत्पादन बहुत नीचे जा रहा है और रोज रूस को लग रहा है कि ज्यादा दिन दबाकर हम आदमी को जबरदस्ती उसके स्वभाव के प्रतिकूल काम नहीं ले सकते और विचार पैदा हो रहा है…आज चीन और रूस के बीच जो झगड़ा खड़ा हो गया है उसके पीछे वही विचार है । रूस धीरे-धीरे व्यक्तिगत सम्पत्ति की तरफ झुकाव ले रहा है । उसे लेना पड़ेगा । क्योंकि मनुष्य के स्वभाव के प्रतिकूल जबरदस्ती थोपी गयी कोई भी व्यवस्था अंतिम

नहीं हो सकती। या फिर उसे अंतिम बनाये रखने के लिए इतना श्रम करना पड़ेगा, इतनी मुसीबत उठानी पड़ेगी, इतनी हत्या और हिंसा करनी पड़ेगी कि वह हिंसा और हत्या मंहगी पड़ सकती है। थोड़े दिन तक देखी जा सकती है।

रूस का झुकाव व्यक्तिगत सम्पत्ति को थोड़ी-सी सुविधा देने की तरफ है। सब भांति का उत्पादन गिरा है। खेती और गेहूं का उत्पादन भी गिरा है। उसे कनाडा और अमरीका से इधर तीन वर्षों में गेहूं खरीदना पड़ा है। और अभी मैं एक लेख पढ़ता था, और किसी ने भविष्यवाणी की है कि आने वाले उन्नीस सौ पचहत्तर में सारी दुनिया में सम्भवतः मनुष्य के इतिहास में सबसे बड़ा अकाल सम्भावित है। उस अकाल से हिन्दुस्तान, चीन और रूस सर्वाधिक प्रभावित होने वाले मुल्क होंगे और अमरीका को यह निर्णय करना पड़ेगा कि इन तीन मुल्कों में से सिर्फ एक को बचाये। ये मुल्क इकट्ठे बचाये भी नहीं जा सकेंगे। और अगर रूस को बचना है तो उसे आने वाले सात वर्षों में रोज-रोज अमरीका के निकट पहुंच जाना पड़ेगा।

अगर भविष्य में कोई युद्ध भी हो सकता है तो वह रूस और अमरीका को साथ लेकर चीन के साथ हो सकता है। रूस और अमरीका के बीच युद्ध की सम्भावना खत्म है। और जैसे-जैसे रूस अमरीका के निकट पहुंचेगा वैसे-वैसे रूस को अपनी सारी जबरदस्ती की थोपी व्यवस्था को विसर्जित कर देना पड़ेगा।

और हम, इस देश में समाजवादी व्यवस्था को जबर्दस्ती थोप देने के लिए आकुल हो गये हैं। मैं आपको कहना चाहता हूं, समाजवादी व्यवस्था आने वाले भविष्य में किसी देश के लिए लाभ की नहीं होगी क्योंकि साइकोलॉजिकली मनुष्य के स्वभाव के प्रतिकूल है। मनुष्य के भीतर, मनुष्य की पात्रता, उसकी योग्यता, उसके प्राण एकदम असमान हैं सारे लोगों के। वह सारी अभिव्यक्तियों में असमान हैं और उन्हें कितनी ही जोर-जबर्दस्ती करें, वे नये-नये रास्ते खोज लेंगे असमान होने के। वे नये मार्ग खोज लेंगे असमान होने के।

और अगर हम पूरी कोशिश करें और पूरा श्रम करें तो जरूर हम रोक सकते हैं। लेकिन उसको रोकने में आदमी की हालत वैसी हो जायेगी जैसे चीन में वे लोगों को कभी सजा देते थे, तो एक लोहे की जैकिट पूरे शरीर पर कस देते थे। न हाथ हिल सकता था, न गर्दन हिल सकती थी, न कमर हिल सकती थी और आदमी जरा भी नहीं हिल सकता था। लोहे से जकड़ देते थे। और वह जकड़ा हुआ आदमी दो दिन, चार दिन, पांच दिन, सात दिन खड़ा रहता। न हिल सकता न डुल सकता, श्वास तक लेनी कठिन हो जाती। सजा देते थे उसे और कन्फैस करवाने के लिए इस भांति बांध देते थे।

अगर हमने किसी दिन इतनी जोर-जबर्दस्ती करके आदमी को समान बना लिया तो वह करीब-करीब लोहे की जैकिट में बन्द आदमी हो जायेगा। ऐसे आदमी की सारी प्रसन्नता, सारा आनन्द, सारी खुशी, जीने का सारा रस छिन जायेगा। इसलिए मैंने कहा, वह चींटियों का एक समाज हो सकता है। शायद चींटियां कभी समाजवाद पर पहुंच गयी हों और उन्होंने एक व्यवस्था कर ली है समता की, लेकिन स्वतन्त्रता की नहीं।

हमें तो, इस मुल्क को निर्णय लेना है आने वाले दिनों में कि हम क्या करें और वह निर्णय अगर हम नहीं लेते हैं और अगर हवा पैदा नहीं करते हैं तो शायद हमारे बिना चाहे समाजवादी दृष्टिकोण हमारे ऊपर थोप दिया जा सकता है। लेकिन उसके विरोध में कोई उपाय नहीं किया जा रहा है, न कोई विचार किया जा रहा है, न कोई हवा पैदा की जा रही है। और हमें यह कहा जा रहा है कि स्वतन्त्रता के मूल्य पर समानता को खरीदना धोखा है और बहुत मंहगा सौदा है। लेकिन पूछा जाता है मुझसे कि इसका क्या मतलब है? इसका क्या मतलब है कि जैसा पूंजीवाद चल रहा है हम उसे वैसा ही सहते रहें और स्वीकार कर लें? नहीं, इसका यह मतलब नहीं है।

पूंजीवाद की व्यवस्था लायी नहीं गयी है, आयी है। इस फर्क को समझ लेना जरूरी है। समाजवाद लाया जा रहा है, आया नहीं है। पूंजीवाद की व्यवस्था लायी नहीं गयी है, आयी है। कोई पूंजीवादी चिन्तन, कोई पार्टी, कोई क्रान्ति, कोई दल चेष्टा नहीं किया है। कोई कैपिटलिस्ट मैनीफेस्टो नहीं रहा है, कैपिटलिज्म के आने के पहले, जो हम उसे समाज पर थोप देना चाहते। समाज के नैसर्गिक विकास से पूंजीवाद उत्पन्न हुआ है। सच तो यह है कि आज तक का सारा समाज नैसर्गिक विकास से उत्पन्न हुआ था।

समाजवाद पहली बार मनुष्य की चेष्टा का फल है। इसलिए आज तक की सारी सामाजिक व्यवस्था मनुष्य के प्राणों और स्वभाव के किसी न किसी भांति अनुकूल थी। आज पहली बार विचार करके हमने जो आरोपण किया है वह किसी सिद्धान्त के अनुकूल है, लेकिन मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल नहीं है। अगर पूंजीवाद एक सहज व्यवस्था की तरह आया है तो पूंजीवाद में कुछ तत्व हैं जो मनुष्य के प्राणों के अनुकूल पड़ता है। उस तत्व को विकसित किया जाना चाहिए। और पूंजीवाद अगर पीड़ा दे रहा है तो जरूर उसमें कुछ तत्व है जो मनुष्य को कठिन पड़ रहा है और परेशान कर रहा है। उस तत्व को विदा किया जाना चाहिए।

प्रश्न—कौन-सा तत्व है जो पूंजीवाद में आज पीड़ा का कारण हो गया है?

ऐसा ख्याल है कि पूंजीवाद के कारण दरिद्रता पैदा हुई है। हालांकि यह ख्याल बुनियादी रूप से गलत है। पूंजीवाद नहीं था तब दुनिया और भी दरिद्र थी। और जिनको आज दरिद्र कहते हैं, ये तो जिन्दा भी नहीं रह सकते थे पूंजीवाद के पहले की दुनिया में; ये तो कभी के मर गये होते। जिनको आज हम पीड़ित

कहते हैं, एक्सप्लाइटेड कहते हैं, शोषित कहते हैं, यह तो जिन्दा भी नहीं रह सकता था।

शायद आपको ख्याल भी न हो कि हजारों साल तक दुनिया की आबादी दो करोड़ से आगे नहीं बढ़ सकी, सारी दुनिया की आबादी। बढ़ ही नहीं सकती थी। पहली बार पूंजीवादी श्रम ने, पूंजीवादी चिन्तन ने, पूंजीवादी सम्पदा को पैदा करने की तीव्र चेष्टा ने, इतनी सम्पदा उत्पन्न की कि दुनिया की आबादी बढ़ सकी और इतनी तीव्रता से बढ़ सकी कि आज दूसरा सवाल हमारे सामने खड़ा हो गया कि वह आबादी कम कैसे हो? दुनिया में आबादी का सवाल कभी भी नहीं था। बुद्ध के जमाने में दुनिया की आबादी दो करोड़ थी और वह हजारों साल से उतनी थी। और उसके बाद भी सैकड़ों वर्ष तक उतनी ही रही। वह बढ़ नहीं सकती थी क्योंकि इतने बच्चे पैदा होते थे कि उनके लिए भोजन नहीं जुटाया जा सकता था, न कपड़े जुटाये जा सकते थे, न प्राण जुटाया जा सकता था। वे खत्म हो जाते।

पहली बार, जो आज हमें शोषित दिखायी पड़ रहा है, वह बच सकता है इस-लिए कि सम्पदा पैदा हुई। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वह शोषित बना रहे और दुखी बना रहे और पीड़ित बना रहे। सम्पदा और पैदा की जा सकती है और उसकी दरिद्रता मिटायी जा सकती है। लेकिन यह दृष्टि पैदा हो गयी कि सम्पदा को वितरित करना है और वितरण से बीमारी खत्म हो जायेगी। वितरण से सब दरिद्र हो जायेंगे, बीमारी खत्म नहीं होती। और सम्पदा पैदा की जानी चाहिए कि थोड़े लोगों के पास सम्पदा है, इतनी सम्पदा पैदा हो कि धीरे-धीरे अधिक लोगों के पास हो और फिर इतनी सम्पदा पैदा हो कि सब लोगों के पास पहुंच सके।

मानववादी समाज सम्पत्तिशाली लोगों का समाज होगा। जहां जो कल दरिद्र थे वे भी धीरे-धीरे सम्पत्तिशाली हो गये हैं; और समाजवादी समाज दरिद्र समाज होगा, कल जो सम्पत्तिशाली थे उनको, उनको भी बांट दिया गया है, वे भी धीरे-धीरे दरिद्र हो गये हैं।

दो तरह की समानता फलित हो सकती है—एक समानता, जो आपस में गरीबी को बांट लेने से उत्पन्न होगी और एक समानता जो सम्पदा को विकसित करने से उपलब्ध होगी। और आज जो मोह सम्पत्ति पर इतना दिखायी पड़ता है आदमियों का—एक-एक व्यक्ति का अपनी सम्पत्ति का इतना मोह—वह इस कारण नहीं है कि सम्पदा बहुत कीमती है, वह इस कारण है कि सम्पदा कम है। सम्पदा ज्यादा होगी तो मोह कम होगा। सम्पदा बढ़ जायेगी तो वह मोह विलीन हो जायेगा, और सम्पदा अधिक होगी तो सम्पदा के कारण जो आज न्यस्त स्वार्थ दिखायी पड़ता है, जो एक आदमी के पास ज्यादा सम्पत्ति है, वह ज्यादा बलशाली

हो जाता है, तो वह भी विलीन हो जाता है।

एक बहुत सम्पदा से भरा हुआ समाज चाहिए और बहुत सम्पदा को पैदा करने में पूंजीवाद ने जो अद्भुत दान दिया है जगत् को, उसका कोई हिसाब नहीं। उसके लिए लेकिन उसे कोई धन्यवाद देने को भी दुनिया में नहीं। कोई धन्यवाद देने को नहीं कि उसने बहुत सम्पदा पैदा की। अशोक के पास जो कपड़े नहीं थे, वे आज लोगों के पास हैं; और अकबर जो सुख नहीं भोग सकता था, आज दरिद्र से दरिद्र आदमी भोग रहा है। लेकिन इसके लिए कोई धन्यवाद देने को भी नहीं है। और ये सुख बहुत बढ़ सकते हैं लेकिन पुराने चिन्तकों ने पुराने धार्मिक लोगों ने दरिद्रता का बड़ा गुणगान किया था। और गांधी तक···वेद से लेकर गांधी तक दरिद्रता को बहुत आदर दिया गया और गांधी भी दरिद्रनारायण कहते थे। और जिसको आप नारायण कहेंगे, उसको मिटाना बहुत मुश्किल है। जिसको भगवान मान लेंगे उसको मिटाइएगा कैसे?

दरिद्रता एक बीमारी है, एक महामारी है—दरिद्र नारायण नहीं है। अगर दरिद्र नारायण है तो फिर हैजा-नारायण और मलेरिया-नारायण देश को खोजने पड़ेंगे। लेकिन पिछले पांच हजार वर्षों में दरिद्रता को आदर दिया गया और आदर देने के कारण से दरिद्रता मिटाने का कोई उपाय नहीं था और दरिद्र को सन्तोष देने के सिवाय कोई चारा नहीं था कि दरिद्रता भी बड़ी बहुमूल्य है; एक आध्यात्मिक मूल्य है। तो दरिद्रता को एक आदर दिया गया। धीरे-धीरे दरिद्र की संख्या जागरूक हुई, बड़ी हुई। सारे जगत् में दरिद्र का बोध जगा, शिक्षा आयी, समझ आयी और साथ में एक ख्याल आया, जो कि बिल्कुल गलत ख्याल है—एक ख्याल आया कि दरिद्र आदमी इसलिए दरिद्र है कि कुछ सम्पत्तिशाली लोगों ने उससे सम्पत्ति छीन ली। हालांकि यह किसी ने नहीं पूछा कि दरिद्र के पास सम्पत्ति थी कब, जो छीनी जा सके। समृद्धिशाली के पास जो सम्पत्ति है वह दरिद्र से छीन कर नहीं पायी गयी। दरिद्र के पास सम्पत्ति कभी थी ही नहीं। बल्कि दरिद्र के पास जो कुछ दिखायी पड़ता है, वह सम्पत्तिशाली के साथ उसने श्रम जो थोड़ा-सा किया है, उसके कारण उसके पास है।

इंगलैंड में चाइल्ड लेबर के दिन थे। छोटे बच्चों से अठारह घण्टे काम लेते थे। बुरा था यह, छोटे बच्चों से अठारह घण्टे काम लिया जाता था। और आप गाली देंगे, अपराध मानेंगे इसको कि छोटे बच्चों से बारह घण्टा, अठारह घण्टा काम लिया जाये। तो पूंजीवाद पर एक कलंक का टीका लगा। लेकिन किसी ने भी नहीं पूछा कि अगर उन बच्चों को अठारह घण्टे काम नहीं दिया जाता तो वे जिन्दा रहते? दो ही विकल्प थे, या तो अठारह घण्टा उनको काम मिले तो वे जिन्दा रहते या काम न मिले तो वे मरते। एक बात समझ ली गयी कि उनसे अठारह घण्टे काम लिया जा रहा था लेकिन दूसरी बात समझी नहीं गयी कि

अठारह घण्टे काम लिए जाने से वे जिन्दा रह सके । वे बच्चे उसके दो सौ साल पहले जिन्दा नहीं रहते थे, हजार साल पहले जिन्दा नहीं रहते थे । काम लिया गया वह बुरा था, लेकिन काम लेकर ही उनको जिन्दगी मिली इसका कोई ख्याल नहीं । निश्चित ही एक दुनिया आनी चाहिए कि बच्चों से इतना काम न लिया जा सके ।

यह जो आज दरिद्र का इतना बड़ा वर्ग सारी दुनिया में दिखायी पड़ता है, उसके पास से सम्पत्ति छीनी नहीं गयी है । उसके पास सम्पत्ति कभी थी ही नहीं । सम्पत्ति पैदा की गयी है, सम्पत्ति किसी से छीनी नहीं गयी है । क्योंकि राज्य ने सम्पत्ति को पैदा करने के उपाय खोजे हैं । पहली दफे डिवाइसिस खोजी हैं कि सम्पत्ति कैसे पैदा हो ? और सम्पत्ति जब पैदा होने लगी तो ख्याल में आता है कि वह किसी से छीन ली गयी । वह किसी से छीनी नहीं गयी है । यह दुनिया सदा दरिद्र थी । पहली दफा इधर दो सौ वर्षों में दुनिया के पास सम्पदा दिखायी पड़ती है । यह सम्पदा कभी भी नहीं थी । दुनिया में कभी भी नहीं थी ।

सम्पदा और भी पैदा की जा सकती है । जिन मार्गों से इतनी सम्पदा पैदा की गयी है, अगर उन मार्गों को और-और पुष्ट और सहयोग दिया जाये तो सम्पदा और भी पैदा की जा सकती है । सम्पदा इतनी पैदा की जा सकती है कि एक भी आदमी दरिद्र न रह जाये । और एकदम सम्पदा पैदा करने की खोज की जानी चाहिए । और हमारे मन में यह फैसला होना चाहिए, आने वाले समाज की सम्पत्ति इतनी बढ़े कि कोई दरिद्र न होगा । लोगों में सम्पत्ति बांट देने से सिर्फ दरिद्रता हासिल की जा सकती है ।

लेकिन इस मुल्क में अभी ऐसा मुझे दिखायी नहीं पड़ता । कोई चिन्तन करता है, ऐसा भी मुझे दिखायी नहीं पड़ता है । हमने सिर्फ पीटे-पिटाये नारे पकड़ लिए हैं और उनके अनुसार सत्ता लिए हुए राजनीतिज्ञ जो हैं; और मुल्क की जीवन व्यवस्था पर कुछ भी थोपने की कोशिश की जा रही है जिसके कोई अच्छे फल आते नहीं दिखायी पड़ते हैं । रोज जीवन-व्यवस्था नीचे गिर रही है और एक अनार्किक, एक अराजक समाज खड़ा होता चला जा रहा है ।

देश में कोई काम करना नहीं चाहता है । और अगर मुल्क काम नहीं करेगा तो कैसे सम्पत्ति पैदा होगी ? इसमें काम करने के विचार कम, और अकाम के विचार ज्यादा और बाधा डालने के विचार ज्यादा हैं । सम्पत्ति कैसे पैदा होगी ? लेकिन यह ख्याल पैदा किया गया है कि सम्पत्ति गरीब का शोषण करके पैदा की गयी है । तो गरीब के पास कोई सम्पत्ति नहीं थी । सम्पत्ति पैदा करने में इसलिए बाधा डाली जा रही है क्योंकि हमारा शोषण किया जा रहा है । शोषण किया जाता है प्रकृति का—न किसी गरीब का शोषण किया जाता है, न किसी अमीर का । शोषण होता है प्रकृति का । चारों तरफ छाये सम्पदा के अनेक सोर्स हैं,

इनका शोषण होता है । उनसे सम्पत्ति पैदा होती है । और आज तो उपाय ज्यादा हैं कि अगर हम एक सम्पत्तिशाली समाज पैदा करना चाहें तो पैदा कर सकते हैं । निश्चित ही उस समाज को पूंजीवाद कहना गलत होगा । पूंजीवाद का नाम भी पाप और अपराध हो गया । उस समाज का पूंजीवादी ढांचा है भी नहीं, उस समाज का । लेकिन उस समाज का एक मानववादी ढांचा है कि ऐसा समाज हम बर्दाश्त नहीं करेंगे, जहां एक भी आदमी गरीब हो । तो गरीबी मिटनी चाहिए, गरीबी जानी चाहिए ।

लेकिन भारत में गरीबी मिटी नहीं इतने दिनों तक । क्योंकि गरीबी के हम पक्षपाती हैं । गरीबी को हमने आदर दिया है । दुनिया में सबसे पहले भारत ने खेती को खोज लिया था । ह्वील खोज लिया था, चाक खोज लिया था । दुनिया में सबसे पहले भारत ने खेती खोज ली थी । दुनिया में सबसे पहले भारत के पास सर्वाधिक सोर्स थे सम्पदा पैदा कर लेने के । लेकिन भारत को एक गलत फिलॉसफी, एक गलत जीवन-दर्शन दिखाया गया कि दरिद्रता में सन्तोष है, दरिद्रता ठीक है । जो है वह ठीक है ।

सम्पदा के विस्तार की कोई योजना भारत के मन को नहीं दी गयी । उसका परिणाम है—भारत दरिद्र है । और गरीबी का आज भी हमारे दिमाग में, आज भी यह विचार है हमारे दिमाग में कि ग्रामोद्योग, चरखा—न मालूम कितने तरह की बेहूदगियां हैं हमारे दिमाग में—जिनसे सम्पदा फिर पैदा नहीं होगी और देश ऐसा ही बना रहेगा । और देश जितना दरिद्र बनेगा, उतना ही दरिद्र का विद्रोह अमीर के प्रति होना स्वाभाविक है । और आज नहीं कल दरिद्र और समृद्ध के बीच एक उपद्रव होगा और उस उपद्रव में जो थोड़ी-सी सम्पदा मुल्क में पैदा होने की सम्भावनाएं हैं, वे भी नष्ट हो जायेंगी ।

तो भारत को एक तो विस्तार, समृद्धि, सम्पदा और जितना ज्यादा हम विकासमान कर सकें, उसकी एक फिलॉसफी की जरूरत है । मेरी मान्यता है कि मनुष्य के अहित में दरिद्रता के विचार और आदर ने जितना काम किया है उतना किसी और बात ने नहीं किया है ।

प्रश्न—अस्पष्ट

मनुष्य की सम्पदा स्वावलम्बन से बहुत पैदा नहीं हो गयी···और हम···तकनीक की खोज नहीं कर पाये । हमने कोई तकनीक की खोज नहीं की और आज तकनीक युग में भी बैठकर हम चरखा कात रहे हैं और विचार कर रहे हैं कि इस भांति हम मुल्क को सम्पन्न बना देंगे । और इस भांति हम सोच रहे हैं कि स्वावलम्बी हो जायेंगे । स्वावलम्बन की बात फिजूल है । समाज का अर्थ ही है कि वहां कोई स्वावलम्बी नहीं हो सकता । स्वावलम्बी होने की चेष्टा सुइसाइडल है । अगर एक आदमी स्वावलम्बी होने की चेष्टा करे तो सिर्फ मरेगा; जी नहीं

सकता । स्वावलम्बन का कोई मतलब नहीं है । जीवन को चाहिए सबका सहयोग । जितना बड़ा सहयोग होगा उतनी बड़ी सम्पदा पैदा होगी । और एक-एक आदमी इस ख्याल में हो कि वह अपनी सम्पदा पैदा करे तो वह गलत ही जियेगा । पुरानी दुनिया इसीलिए दरिद्र थी । पूंजीवाद ने पहली दफा सहयोग और समूह और स्वावलम्बन के द्वारा सम्पत्ति पैदा करने का उपाय खोजा । दुनिया दरिद्र थी । एक आदमी अपने लिए चर्खा कात रहा था, अपनी खेती के जरा से टुकड़े में काम कर रहा था, अपने मकान बना रहा था, सोचता था पर्याप्त है ।

पहली बात, हम एक-दूसरे पर इतने निर्भर हो जायें कि यह ख्याल ही न रह जाये स्वावलम्बन का, कि मैं अपने पैर पर खड़ा हो जाऊं । अपने पैर पर आप कैसे खड़े हो सकते हैं ? श्वास लेते हैं तो आप हवाओं पर निर्भर हैं, रोशनी लेते हैं तो दूर सूरज पर निर्भर हैं । अभी सूरज ठण्डा हो जाये तो हम ठण्डे हो जायेंगे । हम क्या स्वावलम्बी हो सकते हैं ? सारा जगत् एक इकट्ठी इकाई है, सारी मनुष्यता एक इकाई है । स्वावलम्बी होने के द्वारा अगर सम्पदा पैदा करनी है तो उचित है कि बम्बई में अगर कारें बनायी जाती हैं, तो पूरा बम्बई सिर्फ कारें बनाये । कारें हिन्दुस्तान में पच्चीस जगह कारखाने की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि सिर्फ अपव्यय है शक्ति का । सम्पदा कम पैदा होगी उससे एक ही नगर अगर सारी कारें बनाये ।

सच तो यह है कि अगर एक ही नगर सारी दुनिया के लिए कारें बनाये यह उचित होगा । तो उस गांव में कुशलता पैदा होगी, एफिशिएंसी पैदा होगी । उस गांव में स्वाभाविक है, कई बच्चे कुशल पैदा होंगे उस दिशा में । उस सारे गांव की हवा एक ही उत्पादन की होगी कि वह सारी दुनिया को कारें दे । निश्चित ही वह गांव स्वावलम्बी नहीं हो सकता क्योंकि वह सिर्फ कारें बनायेगा । गेहूं उसे किसी और से लेना पड़ेगा, कपड़े किसी और से लेने पड़ेंगे, फर्नीचर किसी और गांव से खरीदना पड़ेगा । लेकिन उस दिन दुनिया में इतनी सम्पदा पैदा हो जायेगी, जिस दिन हम वैज्ञानिक विधि से और तकनीक के विकास से और स्वावलम्बन के नासमझी से भरी बात से मुक्त हो जायेंगे ।

इतनी सम्पत्ति पैदा हो सकती है कि दुनिया में किसी आदमी के दरिद्र होने का कोई कारण नहीं । दरिद्रता मिटानी है और सम्पत्ति बढ़ानी है । और यह सम्पत्ति उतनी ही बढ़ सकती है जितनी एक-एक व्यक्ति को अधिकतम स्वतन्त्रता होती है । स्वतन्त्रता व्यक्ति के भीतर जो छिपी हुई शक्तियां हैं उसे समृद्धवान करती है, उसे विकासमान करती है । स्वतन्त्रता उसे मौका देती है कि वह जो हो सकता है, होने की चेष्टा करे ।

स्वतन्त्रता पूरी चाहिए और दरिद्रता को मिटाने का एक दर्शन चाहिए इस देश को । नहीं तो हम हो सकता है कि···हम हजार साल की गुलामी से मुक्त हुए हैं

और कोई तीन चार हजार साल की गलत फिलॉसफी हमारी छाती पर सवार है । गलत जीवन-दर्शन हमारे ऊपर सवार है और एक नयी दुर्घटना हमारे ऊपर आ रही है, वह समाजवादी चिन्तन है । तो हम दरिद्र ही रह जायें—दरिद्रता को बांट लें और बड़े खुश हों और इस दरिद्र समाज में फिर हमें वही सब उपद्रव, सारे आधार और सारी सम्भावनाएं भविष्य में झेलनी पड़े जिनको हम अतीत में झेलते रहे हैं ।

तो मुझे लगता है कि समाजवाद नहीं है आने वाले भविष्य की जीवन-व्यवस्था । आने वाले भविष्य की जीवन-व्यवस्था है—मानववाद; और मानववाद पूंजीवाद के विरोध में आने वाली व्यवस्था नहीं है; पूंजीवाद का ही सुसंगत विकास है । यहां पूंजीवाद की बीमारियां क्रमशः विदा हो जायेंगी और पूंजीवाद में जो भी श्रेष्ठतर है, वह क्रमशः उन्नत होता चला जायेगा । और इतनी सम्पदा पैदा हो सके कि कोई दरिद्र न रहे । दरिद्र इसलिए नहीं है कि शोषण है, दरिद्र इसलिए है कि सम्पदा पैदा करने के हमारे उपाय क्षीण और कम हैं । सम्पदा हम जितनी पैदा कर सकेंगे उतना दरिद्र विदा हो सकता है ।

और मुझे यह भी दिखायी नहीं पड़ता कि वर्गविहीन समाज कभी भी निर्मित हो सकता है । या होना चाहिए यह उचित ? नहीं, वर्गविहीन समाज कभी भी निर्मित नहीं हो सकता है । सम्पदा अधिक होगी, वर्गों के फासले कम होंगे । सम्पदा इतनी बहुत हो सकती है कि वर्गों के फासलों का कोई वास्तविक अर्थ न रह जाये । लेकिन अगर हमने वर्गविहीन व्यवस्था बनाने की चेष्टा की तो उस व्यवस्था में स्वतन्त्रता खो देनी पड़े और जबरदस्ती वर्गों के तोड़ने का उपाय करना पड़े । और वर्गों को तोड़ने की चेष्टा में एक नया वर्ग पैदा हो जायेगा तो तोड़ने वाला होगा । तो पुराने वर्ग नयी शक्ल ले लेंगे । वहां पूंजीपति था, यहां मजदूर था । फिर यहां मजदूर होगा, सामान्य जनता होगी और मैनेजर होगा, और व्यवस्था होगी और नया वर्ग खड़ा हो जायेगा । रूस में नया वर्ग खड़ा हो गया है ।

वर्ग तोड़े नहीं जा सकते । वर्ग तो—जैसा मार्क्स कहता है, शायद ठीक कहता है—तोड़े नहीं जा सकते । अगर मनुष्य का स्वभाव विकसित होता चला जाये और सम्पदा इतनी बहुल हो जाये, जैसे आज पानी बहुल है, तो पानी की कोई मालकियत नहीं रखता है और न कोई यह कहता है कि नदी मेरी है, पानी मेरा है । लेकिन पानी की अगर कमी पड़ जाये तो पानी की मालकियत शुरू हो जायेगी । इतनी सम्पत्ति चाहिए जगत् में, इतनी सम्पत्ति पैदा होनी चाहिए कि मालकियत का ख्याल फिजूल हो जाये, तो वर्ग विदा हो जायेंगे, तो वर्ग झड़ जायेंगे, जैसे सूखे पत्ते झड़ जाते हैं । लेकिन जब तक इतनी सम्पदा पैदा नहीं होती है तब तक हम एक-एक व्यक्ति को बदल कर वर्गविहीन करेंगे, दूसरे ढंग का ढांचा और वर्ग खड़ा हो जायेगा ।

यह कभी होगा वर्गविहीन समाज, यह कहना मुश्किल है। लेकिन वर्ग का तेज धीरे-धीरे कम होता जा सकता है। सारे महत्वपूर्ण कामों के लिए वर्ग ठीक हो सकता है। और सच तो यह है कि जीवन में कुछ भी पूर्ण नहीं है। जीवन एक अनन्त अपूर्ण यात्रा है। इसमें हर घड़ी फिर नयी अपूर्णता है, हर घड़ी फिर नयी समस्याएं हैं, हर घड़ी फिर नयी चुनौतियां हैं। अगर किसी दिन समाज पूर्ण हो जायेगा तो मैंने जैसा कहा वह ठीक ही समान हो जायेगा क्योंकि उसके आगे विकास को कुछ शेष नहीं रहता।

क्या इस सम्बन्ध में आप सोचेंगे? क्या इस सम्बन्ध में हम मुल्क में एक हवा खड़ी करेंगे कि पूंजीवाद के गुण हैं और पूंजीवाद के गुणों का सहज विकास होना चाहिए। और उनमें और जो दुर्गुण हैं वे भी विदा होने चाहिए। पूंजीवाद का एक ही दुर्गुण है कि पूंजीवाद अभी इतनी सम्पत्ति नहीं पैदा कर पाया है कि कोई दरिद्र न रह जाये। और इसलिए अगर पूंजीवाद को बचना है, और उसके साथ स्वतन्त्रता को और व्यक्तिगत आजादी को आंकना परखना है तो कैसे अधिकतम सम्पदा पैदा हो सके, इसके सम्बन्ध में सोच और विचार करना जरूरी है। और हम जैसी हालतों में, जिन चीजों की वजह से हम कभी भी सम्पत्ति पैदा नहीं कर पाये, उन्हीं चीजों को हम फिर से थोपे चले जा रहे हैं।

मैंने सुना है कि दक्षिण अमरीका में एक छोटा-सा आदिवासी समाज है। वह आदिवासी समाज है। एक-एक आदमी अपने खेत पर काम नहीं करता है—छोटे-छोटे खेत हैं और बीच-बीच में पहाड़ियां हैं, खाइयां हैं, फिर छोटे खेत हैं। लेकिन उनका तीन-चार हजार वर्ष की संस्कृति यह है कि अपने खेत पर अकेले काम नहीं करना है। तो पांच पड़ोस के मित्रों को बुला कर काम करना है। तो आज एक खेत पर सारा गांव काम करेगा। फिर सारा गांव यात्रा करके जायेगा और दूसरे खेत पर काम करेगा, फिर यात्रा करके जायेगा और तीसरे खेत पर काम करेगा। फिर इतने लोग इकट्ठे होंगे, भीड़-भाड़ होगी, मारपीट होगी, नाच-गाना होगा, स्वागत-समारम्भ होगा। तो तीन हजार साल से एक होकर भी सम्पत्ति नहीं जुटा पा रहा है वह समाज। उसके पड़ोसी दूसरा समाज है। उसे यह बात फिजूल मालूल होने लगी कि एक खेत से दूसरे खेत के बीच के फासले को पार करके सारे लोग इकट्ठे होकर जायें और वहां काम करें, फिर तीसरे खेत पर जायें। इससे शक्ति और श्रम का अपव्यय हो। इससे तो उचित है कि अपने खेत पर ही आदमी पूरा काम करे। बगल में ही एक समाज है दूसरे आदिवासियों का जो सम्पन्न होता चला गया है और एक समाज है जो विपन्न होता चला गया है। लेकिन वे अपनी आदत से बाज नहीं आते हैं—अभी भी वे अपनी आदत से बाज नहीं आते।

पश्चिम सम्पन्न होता चला गया और हम विपन्न होते चले गये। लेकिन हमने

यह सोचा नहीं कि हमारी कुछ गलत आदतें हैं जीवन के बाबत। हमने कभी सोचा नहीं कि हमारा दरिद्र होना स्वाभाविक परिणाम है हमारे विचार का। पश्चिम का सम्पन्न होना उनका स्वाभाविक परिणाम है उनके विचार का। आज पश्चिम के सामने हाथ जोड़कर भीख मांगते हमको शर्म भी नहीं आती कि हम पांच हजार साल की पुरानी संस्कृति में हैं, और अमरीका की सारी संस्कृति को तीन सौ वर्ष हुए। तीन सौ वर्ष की एक बच्चा संस्कृति के सामने पांच हजार वर्ष की बूढ़ी संस्कृति भीख मांग रही है और रोज भीख मांगती चली जा रही है और शर्मिन्दा भी न हो। और मजा यह है, शर्मिन्दा होना तो दूर, उल्टा उनको कहें कि वह भौतिकवादी हैं, हम तो अध्यात्मवादी हैं। बेशर्मी की भी सीमाएं होंगी, वह भी हमने तोड़ दी है।

इस देश को एक सुसम्यक, सुसम्बद्ध मानववादी जीवन-चिंतन, जीवनवादी जीवन-चिंतन, समृद्धि और सम्पदा को पैदा करने का विचार दे···स्वावलम्बन, चरखा और ग्रामोद्योग जैसी नासमझी की बातों से मुक्ति का प्रयास करें तो हम सम्पदा पैदा कर सकते हैं। और यह देश—काउंट कैसरलिंग लेख की डायरी पर उसने लिखा तो मैं समझा कि वह छापेखाने की भूल है। उसने लिखा कि मैं भारत गया और मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि भारत एक धनी देश है जहां गरीब आदमी रहते हैं। मैंने समझा कि कहीं छापेखाने की भूल हो गयी। रिच कंट्री वेयर पुअर पिपुल लिव। फिर मुझे ख्याल आया, नहीं भूल नहीं हुई होगी। यह कहता है कि इतना सम्पदाशाली देश है लेकिन मूढ़ता की वजह से गरीब आदमी वहां रहते हैं। वह सम्पत्ति पैदा नहीं कर पाये।

सम्पत्ति अगर हम तीन हजार साल से पैदा नहीं कर पाये तो समाजवाद हमारे ऊपर आ ही जायेगा। उससे सिर्फ दरिद्रता बंट जायेगी। सारा देश दरिद्र हो जायेगा। और सारे देश की छाती पर एक लोहे का शिकंजा हो जायेगा। सारी स्वतन्त्रता खो जायेगी। लेकिन सिर्फ बहकाने से कुछ नहीं होगा। कुछ कदम ऐसे होते हैं जो कि वापस नहीं उठाये जा सकते।

एक छोटी-सी घटना और मैं अपनी बात पूरी करूंगा। मुहम्मद के एक मित्र थे अली। अली ने मुहम्मद से पूछा कि आदमी स्वतन्त्र है या परतन्त्र? तो मुहम्मद ने कहा, तू अपना एक पैर ऊपर उठा ले। और अली ने अपना बायां पैर ऊपर उठा लिया। मुहम्मद ने कहा, अब तू अपना दूसरा पैर भी ऊपर उठा ले। अली ने कहा, यह कैसे हो सकता है? मुहम्मद ने कहा, दायां पैर ऊपर उठा लो? उसने कहा कि यह कैसे हो सकता है? लेकिन अगर मैंने बायां पैर उठाया होता तो मैं दायां उठा सकता था। अब बायां नहीं उठ सकता क्योंकि बायां उठा चुका हूं। तो मुहम्मद ने कहा, तू स्वतन्त्र था उठाने के पहले; एक पैर उठाया कि दूसरा पैर नहीं उठाया, उस सम्बन्ध में ही बंध गया।

अब यह देश स्वतन्त्र है कदम उठाने के पहले । और एक बार फिर समाजवादी कदम उठाया तो फिर दूसरा कदम उठाना बहुत मुश्किल हो जायेगा । वह बंध जायेगा । तो उसके पहले विचार कर लेना जरूरी है कि हम क्या कदम उठा सकते हैं ? या हवा में घूमते हुए जो आटो सजेशंस, सारी दुनिया में जो सुझाव देते रहते हैं उन्हीं को पकड़ते चले जायेंगे या सोचेंगे, विचारेंगे और देश के लिए कोई नया जीवन-चिंतन, समाज व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था की कोई धारणा खड़ी करेंगे ?

मैं समझता हूं, मेरा ख्याल आपको स्पष्ट हुआ होगा । अगर कुछ आपको पूछना हो तो पूछ लें।

प्रश्न—अस्पस्ट

क्योंकि हम जितने पुराने साधन उपयोग करेंगे उतनी ही कम सम्पदा उनसे पैदा होती है । नवीनतम साधन, नवीनतम तकनीक का प्रयोग करेंगे तो अधिकतम सम्पदा पैदा होती है । सवाल सम्पत्ति पैदा करने का है । और जब एक हमारी दृष्टि ही यह हो जाती है कि चरखा चलाने से काम चल जायेगा, एक बार दृष्टि पैदा हो जाती है कि बैलगाड़ी से सफर कर लें तो जेट विमान बनाने की कल्पना और विचार क्षीण होते हैं । अगर हम प्रत्येक आदमी को काम नहीं दें तो हमें अधिकतम सम्पदा पैदा करने वाली व्यवस्था कैसे पैदा हो, उसका चिंतन करना चाहिए । हमें अगर सब्स्टिट्यूट मिल जाये तो हम वहीं खत्म हो जाते हैं ।

एक आदमी कैंसर से बीमार है और हम कहें कि गांव में तो ओझा ही मिलता है, बीमार है तो ओझा से ही इसका इलाज करवा दें तो ठीक से उसका इलाज करेगा । लेकिन कैंसर ओझा से ठीक होने वाला नहीं है । और ओझा के इलाज के कारण ही कैंसर की जो खोज कर सकते थे कि उसका इलाज कैसे हो वह फिर हम नहीं कर पायेंगे । सब्स्टिट्यूट खतरनाक होते हैं ।

अगर भारत गरीब है तो मैं कहता हूं गरीबी से परेशानियां बेहतर हैं । सस्ते सब्स्टिट्यूट नहीं खोजने चाहिए क्योंकि गरीबी से परेशानी हमें उस दिशा में ले जायेगी, जहां हम गरीबी को मिटाने के लिए उत्सुक हैं । लेकिन अगर सस्ते उपाय हमें मिल गये तो हम आगे भी नहीं बढ़ सकते, बात वहीं खत्म हो गयी ।

और यह जो तरक्की की बात है यह सिर्फ इसलिए नहीं है, जितना आप कहते हैं । उसके पीछे तो जीवन दृष्टिकोण यह है, गांधी का जीवन-दृष्टिकोण तो यही है कि बहुत बड़े तकनीक और टेक्नोलॉजी के पक्ष में वह नहीं हैं । वह इसलिए पक्ष में नहीं हैं क्योंकि टेक्नोलॉजी सेंट्रलाइज करेगी । गांधी यह कहते हैं कि मैं उनके पक्ष में हूं, वह कहते हैं डीसेंट्रलाइज होना चाहिए । तो चरखा जो है वह डीसेंट्रलाइजेशन का प्रतीक है उनका । एक बड़ी मिल होगी तो सेंट्रलाइजेशन होगा और फिर ऑटोमेटिक व्यवस्था होगी मशीनों की तो फिर बिल्कुल सेंट्रलाइज्ड हो जायेगा ।

सच तो यह है कि अगर सेंट्रलाइजेशन ठीक से हो तो दुनिया में इतने अधिक लोगों को कपड़ा पैदा करने में लगा रखना बिल्कुल पागलपन है । कोई मतलब नहीं है इसका । और एक-एक आदमी चार-चार घंटे दिन में चरखा कात करके और साल में अपने लायक कपड़ा निकाल पाये, यह इतनी बेहूदी बात है—क्योंकि एक आदमी अगर साठ साल जिन्दा रहता है तो बीस साल तो सोने में गंवा देता है । पांच साल खाना खाने में, दाढ़ी बनाने में, कपड़े पहनने में गंवा देता है । कुछ बातचीत करने में गंवा देता है । साठ साल की जिन्दगी में मुश्किल से एक आदमी के पास पन्द्रह-बीस साल होते हैं जिनको हम कहें उसके पास लिविंग स्पेस मिलती है जीवन के लिए । उसमें उससे चरखा कतवाइए, और घर में जूते बनवाइए और साबुन बनवाइए घर की और घर का और चीजें बनवाइए, तो आप उसकी जान ले लेंगे क्योंकि उसकी जिन्दगी में कोई समय नहीं बचा जब वह बहुत हायर डायमेंशन में सोचता, उस जीवन की ऊंचाइयों पर सोचता ।

मैं आपको यह कहूं कि दुनिया में अध्यात्म दरिद्र मुल्क में कभी पैदा नहीं हो सकता । हिन्दुस्तान कभी आध्यात्मिक था तो वह इस कारण से कि उन दिनों हिन्दुस्तान के पास समृद्धि थी, थोड़ी ही संख्या के दायरे में । आपको ख्याल में न हो, जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के लड़के थे । बुद्ध राजा के लड़के थे, राम-कृष्ण राजा के लड़के थे । ये सारे राजाओं के लड़कों को कैसे कल्पना उठी अध्यात्म की ?

सच तो यह है कि जब भौतिक जरूरत और भौतिक श्रम से आदमी मुक्त होता है तो पहली बार आत्मा ऊंचाइयों में यात्रा शुरू करती है । और मैं आपको कहना चाहता हूं कि आने वाले पचास वर्षों में यह दुनिया होगी तो अमरीका दुनिया में सबसे बड़ा आध्यात्मिक मुल्क हो जायेगा । वह उसमें भी आपसे आगे निकल जाने वाला है क्योंकि जितनी सुविधा होगी, जितना समय होगा, जितनी चेतना खाली होगी, उतनी चेतना के लिए नये आयाम और नयी दिशाएं खोलना जरूरी हो जाती हैं । अन्यथा क्या करेंगे आप ? सारा अध्यात्म लेजर से पैदा हुआ है, विश्राम से पैदा हुआ है । और हम जिस अध्यातम की बातें करते हैं, खासकर गांधीजी, वह आदमियों को श्रम में लगा देना चाहते हैं, पूरी तरह से । चौबीस घंटे श्रम में लग जाये । मैं आपको कहता हूं, वह आदमी शरीर के तल से कभी ऊपर नहीं हो सकेगा । वह शरीर के तल पर ही जियेगा और मरेगा ।

दरिद्रता मिटानी है, आदमी को काम नहीं देंगे आप तो ठीक है । लेकिन बीसवीं सदी में चाहिए कि सर्वाधिक नवीनतम, श्रेष्ठतम, अधिकतम उत्पन्न करने वाली, कम से कम काम वाली हो । लेकिन गांधी की दृष्टि यंत्र-विरोधी है और चरखा उसका प्रतीक है । अगर गांधी का वश चले तो और बड़े यंत्रों को भी विदा करें । क्योंकि उनका दूसरा ख्याल जो है वह स्वावलम्बन का है । बड़ा यंत्र

स्वावलम्बी बनायेगा—बड़ा यंत्र कैसे स्वावलम्बी बनायेगा ? सच तो यह है कि स्वावलम्बन की बात ही गैर आध्यात्मिक है। क्या वजह है कि मैं स्वावलम्बी होने की चिंता करूं ? क्या वजह है कि आप स्वावलम्बी होने की चिंता करें ?

समाज है वह जहां हम सब का एक इकट्ठा जीवन है। उस इकट्ठे जीवन में स्वावलम्बन की बात ही फिजूल है। जो मैं श्रेष्ठतम कर सकता हूं वह मैं करूं, जो आप श्रेष्ठतम कर सकते हैं वह आप करें और हम एक-दूसरे पर निर्भर रहें। और सच तो यह है कि हम जितने निर्भर होंगे, उतने ही प्रेमपूर्ण होंगे। हम जितने ही निर्भर होंगे, उतने ही हम निकट आयेंगे। अगर सारी दुनिया में टेक्नोलॉजिकली हम निर्भर हो जायें एक-दूसरे पर तो युद्ध असम्भव हो जायेंगे।

युद्ध इसीलिए होते रहे, क्योंकि एक-एक मनुष्य स्वावलम्बी था। जैसे-जैसे दुनिया टेक्नोलॉजिकली, परस्पर निर्भर हो जायेंगे, अमरीका आपको देगा, आप अमरीका को देंगे। चीन आपको गेहूं देगा या रूस आपको मशीनें देगा तो दुनिया में कभी युद्ध न होंगे। दुनिया से युद्ध मिटेगा तो एक ही रास्ता है और वह यह कि दुनिया इतनी पर-निर्भर हो जाये कि किसी से लड़कर हम जिन्दा न रह सकें, तो युद्ध मिटेगा। नहीं तो युद्ध नहीं मिट सकता। गांधीजी की अहिंसा की बातों से नहीं मिटने वाला है। युद्ध मिटेगा टेक्नोलॉजी इतनी सेंट्रलाइज हो जाये कि कोई मुल्क स्वतन्त्र खड़ा होने की हिम्मत न कर सके, कोई प्रदेश स्वतन्त्र होने की हिम्मत न कर सके, कोई आदमी अलग खड़ा होने की हिम्मत न कर सके। तो इस जगत् में एक नये तरह का जीवन शुरू होगा जो युद्ध नहीं होगा और एक नयी तरह की शांति उत्पन्न होगी।

प्रश्न—आपके विचार तो बहुत क्रांतिकारी हैं। आपने जो रूपरेखा प्रस्तुत की है, क्या इन विचारों के प्रचार की कोई योजना भी आपके पास है ?

यह आप सोचेंगे, इस ख्याल से मैंने विचार रखा है। मेरे पास तो कोई योजना नहीं है। विचार मेरे पास हैं। प्रतीक्षा में हूं। योजना होगी तो मेरे विचार काम में आ जायेंगे। मेरे पास तो कोई योजना नहीं है। विचार मेरे पास हैं, वे मैं कह सकता हूं, समझा सकता हूं।

●

बम्बई, दिनांक ३ नवम्बर १९६८

२७. गांधी पर पुनर्विचार

मेरे प्रिय आत्मन,

डा० राममनोहर लोहिया मरणशैया पर पड़े थे। मृत्यु और जीवन के बीच झूलती उनकी चेतना जब भी होश में आती तो वह बार-बार एक ही बात दोहराते। बेहोशी में, मरते क्षणों में वे बार-बार यह कहते सुने गये। मेरा देश सड़ गया है, मेरे देश की आत्मा सड़ गयी है। यह कहते हुए उनकी मृत्यु हुई। पता नहीं उस मरते हुए अद्‌भुत आदमी की बात आप तक पहुंची है या नहीं पहुंची। लेकिन राममनोहर लोहिया जैसे विचारशील व्यक्ति को यह कहते हुए मरना पड़े कि मेरा देश सड़ गया, मेरे देश की आत्मा सड़ गयी है, तो कुछ विचारणीय है।

क्यों सड़ गयी है इस देश की आत्मा? किसी देश की आत्मा सड़ कैसे जाती है? जिस देश में विचार बन्द हो जाता है उस देश की आत्मा सड़ जाती है। जीवन का प्रवाह है, विचार का प्रवाह है। और जीवन का प्रवाह जब रुक जाता है, विचार का प्रवाह जब रुक जाता है, तो जैसे कोई सरिता रुक जाये और डबरा बन जाये, फिर वह सागर तक तो नहीं जाती, डबरा बनकर सड़ती है, गन्दी होती है, सूखती है। कीचड़ और दलदल पैदा होता है। इस देश में विचार की सरिता रुक कर डबरा बन गयी है। हमने विचार करना बन्द कर दिया है। हम तो विचार से भयभीत हो गये हैं, ऐसा प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि विचार से हमारे भीतर कोई डर पैदा हो गया है। हम विश्वास की बात करते हैं, विचार

की जरा भी बात नहीं करते।

विचार करने में भय क्या हो सकता है? विचार करने से इतना डरने की, इतना कंपने की बात क्या है? गांधी वर्ष-शताब्दी चलती है। मैंने पिछले दो अक्टूबर को कुछ मित्रों को यह कहा कि यह वर्ष बड़े मौके का है। इस पूरे वर्ष गांधी पर विचार किया जाये तो अच्छा है। क्योंकि गांधी से बड़ा व्यक्ति सम्भवतः भारत के इतिहास में खोजना मुश्किल है। संन्यासी हुए हैं बहुत बड़े, त्यागी हुए हैं बहुत बड़े, धर्मात्मा हुए हैं बहुत बड़े, लेकिन धार्मिक और आध्यात्मिक व्यक्ति जीवन के बीच खड़े रहे हों, जीवन के संघर्ष में लड़े हों, राजनीति से भाग न गये हों, ऐसा गांधी अकेले आदमी हैं। ऐसे महत्वपूर्ण व्यक्ति पर क्या हम विचार नहीं करेंगे? मेरे मित्रों ने कहा, विचार तो बहुत होगा—सभाएं होंगी, प्रवचन होंगे, पुस्तकें छपेंगी, करोड़ों रुपया खर्च किया जायेगा। मैंने उनसे कहा, उसमें विचार जरा भी नहीं होगा सिवाय प्रशंसा के।

प्रशंसा विचार नहीं है। न ही निन्दा विचार है, न प्रशंसा विचार है। मित्र और भक्त प्रशंसा करते हैं, शत्रु और दुश्मन निन्दा करते हैं; लेकिन न शत्रु विचार करते हैं, न मित्र विचार करते हैं। विचार निन्दा और प्रशंसा से भिन्न बात है। विचार है तटस्थ आलोचना, विचार है सृजनात्मक आलोचना, विचार है क्रिएटिव क्रीटीसिज्म। निन्दा का तो कोई सवाल ही नहीं है। प्रशंसा चलेगी वर्ष भर तक। प्रशंसा से क्या हित होगा? हमारा या गांधी का, किसका? गांधी की कितनी ही हम प्रशंसा करें, उन्हें और बड़ा नहीं बना सकते हैं। गांधी की हम कितनी ही निन्दा करें, उन्हें हम छोटा नहीं बना सकते हैं। गांधी की निन्दा से हम बड़े नहीं हो जायेंगे और न गांधी की प्रशंसा से हमारी आत्मा को कोई लाभ होने वाला है।

लेकिन गांधी पर अगर विचार हो तो इस देश की आत्मा को गति मिल सकती है। लेकिन विचार करने को कोई राजी नहीं है। मैंने कुछ बातें कहीं कि उन मुद्दों पर गांधी पर विचार होना चाहिए तो बम्बई के पत्रकारों ने उन्हें इस तरह गलत और विकृत करके छापा कि जब मैं महीने बाद बम्बई पहुंचा तो मैं तो हैरान रह गया।

मुझे उन पत्रों को देखकर एक बात याद आयी। वेटिकन का पोप अमरीका गया था। न्यूयार्क के हवाई अड्डे पर उतरने के पहले उसके मित्रों ने उससे कहा, और तो सब ठीक है, पत्रकारों से सावधान रहना। अगर वह कुछ पूछें तो बहुत सोच-समझकर उत्तर देना। वेटिकन के पोप ने कहा, सोच-समझ कर उत्तर देने का क्या मतलब! तो उनके साथियों ने कहा, जहां तक बने, हां और ना में उत्तर मत देना। जहां तक बच सको प्रश्न से तो बचने की कोशिश करना—जैसा कि राजनीतिज्ञ हमेशा करते हैं, राजनीतिज्ञ कभी हां और ना में उत्तर नहीं देते।

क्योंकि हां और ना में पीछे कमिटमेंट होता है, झंझट हो सकती है। राजनीतिज्ञ ऐसा उत्तर देता है कि जब जैसी जरूरत पड़ जाये वैसा उससे अर्थ निकाला जा सके। वह गोल-मोल उत्तर देता है।

तो वेटिकन के पोप के मित्रों ने कहा कि आप गोल-मोल उत्तर देना। ऐसा कुछ उत्तर देना कि जो भी मतलब पीछे चाहे निकाला जा सके। या अगर कुछ समझ न पड़े तो बचने की कोशिश करना। जैसे ही हवाई अड्डे पर पोप उतरा, पत्रकारों ने उसे घेर लिया। और उन पत्रकारों ने पहला प्रश्न जो पूछा पोप से, वह यह पूछा कि वुड यू लाइक टू विजिट ए न्यूडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क ? क्या आप कोई नंगे लोगों का क्लब देखना पसन्द करेंगे, जब तक आप न्यूयार्क में हैं ? वेटिकन का पोप समझा कि आयी झंझट। अगर मैं हां कहूं तो वे कहेंगे वेटिकन का पोप अमरीका की नंगी औरतें और नंगे लोगों को देखने आया हुआ है। अगर मैं कहूं कि नहीं मैं नहीं देखना चाहता, तो कहेंगे, वेटिकन के पोप इतने डरते हैं नंगी औरत और नंगे आदमी को देखने से, तो जरूर कोई मामला होना चाहिए। तो वेटिकन के पोप ने कहा कि कुछ ठीक सीधा-सीधा उत्तर देना उचित नहीं है, घबराहट में उसने दूसरा ही प्रश्न पूछ लिया। उसने यह पूछा कि इज देअर ऐनी न्यूडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क ? कोई नंगे लोगों का क्लब है न्यूयार्क में ? ताकि सीधा कुछ कहना न पड़े। फिर बात टल गयी। वह बड़ा खुश हुआ। लेकिन दूसरे दिन अखबारों के मुखपृष्ठ पर बड़े-बड़े अक्षरों में क्या छपा था ? छपा था कि महामहिम, परम पूज्य पोप ने हवाई अड्डे पर उतरते ही जो पहला प्रश्न पत्रकारों से पूछा वह यह कि 'इज देअर ऐनी न्युडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क ?' आते ही अड्डे पर पहली बात वे महापुरुष यही पूछने लगे कि नंगे लोगों का कोई क्लब है न्यूयार्क में ?

पत्रकारों से मैंने गांधी के सम्बन्ध में जो बातें कहीं, बम्बई लौटकर मुझको पता चला कि वेटिकन के पोप को जैसा अनुभव हुआ होगा। वह कैसा अनुभव हुआ होगा, मेरी बातों को इतना ही बिगाड़कर, तोड़-मरोड़कर प्रसंग के बाहर उपस्थित किया। उसका जोर से प्रचार किया। मैं हैरान हुआ कि इसके पीछे क्या कारण हो सकता है ? अभी जब गुजरात गया तो कारण पता चला। मोरारजी देसाई, ढेबर भाई, काका कालेलकर, स्वामी आनन्द जैसे प्रतिष्ठित लोगों ने भी मेरे विरोध में वहां भाषण दिये। तब मेरी समझ में आया कि गांधी के सम्बन्ध में विचार करने में गांधीवादी को डर है। गांधी का डर नहीं है, क्योंकि गांधी पर विचार अन्ततः गांधीवाद पर विचार बन जायेगा। गांधीवादी घबराता है, उस पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि उसके बीस वर्ष का इतिहास बहुत कालिख से है और अन्धेरे से भरा हुआ है। सफेद कपड़ों के भीतर काले आदमी की कहानी है बीस वर्षों की। और अगर गांधी पर विचार शुरू हुआ तो वह विचार रुकेगा नहीं,

वह गांधीवादी पर पहुंच जायेगा। तब मुझे समझ में आया कि गांधीवादी पत्र इतने जोर से इस बात को क्यों विरोध में प्रचार किये हैं ?

और मैंने कहा क्या था ? मैंने यह कहा था कि जो समाज अपने महापुरुष की आलोचना नहीं करता वह समाज शायद डरता है कि उसके महापुरुष बहुत छोटे हैं। आलोचना में पिघल जायेंगे, बह जायेंगे। इतनी घबराहट एक ही बात का सबूत है। अगर हम एक मिट्टी का पुतला पानी में बनाकर खड़ा कर दें तो वर्षा से डरेंगे क्योंकि उसके रंग-रोगन के बह जाने का डर है। लेकिन प्रस्तर की, संगमरमर की प्रतिमाएं तो वर्षा में खड़ी रहती हैं। उनका कुछ बहता नहीं। वर्षा आती है तो और उनकी धूल बह जाती है और प्रतिमाएं और स्वच्छ होकर निखर जाती हैं।

मेरी दृष्टि में महापुरुष पर जब भी आलोचना की वर्षा होती है तो महापुरुष और निखर के प्रगट होता है, लेकिन छोटे लोग जरूर बह जाते हैं। उनके पास ऐसा कुछ नहीं है जो आलोचना की वर्षा में टिक सकें। गांधी को तो कोई भय नहीं हो सकता है आलोचना से, लेकिन गांधीवादी को बहुत भय है। गांधीवादी छोटा आदमी है, जो बड़े आदमी की आड़ में बड़े होने की कोशिश में लगा है। उसे डर है। वह अपने ही ढंग से सोचता है। उसे यह भय है कि जैसा छोटा मैं आदमी हूं, गांधी की आलोचना गांधी को कोई नुकसान न पहुंचा दे।

मेरी दृष्टि में गांधी इतने बड़े व्यक्ति हैं कि आलोचना से उनका कोई भी अहित होने का नहीं है। बल्कि, उनकी स्पष्ट आलोचना गांधी के रूप को हमारी आंखों के सामने प्रगट करने में ज्यादा सफल हो सकेगी। उनकी कोई प्रशंसा हमारे प्राणों तक उन्हें नहीं पहुंचायेगी, लेकिन उनका सृजनात्मक विचार हमारे प्राणों में उन्हें पुनरुज्जीवित कर सकता है। और मेरी दृष्टि में, कोई महापुरुष ऐसा नहीं होता कि उससे भूलें न होती हों। हां, महापुरुष छोटी भूलें नहीं करते हैं, महापुरुष बड़ी भूलें करते हैं अपने अनुपात से। वे जितने बड़े होते हैं, उतने ही बड़े काम करते हैं—चाहे भूल करें और चाहे ठीक करें। महापुरुष छोटी भूलें नहीं करते, छोटे काम ही नहीं करते हैं। और इसलिए महापुरुष की भूल को देख पाना बड़ा कठिन हो जाता है क्योंकि हम उतनी आंख खोलें, उतना विचार करें, तभी हमें दिखायी पड़ सकता है। लेकिन अगर हम न देखें तो हम उन भूलों को बार-बार दोहराये जा सकते हैं।

उन्नीस सौ बीस के बाद गांधी के सामने एक सवाल था। सवाल था कि देश एक कैसे हो, एकता कैसे हो। और गांधी ने देश की एकता के लिए एक नारा दिया—हिन्दू-मुस्लिम एकता का हिन्दू-मुस्लिम यूनिटी का। बड़ी भूल हो गयी। हिन्दुस्तान में ईसाई भी रहते हैं, जैन भी रहते हैं, बौद्ध भी रहते हैं, पारसी भी रहते हैं, आदिवासी भी रहते हैं, सिक्ख भी रहते हैं, लेकिन गांधी ने नारा दिया—हिन्दू-मुस्लिम

एकता, हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई । गांधी से बुनियादी भूल हो गयी । जैसे ही गांधी ने यह कहा, हिन्दू-मुस्लिम एकता, वैसे मुसलमान और हिन्दू को अतिरिक्त महत्व मिल गया जो खतरनाक सिद्ध हुआ । और मुसलमान को भी यह दिखायी पड़ गया कि मेरी एकता ही असली बात है । अगर मैं एक होने को राजी नहीं तो हिन्दुस्तान कुछ भी नहीं कर सकता है । अगर गांधी ने कहा होता भारतीय एकता··· हिन्दू-मुस्लिम एकता बहुत दुर्भाग्यपूर्ण चुनाव था । वह शब्द बहुत खतरनाक था । उसी शब्द के बीज ने पाकिस्तान का रूप लिया । वही शब्द विकसित हुआ और पाकिस्तान तक पहुंच गया । मुसलमान को सेल्फ-कांसेस कर दिया गांधी ने । हिन्दू को भी सेल्फ कांसेस कर दिया । गांधी ने दोनों को यह चेतना दे दी कि हमीं सब कुछ हैं, हिन्दू-मुसलमान ही भारत है । हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई मुसलमान और हिन्दू को लगा कि हम ही हैं, हमारे ऊपर सब कुछ निर्भर है । और मुसलमान को यह चेतना स्पष्ट यह अनुभव करा गयी कि अगर वह साथ खड़ा नहीं होता है तो भारत की एकता नहीं बन सकती है । आखिर इसी समझौते पर हिन्दुस्तान की आत्मा विभाजित हुई । हिन्दुस्तान दो टुकड़ों में टूटा । शायद हजारों वर्ष लग जायेंगे हिन्दुस्तान को अपने शरीर को फिर एक बनाने में—शायद न भी बना पाये ।

लेकिन एक छोटी-सी भूल—शब्दों का चुनाव । लेकिन गांधी से भूल हुई तो पीछे कारण था । गांधी यद्यपि मानते थे कि सारे धर्म समान हैं, सारे धर्म बराबर मूल्य के हैं, लेकिन फिर भी गांधी के मन से यह भ्रम कभी नहीं मिटा कि मैं हिन्दू हूं । वह यह हमेशा कहते रहे कि मैं हिन्दू हूं । काश, गांधी इतनी हिम्मत और कर लेते और कह सकते कि मैं सिर्फ मनुष्य हूं; न मैं हिन्दू हूं, न मैं मुसलमान हूं, तो हिन्दुस्तान का विभाजन कभी भी नहीं हो सकता था । लेकिन गांधी का यह ख्याल कि मैं हिन्दू हूं, जिन्ना को मुसलमान, और मुसलमान, और मुसलमान बनाता चला गया । पता है आपको, गांधी की मृत्यु पर जिन्ना ने जो ट्रिब्यूट दी, जो संवेदना प्रगट की, उसमें क्या कहा ? कहा, गांधी वाज ए ग्रेट हिन्दू लीडर । गांधी एक बड़े हिन्दू नेता थे । लेकिन हिन्दू नेता कहना जिन्ना नहीं भूला ।

गांधी भी मरने के पहले वसीयत किये कि मेरी लाश को न बचाया जाये, क्योंकि लाश को बचाना ईसाइयत का रास्ता है । मैं हिन्दू ढंग से संस्कार चाहता हूं । मरने के बाद भी शरीर को हिन्दू ढंग का संस्कार चाहते हैं । गांधी के मन से हिन्दू का भाव नहीं जा सका । गांधी अद्‌भुत व्यक्ति थे, लेकिन कहीं एक हिन्दू की पकड़ एक कोने पर बैठी रह गयी और वह कोने की पकड़ सारे हिन्दुस्तान के लिए घातक सिद्ध हुई । कोई छोटा-मोटा आदमी, मेरे जैसा कोई व्यक्ति अगर अपने को हिन्दू और मुसलमान मानता रहता तो कोई नुकसान नहीं हो सकता था । गांधी जैसे व्यक्ति, जो कि सारे मुल्क की आत्मा के प्रतिनिधि थे, उनको यह ख्याल होना कि मैं हिन्दू हूं, खतरनाक है । बहुत मंहगा पड़ गया । लेकिन इसे

सोचना जरूरी है ताकि यह भूल आगे बार-बार न दोहरायी जाये । यह भूल बार-बार दोहरायी जा सकती है ।

हिन्दुस्तान को ऐसे नेतृत्व की जरूरत है जो न हिन्दू हो, न मुसलमान हो, न जैन हो, न ईसाई हो । हिन्दुस्तान को एक ऐसे नेतृत्व की जरूरत है जिसका हिन्दी से आग्रह न हो, तमिल पर आग्रह न हो, बंगाली पर आग्रह न हो । नहीं तो फिर यह भूल दोहरेगी, यह हिन्दुस्तान और दस टुकड़ों में टूट सकता है । जैसे कल हिन्दू-मुसलमान ने तोड़ दिया था, आने वाले दस पच्चीस वर्षों में हिन्दी और गैर-हिन्दी टूट सकते हैं । लेकिन गांधी की भूल पर विचार कर लेने से यह ख्याल में आ सकता है कि यह भूल फिर न दोहरा दी जाये ।

गांधी ने कहा, हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई । फिर हम आजाद हुए, और हमने एक नारा लगाया, हिन्दी-चीनी भाई-भाई । हम फिर वही भूल दोहरा रहे हैं । एशिया में बर्मी नहीं रहते ? जापानी नहीं रहते ? कोरियन नहीं रहते ? एशिया में सीलोनी नहीं रहते ? एशिया में थाई नहीं रहते ? एशिया में सिर्फ हिन्दी और चीनी रहते हैं ? वही बेवकूफी, जो हिन्दू-मुसलमान के साथ हुई थी, वही बेवकूफी हमने फिर दोहरायी—हिन्दी चीनी भाई-भाई । चीन समझ गया कि जैसे ये मुसलमान से डरते थे, अब हमसे डरना इन्होंने शुरू कर दिया । यह समझने में देर न थी ।

हम जिससे डरते हैं उसी को भाई-भाई कहते हैं । जिससे हम नहीं डरते उसकी हम बात ही नहीं करते । यह हमारे फियर का, हमारे भय का सबूत हो गया है । हम जिससे डरेंगे उसी को कहेंगे, हम आप तो भाई-भाई हैं । लेकिन जिसको हम भाई कहते हैं, वह समझ जाता है कि भाई हम किसको कहते हैं । गलती जो मुसलमान के साथ हुई थी वही गलती चीन के साथ हुई । एशिया में हमने दो दुश्मन खड़े किये—एक पाकिस्तान और एक चीन; और दोनों को हमने भाई-भाई कहा था । यह भाई-भाई की फिलॉसफी में कहीं कोई बुनियादी भूल है । और इस फिलॉसफी के लिए गांधी जिम्मेवार हैं ।

तो मैंने पत्रकारों को कहा था कि हमें सोचना चाहिए । गांधी इतने बड़े व्यक्ति हैं कि उनकी छोटी-सी भूल भी बहुत बड़ी भूल सिद्ध हो सकती है । हजारों साल के लिए प्रभावित कर सकती है । हिन्दुस्तान को एक नेतृत्व चाहिए अब, जो न हिन्दू हो, न मुसलमान हो, न जैन हो, न जो बंगाली हो, न मद्रासी हो, न उत्तर प्रदेशीय हो । हिन्दुस्तान को नेतृत्व चाहिए जो हिन्दीभाषी न हो, जो तमिलभाषी न हो, जो यह दावा न करता हो कि हिन्दी ही, जो यह दावा न करता हो कि अंग्रेजी ही—जो दावा पूरे मुल्क का विचार करके करता हो, किसी एक हिस्से का विचार न करता हो । क्योंकि एक हिस्से के विचार ने हिन्दुस्तान के दो टुकड़े करवाये । अब और इस तरह के विचार हिन्दुस्तान को दो टुकड़ों में तोड़ डाल सकते हैं, और हिन्दुस्तान करीब-करीब टूट गया है । मुश्किल है इस जोड़ को

बिठाना । इस जोड़ को बिठाना बहुत मुश्किल साबित होगा । भाषावार प्रान्त तोड़ दिये । पूरे हिन्दुस्तान की हमने कोई फिक्र न की, एक-एक भाषावार प्रान्त की फिक्र की । अब मंहगा हो गया मामला । अब एक-एक भाषावार प्रान्त एक-एक पाकिस्तान सिद्ध हो सकता है ।

जो हो गया, वह सवाल नहीं है, आगे फिर यह पुनरुक्ति रोज-रोज होती चली जायेगी । पीछे लौटकर देखना जरूरी है । गांधी के पचास वर्षों की कहानी इस हिन्दुस्तान के लिए हजारों वर्ष तक मूल्यवान रहेगी । उस पचास वर्ष में हमें फिर गौर कर करके देख लेना जरूरी है कि हमने क्या भूलें दोहरायीं, हमने कौन-सी गलतियां कीं जो कि आगे हमसे न हों । फिर यह भी जानना जरूरी है कि कोई कितना ही बड़ा महापुरुष हो, दुनिया में कोई पूर्ण पुरुष न हुआ है, न हो सकता है । सच तो यह है कि जो पूर्ण हो जाते हैं वे मोक्ष चले जाते हैं, शायद वे दुनिया में वापस नहीं आते हैं । दुनिया में जो आता है वह अपूर्ण होता है, इसीलिए आता है । अपूर्ण पुरुष—महान से महान व्यक्ति भी अपूर्ण ही होता है । उसकी अपूर्णता पर ध्यान न हो, और हम पूरे मनुष्य को स्वीकार कर लें तो हम बहुत मंहगाइयों में भी पड़ सकते हैं । बहुत मंहगा सौदा हो सकता है ।

गांधी की कुछ अपने फैक्ट हैं, गांधी के कुछ अपने रुझान थे । सभी महापुरुषों के होते हैं । मार्क्स जितनी देर किताब लिखता है उतनी देर मुंह में सिगरेट पीता रहता है । लेकिन मार्क्स कितना ही बड़ा आदमी हो, उसका सिगरेट पीना बड़ा नहीं हो जाता है । और किसी को मार्क्सवादी होना हो तो चौबीस घण्टे सिगरेट पीने की जरूरत नहीं है । लेकिन कम्युनिस्ट सिगरेट पीते हैं, शायद इसी ख्याल से पीते हों कि मार्क्स बहुत सिगरेट पीता था । कहते हैं, मार्क्स ने अपनी 'कैपिटल' नाम की किताब लिखी तो जितनी सिगरेट पी डाली, कैपिटल के बिकने पर उतने सिगरेट के दाम भी नहीं आये । लेकिन सिगरेट पीना मार्क्स की अपनी व्यक्तिगत रुझान हो सकती है । इसका कोई अनुकरण करने की जरूरत नहीं है ।

गांधी के बहुत से व्यक्तिगत रुझान थे जो गांधीवादी फिलॉसफी का हिस्सा बन गया है । जैसे, गांधी को हाथ से काती गयी चीजों से बड़ा प्रेम था । इसमें कोई हर्जा नहीं है । किसी आदमी को हो सकता है । किसी आदमी को हाथ से काती गयी चीज पसन्द हो सकती है, इसमें कोई भी हर्जा नहीं है । लेकिन आने वाली दुनिया में चर्खे और तकली को बहुत मूल्य देना आत्मघाती है, सुइसाइडल है । मुल्क मर जायेगा । दुनिया विकसित हो रही है विराट से विराट टेक्नोलॉजी की तरफ, तकनीक की तरफ । और हम जो बातें कर रहे हैं वह पांच हजार साल पिछले जमाने की बातें हैं । पांच हजार साल पहले तकली और चरखा ईजाद हुए होंगे । तब वे सबसे बड़े यंत्र थे, अब वे सबसे बड़े यंत्र नहीं हैं । और एक आदमी अगर अपने साल भर का कपड़ा भी बनाना चाहे तो कम से कम दिन में तीन-

चार घण्टे चरखा कातना पड़ेगा । तब कहीं अपने लायक पूरा कपड़ा एक आदमी तैयार कर सकता है ।

एक आदमी की जिन्दगी का रोज चार घण्टे का हिस्सा उसके कपड़े पर खर्च करवा देना निहायत अन्याय है । क्योंकि हमें शायद पता नहीं, अगर एक आदमी को साठ साल जीना है तो बीस साल तो सोने में गुजर जाते हैं । रोज आठ घंटे आदमी सो जाता है । बीस साल तो नींद में चले गये । खाने में, कमाने में और बीस साल चले जाते हैं । बीस साल बचते हैं आदमी के पास मुश्किल से । उसमें कुछ बचपन का हिस्सा निकल जाता है, कुछ बुढ़ापे का हिस्सा निकल जाता है । अगर हम एक आदमी के पास देखें तो मुश्किल से जीने के लिए जिसको हम कहें—ठीक से जीने के लिए पूर्ण सुविधा का समय, पूरे जीवन में साठ साल के, पांच साल से ज्यादा नहीं होता है एक आदमी के पास । इस पांच साल के लिए उससे कहो कि चप्पल भी तुम अपनी बनाओ, कपड़ा भी तुम अपना बनाओ, खाना भी तुम अपना बनाओ, गेहूं भी अपना पैदा कर लो, स्वावलम्बी हो जाओ—आदमी की हत्या करने के सुझाव देना है ।

मुझे यह स्वीकार्य नहीं मालूम होता । मेरी समझ यह है कि आज तक जगत् में संस्कृति, धर्म, काव्य, चित्र, म्यूजिक, संगीत जो भी पैदा हुआ है वह उन लोगों से पैदा हुआ है जो लेजर में थे, जो विश्राम में थे । जिसका चौबीस घण्टे काम में व्यतीत हो जाता है, उससे न संगीत पैदा होता है, न काव्य पैदा होता है, न संस्कृति पैदा होती है, न धर्म पैदा होता है । अब तक जगत् में जो भी श्रेष्ठतम विकास हुआ है मनुष्य-संस्कृति का, वह विश्राम के क्षणों में हुआ है । वे ही कौमें और वे ही युग संस्कृति को जन्म देते हैं जो विश्राम में होते हैं । जैसे—एथेंस ने सुकरात को, प्लेटो को, अरस्तू को जन्म दिया, क्योंकि एथेंस बहुत सम्पन्न था और सारा काम गुलाम कर रहे थे । ऊपर का वर्ग कोई भी काम नहीं कर रहा है । इसलिए अरस्तू पैदा हुआ, सुकरात पैदा हुआ, प्लेटो पैदा हुआ । हिन्दुस्तान ने बुद्ध, महावीर जैसे लोग पैदा किये, कृष्ण और राम जैसे, ये सब लेजरली क्लास के लोग थे । ये सब अभिजात्य वर्ग के लोग थे जिनके ऊपर कोई काम नहीं था ।

हिन्दुस्तान के इतिहास को अगर हम उठाकर देखें तो सारे ग्रन्थ ब्राह्मणों ने लिखे जिनके पास कोई काम नहीं था । हिन्दुस्तान के सारे धर्मों को जन्म ब्राह्मणों ने दिया, उनके पास कोई काम नहीं था । हमने काम से उन्हें मुक्त कर दिया था । हमने कहा था, तुम्हें कोई काम नहीं है, तुम पढ़ो, लिखो, सोचो, विचारो । शूद्रों ने तो एक वेद नहीं लिखा, एक उपनिषद् नहीं लिखा । शूद्र कैसे लिख सकते थे ? पूरे हिन्दुस्तान के इतिहास में एक बुद्धिमान शूद्र पैदा हुआ, वह भी अंग्रेजों की बदौलत—डा० अम्बेडकर । इसके पहले कोई शूद्र पैदा नहीं हुआ । नहीं हो सकता । कोई कारण नहीं है । उसको चौबीस घण्टे हमने काम में उलझा दिया है ।

अगर स्वावलम्बन की बात को बहुत ज्यादा खींचा जाये तो एक-एक आदमी की जिन्दगी सुबह से शाम तक फिजूल कामों में नष्ट हो जायेगी और उसके व्यक्तित्व में ऊंचे उठने के कोई उपाय नहीं रह जाते।

अगर व्यक्ति की चेतना को ऊपर उठाना है तो समाज में अधिकतम विश्राम हो सके, इसकी चिन्ता करनी चाहिए। वह कैसे होगा? विश्राम होगा, मनुष्य का श्रम यन्त्रों के हाथ में चला जाये। जब तक गुलाम थे दुनिया में तो गुलाम श्रम करते थे, मालिक विश्राम करता था। वह अन्यायपूर्ण था क्योंकि गुलामों की आत्मा को विकसित होने का कोई मौका नहीं मिलता था। किसी आदमी को यह हक नहीं है कि किसी आदमी की आत्मा की कीमत पर अपनी आत्मा को विकसित करे। यह अन्याय है। यह सीधा पाप है। लेकिन विज्ञान ने एक बड़ा भारी उपकार किया है मनुष्य के ऊपर, आदमी का काम यन्त्र कर सकता है। आदमी को काम में गुलाम बनाने की अब कोई जरूरत नहीं रह गयी। नयी टेक्नोलॉजी सारा काम कर लेगी। आने वाले पचास वर्षों में अमरीका और रूस में किसी आदमी के ऊपर किसी तरह का अनिवार्य श्रम नहीं रह जायेगा। जिस दिन पूरा समाज श्रम से मुक्त हो सकेगा उस दिन हम कितनी बड़ी संस्कृति को, कितने महान धर्म को, कितने बड़े काव्य को, कितने बड़े साहित्य को जन्म दे सकेंगे इसकी आज कल्पना करनी भी मुश्किल है।

गांधी की स्वावलम्बन की बात अवैज्ञानिक है। और यह भी ध्यान रहे कि आदमी जितना स्वावलम्बी होता है उतना ही समाज दरिद्र होता है। आदमी जितना परस्पर आश्रित होता है, समाज उतना समृद्ध होता है। आप चश्मा पहने हुए हैं, वह चश्मा कलकत्ते में बना होगा। आप जूते पहने हुए हैं, वह जूता कानपुर में बना होगा। आप कोट पहने हुए हैं, वह कोट बम्बई से कपड़ा तैयार हुआ होगा। आपकी अगर सारी चीजें उठाकर देखी जायें तो आप पायेंगे कि पूरे मुल्क का उसमें हाथ है, पूरी दुनिया का भी हो सकता है। आपकी चीजें सारी दुनिया से आयी हैं। आप सब पर निर्भर हैं, सब आप पर निर्भर हैं। इसी से दुनिया में एक यूनिटी खड़ी होती है। जितना स्वावलम्बी व्यक्ति होता है, उतना ही समाज से असम्बन्धित हो जाता है।

हिन्दुस्तान इतने दिन तक राष्ट्र नहीं बन सका, नेशन नहीं बन सका, उसका बुनियादी कारण मेरी दृष्टि में यही है कि हिन्दुस्तान पांच हजार वर्षों से एक-एक व्यक्ति करीब-करीब स्वावलम्बी होने की चेष्टा में जी रहा है। एक किसान अपनी खेतीबारी से पैदा कर लेता है। एक गांव, अपना लोहार भी है, उसका अपना चमार भी है। गांव को दूसरे गांव पर निर्भर होने की कोई भी जरूरत नहीं है। हिन्दुस्तान के सारे गांव स्वावलम्बी थे, इसलिए हिन्दुस्तान राष्ट्र नहीं बन सका क्योंकि जब हम स्वावलम्बी हैं। और बगल के गांव पर हमला हुआ तो

हमारा गांव सोचता है, हमें क्या प्रयोजन है! कोई दूसरा लड़ रहा है, लड़ेगा।

अगर हिन्दुस्तान एक-दूसरे पर पूरी तरह निर्भर हो जाये तो ही हिन्दुस्तान एक राष्ट्र बनेगा। और जिस दिन दुनिया पूरी निर्भर हो जायेगी। एक-दूसरे पर, दुनिया में युद्ध बन्द हो जायेंगे। अहिंसा से युद्ध बन्द होने वाले नहीं हैं, जिस दिन टेकनोलॉजी सारी दुनिया को एक-दूसरे पर निर्भर कर देगी उस दिन युद्ध बन्द हो जायेंगे। उसके बाद युद्ध की कोई सम्भावना नहीं।

आज रूस अमरीका से युद्ध करने में असमर्थ होता जा रहा है। पता है आपको किसलिए? इसलिए नहीं कि रूस के मन में कोई शान्ति की बड़ी कामना पैदा हो गयी, बल्कि इसलिए कि आज चार वर्षों से रूस को गेहूं के लिए अमरीका और कनाडा के ऊपर निर्भर रहना पड़ रहा है और आने वाले दस वर्षों में उसको अमरीका से गेहूं लेना पड़ेगा, इसके बिना कोई रास्ता नहीं है। और जिनसे गेहूं लेना है, और जिनसे भोजन लेना है उनसे युद्ध नहीं किया जा सकता।

मेरा कल्पना में यह दुनिया एक हो सकती है अगर दुनिया में तीव्रतम केन्द्रीकरण हो, सेन्ट्रलाइजेशन हो। इतना केन्द्रीकरण होना चाहिए कि गांव एक ही चीज पैदा करे। सारे गांव को हजार तरह की चीजें पैदा करने की जरूरत नहीं है। अगर बम्बई में कपड़ा अच्छा बन सकता है तो सारे हिन्दुस्तान में अलग-अलग मिलें बनाने की कोई जरूरत नहीं है। यह साइन्टिफिक होगा कि बम्बई सिर्फ कपड़े पैदा करे, और कुछ पैदा न करे। क्योंकि तब सौ वर्षों में बम्बई में वह कुशलता पैदा हो जायेगी, बच्चे जन्म के साथ कपड़ा पैदा करने में समर्थ पैदा होंगे। बम्बई का एक-एक आदमी कुशल हो जायेगा। कपड़े के सारे एक्सपर्ट और विशेषज्ञ वहां इकट्ठे हो जायेंगे। सारी नयी खोज करने वाले, रिसर्च करने वाले लोग वहां इकट्ठे हो जायेंगे। सारे हिन्दुस्तान के कपड़े के जानकार वहां इकट्ठे होंगे। हम श्रेष्ठतम कपड़ा पैदा कर सकेंगे और कम से कम श्रम में पैदा कर सकेंगे। और सारे मुल्क को दे सकेंगे। जो गांव जूते बनाता है, वह सिर्फ जूते बनाये। एक-एक गांव में अलग-अलग जूते बनाना नासमझी की बात है। सच तो यह है कि अगर सेन्ट्रलाइजेशन ठीक से हो तो दुनिया की दरिद्रता मिट सकती है और दुनिया का बहुत-सा समय जो व्यर्थ नष्ट होता है, वह मिट सकता है।

एक-एक घर में चूल्हा जलता है, यह बिल्कुल पागलपन की बात है। अगर वैज्ञानिक दुनिया होगी तो एक मुहल्ले का एक किचन होना चाहिए जहां कि दस औरतें काम करेंगी, अभी हजार औरतें रोज दिन भर काम कर रही हैं, समय पूरा व्यर्थ अपव्यय हो रहा है। एक मुहल्ले का एक किचन होना चाहिए जहां दस औरतें काम करेंगी और नौ सौ औरतें मुक्त हो जायेंगी, इन नौ सौ औरतों से दूसरे काम लिए जा सकते हैं। इनसे शिक्षा का काम लिया सकता है, इनसे बच्चे पालने की व्यवस्था की जा सकती है, ये समाज का हजार काम कर सकती हैं।

इस वक्त आधा हिन्दुस्तान सिर्फ रोटी बना रहा है, कुछ भी नहीं कर रहा है। आधा मुल्क सिर्फ रोटी बनाने में व्यतीत हो रहा है। थोड़ी हैरानी की बात मालूम होती है। हमारे सोचने का अवैज्ञानिक ढंग है यह। आधा हिन्दुस्तान सिर्फ रोटी बनायेगा ? आधा हिन्दुस्तान कुछ और नहीं करेगा ? तो यह देश कभी समृद्ध नहीं हो सकता।

इस देश को समृद्ध बनाना हो तो··· यह मामला वैसा ही है जैसे कि पुरानी रईसों के घर थे। रईसों के लड़कों को एक-एक मास्टर लगा दिया जाता था। एक लड़का है, एक मास्टर पढ़ा रहा है। अवैज्ञानिक थी यह बात। इसमें बहुत लोग शिक्षित नहीं हो सकते थे। आज हम एक शिक्षक हैं और तीस लड़के पढ़ रहे हैं। हमको समझ में आता है। यह केन्द्रित व्यवस्था हो गयी। एक रईस के घर में एक ट्यूटर पढ़ाता है। एक मास्टर है, एक बच्चा है। ज्यादा बड़ा रईस है तो चार मास्टर हैं और एक बच्चा है। लेकिन हम समझ गये कि इस भांति तो दुनिया को शिक्षित नहीं किया जा सकता। तीस बच्चे और एक शिक्षक होना चाहिए। हमने सेन्ट्रलाइज कर दी शिक्षा को। स्कूल में एक क्लास खोल दी। अब घर-घर में क्लास बनाने की जरूरत नहीं है ! मुहल्ले में एक स्कूल है, उस स्कूल में मुहल्ले के सारे बच्चे पढ़ते हैं और चार शिक्षक, आठ शिक्षक उस काम को निपटा देते हैं। अगर एक-एक बच्चे को एक-एक शिक्षक निपटाने जाये तो ठीक है, हो गया मुल्क का काम। शिक्षा ही पूरी हो जाये, वही बहुत मुश्किल हो जायेगा।

आज हम दूसरी चीजों में उतने ही अवैज्ञानिक हैं। एक-एक घर में चौका यह सबूत देता है कि हमारी बुद्धि में गणित की समझ बिल्कुल नहीं है। अगर समझदारी होगी तो ठीक है, दस-पच्चीस घरों के बीच में एक चौका होना चाहिए। दस-पांच महिलाएं उसमें काम करेंगी। जो श्रेष्ठतम भोजन बना सकती हैं वे बनायें। अब हजार औरतें बनाती हैं जिनमें नौ सौ को भोजन बनाने की कोई अक्ल और कोई तमीज नहीं है। उनकी कोई जरूरत नहीं है। वह दूसरा काम शायद बेहतर कर सकें। उनको वह काम मिलना चाहिए। गांधीजी के स्वावलम्बन के विचार से मैं बिल्कुल भी सहमत नहीं हूं, बिल्कुल गैर साइन्टिफिक है। परावलम्बन चाहिए। जितने हम परावलम्बी होते हैं, समाज में उतनी एकता बढ़ती है।

शायद आपको पता नहीं, हिन्दुस्तान में अगर हिन्दू और मुसलमानों के बीच शादी-विवाह होता, तो पाकिस्तान कभी भी नहीं बंटता। क्योंकि हम एक-दूसरे पर निर्भर हो जाते। निर्भर होने पर दंगा होना मुश्किल हो जाता। चीन में कभी कोई धार्मिक दंगे नहीं हुए आज तक। उसका कुल एक कारण है कि एक घर में तीन चार धर्मों के लोग हैं। दंगा कैसे हो सकता है ? पत्नी मुसलमान है, पति बौद्ध है, बाप कंफ्यूशियन है, मां लाओत्से को मानती है। चारों चार अलग

मन्दिरों में जाते हैं। झगड़ा कैसे होगा ? चारों मन्दिरों में झगड़ा होगा तो घर में छुरेबाजी करनी पड़ेगी। चीन में कोई धार्मिक झगड़ा नहीं हो सका तीन हजार वर्ष के इतिहास में। उसका कुल एक कारण है कि चीन के धर्म परस्पर निर्भर हैं।

हिन्दुस्तान में झगड़ा हो सका। झगड़ा इसलिए हो सका कि हिन्दू बिल्कुल अलग हैं, मुसलमान बिल्कुल अलग हैं। कोई उनसे नाता नहीं है, कोई गहरा सम्बन्ध नहीं है। अगर हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुसलमानों के दंगे और बेवकूफियां मिटानी हैं तो यह स्वावलम्बन बन्द करना पड़ेगा कि हम हिन्दू के भीतर ही शादी करेंगे, कि हम मुसलमान के भीतर ही शादी करेंगे। आने वाले बच्चों को ख्याल रखना चाहिए कि हिन्दुस्तान की एकता तुम्हारे विवाह पर निर्भर करेगी। अगर तुममें थोड़ी भी समझ है तो भूलकर हिन्दू कभी हिन्दू घर में शादी मत करना, जैन कभी जैन घर में शादी मत करना। यह हिन्दुस्तान मर जायेगा अगर तुमने—जैन ने जैन के घर में शादी की और मुसलमान मुसलमान के घर में शादी की। हिन्दुस्तान नहीं बच सकता आगे। क्योंकि जैसे ही हम एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं वैसे ही एक-दूसरे के शत्रु नहीं रह जाते। निर्भरता, एक-दूसरे से सम्बन्ध, गहरे सम्बन्ध हमारे भीतर दुश्मनी और वैमनस्य को समाप्त कर देते हैं। हिन्दुस्तान में गांधीजी ने जो बात कही वह हमारी हजारों साल की परम्परा से अनुमोदित है। हजारों साल तक हमारा यह ख्याल रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वावलम्बी होना चाहिए, अपना काम खुद कर लेना चाहिए, जहां तक बने किसी पर निर्भर नहीं होना चाहिए। ये सारी की सारी बातें अहंकारपूर्ण हैं, इगोइज्म से भरी हुई हैं।

क्यों निर्भर नहीं होना चाहिए किसी पर ? दूसरा आदमी दुश्मन है ? और निर्भरता तो म्युचुअल है, पारस्परिक है। जब मैं दूसरे पर निर्भर होता हूं, दूसरा मुझ पर निर्भर होता है। जब हम एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं तो जो काम हजार आदमी करते हैं वह सौ आदमी कर लेते हैं। नौ सौ आदमियों का श्रम मुक्त हो जाता है। अब आप थोड़े सोचिये। घर में साबुन बनायें, टुथ पेस्ट भी बनायें, जूता भी सियें, कपड़े भी बनायें तो आप दरिद्रतम आदमी होंगे दुनिया के। रद्दी से रद्दी कपड़े पहनने पड़ेंगे, खराब से खराब जूते पहनने पड़ेंगे। और जाकर आप देख सकते हैं साबुन खादी भण्डार में, कि कैसी साबुन आपको उपयोग करना पड़ेगी। आपको पता नहीं कि लक्स टायलेट आप खरीदते हैं, उतने बड़े पैमाने पर पैदा होती है लक्स कि एक लक्स टायलेट करीब-करीब दो पैसे में तैयार हो जाती है। आप लक्स टायलेट घर में बनायें तो अगर बाजार में एक रुपये में आपको मिलती है तो आप दो रुपये में भी घर नहीं बना सकते। उतनी सुविधा, उतनी व्यवस्था, उतने बड़े पैमाने पर नहीं जुटायी जा सकती। स्वावलम्बन की बात फिजूल है, चाहे कपड़े का सम्बन्ध हो चाहे साबुन का सम्बन्ध हो, चाहे

भोजन का सम्बन्ध हो।

समाज है परस्पर निर्भरता। समाज का अर्थ ही क्या है? समाज की कांसेप्ट का मतलब क्या है? जिस समाज में सारे लोग स्वावलम्बी हैं वह समाज है ही नहीं। समाज का मतलब क्या होता है? समाज का मतलब होता है, परस्पर निर्भर लोग, परस्पर निर्भरता से बंधे हुए लोग। अगर गांधी के स्वावलम्बन की बात मानी जाती है तो हिन्दुस्तान में समाज विकसित ही नहीं हो सकेगा। और हिन्दुस्तान में आज तक समाज विकसित नहीं हो सका। नहीं होने का कारण था कि हिन्दुस्तान के छोटे-छोटे यूनिट इण्डिपेंडेंट है। एक गांव था, उसे कोई फिक्र नहीं कि दिल्ली किसके हाथ में है। मुसलमान के हाथ में है कि हिन्दू के हाथ में है, मुगल हैं कि तुर्क हैं कि कौन है, उससे कोई मतलब नहीं। गांव को पता ही नहीं चलता था, हुकूमतें बदल जाती थीं दिल्ली की। क्योंकि गांव का कोई सम्बन्ध दिल्ली से नहीं था। दिल्ली में हुकूमत बदल गयी, बीस साल बाद गांव में पता चलेगा कि मालूम होता है कि दूसरा राजा आ गया।

लाओत्से ने लिखा है—तीन हजार साल पहले चीन के एक गांव का किस्सा लिखा है—कि मेरे पिता और मेरे बुजुर्ग यह कहते थे कि हमारे गांव के पास एक नदी बहती है, उसके उस तरफ कोई गांव है। शाम को उस गांव का धुआं दिखायी पड़ता है। रात में उसके कुत्ते भोंकते हुए सुनायी पड़ते हैं लेकिन हमसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं, इसलिए न कोई नदी के उस पार गया, न कभी कोई नदी के इस पार आया। सुनायी पड़ता है कि उस तरफ लोग जरूर रहते होंगे, क्योंकि रात में कुत्ते भोंकते हैं, कभी-कभी सांझ को धुआं दिखायी पड़ता है। होंगे लोग वहां, लेकिन कोई सम्बन्ध नहीं है। क्या जरूरत है वहां जाने की?

हिन्दुस्तान इसीलिए हिन्दुस्तान के बाहर नहीं गया। हिन्दुस्तान का हिन्दुस्तान के बाहर न जाना बहुत मंहगा पड़ गया। हम एक कुएं में बन्द लोग हो गये। हजारों साल तक हमें पता ही न था कि बाहर एक बड़ी दुनिया भी है। अब फिर अगर हमें स्वावलम्बन की बात कही जाती है तो हमने जो भूल हजारों साल तक दोहरायी है, हम फिर दोहरा लेंगे।

आपको पता है, हिन्दुस्तान ने आज से कोई दस हजार साल पहले गाड़ी का चाक खोज लिया होगा। गाड़ी की चाक के खोज के बाद हवाई जहाज बना लेने में कोई वैज्ञानिक तकनीकी उपद्रव नहीं है। चाक ही सब कुछ है। एक दफा हमने घूमता हुआ चाक खोज लिया तो हम फिर बड़ी से बड़ी मशीन खोज सकते हैं क्योंकि आधारभूत नियम वह चाक है। लेकिन हम गाड़ी पर ही चलते रहे। हमने कुछ और नहीं खोजा? दूसरे मुल्क अंतरिक्ष यान बना लिए, और हम? हमने क्यों नहीं खोजा? हमने कहा, जरूरत क्या है? अपनी जितनी बड़ी चादर है उसके भीतर ही पैर सिकोड़कर सोये रहना चाहिए। चादर के बाहर पांव कभी नहीं निकालना चाहिए। बैलगाड़ी है तो बैलगाड़ी से चलो, तकली है तो तकली चलाओ लेकिन फैलाओ मत, क्योंकि फैलाने में झंझट बढ़ सकती है, जटिलता बढ़ती है। क्या जरूरत है? जरूरतें कम रखो।

हिन्दुस्तान की पूरी फिलॉसफी एक शब्द में कही जा सकती है—'जरूरतें कम रखो।' चादर के भीतर पैर रखो। इस फिलॉसफी ने हिन्दुस्तान को दरिद्र बनाया, दीन बनाया, दुखी बनाया, दास बनाया। क्योंकि जब हम चादर के बाहर पैर न फैलायेंगे, और पैरों को सर्दी और गर्मी न लगेगी तो चादर को बड़ा करने का सवाल ही कब उठेगा? चादर को बड़ा करने का सवाल तब उठता है जब जरूरत पैदा हो जाती है। जरूरत जन्म बनती है आविष्कार की। हम कहते हैं, जरूरतें कम रखो, इसलिए आविष्कार करने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। जरूरत जब पैदा होती है तो आविष्कार होता है।

हिन्दुस्तान ने कोई आविष्कार नहीं किया। उसका कारण, हिन्दुस्तान के पास प्रतिभा की कमी है? हिन्दुस्तान के पास इतने प्रतिभाशाली लोग पैदा हुए—बुद्ध, महावीर, कणादि, गौतम। क्या मुकाबला है दुनिया में इनका? शंकर, नागार्जुन—कौन इनकी चोटी का विचारक है दुनिया में? लेकिन एक आइन्स्टीन पैदा नहीं हुआ। क्यों? क्योंकि हमारी बुनियादी धारणा यह है कि आवश्यकताएं कम, नीड कम होनी चाहिए तो ही आदमी सुखी रह सकता है। और देख रहे हैं हम भलीभांति कि पांच हजार साल से आवश्यकताएं कम हैं, कौन-सा आदमी सुखी है हिन्दुस्तान में? पांच हजार साल के अभ्यास के बाद कौन-सा आदमी सुखी है हिन्दुस्तान में जो हम कहते हैं कि आवश्यकताएं कम हो तो आदमी सुखी हो सकता है।

नहीं, न आवश्यकताओं के ज्यादा होने से सुख का सम्बन्ध है, न कम होने से। सुख एक बात ही अलग है। उसकी खोज आवश्यकता कम हो तो भी करनी पड़ती है, आवश्यकता ज्यादा हो तो भी करनी पड़ती है। लेकिन आवश्यकताएं ज्यादा होने से सम्पदा बढ़ती है, आवश्यकताएं ज्यादा होने से तकनीक बढ़ता है। आवश्यकताएं ज्यादा होने से मनुष्य को कम श्रम करना पड़ता है, ज्यादा विश्राम मिलता है। आवश्यकताएं ज्यादा होने से ज्यादा आविष्कार होते हैं, विज्ञान होता है, शक्ति बढ़ती है, सामर्थ्य बढ़ती है। हिन्दुस्तान की सामर्थ्य नहीं बढ़ सकी। और गांधीजी फिर वही कहते हैं कि आवश्यकताएं कम। वह हमें बात बिल्कुल समझ में आती है क्योंकि गांधी हमारे पांच हजार साल के प्रतिनिधि हैं। जो हमने पांच हजार साल में बार-बार सुना है उसे वे फिर से कह रहे हैं इसलिए बिल्कुल समझ में बात आती है।

लेकिन वह बात मंहगी पड़ी है और अगर हम आगे भी उसको दोहराते हैं तो अब तक तो हम जी भी लिए, आगे हम जी भी नहीं सकेंगे। क्योंकि हिन्दुस्तान

की आबादी बुद्ध के जमाने में दो करोड़ थी, आज हिन्दुस्तान की आबादी बावन करोड़ है। पचास करोड़ लोग बढ़ गये हैं, और हिन्दुस्तान की बुद्धि बुद्ध के जमाने की है, उसमें कोई वृद्धि नहीं हुई है। यह बड़ी घबराने वाली बात है। हमारे उपकरण, हमारे साधन, खेती-बाड़ी का हमारा ढंग बुद्ध के जमाने का है। उसमें कोई फर्क नहीं हुआ है। किसान जैसा आज खेत पर काम कर रहा है, ठीक ऐसा ही बुद्ध के जमाने में कर रहा था। उसके उपकरणों में कोई वृद्धि नहीं है, और पचास करोड़ की संख्या बढ़ गयी है। और आने वाले बीस वर्षों में यह संख्या रोज बढ़ती चली जायेगी, रोज बढ़ती चली जायेगी। इस सदी के पूरे होते-होते हिन्दुस्तान में एक अरब आदमियों के होने की सम्भावना हो गयी है।

और विचारक कहते हैं कि उन्नीस सौ अठहत्तर में इतने बड़े अकाल की सम्भावना है हिन्दुस्तान में कि जिसमें दस करोड़ से लेकर बीस करोड़ लोगों को मरना पड़ सकता है। लेकिन हम कहते हैं, हम इण्डस्ट्रिलाइज नहीं करेंगे। हम कहते हैं, हम औद्योगीकरण नहीं करेंगे। तो फिर मरेंगे बीस करोड़ लोग उन्नीस सौ अठहत्तर तक। और जब बीस करोड़ लोग किसी मुल्क में मरना पड़े तो बाकी जो जिन्दा रह जायेंगे, वे जिन्दा हालत में रहेंगे? अगर बीस करोड़ मुल्क में आदमी मरना पड़े, हर तीन आदमी में एक आदमी मर जाये, तो आप सोचते हैं, जो दो आदमी बचेंगे, उनकी हालत क्या हो जायेगी? उनकी हालत मरों से बदतर हो जायेगी, और बीस करोड़ लोग अगर तीव्रता से मरें मुल्क में तो लाश का फेंकना मुश्किल हो जायेगा।

लेकिन गांधीजी का विचार हिन्दुस्तान को समृद्ध नहीं बना सकता क्योंकि वह कहते हैं कि छोटे उपकरण चाहिए। हाथ से चलने वाले उपकरण चाहिए, ग्रामोद्योग चाहिए, घर-घर का धन्धा चाहिए। इससे काम नहीं चलेगा। खेती को भी इण्डस्ट्रिलाइज करना होगा। इण्डस्ट्रियल एग्रीकल्चर चाहिए। अब खेती छोटे-छोटे टुकड़ों में और एक-एक किसान अपने-अपने टुकड़ों में करे, यह नहीं चल सकता है। एक गांव का एक ही खेत चाहिए और एक गांव के पूरे खेत पर नये से नये उपकरण, नये यन्त्र, नयी मशीनें चाहिए। और मजा यह है कि एक गांव में एक हजार किसान हैं, अगर इन किसानों के हल बक्खर सब बेच दिये जायें तो एक ट्रेक्टर उससे आ सकता है और एक ट्रेक्टर से सारा काम हो सकता है। ये हजार हल बक्खर और दो हजार बैल, इन सबका खर्च, इन सबकी परेशानी यह सब हमें खाये जा रही है। इसके आगे हम नहीं जा सकते हैं। हिन्दुस्तान को चाहिए केन्द्रित औद्योगिक व्यवस्था—सेन्ट्रलाइज्ड। हिन्दुस्तान को चाहिए इण्डस्ट्रियल एग्रीकल्चर, औद्योगिक क्रांति। एक-एक आदमी के हाथ में अब नहीं दिया जा सकता मामला। उससे कुछ होने वाला नहीं है अब। अब हम मर जायेंगे, अब हम जी नहीं सकते।

हम देख रहे हैं कि आजादी के बाद हमको रोज भीख मांगकर जीना पड़ रहा है। अगर अमरीका हमें गेहूं न दे तो हम आज मर जायें, इसी वक्त। हमारी जीने की हैसियत क्या है? हम मांगकर खा रहे हैं और भूल गये हैं, मजे से जी रहे हैं, जैसे कि कोई असुविधा नहीं है। अमरीका में चार किसान जो काम कर रहे हैं उनमें एक किसान का उत्पादन हम खा रहे हैं। अमरीका का विचारक कह रहा है कि हम और दस साल ज्यादा से ज्यादा खींच सकते हैं। इसके बाद तो हमारी अर्थ व्यवस्था टूट जायेगी हिन्दुस्तान को पालने में। यह नहीं चल सकता। लेकिन हम निश्चित हैं, हमें कोई ख्याल नहीं है। हम बैठकर क्या बातें कर रहे हैं? हम बैठकर बातें कर रहे हैं कि तकली चलाने से बड़ी आध्यात्मिकता आती है, कि चरखा चलाने से बड़ा आदमी सात्विक और पवित्र हो जाता है। हम जय-जय गान कर रहे हैं किन बातों का? गांधी को फैड था, गांधी को झुकाव था, लगाव था इस बात का। ठीक है, गांधी की मौज है। उन्हें जो ठीक लगे वह करें, और जिसको भी ठीक लगता है वह करे लेकिन पूरे मुल्क को सोचना पड़ेगा कि हम इन बातों से राजी होते हैं तो उसका परिणाम क्या होगा?

फिर शायद आपको पता नहीं कि जितना मनुष्य का तकनीक विकसित होता है उतनी मनुष्य की चेतना विकसित होती है। आदिवासियों में जाइए, एकाध बर्टेन्ड रसेल, एकाध नेहरू मिल सकता है आदिवासियों में खोजने से? क्यों, आदिवासियों के पास बुद्धि नहीं है, आत्मा नहीं है? आदिवासियों के पास एकाध गौतम बुद्ध पैदा नहीं होता है। आदिवासियों के पास कोई थियरी ऑफ रिलेटिविटी पैदा करने वाला आइन्स्टीन पैदा नहीं होता है। कोई तानसेन, कोई निराला, कोई रवीन्द्रनाथ, कोई पैदा होता है? क्यों नहीं पैदा होता? बात क्या है? बात कुल इतनी है कि जितना उत्पादन का साधन विकसित होता है उतना मनुष्य की चेतना को चुनौती मिलती है। उस चुनौती से चेतना विकसित होती है।

एक आदमी बैलगाड़ी चला रहा है, बैलगाड़ी चलाने में कितनी चेतना की जरूरत पड़ती है? एक आदमी हवाई जहाज चला रहा है, हवाई जहाज चलाने के लिए बहुत सचेतन होना जरूरी है। हवाई जहाज की जटिल मशीनरी के साथ व्यवहार करने के लिए बहुत बुद्धिमानी होनी जरूरी है। हवाई जहाज चलाने के लिए आदमी में परिवर्तन हो जायेगा। उसकी चेतना को चुनौती मिलेगी। उसकी चेतना को बदलना पड़ेगा। तो जितना जटिल यन्त्र होता है उतनी श्रेष्ठतर चेतना को जन्म मिलता है। जितना सरल यन्त्र होता है उतनी ही सामान्य चेतना को जन्म मिलता है।

अभी अंतरिक्ष यान में जो यात्री गये, उन्होंने जो वापस लौट कर कहा—उन्होंने यह कहा कि अंतरिक्ष यान में जैसे ही हम प्रवेश करते हैं शून्य आकाश में,

इतना सन्नाटा है वहां, इतना साइलेंस है, इतना टोटल साइलेंस है, इतनी शांति है कि वहां कोई ध्वनि नहीं, कोई आवाज नहीं कि सिर फटने लगता है शान्ति से । आपने सुना होगा, आवाज से सिर फटने लगता है, यह मुहावरा, लेकिन शांति से सिर फटने लगता है, यह मुहावरा सुना है आपने कभी ? लेकिन अंतरिक्ष से जो लौटे हैं लोग वे यह कहते हैं कि शान्ति से सिर फटने लगता है, नसें जवाब देने लगती हैं, क्योंकि इतनी शान्ति का कोई अभ्यास नहीं है ।

तो आज अमरीका में और रूस में कमरे बनाये हैं कृत्रिम, जिनके भीतर अंतरिक्ष के जितनी शान्ति पैदा की है । वहां उनको, यात्रियों को ट्रेन्ड करते हैं । पन्द्रह-बीस मिनट में यात्री बाहर आ जाता है घबराकर कि नहीं, बहुत घबराहट लगती है ।

अब आप समझते हैं, अमरीका और रूस दोनों मुल्कों के वैज्ञानिक ध्यान में उत्सुक हुए हैं कि वे कहते हैं कि अब ध्यान सिखाना पड़ेगा यात्रियों को, ताकि वे अंतरिक्ष में सामना कर सके सन्नाटे का, शून्य का । अब इसको सोचना जरूरी है कि जब पन्द्रह मिनट में आदमी बाहर निकल आता है घबरा कर तो धीरे-धीरे उसका अभ्यास चलेगा उसे चौबीस-चौबीस घण्टे, फिर दो-दो तीन-तीन दिन, फिर महीने-महीने इस शून्य में रहना पड़ेगा । क्या आपको पता है, इस शून्य में रहने पर उसके मस्तिष्क में बुनियादी फर्क नहीं हो सकता है । बुनियादी फर्क हो जायेगा । जो आपके योगियों को तीस-चालीस वर्ष की मेहनत से उपलब्ध हुआ था वह अन्तरिक्ष यान के यात्री को दो दिन में भी उपलब्ध हो सकता है । इतने शून्य का साक्षात्कार करने से चेतना में बुनियादी क्रान्ति हो जायेगी ।

और हम ? हम कहते हैं, हमें बहुत जटिल यन्त्र नहीं चाहिए । हमें जटिल यन्त्रों को विकसित नहीं करना है । डर इस बात का पैदा हो गया है कि आने वाले पचास वर्षों में अमरीका और रूस में बिल्कुल नये तरह के मनुष्य के पैदा होने की सम्भावना है । लेकिन हमें कोई ख्याल नहीं । हम अपनी दकियानूसी, पुराणपन्थी बातों को लिए बैठे रहेंगे । और अगर कोई कुछ कहेगा तो उसको गाली देंगे, नाराज होंगे । साठिया कुआं जबलपुर से लेकर सफदरजंग दिल्ली तक सब नाराज हो जायेंगे । कोई सोचने-विचारने को राजी नहीं होगा । अब साठिया कुआं के लोग नाराज हो जायें तो ठीक भी है, क्योंकि कुआं में रहने वालों की कितनी सामर्थ्य और समझ हो सकती है ! लेकिन दिल्ली के लोग भी नाराज हो जाते हैं ।

अभी मैं सौराष्ट्र में था, मेरे खिलाफ मोरारजी भाई ने वहां वक्तव्य दिये, और मोरारजी भाई ने कहा कि मैं ऐसी बातें कह रहा हूं जो मुझे नहीं कहनी चाहिए । एक आध्यात्मिक व्यक्ति को, गांधीजी की आलोचना ही नहीं करनी चाहिए । मैंने कहा, आध्यात्मिक व्यक्ति होना क्या कोई पाप है ? मोरारजी भाई

कहते हैं, आध्यात्मिक व्यक्ति को आलोचना ही नहीं करनी चाहिए गांधीजी की । अब तक तो राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री ही आलोचना करते थे, अब आध्यात्मिक लोग आलोचना करते हैं । मैं मोरारजी भाई को कहना चाहता हूं कि गांधीजी को आध्यात्मिक लोग ही समझ सकते हैं, राजनीतिक और आर्थिक लोग तो समझ भी नहीं सकते । क्योंकि गांधीजी मूलतः आध्यात्मिक व्यक्ति हैं—न तो राजनीतिज्ञ हैं और न अर्थशास्त्री । दोनों नहीं हैं । राजनीति आपद्धर्म थी उनके लिए । एक मुसीबत थी, जरूरत आ गयी थी इसलिए खड़े थे । लेकिन मूलतः तो वे आध्यात्मिक व्यक्ति हैं । उनको आध्यात्मिक व्यक्ति नहीं समझेंगे तो कौन समझेगा ? और अगर आध्यात्मिक व्यक्ति गांधी की आलोचना नहीं करते हैं तो फिर कौन करेगा ?

(बीच में एक आदमी का हस्तक्षेप और शांत रहने का आग्रह)

उनकी बात मैंने सुन ली । वह यह कह रहे हैं कि मैं गांधीजी के सम्बन्ध में कुछ अच्छी बात भी कहूं । वह मैं कहूंगा, इतने घबरा मत जाइए । इतने परेशान मत हो जाइए । जाते-जाते एकाध अच्छी बात जरूर उनके बाबत कहूंगा जो आपके मन को बहुत अच्छी लगे ।

यह जो मोरारजी भाई कहते हैं कि आध्यात्मिक व्यक्ति को आलोचना नहीं करनी चाहिए, यह बड़ी नासमझी की बात मालूम पड़ती है । शायद उनका ख्याल है कि आध्यात्मिक व्यक्ति आलोचना करते ही नहीं । तो उन्हें पता नहीं है कि दयानन्द ने कितनी आलोचना की है । उन्हें पता नहीं है कि शंकराचार्य ने कितनी आलोचना की है। उन्हें पता नहीं है कि बुद्ध ने कितनी आलोचना की है । उन्हें पता नहीं है कि सारे अध्यात्म का विकास आलोचना से हुआ है । फिर, गांधी तो एक आध्यात्मिक व्यक्ति हैं । गांधी के ऊपर हिन्दुस्तान के आध्यात्मिक व्यक्ति को गम्भीरता से सोचना और विचार करना जरूरी है । और मेरा कहना है कि गांधी चूंकि आध्यात्मिक व्यक्ति हैं इसलिए ही अर्थ के जगत् में, राजनीति के जगत् में बहुत से भूलें कर सकते हैं; जो कि शायद कौटिल्य या मेकियाविली कभी भी न करता ।

काका कालेलकर ने अहमदाबाद में मेरे खिलाफ अभी एक वक्तव्य दिया और कहा, मेरी उम्र कम है इसलिए मैं गड़बड़ बातें कह देता हूं; उम्र थोड़ी ज्यादा होगी तो फिर मैं ठीक बातें कहने लगूंगा । मुझे वे जवाब कोई भी नहीं देते हैं । यह जवाब हुआ ! मैं जो कहता हूं उसका यह जवाब हुआ ! शंकराचार्य की उम्र–तैंतीस वर्ष में वह खत्म हो गये । उनकी उपनिषदों पर लिखी टीकाएं व्यर्थ हैं, अस्सी साल के आदमी की ठीक होती हैं ? विवेकानन्द की मृत्यु छत्तीस साल में हो गयी, तो विवेकानन्द ने जो कहा, वह नासमझी से भरा होगा ? जीसस क्राइस्ट तैंतीस साल में सूली पर लटक गया, बड़ी गलती की जीसस क्राइस्ट ने । अगर

काका कालेलकर से वह सलाह लेते तो वह कहते कि अस्सी साल जियो। यह उम्र का सवाल है? उम्र से बुद्धिमता आ जाती है? अगर उम्र से बुद्धिमता आती होती तब तो बड़ी आसान बात थी, हम सब लोग उम्र की प्रतीक्षा करते और बुद्धिमता आ जाती। उम्र से तो बुद्धिमता आती दिखायी नहीं पड़ती, चालाकी और कनिंगनेस जरूर आती दिखायी पड़ती है।

गुजरात सरकार मुझे छः सौ एकड़ जमीन देती थी। जिस दिन मैंने पहली दफा अहमदाबाद में गांधी के लिए वक्तव्य दिया, तो मेरे मित्र मेरे पास आये और उन्होंने कहा, यह आप क्या करते हैं? थोड़ा ठहर जाइए, वह जमीन मिल जाने दीजिए। फिर वक्तव्य देना चाहिए। मैंने उनसे कहा, आप अनुभवी लोग हो, आपके लिए जमीन का ज्यादा मूल्य है। मैं गैरअनुभवी हूं, मुझे जमीन का कोई भी मूल्य नहीं है। जो मुझे ठीक लगता है वह मैं कहूंगा। जमीन आती हो या जाती हो, इसका कोई अर्थ और कोई हिसाब रखने की जरूरत नहीं है। मैंने काका को खबर भेजी कि ठीक कहते हैं, वह अगर मैं अनुभवी होता तो चार दिन बाद कह सकता था, जमीन मिल जाती। और हर्ज क्या था? न भी कहता, क्या हर्ज था? न भी कहता तो मुझे प्रशंसा ज्यादा मिलती। अभी तो निन्दा मिल सकती है, गाली मिल रही हैं। क्या जरूरत थी कहने की? समझदार आदमी, अनुभवी आदमी ऐसी बातें नहीं कहते। वे ऐसी ही बातें कहते हैं जो सबको अच्छी लगे, सबकी प्रशंसा के पात्र बने। लेकिन ऐसे लोग जगत् में कोई बुनियादी क्रांति करने में कभी भी समर्थ नहीं होते।

मुझे गांधी से विरोध नहीं है। वह मित्र शायद घबरा गये। हम इतने पतले टीन के बने हुए लोग हैं कि जरा-सी गर्मी में बस उबाल आ जाता है। वह घबरा गये। गांधी से मुझे विरोध नहीं है। शायद उन्होंने सुना नहीं, मैंने कहा कि गांधी जैसा आदमी इस मुल्क के इतिहास में दूसरा खोजना मुश्किल है। मेरे सिवाय शायद ही किसी आदमी ने गांधी की इतनी प्रशंसा की हो। लेकिन हमारा छोटा-सा दिमाग है।

(पुनः हस्तक्षेप)

यह जो हमारा दिमाग है, यह जो छोटा-सा हमारा दिमाग है वह इतना जल्दी परेशान हो जाता है कि गांधी की जैसे कोई आलोचना की गयी तो गांधी का कोई अहित हुआ जा सकता है।

(उनसे कुछ भी मत कहिये, उनसे कुछ भी न कहिये। एक ही आदमी का गड़बड़ होना काफी है, उनको समझाइए मत। उनको बिल्कुल समझाइए मत।)

यह जो हमारी मानसिक दशा है कि हम प्रशंसा सुनने को आतुर होते हैं, हमें अच्छा लगता है कि हमारे महापुरुष को बड़ा कहा जा रहा है। हमारे अहंकार की बड़ी तृप्ति होती है। लेकिन, उस तृप्ति से मुल्क का क्या हित होता है? यह

भी मैं नहीं कह रहा हूं कि गांधी ने जो किया वह सभी बुरा किया। कह मैं यह रहा हूं कि सारा मुल्क तो प्रशंसा करेगा, कम से कम एक आदमी को आलोचना करने दो। एक वर्ष चलेगी यह प्रशंसा तो। हिन्दुस्तान पूरी प्रशंसा करेगा, सारे लोग प्रशंसा करेंगे। खोज-खोज कर लायेंगे कि क्या-क्या अच्छा किया? कोई नहीं कहेगा कि क्या मुल्क पर, आने वाले मुल्क पर उस सबका क्या परिणाम हो सकता है? एक आदमी को कहने दो।

और मैं यह जानता हूं कि गांधी अगर स्वयं हों तो आलोचना के लिए स्वागत करेंगे। जीवन भर उनकी आदत यह थी। न केवल आलोचना का स्वागत करेंगे, बल्कि खुद निरन्तर अपनी आलोचना करते रहे। प्रति वर्ष कहते रहे, यह भूल हो गयी। मरने के बाद ही उनसे कोई भूल नहीं हुई। जीते थे तो रोज बताते थे कि यह भूल हो गयी, यह भूल हो गयी।

एक अमरीकी पत्रकार ने गांधी के खिलाफ बहुत-सी ऐसी बातें लिखीं, जो सरासर झूठी थीं। लिखा कि गांधी औरतों के कंधों पर हाथ रखकर सैर-सपाटा करते हैं। कुछ ऐसे बुद्धिमान लोग हैं कि उन्हें औरतों के सिवाय कुछ दिखायी नहीं पड़ता। अब वह गांधी की अपने लड़कों की लड़कियां हैं, अपनी भतीजियां हैं, ये हैं छोटी लड़कियां जिनके कन्धों पर वे हाथ रखते हैं। उनकी तस्वीरें छापी कि गांधी बड़े अश्लील आदमी हैं। अंग्रेज सरकार ने लाखों रुपये उस सबके प्रचार के लिए दिये। वह अमरीकी पत्रकार हिन्दुस्तान आया तो वह डरा हुआ था। वह सारे के सारे जवाब तैयार करके लाया था कि हिन्दुस्तान में पूछताछ होगी। गांधीजी को खबर मिली तो उन्होंने अपने सेक्रेटरी को दिल्ली भेजा और उस पत्रकार को निमंत्रण दिया कि वर्धा आये बिना मत चले जाना। मुझे बहुत दुख होगा। अमरीका में बहुत ही कम लोग मुझे जानते हैं जितना तुम जानते हो। वह आदमी बहुत डरा। वह आदमी घबराया कि यह कुछ फांसने की चाल तो नहीं है? लेकिन उसे पता नहीं कि गांधी राजनीतिज्ञ नहीं थे, फांसना वह जानते ही नहीं थे। उनको कल्पना भी नहीं थी। वह डरा हुआ वर्धा आया। वह इतना घबराया हुआ है कि जाते से ही दिखता है कि वही बात पूछी जायेगी कि तुमने यह लिखा, तुमने यह लिखा, तुमने यह लिखा। लेकिन दिन बीत गया, गांधी ने बहुत बातें पूछीं, उसका स्वास्थ्य कैसा है, उसकी तबियत कैसी है, उसकी पत्नी कैसी है, उसके बच्चे कैसे हैं, अमरीका में और सब क्या हाल है? सब पूछा, रात आ गयी, वह बात नहीं हुई। दूसरा दिन हो गया, और सब बातें हुईं—गीता, कुरान सब आये। दूसरे दिन विदा का वक्त आ गया। उस आदमी से यह नहीं पूछा कि तुमने मेरे बाबत यह क्या लिखा है? चलते वक्त वह आदमी रोने लगा, और उसने कहा, क्या बापू आप मुझसे वह पूछेंगे नहीं? गांधी ने कहा, तुमने लिखा है तो सोचकर ही लिखा होगा। तुमने लिखा है, तुम इतने बुद्धिमान आदमी हो, विचार करके

ही लिखा होगा। और फिर जब से मैंने पढ़ा, मैं खुद ही सोचने लगा कि मेरे भीतर कहीं कोई वासना शेष तो नहीं है ? अन्यथा यह आदमी लिखता कैसे ! कहीं मेरे भीतर कोई वासना जरूर शेष होनी चाहिए, इस आदमी को पकड़ में आयी है बात। तो कहीं न कहीं कोई किसी कोने में वासना शेष होगी। ठीक ही तो है, मुझे विचार का तुमने मौका दिया। और तुमसे मेरी प्रार्थना है, वहां जाकर मेरी प्रशंसा मत करने लगना। मेरे प्रशंसा करने वाले बहुत लोग हैं। थोड़े ही आलोचक हैं, उनके ही आधार से मैं विकसित होता हूं। जो थोड़े से आलोचक हैं उनके ही आधार से मैं विकसित होता हूं। क्योंकि वे मुझे कहते हैं कि यहां गलत है। मेरे प्रशंसक तो जयजयकार करते हैं। उनसे मुझे पता भी नहीं चलता कि मैं गलत भी हो सकता हूं। और अगर मैं उनकी ही बातों में पड़ा रहूं तो मुझे गड्ढे में ले जायेंगे वे। सब अनुयायी अपने नेताओं को गड्ढों में ले जाने वाले सिद्ध हुए हैं। क्योंकि अनुयायी जयजयकार करते हैं। और अनुयायी बहुत घबराता है, जयजयकार में कोई कमी न हो जाये। लेकिन गांधी जैसे लोगों को जयजयकार से कोई फर्क नहीं पड़ता है। इतने घबराने की जरूरत नहीं है। इतने बेचैन होने की जरूरत नहीं है।

मैं जो कह रहा हूं वह गांधी के खिलाफ नहीं कह रहा हूं। मैं जो कह रहा हूं वह गांधी की जो धारणाएं हैं, गांधी का जो विचार है वह इस मुल्क के लिए लागू हो सकता है, इस सम्बन्ध में कह रहा हूं। गांधी तो अनूठे व्यक्ति हैं, उनके विचार चाहे कितने ही गलत सिद्ध हों। विचार उनके खत्म हो जायेंगे, लेकिन गांधी की महानता खत्म होने वाली नहीं है।

कराची में एक कांफ्रेंस में गांधी थे। कुछ लोगों ने काले झंडे दिखाये गांधी को। और नारा लगाया, 'गांधीवाद मुर्दाबाद'। गांधी ने माइक से बोलते हुए कहा, गांधी मर जायेगा लेकिन गांधीवाद जियेगा। मैं गांधी से कहना चाहता हूं, थोड़ी भूल हो गयी शब्दों में। उनसे कहना चाहता हूं, गांधीवाद मर सकता है, गांधी जियेगा। गांधी नहीं मर सकता है। गांधी का व्यक्तित्व ऐसा अनूठा है कि वाद वाद का कोई सवाल नहीं है। वह सब चला जायेगा लेकिन गांधी की सचाई, गांधी की करुणा, गांधी की अहिंसा, गांधी का प्रेम, गांधी की ईमानदारी, गांधी की सरलता, वह जियेगी। गांधीवाद में कोई मूल्य नहीं है बहुत, लेकिन गांधी में बहुत मूल्य है।

और यह मैं उदाहरण के लिए कहना चाहता हूं। जैसे मार्क्स को अगर हम उठाकर देखें तो मार्क्स के व्यक्तित्व में कुछ भी नहीं है। दो कौड़ी का व्यक्तित्व हैं लेकिन विचार बहुत कीमती है। मार्क्स के व्यक्तित्व में कुछ भी नहीं है। कोई कीमत की बात नहीं है, लेकिन विचार उसका अनूठा है। मार्क्स का विचार जियेगा। गांधी का विचार अनूठा नहीं है। गांधी के व्यक्तित्व में बड़ी अनूठी

खूबियां हैं। गांधी का व्यक्तित्व जियेगा।

मैं जिस समाज की कल्पना करता हूं उस समाज में गांधी जैसे व्यक्ति चाहता हूं और मार्क्स जैसा समाज चाहता हूं। अब यह मेरी मजबूरी है कि गांधी के विचार से मैं राजी नहीं हूं, लेकिन इससे मैं यह भी नहीं कहता हूं कि आप मुझसे राजी हो जायें। मैं सिर्फ इतना कहता हूं कि मेरी जो गैर राजी होने की स्थिति है, उसे आप समझें, सोचें, विचार करें। हो सकता है, मैं गलत सिद्ध हो जाऊं। मैं गलत सिद्ध हो जाऊं तो मेरी बातों को फेंक दें कचरे में। लेकिन यह भी हो सकता है कि मेरी कोई बात सही सिद्ध हो सकती है। और अगर कोई बात सही सिद्ध हो सकती है तो सिर्फ इस भय से कि कहीं गांधी की आलोचना हो जाये उसको न कहना, सारे मुल्क को गड्ढे में ले जाना होगा।

इस मुल्क की तरफ देखें, या गांधी की जयजयकार की तरफ देखें। क्या करें ? इस बड़े मुल्क का भविष्य देखें या बस चुपचाप बैठकर प्रशंसा करते रहें ? बहुत हमने प्रशंसा की है हजारों साल से। हम अपने किसी महापुरुष की आलोचना कभी किये ही नहीं हैं, और इसीलिए यह मुल्क इतना छोटा का छोटा रह गया है। महापुरुषों की आलोचना से मुल्क ऊपर उठते हैं। महावीर की आलोचना की कभी इस देश ने ? कभी हमने बुद्ध की आलोचना की ? अब हम गांधी के साथ वही दुर्व्यवहार कर रहे हैं। वह दुर्व्यवहार यह है कि गांधी को भी भगवान बनाकर बिठाल देना है—एक मंदिर में। बस उनकी पूजा करो, फूल चढ़ाओ, लेकिन उनका उपयोग मत करना देश के जीवन के लिए। और देश के लिए, जीवन के लिए उपयोग करना है तो सोचना पड़ेगा, तो गांधी को घसीटना पड़ेगा आग में। लेकिन मैं जानता हूं कि उनके भीतर बहुत कुछ सोना है। वह आग में भी बच जायेगा और जो कचरा है वह तो जल ही जाना चाहिए। वह गांधी का है इसलिए उस कचरे को आदर देने का कोई सवाल नहीं उठता है।

कुछ गांधी से मेरा विरोध है, ऐसी धारणा लोगों के मन में पैदा हो जाती है। गांधीवाद से मेरा विरोध है। और गांधीवादियों से तो बहुत ज्यादा विरोध है क्योंकि बीस साल में गांधीवादियों ने मुल्क को नर्क की यात्रा करवा दी और उनसे इस मुल्क को बचाना एकदम जरूरी है। लेकिन वे सारे गांधी की आड़ में गांधीवाद को और गांधीवादी को बचाये रखना चाहते हैं। गांधी का जोर से शोरगुल मचाकर यह भ्रांति मुल्क में जारी रखना चाहते हैं कि गांधीवाद ठीक है, और पीछे से गांधीवादी ठीक है। आदमी के तर्क बहुत अनूठे हैं। आदमी बहुत होशियारी से तर्क खोजता है। वह उसे पता भी नहीं चलता है कि वह कैसे तर्क खोज रहा है। एक आदमी कहता है हिन्दू धर्म महान है, और भीतर से वह यह कहना चाहता है कि मैं हिन्दू हूं। मैं महान हूं इसलिए हिन्दू धर्म महान है।

मैं हमेशा एक कहानी कहता रहा हूं—पेरिस यूनिवर्सिटी में एक प्रोफेसर था

दर्शन का। उसने एक दिन आकर अपनी कक्षा में कहा कि मुझसे महान व्यक्ति दुनिया में कोई भी नहीं है। उसके शिष्यों ने पूछा, आप ! आप एक गरीब से शिक्षक, फटा कोट पहने हुए हैं। आप ! सबसे महान ! कैसे आपको पता चला ? मन में है, पागल हो गये होंगे। दार्शनिकों के पागल हो जाने में देर नहीं लगती। वे किनारे पर खड़े रहते हैं, कभी भी पागल हो सकते हैं। एक विद्यार्थी ने पूछा, लेकिन आप, महान सबसे ? वह आदमी उठकर गया, उसने नक्शे पर जाकर कहा कि मैं सिद्ध कर दूंगा। तुम तो जानते हो, मैं तर्कशास्त्री हूं। उसने जाकर नक्शे पर हाथ रखा और पूछा कि पूछता हूं, दुनिया में सबसे महान देश कौन-सा है ? उन्होंने कहा, फ्रांस। वे सभी फ्रांस के रहने वाले हैं—फ्रांस। हिन्दुस्तान के रहने वाले होते तो हिन्दुस्तान, तिब्बत के होते तो तिब्बत। क्योंकि जहां हम पैदा होते हैं वही देश महान हो जाता है क्योंकि हम जो महान हैं भीतर ! उन्होंने कहा, फ्रांस। उसने कहा, तब सारी दुनिया खत्म हो गयी। अब रह गया फ्रांस। अब मुझे सिद्ध करना है कि फ्रांस में मैं सर्वश्रेष्ठ आदमी हूं। तब भी उसके बच्चे नहीं समझे कि वह कहां ले जा रहा है। उसने कहा कि फ्रांस में सबसे श्रेष्ठ नगर ? तब बच्चों को शक हुआ कि मामला गड़बड़ हुआ जाता है। वे सब पेरिस के रहने वाले हैं। उन्होंने कहा, पेरिस। उसने कहा, तब फ्रांस खत्म, अब रह गया पेरिस। अब पेरिस में सिद्ध करना है कि मैं बड़ा हूं या नहीं। और पेरिस में सबसे श्रेष्ठ स्थान ? निश्चित ही विद्या का मंदिर विश्वविद्यालय है, यूनिवर्सिटी। उसने कहा, तब ठीक, अब रह गयी यूनिवर्सिटी। और यूनिवर्सिटी में श्रेष्ठतम विषय ? फिलॉसफी। और मैं फिलॉसफी विभाग का हेड ऑफ द डिपार्टमेंट हूं।

आदमी इतना चालाक है। भीतर बहुत गहराई में एक ही बात है कि 'मैं'। 'गांधी महान हैं, गांधीवाद महान है, गांधीवादी महान हैं', फिर धीरे-से वह कहता है मैं तो गांधीवाद का एक सेवक हूं। पीछे वह आदमी खड़ा है। पीछे वह छोटा-सा सेवक है जिसका सारा जाल है। वह सेवक घबराया हुआ है। वह गांधीवादी घबराया हुआ है। गांधी को कोई डर नहीं है आलोचना का, लेकिन गांधीवादी को डर है। वह बहुत भयभीत है। उसका भय क्या है ? उसका भय यह है कि अगर गांधी पर तीव्र आलोचना इस मुल्क में चली और लोगों ने सोचा और समझा, और अगर गांधी में कुछ गलतियां दिखायी पड़ीं तो गांधीवादी की जड़ कट जाने वाली है। वह इस मुल्क में जी नहीं सकेगा। उसके शोषण का सारा उपाय नष्ट हो जायेगा।

गांधीजी ने कहा कि मैं ट्रस्टीशिप चाहता हूं। मैं चाहता हूं एक ऐसा देश, जहां धनी अपने धन का मालिक न हो। लेकिन चालीस वर्ष की निरन्तर मेहनत के बाद गांधी एक भी धनी आदमी को ट्रस्टी बनने को राजी कर पाये ? एक भी आदमी को ? यह असफलता नहीं है ? और अगर खुद गांधी जैसा महान व्यक्ति एक धनपति को राजी नहीं कर पाया ट्रस्टी बनने के लिए तो गांधीवादी राजी कर लेंगे, ये छोटे भैय्ये राजी कर लेंगे—गांधी के पीछे जो कतार खड़ी है ? गांधी हार गये, एक करोड़पति राजी नहीं हुआ। बल्कि मामला उल्टा हो गया। गांधी के एक करोड़पति शिष्य ने जब हिन्दुस्तान आजाद हुआ तो उसके पास तीस करोड़ की सम्पत्ति थी। बीस साल के बाद उनके पास तीन सौ तीस करोड़ की सम्पत्ति है। तीन सौ तीस करोड़ हो गया।

कहते हैं दुनिया के इतिहास में किसी करोड़पति ने एक परिवार के लिए इतने कम समय में इतनी सम्पत्ति इकट्ठी नहीं की। तो गांधीवाद को कैसे गिरने देगा करोड़पति ? कैसे गिरने देगा अमीर गांधीवाद को ? उसके ऊपर ही आज उसकी जिन्दगी ठहरी हुई है। इधर गांधीवादी की आवाज है, लेकिन पीछे से पूंजीवादी के स्वर हैं। लगाम उसके हाथ में है। वह कहता है कि सब हृदय-परिवर्तन से ठीक हो जायेगा। गांधीजी एक आदमी का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाये। एक आदमी का हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ कि वह अपनी सम्पत्ति छोड़ दे। अब कौन हृदय-परिवर्तन करेगा ? गांधी नहीं कर पाये तो कौन करेगा हृदय-परिवर्तन ? नहीं, हृदय-परिवर्तन की बातचीत के पीछे हिन्दुस्तान में शोषण का जाल जारी रहे इसकी चेष्टा चल रही है।

ये सारी बातें सोचने जैसी हो गयी हैं कि इन बातों को चलने देना है या हिन्दुस्तान में एक समाजवादी समाज निर्मित करना है ? एक शोषणविहीन समाज निर्मित करना है या कि हिन्दुस्तान में जो गरीबी-अमीरी के फासले हैं वे बड़े से बड़े होते जाने देना है ! एक तरफ गरीबों का ढेर इकट्ठा होता जाये, जिसके पास जिन्दगी की सांस लेने की सामर्थ्य भी नहीं रह गयी, और एक तरफ धन इकट्ठा होता चला जाये। यह चलने देना है ? यह नहीं चलने देना है तो हमें विचार करना पड़ेगा कि गांधी जो हृदय-परिवर्तन की बात कहते तो उससे कुछ होगा, या कुछ और करना जरूरी है ?

विनोबा ने मेहनत की, गांधी की बात मानकर उन्होंने श्रम कर लिया बीस साल। उनकी मेहनत में, उनकी नीयत में कोई शक नहीं हो सकता। उन जैसे साफ आदमी खोजने मुश्किल हैं। उन जैसे सच्चे और देश के लिए प्राण लगाने वाला आदमी खोजने मुश्किल है। लेकिन असफल हो गयी सारी यात्रा। असफल इसलिए हो गयी कि आप चाहे कितना ही दान लेकर गरीबों में बांट दो, कितनी ही जमीन बांट दो, शोषण का यन्त्र बरकरार है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। मैं एक लाख रुपया दानकर दूं तो मैं नहीं बदलता हूं। मैं फिर जिस तरह मैंने पिछला एक लाख कमाया था, दुगुनी ताकत से उस एक लाख को कमाने में फिर लग जाता हूं। शोषण का यन्त्र जारी है। मैं जमीन दान कर दूं, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दान-दक्षिणा से कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है क्योंकि शोषण का यन्त्र

दान-दक्षिणा से नहीं बदलता, बल्कि दान-दक्षिणा कर ही वे पाते हैं जो शोषण से पहले इकट्ठा कर लें, तब दान-दक्षिणा करें। नहीं तो दान-दक्षिणा करेंगे कहां से ? पहले एक आदमी अमीर हो जाता है, फिर दान करता है। और अमीर होने का जो यन्त्र है वह जारी रहता है। दान करता जाता है और यन्त्र भी जारी रखता है। इससे कोई मुल्क की सामाजिक व्यवस्था नहीं बदल सकती। समाजवाद आये इस देश में तो सर्वोदय हो सकता है, लेकिन सर्वोदय से समाजवाद कभी नहीं आ सकता।

इस सब पर सोचना जरूरी है। इस सब पर विचार करना जरूरी है। यह विचार करने के लिए मैं पूरे मुल्क में एक-एक गांव में जाने की मेरी योजना है इस पूरे वर्ष में कि गांधी पर हम पुनर्विचार करें। लेकिन गांधी पर ही क्यों ? क्योंकि गांधी को मैं इस सदी का श्रेष्ठतम मनुष्य मानता हूं, इसलिए गांधी पर विचार किया जाना जरूरी है। जो श्रेष्ठतम है, उसके बाबत हमें बहुत सजग और होशपूर्वक विचार कर लेना चाहिए। साधारण जनों के बाबत विचार करने की कोई जरूरत भी नहीं है। गांधी के बाबत विचार करने की जरूरत है। और आने वाले पचास-पच्चीस वर्षों में हिन्दुस्तान में जो कुछ हो सकता है इस पर निर्भर होगा कि हम गांधी के बाबत क्या निर्णय लेते हैं ? अगर हमें यह निर्णय लेना है कि गांधी ठीक हैं तो मैं कहता हूं कि फिर सौ प्रतिशत यही निर्णय लो और विचार करो। यही निर्णय लो, कहो कि गांधी ठीक हैं तो फिर सौ प्रतिशत यही निर्णय लो। फिर छोड़ो सारी यान्त्रिकता, फिर छोड़ो सारा केन्द्रीकरण। फिर लौट जाओ, बड़े शहरों को तोड़ दो, लौट जाओ गांव में, और गांधी का प्रयोग पूरा कर दो। ईमानदारी से यही निर्णय ले लो, एक ऑनेस्टी तो हो ! सिंसियेरिटी तो हो !

लेकिन अभी मामला ऐसा है कि एक आदमी मैंने देखा, एक कार्टून मैंने देखा, एक आदमी जा रहा है। अपना सूटकेस लिए हवाई जहाज पर चढ़ रहा है। जो उसे छोड़ने आये हैं वे उससे पूछते हैं, आप कहां जा रहे हैं ? वह आदमी कहता है, मैं लन्दन जा रहा हूं हिन्दी पर रिसर्च करने। 'हिन्दी पर रिसर्च करने लन्दन जा रहे हैं ?' एक आदमी हिन्दी के पक्ष में भाषण देता है और अंग्रेजी में भाषण देता है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा होनी चाहिए, अंग्रेजी में बोलता है। यह पागलपन छोड़ो।

एक तरफ हम गांधी का विचार करें और गांधी को सही मानें और जयजयकार करें, और दूसरी तरफ यन्त्रीकरण करें, तो गलत है। फिर यन्त्रीकरण मत करो। फिर तोड़ दो सारे बड़े यन्त्रों को। फिर पश्चिम से सहायता मत लो। फिर मत बनाओ भिलाई, फिर मत खड़ा करो भाखरा और नंगल। छोड़ो इनको, इनकी जरूरत नहीं है, लौट चलो गांव को। तो भी मैं तैयार हूं। गांधी पर विचार

करके इतनी हिम्मत भी मुल्क करे तो भी समझ में आता है। लेकिन यह बेईमानी, यह कांइयांपन ठीक नहीं है। गांधी की जयजयकार करो, और जो कर रहे हो वह बिल्कुल दूसरा है। इसकी वजह का परिणाम यह होता है कि एक तरफ हम बड़ा काम भी करते हैं और दूसरी तरफ जो बिल्कुल उल्टा है वह भी किये चले जाते हैं। एक तरफ बड़ी मिल खड़ी करते हैं तो दूसरी तरफ खादी को प्रोत्साहन देते हैं।

अगर मैं एक खादी की धोती पहनूं—दस रुपये में मिल सकती है बाजार में साधारण धोती—तो यह साठ रुपये की होगी। साठ रुपये पर पन्द्रह रुपये सरकार देगी। सरकार किसके पास से दे रही है ? सरकार उनके पास से दे रही है जो खादी नहीं पहनते हैं। उनसे टैक्स ले रही है, और जो खादी पहनते हैं उनको पन्द्रह रुपये का कंसेशन दे रही है। करोड़ों रुपये इन बीस वर्षों में खादी को कंसेशन देने में खर्च किया गया है। इन करोड़ों रुपये से मिलें बन सकती थीं, मशीनें बन सकती थीं और नहीं बनाना है मिलें और मशीनें तो तोड़ दो, फिर पूरी खादी ही बनाओ। लेकिन मुल्क को एक स्पष्ट निर्णय चाहिए कि हम जो करेंगे वह साफ हो, स्पष्ट हो। हम ऐसा न करें कि एक कदम आगे रखेंगे और दूसरा पीछे रखेंगे। बायें हाथ से ईंट रखेंगे और दायें हाथ से खींच लेंगे। तो इस मुल्क का भवन फिर निर्मित नहीं हो सकता है। एक स्पष्ट निर्णय चाहिए मुल्क के सामने गांधी के पक्ष में, तो गांधी के पक्ष में हिम्मत से जुट जाना चाहिए।

मुझे लगता है, गांधी के पक्ष में जुटना आत्मघात है, सुइसाइडल है। यह मुझे कहने का हक है। मुझे लगता है कि गांधी से पूरी तरह मुक्त हो जाना चाहिए, गांधीवाद से। गांधीवाद नहीं मुल्क के हित में सिद्ध होने वाला है। मुल्क को चाहिए नवीनतम वैज्ञानिक उपकरण, श्रेष्ठतम टेक्नोलॉजी, केन्द्रीकरण, नयी से नयी शोध, नया विज्ञान ताकि मुल्क की दरिद्रता मिट सके, मुल्क सम्पन्न हो सके। और मैं यह मानता हूं कि गांधीवाद से मुक्त होने का मतलब गांधी के आदर से मुक्त हो जाना नहीं है।

सच तो यह है कि अभी जो लोग समझते हैं कि वे गांधी को आदर दे रहे हैं, उन्होंने कुल आदर इतना दिया है कि हवालात में एक फोटो लटका दी है गांधी की, अदालत में एक फोटो लटका दी है। उन्हीं के नीचे बैठकर मजिस्ट्रेट रिश्वत ले रहा है। गांधी ऊपर लटके हुए हैं। हवलदार के पीछे फोटो लटकी है, मां-बहन की गाली दे रहा है हवलदार उसको, जिसके लिए गांधी जिन्दगी भर लड़े, वह फोटो लटक की लटक रही है। यह सम्मान बढ़ाया है !

मैं आपको कहता हूं, गांधीवादियों के चक्कर में अगर गांधी रह गये तो बीस साल में गांधी की कोई इज्जत नहीं बचेगी। इस मुल्क में इनकी वजह से इज्जत नष्ट हो जायेगी। इनसे गांधी का छुटकारा चाहिए। गोडसे तो गांधी की हत्या

करने में सफल नहीं हो पाया, शरीर को मार पाया। गांधीवादी गांधी की आत्मा भी मार डाल सकते हैं। इनसे बचाना जरूरी है गांधी को। यह कोई समझ की बात है, गांधी कोई पंचम जार्ज हैं? हवालात में लटकाये हो उनको काहे के लिए ऐसे कोई आदर बढ़ जायेगा? तुम मूर्तियां गांव-गांव में खड़ी कर दोगे तो आदर बढ़ जायेगा? आदर इस तरह नहीं बढ़ता है, बल्कि सरकार, जिस सन्त को सरकारी बना लेती है, वह सन्त नष्ट हो जाता है क्योंकि लोकमानस से उसकी प्रतिष्ठा चली जाती है। गांधी की जय वह भी थी जो उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले लोग बोलते थे और अब भी बोलते हैं, लेकिन अब बोलने वालों में सिर्फ प्रायमरी स्कूल के बच्चे सुनायी पड़ते हैं और कोई भी नहीं है। और ये बेचारे प्राइमरी स्कूल के मास्टर, बच्चे इनका सदा से यही काम रहा है—चाहे पंचम जार्ज की जय बुलवाओ, चाहे गांधी की जय बुलवाओ।

इन जयजयकारों से कोई प्रयोजन नहीं है। मेरी दृष्टि में भारत को गांधी के सम्बन्ध में पुनर्विचार किया जाना आवश्यक है। नहीं मैं कहता हूं कि मुझसे राजी हो जायें, नहीं मैं कहता हूं कि मैं जो कहता हूं वही सच है। नहीं, यह दावा मेरा नहीं है लेकिन जो मुझे सच दिखायी पड़ता है वह कहने का मुझे हक है। और मैं समझता हूं, जो थोड़े भी बुद्धिमान हैं उन्हें सुनने का भी कर्तव्य दिखाना चाहिए। सुन लें, सोचें, गलत हो, फेंक दें। कुछ ठीक लगे, मुझसे कोई सम्बन्ध न रहा। जो आपके विवेक को ठीक लगता है वह आपका हो जाता है। लेकिन विचार का प्रवाह खुलना चाहिए। और परमात्मा को धन्यवाद दे सकते हैं हम कि गांधी जैसा बड़ा आदमी अभी-अभी हुआ हमारे बीच। उस पर अगर हम विचार कर लें तो शायद आने वाले देश के लिए सीधा और साफ रास्ता निर्मित करने में सफल हो सकें। इस धारणा से उन पर पुनर्विचार करने के लिए मैं सारे मित्रों को देश भर में आमन्त्रित करना चाहता हूं। लेकिन वे घबराये हुए हैं। कहते हैं, विचार नहीं, आप आइए, स्तुति करिये, जयजयकार करिये। मैं कहता हूं, वह कोई भी कर रहा है। आलोचना करने के लिए सोचना जरूरी है। प्रशंसा करने के लिए सोचना जरूरी नहीं होता। सच तो यह है, जो सोच नहीं सकते वे बेचारे प्रशंसा करके निपट जाते हैं। एक कुत्ता भी पूंछ हिलाकर प्रशंसा जाहिर कर देता है। कोई सोचने की बहुत जरूरत नहीं होती। लेकिन आलोचना करना हो तो सोचना जरूरी है, विचारना जरूरी है, और हिम्मत और साहस से विचार करना जरूरी है।

मेरी ये थोड़ी-सी बातें आपने सुनीं। सम्भव हुआ तो अगले महीने तीन या चार इकट्ठा···यह तो मैंने गांधी पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए, इस सम्बन्ध में बोला हूं, गांधी पर मैं क्या पुनर्विचार करता हूं यह तीन दिन में या छः लेक्चर में इकट्ठा बोलना चाहूंगा। यह तो पुनर्विचार होना चाहिए, इस सम्बन्ध में मैंने प्रस्तावना की है। पुनर्विचार क्या होना चाहिए गांधी के इंच-इंच, रत्ती-रत्ती पर

विचार करना जरूरी है। वह सम्भव हुआ तो अगले महीने मैं बोलूंगा और आपसे आशा करूंगा कि आप भी तब तक सोचेंगे, विचार करेंगे और तीन दिनों में मैं चाहूंगा कि आप लिखकर देंगे ताकि आपके प्रश्नों की बात भी हो सके।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शान्ति से सुना—और उन मित्रों को भी बहुत धन्यवाद देता हूं, क्रोध में भी वे इतनी देर शान्त रहे। थोड़ी देर क्रोधित हुए, इतनी देर शान्त रहे, यह भी कोई कम है! आप सबने मेरी बात को इतनी शांति से सुना इससे बहुत अनुगृहीत हूं। अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रमाण स्वीकार करें।

जबलपुर, दिनांक ७ दिसम्बर १९६८

२८. अनिवार्य संतति-नियमन

प्रश्न—आप तीसरी बार यहां आये हैं। आपकी दो बातों का हम पर असर रहा—एक तो आप बुद्धिनिष्ठा की हिमायत करते हैं और दूसरी विचारनिष्ठा की बात करते हैं आप। गुरु को मानने के लिए आप मना करते हैं।

मैं तो इतना कह रहा हूं कि जो खबरें मेरे बाबत पहुंचायी जाती हैं, वे इतनी तोड़ते-मरोड़ते हैं, इतनी बिगाड़कर पहुंचायी जाती हैं—जब आप मुझे कहते हैं तो मुझे हैरानी हो जाती है। वह जो पत्रकारों से नारगोल में बात हुई थी, उनसे सिर्फ मजाक में मैंने कहा; उनसे सिर्फ मजाक में मैंने यह कहा कि जिसको तुम लोकतन्त्र कह रहे हो, इस लोकतन्त्र से तो बेहतर हो कि पचास साल के लिए कोई तानाशाह बैठ जाये। यह सिर्फ मजाक में कहा। और उनकी बेवकूफी की सीमा नहीं है, जिसको उन्होंने कहा कि मैं पचास साल के लिए देश में तानाशाही चाहता हूं! मैं जो कह रहा हूं, उनमें से ही किसी ने कहा कि आप जो बातें कहते हैं, इससे तो आपको कोई गोली मार दे तो क्या हो? मैंने तो सिर्फ मजाक में कहा कि बहुत अच्छा हो जायेगा, फिर गांधी से मेरा मुकाबला हो जाये। उन सबने छाप दिया कि मैं गांधी से मुकाबला करना चाहता हूं।

तो इन सबके लिए क्या किया जाये? ह्यूमर को समझने की क्षमता भी हमारी खोती चली जा रही है। मजाक भी नहीं समझ सकते! और फिर आप सब लोग हैं, जो उनकी खबर पर खण्डन-मण्डन भी शुरू कर देते हैं!

मेरा कहना यह है कि जो लोकतन्त्र आर्थिक रूप से समानता नहीं लाता, वह सिर्फ धोखे का लोकतन्त्र है, वह लोकतन्त्र नहीं है। लोकतन्त्र सिर्फ राजनीतिक समानता की बात करे तो वह लोकतन्त्र बिल्कुल धोखे का है। क्योंकि राजनीतिक समानता अन्ततः आर्थिक समानता पर निर्भर होती है। और अगर आर्थिक असमानता है तो राजनीतिक समानता का कोई मतलब नहीं होता है। वह जिनके पास अर्थ है, उन्हीं के लिए मतलब होता है। बाकी कोई अर्थ नहीं होता।

वहां तो मैं यह कहा था कि अगर सच्चा लोकतन्त्र लाना है देश में—अगर सच में ही डेमोक्रेसी पैदा करनी है तो यह जो थोथी डेमोक्रेसी जिसको तुम समझे जा रहे हो डेमोक्रेसी, यह डेमोक्रेसी काम नहीं करेगी। आर्थिक समानता लाये बिना कोई डेमोक्रेसी खड़ी नहीं हो सकती। और आर्थिक समानता लाने के लिए अगर तुम सिर्फ डेमोक्रेटिक बातें करते चले जाते हो तो ये डेमोक्रेसी की बातें आर्थिक समानता लाने में बाधा बनती मालूम पड़ती हैं। वहां जो मैंने कहा, कुल इतना कहा कि यह जो सारी दुनिया में डेमोक्रेसी की जितनी बात चलती है—डेमोक्रेसी सोशलिस्टिक भी हो सकती है और कैपिटलिस्टिक भी हो सकती है।

प्रश्न—आपका जो स्टेटमेंट है, वह आप डिनाई नहीं करेंगे?

नहीं नहीं, डिनाई का तो कोई सवाल ही नहीं है।

प्रश्न—कम्युनिज्म है तो······?

नहीं, यह जरूरी नहीं है क्योंकि कम्युनिज्म की क्या परिभाषा करूंगा, यह मुझ पर निर्भर है। कोई महापुरुष ठेका नहीं ले लिया है कम्युनिज्म की परिभाषा का। यह तो कोई सवाल ही नहीं है कि कम्युनिज्म मैंने कह दिया तो कोई ठेका है मार्क्स का। यह सवाल नहीं है।

प्रश्न—सन्तति नियमन को आप कम्पलसरी मानते हैं?

बिल्कुल कम्पलसरी मानता हूं। मेरी बात समझ लें थोड़ा-सा—मैं कम्पलसरी मानता हूं, इसका मतलब यह नहीं है कि मैं कम्पलसरी कर दूंगा। कम्पलसरी का मतलब कुल इतना है कि मैं आपके विचार को अपील करता हूं कि कम्पलसरी हो जाने जैसी चीज है। और अगर मुल्क की मेजॉरिटी तय करती है तो कम्पलसरी होगा। कम्पलसरी का मतलब कोई माइनॉरिटी थोड़े ही मुल्क के ऊपर तय कर देगी! लेकिन मेरा कहना यह है कि अगर एक आदमी भी इन्कार करता है मुल्क में, तो भी कम्पलसरी है वह। अगर हिन्दुस्तान के चालीस करोड़ लोगों में से एक आदमी भी कहता है कि मैं सन्तति नियमन मानने को तैयार नहीं हूं और चालीस करोड़ लोग कहते हैं कि मानना पड़ेगा तो भी कम्पलसरी है।

आप अभी कम्पलसरी एजुकेशन दे रहे हैं बच्चों को, और यह नहीं कहते कि यह तानाशाही हो गयी? कि हम कहते हैं कि हर बच्चे को शिक्षा लेनी पड़ेगी, हम किसी बच्चे को अशिक्षित नहीं छोड़ेंगे। और मान लें, दस बच्चे के मां-बाप

यह कहते हैं कि हम अपने बच्चे को अशिक्षित रखना चाहते हैं, तो यह तो डेमोक्रेसी की हत्या हो गयी। क्योंकि हम अपने बच्चे को शिक्षा नहीं देना चाहते और आप डेमोक्रेसी की बात करते हैं, आप कहते हैं कम्पल्सरी एजुकेशन ! अगर कम्पल्सरी एजुकेशन हो सकता है और डेमोक्रेसी में कोई हर्जा नहीं होता तो कम्पल्सरी बर्थ-कन्ट्रोल क्यों नहीं हो सकता है ? सवाल लोकमानस को तैयार करने का है।

मैं यह नहीं कहता हूं कि मैं कह रहा हूं इसलिए कम्पल्सरी हो जाये। मैं यह कहता हूं, मुझे यह बात कम्पल्सरी होने जैसी लगती है। जैसी कि कम्पल्सरी एजुकेशन मुझे लगती है कि कम्पल्सरी एजुकेशन होनी चाहिए। किसी बाप को यह हक नहीं हो सकता कि किसी बच्चे को अशिक्षित रखने का दावा करे। और करेगा तो मुल्क इसकी फिक्र करेगा कि यह नहीं चलेगा।

आप मेरी बात नहीं समझ पा रहे हैं—अगर एक आदमी इस गांव में हैजा के कीटाणु फैलाये और हम कहें कि कम्पल्सरी रुकावट रहेगी इस बात की कि कोई आदमी बीमारी के कीटाणु नहीं फैला सकता, तो आप कहेंगे कि डेमोक्रेसी की हत्या हो गयी ! एक आदमी कहे कि हम चोरी करेंगे—कम्पल्सरी चोरी बन्द है मुल्क में। हत्या करना कम्पलसरी बन्द है। हत्या करना कोई आपकी इच्छा पर निर्भर नहीं है कि आपका जब दिल होगा तो हत्या करेंगे, नहीं होगा तो नहीं करेंगे। तो अगर मैं यह कहूं कि हत्या करना कम्पलसरी बन्द होना चाहिए······।

प्रश्न—डेमोक्रेटिक तरीके से ही ऐसा होना चाहिए।

मेरा तो सारा डेमोक्रेटिक तरीका है। मेरे पास तो बन्दूक तलवार नहीं है, आपको समझा सकता हूं, इसके अलावा क्या कर सकता हूं ! मजा यह है कि शब्दों के साथ हमारे प्राण इस तरह जुड़े हुए हैं कि शब्द से कि बेनीवलेंट डिक्टेटरशिप कहने का मतलब होता है कि डिक्टेटरशिप गयी ! और कम्युनिज्म के साथ गांठ जोड़ने का मतलब होता है कि कम्युनिज्म गया ! आप इसको थोड़ा समझने की कोशिश करें। आपकी कोई भी हुकूमत, किसी भी तरह की हुकूमत अन्ततः डिक्टेटरशिप है। क्योंकि अन्ततः वह कम्पलसरी है, निश्चित है। हां, स्टेट है जहां तक, वहां तक डिक्टेटरशिप है। उसमें कोई एक्शन रहेगा। स्टेट एज सच डिक्टेटर है। स्टेट तो किसी भी तरह की हो वह डिक्टेटर है। अब सवाल यह है इस जगह कि बेनीवलेंट हो, इतना हम कर सकते हैं स्टेट के रहते हुए। नहीं तो पूरी स्टेट जानी चाहिए। ठीक डेमोक्रेसी का मतलब तो होगा नो-स्टेट। और इसलिए जब तक स्टेट है, तब तक स्टेट बेनीवलेंट डिक्टेटरशिप है। वह किस मात्रा में बेनीवलेंट है, यह सवाल है। यानी इसमें मात्रा में भेद होंगे कि एक बिलकुल डिक्टेटोरियल है, कोई बेनीवलेन्स नहीं है वहां। एक बहुत बेनीवलेंट है, डिक्टेटोरियल नहीं है वहां।

प्रश्न—परिभाषा बदल जाती है, आप वही बातें करते हैं ?

मैं नहीं बदलता।

प्रश्न—कम्युनिज्म का तो मैं अपनी दृष्टि से अर्थ करता हूं, जैसा आप करते हैं, लेकिन लोग तो मार्क्सवाद जो है उसे ही मानते हैं ?

थोड़ा समझिये, लोगों की समझ······कम्युनिज्म के पच्चीस रूप हैं कम से कम। साइमन का भी कम्युनिज्म है, पूरिए का भी है, लेनिन का भी है, मार्क्स का भी है, बर्नार्ड शा का भी है। सारी दुनिया में पच्चीस रूप हैं। और मेरा भी कम्युनिज्म हो सकता है और आपका भी हो सकता है। कम्युनिज्म का कोई ठेका नहीं है किसी का। मैं तो चाहता हूं, स्पष्ट करना हो, क्वेश्चनिंग पैदा हो, एन्क्वायरी हो, मुझसे जवाब मांगे जायें, मैं जवाब देने को तैयार हूं। मैं तो, मेरा पूरा काम यह है कि पहले प्रश्न पैदा कर जाता हूं, फिर जवाब देने आना पड़ता है।

प्रश्न—तो गांधी और विनोबा जो कहते हैं, उसको आप पूंजीवाद क्यों कहते हैं ?

मैं उसको पूंजीवाद कहूंगा, क्योंकि मैं जिसे कम्युनिज्म कहता हूं, अगर वह उसके विपरीत पड़ता है तो उसको पूंजीवाद कहूंगा। वह गांधी विनोबा को कम्युनिज्म होगा, इससे मुझे क्या लेना-देना है ! मेरा कम्युनिज्म आपको पूंजीवाद मालूम पड़ सकता है, इसमें क्या फिक्र की बात है ! यह तो हमारे विचार करने की बात हुई। मैं क्या कह रहा हूं, वह उसको क्या नाम देते हैं, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। नाम देने से कुछ फर्क नहीं पड़ता।

प्रश्न—आप अपना नाम लेते हैं, इससे फर्क पैदा होता है। आपका यह ख्याल है कि समाज कैसा होना चाहिए। और कम्युनिज्म का एक ख्याल आया है चलता हुआ—मार्क्स से लेकर स्टैलिन तक आया है, माओ तक आया है। तो अभी जब हम यही शब्द इस्तेमाल करते हैं तो······।

शब्द का तो भोगीलाल भाई, ऐसा मामला है कि शब्द हम हमेशा बासे उपयोग करते हैं। ईश्वर शब्द का भी उपयोग करिये तो हजार लोग उपयोग कर चुके हैं। हजार तरह से उपयोग कर सकते हैं। और हजार तरह से उपयोग किया गया है। और आज जब आप उसका उपयोग करियेगा, तो उसके पीछे हजारों डेफनिशंस खड़ी होंगी। आप एक भी शब्द का ऐसा उपयोग नहीं कर सकते जो कि हजार तरह से उपयोग नहीं किया जा चुका है।

प्रश्न—आप जब कोई दूसरी चीज आगे रखना चाहते हैं तो आपको यह स्पष्ट करना चाहिए कि दूसरे लोगों के दिमाग में पहले यह तय हो जाये कि यह जो पुरानी चीज है, यह बासी नहीं है।

मैं वही कर रहा हूं। मेरे साथ कठिनाई तो यह है न, कि मेरे पास न तो कोई स्टॉफ है कि जो सारा हिसाब-किताब रखता हो फिलहाल, अभी मैं जो बोलता हूं

उसे। अकेला आदमी हूं। जो बोलता हूं, उस पर क्वैश्चनिंग खड़ी होती है, तो डिफाइन करता हूं। डेफनिशन पर क्वैश्चनिंग खड़ी होती है तो उस पर डिफाइन करता हूं। चलेगा, दो-चार, दस साल बातचीत करने के बाद साफ हो सकेगा आपको कि मैं क्या कह रहा हूं।

प्रश्न—मैं पहले भी एकाध दफे सुना आपको। आज और कल भी मैंने सुना। मुझे यह ख्याल आया कि आप जो अनिष्ट है समाज में, जो ढोंग चल रहा है, जो ऊपर-ऊपर चल रहा है, उस पर आप प्रहार करते हैं, यह ठीक है। फिर भी क्या होता है कि आप जब एक ही चीज रखते हैं—जैसे आप आज आखिर में कहे कि कल मैं दूसरी बात बताऊंगा। लेकिन कल तो आप क्या बतायेंगे, वह मैं नहीं जानता। लेकिन कल और आज आपको सुना तो मेरे मन में जो सवाल पैदा हुआ वह यह हुआ कि आप एक बात करें कि सत्य है, प्रेम है, ब्रह्मचर्य है, उनका बहुत रूप हो सकता है। एक ब्रह्म का भी हो सकता है। एक सत्य का भी हो सकता है। लेकिन आपका जो बोलने का तरीका है और सुनने जो आ जाते हैं और ताली बजाते हैं, वे तो बिल्कुल ताली बजाते हैं। वे यह नहीं पकड़ते कि आप क्या चाहते हैं। आप जब प्रकाश डालते हैं तो वे खुश हो जाते हैं और जो व्याख्या आपकी चलती है, वह करीब-करीब इस तरीके से होती है जैसे कि आप पूरे-पूरे सत्य को, अहिंसा को, ब्रह्मचर्य को आप इन्कार कर रहे हैं। और आखिर में लोगों को यह लगता है कि यह तो बड़ा क्रान्तिकारी आया है। इस तरह से एक इम्प्रेशन पैदा होती है।

आप अपनी बात करिये। कौन सोचकर आता है, नहीं आता है, यह आप हिसाब मत लगाइये। कौन झूठी ताली बजा रहा है, कौन खुश होकर बजा रहा है यह आप हिसाब मत लगाइये। यह हिसाब लगाना मुश्किल है। वह तो बिल्कुल मुश्किल है कि कौन आदमी क्या कर रहा है।

प्रश्न—कल जो आपने कहा कि बाहर का जो रहता है, वह हम बताने के लिए करते हैं। और जो अन्दर की बात है, अन्दर क्या है, वह छिपा कर मत रखो, जिसकी आप बात कर रहे हैं। तो जो भक्त हो गये हैं, जो ऋषि हो गये, धर्मात्मा हो गये हैं। सब एक समान नहीं होंगे। कोई क्रोधी होगा, और कोई नहीं भी क्रोधी होगा। और कोई ऐसे होंगे, जो सचमुच अपने जीवन को परिवर्तन करने के लिए कोशिश कर रहे हैं। तो यह दोनों की जो शुभ अशुभ दृष्टि है, इसको हम कहें कि आसुरी और दैवीय चलती है जो प्रकृति, वह दोनों चलती है। आज आप देखते हैं और मैं देखता हूं और बहुत लोग देखते हैं कि आसुरी ज्यादा, अशुभ ज्यादा है। प्रहार करते हैं, लेकिन दूसरी चीज जो है, वह सच है।

यह हमेशा से ज्यादा है, आज ज्यादा नहीं हो गयी है। और आज शायद कम है। सतयुग-वतयुग कभी रहा नहीं है। और जिन ऋषियों-मुनियों की आप बहुत बातें करते हैं, उनमें सौ में निन्यानवे प्रतिशत सरासर धोखा है। मेरा मतलब यह है कहने का कि ऋषि-मुनि का भी ढांचा तैयार है, और ढांचे में जो फिट हो जाता है, वह ऋषि-मुनि हो जाता है। और कोई ऋषि जैन के ढांचे में ऋषि मालूम न पड़ेगा। और वही हिन्दू के ढांचे का ऋषि जैन के ढांचे में ऋषि नहीं मालूम पड़ेगा। कृष्ण को जैन नर्क भेज देते हैं कि यह आदमी हिंसा करवाता है, महायुद्ध करवाता है, महाभारत करवाता है। और हिन्दू उसको भगवान, परम अवतार मानते हैं। मेरा मतलब समझ रहे हैं आप? मेरा कहने का मतलब यह है कि किसको आप ऋषि कहते हैं, किसको आप मुनि कहते हैं, यह आपकी परिभाषा की बातें हैं। इनमें कोई बहुत सार नहीं है। इनमें कोई बहुत अर्थ नहीं है।

मेरा जोर इस बात पर है कि अब तक ऋषि-मुनि को भी तौलने का आपका ढंग बाहर से है। और सच बात तो यह है कि भीतर से तो तौला नहीं जा सकता। इसलिए मेरी दृष्टि यह है कि जो ऋषि मुनि तुल जाते हैं आपकी परिभाषाओं में, वे अक्सर इसलिए तुल जाते हैं कि वे नहीं हैं। अगर आज वे हों तो आपकी तौल में आना बहुत मुश्किल है। मेरा कहना यह है कि हमारी जो सोसाइटी है, जो पूरी की पूरी धारा है हमारी तौलने की, हमारे तो क्राइटेरियन बंधे हुए हैं और क्राइटेरियन में जो बैठ जाता है, सो ऋषि हो जाता है हमारे लिए।

और मेरी समझ अपनी यह है कि जो भी क्राइटेरियन में आपके बैठने को राजी होता है। आपके क्राइटेरियन में बैठने के लिए जो राजी होता है या आपके क्राइटेरियन में बैठने की चेष्टा करता है, उस आदमी के पास ऑथेंटिक व्यक्तित्व ही नहीं है। नहीं तो आपके क्राइटेरियन में बैठेगा नहीं वह। और अगर बैठेगा भी तो मरने के बाद हजार दो हजार साल लग जायेंगे, तब आपके क्राइटेरियन में बैठेगा, जब तक कि आप उसके योग्य क्राइटेरियन खड़ा न कर लेंगे। जीसस अगर जिन्दा है तो ऋषि मालूम नहीं पड़ेगा, आवारा मालूम पड़ेगा जिन्दा में तो। सुकरात जिन्दा में आवारा और अपराधी मालूम पड़ेगा और लगेगा कि चरित्र बिगाड़ रहा है, लोगों को खराब कर रहा है। मरने के बाद ऋषि-मुनि बन पायेगा।

प्रश्न—मरने के बाद समझ में आया।

समझ में नहीं आया। समझ में आ जाता तो दुनिया आज तक सुकरात हो गयी होती। समझ में नहीं आया। समझ में कुछ नहीं आया। मरे हुए आदमी पर ढांचा बिठालने में आपको सुविधा है। क्या समझ गये आप सुकरात को? समाज क्या समझ गया? मैं तो यह कह रहा हूं कि सुकरात अभी भी पैदा हो तो वही अड़चन आप खड़ी करेंगे जो उस दिन खड़ी की थी। जरा भी फर्क नहीं पड़ेगा। मैं आपसे यह पूछता हूं कि सुकरात—समझ लीजिये आप, उदाहरण के लिए कहता हूं—सुकरात अभी खड़ा हो जाये तो सोसाइटी एक्जेक्ट वही अड़चन

खड़ी करेगी, जो उस दिन खड़ी की थी। इसमें जरा भी फर्क नहीं पड़ेगा।

इसको जरा समझिये। दम्भी होता तो आपको सूली लगाने की जरूरत न पड़ती। आप तो ऋषि-मुनि मानकर पूजा शुरू कर देते दम्भी होता तो। जिस दिन से आपने पूजा शुरू की है, उस दिन से जीसस की आपने दूसरी शक्ल बना ली, जो कभी थी नहीं। उसकी शक्ल को तो आप सूली ही लगाते हैं। जिस शक्ल को आप पूज रहे हैं, वह बिल्कुल झूठी है और आपकी खड़ी की हुई है। मेरा मतलब आप समझे न! मैं यह कह रहा हूं कि जीसस जैसा आदमी था, उसकी तो कभी आपने पूजा की नहीं। और जीसस अभी खड़ा हो जाये तो वह जीसस का जो तगमा लगाये घूम रहा है, वह भी उसकी पूजा करने को अभी भी राजी नहीं है।

सारा का सारा एस्टेब्लिशमेंट पॉजेटिव के केन्द्र पर खड़ा होता है। सारा इन्स्टीट्यूशन, ऑर्गनाइजेशन, संस्था, सम्प्रदाय पॉजिटिव पर खड़ा होता है। मेरी अपनी दृष्टि यह है कि आदमी में जो क्रान्ति आती है, वह पॉजिटिव से कभी नहीं आती, वह हमेशा वाया निगेटिव से आती है। पॉजिटिव शेष रह जाता है, पॉजिटिव में परिवर्तन नहीं होती है। वह तो जो गलत है, उसको हम काट डालते हैं। जो नहीं कट सकता है, वह शेष रह जाता है। जैसे हमने सोने को डाल दिया आग में तो जो कचरा है वह जल जाता है, जो नहीं जलता है वह सोना है, वह बच जाता है।

मेरी बातचीत में क्या तकलीफ होती है कि जब भी मैं खण्डन कर रहा हूं तो आखिर शब्दों का ही उपयोग तो करूंगा! और हम सब के माइंड पॉजिटिव के साथ इस बुरी तरह से बंधे हैं कि फौरन पॉजिटिव को निकाल लेते हैं, निगेटिव की फिक्र छोड़ देते हैं। पॉजिटिव को फौरन निकाल लेते हैं। एकदम हमारा माइंड जो है न, माइंड की आम वर्किंग जो है, वह पॉजिटिव के लिए है और मेरा कहना यह है कि वही माइंड ऊपर जाता है, जिसकी वर्किंग निगेटिव हो जाती है। पॉजिटिव जो है, वह तो जो रिमेनिंग है, वह हमेशा पॉजिटिव है। आपको जो जरूरत है, वह जरूरत है कि आप कितने माइंड को निगेटिव बना सकते हैं। माइंड का कितना निगेशन आप कर सकते हैं ताकि वही रह जाये, दैट कैन नॉट बी निगेटिव, दैट इज पॉजिटिव। दैट विच कैन नॉट बी निगेटिव।

और फर्क क्या है? हम समझते हैं पॉजिटिव निगेटिव का विपरीत है। निगेटिव पॉजिटिव का विपरीत नहीं है। पॉजिटिव जो है, वह निगेशन का विपरीत नहीं है, नॉट निगेशन ऑफ द निगेटिव। पॉजिटिव का वह मतलब नहीं होता है। पॉजिटिव का मतलब है, दैट विच रिमेन आफटर द निगेटिव। वह विपरीत नहीं है। मेरा मतलब समझे न! लेकिन जो निगेटिव हो जायेगा तो जो शेष रह जायेगा वह पॉजिटिव है। इसलिए दो रास्ते हैं। उस शेष का अन्दाजा बिल्कुल

मिलता है—अन्दाजा बिल्कुल मिलता है। वह पॉजिटिव इशारा नहीं कर सकते। ना, ना, वह सब निगेटिव इशारा करेंगे। वह कहेंगे, 'नाट दिस, नाट दैट' और तब जो शेष रह जायेगा, उस इशारे में आप चलेंगे न साथ। तो शेष रह जायेगा कुछ। उस शेष की तरफ आपको ही इशारा होगा। वह इशारा कोई नहीं करेगा। क्योंकि जैसे हमने इशारा किया, वह फॉल्स हुआ। हमारा मन चाहता है कि इशारा कोई जल्दी से शुरू कर दे। निगेटिव बात मत करो।

प्रश्न—दो एक्सट्रीम हैं—एक स्कूल से रीडिंग करते हैं एजुकेशन में। एक-एक चीज बताते हैं बच्चे को कि यह करो यह न करो। और दूसरी एक्सट्रीम यह रहती है कि बच्चे को छोड़ देते हैं कि उसको कुछ करना है, कुछ ऊपर लाना है, कुछ सिखाना है, वह मां-बाप नहीं करते। दो एक्सट्रीम रहते हैं। आप तीसरी एक्सट्रीम पर पहुंच गये।

नहीं, मैं एक्सट्रीम की बातें नहीं कर रहा हूं। मैं तो यह कह रहा हूं···मैं एक्सट्रीम की बात नहीं कर रहा। मैं यह नहीं कह रहा कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूं। मैं तो बहुत कर रहा हूं। लेकिन जो भी कर रहा हूं, वह समझने की बात है। मैं आपकी बात नहीं कर रहा। मैं यह कह रहा हूं कि सत्य की तरफ, जो है, उसकी तरफ जितने भी इशारे हैं, वे सभी इशारे निगेटिव हैं, इशारे कभी पॉजिटिव नहीं हो सकते। वह कभी हो ही नहीं सकते पॉजिटिव।

आज तक जगत् में जिसने भी उस तरफ कोई भी श्रम किया है, वे सब निगेटिव हैं—चाहे उपनिषद का हो, चाहे बुद्ध का हो, चाहे लाओत्से का हो, चाहे झेन फकीरों का हो, शून्य से आगे नहीं जाता, वह जा ही नहीं सकता। वह आपको नथिंगनेस तक ले जाकर छोड़ा जा सकता है। उसके बाद, उस तक आपको यात्रा करनी पड़ेगी। वह एग्जिसटेंस से आती होगी, इससे मुझे मतलब नहीं है। वहां नहीं आयेगी, अगर नागार्जुन के साथ चलने की हिम्मत है तो नहीं आयेगी। नागार्जुन के साथ चलने की तो बड़ी हिम्मत चाहिए, क्योंकि वह तो खण्डन ही खण्डन करता चला जायेगा। यानी आखिर में आप उससे पूछोगे, आप खण्डन तो कर रहे हो, तो वह कहेगा कि मैं खण्डन ही नहीं कर रहा हूं। वह एक आखिरी खण्डन यह करेगा, मैं हूं भी नहीं। आप उससे कहो, आपने इतना तो कहा कि शून्य है, वह कहेगा मैं नहीं कहता। मैंने यह भी नहीं कहा।

लाओत्से ने जिन्दगी भर कुछ भी नहीं लिखा। फिर बूढ़ा हो गया अस्सी साल का तो चीन छोड़कर भाग रहा था। उसको पकड़ लिया एक पोस्ट पर। और चीन के राजा ने खबर भेजी कि लाओत्से जा रहा है चीन छोड़कर, तो वह हमारा सब ज्ञान लिए जा रहा है, जो उसने पाया है। उसे वापस रखवा लो। तो लाओत्से ने किताब लिखी। इस किताब की भूमिका में जो शब्द लिखे हैं, वे बहुत ही अद्भुत हैं। दुनिया की किसी भूमिका में नहीं है। लाओत्से ने लिखा है कि मैं

मजबूरी में लिख रहा हूं और यह पहले कह देना चाहता हूं कि जो भी कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं हो सकता । जो भी लिखा जा सकता है, वह सत्य नहीं हो सकता । तुमने लिखा कि असत्य हुआ, तुमने कहा कि असत्य हुआ । अब तुम मुझे मजबूर कर रहे हो, अब मैं लिखता हूं । लेकिन इसको समझ कर किताब को पढ़ना । जो भी कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं हो सकता । वह कह रहा है, अब जो तुम पढ़ो इसे समझकर पढ़ना ।

प्रश्न—यह तो यूक्युलिट की व्याख्या है ?

यूक्युलिट की व्याख्या का सवाल नहीं है यहां । यूक्युलिट का मामला नहीं है यह बिल्कुल । बिल्कुल उल्टा मामला है । यूक्युलिट तो परिभाषाएं कर रहा है उनकी, जिनकी परिभाषाएं नहीं हो सकती हैं। और यहां तो मामला यह है कि उनकी बात की जा रही है, जिनकी परिभाषा कभी हुई नहीं और कभी हो भी नहीं सकती । और उनकी बात करनी जरूरी है, जिनकी बात नहीं की जा सकती। तो फिर रास्ता क्या है ? तो रास्ता तो सिर्फ यह है कि जिनकी बात की जा सकती है, उनको कहा जाये कि यह नहीं है, यह नहीं है । और अल्टिमेटली उस जगह ले जाया जाये, जहां माइंड की सारी क्लिंगिंग छूट जाती है, क्योंकि एक-एक चीज हम छीनते चले जाते हैं वहां, कि यह भी नहीं है । छीनते चले जाते हैं । आखिर छीनना उस जगह पहुंच जाता है कि हाथ में कुछ भी नहीं बच जाता । फिर छोड़ देते हैं उस आदमी को कि यह है । और अब अगर यह आदमी इतने निगेशन में चलने की हिम्मत रखता हो तो जरूर वहां पहुंच जाता है, जहां है । नहीं तो नहीं पहुंच पाता ।

और हमारी जो सारी ट्रेनिंग है, इफिकल माइंड, पॉजिटिव, वह कहता है कि ब्रह्मचर्य की साधना बताइए । मैं कहता हूं सेक्स नहीं है, वहां ब्रह्मचर्य है । लेकिन ब्रह्मचर्य की कोई सीधी परिभाषा आपने बतायी कि आदमी उसे साधना शुरू करता है । और साधना का कुल परिणाम होता है कि वह सेक्स को दबाना शुरू करता है । सेक्स को समझिए और सेक्स को निगेट करने की स्थिति तक माइंड को ले जाइए । और जहां सेक्स निगेट हो जायेगा, वहां जो शेष रह जायेगा, वह ब्रह्मचर्य है। और उसकी कोई बात नहीं की जा सकती । मैं निरन्तर सारी चेष्टा कर रहा हूं, किसी कैम्प में आप थोड़ा वक्त निकालिये ।

प्रश्न—गांधी के अन्दर जो सत्व है, उनके अन्दर जो सत्य है, वह जो चीज है वह तो रहती है ?

इसको आप पूरा सुन लें। मैंने यह नहीं कहा कि ब्रह्मचर्य नहीं साधा जा सकता । मैंने कहा ब्रह्मचर्य साधा जा सकता है । लेकिन ब्रह्मचर्य की साधना करने वाले अगर संतति-नियमन के विरोध की बातें करते हैं, तो नासमझी की बात करते हैं । मैंने जो कहा, उसको आपने समझ लिया न पूरा ? अगर मैं यह कहूं

कि अन्तर्दृष्टि साधी जा सकती है, तो अन्तर्दृष्टि साध ली, फिर संतति-नियमन की कोई जरूरत नहीं । तो फिर मैं झंझट की बातें कर रहा हूं । फिर मुझसे पूछा जा सकता है कि कितने लोग अन्तर्दृष्टि साधकर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होंगे ? और ये बच्चे पैदा होते जायेंगे, इनका जिम्मा कौन लेगा ? लेकिन मैं यह कह नहीं रहा हूं । मैं यह कह रहा हूं कि जिनको अन्तर्दृष्टि साधनी हो, वे साधें, साधी जा सकती है । जिनको ब्रह्मचर्य साधना है साधें, वह भी साधा जा सकता है, वह भी सत्य है । लेकिन मैं कह रहा हूं कि इसके इम्प्लीकेशन में आप संतति-नियमन के रोक की बातें मत करिये, यह बिल्कुल ही एब्सर्ड बात है । इसका इम्प्लीकेशन भी नहीं हो सकता । संतति-नियमन का अलग प्रयोजन और अर्थ है और बृहत्तर समूह के लिए वही सार्थक और अर्थपूर्ण है । और गांधीजी की बातचीत या इस तरह की ब्रह्मचर्य की कोई बातचीत वहां लागू करना समाज को गड्ढे में ले जाना और खतरे में ले जाना है । कोई मना नहीं करता, ब्रह्मचर्य आप साधिये । यह सवाल नहीं है । जो मैं कह रहा हूं, वह यह नहीं कह सका कि ब्रह्मचर्य नहीं साधा जा सकता, और यह मैं नहीं कह रहा कि हजारों साल में किसी ने भी ब्रह्मचर्य नहीं साधा । मैं कह यह रहा हूं कि यह ब्रह्मचर्य की साधना संतति को रोकने के लिए सार्थक अभी पांच हजार साल में नहीं हो सकी, पचास हजार साल में भी नहीं हो सकती । संतति रोकनी हो तो संतति-नियमन का ही उपयोग करना पड़ेगा । ब्रह्मचर्य से यह होने वाला नहीं है । मैं यह नहीं कहता कि ब्रह्मचर्य नहीं साधा जा सकता, लेकिन मेरा कहना यह है कि ब्रह्मचर्य की साधना के आधार पर संतति-नियमन की बातें हल नहीं हो सकतीं ।

प्रश्न—उनको जो सच्चा लगता है और उनके अन्दर का जो सत्य है, वह तो ठीक है ही ।

वह हो तभी न !

प्रश्न—आप अपनी मान्यता कह रहे हैं।

मैं अपनी ही मान्यता कहूंगा, उनकी मान्यता तो नहीं बोलूंगा । मैं तो अपनी ही मान्यता बोलूंगा । जहां है, सत्य है । जहां है, उसकी तो मैं बात ही कर रहा हूं । और जहां वह नहीं दिखायी पड़ रहा है, वहां भी इसलिए बात कर रहा हूं कि वहां आपको दिखायी पड़ जाये कि वहां नहीं है, तो आप खोज सकें, जहां वह है ।

प्रश्न—हमारे मन में इतने प्रश्न नहीं उठते ।

आपको प्रश्न उठ रहे हैं मेरी बात के कारण ही या आप कुछ बात पकड़े बैठी हैं, उसके कारण ? मेरे पास आप ही थोड़े आती हैं, मेरे पास दूसरे लोग भी आते हैं, जिनके मन में यह प्रश्न नहीं उठता । तो मैं जानता हूं । एक जगह मैं बोलता हूं तो आप ही नहीं आयी हैं मुझसे मिलने, बच्चू भाई भी मिलने बैठे हुए हैं, डॉक्टर भी मिलने बैठे हुए हैं, लेकिन आप जो प्रश्न लेकर आयी हैं, वह डॉक्टर

प्रश्न लेकर नहीं आते। उसका मतलब है, प्रश्न मेरे बोलने से नहीं उठता है, आपकी पकड़ से उठता है। डॉक्टर का दूसरा उठता है, आपका तीसरा उठता है। मैं तो एक ही बात बोलता हूं, लेकिन तीन आदमी तीन प्रश्न लेकर आये हैं। वह आपकी पकड़ से आते हैं। उलझन जो आती है, वह आपकी पकड़ से आ रही है। और आपकी कोई पकड़ न हो तो कोई उलझन नहीं है। और आपकी कोई पकड़ न हो तो समझना एकदम आसान और सीधा है। हो सकता है मेरी बात गलत हो तो वह भी समझना आसान पड़ेगा। उलझन नहीं पैदा होगी। अगर मेरी बात गलत है और आपकी कोई पकड़ नहीं है तो आपको इतना साफ दिखायी पड़ जायेगा कि यह बात गलत है। उलझन फिर पैदा नहीं होगी, बात खत्म हो जायेगी।

प्रश्न—जो कुछ भी पढ़ा है, सोचा है दिमाग में उसका पिण्ड है। वह पिण्ड अलग-अलग है, इसलिए अलग-अलग रिएक्शन करता है। लेकिन उस पिण्ड से जांचा जाता है कि यह ठीक है कि नहीं।

उस पिण्ड से अगर आप जांचते हैं तो आप कभी नहीं जांच पाते हैं। इसको थोड़ा समझ लीजिये। पिण्ड है। समझने के दो रास्ते हैं। एक तो वाय पिण्ड। पिण्ड का क्या मतलब होता है? सामाजिक नहीं, आपके ऊपर जितने भी संस्कार हैं, आपके माइंड पर जितने भी संस्कार हैं, सब कण्डीशनिंग हैं। यह जो आविर्भाव है, इससे आविर्भाव नहीं होता है, इससे आविर्भाव ढंकता है। यही तो सारा झगड़ा है। इसको थोड़ा समझ लें कि वह जो हमारी कण्डीशनिंग है, वह हमने सुना है, पढ़ा है, सोचा है, समझा है, वह हमारे दिमाग की कण्डीशनिंग है। अब अगर मेरी बात आप सुन रहे हैं तो दो तरह से सुन सकते हैं। वैक्यूम तो आप नहीं होते हैं, मैं जानता हूं। वह तो अल्टिमेट बात है कि वैक्यूम हो जायें तो मुझे सुनने आने की जरूरत नहीं है।

प्रश्न—और आपको कहने की भी जरूरत नहीं है।

नहीं, मुझे कहने की जरूरत हो सकती है। वह दूसरी बात है। मुझे कहने की जरूरत हो सकती है, नहीं तो बुद्ध को, महावीर को, किसी को कहने की कोई जरूरत नहीं है। अभी वैक्यूम को समझ लीजिये थोड़ा। यह जो कण्डीशनिंग है, इसको दो तरह से आप सुन सकते हैं। एक तो रास्ता यह है कि कण्डीशनिंग मेरे बोलते वक्त, आपके सुनते वक्त, बीच में हो; कण्डीशनिंग एक कोने में, मेमोरी में पड़ी हो और आप स्ट्रेट और इमीजिएट, सीधा कन्टेक्ट कर रहे हो तो समझना आसान होगा। वैक्यूम का अभी तो इतना ही मतलब हो सकता है अभी, कि कण्डीशनिंग जो है, वह बीच में बैरियर की तरह खड़ी है, लेकिन वह खड़ी होती है आमतौर से। बहुत कठिन है उसको भी एक तरफ हटाना, क्योंकि अगर मैंने गांधीजी के लिए कुछ भी कहा तो आप उसको ऐसा नहीं सुन रहे हैं, जैसा मैं क्राइस्ट के सम्बन्ध

में कुछ कहूंगा तो सुनेंगे।

अगर मैं महावीर के सम्बन्ध में कुछ कह रहा हूं तो जैन वैसे नहीं सुनता है, जैसा कि अजैन सुन लेता है। अजैन के लिए कोई कण्डीशन नहीं है। वह चुपचाप देखता है कि ठीक है, महावीर के लिए कुछ कहते हैं, सुनता है वह। यह उसकी डायरेक्ट लिसनिंग हो जाती है। जैन तो बेचैन हो गया है कि महावीर के लिए, मेरे भगवान के लिए! अब यह मामला महावीर का नहीं रहा, यह इसका भी हो गया। अब यह बीच में खड़ा हो गया। यह जो बीच में खड़ा हो जाना है, यह तो नब्बे प्रतिशत कन्फ्यूजन तो यह पैदा करता है। फिर हम कुछ जो नहीं कहा गया है, वह भी सुन लेते हैं। कुछ जो नहीं कहा गया है, वह अर्थ भी निकाल लेते हैं और वह हमें इतना सही मालूम पड़ता है कि हमने सुना। और हमें कल्पना में भी नहीं हो सकता कि यह नहीं कहा गया है और यह नहीं सुना गया। कुछ छूट जाता है, कुछ जुड़ जाता है, यह सब पैदा होता है। इस माइंड को मैं कहता हूं कि यह माइंड लिसनिंग नहीं करता है। यह नुकसान पहुंचाता है और इससे नुकसान की सारी ताकत पैदा होती है। यह जो मेमोरी है हमारी, वह मेमारी में होनी चाहिए। वह रहेगी, वह जायेगी नहीं। लेकिन जब मैं सुन रहा हूं, जब भी मैं सुन रहा हूं, तब वह बीच-बीच में खड़ी नहीं हो जाना चाहिए—एक बात। और वह जो आप कहते हैं न, वैक्यूम जो है, एक घटना आपको कहूं, उससे ख्याल में आ जाये।

फकीर था मुसलमान फरीद। वह गया यात्रा पर। कबीर के एक गांव के पास से निकला मगहर से। तो फरीद के साथ कोई सौ लोग थे। उन्होंने कहा कि कबीर का आश्रम आता है, अगर यहां रुक जायें और कबीर से थोड़ी आपकी बातचीत होगी तो हमें बड़ा आनन्द होगा कि क्या बात होती है। फरीद ने कहा कि रुक तो जरूर जायेंगे, लेकिन बात होनी मुश्किल है। उधर कबीर के भी मित्रों को भी पता चला आश्रम के कि फरीद गुजरने वाला है। तो आप रोक लें फरीद को। फरीद के साथ बड़ा आनन्द आ जायेगा, दो दिन चर्चा हो जायेगी। कबीर ने कहा, चर्चा होनी मुश्किल है। रोक लो, तो जरूर रोक लो। बैठेंगे, हंसेंगे, चर्चा बहुत मुश्किल है। चर्चा क्यों होगी मुझसे? उन्होंने कहा कि वह तो फरीद आयेगा तो समझ में आ जायेगा।

फरीद आया, कबीर लेने गये, गले मिले वे आकर बैठे वहां, वे गले मिले, दो दिन रहे साथ। चलते वक्त आंसू बह गये दोनों को, लेकिन बात नहीं हुई। शिष्य सब घबरा गये। दो दिन में बोर्डम हो गयी, यह क्या पागलपन हो गया। बैठे हैं बैठे, और उन दोनों की वजह से दूसरे भी न बोल पाये कि वे क्या सोचेंगे।

जैसे ही छूटे तो फरीद से मित्रों ने पूछा कि क्या पागलपन किया कि तुम चुप ही रह गये, बोले नहीं? फरीद ने कहा जो बोलता, वह नासमझ सिद्ध हो जाता।

मैं बोलता तो मैं बुद्धू हो जाता। क्योंकि वह आदमी शून्य हो गया है। तो कबीर क्यों नहीं बोला ? तो फरीद ने कहा कि कबीर जानता है कि मैं शून्य हो गया हूं। दो शून्य क्या बोल सकते हैं ! बोलने को कुछ भी नहीं बचता। और फरीद से मित्र पूछने लगे कि हमसे तो आप बोलते हैं। हमसे तो आप बोलते हैं ! फरीद ने कहा, जरूर बोलता हूं, क्योंकि तुम शून्य नहीं हो। और तुम तभी तक सुन रहे हो, जब तक तुम शून्य नहीं हो। जिस दिन तुम शून्य हो जाओगे, न तुम सुनोगे।

दो शून्य खड़े हों तो बोलना, सुनना बन्द हो जायेगा, लेकिन एक शून्य का बोलना चल सकता है। एक शून्य का बोलना चल सकता है। वह एक अन्तर्व्यथा है उसकी। जो उसे दिखायी पड़ गया है, जो उसने जान लिया है, जो उसे हो गया है, उसकी सारी तड़प है कि वह कैसे हो जाये किसी को। उसकी सारी तड़प में वह कई दफा आपको बहुत ज्यादा बुजदिल मालूम पड़ेगा। उसकी सारी तड़प में कई दफा ऐसा लगेगा कि हमारी बहुत मान्यताओं को तोड़ दिया है, हमारे दिल को दुख पहुंचा दिया है, हमें चोट कर दी है। पर उसकी पीड़ा को तुम नहीं समझ सकते हो कि वह जान ही रहा है कि जितनी तुम्हारी पकड़ टूट जाये, जितना तुम खाली हाथ हो जाओ। उतनी ही वह घटना घट जाये, वह हैपनिंग हो जाये, जिसकी कि चिन्ता है।

यह बिल्कुल ठीक है कि हम एकदम शून्य होकर नहीं सुन सकते हैं, लेकिन हम करीब-करीब शून्य होकर सुन सकते हैं। और करीब-करीब शून्य होने का मतलब यह है कि कोई बीच में नहीं होना चाहिए। वह जो आप कहती हैं, बिल्कुल ठीक कहती हैं। मेरी बात से बहुत-सी चिन्ता, बहुत-सा विचार, बहुत-से प्रश्न खड़े हो जाते हैं। जरूर मेरी बात कुछ ऐसी है, जिससे ऐसा होगा। लेकिन वह उतना ही नहीं है कारण, उससे भी ज्यादा कारण यह है कि हमारी सबके मन की अपनी पकड़ पर कहीं भी भेद पड़ता है, चोट पड़ती है तो स्वाभाविक है कि खड़ा हो जाये। और मैं चाहता हूं कि खड़ा हो जाये। मैं चाहता भी हूं कि खड़ा हो जाये, क्योंकि खड़ा हो जाये तो डायलॉग शुरू होता है। तो हम सोचते हैं, विचार करते हैं, बात करते हैं। आज नहीं, कल लड़ेंगे, झगड़ेंगे, कुछ होगा, लेकिन उससे कुछ रास्ता बनेगा। अगर कुछ रास्ता उससे बनता है। और अगर लड़ने-झगड़ने, सोचने-विचारने के बाद अगर हम थोड़ी भी ज्यादा अण्डरस्टैंडिंग में छूटते हैं— जरूरी नहीं है कि मेरी बात सही हो जाये, लेकिन मेरा मानना यह है कि प्रॉसेस से गुजरने पर अण्डरस्टैंडिंग बढ़ती है। चाहे मेरी बात गलत सिद्ध हो, चाहे सही सिद्ध हो, इससे फर्क नहीं पड़ता है। हरिवल्लभ और मैं दो घण्टे बातचीत करूं और लड़ भी लें बातचीत में, तो भी हम दो आदमी दो घण्टे के बाद ज्यादा समझदार लौटते हैं। मेरा मतलब यह है कि अगर उस प्रॉसेस से गुजरने की थोड़ी भी

इच्छा हो तो हम उससे समझदार लौटते हैं।

और ऐसा हो गया है कि हिन्दुस्तान में भोगीलाल जी कि डायलॉग जैसी चीज ही नहीं रह गयी। इसलिए ऐसी हैरानी मालूम पड़ती है कि डायलॉग तो नहीं है, ज्यादा से ज्यादा गाली-गलौज हो सकती है। अगर कोई ज्यादा बातचीत करोगे तो गाली-गलौज फौरन हो जायेगी। डायलॉग वगैरह नहीं हो पाता। यानी ऐसा सम्भव ही नहीं रह गया है कि हम बैठें, हम चर्चा करें, मुल्क में हवा चले बात करने की, गांव-गांव में अड्डे हों, जहां लोग जिन्दगी के बड़े मसलों पर कुछ बात करते हों, लड़ते-झगड़ते हों, पक्ष-विपक्ष करते हों, वह सब खत्म हो गया। और ऐसी पिटी-पिटायी हालत हो गयी कि जो हमने पकड़ लिया वह दोहराये चले जाते हैं, रोज-रोज उसको ! न उसको कोई इन्कार करता है। यानी मुझे तो कई दफा ऐसा लगता है कि आप बिल्कुल ठीक कह रहे हो, तो भी लगता है कि इन्कार कर दो इस आदमी को। थोड़ी बातचीत तो हो ! मुझे कई दफा ऐसा लगता है कि आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, लेकिन मुझे लगता यह है कि यह ठीक कहा हुआ कहीं सिर्फ पकड़े हुए तो नहीं हैं ? अगर पकड़ा हुआ है तो बकवास में गिर जायेगा और नहीं पकड़ा हुआ है तो टिक जायेगा, हर्जा क्या है ? मुझे तो लगता यह है कि इस वक्त एक-एक चीज पर हमला कर देने जैसी हालत है।

प्रश्न—आप जिस तरह से अपनी बात रखते हैं, उसमें ओव्हरफ्लो दिखायी पड़ते हैं। जो चीज इतनी कम्पलीकेटेड है उसको, जो कथानक, एनेकडोट होते हैं, वह इतना देते हैं, और इस तरह से देते हैं कि उसका एक दूसरा ही रूप प्रगट होता है और जो सीमित चीज है, उसे समझने के लिए लोगों को अन्तर ढूंढना पड़ेगा।

आप ऐसा सोचते हैं भोगीलाल जी, लेकिन मेरी समझ यह है कि जो एनेकडोट मैं कहता हूं, उसको आप सिम्पल भी समझ सकते हैं और बहुत काम्पलेक्स भी। जो भी एनेकडोट या जो भी छोटी कहानी कहता हूं; वह तो आयेंगे। एनेकडोट जो है, वह इतना कहता है—एक दो मिनट का एनेकडोट, जितनी दो घण्टे की बात नहीं कहती है, और दो घण्टे कोई फिलॉसफी की ट्रिटाइज नहीं कह सकती। और यह भी आपका ख्याल ठीक नहीं है कि उसकी गम्भीरता कम करता है। वह तो आदमी गम्भीर है तो उसकी गम्भीरता बढ़ाता है और आदमी गम्भीर नहीं है तो उसकी गम्भीरता कम करता है। यानी मेरा कहना यह है कि वह तो अगर आदमी गम्भीर है तो एक एनेकडोट पर सोचने के लिए घण्टों लगा दे। और अगर आदमी गम्भीर नहीं है तो आप उसको गीता के वचन सुनाइए तो वह समझेगा फिलमी गाने गा रहा है। यह सवाल नहीं है। वह तो आदमी के ऊपर निर्भर है। मैं तो कहता हूं कि सत्य इतना कठिन है कि·········
इसलिए किस तरह अधिकतम लोगों के लिए सोचना सम्भव हो जाये, वह मेरी

दृष्टि है। और मेरी दृष्टि यह भी रहती है कि जो अन्तिम है वहां, उसके लिए ख्याल में आ सके, जो प्रथम है उसके लिए नहीं। वह जो पच्चीस लोग बैठे हैं, उसमें जो अन्तिम है, उसके भी ख्याल में आ सके। वह भी बिल्कुल खाली हाथ वहां से नहीं जाना चाहिए। फिर तो प्रथम के ख्याल के लिए तो बहुत किताबें हैं, आप उनको पढ़िये। और मेरी यह दृष्टि है कि दुनिया में अब तक जितनी भी कठिन से कठिन बात कही गयी है, वह सरल से सरल कहानियों में कही गयी है। चाहे जीसस ने, चाहे बुद्ध ने, चाहे कृष्ण ने कही हो।

प्रश्न—आपके कहने की जो पद्धति है, जो कथा है उस पद्धति का यह दोष मालूम होता है। उसमें गम्भीरता नहीं रहती है, मैं यह कह रहा हूं।

मैं तो गम्भीरता चाहता नहीं। गम्भीरता की मुझे इच्छा भी नहीं है। गम्भीरता मैं चाहता नहीं। गम्भीरता मैं रोग मानता हूं, वह रोते हुये आदमियों का लक्षण है। वह चाहता भी नहीं। मेरी तो समझ यह है कि कितना सरल और कितना सहज और कितना आदमी के हृदय में प्रवेश करता है किसी द्वार से......।

प्रश्न—क्या गांधीजी को आप पूंजीवादी मानते हैं?

नहीं, गांधी को मैं पूंजीवादी नहीं मानता, लेकिन गांधीजी की पूरी चिन्तना की विधि पूंजीवाद की समर्थक है। गांधी को पूंजीवादी नहीं मानता। और गांधी पूंजीवादी चित्त से हैं भी नहीं। उनका भाव भी नहीं है पूंजीवादी होने का। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। गांधी के जीवन की विधि, गांधी के सोचने का ढंग पूंजीवादी है, बुर्जुवा है।

प्रश्न—तो फर्क क्या है?

बहुत फर्क है। गांधीजी कान्शस नहीं हैं इस बात के लिए, इसलिए गांधी की नीयत को मैं कभी दोष नहीं देता। मैं एक बात कह सकता हूं, जिसमें मेरी कोई नीयत किसी को नुकसान पहुंचाने की नहीं, और नुकसान पहुंच सकता है। आपको नुकसान पहुंचाने की मेरी कोई नीयत नहीं है, आपको फायदा ही पहुंचाने की मेरी नीयत है, और नुकसान आपको पहुंच सकता है। मेरा कहना है कि गांधी की नीयत के बाबत कोई शक करने का सवाल नहीं उठता। लेकिन गांधी की ठीक नीयत भी जो कर रही है, वह पूंजीवाद की समर्थक है।

प्रश्न—तीस साल पहले जो कम्युनिस्ट कह रहे थे, वह आप कह रहे हैं?

मुझे पता नहीं कम्युनिस्ट क्या कहते थे कब, कब नहीं कहते थे, मुझे पता नहीं। वह तो आप बदल गये होंगे तो दुनिया बदल गयी लगती होगी।

प्रश्न—सुबह आपने कहा था कि गांधी पूंजीवादी था। वह तीस करोड़ से एक सौ तीस करोड़ वाली बात आपने कही थी......!

मैंने यह नहीं कहा, मैंने यह कहा कि गांधी के सत्संग से फायदा मिला उसको। गांधी को फायदा नहीं मिल गया। वह तो कठिनाई नहीं है। वह तो दूसरे वक्तव्य ऐसे रखे जा सकते हैं, जैसा आप रख रहे हैं। उत्तरप्रदेश के जमींदारों की कमेटी उनसे मिली और उन्होंने उससे कहा कि तुम्हारे ऊपर अन्याय होगा, अगर जमींदारी छीन ली तुमसे। मैं लड़ूंगा तुम्हारे लिए। गांधी की जिन्दगी में तो इतने कण्ट्राडिक्ट्री वक्तव्य हैं कि कुछ भी सिद्ध कर सकते हो, इसलिए किताब नहीं लाना चाहिए, उनमें कोई मतलब नहीं है।

यह झगड़ा नहीं है मेरा, क्योंकि आपको पक्का होगा कि आप सही ढंग से समझ गये हैं तो बात अलग है। यह झगड़ा नहीं है मेरा।

प्रश्न—वह जो गांधी नहीं थे, वह आप बता रहे थे?

मैं तो अभी भी वही कह रहा हूं, बता नहीं रहा था। लेकिन गांधी का व्यक्तित्व, गांधी की चर्या, गांधी का पूरा चालीस साल का जो कुछ हिसाब है, गांधी का आन्दोलन, वह सब पूंजीवाद के समर्थन में गया है। यह दूसरी बात है। यह आप नतीजा निकाल रहे हैं, यह मैं नहीं कहता। आप उनकी नीयत पर भी शक कर रहे हैं। आप नीयत पर भी शक कर रहे हैं, मैं नीयत पर शक नहीं कर रहा हूं। यह आपका नतीजा है, मेरा नहीं। यह भोगीलाल भाई नहीं निकाल रहे हैं, यह आप निकाल रहे हैं। ये दोनों बातें एक नहीं हैं। यही कठिनाई हो रही है। लोग समझते हैं कि मैं कुछ गांधी को कह दिया हूं। मैं क्यों कहूंगा?

प्रश्न—गांधी को तोड़ने के लिए कुछ बोलते थे?

मैं तो सभी को तोड़ने के लिए कहता हूं।

मगर वह कौन तय करेगा कि गांधी क्या कहते हैं। आप तय करेंगी कि मैं तय करूंगा? यह तो बच्चों जैसी बातें कर रही हैं आप। यह इसलिए बच्चों जैसी बात कर रही हैं—भोगीलाल भाई बैठे हैं, उसको समझ सकते हैं; यह कौन तय करेगा कि गांधी क्या कहते थे! यह आप तय करेंगी कि मैं तय करूंगा? मेरे लिए मैं ही तय करूंगा।

हां तर्क रहेगा, भोगीलाल भाई, और इसमें विवाद रहेगा। इसमें कोई तय नहीं कर सकता। आज भी मजा यह है कि बुद्ध क्या कहते थे यह बुद्ध के छः सम्प्रदाय उन्हें तय करते हैं।

ये दलीलें इतनी नासमझी की भरी हुई हैं। एक और एक अनिवार्य रूप से दो नहीं होते। यह आपको पता नहीं गणित। कितने लोगों को पता नहीं! एक और एक अनिवार्य रूप से दो नहीं होते। और एक और सिर्फ इसलिए दो होते हैं कि उन्होंने दो के डिजिट बना रखे हैं। दस डिजिट बना लें नहीं होंगे, पांच डिजिट बना लें, नहीं होंगे। उसी तरह सारी बातें हैं। एक चीज ऐसी नहीं होती है।

प्रश्न—आप कह रहे हैं कि आप नहीं पकड़ेंगे, क्योंकि आपने कुछ पकड़ा हुआ है।

वही कोशिश चलती है। कोई छोड़ता भी है, कोई नहीं छोड़ता है। कोई जल्दी

छोड़ता है, कोई लम्बे छोड़ता है। अब उसका हिसाब भी नहीं रखना पड़ता है कि कौन छोड़ता है, कौन नहीं छोड़ता है।

प्रश्न—सब लोग पण्डित हैं, ऐसा आप मानते हैं। फिर डायलॉग कैसे होगा ?

पण्डित हैं ही। मामला क्या है, बहुत मुश्किल से हम इस कोशिश में होते हैं कि दूसरा क्या है, इसे समझें। अन्दरूनी कोशिश यह होती है कि क्या हम हैं, यह दूसरे को समझायें। डायलॉग तो हमेशा ही चल सकता है और चलता है, लेकिन वह हमारी कोशिश होती है बहुत दूसरी। वह अगर समझने की हो, तब तो बहुत आसान हो जाये। समझाने की न हो, तब बहुत मुश्किल हो जाती है।

प्रश्न—गांधीजी ने कहा था कि मैं जमींदारों की तरफ से लड़ूंगा और सत्याग्रह करूंगा। उसी गांधी ने सन् पैंतालीस में आगाखां पैलेस से निकलने के बाद यह कहा कि मैं मानता हूं कि अब जमींदारों को कम्पसेशन न दिया जाये, और जमींदारी खत्म की जाये !

इसमें उनके विचारों का विकास हुआ है ?

ऐसा मामला है कि गांधी को अगर हम पूरा उठाकर देखने चलें तो ऐसा मुझे मालूम पड़ता है कि गांधी में कोई गहरा व्यक्तित्व विकसित हो रहा है, यह भी मुझे नहीं दिखायी पड़ता। गांधी में मुझे बहुत व्यक्तित्व दिखायी पड़ते हैं। गांधी में मुझे एक व्यक्तित्व दिखायी नहीं पड़ता। मुझे मल्टी-साइकिक मालूम पड़ते हैं और कई धाराएं उनमें विकसित हो रही हैं, और कई मामलों में वे पीछे भी गिरते हैं, आगे भी बढ़ते हैं। बहुत-सा मामला है। यह जो बहुत-सा मामला है, इसको जितनी समझदारी से हम समझने की कोशिश करें, उस कोशिश में गांधी की पूजा और निन्दा का कोई सवाल नहीं है। सवाल कुल इतना है कि गांधी के व्यक्तित्व को अगर हम आधार बनाकर समझने की कोशिश करें, तो मुल्क को आने वाले व्यक्तित्व को बनाने के लिए कुछ रास्ते निकल सकते हैं।

लेकिन दो तरह की बातें हैं। या तो कोई आदमी गांधी को गाली देने की दृष्टि में पड़ जाता है, तब बहुत मुश्किल हो जाता है। और या तो फिर पूजा करने की, तब भी बहुत मुश्किल हो जाता है। और अगर कोई आदमी दोनों के बीच में, जिसको कहें क्रिटिकल थिंकिंग कर रहा हो, तो दोनों तरफ के आदमी उसको धक्के देकर कहते हैं कि तुम किसी कोने पर खड़े हो जाओ। जैसा कि आप कहते हैं मुझसे कि या तो आप यह भी कहो कि गांधी की नीयत गलत है, तो हमें समझ में आती है बात। वह दूसरा जो आदमी आता है, वह मुझसे कहता है कि तुम अगर कहते हो कि उनकी नीयत ठीक है, तो यह भी कहो कि उनका विचार भी ठीक है !

मेरी तकलीफ यह है कि न मैं पक्ष में हूं किसी के और न किसी विपक्ष में हूं।

मुझे पक्ष विपक्ष का अर्थ ही मालूम नहीं पड़ता। मुझे तो मालूम पड़ता है कि गांधी जैसा महत्वपूर्ण आदमी, उसको सोचा जाना चाहिए। कम्पलैक्स हैं बहुत और इसलिए बहुत पहलू हैं और बहुत पहलुओं पर सोचने की जरूरत है, कोई जिद्द की जरूरत नहीं है। यह जितना हम समझें—लेकिन समझने में क्या तकलीफ होती है, पक्ष वाला चाहता है कि समझो तो पूजा की बात करो। विपक्ष वाला चाहता है कि समझो तो विरोध की बात करो। मैं दोनों बात नहीं करना चाहता, इसलिए मैं दोनों के साथ दिक्कत में हूं।

इधर मेरी जो कठिनाई हो गयी है—नास्तिक मेरे पास आता है तो वह समझता है, यह आदमी आस्तिक है। आस्तिक आता है तो वह समझता है कि यह आदमी नास्तिकता की बातें करता है। और मुझे न कोई आस्तिक से प्रयोजन है और न कोई नास्तिक से कोई प्रयोजन है। कम्युनिस्ट मेरे पास आता है तो वह समझता है कि एंटी कम्युनिस्ट बातें करता हूं। गांधीवादी आता है तो वह समझता है कि मैं एंटी गांधीवादी बातें करता हूं। और मेरी हालत यह हो गयी है कि चूंकि मैं प्रत्येक पर विचार करने का आग्रह करना चाहता हूं। और विचार का मतलब यह होता है कि वहां आलोचना शुरू होती है। अगर आप गांधीवादी होकर मेरे पास आये हैं तो मुझसे आपकी जो बात होगी, उसमें गांधी की आलोचना शुरू हो जायेगी। अगर आप मार्क्सवादी होकर आये हैं तो मार्क्स की आलोचना हो जायेगी। वह मार्क्सवादी यह ख्याल लेकर जायेगा कि मैं मार्क्स का दुश्मन हूं। वह गांधीवादी यह ख्याल लेकर जायेगा कि मैं गांधी का दुश्मन हूं मुझे किसी की दुश्मनी से कुछ लेना-देना नहीं है। तो मेरी जो पोजीशन है उसको तो वक्त लग जायेगा कि मैं उसको साफ कर सकूं। क्योंकि वह पोजीशन वैसी जगह पर आ जाये तो साफ होने में थोड़ा समय लग जायेगा।

प्रश्न—अस्पष्ट

उन्होंने मुझसे पूछा। किसी ने प्रेस कॉन्फ्रेन्स में, राजकोट या सुरेन्द्रनगर में, क्या आप ऐसा मानते हैं, साम्यवाद धन ईश्वर ऐसी आपकी मान्यता है? मैंने कहा, इसमें मैं हां भर सकता हूं। मेरी दृष्टि यह है कि साम्यवादी समाज की व्यवस्था ने एक अन्तर्दृष्टि दी है। लेकिन वह अन्तर्दृष्टि अधूरी है। क्योंकि वह मनुष्य का जो आन्तरिक है, उसको कहीं भी स्पर्श नहीं करती। या मनुष्य के जो अतीत हैं, उसको भी कहीं स्पर्श नहीं करती। अत्यन्त आंशिक है। और आंशिक बात को पूर्ण सत्य कहना, बड़ा ही खतरनाक हो जाता है। यानी वह असत्य से भी ज्यादा खतरनाक होता है। क्योंकि उसमें अंश सत्य तो होते ही हैं इसलिए ऐसा भी लगता है कि सत्य है, और फिर मन होता है कि इसको पूरा सत्य कह दें।

साम्यवाद पूरा सत्य नहीं है। वह मनुष्य के जीवन को अत्यन्त बाहरी तल को,

अत्यन्त पदार्थ के तल को छूता है। और यही उसकी कमी है और यही उसका बल भी है। उसका बल भी यही है, क्योंकि वह जिस बात को छूता है, उसे पूरी तरह छूता है और पूरी गणित की तरह छूता है और पूरे विज्ञान की तरह छूता है। यह उसका बल भी है, क्योंकि उसने जिस बात को भी छुआ है, पूरी पहुंच है उसकी और यही उसकी कमजोरी भी है, क्योंकि बहुत बड़ा अछूता रह गया। और उस अछूते को बिल्कुल इन्कार करता है।

वह जो मैं हां भर दिया है, तो वह जो गॉड है मेरे लिए, वह जो सब शेष रह गया है कम्युनिज्म में, उस सबका इकट्ठा मतलब है गॉड से मेरा। वह आदमी का आन्तरिक और आदमी के अतीत जो भी है, पदार्थ और रूप के पकड़ के बाहर जो भी है, तौल, माप, जो प्रयोगशाला के बाहर जो भी है, शब्द, विचार के बाहर जो भी है, वह जो भी छूट जाता है, उसको मैं गॉड कह रहा हूं। मेरे लिए गॉड का जो मतलब है तो उसको हम जोड़ दें, तो वह जो अगर जुड़ जाये, तो कम्युनिज्म की जो अधूरी दृष्टि है, वह अत्यन्त पूरी हो जाती है। लेकिन उस पूरे होने में वह जो कम्युनिज्म है मार्क्स का वह विलीन हो जाता है। क्योंकि यह इतना बड़ा हमला है गॉड का कि इस हमले में वह जो टुच्चापन है, वह गया। वह सारी वायलेंस गयी। इसलिए मैंने कहा, वह तो गॉड को जोड़ना, पूरे कम्युनिज्म को, पूरा का पूरा, यहां से वहां बदल देना है। कम्युनिज्म पूरा बदल जायेगा गॉड के जोड़ने से। और यह भी ध्यान रहे, गॉड भी बदल जायेगा कम्युनिज्म के जुड़ने से वह गॉड नहीं रह जायेगा जो हिन्दू का है, ईसाई का है, मुसलमान का है। यह गॉड की अब स्थिति बहुत और हो जायेगी, क्योंकि जो-जो गॉड था अब तक, वह एक अर्थ में बुर्जुवा गॉड है, वह एक समाजवादी दृष्टि की उसमें कोई पहुंच नहीं है। इसलिए मेरी अपनी दृष्टि है कि साम्यवाद भी बदलता है ईश्वर के जुड़ने से, ईश्वर भी बदलता है साम्यवाद के जुड़ने से। और जो एक नयी स्थिति बनती है, वह बहुत मूल्यवान है। इसलिए मैंने हां भर दी। ●

बड़ौदा, दिनांक १५ फरवरी १९६७
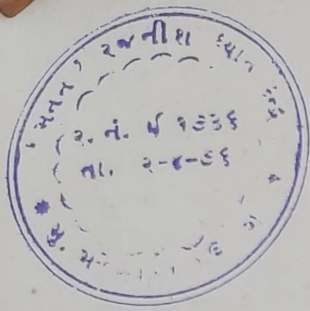
२६. गांधी से मुक्ति

प्रश्न—अस्पष्ट

उस माइंड को तोड़ना है—एंटी टेक्नोलॉजिकल माइंड है हमारा। हमारा सोचने का ढंग यह है कि मशीन से बचो और आदमी से काम ले लो ! पूरा ढंग हमारा यह है सोचने का। वह जो गांधी कह रहे हैं—गांधीजी एक अर्थ में तीन हजार वर्ष की भारत की सारी बेवकूफी के रिप्रेजेंटेटिव हैं, प्रतिनिधि हैं। वह उनका कसूर नहीं बेचारों का। वह जो तीन-चार हजार वर्ष से यह पूरा मुल्क कह रहा है, वे वही कह रहे हैं। वे यही कह रहे हैं कि एक आदमी छः घंटे चरखा कात लेगा और कपड़ा बना लेगा। चरखा कातने वाला कोई मुल्क सम्पत्ति पैदा नहीं कर सकता। कोई रास्ता पैदा नहीं कर सकता। सम्पत्ति नाइन्टी परसेंट टेक्नोलॉजी से पैदा होती है। दस परसेंट ही आज आदमी का श्रम रह गया है और आने वाले पच्चीस वर्षों में दस परसेंट भी रह जाने वाला नहीं है।

तो यह जो हमारा दिमाग है, हमने जो अब तक माइंड खड़ा किया है, वह बेसिकली एंडी-टेक्नोलॉजिकल है। इधर गांधी ने और बातें करके उसको फिर एंडी-टेक्नोलॉजिकल बनाने की कोशिश की है। इधर विनोबा उसको बनाये चले जा रहे हैं। ग्रामोद्योग है, चरखा है, खादी है, स्वालम्बन की बात—यह सारी की सारी बातें जो हैं हमारी, यह हमें बिल्कुल ही अपरूट करके फेंक देनी पड़ेंगी। और तगड़ी लड़ाई लेनी है; अगर हिन्दुस्तान को शक्तिशाली होना है।

तो गांधी से आने वाले बीस वर्षों में सीधी लड़ाई लेने की जरूरत है। अगर आप गांधी की पूजा करते चले जाते हैं और लड़ाई नहीं लेते तो आप कहीं से सहायता ले आयें, आप जाकर सारी उनकी टेक्नोलॉजी समझ लें, आप कुछ भी नहीं कर पायेंगे। गांधी से मुक्त हुए बिना यह मुल्क कभी समृद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि गांधी के मुक्ति के माध्यम से ही हम, वह जो तीन हजार वर्ष के प्रतिनिधि हैं गांधी, उससे मुक्त होंगे। गांधी से लड़ाई इस वक्त बहुत बेसिक है। बेसिक इन अर्थों में कि गांधी व्यक्ति से कुछ लेना-देना नहीं है। गांधी तो सिम्बल की तरह खड़े हो गये हैं। जो हमारा बैकवर्ड माइंड है, उसका पूरा का पूरा प्रतीक बनकर खड़े हो गये हैं। और उन्होंने फिर से समर्थन दे दिया उन सब बातों को, जिनकी वजह से हम परेशान रहे हैं; जिसकी वजह से हम गरीब रहे हैं।

तो एक तो मुझे यह दिखायी पड़ता है कि मुल्क में साइंटिफिक और टेक्नोलॉजिकल माइंड कैसे पैदा हो, बेसिक माइंड कैसे पैदा हो।

दूसरा मुझे यह दिखायी पड़ता है कि सम्पत्ति के पैदा होने के उसूल हों। और उन उसूलों में एक बड़े से बड़ा उसूल यह है कि जो मुल्क भी इस भाषा में सोचता हो कि हमें अपनी जरूरतें कम करनी हैं, वह शक्तिशाली नहीं हो सकता। वह कैसे होगा ? तो जब तक हम यह अपरिग्रह और त्याग और न्यूनतम आवश्यकता, इस तरह की फिलॉसफी की बातें करते रहेंगे, तब तक हम सम्पत्ति पैदा नहीं सकते। जब तक हम इस भाषा में सोचेंगे कि अपनी चादर से कम पैर फैलाने चाहिए, चादर के भीतर ही पैर रखो, तब तक चादर रोज छोटी पड़ती जायेगी। क्योंकि हम रोज बड़े होते जा रहे हैं चादर के भीतर। और हमारी मुश्किल और प्रश्न इसमें बढ़ते ही जाने वाला है, क्योंकि चादर के बाहर पैर निकालने नहीं हैं। और चादर उतनी की उतनी है, और हम रोज बड़े होते जा रहे हैं उसके भीतर। वह जो कल बच्चा था, आज जवान हो गया है और वह उसी के भीतर रहने की कोशिश कर रहा है !

एक बार भी हमें···यह जो लड़ाई है, यानी यह लड़ाई इतनी मुझे फाउंडेशनल मालूम होती है—उसमें बुद्ध और महावीर से भी लड़ना पड़ेगा। और गांधी से तो लड़ना ही है। और उसमें उपनिषद् और वेदों से लड़ना पड़ेगा। क्योंकि उस सबने हमारा पूरा का पूरा—जिसको हम कहें कलेक्टिव माइंड, हमारा बनाया हुआ है, वह कलेक्टिव माइंड सोचता इस भाषा में है कि जितनी कम जरूरत, उतना सुखी आदमी। यह बात बिल्कुल ही नासमझी की है। सुख आता ही है किसी जरूरत के पूरे होने से। तो जितनी ज्यादा जरूरतें और जितनी ज्यादा जरूरतों की पूर्ति होती है, उतना आदमी सुखी होता है। कम जरूरतों से, जितनी कम जरूरतें होंगी, उतनी ही कम तृप्ति होगी, उतना ही कम सुख होगा।

एक तो हमें यह जो हमारी आवश्यकता के बाबत दृष्टि है, इस मुल्क की, वह

हमें बदलनी चाहिए। आवश्यकता बढ़ानी चाहिए। हमें कहना पड़ेगा कि जितना तुम कमाते हो उससे ज्यादा खर्च करने की हमेशा तैयारी रखो, ताकि तुम ज्यादा कमा सको। तुम ज्यादा मांग करो, जितनी तुम्हारी पूर्ति हो जाती है, ताकि तुम ज्यादा पूर्ति के लिए व्यवस्था कर सको। पूरा का पूरा माइंड हमारा स्टेगनेंट हुआ है इस अपरिग्रह की बात पर। यह इस बुरी तरह जकड़ ली है भीतर से कि अच्छे से अच्छा आदमी भी सोचता है कि, वह जो बिड़ला इतना पैसा कमा रहा है, वह भी बुनियाद में सोचता है इसी भाषा में। क्योंकि बड़े मजे की बात जो है, अगर बिड़ला से बात हो, तो वह कमाये चाहे करोड़ों, लेकिन वह सोचता ही इसी भाषा में है कि कम से कम में सुख है!

माइंड—बहुत एसेंशियल है माइंड। और इसलिए अगर एक आदमी नंगा खड़ा है, तो बिड़ला कमा ले करोड़ों, लेकिन नंगे खड़े आदमी को नमस्कार करने जाने वाले हैं। एसेंशियल माइंड की अपील वही है कि यह आदमी सुखी है। हम तो दुखी हैं, हमसे कुछ होता नहीं है कमाने से। तो हमें मुल्क को समझाना पड़ेगा कि सुख क्या है?

और हमारे मुल्क में यह भी समझाया गया है कि सुख जो है, वह एक मानसिक बात है, जो कि बिल्कुल झूठी बात है। सुख निन्यानबे प्रतिशत शारीरिक है और एक ही प्रतिशत मानसिक है। और जब तक यह बात हम फिर से नहीं समझाते हैं कि सुख निन्यानबे प्रतिशत शारीरिक है, और वह जो एक प्रतिशत मानसिक है वह भी निन्यानबे प्रतिशत शारीरिक उपलब्ध हो तो ही एक प्रतिशत मानसिक की सम्भावना बनती है; नहीं तो सम्भावना बनती नहीं। लेकिन हमको यह समझाया गया है कि सुख का शरीर से क्या लेना-देना है! आपके कपड़े-लत्ते और खाने से क्या सम्बन्ध है? वह तो मानसिक बात है, आपके एटिट्यूड की बात है। ये सब फिजूल की बकवासें हैं। मेरा अपना कहना यह है कि एक तो जिस तरह आज तक हमारे दिमाग में फिलॉसफी ऑफ पावर्टी डाली गयी है, उसी तरह हमें फिलॉसफी आप रिचनेस एक दफा पूरे मुल्क के दिमाग में डालें।

वह जो यूथ मूवमेंट की आप बात करते हैं, आज अगर हम युवकों को सिर्फ बीस साल इतना ही समझा सकें कि रिचनेस की बेसिक फिलॉसफी क्या है? नहीं डिटेल्स की बात है, माइंड की बेसिक फिलॉसफी क्या है उसकी। हमारे जवान को ख्याल ही पैदा नहीं होता! वह खड़ा हो जाता है, लेकिन उसकी समझ में नहीं आता कि धन कैसे पैदा किया जाये, धन कहां से लाया जाये? उसको, पूरे मुल्क के दिमाग में ही वह बात नहीं है। और फिर एक कंटेंटमेंट हमको जहर की तरह, बिल्कुल पॉइजन की तरह पिला दिया गया है। उसको हमें उखाड़ फेंकना पड़ेगा! पूरे मुल्क को डिसकंटेंट से भरना पड़ेगा। वह जो आप कहते हैं कि इतनी दरिद्रता है, इतना कम पैसा मिल रहा है एक आदमी को, लेकिन उतनी दरिद्रता

की आप बात करते होंगे, इकोनामिस्ट उसकी बात करते होंगे, लेकिन वह जिस आदमी को मिल रहा है, वह बात ही नहीं कर रहा है उसका! वह जिये चला जा रहा है! उसको मतलब ही नहीं है कि उसको तीन सौ अठारह मिलते हैं कि तीन सौ तेईस मिलते हैं। उसे कोई मतलब नहीं है!

प्रश्न—उसको दो टाइम खाना ही चाहिए बस।

नहीं, दो टाइम खाना नहीं मिलता तो भी उसे फिक्र नहीं। वह एक दफे भी खाकर जी रहा है। हमने मुल्क के माइंड को बिल्कुल ही स्टेग्नेंट और डैड करने में भी हम सफल हो गये हैं। हमने आदमी मार डाला है। हमने आदमी में जो रुआब होनी चाहिए, बिल्कुल ही निर्जीव बना दिया है। हमने इतनी तरकीब से निर्जीव बनाया है कि दुनिया में कोई अफीम इस भांति निर्जीव नहीं बना सकती आदमी को। और इतना समझा दिया है, इतना समझा दिया है कि तुझे असंतुष्ट तो होना ही नहीं है। यह संतोष में ही सुख है।

इधर मैंने कहना शुरू किया कि सुख में ही संतोष है, संतोष में कोई सुख नहीं है। यह बात ही झूठी और उल्टी है। और यह दुखी आदमी के लिए जहर पिलाना है कि संतोष में सुख है। हम संतोष किये चले जाते हैं। आदमी कुछ ऐसा है और आदमी का माइंड कुछ इतना एडजस्टमेंट कर सकता है कि हम उसे जो समझा दें, और उसके आइडिया में बैठ जाये, तो वैसा आदमी हो जायेगा। हमने करोड़ों शूद्रों को यह समझा दिया है कि तुम यही होने को पैदा हुए हो। और पांच हजार वर्षों में शूद्रों ने जरा-सा भी विद्रोह नहीं किया, नानुच भी नहीं की!

अंग्रेज भारत में नहीं आते तो हिन्दुस्तान में शूद्र की कभी कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि यह भी आदमी है। कभी नहीं हो सकती थी। और जितने गुस्से से आप अंग्रेज को गाली देते हैं, मैं नहीं दे सकता। वह जो आप कहते हैं कि वह माइटी, डर्टी है। मैं इसलिए कहता हूं आपको, इसलिए कहता हूं कि वह हम बहुत ज्यादती कर रहे हैं। क्योंकि आपको यह ख्याल में नहीं है कि अंग्रेज ने आपको किनके हाथों से छुड़ा दिया। वह जो आपके बाप-दादे थे, अंग्रेज से बदतर थे। अंग्रेज की गुलामी की मैं तारीफ नहीं करता हूं। गुलामी की कभी भी कोई तारीफ नहीं की जा सकती। लेकिन जिन पुर्खों के हाथ में आपका मुल्क था, अंग्रेजों से बदतर लोग थे वे। और अगर दो सौ वर्ष अंग्रेजों के हाथ में आप नहीं होते तो आज से भी बदतर हालत में आप होते।

प्रश्न—मॉर्डनिज्म में कभी नहीं आते?

आप कभी नहीं आने वाले थे। आपकी जितनी भी आज धारणा विकास की, चिंतन की, स्वतन्त्रता की, समानता की, इक्वेलिटी की, लिबर्टी की—जितनी आज आपकी बातें हैं, वे सब पश्चिम से आयीं। आपके दिमाग में ये कोई बातें

कभी नहीं थीं। यह शूद्रों के पांच हजार साल के इतिहास में एक शूद्र पैदा नहीं हुआ, जिसका आप नाम ले सकें। इधर सिर्फ अंग्रेजों के वक्त में दो चार शूद्र हुए—अम्बेडकर और दो चार और गिनती की जा सकती है। पांच हजार साल में एक आदमी नहीं पैदा हुआ, जिसका हम नाम भी कह सकें कि यह आदमी भी था।

प्रश्न—कैसे कह सकें, जब हमारे धर्म ने भी यह बताया कि चार वर्ण हैं और जो शूद्र है, वह शूद्र है। ब्राह्मण तो ब्राह्मण रहेगा, वह बड़ा आदमी है।

जब तक मनु भाई, इस माइंड से हम लड़ाई नहीं लेते हैं, हिन्दुस्तान में कोई भी मूवमेंट सम्पत्ति पैदा करने वाला नहीं होगा।

प्रश्न—समाज में क्रांति के लिए साधन की आवश्यकता है?

हां, वह मैं अलग बात करूंगा। वह साधन की बात नहीं कर रहा हूं। साधन की बात नहीं की है मैंने अभी। मैं तो यह कहा कि मानसिक क्रांति के बिना हम इस देश में···और वह मानसिक क्रांति ऐसी नहीं कि वह कांग्रेस के खिलाफ होने वाली है। वह हमारे तीन हजार साल के इतिहास के खिलाफ होने वाली है। जो कठिनाई मैं आपको कह रहा हूं—आज मुल्क में यह ख्याल है। आज मुल्क में यह ख्याल है कि वह क्रांति हम तत्काल इधर सौ-पच्चीस वर्षों में निपटा लेना चाहते हैं। वह इतना सस्ता मामला नहीं है। वह नेहरू से लड़कर भी हल नहीं होता, क्योंकि जो आदमी नेहरू से लड़कर पहुंचेगा, वह करीब-करीब नेहरू जैसा आदमी साबित होने वाला है। मैं आपसे यह कहता हूं, क्योंकि उसका मतलब यह है कि जो नेहरू के पीछे जड़ें हैं तीन हजार वर्ष पुरानी, वही मनु भाई के भी पीछे हैं तीन हजार वर्ष की जड़ें पुरानी।

आप नेहरू से लड़ लेंगे, लेकिन बेसिक रूप से आप भी वही हैं। तो आप किसको पहुंचाते हैं, यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया है। हमें तो अपरूटेड आदमी को पहुंचाना है, जिसकी हिन्दुस्तान के तीन हजार साल के इतिहास में रूट्स नहीं है, जिस आदमी की। तो, तो आप क्रांति लाते हैं और नहीं तो आप चचेरे भाई साबित होते रहेंगे। सौ वर्ष तक आप यह करते रहेंगे कि इधर कांग्रेसी हट जाये और समाजवादी बैठ जाये और जनसंघी बैठ जाये और स्वतन्त्र आ जाये, और पायेंगे कि आप चचेरे भाई साबित होते हैं। क्योंकि राजगोपालाचारी का दिमाग और नेहरू के दिमाग की जड़ें बिल्कुल एक हैं। और इसलिए यह लड़ाई नेहरू और राजगोपालाचारी की नहीं है। और यह जो लड़ना है इनका, यह लड़ना बिल्कुल सतही है। यह गहरे में नहीं है। यह करेंट लड़ाई है। इसमें ठीक है कि कौन सही और कौन गलत है, यह दूसरी बात है। लेकिन मेरा कहना यह है कि हमें लड़ाई इससे गहरे में ले जानी पड़ेगी। और वह लड़ाई नेहरू से भी और राजगोपालाचारी से भी और गांधी से भी, क्योंकि इन सबकी रूट्स हैं, पुराने युग से

हैं। वह जो पुराना युग था, उससे हमारी लड़ाई है।

तो वह जो माइंड की, रैवोल्यूशन की जो मैं बात कह रहा हूं, उसके साधन मैं ये नहीं कह रहा हूं। साधन तो आप ठीक कहते हैं जैसे यूथ मूवमेंट है—एक यूथ मूवमेंट की जरूरत है मुल्क में। और मैं आपसे कहूंगा मनु भाई, जैसा आपने कहा है, आप सोचते हैं इस मूवमेंट के लिए—लेकिन अगर आप सोचते हैं इस मूवमेंट के लिए, तो मैं आपसे कहूंगा कि थोड़ा-सा भी पॉलिटिकल बायस आपके यूथ मूवमेंट को खड़ा नहीं होने देगा। अगर आपको यूथ मूवमेंट ही खड़ा करना है—यूथ मूवमेंट ही खड़ा करना है तो आपकी पॉलिटिक्स से यूथ मूवमेंट न आये।

मेरा मानना है कि यूथ मूवमेंट खड़ा हो और उसमें पॉलिटिक्स न आये। इसमें मैं थोड़ा फर्क करता हूं। मेरा ख्याल यह है कि यूथ मूवमेंट किसी पॉलिटिक्स से खड़ा करेंगे आप, तो खड़ा होने वाला नहीं है इस मुल्क में। इस मुल्क में तो एक प्योर यूथ मूवमेंट, जो सारे हेरिटेज के खिलाफ खड़ा हो, इसका किसी से कोई लेना-देना नहीं है। आज का करेंट मामला नहीं है इसके सामने। यह तो इण्डिया का जो हेरिटेज है, जो पास्ट है, उसके खिलाफ एक रिबेलियन की धारणा लेकर एक यूथ मूवमेंट खड़ा हो तो आप हिन्दुस्तान में दस साल के भीतर यूथ मूवमेंट खड़ा कर सकते हैं। एण्ड लेट दी पॉलिटिक्स कम आउट ऑफ देट। और वह यूथ मूवमेंट लाये पॉलिटिक्स। उसकी हमें फिक्र नहीं करनी चाहिए आज कि वह क्या पॉलिटिक्स होगी? वह यूथ मूवमेंट अपनी पॉलिटिक्स पैदा कर लेगा। और वह जो पॉलिटिक्स होगी, वह पॉलिटिक्स प्रभावी हो सकती है हिन्दुस्तान में बीस साल में।

एक दूसरी बात एक तो यह मेरी समझ में है, और मैं उत्सुक हूं, इधर मैंने बात की है कि मैं यूथ फोर्स खड़ा करना चाहता हूं। और इधर मुल्क में विद्यार्थी मेरे बहुत निकट आये हैं। और उनमें एक आत्मीयता है, जो मेरे प्रति बढ़ी है, क्योंकि मेरी कोई पॉलिटिक्स नहीं है, मेरा कोई रिलिजन नहीं है, मेरा कोई एफीलिएशन नहीं है किसी तरह की, और मेरा कोई बायस भी नहीं है। यानी मेरा कल्पना में भी नहीं है वह।। यानी ऐसा नहीं है कि मेरा कोई बायस है और फिर कोई मैं मूवमेंट चलाना चाहता हूं। मेरा कोई बायस भी नहीं है।

बहुत निकट मैंने विद्यार्थी अनुभव किये हैं। और यह जो इन विद्यार्थियों को मैं कहता हूं, वह एक बिल्कुल ही मेंटल रैवोल्यूशन के तल पर है। आज पॉलिटिक्स की बात भी करनी फिजूल है उस यूथ के सामने। क्योंकि जैसे ही आप पॉलिटिक्स लेकर जाते हैं, मामले करेंट बहुत महत्वपूर्ण हो जाते हैं। क्योंकि पॉलिटिक्स का मतलब करेंट है। रैवोल्यूशन करेंट नहीं होती है मनु भाई। रैवोल्यूशन की रूट्स डीप होती हैं।

प्रश्न—रैवोल्यूशन आप कहते हैं, हमारे वेस्टेड इन्ट्रेस्ट हैं।

मैं समझा आपकी बात, मैं समझा। आज का असन्तोष जो है न, आज का जो असन्तोष है, अगर उस असन्तोष को आप करेंट प्राब्लम की तरह व्यवहार करते हैं, तो आप सिर्फ रिएक्शन कर सकते हैं, रैवोल्यूशन नहीं। रिएक्शन और रैवोल्यूशन में बड़े फर्क हैं।

प्रश्न—क्या रिएक्शन के अन्दर भी आपको रैवोल्यूशन दिखायी पड़ता है ?

नहीं, साहब ! मैं आपसे कहता हूं कि रैवोल्यूशन के भीतर अगर रिएक्शन होंगे तो बात मुल्क को बदलती है। और नहीं तो रिएक्शन हमेशा करेंट ही होते हैं और नीचे की रूट्स हमेशा शेष रह जाती है। उनमें कोई फर्क नहीं पड़ता। रिएक्शन और रैवोल्यूशन में जो मैं फर्क करता हूं। आज एक स्थिति है करेंट मुल्क की। करेंट मुल्क की स्थिति के खिलाफ हम कुछ करें—करना जरूरी हो गया है, कर रहे हैं। बात कर रहे हैं, विरोध कर रहे हैं। लेकिन आप यह नहीं जानते कि यह जो करेंट स्थिति के खिलाफ बात कर रहा है यह आदमी, और वह आदमी जो करेंट स्थिति पैदा कर रहा है, इनकी दोनों की रूट्स अगर एक हैं, तो यह रिएक्शन इनका, इनको ताकत में ला सकता है चार पांच साल के बाद। और आप हैरान होंगे जानकर कि इनके ताकत में आते ही ये लोग भी करीब-करीब वैसी स्थिति पैदा कर देंगे, कि वह जो हुकूमत में था, वह इनके खिलाफ रिएक्शन करने लगेगा।

प्रश्न—पॉलिटिक्स नहीं लड़ना चाहते हैं ?

नहीं नहीं, मेरी बात नहीं समझे आप। मैं जो कह रहा हूं, मैं यह कह रहा हूं, कि आप—इसमें जो फर्क कर रहा हूं, रैवोल्यूशन का कॉन्सेप्ट बड़ा कॉन्सेप्ट है। रिएक्शन का कॉन्सेप्ट बिल्कुल करेंट कॉन्सेप्ट है। रैवोल्यूशन का मतलब है कि माइंड के सोचने का जो ढंग था, जो फ्रेम वर्क था, माइंड जिस तरह से कण्डीशन किया गया था, हम उस पूरी कण्डीशनिंग को तोड़ना चाहते हैं। रिएक्शन का मतलब यह है कि हमें बेसिक कण्डीशन से कोई मतलब नहीं है। जैसे हम यहां बैठे हैं और यहां पानी आने लगा, तो रिएक्शन का मतलब यह है कि हम एक छप्पर डाल देते हैं। लेकिन इस बेसिक मकान में, इसकी बुनियाद में, इसकी नींव में बिल्कुल फर्क नहीं करते हैं। एक छप्पर डाल देते हैं। ये जो करेंट मामले हैं, वे छप्पर डालने जैसे हैं। इस दीवार में थोड़ी-सी खिड़की बना देते हैं, इस दीवार की थोड़ी नयी रंग-रोगन कर देते हैं, लेकिन मकान वही बना रहता है।

और हिन्दुस्तान आज तक रैवोल्यूशन से नहीं गुजरा है मैं आपको कहूं, रिएक्शन से तो बहुत गुजरा है। सच तो यह है कि मेरी अपनी समझ में हिन्दुस्तान में जिसको हम क्रान्ति कहते हैं अंग्रेजों से छुटकारे की, वह भी एक रिएक्शन थी, वह भी क्रान्ति नहीं थी। और इसलिए जिनके हाथ में ताकत गयी वह अंग्रेजों के भाई-बन्धु साबित हुए। उनमें कोई फर्क नहीं था। वे उनकी औलाद थे बिल्कुल।

प्रश्न—बदतर थे ?

औलाद अक्सर बदतर साबित होती है। उसमें कोई ऐसी कठिनाई की बात नहीं है। तो हिन्दुस्तान क्रान्ति से गुजरा नहीं। और क्रान्ति से अभी भी नहीं गुजर सकेगा मुल्क। मेरी अपनी समझ यह है कि इस मुल्क को इस समय कुछ ऐसे लोगों की जरूरत है, जिनको करेंट मामले में, करेंट प्राब्लम में ताकत नहीं लगा देनी है, बल्कि मुल्क के बेसिक माइंड पर जूझ पड़ना है। एक दस साल की मेहनत, और आप पायेंगे कि वह बेसिक माइंड का जो फर्क होगा, वह फिर करेंट प्राब्लम से लड़ने में समर्थ हो जायेगा। आपके पास करेंट प्रॉब्लम से लड़ने वाला मन भी नहीं है ! आप चिल्ल-पों करते रहते हैं, शोरगुल मचाते रहते हैं। मजा यह है, मैं देखता यह हूं कि इधर आपके मुल्क की जो लीडरशिप है, वह चाहे किसी पार्टी की हो, वह बोलती रहती है ! जनता को कोई मतलब नहीं है। जनता में कोई बात कहीं पहुंचती नहीं। उसके ख्याल में ही नहीं आ पाता कि आप क्या कह रहे हैं। उसका माइंड यह बना हुआ है कि 'कोउ नृप होहिं, हमें का हानि'।

प्रश्न—अस्पष्ट

नहीं हुआ, क्योंकि गलत शब्दों का हम उपयोग करते रहे। शब्द से गलत नहीं होता, हम गलत शब्द का उपयोग करते रहें। सच आप पूछिये तो हिन्दुस्तान में कभी-कभी मुश्किल से कभी कोई एकाध आदमी क्रान्ति के शब्द बोला है। बोला ही नहीं है। क्रान्ति के शब्द ही नहीं बोल गये हैं। आप जो कहते हैं न, शब्द से कुछ नहीं होगा। वह गलत कहते हैं।

प्रश्न—मेरे हिसाब से निराशा और कालिमा दिखायी देती है।

वह निराशा और कालिमा क्यों है, उसकी कभी भी बुनियाद में हम घुसने की फिक्र नहीं करते। हम ऊपर कोई कारण खोजकर निपटारा कर लेते हैं। उससे कभी हम भीतर गहरे में नहीं जा सकते हैं। अब जैसे मैं आपको कहूं—हिन्दुस्तान में क्रान्ति के शब्द बोले ही नहीं जा रहे हैं। और बोलने में हम इतने भयभीत हो गये हैं कि हम जो कुछ बोलते हैं, सब प्रतिगामी है हमारा बोलना। सारा प्रतिगामी है। मैं हिन्दुस्तान में कभी नहीं सुनता कि महावीर के खिलाफ कोई आदमी एक शब्द बोल रहा हो, कि बुद्ध के खिलाफ कोई आदमी एक शब्द बोल रहा हो, कि गांधी के खिलाफ कोई आदमी एक शब्द बोल रहा हो।

प्रश्न—गांधी के खिलाफ तो हैं—देअर आर एन्टी-गांधियनस् ?

मैं आपसे कह रहा हूं, वह भी नेहरू के खिलाफ आपका बुनियाद है। और अभी भी मैं आपको कहता हूं कि गांधी के खिलाफ आप सोचते होंगे, बोल आप नहीं रहे।

प्रश्न—आदमी के नहीं, थॉट्स के ?

थॉट्स के खिलाफ भी नहीं। गांधी के खिलाफ कौन-सा मूवमेंट है ? थॉट्स के खिलाफ भी नहीं। आप बातें सोच लेते होंगे बैठकर चार आदमी, उसका मतलब नहीं है। कोई मूवमेंट नहीं है यहां पर, कोई जरा-सा भी नहीं है। कोई बात नहीं है, कोई खुले में चर्चा नहीं है। किसी मंच से कुछ नहीं कहा जा रहा है कि हम गांधी को, कोई आदमी गद्दार कह सकता हो, कि कोई कह सकता हो कि गांधी इस मुल्क का दुश्मन है।

मैं आपसे जो कह रहा हूं—एक तो बात यह कि हमें एक बिल्कुल ही प्योर यूथ मूवमेंट चाहिए—जिसकी आज के मामले पर हम ताकत फिलहाल नहीं लगाना चाहते हैं, दस साल बाद लगायेंगे। दस साल बाद लग जायेगी अपने से। क्योंकि जो अपने पुराने अतीत से लड़ने को राजी हो गये, वे दिल्ली में बैठे बेवकूफों को मिनटों में उखाड़ सकते हैं—जो बुद्ध और महावीर से लड़ने को खड़े हो गये। मैं आपको कहता हूं, वह लड़ाई जो लेना पड़े, इनको उखाड़ फेंकने का कोई मतलब नहीं है। इनमें कोई ताकत है ? लेकिन ये उनका सहारा लेकर बैठे हुए हैं पूरे वक्त। हमारे मुल्क की जो बुजुर्ग लीडरशिप है, वह पूरे हेरिटेज का सहारा लेकर बैठी हुई है। वह राष्ट्रपति जायेंगे और दो सौ ब्राह्मणों के जाकर पैर धोयेंगे काशी में। राष्ट्रपति नहीं बैठा हुआ है वहां। जब तक ब्राह्मण बैठा हुआ है, राष्ट्रपति को हटाना बहुत मुश्किल मामला है। वे जो सहारे हैं उसके, वे बहुत गहरे हैं।

और दूसरी बात मुझे दिखायी पड़ती है जो हम मुल्क के ख्याल में बहुत साफ नहीं है। एक तो मैं कहता हूं, एक यूथ मूवमेंट हो जो बिल्कुल प्योर यूथ मूवमेंट है। रिबेलियन अगेंस्ट द पास्ट, और टोटल माइंड के खिलाफ। तो मैं आपको कहता हूं, आपका युवक आज तैयार किया जा सकता है इस रिबेलियन के लिए। उसकी भीतरी तैयारी हो गयी है। आप उसको दिशा नहीं दे पा रहे हैं। आप साफ नहीं कह पा रहे हैं कि उसके भीतर कौन-सी दिशा हो।

और दूसरी बात मुझे दिखायी पड़ती है कि हिन्दुस्तान में कोई भी समाज रचना अगर आने वाली हो तो हिन्दुस्तान के पास एक रैवोल्यूशनरी संन्यासियों का ऑर्डर चाहिए, उसके बिना यहां कोई बड़ा मूवमेंट खड़ा नहीं हो सकता। संन्यासियों का ऑर्डर चाहिए।

प्रश्न—क्योंकि आपको ट्रेडीशन······?

तोड़नी है। मैं आपको कहता हूं, ट्रेडीशन से ही तोड़ी जा सकती है।

प्रश्न—यह कण्ट्राडिक्शन है।

नहीं कण्ट्राडिक्शन नहीं है, मैं आपको कहता हूं। क्यों कण्ट्राडिक्शन नहीं है, मैं आपको कहता हूं। मैं इसलिए कहता हूं कि हिन्दुस्तान के तीन हजार वर्षों में जो भी रचना हुई है हिन्दुस्तान के माइंड की, जो भी रचना हिन्दुस्तान के माइंड की, उसका सेन्ट्रल फोर्स जो है, वह रिलिजन है—हिन्दुस्तान के माइंड की। मैं रिलिजन के खिलाफ भी नहीं हूं। उस रिलिजन के खिलाफ हूं, जो चलता रहा है। लेकिन मेरी मान्यता यह है कि आदमी हमेशा रिलिजन में भी रैवोल्यूशन करता है और नये रिलिजन के कॉन्सेप्ट को विकसित करता है।

संन्यासी की जो आज तक हमारी धारणा थी उसको मैं गलत कहता हूं, लेकिन मैं संन्यासी की धारणा को गलत नहीं कहता। मेरी अपनी मान्यता है कि कुछ लोग जो परम स्वतन्त्रता के दीवाने हैं, वे हमेशा संन्यास जैसे जीवन को पसन्द करेंगे—परम स्वतन्त्रता के जो दीवाने हैं। और ये जो लोग हैं, ये जो परम स्वतन्त्रता के दीवाने हैं, इन लोगों के कोई वेस्टेड इन्ट्रेस्ट नहीं हैं। आप जो कहते हैं न कि हमारा वेस्टेड इन्ट्रेस्ट है, वह गृहस्थ का हमेशा होगा, मैं आपको बताये देता हूं। गृहस्थ कभी भी रैवोल्यूशनरी नहीं हो सकता है। रैवोल्यूशनरी हो सकता है रिननशिएट, जिसका अब कोई वेस्टेड इन्ट्रेस्ट नहीं है; जिसका क्या जाना, क्या आना है ? जिसको मार्क्स ने कहा है, सर्वहारा। तो मजदूर भी सर्वहारा नहीं है, सिर्फ संन्यासी सर्वहारा है, मेरी दृष्टि में। क्योंकि मजदूर जिसे प्रोलिटेरियेट कहते हैं हम, उसका वेस्टेड इन्ट्रेस्ट है। उसको भी कुछ कमाना है, उसका भी घर है, उसके भी बच्चे हैं। बच्चे पढ़ रहे हैं, डाक्टर बनना चाहते हैं। एक संन्यासी है, उसका कोई वेस्टेड इन्ट्रेस्ट नहीं है। उसका कोई पास्ट नहीं, कोई फ्यूचर नहीं। वह तो मरने को खड़ा हो गया है।

प्रश्न—जो हम आपको राहत दे दें, आपका एक आर्डर······।

इस मुल्क में जो क्रान्ति गुजरेगी, अगर इस मुल्क में कोई तीव्रता से क्रान्ति लानी है, तो वह ऐसे लोगों से आयेगी जिनका कोई वेस्टेड इन्ट्रेस्ट नहीं है, जो सब छोड़ने को खड़े हैं। मेरा मतलब समझे न ? मेरा मतलब फकीर ही है। ये जो लोग क्रान्ति ले आयेंगे, जरूरी नहीं कि जो लोग क्रान्ति लायें, वे क्रान्ति के बाद राज्य के मालिक हों। वह बिल्कुल बेवकूफी की बात है, क्योंकि क्रान्ति लाना एक और ही शिल्प है, एक और ही टेक्नीक है। और राज्य करना बिल्कुल और शिल्प है, और टेक्नीक है। वह भूल हम एक दफा कर चुके। अभी यह जो कांग्रेस हमारी छाती पर बैठ गयी, ये वे लोग थे, जिन्होंने पिकेटिंग कर ली और जेल चले गये। लेकिन इनसे कोई राज्य करने का सवाल था ? इनसे कोई मतलब था राज्य करने का ? नहीं, यह सवाल नहीं है। वह तो क्रान्ति जब विकसित होती है तो क्रान्ति बहुत अंगों में विकसित होती है। क्रान्ति करने वाला अंग एक है, क्रान्ति के सम्बन्ध में सोचने वाली इटेलिजेंस दूसरी है। क्रान्ति के बाद जब शक्ति आ जायेगी हाथ में, तो उसको एडमिनिस्टर करने वाली ताकत बिल्कुल तीसरी है।

और कोई भी क्रान्तिकारी आन्दोलन तीन तबकों में चलता है—वे जो क्रान्ति करेंगे, वे जो क्रान्ति को फिलॉसफी देंगे, वे जो लोग क्रान्ति के बाद सत्ता को हाथ

में लेंगे । तो यह तो हमको साफ होना चाहिए । और यह जब तक हम तीन हिस्सों में तोड़कर क्रान्ति के लिए गति नहीं देते, तब तक हम क्रान्ति ला भी नहीं सकेंगे । वह जो क्रान्ति कराता है, उसके हाथ में अगर सत्ता चली जाये तो नष्ट कर देगा । जो क्रान्ति की, उसी को नष्ट कर देगा वह । उसका जो माइंड है, वह माइंड तोड़-फोड़ वाला है जो सत्ता को तोड़ सकता है । यानी वह ऐसा ही मामला है कि हमें घर गिराना है तो हम मजदूरों को बुलाकर घर गिरवा लेते हैं, लेकिन उनसे घर थोड़े ही बनवाते हैं ! बनवाने के लिए राज को बुलवाते हैं । राज को घर गिरवाने के लिए बुलवाते नहीं हैं । क्योंकि घर गिराने में तो—कोई भी कुदाली फावड़ा चलाकर गिरा लेता है । इससे कोई मतलब नहीं । लेकिन घर बनाना दूसरी बात है ।

और अगर हमें एक प्लांड रैवोल्यूशन से मुल्क को ले जाना है, तो हमें तीन तलों पर यह बात खड़ी करनी चाहिए । और इधर मैं यूथ मूवमेंट के लिए तो बहुत ही आतुर हूं । लेकिन मेरी अपनी दृष्टि यह है कि अगर उसे सच में खड़ा करना है, सच में ही खड़ा करना है······क्योंकि जैसे ही आप करेंट मामले पर उसे खड़ा करना चाहते हैं, वैसे ही उस यूथ मूवमेंट की फोर्स टूट जाती है फौरन । क्योंकि करंट मसलों पर दूसरे लोग सारी पार्टियां उत्सुक है उसको घेरने को । तो आपको एक टुकड़ा ही मिलता है यूथ का । कभी आपको पूरा यूथ नहीं मिलता । मैं जिस मूवमेंट की बात कह रहा हूं आपको, पूरा यूथ, टोटल यूथ मिलेगा । और इस टोटल यूथ से क्रान्ति—दस साल में अपने आप, आपको हमें कहना नहीं पड़ेगा । असल बात यह है कि एक दफा चिन्तन पैदा हो जाये तो इस मुल्क को बर्दाश्त किया जा सकता है एक दिन—यह जैसा चल रहा है ? इसको बर्दाश्त नहीं किया जा सकता ।

तो मैं यह कहता हूं कि उसे टुटपुंजिया बातों में उलझाइए ही मत अभी । उसको तो बेसिक मामले पर, एक दस साल के लिए पूरी मेहनत करें पूरे मुल्क में, और एक दफा यूथ मूवमेंट शक्ल पकड़ ले । हैरान होंगे, रूस में भी जो क्रान्ति आयी उस क्रान्ति के पीछे जिन लोगों का हाथ था, वे थे निहिलिस्ट । वह यूथ मूवमेंट था बुनियादी । और निहिलिस्टों के सामने कोई कंसेप्शन नहीं था, सिवाय डिस्ट्रेक्टिव माइंड के। लेकिन उस डिस्ट्रेक्टिव माइंड को पकड़ गयी ताकत उन्नीस सौ पांच तक । और एक दफा पकड़ गयी तो उससे मूवमेंट दूसरा पैदा हो आया लेनिन का । इस मूवमेंट ने सारा शोषण कर लिया उस निहिलिस्टों के मूवमेंट का । हिन्दुस्तान में निहिलिस्ट जैसा कोई मूवमेंट नहीं है । और जब तक नहीं है, तब तक हिन्दुस्तान में कोई परमानेंट रैवोल्यूशन नहीं हो सकता । एक दफा निहिलिज्म से गुजर जाना जरूरी है । एक दफा वह अनार्किस्ट जो माइंड है, एक दफा उसकी पूरी हवा फैल जानी चाहिए । तब हम उसके पार आगे बढ़ते, नहीं तो

नहीं बढ़ते । उसके बाद हम आगे नहीं बढ़ते ।

मैं जो यूथ मूवमेंट का कहा, तो मेरी अपनी धारणा ही यह है कि यूथ मूवमेंट अगर खड़ा करना है तो यूथ मूवमेंट के खड़े करने की शक्ल बिल्कुल ही एक मिल्ट्री ऑर्गनाइजेशन की होगी, नहीं तो नहीं हो सकती है ।

प्रश्न—अस्पष्ट

सुनिश्चित रूप से चाहिए । एक तो आदमी की जो भी बुनियादी जरूरतें हैं, वह प्रत्येक आदमी को उपलब्ध होनी चाहिए । प्रत्येक आदमी को बुनियादी जरूरतें······एक भी आदमी इस मुल्क में ऐसा नहीं होना चाहिए, जिसकी बुनियादी जरूरतें नहीं होतीं । या तो हम इतने लोग रहें, या बीस करोड़ लोग मर जायें, लेकिन जितने आदमी जिन्दा रहते हैं, उनको बुनियादी जरूरतें पूरी मिलनी चाहिए । अगर हमको यह भी करना पड़े कि मुल्क को राजी करना पड़े कि दस करोड़ लोग मरो, तो मैं उसके लिए भी तैयार हूं, लेकिन कोई भी जिन्दा आदमी भूखा और बिना कपड़े के न रहे, अब ऐसा नहीं बर्दाश्त किया जा सकता ।

तो एक तो शरीर के तल पर हमें सारी जरूरतें पूरी करने की फिक्र करनी चाहिए । मन के तल पर मनुष्य को अधिकतम जितनी हम फ्रीडम की व्यवस्था कर सकें, वह हमें करनी है । जितनी अधिकतम फ्रीडम की व्यवस्था सम्भव है ।

न तो पुरानी दुनिया में मन के फ्रीडम की पूरी व्यवस्था थी । न रूस में और न चीन में मन के फ्रीडम की पूरी व्यवस्था है, बल्कि पुरानी दुनिया से वहां वह व्यवस्था कम हो गयी है । शरीर के तल पर सारी जरूरतें और सुविधाएं पूरी हों और मन के तल पर सारी स्वतन्त्रता की सुविधा हम जुटा सकें—शिक्षा की, ज्ञान की, समस्त तरह के ज्ञान की, समस्त विरोधी ज्ञान की । और मुल्क के माइंड पर कम से कम जबरदस्ती और रोक हो । और ऊपर से व्यवस्था और थोपते न हो—चाहे वह धर्मगुरु थोपते हों या राजनीतिज्ञ थोपते हों ।

तो मुल्क के मन पर अधिकतम हम स्वतन्त्रता की व्यवस्था जुटा सकें । शरीर के तल पर और मन के तल पर । और आत्मा के तल पर मेरे अपने ख्याल हैं, वह शायद आपको ख्याल में नहीं होंगे । आत्मा के भी तल पर मेरे ख्याल हैं कि आत्मा के तल पर भी, जैसी मेरी समझ है कि शरीर के तल पर कुछ बेसिक जरूरतें हैं और मन के तल पर शिक्षा और ज्ञान के विस्तार की बातें हैं, वैसा ही आत्मा के तल पर भी ध्यान, मैडीटेशन और उस तरह की जरूरतें हैं । वह भी हम प्रत्येक आदमी को जुटा सकें । वह न भी ख्याल में हो अभी तो उसको छोड़ा जा सकता है । हम दो ही बात कर सकते हैं । तो मनुष्य के पूरे व्यक्तित्व के जो तीन हिस्से हैं उन तीनों हिस्सों को हम अधिकतम विकास की सुविधा दे सकें, कम से कम रुकावट दे सकें, वैसी व्यवस्था करनी जरूरी है ।

प्रत्येक आदमी को इतनी स्वतन्त्रता चाहिए कि उससे दूसरे की स्वतन्त्रता पर

बाधा न पड़ती हो । बस इतनी स्वतन्त्रता । उसके आगे स्वतन्त्रता पर बाधा डालनी जरूरी है । प्रत्येक आदमी को इतनी समानता चाहिए कि उसके विकास के जो बुनियादी तत्व हैं, उनमें बाधा न पड़ जाती हो इतनी समानता । इतनी समानता नहीं कि हर एक आदमी बिल्कुल बराबर का काट-छांटकर खड़ा कर दें, कि उसके पास दो रुपये, मनुभाई के पास दो रुपये । और एक मकान मेरे पास और वैसा एक मकान मनुभाई के पास । उस बेवकूफी की समानता का मेरे मन में मूल्य नहीं है । मेरा मानना है कि अगर स्वतन्त्रता हम देंगे पूरी मनुष्य को तो उसके बहुत तलों पर असमानता बनी रहेगी ।

बम्बई, १९६७

३०. देख कबीरा रोया

एक आदमी को परमात्मा का वरदान था कि जब भी वह चले, उसकी छाया न बने, उसकी छाप न पड़े। वह सूरज की रोशनी में चलता तो उसकी छाया नहीं बनती थी। जिस गांव में वह था, लोगों ने उसका साथ छोड़ दिया। उसके परिवार के लोगों ने उसको घर से बाहर कर दिया। उसके मित्र और प्रियजन उसको देखकर डरने और भयभीत होने लगे। धीरे-धीरे ऐसी स्थिति बन गयी कि उसे गांव के बाहर जाने के लिए मजबूर हो जाना पड़ा। वह बहुत हैरान हुआ, तो उसने परमात्मा से प्रार्थना की कि मैंने केवल छाया खो दी है, और लोग मुझसे इतने भयभीत हो गये हैं, लेकिन लोग तो आत्मा भी खो देते हैं, और तब भी उनसे कोई इतना भयभीत नहीं होता है।

पता नहीं, यह कहां तक सच है कि किसी आदमी ने अपनी छाया खो दी हो। यह बात बड़ी काल्पनिक मालूम होती है, लेकिन दूसरी बात सत्य है। बहुत कम लोग हैं पृथ्वी पर, जो अपनी आत्मा न खो देते हों अधिकतम लोग आत्मा खो देते हैं और छाया को बचा लेते हैं। सिर्फ छाया बच जाती है और भीतर जो भी महत्वपूर्ण है, वह सब खो जाता है। हमारे देश में यह दुर्भाग्य और भी बहुत घना होकर प्रगट हुआ है। यद्यपि, हम आत्मा की बातें करते रहे हैं हजारों वर्षों से, लेकिन वे बातें केवल बातें ही हैं और हमारे देश ने बहुत पहले आत्मा खो दी है। शायद हम इसीलिए आत्मा और परमात्मा की बहुत बातें करते हैं, ताकि आत्मा

के खो जाने के तथ्य को भूले रहें।

इधर हजारों वर्षों से हम इस भ्रम में रहे हैं कि हम जगत्-गुरु हैं। यह बात सरासर झूठी है। हम इस भ्रम में भी रहे हैं कि हम बहुत धार्मिक हैं, यह बात भी सरासर झूठी है। हमसे ज्यादा अधार्मिक जाति जमीन पर खोजनी आज कठिन है। लेकिन अपने अधर्म को, अपनी अनीति को, अपनी जीवन की व्यर्थता और गलत ढंग को हम बहुत अच्छी बातों में छिपाने में कुशल हो गये हैं। हमारे पास सिवाय बातों के और कुछ भी नहीं रह गया है, और सिवाय शास्त्रों और ग्रन्थों के कुछ भी नहीं रह गया है। हमारा आदमी बहुत पहले खो चुका है और मर गया है। क्या हम इन झूठी बातों को दोहराते रहेंगे? या कि हजारों वर्षों से जो सपना हमने अपने मुल्क में पैदा किया था कि हम मनुष्य को उसके शरीर के ऊपर उठायेंगे, और हम मनुष्य के जीवन को परम जीवन से जोड़ेंगे, और मनुष्य के जीवन को हम इस शांति से भर देंगे, जो इस पृथ्वी पर दुर्लभ है, और हम मनुष्य के जीवन को एक आनन्द और अमृत का स्रोत बना देंगे? क्या हम इस सपने को पूरा करेंगे या केवल बातें ही करते रहेंगे?

ये बातें कितनी ही सुखद मालूम होती हों, लेकिन दुनिया के सामने इन बातों की व्यर्थता रोज-रोज स्पष्ट होती चली जाती है। हमने न केवल आत्मा खो दी हैं, बल्कि आत्मा की बातों में हमने संसार को भी खो दिया है और आज हम उन कौमों के सामने भीख मांगने को खड़े हैं, जिनकी उम्र हमारे सामने न कुछ है। अमरीका की सभ्यता की कुल उम्र तीन सौ वर्ष है। रूस की सभ्यता की कुल उम्र, जैसा रूस आज है, पचास वर्ष से ज्यादा नहीं है। और हम पांच हजार वर्ष पुरानी कौम और पांच हजार वर्ष पुराना देश, आज बच्चों के सामने भीख मांगने को मजबूर हो गये हैं हमने आत्मा भी खो दी है और हम शरीर खोने की तैयारी पर भी पहुंच गये हैं!

क्या हम इसको चुपचाप देखते रहें? क्या इस आते हुए आसन्न संकट को हम चुपचाप सहते रहें? और क्या उन राजनीतिज्ञों के हाथ में सारी बात छोड़ दें, जो कि हमारी बीमारी के लिए उतने ही अग्रणी हैं, जितनी हमारी राजनीति के। हमारी रुग्णता और हमारे पागलपन और हमारी बीमारी के जो नेता हैं, हम उन पर ही छोड़ दें? क्या उन पर छोड़ देने से इस मुल्क के भविष्य का कोई भी प्रकाशपूर्ण पक्ष प्रगट होता है?

इधर बीस वर्षों में हिन्दुस्तान की गति और नीचे गिरी है—हमारी नैतिकता नीचे गयी है, हमारा चरित्र नीचे गया है। यह हो सकता है कि हमने कुछ मकान बना लिए हैं, यह भी हो सकता है कि हमने कुछ कारखाने खोल लिए हैं, यह हो भी सकता है कि हमने कुछ रास्ते सुधार लिए हैं। लेकिन रास्तों का क्या होगा और कारखानों का क्या होगा और मकानों का क्या होगा, जब हमने आदमी को

ही खो दिया हो !

और आदमी को हम रोज खोते जा रहे हैं। यह बहुत मंहगा सौदा है और मुल्क में जो केवल बहुत अन्धे हैं, जो केवल बहुत बहरे हैं, केवल वे ही इनको बर्दाश्त कर सकते हैं और देखते रह सकते हैं। जिनके मन में थोड़ी भी करुणा है और जिनके मन में थोड़ा भी प्रेम है और जिनके हृदय में थोड़ी भी जीवन को बदलने की प्यास और अकुलाहट है, उन्हें कुछ करना है। यह चुनौती इतनी स्पष्ट है कि केवल मुर्दे ही इस चुनौती को बिना लिए रह जायेंगे। जिनके भीतर जीवन है, यह चुनौती स्वीकार करनी ही होगी।

एक छोटी-सी घटना मुझे याद आती है। एक बहुत बड़े महल में आग लग गयी थी। और उस महल के सामने बहुत लोग इकट्ठे थे। महल का मालिक रोता हुआ, आंसू बहाता हुआ बाहर खड़ा था। उसने सारा होश खो दिया था। उसकी कुछ समझ में न आ रहा था कि क्या हो गया है। नौकर और पड़ोस के लोग भीतर से समान, तिजोरियां और बहुमूल्य चीजें निकाल कर ला रहे थे। फिर आखिरी क्षण आ गया मकान के जलने का और लोगों ने उस मकान मालिक को पूछा कि कुछ और भीतर तो नहीं रह गया है ? उस मकान मालिक ने कहा, मुझे कुछ भी याद नहीं है, मेरी कुछ समझ में नहीं पड़ता है। तुम एक बार भीतर जाकर और देख लो। वे भीतर गये और वहां से छाती पीटते और रोते हुए वापस लौटे। मकान मालिक का इकलौता लड़का भीतर ही जल गया था ! वे मकान बचाने में लग गये थे और मकान का असली मालिक जलकर समाप्त हो गया था !

मैंने जब यह बात सुन थी, तो मैंने कहा कि किसी महल में यह घटना घटी हो या न घटी हो, लेकिन हमारा जो देश का महल है वहां यह घटना रोज घट रही है। हम सामान बचाने में लगे हैं और सामान का मालिक रोज मरता जा रहा है। और आने वाले बच्चों के लिए हम जो भविष्य खड़ा कर रहे हैं, वह इतना दुखद है कि बच्चे, आने वाली पीढ़ियां हमें सदा-सदा के लिए कोसेंगी, हमें सदा के लिए दोषी ठहरायेंगी। हम सदा के लिए आने वाले इतिहास की अदालत में बहुत मुजरिम की तरह, बहुत अपराधी की तरह खड़े होने को हैं, यह हमें पता होना चाहिए। मुझे यह दिखायी पड़ता है कि जो लोग अपराध में भाग न भी लेते हों, लेकिन चुपचाप अपराध को होते हुए देखते हों, वह भी अपराधी ही होते हैं, यह भी हमें समझ लेना चाहिए। और हम सारे लोग इस बड़े अपराध में सम्मिलित हैं, जो मुल्क के साथ हो रहा है।

क्या कुछ नहीं किया जा सकता है ? क्या हताशा और निराशा इतनी है कि कुछ भी नहीं हो सकता है ? मुझे ऐसा मानने का कोई भी कारण दिखायी नहीं पड़ता है। मैं बहुत आशा से भरा हुआ हूं और मुझे लगता है कि रास्ते खोजे जा सकते हैं। आदमी के मन को बदलने को, आदमी के चरित्र को बदलने को, उसको प्राण देने को, उसको आत्मा देने को मार्ग खोजे जा सकते हैं। इन मार्गों की खोज में, इन मार्गों की चर्चाओं में दस वर्षों से मैं मुल्क के लाखों लोगों के पास गया हूं और मेरी आशा रोज-रोज घनीभूत होती हुई दिखायी मालूम पड़ी। और मुझे यह भी मालूम पड़ा है कि अगर मुल्क के जो सामान्य जन हैं, अगर मुल्क के नेता उन्हें गलत रास्तों पर न ले जायें तो मुल्क के सामान्य जन के बदलाहट की बहुत आसान स्थिति है, कोई कठिनाई नहीं पैदा हो गयी है। लेकिन राजनीति ने इतने जोर से हमारे ऊपर हमला बोला है कि जीवन के सारे अंग उसके नीचे दब गये हैं। जैसे राजनीतिज्ञ ही सब कुछ है और शेष कुछ भी नहीं है लेकिन स्मरण रहे, राजनीति न तो किसी मुल्क के चरित्र को बनाती है, राजनीति न किसी मुल्क को आत्मा देती है ! राजनीति न किसी मुल्क को शान्ति देती है और न आनन्द देती है, और न जीवन को अर्थ और मीनिंग देती है। राजनीति केवल द्वन्द्व देती है, संघर्ष देती है और महत्वाकांक्षा देती है। और महत्वाकांक्षा, एम्बीशन, जितनी बढ़ती चली जाती है, उतनी मन को वायलेंस, हिंसा और एक दूसरे के प्रति शत्रु के भाव से भरती चली जाती है।

यह जो दशा है, यह बदली जा सकती है ! हमें जीवन के सारे सूत्रों को एक बार फिर से पुर्नविचार कर लेना जरूरी होगा और मनुष्य के विज्ञान को निर्मित करना जरूरी होगा। और मनुष्य के विज्ञान का एक ही सूत्र अन्त में मैं आपसे कह देना चाहता हूं। लम्बी बात करनी तो कठिन नहीं है, लेकिन सबसे पहले एक सूत्र बहुत जरूरी है, और वह यह है, इसके पहले कि हम कुछ भी कर सकें, यह समझ लेना बहुत जरूरी है कि हम क्या हो गये हैं।

मैंने सुना है, एक छोटे-से स्कूल में एक इन्सपेक्टर परीक्षा के लिए आया था, निरीक्षण के लिए। उस स्कूल की बड़ी कक्षा में जाकर उसने बच्चों से कहा कि तुम्हारी कक्षा में जो तीन विद्यार्थी सबसे श्रेष्ठ हों, नम्बर एक, नम्बर दो, नम्बर तीन; वे खड़े हो जायें। और पहले नम्बर एक का विद्यार्थी आये और बोर्ड पर आकर सवाल हल करे।

पहले नम्बर का विद्यार्थी आया, उसने बोर्ड पर सवाल हल किया और अपनी जगह वापस बैठ गया। फिर नम्बर दो का विद्यार्थी आया, उसने भी सवाल हल किया और वह भी अपनी जगह जाकर बैठ गया। फिर नम्बर तीन का विद्यार्थी आया। लेकिन नम्बर तीन का विद्यार्थी बहुत डरता हुआ आता और घबराया आया। बहुत भयभीत आया, और बोर्ड पर वह सवाल करने को था कि इन्स-पेक्टर ने उसे गौर से देखा और वह पहचान गया कि यह लड़का धोखा दे रहा है। वह जो नम्बर एक आया था, वह लड़का यही था और दुबारा आ गया था।

इन्सपेक्टर ने उसे पकड़ा और कहा, बेटे, तुम धोखा दे रहे हो ! तुम एक दफा आकर सवाल हल कर गये। उस लड़के ने कहा, धोखा मैं नहीं दे रहा हूं। हमारा

जो नम्बर तीन का विद्यार्थी है, वह क्रिकेट का मैच देखने चला गया है और वह मुझसे कह गया है कि उसकी जगह कोई काम पड़ जाये तो मैं कर दूं। मैं उसकी जगह आया हुआ हूं। उस इन्सपेक्टर ने कहा, पागल, तुझे पता नहीं है कि परीक्षा दूसरों की जगह नहीं दी जा सकती? लेकिन उस लड़के ने कहा कि हमारे मुल्क में तो हर चीज दूसरों की जगह की जा सकती है। इन्सपेक्टर ने उसे बहुत डांटा, उसे अपनी जगह भेजा।

और फिर वह शिक्षक की तरफ मुड़ा, जो चुपचाप बोर्ड के पास खड़ा था। उसने उस शिक्षक को कहा कि मेरे मित्र, विद्यार्थी धोखा देता था, यह तो ठीक है, लेकिन तुम खड़े क्या देखते थे, तुम क्यों चुप रहे? क्या तुम भी इस धोखे में सम्मिलित हो? उस शिक्षक ने कहा, माफ करें, मैं इस क्लास का शिक्षक नहीं, मैं विद्यार्थियों को पहचानता नहीं। मैं पड़ोस की क्लास का शिक्षक हूं। इस क्लास का शिक्षक क्रिकेट का मैच देखने चला गया है। वह मुझसे कह गया है कि कोई जरूरत पड़ जाये तो मैं उसकी जगह आकर खड़ा हो जाऊं।

फिर तो इन्सपेक्टर के लिए नाराज होने को काफी मौका था, वह बहुत चिल्लाया। उसने बहुत उपदेश दिये, जैसे कि हमारे मुल्क में उपदेश देने की एक बहुत बीमारी है। जिसको भी मौका मिल जाये, वह उपदेश दिये बिना नहीं रहता है। उसने बहुत उपदेश दिये। इन्सपेक्टर बहुत नाराज हुआ और कहा कि तुम्हारी नौकरी छूट सकती है, इस बेईमानी के लिए। शिक्षक घबराया, गरीब शिक्षक, उसकी आंखों में आंसू आ गये। वह माफी मांगने लगा। इन्सपेक्टर को दया आ गयी, उसने कहा घबराओ मत। यह तुम्हारा भाग्य है कि मैं असली इन्सपेक्टर नहीं हूं। असली इन्सपेक्टर क्रिकेट का खेल देखने चला गया है। मैं उसका मित्र हूं, वह मुझसे कह गया है कि जरा मैं आज निरीक्षण कर दूं!

हम सब एक नाव पर सवार हैं—धोखे की, बेईमानी की, चरित्रहीनता की। पहली तो बात यह जान लेनी जरूरी है कि हम सब इस पर सवार हैं। इसमें कोई एक आदमी जिम्मेवार नहीं है, हम सब जिम्मेवार हैं—चाहे शिक्षक हो, चाहे संन्यासी हो, चाहे साधु हो, चाहे राजनीतिज्ञ हो, चाहे पत्रकार हो, चाहे कोई भी हो, हम सब सम्मिलित हैं। इस मुल्क के दुर्भाग्य में हम सबका हाथ है। एक तो मैं सारे मुल्क में जाकर लोगों को यह समझा देना चाहता हूं, क्योंकि इसके बिना कोई परिवर्तन की सम्भावना पैदा नहीं हो सकती है।

और फिर हम क्या करें? अगर यह ज्ञात भी हो जाये कि हम सब सम्मिलित हैं तो दूसरी बात यह समझा देना चाहता हूं कि कम से कम हम अपना हाथ तो खींच लें इस दुर्भाग्य से। इस मुल्क की दुर्घटना में कम से कम मैं सहयोगी तो न रह जाऊं। कम से कम मैं तो अपने को अलग कर लूं। और अगर एक-एक व्यक्ति भी अलग करने का साहस प्रगट करे—और यही धार्मिक मनुष्य का लक्षण है कि

वह अपने को अलग करने का साहस प्रगट करता है। वह इतना करेज जाहिर करता है कि अगर सारा मुल्क भी एक बेईमानी में सम्मिलित है, तो वह अपना हाथ दूर करने की कोशिश करता है। और जो आदमी, थोड़े से लोग भी अगर मुल्क में अपना हाथ दुर्भाग्य से दूर कर लें तो देश की किस्मत को बदल देना बहुत कठिन नहीं है।

अन्धकार कितना ही ज्यादा हो, एक छोटा-सा मिट्टी का दीया जल जाये, तो अन्धकार दूर हो जाता है। अगर एक-एक गांव में एक-एक आदमी का जीवन भी जलता हुआ दीया हो, तो हम एक-एक गांव के अन्धकार को दूर कर सकते हैं।

ज्यादा बात मुझे आपसे नहीं कहनी है, लेकिन, मनुष्य के भीतर का दीया कैसे जल सकता है, उसके लिए एक पूरा विश्वविद्यालय, एक पूरा विद्यापीठ बनाने की योजना है, ताकि हम आने वाले बच्चों के मन में ज्योति का कोई दीया उनको दान में दे जायें। हो सकता है, मुल्क को गरीब छोड़ जायें, हो सकता है, बहुत बड़े कारखाने न दे जायें, हो सकता है बहुत बड़े रास्ते और बड़े मकान न दे जायें, हो सकता है पूरे मुल्क को हम बम्बई न बना पायें, लेकिन वे बच्चे हमारे अनुगृहीत रहेंगे, अगर उनके भीतर प्रेम का, शान्ति का एक छोटा-सा दीया जलाने में समर्थ हो जाते हैं।

ये थोड़ी-सी बातें मैंने आपसे कहीं। इनको इतने प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूं।

बम्बई, १९६७

भगवान श्री रजनीश का उपलब्ध हिन्दी साहित्य

		मूल्य रुपयों में (डीलक्स संस्करण)	मूल्य रुपयों में (सामान्य संस्करण)
उपनिषद			
ईशावास्य उपनिषद		—	१५·००
सर्वसार उपनिषद		६०·००	४०·००
कैवल्य उपनिषद		६०·००	४०·००
अध्यात्म उपनिषद		७५·००	५०·००
कठोपनिषद		७०·००	—
कृष्ण			
कृष्ण : मेरी दृष्टि में (नया संस्करण)		६५·००	—
गीता-दर्शन	अध्याय १,२	६५·००	—
गीता-दर्शन	अध्याय ३	५०·००	३०·००
गीता-दर्शन	अध्याय ४, ५	६५·००	—
गीता-दर्शन	अध्याय ६	६५·००	—
गीता-दर्शन	अध्याय ७, ८	६५·००	—
गीता-दर्शन	अध्याय ९, १०	६५·००	—
गीता-दर्शन	अध्याय १०	५०·००	३५·००
गीता-दर्शन	अध्याय ११	—	२५·००
गीता-दर्शन	अध्याय १२	५०·००	३०·००
गीता-दर्शन	अध्याय १३, १४	८०·००	५०·००
गीता-दर्शन	अध्याय १५, १६	६०·००	४०·००
गीता-दर्शन	अध्याय १७	६०·००	४०·००
गीता-दर्शन	अध्याय १८	१००·००	६०·००
अष्टावक्र (९ भागों में सम्पूर्ण)			
महागीता	भाग–१	६०·००	३५·००
महागीता	भाग–२	६०·००	३५·००
महागीता	भाग–३	६०·००	३५·००
महागीता	भाग–४	६०·००	३५·००
महागीता	भाग–५	६०·००	३५·००
महागीता	भाग–६	५०·००	—
महागीता	भाग–७	५०·००	—

महागीता	भाग–८	५०·००	—
महागीता	भाग–९	५०·००	—
महावीर			
महावीर : मेरी दृष्टि में		—	४०·००
महावीर या महाविनाश		—	१५·००
	(३ भागों में सम्पूर्ण)		
महावीर-वाणी	भाग–३	८०·००	५०·००
	(४ भागों में सम्पूर्ण)		
जिन-सूत्र	भाग–१	८०·००	५०·००
जिन-सूत्र	भाग–२	८०·००	५०·००
जिन-सूत्र	भाग–३	८०·००	५०·००
जिन-सूत्र	भाग–४	८०·००	—
बुद्ध	(६ भागों में सम्पूर्ण)		
एस धम्मो सनंतनो	भाग–१	८०·००	५०·००
एस धम्मो सनंतनो	भाग–२	८०·००	५०·००
एस धम्मो सनंतनो	भाग–३	८०·००	५०·००
एस धम्मो सनंतनो	भाग–४	७५·००	—
एस धम्मो सनंतनो	भाग–५	७५·००	—
एस धम्मो सनंतनो	भाग–६	७५·००	—
लाओत्से	(६ भागों में सम्पूर्ण)		
ताओ उपनिषद	भाग–१	५०·००	४०·००
ताओ उपनिषद	भाग–२	—	४०·००
ताओ उपनिषद	भाग–३	७५·००	४५·००
ताओ उपनिषद	भाग–४	७०·००	—
ताओ उपनिषद	भाग–५	७५·००	—
ताओ उपनिषद	भाग–६	७५·००	—
प्रश्नोत्तर			
नहिं राम बिन ठांव		६०·००	४०·००
झेन, सूफी और उपनिषद की कहानियां			
बिन बाती बिन तेल		७०·००	५०·००
सहज समाधि भली		७५·००	५०·००
दिया तले अन्धेरा		७५·००	५०·००

मेबिल कॉलिन्स			
साधना-सूत्र		६०·००	४०·००
ब्लावट्स्की			
समाधि के सप्त द्वार		६०·००	४०·००
नारद (२ भागों में सम्पूर्ण)			
भक्ति-सूत्र	भाग–१	५०·००	३०·००
भक्ति-सूत्र	भाग–२	५०·००	३०·००
सरहपा-तिलोपा			
सहज-योग		७५·००	—
शिव			
शिव-सूत्र	प्रथम संस्करण	५०·००	—
	द्वितीय संस्करण	४०·००	—
आदि शंकराचार्य			
भज गोविंदम्		५०·००	३०·००
नानक			
एक ओंकार सतनाम		७५·००	५०·००
एक ओंकार सतनाम	(प्रथम प्रवचन)	—	१·५०
कबीर			
सुनो भाई साधो		५०·००	३०·००
गूंगे केरी सरकरा		५०·००	३०·००
कस्तूरी कुण्डल बसै		५०·००	३०·००
कहै कबीर दिवाना		५०·००	३०·००
मेरा मुझमें कुछ नहीं		५०·००	३०·००
कहै कबीर मैं पूरा पाया		५०·००	३०·००
दादू			
पिव-पिव लागी प्यास		५०·००	३०·००
सबै सयाने एक मत		५०·००	३०·००
फरीद			
अकथ कहानी प्रेम की		५०·००	३०·००
सहजोबाई			
बिन घन परत फुहार		५०·००	३०·००

दयाबाई			
जगत तरैया भोर की		५०·००	३०·००
मीराबाई			
मैंने रामरतन धन पायो		५०·००	३०·००
झुक आई बदरिया सावन की		५०·००	—
मलूकदास			
कन थोरे कांकर घने		५०·००	३०·००
दरिया			
कानों सुनी सो झूठ सब		५०·००	—
अमी झरत बिगसत कमल		६०·००	—
पलटू			
अजहूं चेत गंवार		७०·००	—
सपना यह संसार		७५·००	—
वाजिद			
कहे वाजिद पुकार		५०·००	—
जगजीवन			
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी		०·००	—
नाम सुमिर मन बावरे		५०·००	—
चरणदास			
नहीं सांझ नहीं भोर		५०·००	—
शांडिल्य (२ भागों में सम्पूर्ण)			
अथातो भक्तिजिज्ञासा	भाग–१	७०.००	—
अथातो भक्तिजिज्ञासा	भाग–२	७०·००	—
धरमदास			
जस पनिहार धरे सिर सागर		५०·००	—
का सोवै दिन रैन		५०·००	—
रज्जब			
संतो, मगन भया मन मेरा		६५·००	—
सुन्दरदास			
हरि बोलौ हरि बोल		५०·००	—
ज्योति से ज्योति जले		६५·००	—

दूलन

प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया ५०·०० —

यारी

बिरहिनि मंदिर दियनाबार ५०·०० —

गोरख

मरो हे जोगी मरो ७५·०० —

यारी

बिरहिनी मंदिर दियना बार ५०·०० —

लाल

हंसा तो मोती चुगैं ५०·०० —

दरियादास (बिहार वाले)

दरिया कहै सब्द निरबाना ६०·०० —

भीखा

गुरू-परताप साच की संगति ५०·०० —

प्रश्नोत्तर

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन ६०·०० —

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र ५०·०० —

मृत्योर्मा अमृतं गमय ५०·०० —

रैदास

मन ही पूजा मन ही धूप ५०·०० —

हिन्दी प्रकाशन जन्मोत्सव ११ दिसम्बर १६७६

१. दरिया कहै सब्द निरबाना
२. गुरु-परताप साध की संगति
३. प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
४. उत्सव आमार जाति, आनन्द आमार गोत्र
५. गीता-दर्शन अध्याय ६-१०
६. सपना यह संसार
७. मृत्योर्मा अमृतं गमय
८. मन ही पूजा मन ही धूप
९. शिक्षा में क्रांति

भगवान श्री की पूर्व प्रकाशित अप्रकाशित पुस्तकों/प्रवचनों के संकलित नए पेपर-बैक सस्ते संस्करण :

साधना-पथ — २०·००

३० प्रवचन, ४५४ पेज
साधना-पथ, पथ की खोज, (सिंहनाद) अन्तर्यात्रा, प्रभु की पगडंडिया

नेति-नेति — २०·००

२४ प्रवचन, ४७५ पेज
शून्य की नाव, सत्य की खोज, सम्भावनाओं की आहट, शून्य के पार, सूर्य की ओर उड़ान, सत्य के अज्ञात सागर का आमन्त्रण

सम्भोग से समाधि की ओर — २०·००

१८ प्रवचन, ३६२ पेज
सम्भोग से समाधि की ओर, युवक और यौन, प्रेम और विवाह, जनसंख्या विस्फोट, विद्रोह क्या है ? युवक कौन ? जीवन क्रांति के सूत्र तथा चार अप्रकाशित प्रवचन

भारत के जलते प्रश्न — २५·००

२४ प्रवचन, ५६४ पेज
समाजवाद से सावधान, समाजवाद अर्थात आत्मघात, क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया, क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार, प्रगतिशील कौन ? धर्म और राजनीति तथा ग्यारह अप्रकाशित प्रवचन

योग-दर्शन भाग : १, २ — २५·००

२० प्रवचन, ५६० पेज
पतंजलि योग-सूत्र पर 'योगा : दी अल्फा एण्ड दी ओमेगा' के नाम से प्रकाशित प्रथम दो भागों का हिन्दी अनुवाद

असतो मा सद्गमय — २५·००

(निर्वाण उपनिषद एवं ईशावास्योपनिषद का नया संकलन पृष्ठ संख्या ५६०)

मैं कहता आंखन देखी — २५·००

४३ प्रवचन, ६०० पेज
मैं कहता आंखन देखी, गहरे पानी पैठ, ज्योतिष अद्वैत का विज्ञान, ज्योतिष अर्थात् अध्यात्म, मैं कोन हूं ?, अमृत-वाणी तथा नव-सन्यास क्या ? का नया संकलन

महावीर-वाणी भाग : १ — २५·००

१८ प्रवचन, ४६४ पेज
प्रथम पर्युषण व्याख्यानमाला के अन्तर्गत दिनांक १८ अगस्त १६७१ से ४ सितम्बर १६७१ तक भगवान श्री रजनीश द्वारा बम्बई में दिये गये १८ प्रवचनों का संकलन

महावीर-वाणी भाग : २	—	२५·००
१८ प्रवचन, ४९८ पेज द्वितीय पर्यूषण व्याख्यानमाला के अन्तर्गत दिनांक ४ सितम्बर १९७१ से २१ सितम्बर १९७१ तक भगवान श्री रजनीश द्वारा बम्बई में दिये गये १८ प्रवचनों का संकलन		
देख कबीरा रोया	३०·००	२५·००
३० प्रवचन, ६९६ पेज अस्वीकृति में उठा हाथ, गांधीवाद : एक और समीक्षा और १९ अप्रकाशित प्रवचन		
शिक्षा में क्रांति	—	२५·००
२३ प्रवचन, ६२४ पेज नये मनुष्य के जन्म की दिशा, अज्ञात की ओर, क्रांतिनाद, अज्ञात के नये आयाम एवम् १५ अप्रकाशित प्रवचन		

पूर्व-प्रकाशित साहित्य

जिन खोजा तिन पाइयां	—	४०·००
तत्त्वमसि (५२० पत्रों का संकलन)	—	४०·००
मैं कहता आंखन देखी	—	६·००
गांधीवाद : एक और समीक्षा	—	५·५०
समाजवाद से सावधान	—	५·००
सत्य की पहली किरण	—	५·००
शांति की खोज	—	३·५०
विद्रोह क्या है ?	—	२·५०
सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	—	२·००
सूर्य की ओर उड़ान	—	२·००
प्रेम के स्वर	—	२·००
जनसंख्या विस्फोट	—	१·५०

पत्र-पत्रिकायें

रजनीश फाउन्डेशन न्यूजलैटर : हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती में प्रकाशित

आवृत्ति : पाक्षिक (एक वर्ष में २४ अंक)

सामग्री : प्रत्येक अंक में एक नवीनतम प्रवचन, आश्रम की गतिविधियों एवं रजनीश ध्यान केन्द्रों के समाचार।

हिन्दी, अंग्रेजी एवं गुजराती न्यूजलैटर में भिन्न-भिन्न प्रवचन।

एक वर्ष की सदस्यता शुल्क : रुपये २४·०० (कोई भी एक भाषा में)

नमूने के लिए एक अंक का मूल्य : रुपये १·२५

संन्यास : हिन्दी एवं अंग्रेजी में प्रकाशित

आवृत्ति : द्वैमासिक (एक वर्ष में छः अंक)

सामग्री : भगवान श्री के महत्त्वपूर्ण प्रवचन, सुन्दर चित्र, दर्शन-संवाद, संन्यास के नये आयाम, ध्यान-विधियां, आश्रम एवं रजनीश ध्यान केन्द्रों के नवीनतम समाचार इत्यादि। हिन्दी एव अंग्रेजी 'संन्यास' में भिन्न-भिन्न सामग्री।

एक वर्ष का सदस्यता-शुल्क	नमूने के लिए एक अंक का मूल्य
(हिन्दी) रुपये २४·००	(हिन्दी) रुपये ५·००
(अंग्रेजी) रुपये ६०·००	(अंग्रेजी) रुपये १०·००

विशेष :

(१) अर्ध-वार्षिक सदस्यता की सुविधा है।

(२) न्यूजलैटर या संन्यास की सदस्यता वी० पी० पी० द्वारा सम्भव नहीं है।

● रजनीश दर्शन, संन्यास एवं न्यूजलैटर के पुराने अंक निम्नलिखित घटे मूल्यों में उपलब्ध : (डाक-व्यय अतिरिक्त)

रजनीश-दर्शन	वर्ष १९७४ अंक १, २	रुपये १·५०
,, ,,	वर्ष १९७६ अंक १ से ६	रुपये १·७५
संन्यास	वर्ष १९७७ अंक १ से ३	रुपये २·००
,,	वर्ष १९७८ अंक १ से ६	रुपये २·५०

● रजनीश फाउन्डेशन न्यूजलैटर (डाक-व्यय अतिरिक्त)

हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती

वर्ष १९७५, १९७६, १९७७ एवं १९७८ के उपलब्ध अंक } प्रति अंक ५० पैसे

● डायरी व कैलेन्डर

'माय कम्यून' डायरी १९७९ (अंग्रेजी भाषा में मुद्रित)	रुपये ४·००
डायरी १९७८ (अंग्रेजी भाषा में मुद्रित)	रुपये १०·००
डायरी १९७७ राज संस्करण (अंग्रेजी भाषा में मुद्रित)	रुपये ५·००
डायरी १९७७ सामान्य संस्करण (अंग्रेजी भाषा में मुद्रित)	रुपये ३·००
कैलेन्डर १९७८	रुपये ५·००

विशेष :

१. पचास रुपये से अधिक का साहित्य मंगाने पर डाक व पैकिंग व्यय में छूट।
२. रजनीश ध्यान केन्द्रों और पुस्तक-विक्रेताओं को पेकिंग और डाक-व्यय अतिरिक्त लगेगा।
३. डीलक्स व सामान्य संस्करण पुस्तकों में सामग्री तो एक ही है, लेकिन कागज, बाइंडिंग व कवर की क्वालिटी में अन्तर है।
४. जिन पुस्तकों के दो संस्करण हैं, उनका आर्डर देते समय स्पष्ट लिखें कि आप वह पुस्तक डीलक्स संस्करण में चाहते हैं या कि सामान्य संस्करण में।

५. पुस्तकें अनुरोध पर वी० पी० पी० द्वारा भेजी जाती हैं।
६. धनराशि "रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड" के नाम से रजनीश फाउन्डेशन, लिमिटेड, १७ कोरेगांव पार्क, पूना ४११००१ (महाराष्ट्र) को भेजें।
७. १५ से २५ पुस्तकें (लगभग १० किलो वजन की) या अधिक रेल अथवा ट्रान्सपोर्ट द्वारा भेजकर आर० आर० बैंक को भेजी जा सकती है।
८. ऑर्डर देते समय स्पष्ट लिखें कि पुस्तकें रेल अथवा ट्रान्सपोर्ट या डाक से भेजी जायें। रेलवे स्टेशन का नाम स्पष्ट लिखें।

निम्न ऑर्डर फॉर्म में पुस्तक का नाम, संख्या और मूल्य साफ अक्षरों में भरें—
ऑर्डर फॉर्म : कृपया भेजें :

संन्यास (भाषा :) वर्ष ( )
वार्षिक शुल्क (रुपये)
न्यूजलैटर (भाषा :) वर्ष ( )
वार्षिक शुल्क (रुपये)

भेजने वाले का नाम.............................
केन्द्र का नाम....................................
पूरा पता...
....
पिन कोड...................

प्रतियां	पुस्तक का नाम	मूल्य
....	....	....
....	....	....
....	....	....
कुल पुस्तक संख्या		कुल धनराशि

धनराशि रुपये......का मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट भेज रहे हैं/संलग्न है।

● सभी ऑर्डर्स का लेन-देन अब रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड द्वारा ही होता है। अतः कृपया पत्र, बैंक ड्राफ्ट इत्यादि रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड के नाम पर ही भेजें।

सभी प्रकाशनों के लिए संपर्क-सूत्र :

रजनीश फाउंडेशन लिमिटेड
श्री रजनीश आश्रम
१७, कोरेगांव पार्क
पूना–४११००१ महाराष्ट्र
फोन : २८१२७, २०६८१, २०६८२
टेलेक्स : ०१४५—४२१ ताओ

और जल्दी ही तुम तुम्हारे राजनेताओं से ऊब जाओगे; ऊब ही गये हो। तीस साल उनकी मूढ़ताएं तुमने देख ली, भलीभांति देख ली हैं। और कितनी देर लोगी? और दस-पांच साल समझो तुम, उनसे ऊब ही जाओगे। उनसे ऊबने के बाद तुम्हारे पास क्या है फिर? तुम्हारे राजनेताओं से तुम जिस दिन बिलकुल ऊब जाओगे, उस दिन सिबाय मेरी बात के तुम्हारे पास कोई दूसरा विकल्प नहीं है। मैं अकेला विकल्प हूं। तुम्हें मेरी बात पर ध्यान देना ही होगा। और तब तक मैं उस परिवार को भी खड़ा कर दूंगा जो कि प्रमाण बन जाये। मैं बात करने में ही भरोसा नहीं करता, मैं काम में लगा हूं। लेकिन निश्चित ही ये काम गहरे हैं और समय लेते हैं।

लेकिन एक अभूतपूर्व प्रयोग शुरू हो गया है और यह प्रयोग रुकने वाला नहीं है। क्योंकि इस प्रयोग के साथ परमात्मा है।

—भगवान श्री रजनीश

मेरा संन्यासी उत्पादक है। संन्यासी उत्पादक हो सकता है, सृजनात्मक हो सकता है। नया कम्यून कोई चार वर्गमील में बनने को है। काम शुरू हुआ। चार वर्गमील में कम-से-कम दस हजार संन्यासी रहेंगे। सामूहिक खेती करेंगे, सामूहिक कारखाने चलाएंगे, उत्पादन करेंगे। सबको सबकी जरूरत के अनुसार मिलेगा—सुख-सुविधा। लेकिन धन पर किसी की व्यक्तिगत मालकियत नहीं होगी। सारा परिवार जो भी होगा, उसको अपना मानकर जियेगा। और हम बहुत तरह के उत्पादक आयाम शुरू करेंगे। फिर हम लोगों को बुला सकेंगे कि मस्तों की इस टोली को भी देखो! किसी की जेब में एक पैसा नहीं है, लेकिन भारत का कोई बड़े से बड़ा रईस भी, बिड़ला और टाटा भी इस शान और इस मस्ती से नहीं रह सकते। लोग देखेंगे इस नृत्य को, इस उत्सव को।

—भगवान श्री रजनीश

मेरा आश्रम देश के संदर्भ में बिलकुल नही है, क्योंकि देश गलत है। मैं अपने आश्रम के संदर्भ में देश को चाहूंगा। यह महत् प्रयास है, भगीरथ प्रयास है; मगर करने योग्य है, इसके करने में आनंद है।

—भगवान श्री रजनीश

और जल्दी ही तुम तुम्हारे राजनेताओं से ऊब जाओगे; ऊब ही गये हो। तीस साल उनकी मूढ़ताएं तुमने देख लीं, भलीभांति देख ली हैं। और कितनी देर लगेगी? और दस-पांच साल समझो तुम, उनसे ऊब ही जाओगे। उनसे ऊबने के बाद तुम्हारे पास क्या है फिर? तुम्हारे राजनेताओं से तुम जिस दिन बिलकुल ऊब जाओगे, उस दिन सिबाय मेरी बात के तुम्हारे पास कोई दूसरा विकल्प नहीं है। मैं अकेला विकल्प हूं। तुम्हें मेरी बात पर ध्यान देना ही होगा। और तब तक मैं उस परिवार को भी खड़ा कर दूंगा जो कि प्रमाण बन जाये। मैं बात करने में ही भरोसा नहीं करता, मैं काम में लगा हूं। लेकिन निश्चित ही ये काम गहरे हैं और समय लेते हैं।

लेकिन एक अभूतपूर्व प्रयोग शुरू हो गया है और यह प्रयोग रुकने वाला नहीं है। क्योंकि इस प्रयोग के साथ परमात्मा है।

—भगवान श्री रजनीश

मेरा संन्यासी उत्पादक है। संन्यासी उत्पादक हो सकता है, सृजनात्मक हो सकता है। नया कम्यून कोई चार वर्गमील में बनने को है। काम शुरू हुआ। चार वर्गमील में कम-से-कम दस हजार संन्यासी रहेंगे। सामूहिक खेती करेंगे, सामूहिक कारखाने चलाएंगे, उत्पादन करेंगे। सबको सबकी जरूरत के अनुसार मिलेगा—सुख-सुविधा। लेकिन धन पर किसी की व्यक्तिगत मालकियत नहीं होगी। सारा परिवार जो भी होगा, उसको अपना मानकर जियेगा। और हम बहुत तरह के उत्पादक आयाम शुरू करेंगे। फिर हम लोगों को बुला सकेंगे कि मस्तों की इस टोली को भी देखो! किसी की जेब में एक पैसा नहीं है, लेकिन भारत का कोई बड़े से बड़ा रईस भी, बिड़ला और टाटा भी इस शान और इस मस्ती से नहीं रह सकते। लोग देखेंगे इस नृत्य को, इस उत्सव को।

—भगवान श्री रजनीश

मेरा आश्रम देश के संदर्भ में बिलकुल नहीं है, क्योंकि देश गलत है। मैं अपने आश्रम के संदर्भ में देश को चाहूंगा। यह महत् प्रयास है, भगीरथ प्रयास है; मगर करने योग्य है, इसके करने में आनंद है।

—भगवान श्री रजनीश